भूमिका

अक्तूबर १९१७ से लेकर जुलाई १९१८ तक जिन १० महीनोंका समावेश इस खण्डमें हुआ है उनका गांधीजीके कर्म-जीवनमें एक विशिष्ट स्थान है। यह समय उनके लिए लगभग अनवरत और अत्यन्त उत्कट प्रवृत्तिका समय था। संकलित सामग्री बताती है कि इन दिनों वे किस तरह सत्याग्रहके सिद्धान्तका प्रयोग एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न परिस्थितियोंका सामना करनेके लिए कर रहे थे। चम्पारनकी उनकी अपेक्षाकृत आसान सफलताने उनकी कार्यपद्धतिके बारेमें लोगोंकी उत्सुकता जगा दी थी, लेकिन गांधीजी उनका प्रयोग राष्ट्रीय समस्याओंको हल करनेमें करते, उसके पहले उसकी ज्यादा कड़ी कसौटी होनेकी जरूरत थी जिससे लोगोंको उसकी शक्तिकी पूरी-पूरी प्रतीति हो जाती। फरवरी-मार्चमें अहमदाबादके मिल मजदूरोंकी हड़तालमें और मार्च-अप्रैल १९१८ में खेड़ा सत्याग्रहमें उसके ऐसे दो प्रयोग हुए। युद्धमें सरकारकी सहायताके प्रयत्नोंमें गांधीजीने जो हिस्सा लिया वह सत्याग्रहके दूसरे पहलूको प्रदर्शित करता है, क्योंकि जैसे एक ओर सत्याग्रहका मतलब अन्यायका प्रतिरोध है वैसे ही दूसरी ओर उसका मतलब शत्रुके प्रति सद्भावना और प्रसंग उपस्थित होनेपर उसके साथ सहयोग देनेके लिए तैयार रहना भी है। इस तरह वह नाजुक समय था जबकि सत्याग्रह सीखा और सिखाया जा रहा था और राष्ट्रीय नेतृत्वकी बागडोर गांधीजी अपने हाथोंमें ले सकें, इसके लिए जमीन तैयार हो रही थी।

अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल कई दृष्टियोंसे एक अद्वितीय घटना थी। मजदूर संगठनकी बात अभी भारतके लिए नई थी और यूरोपमें इस आन्दोलनको प्रेरित करनेवाला वर्ग-संघर्षका सिद्धान्त तो लगभग अज्ञात ही था। गांधीजी दक्षिण आफ्रिकामें मजदूरोंकी एक ऐसी हलचल देख चुके थे जो मालिकों और सरकारके प्रति शत्रुताके भावसे प्रेरित थी। वह उन्हें अच्छी नहीं लगी थी और उनका यह विश्वास कि मानव-सम्बन्धोंके सारे सवालोंका हल एकमात्र अहिंसा द्वारा हो सकता है, उससे और अधिक दृढ़ हो गया था। अहमदाबादकी लड़ाईने उन्हें अपने इस विश्वासको परखने और उसकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेका मौका दिया। उसके पीछे उनकी इच्छा मालिकों और मजदूरोंके हितोंका संयोजन करनेकी और झगड़ेका प्रसंग उपस्थित होनेपर उसे इस तरह निपटानेकी थी कि दोनों पक्षोंमें कहीं कटुताका भाव उत्पन्न न हो। अहमदाबादके मिल-मजदूरोंने, मिल-मालिकों द्वारा किसी किस्मका सलाह-मशविरा किये बिना ही युद्ध-कालीन भत्ता बन्द कर दिये जानेपर, अपने वेतनमें उसी अनुपातमें बढ़ोतरीकी माँग की थी। गांधीजी चाहते थे कि मामला बिना किसी आन्दोलन और विक्षोभके निपट जाये। उन्होंने मिल-मालिकोंसे अपील की कि वे मजदूरोंको "प्रेम-रूपी रेशमकी डोरसे" बाँधें (पृष्ठ ११३) और १४ फरवरीको इस सवालपर विचार करनेके लिए पंचोंकी नियुक्ति करानेमें सफल हो गये। दूसरी ओर उन्होंने मजदूरोंको उनके अधिकारोंके प्रति जागरूक किया, लेकिन साथ ही उनसे अपने प्रयत्नमें हिंसाका सर्वथा त्याग करनेकी

प्रतिज्ञा लिवानेकी सावधानी भी बरती। जब संघर्ष अनिवार्य हो गया तब गांधीजी पूरे जोरसे मजदूरोंके पक्षकी हिमायत करने लग गये। और उन्होंने आगे बढ़कर उनका सक्रिय नेतृत्व भी संभाल लिया। लड़ाईके सिलसिलेमें उन्होंने प्रतिदिन मजदूरों और मालिकों, दोनोंको तालीम देनेकी गरजसे पत्रिकाएँ निकालीं। मजदूरोंसे उन्होंने अपना संघर्ष सत्याग्रहकी भावनासे चलानेके लिए कहा और मालिकोंसे हृदय-परिवर्तनका अनुरोध किया। उन्होंने मजदूरोंको दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके संघर्षकी याद दिलाई और वलिअम्मा तथा हरबतसिंहकी आत्माहुतिका स्मरण कराया। मजदूरोंका ध्यान उनकी त्रुटियोंकी ओर आकृष्ट किया, उन्हें बताया कि वेतन-वृद्धिके इस संघर्षको वे अपने रहन-सहनको सुधारने और अपना जीवन ज्यादा सुसंस्कृत बनानेके बृहत् प्रयत्नका एक हिस्सा मानना सीखें। और जब उन्होंने उन्हें कठिनाइयोंके सम्मुख लड़खड़ाते हुए देखा तो उनके ध्येयकी सफलताके लिए अपनी आहुति देनेकी तत्परता प्रदर्शित करते हुए अनिश्चित कालके लिए उपवासकी घोषणा कर दी। यों, उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि उपवासमें मिल-मालिकोंपर दबाव डालनेका हेतु बिलकुल नहीं है, किन्तु उन्होंने यह स्वीकार किया कि उसका यह असर होगा अवश्य और इसलिए जब मिल-मालिक झुके तो गांधीजीने इस परिस्थितिका पूरा लाभ उठानेसे, मजदूरोंकी माँगोंकी पूरी स्वीकृतिका आग्रह करनेसे, इनकार कर दिया। उनका यह रवैया कुछ मजदूरोंको शायद बुरा भी लगा, लेकिन गांधीजीने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। इस तरह संघर्षका अन्त जिस प्रकार हुआ उसमें समझौतेकी वह भावना विद्यमान थी जो गांधीजीके सत्याग्रहका अविच्छेद्य अंग थी।

मिल-मजदूरोंकी हड़तालसे मुक्त होते-न-होते गांधीजीके सामने सरकारसे पहली बार डटकर भिड़नेकी सम्भावना उपस्थित हो गई। गुजरातके खेड़ा जिलेमें फसलको बाढ़से बहुत नुकसान हुआ था और स्थानीय राजनीतिक कार्यकर्ताओंको ऐसा महसूस हुआ कि परिस्थितियोंको देखते हुए किसानोंको मालगुजारी कानूनकी रू से लगानकी पूरी या आंशिक छूट मिलनी चाहिए। किन्तु सरकार इस मामलेमें लोगोंकी बातको अनसुनी कर रही थी। गांधीजी अभी चम्पारनमें ही थे, जब इस सम्बन्धमें उनकी सलाह माँगी गई। चम्पारनसे लौटकर आनेके बाद उन्होंने लोगोंकी इस शिकायतमें सक्रिय दिलचस्पी लेना शुरू किया। उन्होंने फसलकी हालत घूम-फिरकर स्वयं जानी-परखी और अन्तमें वे इस निष्कर्ष-पर आये कि लगानकी छूटकी लोगोंकी माँग वाजिब है। अधिकारियोंको इस सम्बन्धमें प्रतिवेदन प्रेषित किये गये किन्तु उनसे उनके सहानुभूति-शून्य रवैयेमें कोई फर्क नहीं पड़ा। तब गांधीजीने लोगोंको सक्रिय प्रतिरोधकी सलाह दी। "मुझे तो यह बात बिलकुल स्वयंसिद्ध-सी लगती है कि अन्यायके खिलाफ अपनी भावना प्रकट करनेके लिए नम्रता-पूर्वक लगान देनेसे इनकार करने और सरकारको उसे जबरदस्ती वसूल करने देनेमें कुछ भी गैरकानूनी नहीं है। (पृष्ठ २०४)। २२ मार्चको नडियादकी एक सार्वजनिक सभामें बोलते हुए उन्होंने लोगोंको अपनी इस लड़ाईको एक बृहत्तर सिद्धान्तकी स्थापनाके लिए लड़ी जा रही लड़ाईका रूप देने और लगान देनेसे इनकार करनेकी प्रतिज्ञा लेनेके लिए आहूत किया। उन्होंने कहा : "इस देशमें यह नियम ही बन गया है कि सरकारका मत हमेशा ठीक होना चाहिए। लोग चाहे जितने सचाईपर हों तो भी

सरकार अपनी मनमानी करती है — यह स्थिति असह्य है। "यदि बात न्यायकी है तब तो यह ठीक है कि वह दूसरोंसे स्वीकार कराई जाये किन्तु यदि वह अन्यायपूर्ण है तब तो वह बदली ही जानी चाहिए" (पृष्ठ २६२)। संघर्षके दौरान उन्होंने प्रायः अपने प्रत्येक भाषणमें लोगोंका ध्यान उसके इस बृहत्तर महत्वकी ओर खींचा और प्रजाके साथ सरकारका व्यवहार जिस जनतांत्रिक भावनासे अनुप्राणित होना चाहिए, उसकी शिक्षा दी। उन्होंने इसके लिए जनतासे अपने भीतर बलिदानकी भावनाका विकास करनेके लिए कहा। "जिन-जिन जातियोंका उत्थान हुआ है उन्हें पहले कष्ट सहने पड़े हैं।" (पृष्ठ २६२)। "सत्ता अन्धी है, अन्यायी है। जो सरकार उस सत्ताका सम्मान करनेकी बात कहती है वह टिक नहीं सकती।" (पृष्ठ ३०७)। "जनताका विरोध करके कोई राजा राज्य नहीं कर सकता। इस सत्यको सिद्ध कर दिखाना मैंने अपने जीवनका मुख्य कार्य माना है।" (पृष्ठ ३११)। १२ अप्रैलको कमिश्नरने सरकारका पक्ष पेश करनेके लिए एक सभा बुलाई थी और गांधीजीने लोगोंको उसमें हाजिर रहनेकी सलाह दी थी सभामें कमिश्नरने जो भाषण दिया उसके बारेमें उन्होंने कहा कि मैं यह कहनेके लिए बाध्य हूँ कि "इस प्रतिहिंसा एवं आतंकपूर्ण भावनाके विरुद्ध जीवन पर्यंत संघर्ष करना प्रत्येक राजनिष्ठ नागरिकका पवित्र कर्त्तव्य है।" (पृष्ठ ३२२)।

२५ अप्रैलको अधिकारियोंकी नीतिमें परिवर्तनके चिह्न दिखाई दिये, यद्यपि उनके हृदयमें तो शायद कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उन्होंने आदेश जारी किये कि जो लोग अपना बकाया लगान दे सकते हैं वे यदि अदायगी कर दें तो जो लोग देनेकी स्थितिमें नहीं हैं उनका लगान माफ कर दिया जायेगा। जूनके आरम्भमें जब ये आदेश प्रकाशमें आये तो गांधीजीने उन्हें स्वीकार तो किया किन्तु उन्हें महसूस हुआ और उन्होंने कहा भी कि सरकार द्वारा दी गई इस रियायतमें श्री नहीं है। वास्तविक राहतकी दृष्टिसे किसानोंको जो लाभ हुआ वह तो नगण्य था किन्तु लोगोंमें निर्भीकता आई और उन्हें जब भी आवश्यक हो सत्याग्रहका प्रयोग कर सकनेकी अपनी क्षमताकी प्रतीति हुई। गांधीजीने इस चीजको, संघर्षके दरम्यान लोगोंने जो कष्ट भोगे थे, उनका पर्याप्त पुरस्कार माना।

खेड़ाके संघर्षकी समाप्तिसे गांधीजीको अवश्य ही बहुत राहत महसूस हुई होगी, क्योंकि इससे उन्हें युद्ध-प्रयत्नके अपेक्षाकृत बड़े सवाल की ओर ध्यान देकर सत्याग्रहीके रूपमें अपने विरोधीकी भी सहायता करनेकी अपनी तत्परता दिखानेका अवसर मिला। ब्रिटेनके साथ भारतके सम्बन्धकी उपयोगितामें वे तब भी विश्वास करते थे। सो उन्होंने अपनी अहिंसाके विशुद्ध तर्क-संगत परिणामोंपर फिलहाल अपनी वीरोचित उदारताकी वृत्तिको तरजीह देते हुए साम्राज्यको अपनी सेवाएँ पेश कीं। वे सोचते थे कि राजनीतिक परिणामोंकी दृष्टिसे युद्ध-प्रयत्नमें दिया गया सहयोग अंग्रेजोंके चरित्रके सत्-अंशपर इष्ट प्रभाव डालेगा और उसका कोई अन्य सुफल चाहे न भी आये, वह देशमें इतनी शक्ति तो उत्पन्न कर ही देगा जिससे होमरूल-प्राप्तिकी राष्ट्रीय आकांक्षाकी उपेक्षा कर सकना ब्रिटिश सरकारके लिए असम्भव हो जाये। अपनी आरम्भिक अनिच्छाको जीतकर वे २९ अप्रैलको दिल्लीमें वाइसराय द्वारा बुलाई गई युद्ध-परिषदकी बैठकमें शामिल हुए और उन्होंने युद्ध-प्रयत्नके पक्षमें सक्रिय सहायता देनेका निश्चय किया। २५ मईको उन्होंने सार्वजनिक रूपसे सेनामें भरतीकी पैरवी की। तिलक और दूसरे नेताओंको

बिना शर्त सहयोगकी इस नीतिकी बुद्धिमत्तामें सन्देह था। और जब बम्बईमें १० जून को प्रान्तीय युद्ध-परिषद्के दौरान बम्बईके गवर्नर लॉर्ड विलिंग्डनने लोकमान्य तिलक और केलकरको उनके भाषणोंके बीचमें रोक दिया, उस समय गांधीजीके लिए परिस्थिति निश्चय ही बहुत अटपटी हो गई होगी। उन्होंने इस मामलेको तुरन्त अपने हाथमें लिया, और गवर्नरसे साफ कहा कि उनका वैसा करना बहुत गलत था। जनताकी ओरसे गवर्नरके इस विवेकहीन व्यवहारकी जो टीका की गई उसमें गांधीजीने मुख्य हिस्सा लिया और राष्ट्रके सम्मान्य नेताके इस अपमानको राष्ट्रका अपमान मानते हुए उन्होंने गवर्नरसे क्षमा-याचनाकी माँग की। किन्तु सरकारके युद्ध प्रयत्नमें जनताके सहयोगकी माँग वे फिर भी करते रहे; यहाँ तक कि उन्होंने खेड़ा जिलेमें लोगोंको सेनामें भरती होने के लिए प्रोत्साहित करते हुए जोरदार मुहिम चलाई जिसका उनके स्वास्थ्यपर बहुत खराब असर पड़ा। अहिंसाका सन्देशवाहक सेनामें भरती होनेकी पैरवी करे, यह बात लोगोंको, जैसा कि स्वाभाविक है, असंगत मालूम होती थी। इस असंगतिके लिए मित्रों तकने गांधीजीकी आलोचना की। गांधीजीने अपनी स्थितिका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि कायरताको छिपानेके लिए अहिंसाकी शरण नहीं ली जा सकती; मैं अपने लिए तो किसी भी परिस्थितिमें हिंसाका वर्जन करूँगा किन्तु मेरी तरह जो अहिंसाको परम धर्म नहीं मानते उन्हें मैं यही सलाह दूँगा कि वे भय या दुर्बलताके कारण हिंसासे न हिचकें। हिंसा-अहिंसाके सवालपर गांधीजीका यह स्पष्टीकरण उनकी शिक्षाका एक आवश्यक अंग है और यह बात उन्होंने बादमें अनेक अवसरोंपर दुहराई। उन्होंने कहा, अगर भारतीय जनता ब्रिटेनके साथ अपने सम्बन्धोंका लाभ उठाते रहना चाहती है तो उसे साम्राज्यकी रक्षामें अपना योग अवश्य देना चाहिए। किन्तु देशकी राजनीतिक आकांक्षाओंकी सिद्धिके लिए वे सत्याग्रहको ही एकमात्र उपाय मानते रहे। एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ताको उन्होंने लिखा, "अवसर आनेपर अपनी शक्ति-भर सत्याग्रहकी महिमाको प्रदर्शित करना हमारा परम धर्म है।" (पृष्ठ १३०)। फिर इन्दौरमें, ३० मार्चके अपने एक भाषणमें उन्होंने घोषित किया, "हम अगर भारतका उद्धार कर सकते हैं तो सत्य और अहिंसासे ही कर सकते हैं। (पृष्ठ २८३) लेकिन उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि मानवीय जीवनकी विविध परिस्थितियोंमें जब अहिंसाके मार्गका अनुसरण किया जाता है तो हमें ऐसे अनेक जटिल नैतिक प्रश्नोंका मुकाबला करना पड़ता है जिनका कोई सीधा हल नहीं है। "हिमालयपर सीधी लकीरसे जा ही नहीं सकते। क्या इसी तरह अहिंसाका मार्ग भी विकट होगा?" (पृष्ठ ४९८)

बड़ी राष्ट्रीय समस्याओंपर गांधीजीने जितना ध्यान दिया उतना ही दिखनेमें छोटी समस्याओंपर भी। उन्होंने गोरक्षाके विवादास्पद प्रश्नको प्राणि-जगत्के प्रति करुणा और उसके कल्याणकी चिन्ता के साथ जोड़कर उसे ज्यादा सही परिप्रेक्ष्य प्रदान करनेका प्रयत्न किया। उन्होंने गायोंकी नसल सुधारने, बैलोंके साथ सदयताका बरताव करने, आदर्श गोशालाएं आदि चलानेपर जोर दिया जो कि इस समस्याके प्रति उनकी रचनात्मक दृष्टिका निदर्शक है। एक और महत्वपूर्ण प्रश्न, जिसपर उन्होंने इस समय अधिकाधिक ध्यान दिया, शिक्षाका था। अंग्रेजी शासन दे ने इस देशमें जिस शिक्षा-प्रणालीकी स्थापना की उससे वे अनेक कारणोंसे असन्तुष्ट थे, किन्तु उन्हें सबसे ज्यादा आपत्ति

अंग्रेजीको शिक्षाका माध्यम बनाकर उसे जो बहुत ज्यादा अस्वाभाविक महत्व दे दिया गया था उसपर थी। अस्पृश्यताकी प्रथा नष्ट करने और जाति-प्रथाको जिस हदतक वह संयमके पालनमें सहायक हो उसी हद तक माननेके बारेमें भी उन्होंने इन दिनों काफी लिखा और कहा।

अपनी इन विविध प्रवृत्तियोंमें गांधीजीके बल और उत्साहका अक्षय स्रोत उनकी ज्वलन्त भारत-भक्ति ही थी। "मैं अपना जीवन तभी सार्थक समझूँगा जब भारतके लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर पाऊँ।" (पृष्ठ ४६)। देशमें उनका प्रभाव इस समय प्रकर्षपर था और इस अवसरका उपयोग करके वे उसे अपना सन्देश सुना डालनेके लिए बेचैन थे। किन्तु उन्हें भारतकी परिस्थितियोंके अपने सीमित अनुभवका भान था और राजनीतिके क्षेत्रमें वे अपने कदम काफी तोल-तोलकर ही बढ़ा रहे थे। गुजरात राजनीतिक परिषदकी अध्यक्षता करते हुए, ३ नवम्बर, १९१७ को अपने भाषणमें उन्होंने कहा, "भारतके राजनीतिक क्षेत्रमें मैं अभी ढाई वर्षका बच्चा हूँ। मैं दक्षिण आफ्रिकाके अपने अनुभवसे यहाँ काम नहीं कर सकता।" (पृष्ठ ५०) फिर भी, उन्हें राजनीतिक क्षेत्रमें तो क्रियाशील रहना ही पड़ा। जब लॉर्ड माण्टेग्युने इसका कारण जानना चाहा तो उन्होंने कहा कि अगर मैं राजनीतिसे हट जाऊँ तो अपने धार्मिक और सामाजिक दायित्व भी पूरा नहीं कर पाऊँगा। यह उत्तर उन्होंने काफी तौल कर दिया था, क्योंकि उनका खयाल था, "अपने जीवनके अन्त तक मेरा यही जवाब रहेगा।" (पृष्ठ ४६१) देशकी घोर गरीबीका खयाल उन्हें रात दिन सालता रहता था और उनका यह दुःख तब और बढ़ जाता था जब वे देखते थे कि लोग उसका निवारण कर सकनेमें असहाय हैं। अन्य सभी क्षेत्रोंमें प्रगतिके लिए भी राजनीतिक स्वतंत्रता आवश्यक थी, और इसीलिए गांधीजी चाहते थे कि देशको गलतियाँ करनेका अधिकार मिलना चाहिए। "जिसे भूलें करनेका हक न हो वह कभी उन्नति भी नहीं कर सकता . . . भूलें करनेका अधिकार और उन्हें सुधारनेकी सत्ता — यह स्वराज्यकी व्याख्या है।" (पृष्ठ ५५) स्वभावतः वे देशके लिए स्वराज्यकी प्राप्तिको मुख्य स्थान देते थे और उसकी तुलनामें अन्य सार्वजनिक प्रश्नों और प्रवृत्तियोंको उसके अधीन गौण स्थान देते थे। तदनुसार उन्होंने मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारोंका, स्वतंत्रताकी दिशामें एक कदमके रूपमें, स्वागत किया।

खंडमें संकलित पत्रोंकी प्रचुरता इसकी एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता है। भारत और दक्षिण आफ्रिकाके अपने स्वजनों, सह-कार्यकर्ताओं और साथियोंको, तथा मित्रों, सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं, विद्वानों, सम्पादकों, विभिन्न स्तरोंके सरकारी अधिकारियों और विभिन्न विचारधाराओंके राजनीतिक व्यक्तियोंको लिखे गये इन पत्रोंमें, पाठक देखेंगे कि गांधीजी पत्रोंके प्रस्तुत विषयकी, राजनीतिक या अन्य सवालोंकी, चर्चा करके नहीं रह जाते; उनकी दिलचस्पी इस सीमाको लांघकर चुपचाप उन व्यक्तियोंके जीवनमें जा पहुँचती है — उसमें स्नेह और सहानुभूतिका मानवीय रंग आ मिलता है और यह पत्र-व्यवहार गोया शुद्ध मानवीय धरातलपर दो व्यक्तियोंके मिलनका आधार बन जाता है। उनके वैयक्तिक और राजनीतिक सम्पर्कोंका दायरा, जन-सेवाकी उनकी प्रवृत्ति ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों व्यक्तियोंके रूपमें उन पुरुषों और स्त्रियोंके सम्बन्धमें उनकी कल्याण-चिन्ता अधिकाधिक गहरी और सक्रिय होती जाती है।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय, राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया), नई दिल्ली; कलोनियल ऑफिस और इंडिया ऑफिस पुस्तकालय, लन्दन; श्री छगनलाल गांधी, अहमदाबाद; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री नारायण देसाई, बारडोली; श्रीमती राधाबेन चौधरी, कलकत्ता; श्री ए० एच० वेस्ट; 'अन्त्यज स्तोत्र', 'आत्मकथा', 'बापू और हरिजन', 'बापुनी प्रसादी', 'धर्मात्मा गोखले', 'एक धर्मयुद्ध', 'गोपालकृष्ण गोखलेना व्याख्यानो', 'गोसेवा', 'जीवन प्रभात', 'जीवननां झरणां', 'खेड़ा सत्याग्रह', 'महादेवभाईनी डायरी', 'महात्मा गांधी', 'महात्मा गांधीजीनी विचारसृष्टि', 'माई डियर चाइल्ड', 'सरदार वल्लभभाई पटेल', सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन' और 'स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज ऑफ एम० के० गांधी', पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा निम्नलिखित समाचारपत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं: 'अमृतबाजार पत्रिका', 'बंगाली', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'हिन्दू', 'गुजराती', 'इंडियन रिव्यू', 'लीडर', 'मुम्बई समाचार', 'न्यू इंडिया', 'प्रजाबन्धु', 'प्रताप', 'स्टेट्समैन' और 'यंग इंडिया'।

अनुसन्धान और संदर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, गांधी स्मारक संग्रहालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय (मिनिस्ट्री ऑफ इन्फरमेशन ऐंड ब्रॉडकास्टिंग) के अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग (रिसर्च ऐंड रेफरेंस डिवीजन) नई दिल्ली, साबरमती संग्रहालय तथा गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबादके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

अंग्रेजी, गुजराती और मराठीसे अनुवाद करते समय उसे मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद प्राप्त हो सके हैं, हमने ही मूलसे मिलाकर और संशोधन करनेके बाद उनका उपयोग किया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारनेके बाद अनुवाद किया गया है और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। यह ध्यान रखा गया है कि नामोंको सामान्यतः जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाये। जिन नामोंके उच्चारणोंमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है, वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन हिन्दी और गुजरातीके व्यक्तिगत पत्रोंमें गुजराती संवत्के अनुसार तिथी दी गई थी उनमें ईसवी सन्के तदनुरूप तिथि भी दे दी गई है। कुछ पत्रोंकी लेखन तिथिका निर्णय बाह्य या आन्तरिक साक्ष्यके आधारपर किया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मासके या वर्षके अन्तमें डाल दिया गया है। शीर्षकके अन्तमें सूत्रके साथ दी गई तिथि, प्रकाशनकी है।

'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा' के अनेक संस्करण होनेसे उनकी पृष्ठ संख्याएँ विभिन्न हैं; इसलिए हवाला देनेमें केवल उनके भाग और अध्यायका ही उल्लेख किया गया है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

परिशिष्ट

चित्र-सूची

१. पत्र : कोतवालको

मोतीहारी
आश्विन बदी ९ [अक्तूबर ९, १९१७][1]

भाईश्री कोतवाल,[2]

आपका पत्र मिला। आपको भी मेरा तार[3] मिल गया होगा। मैं जवाब तो तुरन्त लिख देना चाहता था, लेकिन लिख नहीं सका। उसके बाद भाग-दौड़में ही रहा, और जवाब नहीं दे पाया।

आपको बहुत दुःख सहना पड़ा है। लेकिन, अगर इसका अच्छा अर्थ लगायें तो आप अपनेको गढ़ सकेंगे। बेटी गई, माँ गई। अब तो चाहे बेटी कहिए चाहे माँ, सब-कुछ भारत ही है। आप उससे बहुत-कुछ पा सकते हैं, उसे बहुत-कुछ दे सकते हैं। और उसे जितना देंगे, उससे सौ गुना अधिक पा सकेंगे। वह कामधेनु है, लेकिन यदि आप उसे घास-भूसा भी नहीं देंगे तो वह दूध कहाँसे देगी? उसे क्या दें और कैसे दें, इसका निश्चय तो जब आप यहाँ आयेंगे तभी किया जायेगा।

अगर आप आ जायें तो २० तारीख तक तो मैं यहीं हूँ। उसके बाद कुछ व्यस्तता रहेगी।

मेरा एक भाषण[4] इस समय मेरे पास है, उसे तो भेज देता हूँ। दूसरोंकी प्रतियाँ मिल जायेंगी तो भेज दूँगा।

मेरे साथ बा हैं, देवदास और अवन्तिकाबेन हैं। उनके पति भाई बबन गोखले तथा कुछ अन्य लोग भी साथमें हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (जी० एन० ३६१३) की फोटो-नकलसे।

१. चम्पारनके नील-उत्पादनके काममें लगे किसानोंकी स्थितिकी जाँच समाप्त होनेके बाद गांधीजी ८ अक्तूबरकी रातको रांचीसे मोतीहारी आये थे।

२. दक्षिण आफ्रिकाके टॉल्स्टॉय फार्ममें गांधीजीके साथी।

३. व ४. उपलब्ध नहीं हैं।

२. भाषण : सच्ची गोरक्षापर[1]

बेतिया

[अक्तूबर ९, १९१७ के आसपास][2]

गोरक्षिणी सभाने मुझे इस शहरमें गोशालाका शिलान्यास करनेका काम सौंपा है, इसके लिए मैं सभाका और आप सबका आभार मानता हूँ। हिन्दुओंकी दृष्टिमें यह कार्य बहुत पवित्र है। गायकी रक्षा करना हर भारतीयका मुख्य कार्य है। फिर भी इस महान् कार्यको करनेकी हमारी जो पद्धति है, उसमें मैंने अनेक दोष पाये हैं। इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर मैंने थोड़ा-बहुत विचार किया है; आपकी इजाजतसे मैं उसे आपके सामने रखना चाहता हूँ।

आजकल गोरक्षाके दो ही अर्थ रह गये हैं। एक तो यह कि बकरीद आदिके अवसरोंपर गोमाताको अपने मुसलमान भाइयोंके हाथोंसे छुड़ाना और दूसरा यह कि दुर्बल गायोंके लिए गोशालाएँ बनवाना।

मुसलमान भाइयोंके हाथोंसे गोमाताकी रक्षा करनेका हमारा तरीका ठीक नहीं है। उसका परिणाम यह हुआ है कि भारतकी इन दो बड़ी जातियोंके बीच हमेशा वैर-भाव और अविश्वास बना रहता है; और कहीं-कहीं तो इन दोनोंके बीच मारपीट भी हो जाती है। अभी हालमें ही शाहाबाद जिलेमें जो मारपीट हुई थी, वह मेरे इस कथनका समर्थन करती है। यह ऐसा प्रश्न है, जिसपर दोनों जातियोंको गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। सैकड़ों हिन्दू भाइयोंने निरपराध मुसलमान भाइयोंके घरबार लूटकर भारी ऊधम मचाया। इसमें पुण्यकी तो गुंजाइश ही कैसे हो सकती है? वह घोर पापका काम था।

गोरक्षिणी सभाके कार्योंसे, दरअसल, गायोंकी रक्षा होनेके बदले उनकी हानि ही अधिक होती है। अहिंसाको हिन्दू धर्ममें मुख्य स्थान दिया गया है। गायकी रक्षा करनेके लिए मुसलमानकी हत्या करना बिलकुल अधर्म है। अगर हम चाहते हों कि उनके हाथों गायकी हत्या न हो, तो उनका हृदय-परिवर्तन करनेकी जरूरत है। यह काम हम जोर-जबरदस्तीसे नहीं कर सकते। हमें तो प्रार्थना और नम्रताके बलपर उनके हृदयमें प्रवेश करना है। इस प्रकार उनके अन्तरके दयाभावको जाग्रत करके हम यह कार्य सिद्ध कर सकते हैं। इस तरह काम करनेके लिए हमें यह प्रतिज्ञा लेनी होगी कि मैं गोरक्षाके लिए काम करूँगा, और ऐसा करनेमें मुसलमान भाइयोंके प्रति द्वेष या वैर-

१. यह भाषण बेतिया (चम्पारन, बिहार) में गोरक्षिणी सभाके तत्त्वावधानमें आयोजित सभामें दिया गया था। स्पष्ट है, गांधीजीने यह भाषण हिन्दीमें दिया होगा, लेकिन हिन्दी-पाठ उपलब्ध न होनेके कारण इसे गुजरातीसे पुनः अनूदित करके दिया जा रहा है।

२. भाषणमें शाहाबाद (बिहार) के हिन्दू-मुस्लिम दंगेका उल्लेख है। यह दंगा सन् १९१७ में २७ सितम्बरसे ९ अक्तूबरके बीच हुआ था। भाषणकी तिथिका अन्दाज उसीके आधारपर किया गया है।

भाव नहीं रखूँगा। उसी तरह उनपर क्रोध नहीं करूँगा और न उनके साथ मार-पीट करूँगा। ऐसा अभयदान देनेके बाद ही हम उनके साथ बात करनेके अधिकारी हो सकते हैं। यह याद रखना है कि हम जिन बातोंको पाप समझते हैं, उन्हें हमारे मुसलमान भाई पाप नहीं समझते। इतना ही नहीं, किसी-किसी अवसरपर तो गायकी हत्या करना वे पुण्य समझते हैं। अपने धर्मका पालन प्रत्येक मनुष्यके लिए जरूरी है। यदि इस्लामका कोई ऐसा आदेश होता कि गायकी कुरबानी हर हालतमें जरूरी है, तो भारतमें वास्तविक शान्ति कभी न रह पाती। लेकिन मैं तो ऐसा समझता हूँ कि बकरीद आदि त्यौहारोंमें गायका वध करना कोई धार्मिक कर्त्तव्य नहीं है। परन्तु जब हम जोर-जुल्म करके गोवध रोकना चाहते हैं, तब मुसलमान भाई मान लेते हैं कि गोवध करना उनका धार्मिक कर्त्तव्य है। जो भी हो, मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इस समस्याका समाधान केवल तपश्चर्यासे ही हो सकता है। ऐसे अवसरपर गायके लिए प्राण देना हमारी अन्तिम तपश्चर्या होगी।

ऐसी घोर तपश्चर्या करनेका भी सब हिन्दुओंको अधिकार नहीं है। दूसरोंको पापकर्मसे विमुख करनेवालोंको स्वयं पापकर्मसे मुक्त होना चाहिए। हिन्दू-जगत् गाय और गो-वंशपर बहुत बड़ा अत्याचार कर रहा है। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारी गायोंकी वर्त्तमान दशा है। जिनका रक्त-मांस सूख गया है, जिनकी चमड़ीके भीतर हड्डीका ढाँचा साफ नजर आता है, जिन्हें पूरी खुराक नहीं मिलती, जिनपर मनमाना बोझ लाद दिया जाता है और जिन्हें पूँछ मरोड़कर या पैंने मारकर हाँका जाता है, ऐसे हजारों बैलोंको जब मैं देखता हूँ तब मेरा हृदय रोता है, मेरा शरीर काँपने लगता है और मैं सोचता हूँ कि जबतक हम ऐसी घोर हिंसा करनेसे बाज नहीं आते तबतक हम मुसलमान भाइयोंसे क्या कह सकते हैं? हमारी स्वार्थ-बुद्धि इतनी प्रबल है कि गायका सारा दूध दुहते हुए हमें तनिक भी शरम नहीं आती। कलकत्तेकी डेरियोंमें तो बछड़ोंको माँके दूधके बिना ही रखा जाता है। वहाँ फूंकेकी क्रियासे गायोंका सारा दूध निकाल लिया जाता है। इन डेरियोंके मालिक और व्यवस्थापक सब हिन्दू ही होते हैं और दूध पीनेवालोंमें भी बड़ी संख्या हिन्दुओंकी ही है। जबतक ऐसी डेरियाँ चलती हैं और वहाँका दूध हम पीते हैं, तबतक हमें मुसलमान भाइयोंसे एक शब्द भी कहनेका क्या अधिकार है? यह भी विचारने लायक बात है कि सारे भारतके बड़े शहर कसाईखाने बन गये हैं। वहाँ हजारों गायों और बैलोंका वध होता है। और अधिकांश अंग्रेज भाइयोंको मांस वहींसे दिया जाता है। इस विषयमें सारा हिन्दू-जगत् चुप है और उस हत्याको बन्द करानेमें वह अपने-आपको असमर्थ मानता है।

जबतक हम ऐसे घोर हत्याकांडको नहीं रोक पाते, तबतक मुसलमानोंके दिलोंपर असर डालना या उनसे गायोंकी रक्षा कराना मुझे असम्भव-सा मालूम होता है। इसलिए हमारा दूसरा काम अंग्रेज भाइयोंके बीच आन्दोलन करना है। उसमें हम पशुबलका उपयोग नहीं कर सकते। अंग्रेज भाइयोंको भी हमें अपनी तपश्चर्या और नम्रतासे जीतना चाहिए। गोमांसका भक्षण उनके लिए कोई धार्मिक क्रिया नहीं है। उन्हें समझा पाना इस हदतक ज्यादा आसान होना चाहिए। जब हम उपर्युक्त हिंसाके दोषसे मुक्त हो जायेंगे और अंग्रेज भाइयोंको गोमांस-भक्षण तथा गाय-बैलोंकी हत्या न करनेकी बात समझा-

सकेंगे, तभी हमें मुसलमान भाइयोंसे इस विषयमें कुछ कहनेका अधिकार प्राप्त हो सकेगा। और मैं विश्वासके साथ कहता हूँ कि जब हम अंग्रेज भाइयोंको समझा लेंगे, तब हमारे मुसलमान भाई भी हमपर दया करके किसी दूसरी तरहकी कुरबानीसे अपनी धार्मिक रूढ़ि सम्पन्न कर लिया करेंगे। जब हम अपना हिंसा-दोष स्वीकार कर लेंगे, तब हमारी गोशालाओंका प्रबन्ध भी बदल जायेगा। तब हम अपनी गोशालाओंमें केवल कमजोर गायोंको ही नहीं रखेंगे, बल्कि हृष्ट-पुष्ट गायों और बैलोंको भी रखेंगे। वहाँ हम ढोरोंकी नस्ल सुधारनेका प्रयत्न करेंगे और शुद्ध दूध-घी आदि भी पैदा कर सकेंगे। यह प्रश्न केवल धार्मिक ही नहीं है। इसमें हिन्दुस्तानकी आर्थिक उन्नतिकी बात भी आ जाती है। अर्थशास्त्रियोंने अकाट्य आँकड़े देकर यह सिद्ध कर दिखाया है कि हिन्दुस्तानके बहुतसे ढोर इतने कमजोर हैं कि कितने ही गाय-बैलोंको रखनेमें जो खर्च पड़ता है, उसकी तुलनामें दूध बहुत कम मिलता है। हम अपनी गोशालाओंको अर्थ-शास्त्रके अध्ययन और इस बड़ी समस्याके समाधानके केन्द्रोंमें परिणत कर दें। गोशालाओंमें अभी जो अधिक खर्च आता है, उसे हमें जैसे-तैसे पूरा करना पड़ता है। *मेरी कल्पनाकी गोशाला आर्थिक दृष्टिसे आत्म-निर्भर होगी।* ऐसी गोशालाएँ शहरके भीतर नहीं होनी चाहिए। शहरके बाहर सौ-दो सौ एकड़ जमीन लेकर वहाँ हम ऐसी गोशालाएँ स्थापित कर सकते हैं। उसमें गायोंके लिए अनाज और हर प्रकारकी घास आदि पैदा की जा सकती है। और उनके मल-मूत्रसे जो कीमती खाद बनेगा, उसका हम सुन्दर उपयोग कर सकते हैं। आशा है, आप सब मेरी बातों-पर पूरा ध्यान देंगे। मोतीहारीकी गोरक्षिणी सभाने मेरी उपर्युक्त सलाह स्वीकार की है। अन्तमें मेरी प्रार्थना है कि तदनुसार बेतिया और मोतीहारीकी ये दोनों संस्थाएँ मिलकर इस महत् कार्यको अपने हाथोंमें ले लेंगी।

[गुजरातीसे]

गोसेवा

३. पत्र : छगनलाल गांधीको

मोतीहारी
चम्पारन
अक्तूबर १०, १९१७

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। मैंने मान लिया है कि तुम भड़ौंच आओगे। वेस्ट[1] पुस्तकोंके लिए शोर मचाये रहते हैं। यदि उनके लिए शब्द-कोष आदि जो भी पुस्तकें

१. अल्बर्ट हेनरी वेस्ट, जिनसे गांधीजीकी मुलाकात सर्वप्रथम जोहानिसबर्गके शाकाहारी उपाहारगृहमें हुई थी। उन्होंने गांधीजीके साथ काम किया और सत्याग्रह आन्दोलनके दौरान जेल भी गये थे। वे फीनिक्स आश्रमसे प्रकाशित **इंडियन ओपिनियन**के मुद्रक थे। बादमें उनकी पत्नी, माँ और बहन भी आश्रममें रहने लगीं थीं।

तुम्हें उचित लगें, उन्हें भेजते रहो तो अच्छा हो। बिक्रीके लिए डॉक्टरकी[1] गुजराती पुस्तक भी वहाँ भेजो। बिक्रीकी रकम चाहें तो वे ही रखें। यहाँ उसकी प्रतियाँ पहुँच गई हैं।

प्रभुदासकी[2] तबीयत अभी तक क्यों ठीक नहीं हो पाई?

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीमें पोस्टकार्डपर लिखित मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५६४४) से।

सौजन्य : छगनलाल गांधी

४. भाषण : बिहार छात्र-सम्मेलनमें[3]

[भागलपुर
अक्तूबर १५, १९१७]

छात्र-सम्मेलनकी इस बैठकका अध्यक्ष-पद मुझे देकर आप लोगोंने मुझे अपने प्रेमसे बाँध लिया है। पिछले पच्चीस वर्षोंसे विद्यार्थियोंके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहता आया है। विद्यार्थियोंका पहला परिचय मुझे दक्षिण आफ्रिकामें हुआ था। इंग्लैंडमें भी मैं विद्यार्थियोंसे हमेशा मिलता रहता था।

भारत वापस आनेके बाद मैं विद्यार्थियोंसे जगह-जगह मिलता रहा हूँ। वे मेरे प्रति असीम प्रेम रखते हैं। आज मुझे अध्यक्षका पद देकर और हिन्दीमें व्याख्यान देने और सम्मेलनका काम हिन्दीमें चलानेकी अनुमति देकर आप विद्यार्थियोंने मेरे प्रति अपने प्रेमका परिचय दिया है। यदि मैं आपके इस प्रेमके लायक सिद्ध हो सका और विद्यार्थियों की कुछ सेवा कर सका तो मैं अपनेको कृतार्थ मानूँगा। इस सम्मेलनका काम इस प्रान्तकी भाषामें ही — और वही राष्ट्रभाषा भी है — करनेका निश्चय करके आपने दूरन्देशीसे काम लिया है। इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। मुझे आशा है कि आप लोग यह प्रथा जारी रखेंगे।

[हमने मातृभाषाका अनादर किया है। इस पापका कड़वा फल हमें जरूर भोगना पड़ेगा। हममें और हमारे घरके लोगोंके बीच कितना ज्यादा व्यवधान पैदा हो गया है, इसके साक्षी इस सम्मेलनमें आनेवाले हम सभी हैं।] हम जो-कुछ सीखते हैं वह अपनी माताओंको नहीं समझाते और न समझा सकते हैं। जो शिक्षा हमें मिलती है, उसका प्रचार हम अपने घरमें नहीं करते और न कर सकते हैं। ऐसा दुःखद

१. डॉ० प्राणजीवन मेहता, लन्दनके विद्यार्थी-जीवनसे गांधीजीके मित्र।

२. प्रभुदास गांधी, छगनलाल गांधीके पुत्र।

३. सम्मेलन भागलपुरमें हुआ था और गांधीजीने उसकी अध्यक्षता की थी। मूल भाषण हिन्दीमें रहा होगा किन्तु उसकी रिपोर्ट उपलब्ध नहीं हो सकी। भाषणका प्रस्तुत पाठ **महात्मा गांधीनी विचार सृष्टि**में संकलित गुजराती रूपान्तरका हिन्दी अनुवाद है।

परिणाम अंग्रेज कुटुम्बोंमें कभी नहीं देखा जाता। इंग्लैंडमें और दूसरे देशोंमें जहाँ शिक्षा मातृभाषामें दी जाती है वहाँ विद्यार्थी स्कूलोंमें जो-कुछ पढ़ते हैं, वह घर आकर अपने-अपने माता-पिताको सुनाते हैं और घरके नौकर-चाकरों और दूसरे लोगोंको भी वह मालूम हो जाता है। इस तरह जो शिक्षा बच्चोंको स्कूलमें मिलती है, उसका लाभ घरके लोगोंको भी मिल जाता है। हम तो स्कूल-कॉलेजमें जो-कुछ पढ़ते हैं वह वहीं छोड़ आते हैं। विद्या हवाकी तरह बहुत आसानीसे फैल सकती है। किन्तु जैसे कंजूस अपना धन गाड़कर रखता है, वैसे ही हम अपनी विद्याको अपने मनमें ही भरे रखते हैं और इसलिए उसका फायदा औरोंको नहीं मिलता। मातृभाषाका अनादर माँके अनादरके बराबर है। जो मातृभाषाका अपमान करता है, वह स्वदेशभक्त कहलाने लायक नहीं। बहुत-से लोग ऐसा कहते सुने जाते हैं कि 'हमारी भाषामें ऐसे शब्द नहीं, जिनमें हमारे ऊँचे विचार प्रकट किये जा सकें।' किन्तु यह कोई भाषाका दोष नहीं। भाषाको बनाना और बढ़ाना हमारा अपना ही कर्त्तव्य है। एक समय ऐसा था जब अंग्रेजी भाषाकी भी यही हालत थी। अंग्रेजीका विकास इसलिए हुआ कि अंग्रेज आगे बढ़े और उन्होंने भाषाकी उन्नति की। यदि हम मातृभाषाकी उन्नति नहीं कर सके और हमारा यह सिद्धान्त रहे कि अंग्रेजीके जरिये ही हम अपने ऊँचे विचार प्रकट कर सकते हैं और उनका विकास कर सकते हैं, तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हम सदाके लिए गुलाम बने रहेंगे। जबतक हमारी मातृभाषामें हमारे सारे विचार प्रकट करनेकी शक्ति नहीं आ जाती और जबतक वैज्ञानिक विषय मातृभाषामें नहीं समझाये जा सकते, तबतक राष्ट्रको नया ज्ञान नहीं मिल सकेगा। यह तो स्वयंसिद्ध है कि:

१. सारी जनताको नये ज्ञानकी जरूरत है;
२. सारी जनता कभी अंग्रेजी नहीं समझ सकती;
३. यदि अंग्रेजी पढ़नेवाला ही नया ज्ञान प्राप्त कर सकता है, तो सारी जनताको नया ज्ञान मिलना असम्भव है।

इसका मतलब यह हुआ कि यदि पहली दो बातें सही हों तो जनताका नाश ही हो जायेगा। किन्तु इसमें भाषाका दोष नहीं। तुलसीदासजी अपने दिव्य विचार हिन्दीमें प्रकट कर सके थे। रामायण-जैसे ग्रन्थ बहुत ही थोड़े हैं। गृहस्थाश्रमी होकर भी सब-कुछ त्याग कर देनेवाले महान् देशभक्त भारत-भूषण पण्डित मदनमोहन मालवीयजीको अपने विचार हिन्दीमें प्रकट करनेमें जरा भी कठिनाई नहीं होती। पण्डितजीका अंग्रेजी भाषण चाँदीकी तरह चमकता हुआ कहा जाता है; किन्तु उनका हिन्दी-भाषण इस तरह चमका है, जैसे मानसरोवरसे निकलती हुई गंगाका प्रवाह सूर्यकी किरणोंसे सोनेकी तरह चमकता है। मैंने कितने ही मौलवियोंको धर्मोपदेश करते हुए सुना है। वे अपने गम्भीर विचार भी अपनी मातृभाषामें ही बड़ी आसानीसे प्रकट कर सकते हैं। तुलसीदासजीकी भाषा सम्पूर्ण है, अमर है। इस भाषामें हम अपने विचार प्रकट न कर सकें तो दोष हमारा ही है।

ऐसा होनेका कारण स्पष्ट है: हमारी शिक्षाका माध्यम अंग्रेजी है। इस भारी दोषको दूर करनेमें सब मदद कर सकते हैं। मुझे लगता है कि विद्यार्थीगण भी सरकारसे विनयपूर्वक यह बात कह सकते हैं। साथ ही विद्यार्थियोंके पास तुरन्त प्रारंभ करने

लायक काम यह भी है कि वे जो-कुछ स्कूलमें पढ़ें, उसका अनुवाद हिन्दीमें करते रहें, जहाँतक हो सके उसका प्रचार घरमें करें और आपसके व्यवहारमें मातृभाषाका ही उपयोग करनेकी प्रतिज्ञा कर लें। एक बिहारी दूसरे बिहारीके साथ अंग्रेजी भाषामें पत्र-व्यवहार करे, यह मेरे लिए तो असह्य है। मैंने लाखों अंग्रेजोंको बातचीत करते सुना है। वे दूसरी भाषाएँ जानते हैं, किन्तु मैंने दो अंग्रेजोंको आपसमें पराई भाषामें बोलते नहीं सुना। जो अत्याचार हम भारतमें करते हैं, उसका उदाहरण दुनियाके इतिहासमें कभी कहीं नहीं मिलेगा।

एक वेदान्ती कवि लिख गया है कि जो शिक्षा विचार करना नहीं सिखाती वह व्यर्थ है। किन्तु ऊपर बताये हुए कारणोंसे विद्यार्थियोंका जीवन बहुत-कुछ विचारशून्य दिखाई देता है। विद्यार्थी तेजहीन हो गये हैं, उनमें ताजगी दिखाई नहीं देती और वे अधिकतर निरुत्साही दृष्टिगोचर होते हैं।

मुझे अंग्रेजी भाषासे वैर नहीं है। इस भाषाका भण्डार अटूट है। यह राजभाषा है और ज्ञानकी निधिसे भरी-पूरी है। फिर भी मेरी यह राय है कि हिन्दुस्तानके सब लोगोंको इसे सीखनेकी जरूरत नहीं। किन्तु इस बारेमें मैं यहाँ ज्यादा नहीं कहना चाहता। विद्यार्थी अंग्रेजी पढ़ रहे हैं, और जबतक दूसरी योजना प्रचलित नहीं होती और आज की शालाओंमें परिवर्तन नहीं होता, तबतक विद्यार्थियोंके लिए दूसरा कोई उपाय नहीं। इसलिए मैं मातृभाषाके इस बड़े विषयको यहीं समाप्त कर देता हूँ। मैं इतनी ही प्रार्थना करूँगा कि आपसके व्यवहारमें और जहाँ-जहाँ हो सके वहाँ सब लोग मातृ-भाषाका ही उपयोग करें; और विद्यार्थियोंके सिवा जो महाशय यहाँ आये हैं, वे मातृभाषाको शिक्षाका माध्यम बनानेका भगीरथ प्रयत्न करें।

जैसा मैंने ऊपर कहा है, अधिकतर विद्यार्थी निरुत्साही दिखाई देते हैं। बहुत-से विद्यार्थियोंने मुझसे सवाल किया है कि 'मुझे क्या करना चाहिए? मैं देश-सेवा किस तरह कर सकता हूँ? आजीविकाके लिए मुझे क्या करना ठीक है?' मुझे मालूम हुआ है कि आजीविकाके लिए विद्यार्थियोंको बड़ी चिन्ता रहा करती है। इन प्रश्नोंका उत्तर सोचनेसे पहले यह विचार करना जरूरी है कि शिक्षाका उद्देश्य क्या है? हक्सले-ने कहा है कि शिक्षाका उद्देश्य चरित्र-निर्माण है। भारतके ऋषि-मुनियोंने कहा है कि वेद आदि सारे शास्त्र जाननेपर भी यदि कोई आत्माको न पहचान सके, सब बन्धनोंसे मुक्त होनेके लायक न बन सके तो उसका ज्ञान बेकार है। दूसरा वचन यह है कि जिसने आत्माको जान लिया, उसने सब-कुछ जान लिया। अक्षरज्ञानके बिना भी आत्म-ज्ञान होना सम्भव है। पैगम्बर मुहम्मद साहबने अक्षरज्ञान नहीं पाया था। ईसा मसीहने किसी स्कूलमें शिक्षा नहीं ली थी। किन्तु यह कहना कि इन महात्माओंको आत्मज्ञान नहीं हुआ था, धृष्टता ही होगी। वे हमारे विद्यालयोंमें परीक्षा देने नहीं आये थे। फिर भी हम उन्हें पूज्य मानते हैं। विद्याका सब फल उन्हें मिल चुका था। वे महात्मा थे। उनकी देखा-देखी यदि हम स्कूल-कॉलेज छोड़ दें तो हम कहींके न रहें। किन्तु हमें भी अपनी आत्माका ज्ञान चारित्र्यसे ही मिल सकता है। चारित्र्य क्या है? सदा-चारकी निशानी क्या है? सदाचारी पुरुष सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अस्तेय,

निर्भयता आदि व्रतोंका पालन करनेका प्रयत्न करता रहता है। वह प्राण छोड़ देगा, किन्तु सत्यको कभी न छोड़ेगा। वह स्वयं मर जायेगा, परन्तु दूसरोंको नहीं मारेगा। वह स्वयं दुःख उठा लेगा, परन्तु दूसरेको दुःख नहीं देगा। अपनी स्त्रीके प्रति भी भोग-दृष्टि न रखकर उसके साथ मित्रकी तरह रहेगा। इस तरह सदाचारी ब्रह्मचर्यका पालन कर शरीरके सत्त्वको भरसक बचानेका प्रयत्न करता है। वह चोरी नहीं करता, रिश्वत नहीं लेता। वह अपना और दूसरोंका समय खराब नहीं करता। वह अकारण धन इकट्ठा नहीं करता। वह ऐश-आराम नहीं बढ़ाता और सिर्फ शौककी खातिर निकम्मी चीजें काममें नहीं लाता; सादगीमें ही सन्तोष मानता है। यह पक्का विचार रखकर कि 'मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं हूँ और आत्माको मारनेवाला दुनियामें पैदा नहीं हुआ,' वह आधि, व्याधि और उपाधिका डर छोड़ देता है और चक्रवर्ती सम्राटोंसे भी नहीं दबता; किन्तु निडर होकर काम करता चला जाता है।

यदि हमारे विद्यालयोंसे ऊपर कहे हुए परिणाम न निकल सकें, तो इसमें विद्यार्थी, शिक्षा और शिक्षक तीनोंका दोष होना चाहिए। किन्तु चरित्रकी कमी पूरी करनेका काम तो विद्यार्थियोंके ही हाथमें है। यदि वे चरित्र-निर्माण नहीं करना चाहते, तो शिक्षक या पुस्तकें वह चीज नहीं दे सकते। इसलिए जैसा मैंने ऊपर कहा है शिक्षाका उद्देश्य समझना जरूरी है। चरित्रवान् बननेकी इच्छा रखनेवाला विद्यार्थी किसी भी पुस्तकसे चरित्रका पाठ ले लेगा। तुलसीदासजीने कहा है:

जड़-चेतन, गुण-दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
सन्त-हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥

रामचन्द्रजीकी मूर्तिके दर्शन करनेकी इच्छा रखनेवाले तुलसीदासजीको कृष्णकी मूर्ति रामके रूपमें दिखाई दी। हमारे कितने ही विद्यार्थी, यदि विद्यालयका नियम हो तो उसे पालनेके लिए, बाइबिलके वर्गमें जाते हैं, फिर भी बाइबिलके ज्ञानसे अछूते रहते हैं। दोष निकालनेकी नीयतसे गीता पढ़नेवालेको गीतामें दोष मिल जायेंगे। मोक्ष चाहनेवालेको गीता मोक्षका सबसे अच्छा साधन बताती है। कुछ लोगोंको कुरान शरीफमें सिर्फ दोष-ही-दोष दिखाई देते हैं; दूसरे उसे पढ़कर व मनन करके इस संसार-सागरसे पार होते हैं। किन्तु मुझे डर है कि बहुत-से विद्यार्थी शिक्षाके उद्देश्यपर विचार ही नहीं करते। वे पढ़नेका चलन है, इसी कारण स्कूल जाते हैं। कुछ आजीविका या नौकरीके हेतुसे जाते हैं। मेरी तुच्छ बुद्धिके अनुसार शिक्षाको आजीविकाका साधन समझना नीच वृत्ति कही जायेगी। आजीविकाका साधन शरीर है और पाठशाला चरित्र-निर्माणकी जगह है। उसे शरीरकी जरूरतें पूरी करनेका साधन समझना चमड़ेकी जरा-सी रस्सीके लिए भैंसको मारनेके बराबर है। शरीरका पोषण शरीर द्वारा ही होना चाहिए। आत्माको उस काममें कैसे लगाया जा सकता है? 'तू अपनी रोटी अपने पसीनेसे कमा' — यह ईसा मसीहका महावाक्य है। श्रीमद् भगवद्-गीतासे भी यही ध्वनि निकलती जान पड़ती है। इस दुनियामें ९९ फीसदी लोग इस नियमके अधीन रहते हैं और निडर बन जाते हैं। जिसने दाँत दिये हैं वही चबेना भी देगा, यह सच्ची बात है। किन्तु यह आलसीके लिए नहीं कही गई है। विद्यार्थि-

योंको शुरूमें ही यह सीख लेना जरूरी है कि उन्हें अपनी आजीविका अपने बाहुबलसे ही कमानी है। उसके लिए मजदूरी करनेमें शर्म नहीं आनी चाहिए। इससे मेरा यह मतलब नहीं कि हम सब हमेशा कुदाली ही चलाया करें। परन्तु यह समझनेकी जरूरत है कि दूसरा धन्धा करते हुए भी आजीविकाके लिए कुदाली चलानेमें जरा भी बुराई नहीं और हमारे मजदूर भाई हमसे नीचे नहीं हैं। इस सिद्धान्तको मानकर, इसे अपना आदर्श समझकर, आदमी किसी भी धन्धेमें पड़े, तो उसके काम करनेके ढंगमें शुद्धता और असाधारणता होगी। वह लक्ष्मीका दास नहीं बनेगा; लक्ष्मी उसकी दासी बनकर रहेगी। यदि यह विचार सही हो तो विद्यार्थियोंको मजदूरी करनेकी आदत डालनी पड़ेगी। ये बातें मैंने धन कमानेके उद्देश्यसे शिक्षा लेनेवालोंके लिए कही हैं।

जो विद्यार्थी शिक्षाका उद्देश्य सोचे बिना पाठशाला जाता है, उसे इसका उद्देश्य समझ लेना चाहिए। वह आज ही निश्चय कर सकता है कि 'मैं आजसे पाठशालाको चरित्र-निर्माणका साधन समझूंगा।' मुझे पूरा भरोसा है कि ऐसा विद्यार्थी एक महीनेमें अपने चरित्रमें जबरदस्त परिवर्तन कर डालेगा और उसके साथी भी यह परिवर्तन महसूस करेंगे। यह शास्त्रका वचन है कि हम जैसे विचार करते हैं वैसे ही बन जाते हैं।

बहुत-से विद्यार्थी ऐसा मानते हैं कि शरीरके लिए ज्यादा प्रयत्न करना ठीक नहीं। किन्तु शरीरके लिए व्यायाम बहुत जरूरी है। जिस विद्यार्थीके पास शरीर-सम्पत्ति नहीं वह क्या कर सकेगा? जैसे दूध कागजके बरतनमें नहीं रह सकता, वैसे ही शिक्षारूपी दूधका विद्यार्थियोंके कागज जैसे शरीरमें से निकल जाना सम्भव है। शरीर आत्माका निवास स्थान होनेके कारण तीर्थ जैसा पवित्र है। उसकी रक्षा करनी चाहिए। सुबह-तड़के डेढ़ घंटा और शामको डेढ़ घंटा साफ हवामें नियमसे और उत्साहके साथ घूमनेसे शरीरमें शक्ति बढ़ती है और मन प्रसन्न रहता है। और ऐसा करनेमें लगाया हुआ समय बरबाद नहीं होता। ऐसे व्यायाम और आरामसे विद्यार्थीकी बुद्धि तेज होगी और वह सब बातें जल्दी याद कर लेगा। मुझे लगता है कि गेंद-बल्ला या बॉल-बैट इस गरीब देशके लिए ठीक नहीं। हमारे देशमें निर्दोष और कम खर्चवाले बहुतसे खेल हैं।

विद्यार्थीका जीवन निर्दोष होना चाहिए। जिसकी बुद्धि निर्दोष है, उसे ही शुद्ध आनन्द मिल सकता है। उसे दुनियामें आनन्द लेनेको कहना उसका आनन्द छीन लेनेके बराबर है। जिसने यह निश्चय कर लिया हो कि मुझे ऊँचा दरजा पाना है, उसे वह मिल जाता है। निर्दोष बुद्धिसे रामचन्द्रने चन्द्रमाकी इच्छा की तो उन्हें चन्द्रमा मिल गया।

एक तरहसे सोचनेपर जगत् मिथ्या मालूम होता है और दूसरी तरहसे देखनेपर वह सत्य मालूम होता है। विद्यार्थियोंके लिए तो जगत् है ही, क्योंकि उन्हें इसी जगत्में पुरुषार्थ करना है। रहस्य समझे बिना जगत्को मिथ्या कहकर मनमानी करनेवाला और जगत्को छोड़ देनेका दावा करनेवाला संन्यासी भले ही हो, किन्तु वह मिथ्याज्ञानी है।

अब मैं धर्मकी बातपर आ गया। जहाँ धर्म नहीं वहाँ विद्या, लक्ष्मी, स्वास्थ्य आदिका भी अभाव होता है। धर्मरहित स्थिति बिलकुल शुष्क होती है, शून्य होती है। हम धर्मकी शिक्षा खो बैठे हैं। हमारी पढ़ाईमें धर्मको जगह नहीं दी गई। यह तो

विना दूल्हेकी बरात-जैसी बात है। धर्मको जाने विना विद्यार्थी निर्दोष आनन्द नहीं ले सकते। यह आनन्द लेनेके लिए शास्त्रोंका पढ़ना, शास्त्रोंका चिन्तन करना और विचारके अनुसार कार्य करना जरूरी है। सुबह उठते ही सिगरेट पीनेसे या निकम्मी बातचीत करनेसे न अपना भला होता है और न दूसरोंका भला होता है। नजीरने कहा है कि चिड़ियाँ भी चूँ-चूँ करके सुबह-शाम ईश्वरका नाम लेती हैं, किन्तु हम तो लम्बी तानकर सोये रहते हैं। किसी भी तरह धर्मकी शिक्षा पाना विद्यार्थीका कर्त्तव्य है। पाठशालाओंमें धर्मकी शिक्षा दी जाये या न दी जाये, किन्तु इस समय यहाँ आये हुए विद्यार्थियोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे अपने जीवनमें धर्मका तत्त्व दाखिल करें। धर्म क्या है? धर्मकी शिक्षा किस तरहकी हो सकती है? इन बातोंका विचार इस जगह नहीं हो सकता। परन्तु इतनी-सी व्यावहारिक सलाह अनुभवके आधारपर देता हूँ कि तुम 'रामचरितमानस' के और 'भगवद्गीता' के भक्त बनो। तुम्हारे पास 'मानस' रूपी रत्न पड़ा है; उसे ग्रहण कर लो। किन्तु इतना याद रखना कि इन दो ग्रन्थोंकी पढ़ाई धर्मको समझनेके लिए करनी है। इन ग्रन्थोंके लिखनेवाले ऋषियोंका ध्येय इतिहास लिखना नहीं था, बल्कि धर्म और नीतिकी शिक्षा देना था। करोड़ों आदमी इन ग्रन्थोंको पढ़ते हैं और अपना जीवन पवित्र करते हैं। वे निर्दोष बुद्धिसे इनका अध्ययन करते हैं और उससे निर्दोष आनन्द लेकर इस संसारमें विचरते हैं। उनके मनमें स्वप्न-में भी यह शंका नहीं उठती कि राम थे या नहीं, उन्होंने जिस तरह रावणका वध किया उस तरह हम भी अपने शत्रुका वध कर सकते हैं या नहीं। वह तो शत्रुको सम्मुख देखते हुए भी रामकी सहायताकी याचना करके निर्भय रहता है। 'रामायण' के प्रणेता तुलसीदासके पास तो शस्त्रके रूपमें एक दया ही थी। तुलसीदास किसीका संहार नहीं करना चाहते थे। जो उत्पन्न करता है वही नाश कर सकता है। राम ईश्वर थे; उन्होंने रावणको उत्पन्न किया था, उन्हें उसका संहार करनेका अधिकार भी था। जब हम ईश्वरका पद प्राप्त करेंगे तब सोच लेंगे कि संहारका अधिकार हमें है या नहीं। इन महान् ग्रन्थोंके विषयमें मैंने ये कुछ शब्द कहनेका साहस इसलिए किया है कि एक समय मैं स्वयं संशयात्मा था। और मुझे अपने जीवनके नष्ट हो जानेका भय था। मैं उस अवस्थासे निकलकर श्रद्धालु हो सका हूँ। इन पुस्तकोंने मेरे ऊपर जो प्रभाव डाला है, उसका वर्णन करना मुझे उचित लगा। मुसलमान विद्यार्थियोंके लिए 'कुरान शरीफ' सबसे ऊँचा ग्रन्थ है। उन्हें भी मैं इस ग्रन्थका धर्मभावसे अध्ययन करनेकी सलाह देता हूँ। 'कुरान शरीफ' का रहस्य जानना चाहिए। मेरा यह भी विचार है कि हिन्दू-मुसलमानोंको एक-दूसरेके धर्म-ग्रन्थोंको विनयके साथ पढ़ना और समझना चाहिए।

इस रमणीय विषयको छोड़कर मैं फिर प्रकृत विषयपर आता हूँ। प्रश्न पूछा जाता है कि विद्यार्थियोंका राजनैतिक मामलोंमें भाग लेना ठीक है या नहीं? मैं कारण बताये विना इस विषयमें अपनी राय बताता हूँ। राजनैतिक क्षेत्रके दो भाग हैं: एक सिर्फ शास्त्रका और दूसरा शास्त्रपर अमल करनेका। विद्यार्थियोंके लिए शास्त्रके प्रदेश-में जाना जरूरी है, किन्तु उसके व्यवहारके प्रदेशमें उतरना हानिकारक है। विद्यार्थी शास्त्रकी शिक्षा लेने या राजनीति सीखनेके ध्येयसे राजनीतिक सभाओंमें, कांग्रेसमें जा

सकते हैं। ऐसे सम्मेलन उन्हें पदार्थपाठ देनेवाले साबित होते हैं। उनमें जानेकी उन्हें पूरी आजादी होनी चाहिए और जो प्रतिबन्ध अभी लगाया गया है उसे दूर करानेका पूरा प्रयत्न होना चाहिए। ऐसी सभाओंमें विद्यार्थी बोल नहीं सकते, राय नहीं दे सकते। किन्तु यदि पढ़ाईके काममें रुकावट न होती हो तो वे स्वयंसेवकका काम कर सकते हैं। मालवीयजीकी सेवा करनेका अवसर कौन विद्यार्थी छोड़ सकता है? विद्यार्थियोंको दलवन्दीसे दूर रहना चाहिए। तटस्थ या निष्पक्ष रहकर जनताके नेताओंके प्रति पूज्य भाव रखना चाहिए। उनके गुण-दोषोंकी तुलना करनेका काम उनका नहीं। विद्यार्थी तो गुणोंको ग्रहण कर लेनेवाले होते हैं; वे गुणोंकी पूजा करते हैं।

बड़ोंको पूज्य समझकर उनकी बातोंका आदर करना विद्यार्थियोंका धर्म है। यह बात ठीक है। जिसने आदर करना नहीं सीखा उसे आदर नहीं मिलता। धृष्टता विद्यार्थियोंको शोभा नहीं देती। इस बारेमें भारतमें विचित्र हालत पैदा हो गई है। बड़े बड़प्पन छोड़ते दिखाई दे रहे हैं या अपनी मर्यादा नहीं समझते। ऐसे समय विद्यार्थी क्या करें? मैंने ऐसी कल्पना की है कि विद्यार्थियोंमें धर्मवृत्ति होनी चाहिए। धर्मपर चलनेवाले विद्यार्थियोंके सामने धर्मसंकट आ पड़े तो उन्हें प्रह्लादको याद करना चाहिए। इस बालकने जिस समय और जिस हालतमें पिताकी आज्ञाको बड़े आदरके साथ तोड़ा, वैसे समय और वैसी हालतमें हम भी आदरके साथ उस प्रकारके बड़ोंकी आज्ञा माननेसे इनकार कर सकते हैं। इस मर्यादाके बाहर जाकर किया हुआ अनादर दोषमय है। बड़ोंका अपमान करनेमें राष्ट्रका नाश है। बड़प्पन सिर्फ उम्रमें ही नहीं, उम्रके कारण मिले हुए ज्ञान, अनुभव और चतुराईमें भी है। जहाँ ये तीनों चीजें न हों, वहाँ सिर्फ उम्रके कारण बड़प्पन रहता है। किन्तु सिर्फ उम्रकी ही पूजा कोई नहीं करता।

ऐसा प्रश्न पूछा जाता है कि विद्यार्थी किस प्रकारकी देशसेवा कर सकता है? इसका सीधा उत्तर यह है कि विद्यार्थी अच्छी तरह विद्या प्राप्त करे और ऐसा करते हुए तन्दुरुस्ती बनाये रखे और देशके लिए विद्याध्ययन करनेका आदर्श सामने रखे। मुझे विश्वास है कि ऐसा करके विद्यार्थी पूरी तरह देशसेवा करता है। विचारपूर्वक जीवन व्यतीत करके और स्वार्थ छोड़कर परोपकार करनेका ध्यान रखकर हम मेहनत किये बिना भी बहुत-कुछ काम कर सकते हैं। ऐसा एक काम मैं बताना चाहता हूँ। तुमने रेलके यात्रियोंकी तकलीफोंके बारेमें मेरा पत्र अखबारोंमें पढ़ा होगा। मैं यह मानता हूँ कि तुममें से ज्यादातर विद्यार्थी तीसरे दरजेमें सफर करनेवाले होंगे। तुमने देखा होगा कि मुसाफिर गाड़ीमें थूकते हैं; पान-तम्बाकू चबाकर जो छूँछ निकलती है उसे भी वहीं थूकते हैं; केले-सन्तरे वगैरा फलोंके छिलके और जूठन भी गाड़ीमें ही फेंकते हैं; पाखानेका भी सावधानीसे उपयोग नहीं करते, उसे भी खराब कर डालते हैं; दूसरोंका खयाल किये बिना सिगरेट-बीड़ी पीते हैं। जिस डिब्बेमें हम बैठते हैं, उस डिब्बेके मुसाफिरोंको आप गाड़ीमें गन्दगी करनेसे होनेवाली हानियाँ समझा सकते हैं। ज्यादातर मुसाफिर विद्यार्थियोंका आदर करते हैं और उनकी बात सुनते हैं। लोगोंको सफाईके नियम समझानेका बहुत अच्छा यह मौका छोड़ नहीं देना चाहिए। स्टेशनपर खानेकी जो चीजें बेची जाती हैं वे गन्दी होती हैं। ऐसी गन्दगी मालूम हो तो विद्यार्थियोंका कर्त्तव्य है कि वे ट्रैफिक मैनेजरका ध्यान उस तरफ खींचें। ट्रैफिक मैनेजर

भले ही जवाब न दे; किन्तु पत्र भी हिन्दी भाषामें लिखना चाहिए। इस तरह बहुतसे पत्र जायेंगे तो ट्रैफिक मैनेजरको विचार करना पड़ेगा। यह काम आसानीसे किया जा सकता है, और फिर भी इसका नतीजा बड़ा निकल सकता है।

मैं तम्बाकू और पान खानेके बारेमें बोला हूँ। मेरी नम्र रायमें तम्बाकू व पान खानेकी आदत खराब और गन्दी है। हम सब स्त्री-पुरुष इस आदतके गुलाम हो गये हैं। इस गुलामीसे हमें छूटना चाहिए। कोई अनजान आदमी भारतमें आ पहुँचे, तो उसे जरूर ऐसा लगेगा कि हम दिन-भर कुछ-न-कुछ खाते रहते हैं। सम्भव है पानमें अन्नको पचानेका थोड़ा-बहुत गुण हो, किन्तु नियमसे खाया हुआ अन्न पान वगैराकी मददके बिना पच सकता है। नियमके साथ खानेसे पानकी जरूरत नहीं रहती। पानमें कोई स्वाद भी नहीं। जरदा भी जरूर छोड़ना चाहिए। विद्यार्थियोंको सदा संयम पालना चाहिए। तम्बाकू पीनेकी आदतका भी विचार करना जरूरी है। इस मामलेमें हमारे शासकोंने हमारे सामने बड़ा बुरा उदाहरण रखा है। वे जहाँ-तहाँ सिगरेट पिया करते हैं। उसके कारण हम भी उसे फैशन समझकर मुँहको चिमनी बना डालते हैं। यह बतानेके लिए बहुत-सी पुस्तकें लिखी गई हैं कि तम्बाकू पीनेसे नुकसान होता है। ईसाई कहते हैं कि जिस समय जनतामें स्वार्थ, अनीति, दुर्व्यसन फैल जायेंगे, उस समय ईसा मसीह फिर अवतार लेंगे। हम ऐसे समयको कलियुग कहते हैं। इसमें कितना मानने लायक है, इसका मैं विचार नहीं करता। फिर भी मुझे मालूम होता है कि शराब, तम्बाकू, कोकीन, अफीम, गाँजा, भाँग आदि व्यसनोंसे दुनिया बहुत दुःख पा रही है। इस जालमें हम सब फँस गये हैं, इसलिए हम उसके बुरे नतीजोंका ठीक-ठीक अन्दाज नहीं लगा सकते। मेरी प्रार्थना है कि आप विद्यार्थीगण ऐसे व्यसनोंसे दूर रहें।

यह इस सम्मेलनका सत्रहवाँ अधिवेशन है। पिछले अधिवेशनोंके सभापतियोंके भाषण मुझे भेजे गये थे। मैं उन्हें पढ़ गया हूँ। इन भाषणोंके आयोजनका उद्देश्य क्या है? अगर उद्देश्य यह है कि तुम उनसे कुछ सीखो तो इस बातका विचार करके देखना कि तुमने क्या सीखा है? किन्तु यदि उनके आयोजनका उद्देश्य अंग्रेजी शब्दोंकी सुन्दर रचना सुननेका ही हो तो मैं कहूँगा कि मुझे आपपर दया आती है। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि भाषणोंका उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करके उसके अनुसार बरताव करना है। तुममें से कितने विद्यार्थियोंने विदुषी एनी बेसेंटकी सलाह मानकर देशी पोशाक पसन्द की, खान-पान सादा बनाया और गन्दी बातें छोड़ीं? प्रोफेसर यदुनाथ सरकार[1] की सलाहके मुताबिक छुट्टीके दिनोंमें गरीबोंको मुफ्त पढ़ानेका काम कितने विद्यार्थियोंने किया? इस तरहके बहुत-से सवाल पूछे जा सकते हैं। इनका जवाब मैं नहीं माँगता। आप स्वयं अपनी अन्तरात्माको इनका जवाब दें।

तुम्हारे ज्ञानकी कीमत तुम्हारे कामोंसे होगी। सैकड़ों किताबें दिमागमें भर लेनेसे कुछ लाभ मिल सकता है, किन्तु उसकी तुलनामें कामकी कीमत कई गुना ज्यादा है। दिमागमें भरे हुए ज्ञानकी कीमत सिर्फ उसके अनुसार किये गये कामके बराबर ही है। बाकीका सब ज्ञान दिमागके लिए व्यर्थका बोझ है। इसलिए मेरी तो सदा यही

१. प्रसिद्ध इतिहासकार और लेखक।

प्रार्थना है और यही आग्रह है कि तुम जैसा पढ़ो और समझो, वैसा ही आचरण करो। वैसा करनेमें ही उन्नति है।

[गुजरातीसे]

महात्मा गांधीनी विचारसृष्टि

५. पत्र : मगनलाल गांधीको

मोतीहारी

मंगलवार [अक्तूबर १६, १९१७][1]

चि० मगनलाल,[2]

चिताएँ[3] देखकर तुम क्षण-भरके लिए विचलित हो उठे, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। यदि लोग नियमानुसार संयमपूर्वक रहें तो मृत्यु भी समयपर आये तथा चिताएँ स्वाभाविक लगने लगें। आँधी चलनेपर जब कच्चे फल टूटकर गिरने लगते हैं तब हम विचलित हो उठते हैं। पके फलोंके गिरनेसे हमें सन्तोष होता है। यही बात मानव-जीवनके साथ भी है। प्लेग आदि भयंकर तूफानोंके आनेपर जब लोगोंकी आकस्मिक मृत्यु होने लगती है, तब हम दुःखी हो उठते हैं। जहाँ ऐसा न हो वहाँ सतयुग है। मृत्युसे भय न हो, ऐसा युग लाना हमारा काम है। यदि हम जितना चाहिए उतना प्रयत्न करें तो हमारे लिए सतयुग आ गया समझो। हमें मौतके लिए तैयार रहकर अपना जीवन निर्भय बिताना चाहिए। ऐसे जीवनकी शिक्षा देना ही आश्रमका उद्देश्य है। तुम सब बहुत बड़ा काम कर रहे हो। तम्बूमें रहकर कठिनाइयाँ झेलना अच्छा है। बँगलेमें पड़े रहना होता तो हम सबको नीचा देखना पड़ता। तम्बूमें रहनेसे तुम सबके जीवनका सच्चा निर्माण हो रहा है। वहाँ तुम शिक्षा प्राप्त कर रहे हो; लोगोंके सामने उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हो, प्रकृतिसे मुकाबला करना सीख रहे हो। ऐसा जीवन जो चाहे बिता सकता है।

मैं मजेमें हूँ। भड़ौंचमें काम पूरा करनेके बाद ही मैं आश्रम आ सकूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७१८) से।

सौजन्य : राधाबेन चौधरी

१. गांधीजीकी भड़ौंच यात्राके उल्लेखसे प्रतीत होता है कि यह पत्र उनके १९ अक्तूबर, १९१७को भड़ौंच रवाना होनेसे पहले ही लिखा गया था।

२. छगनलाल गांधीके भाई और गांधीजीके निकट-सहयोगी।

३. अहमदाबादके समीप साबरमती नदीके किनारे गांधीजीने जून, १९१७ में साबरमती आश्रमकी स्थापना की थी। इसके एक ओर जेलखाना और दूसरी ओर श्मशान घाट था। श्री मगनलालके पत्रमें वहींकी चिताओंका उल्लेख रहा होगा।

६. भाषण : व्यापारियों द्वारा आयोजित स्वागत-समारोहमें[1]

भड़ौंच
[अक्तूबर १९, १९१७ के बाद]

व्यापारियोंके पास बुद्धि तथा धन आदि तो होते ही हैं; इनके बिना उनका काम ही नहीं चल सकता। पर अब [इसके साथ-साथ] उन लोगोंमें देश-भक्तिकी प्रबल भावना भी होनी चाहिए। देश-भक्ति धर्मकी दृष्टिसे भी आवश्यक है। यदि देश-भक्तिकी भावना धार्मिक वृत्तिसे उद्भूत हो, तो उसका स्वरूप परम तेजस्वी होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यापारी-वर्गमें देश-प्रेमका भाव जगाया जाये।

व्यापारी लोग आजकल सार्वजनिक कामोंमें पहलेकी अपेक्षा अधिक हिस्सा लेते हैं। यदि वे देश-भक्तिकी भावनासे प्रेरित होकर राजनैतिक हलचलोंमें भी हाथ बँटाने लगें तो स्वराज्यको हाथपर धरे आँवलेके समान सहज प्राप्य समझिए। आप लोगोंमें से कुछ सोचते होंगे कि यह कैसे हो सकता है। किन्तु मैं दावेके सांथ कह सकता हूँ कि जैसे ही व्यापारी-वर्गके मनमें देश-भक्तिकी भावनाने घर किया कि हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ।

स्वराज्य-प्राप्तिकी चाबियोंमें सोनेकी चाबी तो स्वदेशीका व्रत[2] ही है। अपने देशमें लोगोंसे स्वदेशी-व्रतका पालन करवाना व्यापारियोंके हाथमें है, और व्यापारी ही इसे लोक-प्रिय भी बना सकते हैं। आपसे नम्र निवेदन है कि आप लोग इस कार्यको एक बार अपने हाथमें लें तो फिर देखेंगे कि आप कैसे-कैसे आश्चर्यजनक काम कर सकते हैं।

ऐसा प्रतीत होते हुए भी मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि इस देशमें स्वदेशीके चलन और आन्दोलनका सत्यानाश व्यापारी-वर्गने ही किया है। वे देशी मालके बदले लोगोंके सामने विदेशी माल पेश करते हैं और भाव बढ़ाते चले जाते हैं। अभी हालमें लोगोंने सरकारसे बंगालमें भाव बढ़ाये जानेके बारेमें शिकायतें की हैं और उनमें से एक शिकायत गुजरातके विरुद्ध भी है। कहा गया है कि धोतियोंका दाम बहुत अधिक बढ़ गया है। ये धोतियाँ वहाँ गुजरातसे भेजी जाती हैं। आप पैसा कमायें, लेकिन सही तरीकेसे; बुरे तरीकोंसे नहीं। बेईमानीका सहारा कभी नहीं लेना चाहिए।

व्यापारी-वर्ग ही भारतकी शक्ति है। यह शक्ति सैन्य-शक्तिसे भी अधिक है। युद्धकी जड़ भी व्यापार है और युद्धकी कुंजी भी व्यापारी-वर्ग ही है। पैसा व्यापारी लोग ही जुटाते हैं और उसीके बलपर सेना खड़ी की जाती है। इंग्लैण्ड और जर्मनीकी शक्तिका आधार वहाँके व्यापारी-वर्ग ही हैं। किसी भी देशकी समृद्धि उसके व्यापारी-वर्गपर ही निर्भर करती है। मुझे व्यापारी-वर्गसे अभिनन्दन-पत्र मिला। इसे मैं अच्छा

१. अभिनन्दनपत्रके उत्तरमें।

२. विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार करनेका यह आन्दोलन बंगालमें १९०५ में आरम्भ हुआ था; देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ९७।

शकुन मानता हूँ। जब-कभी मुझे भड़ौंचका स्मरण होगा तब मैं आने-जानेवालोंसे यह बात पूछूँगा कि जिन व्यापारियोंने मुझे अभिनन्दन-पत्र दिया था, उनमें सच्ची आस्था और स्वदेश-प्रेम है या नहीं। यदि मुझे निराशाजनक उत्तर मिलेगा तो मैं समझूँगा कि भारतमें अभिनन्दन-पत्र देनेका जो चलन हो गया है मुझे भी उसीके प्रवाहमें पड़कर मानपत्र दे दिया गया था।[1]

[गुजरातीसे]

गुजराती, २८-१०-१९१७

७. भाषण : द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलनमें[2]

भड़ौंच

अक्तूबर २०, १९१७

भाषण आरम्भ करनेसे पूर्व गांधीजीने उपस्थित जनसमुदायसे क्षमा-याचना करते हुए कहा :

चूँकि देर हो गई है, इसलिए अपना भाषण पढ़ूँगा तो सभा निर्धारित समयसे अधिक देर तक चलेगी। फिर भी मैं अपना भाषण पढ़ रहा हूँ; क्योंकि यहाँ उपस्थित मेरे मित्रोंका यही आग्रह है। भाषण तैयार करते हुए जो-कुछ कहना था उसे संक्षेपमें कहनेकी अधिकतम सावधानी मैंने रखी है; तिसपर भी, जितना मैं चाहता था वह उससे कुछ लम्बा हो गया है। मुझे उम्मीद है कि यदि भाषण पढ़नेमें मुझे निश्चित समयसे कुछ अधिक समय लग जाये तो आप क्षमा करेंगे।

इसके बाद गांधीजीने अपने छपे हुए भाषणको पढ़ा :

भाइयो और बहनो,

आपने मुझे इस सम्मेलनका अध्यक्ष बनाया है, इसके लिए मैं आप सबका कृतज्ञ हूँ। मैं जानता हूँ कि इस पदको सुशोभित करने लायक विद्वत्ता मुझमें नहीं है। मुझे इस बातका भी ध्यान है कि मैं देशसेवाके दूसरे क्षेत्रोंमें जो हिस्सा लेता हूँ, मैं उससे इस पदके योग्य नहीं हो जाता। मैं इसके योग्य एक ही कारणसे हो सकता हूँ, और वह है गुजराती भाषाके प्रति मेरा प्रेम। मेरी आत्मा कहती है कि गुजरातीके प्रेमकी होड़में पहले दरजेसे कममें मुझे सन्तोष नहीं हो सकता, और उसी मान्यताके कारण मैंने जिम्मेदारीका यह पद स्वीकार किया है। मुझे आशा है कि जिस उदार वृत्तिसे आपने मुझे यह पद दिया है, उसी उदार वृत्तिसे आप मेरे दोषोंको दरगुजर करेंगे, और इस काममें, जो जितना आपका है उतना ही मेरा भी है, पूरी मदद देंगे।

१. इस भाषणका मिलान **स्पीचेज़ ऐंड राइटिंग्ज़ ऑफ महात्मा गांधीमें** दिये गये पाठसे कर लिया गया है।

२. गांधीजी सम्मेलनके अध्यक्ष थे।

सम्मेलन अभी एक वरसका शिशु है। कहावत है कि पूतके पाँव पालनेमें दिखाई दे जाते हैं। इस वालकके लक्षण भी अच्छे दिखाई देते हैं। पिछले सालके कामकी रिपोर्ट मैंने देखी है। वह किसी भी संस्थाके लिए शोभनीय हो सकती है। मन्त्री महोदय समय-पर सम्मेलनका यह मूल्यवान विवरण छपवानेमें सफल हुए, इसके लिए वे हमारी वधाईके पात्र हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हमें ऐसे मन्त्री मिले हैं। जिन्होंने यह रिपोर्ट न पढ़ी हो, उन्हें मैं इसे पढ़ने और इसपर मनन करनेकी सलाह देता हूँ।

पिछले साल आदरणीय रणजीतराम वावाभाईकी[1] मृत्यु हो गई; यह हमारी वड़ी भारी हानि हुई। उनके जैसा पढ़ा-लिखा आदमी भरी जवानीमें चल वसा, यह शोचनीय वात है और इसपर विचार करनेकी आवश्यकता भी है। मैं भगवान्से उनकी आत्माको सद्गति देनेकी प्रार्थना करता हूँ और चाहता हूँ कि उनके कुटुम्वको इस वातसे सान्त्वना मिले कि हम सव उनके दुःखमें भागीदार हैं।

जिस संस्थाने[2] इस सम्मेलनका आयोजन किया है, उसने अपने सामने तीन उद्देश्य रखे हैं:

(१) शिक्षाके प्रश्नके वारेमें लोकमत तैयार करना और उसे अभिव्यक्ति देना।
(२) गुजरातमें शिक्षाके प्रश्नोंके विषयमें निरन्तर आन्दोलन करना।
(३) गुजरातमें शिक्षाके प्रसारके लिए ठोस कार्य करना।

इन तीन उद्देश्योंके वारेमें अपनी वुद्धिके अनुसार मैंने जो सोचा-विचारा है उसे यहाँ पेश करनेकी कोशिश करूँगा।

यह वात सवको अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि इस दिशामें हमारा पहला काम है, विचारपूर्वक शिक्षाका माध्यम निश्चित करना। इसके विना और सव कोशिशें लगभग वेकार सावित हो सकती हैं। शिक्षाके माध्यमका विचार किये विना शिक्षा देनेका परिणाम नींवके विना इमारत खड़ी करनेकी कोशिश-जैसी वात होगी।

इस वारेमें दो रायें पाई जाती हैं। एक पक्ष कहता है कि शिक्षा मातृ-भाषा (गुजराती) के जरिये दी जानी चाहिए। और दूसरा पक्ष कहता है कि वह अंग्रेजीके माध्यमसे दी जानी चाहिए। दोनों पक्षोंके हेतु पवित्र हैं। दोनों देशका भला चाहते हैं। लेकिन पवित्र हेतु ही कामकी सिद्धिके लिए काफी नहीं हैं। देखा गया है कि लोग पवित्र हेतु रखते हुए भी कई वार अपवित्र गड्ढोंमें जा गिरे हैं। इसलिए हमें दोनों मतोंके गुण-दोषोंकी जाँच करके, सम्भव हो तो एकमत होकर, इस वड़े प्रश्नको हल करना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह प्रश्न वहुत वड़ा है। इसलिए उसके वारेमें जितना विचार किया जाये उतना ही थोड़ा है।

वैसे तो यह प्रश्न सारे भारतका है; किन्तु हरएक क्षेत्र अथवा प्रान्त इसपर अपनी हदतक स्वतन्त्र रूपसे विचार कर सकता है। फिर भी ऐसा नहीं है कि जवतक भारतके सारे भाग एकमत न हो जायें, तवतक अकेला गुजरात आगे कदम वढ़ा ही नहीं सकता।

१. रणजीतराम वावाभाई मेहता (१८८२–१९१६); उनके नामसे एक स्वर्ण-पदक गुजरातमें प्रतिवर्ष साहित्य और कलाओंके क्षेत्रमें की गई विशिष्ट सेवाओंके लिए दिया जाता है।

२. भड़ौंच केलवणी मण्डल; भड़ौंचकी एक शिक्षा-संस्था।

फिर भी दूसरे प्रान्तोंमें इस बारेमें क्या कारवाई की गई है, इसकी जाँच करनेसे हम कुछ मुश्किलें हल कर सकते हैं। बंगभंगके[1] समय जब स्वदेशीका जोश उमड़ रहा था, तब बंगालमें बँगलाके जरिये शिक्षा देनेका प्रयत्न किया गया। राष्ट्रीय पाठशालाकी स्थापना भी हुई। रुपयोंकी वर्षा हुई। पर यह प्रयोग बेकार गया। मेरी यह नम्र राय है कि व्यवस्थापकोंकी अपने प्रयोगमें आस्था नहीं थी। वैसी ही करुणाजनक स्थिति शिक्षकोंकी भी रही। बंगालमें शिक्षित-वर्गको अंग्रेजीसे बड़ा मोह है। यह कहा गया है कि बँगला साहित्यने जो प्रगति की है उसका कारण बंगालियोंका अंग्रेजी भाषा और साहित्यपर अधिकार है। लेकिन तथ्य इस तर्कके विरुद्ध है। रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी[2] चमत्कारिक बँगला अंग्रेजीकी ऋणी नहीं है। उनके भाषा-चमत्कारके पीछे उनका स्वभाषा विषयक अभिमान है। 'गीतांजलि' पहले बँगला भाषामें ही लिखी गई थी। महाकवि ठाकुर बंगालमें बंगलाका ही प्रयोग करते हैं। उन्होंने हाल ही में भारतकी वर्त्तमान स्थितिपर कलकत्तेमें जो भाषण दिया था, वह बँगलामें दिया था। बंगालके प्रमुख स्त्री-पुरुष उसे सुनने गये थे। जिन्होंने उसे सुना था उन्होंने मुझे बताया है कि डेढ़ घंटे तक अपने श्रोताओंको उन्होंने रस-विभोर रखा। उन्होंने अपने विचार अंग्रेजी साहित्यसे नहीं लिये। वे कहते हैं कि उन्होंने ये विचार इस देशके वातावरणमें से लिये हैं, उपनिषदोंमें से निचोड़े हैं। उनपर इन विचारोंकी वर्षा भारतके आकाशसे हुई है। मेरा विश्वास है कि यही बंगालके दूसरे लेखकोंके सम्बन्धमें भी सही है।

हिमालयकी तरह गम्भीर और भव्यदर्शी महात्मा मुन्शीरामजी[3] जब हिन्दीमें भाषण देते हैं, तब बच्चे और बड़े, स्त्री और पुरुष सभी उनका सुन्दर भाषण सुनते और समझते हैं। उन्होंने अपनी अंग्रेजी अपने अंग्रेज मित्रोंके लिए ही सुरक्षित रख छोड़ी है। वे अंग्रेजी शब्दोंका अनुवाद करके अपनी बात नहीं कहते।

कहा जाता है कि गृहस्थ होते हुए भी देशके लिए आत्मार्पण करनेवाले महामना पं० मदनमोहन मालवीयकी[4] अंग्रेजी चाँदीकी तरह शुभ्र होती है। वे जो कुछ कहते हैं, उसपर वाइसरॉयको सोचना पड़ता है। अगर उनके अंग्रेजी भाषणका प्रवाह चाँदी-जैसा चमकता है, तो उनके हिन्दी भाषणका प्रवाह शुद्ध तरल सोने-जैसा दमकता है। मानसरोवरसे उतरते समय सूर्यकी किरणोंसे जैसे गंगा दमकती है वैसी ही शोभा उनकी हिन्दीकी होती है।

१. १९०५ में प्रशासनिक सुविधाके बहाने बंगालका विभाजन कर दिया गया था। विभक्त प्रान्तोंमें एकमें, मुसलमानों और दूसरेमें हिन्दुओंका बहुमत था। इस विभाजनसे देशभरमें एक तूफान खड़ा हो गया और इसके फलस्वरूप अंग्रेजी मालके बहिष्कारका आन्दोलन शुरू किया गया। अन्ततः १९११ में यह विभाजन रद कर दिया गया।

२. १८६१–१९४१; कवि तथा विश्वभारतीके संस्थापक।

३. स्वामी श्रद्धानन्द; हरद्वारके समीप गुरुकुल कांगड़ीके संस्थापक।

४. मदनमोहन मालवीय (१८६१–१९४६) बनारस विश्वविद्यालयके संस्थापक; शाही परिषदके सदस्य, १९०९ और १९१८ में कांग्रेसके अध्यक्ष निर्वाचित।

इन तीनों वक्ताओंकी वक्तृत्व शक्ति उनके अंग्रेजीके ज्ञानके कारण नहीं, बल्कि उनके स्वभाषा प्रेमके कारण आई है। स्वामी दयानन्दने[1] हिन्दी भाषाकी जो सेवाएँ की हैं वे अंग्रेजी ज्ञानके कारण नहीं कीं। तुकाराम[2] और रामदासने[3] मराठी भाषाको जिस तरह उज्ज्वल बनाया है, उसमें अंग्रेजी भाषाका कोई हाथ नहीं है। प्रेमानन्द[4], शामल भट्ट[5] और आधुनिक युगमें दलपतरामने[6] गुजराती साहित्यको समृद्ध किया है; अंग्रेजी भाषाका इसमें कोई हाथ नहीं है।

ऊपरके उदाहरणोंसे यह साबित होता है कि मातृभाषाके विकासके लिए अंग्रेजी भाषाकी जानकारीकी नहीं, मातृभाषाके प्रेमकी — उसके प्रति श्रद्धाकी — जरूरत है।

भाषाओंके विकासपर विचार करें तो भी हम इसी निर्णयपर पहुँचेंगे। भाषाएँ उनके बोलनेवाले लोगोंके चरित्रका प्रतिबिम्ब होती हैं। दक्षिण आफ्रिकाके हब्शियोंकी भाषा जाननेसे हम उनके रीति-रिवाज वगैरा जान सकते हैं। भाषा जातियोंके गुण-कर्मके अनुरूप बनती है। यह बात हम निःसंकोच कह सकते हैं कि जिस भाषामें वीरता, सच्चाई, दया आदि लक्षण नहीं होते उस भाषाको बोलनेवाली जातियोंमें वीर, सत्यशील और दयालु लोग नहीं होते। ऐसी भाषामें दूसरी भाषाओंसे जैसे-तैसे वीरता या दया-सूचक शब्द ठूँस देनेसे न उस भाषाका विस्तार हो सकता है, न उस भाषाके बोलनेवाले लोग वीर ही बनेंगे। शौर्य किसीमें भी बाहरसे नहीं भरा जा सकता। हाँ, वह भीतर हो और उसपर जंग लग गया हो, तो जंगके हटते ही वह चमक उठेगा। हमने बहुत समय तक गुलामी भोगी है, इसलिए हममें विनयकी अतिशयता सूचित करनेवाले शब्दोंका बड़ा भण्डार दिखाई देता है। अंग्रेजी भाषामें नौकाके लिए जितने शब्द हैं, उतने और किसी भाषामें शायद ही हों। यदि कोई साहसपूर्वक उन पुस्तकोंका अनुवाद गुजरातीमें करे भी तो उससे न हमारी भाषाका कोई विकास होगा और न हम नौकाओंके बारेमें ही ज्यादा जानने लगेंगे। अलबत्ता जब हम जहाज वगैरा बनाना सीखेंगे और जलसेना भी खड़ी करेंगे, नौका-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द तब अपने-आप बन जायेंगे। यह विचार स्वर्गीय रेवरेंड टेलरने अपने व्याकरणमें व्यक्त किया है। वे लिखते हैं :

> कभी-कभी यह विवाद सुनाई पड़ता है कि गुजराती भाषा पूर्ण है या अपूर्ण। कहावत है कि '*यथा राजा तथा प्रजा, यथा गुरुस्तथा शिष्यः।*' इसी तरह कहते हैं कि '*यथा भाषकस्तथा भाषा* — अर्थात् जैसा बोलनेवाला वैसी भाषा। शामल भट्ट और अन्य कवि अपने मनके विचार प्रकट करते समय यह सोचकर कभी रुके नहीं जान पड़ते कि गुजराती भाषा अधूरी है। उन्होंने नये और पुराने

१. स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४-८३); आर्य समाजके संस्थापक।

२. व ३. महाराष्ट्रके सन्त कवि।

४. १६३६-१७२८; गुजराती कवि।

५. १७००-६५; गुजराती कवि, इनकी कविताके एक पदका गांधीजीपर उनके बचपनमें ही बहुत प्रभाव पड़ा था। देखिए आत्मकथा, भाग १ अध्याय १०।

६. दलपतराम डाह्याभाई त्रिवेदी (१८२०-१८९२)।

शब्दोंका उपयोग इस प्रकार विवेकपूर्वक किया कि उनके द्वारा व्यवहृत शब्द भाषामें प्रचलित हो गये।

एक विषयमें तो सभी भाषाएँ अधूरी हैं। मनुष्यकी छोटी बुद्धिमें न आनेवाली बातों, जैसे ईश्वर या अनन्तताके बारेमें कहें तो सभी भाषाएँ अधूरी हैं। भाषा मनुष्यकी बुद्धिके सहारे चलती है, इसलिए जब किसी विषय तक बुद्धि नहीं पहुँचती, तब भाषा अधूरी रह जाती है। भाषाका साधारण नियम यह है कि लोगोंके मनमें जो विचार भर जाते हैं, वे ही उनकी भाषामें व्यक्त होते हैं। लोग विवेकशील होंगे तो उनकी बोलीमें विवेकशीलता होगी, लोग मूढ़ होंगे तो उनकी बोलीमें भी मूढ़ता होगी। अंग्रेजीमें कहावत है कि "मूर्ख बढ़ई अपने औजारोंको दोष देता है।" भाषाको अपूर्ण बतानेवाले लोग भी कम-ज्यादा ऐसे ही समझिए। जिस विद्यार्थीको कुछ अंग्रेजी भाषा आ गई है और उसके साथ कुछ पाश्चात्य विषय भी आ गये हैं, उसे गुजराती भाषा अधूरी-सी लगती होगी, क्योंकि उसका अंग्रेजीसे अनुवाद करना मुश्किल होता है। इसमें दोष भाषाका नहीं, लोगोंका है। चूँकि लोगोंको विवेकपूर्वक समझनेका प्रयत्न करनेका अभ्यास नहीं होता, इसलिए विशेषज्ञ नया विषय नई पारिभाषिक शब्दावली अथवा नई भाषा-शैलीमें रखते हुए झिझक जाता है; वह सोचता है, कौन "अंधेके आगे रोये, अपने नैन खोये।" जबतक लोग भला-बुरा, नया-पुराना परखकर उसकी कीमत नहीं आँक सकते, तबतक लिखनेकी प्रतिभा भी कैसे चमक सकती है?

जो लोग अंग्रेजीसे भाषामें अनुवाद करते हैं, वे कुछ ऐसा समझते हैं कि अपनी भाषाका ज्ञान तो उनकी घुट्टीमें ही उन्हें मिला है और अंग्रेजी उन्होंने पढ़ी ही है; इसलिए अब वे दो भाषाओंके पूरे पण्डित हो गये। भला अब वे गुजरातीका अध्ययन किसलिए करें? परभाषाका ज्ञान प्राप्त करनेमें श्रम करनेकी अपेक्षा स्वभाषामें प्रवीणता प्राप्त करनेके निमित्त अध्ययन करना अधिक महत्त्वपूर्ण है। शामल और अन्य गुजराती कवियोंके ग्रन्थ देखिए। उनमें प्रत्येक पदमें अध्ययनका प्रमाण मिलता है। जबतक मनसे प्रयत्न न करेंगे तबतक गुजराती कच्ची ही रहेगी; परिश्रमसे बादमें पक्की होगी। प्रयत्न करनेवालेका प्रयत्न अधूरा होगा, तो उसकी भाषा भी अधूरी होगी, लेकिन यदि प्रयत्न पूरा होगा, तो गुजराती भी पूरी होगी। इतना ही नहीं वह सजी हुई भी दिखाई देगी। गुजराती आर्यकुलकी, संस्कृतकी बेटी और बहुत ही उत्कृष्ट भाषाओंकी सगी ठहरी। उसे कोई निम्नकोटिकी कैसे बता सकता है?

परमात्मा इसे आशीर्वाद दे। अनन्तकाल तक इसकी वाणीमें सद्विद्या, सद्ज्ञान और सद्धर्मका सुबोध रहे और सिरजनहार प्रभु करें, हम माताओं और छात्रोंसे सदा-सर्वदा उसका गुणगान सुनें।

इस तरह हम देखते हैं कि बंगालमें सारी शिक्षा बँगलाके जरिये देनेके आन्दोलनकी असफलताका कारण भाषाकी अपूर्णता या प्रयत्नकी अयोग्यता नहीं है। अपूर्णताके बारेमें

हम विचार कर चुके हैं। इससे बँगलाकी अयोग्यता सिद्ध नहीं होती। हम चाहें तो इसे प्रयत्न करनेवालोंकी अयोग्यता या अनास्था कह सकते हैं।

उत्तरमें हिन्दी भाषाका विकास तो हो रहा है, फिर भी उसे शिक्षाका माध्यम बनानेका निरन्तर प्रयत्न केवल आर्यसमाजियोंने ही किया मालूम होता है। गुरुकुलोंमें यह प्रयत्न जारी है।

मद्रासमें देशी भाषाओंके जरिये शिक्षा देनेका आन्दोलन कुछ ही वर्षोंसे शुरू हुआ है। तमिलोंकी अपेक्षा तेलगू भाषा-भाषी अधिक जाग्रत हैं। शिक्षित तमिलोंपर अंग्रेजीका इतना ज्यादा असर हो गया है कि उनमें तमिल भाषाके माध्यमसे अपना काम चलानेका उत्साह नहीं रहा। तेलगू भाषी भागमें अंग्रेजी शिक्षा इतनी नहीं फली है। इसलिए तेलगू-भाषी मातृभाषाका उपयोग ज्यादा कर रहे हैं। तेलगू भाषी भागमें सिर्फ तेलगूके जरिये शिक्षा देनेका प्रयोग किया जा रहा है। इतना ही नहीं, तेलगू भाइयोंने भाषाके आधारपर प्रान्त-निर्माण करनेका आन्दोलन भी शुरू किया है। इस विचारका प्रचार कुछ समयसे ही शुरू हुआ है। फिर भी उनका प्रयत्न इतना साहसपूर्ण है कि थोड़े दिनोंमें हम उसे क्रियान्वित होता देखेंगे। उनके काममें कठिनाइयाँ बहुत हैं, परन्तु उनमें दूर करनेकी शक्ति है, उनके नेताओंकी मुझपर ऐसी ही छाप पड़ी है।

महाराष्ट्रमें भी यह प्रयत्न चल रहा है। साधुचरित प्रोफेसर कर्वे[1] इस प्रयत्नके समर्थक हैं। भाई नायकका भी यही दृष्टिकोण है। अनेक निजी पाठशालाएँ इस काममें लगी हुई हैं। प्रोफेसर बीजापुरकरने[2] बहुत कष्ट उठाकर अपने साहसपूर्ण प्रयत्नको फिर आरम्भ किया है और कुछ समयमें हम देखेंगे कि उनकी पाठशाला सुचारु रूपसे चल निकली है। उन्होंने पाठ्य पुस्तकें लिखनेकी योजना बनाई थी। कुछ पुस्तकें छप गई हैं और कुछ लिखी हुई तैयार हैं। उस पाठशालाके शिक्षकोंने कभी अनास्था नहीं दिखाई। अगर दुर्भाग्यसे उनकी पाठशाला बंद न हुई होती, तो आज यह प्रश्न उठता ही नहीं कि मराठीके जरिये ऊँची शिक्षा दी जा सकती है या नहीं।

गुजरातमें भी मातृभाषाके जरिये शिक्षा देनेका आन्दोलन शुरू हो चुका है। इस बारेमें हमें रा० ब० हरगोविन्ददास कांटावालाके[3] लेखसे जानकारी मिल सकती है। प्रो० गज्जर[4] और स्वर्गीय दीवान बहादुर मणिभाई इस विचारके नेता माने जा सकते हैं। यह विचार करना हमारा काम है कि हमें इन लोगोंके बोये बीजोंके अंकुरित होनेमें मदद देनी चाहिए या नहीं। मुझे तो लगता है कि इसमें जितनी देर हो रही है, उतना ही हमारा नुकसान हो रहा है।

१. धोंडो केशव कर्वे (१८५८–१९६२); समाज-सुधारक, भारत रत्न, भारतीय महिला विश्वविद्यालय (इंडियन वीमेन्स यूनिवर्सिटी) के संस्थापक।

२. विष्णु गोविन्द बीजापुरकर (१८६३–१९२६); मराठी साहित्य, स्वदेशी व राष्ट्रीय शिक्षणके प्रचारक।

३. १८३९–१९३१; बड़ौदा रियासतके लोक-शिक्षा निदेशक। देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ९४–९५।

४. त्रिभुवनदास कल्याणदास गज्जर (१८६३–१९२०); रसायन-शास्त्रके प्रोफेसर, बड़ौदा कालेज, बड़ौदा; पश्चिम भारतमें रसायन उद्योगके प्रणेता।

अंग्रेजी भाषाके माध्यमसे शिक्षामें कमसे-कम सोलह वर्ष लगते हैं। यदि इन्हीं विषयोंकी शिक्षा मातृभाषाके माध्यमसे दी जाये, तो ज्यादासे-ज्यादा दस वर्ष लगेंगे। यह राय बहुतसे अनुभवी शिक्षकोंने प्रकट की है। हजारों विद्यार्थियोंके छः-छः वर्ष बचनेका अर्थ यह होता है कि कई हजार वर्ष जनताको मिल गये।

विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पानेमें दिमागपर जो बोझ पड़ता है वह असह्य है। यह बोझ हमारे बच्चे उठा तो सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ती है। वे दूसरा बोझ उठानेके लायक नहीं रह जाते। इससे हमारे स्नातक अधिकतर निकम्मे, कमजोर, निरुत्साही, रोगी और कोरे नकलची बन जाते हैं। उनमें खोज करनेकी शक्ति, विचार करनेकी शक्ति, साहस, धीरज, वीरता, निर्भयता और अन्य गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं। इससे हम नई योजनाएँ नहीं बना सकते और यदि बनाते हैं तो उन्हें पूरा नहीं कर पाते। कुछ लोग, जिनमें उपर्युक्त गुण दिखाई देते हैं, अकाल ही कालके गालमें चले जाते हैं। एक अंग्रेजने लिखा है कि मूल लेख और सोखता कागजके अक्षरोंमें जो भेद है, वही भेद यूरोपके और यूरोपके बाहरके लोगोंमें है। इस विचारमें जो सचाई है वह कोई एशियाके लोगोंकी स्वाभाविक अयोग्यताके कारण नहीं है। इसका कारण शिक्षाका योग्य माध्यम चुन लेना है। दक्षिण आफ्रिकी हब्शी साहसी, शरीरसे कद्दावर और चरित्रवान् हैं। बाल-विवाह आदि जो दोष हममें हैं वे उनमें नहीं हैं। फिर भी उनकी दशा वैसी ही है जैसी हमारी। उनकी शिक्षाका माध्यम डच भाषा है। वे भी हमारी तरह डच भाषाको तुरन्त अधिकृत कर लेते हैं और हमारी ही तरह शिक्षा समाप्त होते-होते कमजोर हो जाते हैं। वे भी 'बहुत हदतक' कोरे नकलची निकलते हैं। उनमें भी असली चीज माध्यमरूपमें मातृ-भाषाके हटनेसे लुप्त हुई दीखती है। अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए हम लोग ही इस नुकसानका सही अनुमान नहीं लगा पाते। यदि हम यह अनुमान लगा सकें कि जनसाधारणपर हमारा कितना कम असर पड़ा है, तो इसकी कुछ कल्पना हो सकती है। हमारे माता-पिता हमारी शिक्षाके बारेमें कभी-कभी कुछ कह देते हैं, वह विचारने लायक होता है। हम जगदीशचन्द्र बसु[1] और रायको[2] देखकर मोहांध हो जाते हैं। मुझे विश्वास है कि हमने ५० वर्ष तक मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा पाई होती, तो हममें इतने बसु और राय होते कि उन्हें देखकर हमें अचम्भा न होता।

यदि हम यह विचार एक तरफ रख दें कि जापानका उत्साह जिस ओर जा रहा है, वह ठीक है या नहीं, तो हमें जापानका साहस आश्चर्यजनक मालूम होगा। उन्होंने मातृ-भाषा द्वारा जन-जाग्रति की है, इसीलिए उनके हर काममें नयापन दिखाई देता है। वे शिक्षकोंके भी शिक्षक बन गये हैं। उन्होंने [गैर-यूरोपीय देशोंके लोगोंको दी

१. सर जगदीश चन्द्र बोस (१८५८–१९३७); वैज्ञानिक; बोस रिसर्च इंस्टीट्यूटके संस्थापक तथा वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकोंके लेखक।

२. आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय (१८६१–१९४४); वैज्ञानिक और देशभक्त।

गई] सोखता कागजकी उपमा गलत साबित कर दी है। शिक्षाके कारण जापानके जन-जीवनमें हिलोरें उठ रही हैं और दुनिया जापानियोंका काम अचरज-भरी आँखोंसे देख रही है। विदेशी भाषाके माध्यमसे शिक्षा देनेकी पद्धतिसे अपार हानि होती है।

माँके दूधके साथ जो संस्कार और मीठे शब्द मिलते हैं, उनके और पाठशालाके बीच जो मेल होना चाहिए, वह विदेशी भाषाके माध्यमसे शिक्षा देनेमें टूट जाता है। इस सम्बन्धको तोड़नेवालोंका हेतु पवित्र ही क्यों न हो, फिर भी वे जनताके दुश्मन हैं। हम ऐसी शिक्षाके वशीभूत होकर मातृद्रोह करते हैं। इसके अतिरिक्त विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा देनेसे अन्य हानियाँ भी होती हैं। शिक्षित-वर्ग और सामान्य जनताके बीचमें अन्तर पड़ गया है। हम जनसाधारणको नहीं पहचानते। जनसाधारण हमें नहीं जानता। वे हमें साहब समझते हैं और हमसे डरते हैं; वे हमपर भरोसा नहीं करते। यदि यही स्थिति अधिक समय तक कायम रही तो एक दिन लॉर्ड कर्जनका[1] यह आरोप सही हो जायगा कि शिक्षित-वर्ग जनसाधारणका प्रतिनिधि नहीं है।

सौभाग्यसे शिक्षित लोग अपनी इस मोह-मूर्च्छासे जागते दिखाई देते हैं। वे जनसाधारणसे सम्पर्क करते हैं तो उन्हें ऊपर बताये हुए दोष स्पष्ट दिखाई देते हैं। उनमें जो जोश आया है उसे लोगोंमें कैसे भरें? अंग्रेजीके माध्यमसे तो यह काम किया नहीं जा सकता। गुजरातीके द्वारा उसे लोगोंमें भरनेकी शक्ति उनमें नहीं है या बहुत कम है। उन्हें अपने विचार मातृ-भाषामें जनसाधारणके सामने रखनेमें बड़ी कठिनाई होती है। ऐसी बातें मैं हमेशा सुनता हूँ। इस बाधाके कारण जन-जीवनका प्रवाह रुक गया है। हमें अंग्रेजी शिक्षा देनेमें मैकॉलेका[2] हेतु शुद्ध था। उसके मनमें हमारे साहित्यके प्रति तिरस्कारका भाव था। यह छूत हमें भी लग गई; हम भी मूढ होकर इसका तिरस्कार करने लगे और इस मामलेमें अपने गुरुसे भी आगे बढ़ गये। मैकॉले सोचता था कि हम जनसाधारणमें पश्चिमी सभ्यताके प्रचारक बनकर जायेंगे। उसकी कल्पना यह थी कि हममें से कुछ लोग अंग्रेजी पढ़-लिखकर, अपना चरित्र उन्नत करके जनताको नये विचार देंगे। वे देने लायक थे या नहीं, इस बातका विचार करना यहाँ अप्रासंगिक होगा। हमें तो सिर्फ शिक्षाके माध्यमकी बात ही सोचनी है। हमने अंग्रेजी शिक्षामें [नये विचारोंको नहीं] धनप्राप्ति को देखा, और उसके उपयोगको सर्वाधिक प्रमुख स्थान दे डाला। कुछ लोगोंमें अपने देशका अभिमान भी पैदा हुआ। इस तरह मूल विचार गौण हो गया और अंग्रेजी भाषाका प्रचार श्री मैकॉलेकी धारणासे भी आगे बढ़ गया; किन्तु इससे हम घाटेमें रहे।

यदि हमारे हाथमें सत्ता होती, तो हम इस दोषको तुरन्त देख लेते और तब मातृभाषाका त्याग करना असम्भव हो जाता। सरकारी तबकेने उसे नहीं छोड़ा; हमने

१. १८५९–१९२५; वाइसरॉय और भारतके गवर्नर-जनरल, १८९९–१९०५।

२. टामस बैबिंगटन मैकॉले (१८००–५९) भारत सरकारकी सामान्य लोक शिक्षा समितिके अध्यक्ष और गवर्नर जनरलकी कार्यकारिणी परिषद्के कानून-सदस्य। उन्होंने भारतमें अंग्रेजी शिक्षा शुरू करनेकी सिफारिश अपने २ फरवरी १८३५ के स्मरण-पत्रमें की थी।

उसे छोड़ा है। बहुतोंको शायद मालूम नहीं होगा कि हमारी अदालती भाषा गुजराती ही मानी जाती है। सरकार कानून गुजरातीमें बनवाती है। दरबारोंमें पढ़े जानेवाले भाषणोंका गुजराती अनुवाद भी उसी समय पढ़ा जाता है। मुद्रा नोटोंमें अंग्रेजीके साथ गुजराती और अन्य भारतीय भाषाओंका भी उपयोग किया जाता है। जमीनकी पैमाइश करनवालेको गणित और जो अन्य विषय सीखने पड़ते हैं, वे कठिन होते हैं और यह काम यदि अंग्रेजीमें होता, तो माल-महकमेका काम बहुत खर्चीला हो जाता। इसलिए पैमाइशवालोंके लिए ऐसे पारिभाषिक शब्द बनाये गये हैं जिन्हें जानकर हमें हर्ष और आश्चर्य होता है। हममें भाषाके लिए सच्चा प्रेम हो, तो हम अपने उपलब्ध साधनोंका उपयोग तत्काल कर सकते हैं। वकील अपना काम गुजराती भाषामें करने लग जायें तो मुवक्किलोंका बहुत-सा रुपया बच जाये, इससे मुवक्किलोंको कानूनका जरूरी ज्ञान मिल जाये और वे अपने हक समझने लगें। दुभाषियेका खर्च भी बचे तथा भाषामें कानूनी शब्दोंका प्रचार हो। इसमें वकीलोंको थोड़ा प्रयत्न जरूर करना पड़ेगा। मुझे विश्वास है, और मेरा अनुभव है कि इससे उनके मुवक्किलोंका नुकसान नहीं होगा। यह भय करनेका कोई कारण नहीं है कि गुजरातीमें की हुई बहसका असर कम पड़ेगा। हमारे कलक्टरों वगैराके लिए गुजराती जानना अनिवार्य है; परन्तु अंग्रेजीके प्रति हमारे झूठे मोहके कारण उनकी इस जानकारीमें जंग लग जाता है।

ऐसी दलील दी गई है कि रुपया कमानेके लिए और देशहितके खयालसे अंग्रेजीका जो उपयोग किया गया उसमें दोषकी कोई बात नहीं है। यह दलील जब शिक्षाके माध्यमका विचार करते हैं तब ठीक नहीं मालूम होती। रुपया कमानेके लिए या देशहितके खयालसे कुछ लोग अंग्रेजी सीखें, तो हम उन्हें सादर प्रणाम करेंगे। परन्तु इसी कारण अंग्रेजी भाषाको शिक्षाका माध्यम तो नहीं माना जा सकता। मैं यही स्पष्ट करना चाहता हूँ कि उपर्युक्त बातोंके कारण अंग्रेजी भाषाको शिक्षाके माध्यमके रूपमें भारतमें जो स्थान मिला उसका परिणाम दुःखद हुआ है। कुछ लोग कहते हैं कि अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त लोग ही देशभक्त हुए हैं; पिछले दो महीनोंसे तो हमें इससे बिलकुल उलटी बात नजर आ रही है। यदि अंग्रेजीका यह दावा मान भी लें तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त लोगोंके समान दूसरोंको मौका ही नहीं मिला। इसके सिवा अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त लोगोंके देशप्रेमका प्रभाव जनसाधारणपर नहीं पड़ा। सच्चे देशप्रेमको तो व्यापक होना चाहिए। इनके देशप्रेममें यह गुण दिखाई नहीं देता।

कहा जाता है कि ऊपरकी दलीलें और कुछ भी हों, वे आज अव्यावहारिक हैं। "अंग्रेजीके कारण अन्य विषयोंकी कुछ भी हानि हो, तो यह दुःखकी बात है। अंग्रेजीपर अधिकार प्राप्त करनेमें ही हमारी अधिकांश मानसिक शक्ति खर्च हो जाये, यह बहुत ही अवांछनीय है। परन्तु अंग्रेजीके सम्बन्धमें हमारी जो स्थिति है, उसे ध्यानमें रखते हुए मेरा यह नम्र मत है कि इस नतीजेको सहकर रास्ता निकालनेके सिवा और कोई उपाय नहीं है।" ये शब्द किसी ऐसे-वैसे लेखकके कहे हुए नहीं हैं। ये गुजरातके

शिक्षित-वर्गमें अग्रगण्य एक स्वभाषा-प्रेमी व्यक्तिके हैं। आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव[1] जो कुछ लिखते हैं, इसपर हम विचार किये विना नहीं रह सकते। उन्होंने जो अनुभव प्राप्त किया है, वह बहुत कम लोगोंने प्राप्त किया है। उन्होंने साहित्य और शिक्षाकी बड़ी सेवा की है। उन्हें सलाह देने तथा टीका करनेका पूरा अधिकार है। ऐसी स्थितिमें मेरे-जैसे व्यक्तिको कुछ कहते हुए बड़ी झिझक होती है। और फिर, ये विचार अकेले आनन्दशंकर भाईके ही नहीं हैं। उन्होंने मीठी भाषामें अंग्रेजी भाषाके समर्थकोंके विचार रखे हैं। उन विचारोंका आदर करना हमारा कर्त्तव्य है। इसके अलावा भी मेरी स्थिति कुछ विचित्र-सी है। उनकी सलाहसे, उनकी निगरानीमें मैं राष्ट्रीय शिक्षाका प्रयोग कर रहा हूँ। वहाँ मातृ-भाषाके माध्यमसे ही शिक्षा दी जाती है। जहाँ इतना निकटका सम्बन्ध हो, वहाँ टीकाके रूपमें कुछ भी लिखते समय हिचकिचाना स्वाभाविक है। सौभाग्यसे आचार्य ध्रुवने शिक्षाके माध्यमके रूपमें अंग्रेजी भाषा और मातृभाषा दोनोंका ही प्रयोग होते देखा है और दोनोंमें से एकके बारेमें भी उन्होंने निश्चित राय नहीं दी है। इसलिए उनके विचारोंके विरुद्ध कुछ कहनेमें संकोच अवश्य कम हो जाता है।

अंग्रेजीके सम्बन्धमें हम अपनी स्थितिको जरूरतसे ज्यादा महत्व देते हैं। मैं जानता हूँ कि इस सम्मेलनमें इस विषयमें पूरी-पूरी आजादीसे चर्चा नहीं की जा सकती। किन्तु जो राजनैतिक मामलोंमें नहीं पड़ सकते हमारा उनसे इतना कहना तो अनुचित नहीं है कि भारतमें अंग्रेजोंका राज्य केवल भारतकी भलाईके लिए होना चाहिए। और किसी विचारसे इस सम्बन्धका बचाव नहीं किया जा सकता। एक राष्ट्रका दूसरे राष्ट्रपर राज्य करना दोनोंके लिए असह्य है, बुरा है और दोनोंको नुकसान पहुँचानेवाला है। यह बात अंग्रेज अधिकारियोंने भी मानी है और जहाँ कहीं भी परोपकारकी दृष्टिसे विचार होगा, वहाँ यह बात सिद्धान्तरूपमें मानी जायेगी। इसलिए यदि शासकों और शासितों दोनोंको यह निश्चय हो जाये कि अंग्रेजीके माध्यमसे शिक्षा देनेसे जनसाधारणकी मानसिक शक्ति नष्ट होती है, तो एक पलकी भी देर किये विना शिक्षाका माध्यम बदल दिया जाना चाहिए। इसमें जो बाधाएँ सामने आयें, उन्हें दूर करनेमें ही हमारे पुरुषार्थकी कसौटी है। यदि यह बात ठीक मान ली जाये, तो जो लोग आचार्य ध्रुवकी तरह यह स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी माध्यमके कारण हमारी मानसिक शक्तिकी हानि होती है उन्हें भरोसा दिलानेके लिए कोई दूसरी दलील देनेकी जरूरत नहीं रह जाती।

यह सोचना कि मातृभाषाके माध्यम द्वारा शिक्षा देनेसे अंग्रेजी भाषाके ज्ञानको धक्का पहुँचेगा, अनावश्यक है। सभी पढ़े-लिखे भारतीयोंको इस भाषापर अधिकार प्राप्त करनेकी जरूरत नहीं है। इतना ही नहीं मेरी तो यह भी नम्र राय है कि उसपर अधिकार प्राप्त करनेकी रुचि पैदा करना भी जरूरी नहीं है।

कुछ भारतीयोंको अंग्रेजी सीखनी अवश्य पड़ेगी। आचार्य ध्रुवने केवल उच्च शिक्षाकी दृष्टिसे ही इस प्रश्नपर सोचा है, परन्तु हम सब दृष्टियोंसे सोचनेपर देख सकेंगे कि दो वर्गोंको अंग्रेजीकी जरूरत रहेगी :

१. आनन्दशंकर बापुभाई ध्रुव (१८६९–१९४२) प्रसिद्ध विद्वान्; बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके सह-उपकुलपति।

१. वे देशप्रेमी लोग, जिनमें भाषा सीखनेकी अधिक शक्ति है, जिनके पास समय है और जो अंग्रेजीका उपयोग अंग्रेजी साहित्यमें शोध करके उसके परिणाम जनताके सामने रखनेमें या शासकोंसे मिलने-जुलनेमें करना चाहते हैं, और

२. वे लोग जो अंग्रेजी ज्ञानका उपयोग रुपया कमानेमें करना चाहते हैं।

इन दोनों वर्गोंको अंग्रेजी भाषाका उत्कृष्ट ज्ञान एक वैकल्पिक विषयके रूपमें देनेमें कोई हर्ज नहीं। उनके लिए इसकी सुविधा तक कर देना जरूरी है। पढ़ाईके इस क्रममें भी शिक्षाका माध्यम तो मातृ-भाषा ही रहेगी। आचार्य ध्रुवको भय है कि यदि हमारी पूरी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजीके माध्यमसे न हुई और हमने उसे केवल विदेशी भाषाके रूपमें पढ़ा, तो जैसा हाल फारसी, संस्कृत और ऐसी ही अन्य भाषाओंका होता है, वैसा ही अंग्रेजीका भी होगा। मुझे आदरके साथ कहना चाहिए कि इस विचारमें कुछ दोष हैं। वहुतसे अंग्रेज अपनी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजीमें होनेपर भी फ्रेंच आदि भाषाओंका ऊँचा ज्ञान प्राप्त करते हैं और उनका अपने काममें पूरा उपयोग कर सकते हैं। भारतमें ऐसे भारतीय मौजूद हैं, जिन्होंने अंग्रेजीमें शिक्षा पाई है, परन्तु फ्रेंच और अन्य भाषाओंपर भी उनका असाधारण अधिकार है। सच तो यह है कि जब अंग्रेजी अपनी जगह रहेगी और मातृ-भाषा अपना पद ले लेगी, तब हमारे मस्तिष्क जो अभी रुँधे हुए हैं, वन्धनमुक्त हो जायेंगे। और जब हमारा मस्तिष्क शिक्षित तथा सुसंस्कृत होनेपर भी ताज़ा होगा तब उसे अंग्रेजी भाषाका ज्ञान प्राप्त करनेका बोझ भारी नहीं लगेगा। मेरा तो यह भी विश्वास है कि उस समयका अंग्रेजीका अध्ययन हमारे आजके अंग्रेजीके अध्ययनसे ज्यादा उपयुक्त होगा, और वुद्धि प्रखर होनेके कारण उसका उपयोग अधिक अच्छा हो सकेगा। लाभालाभके विचारसे यह मार्ग सभी अर्थोंका साधक मालूम होगा।

जब हम मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा पाने लगेंगे, तब हमारे घरके लोगोंके साथ हमारा दूसरा ही सम्बन्ध रहेगा। आज हम अपनी स्त्रियोंको अपनी सच्ची जीवन-सहचरी नहीं बना सकते। उन्हें हमारे कामोंका बहुत कम ज्ञान होता है। हमारे माता-पिताको हमारी पढ़ाईके सम्वन्धमें कोई जानकारी नहीं होती। यदि हम अपनी भाषाके जरिये उच्च-शिक्षा प्राप्त करें तो हम अपने धोबी, नाई और भंगी सभीको सहज ही शिक्षा दे सकेंगे। विलायतमें हजामत वनवाते हुए हम नाईके साथ राजनीतिकी चर्चा कर सकते हैं। यहाँ तो हम अपने कुटुम्वमें भी ऐसी चर्चा नहीं कर सकते। इसका कारण यह नहीं है कि हमारे कुटुम्वी या नाई अज्ञानी हैं। उस अंग्रेज नाईके बराबर ज्ञानी तो ये भी हैं। इनके साथ हम महाभारत, रामायण और तीर्थोंकी वातें करते हैं, क्योंकि लोक-शिक्षण इसी दिशामें प्रवाहित होता है। परन्तु स्कूलकी शिक्षा घर तक नहीं पहुँच पाती, क्योंकि अंग्रेजीमें पढ़ी हुई बातें हम अपने कुटुम्बियोंको बतानेमें असमर्थ रह जाते हैं।

आजकल हमारी धारासभाओंका सारा कामकाज अंग्रेजीमें होता है। बहुतेरी संस्थाओंका भी यही हाल है। इससे विद्या-धन कंजूसकी दौलतकी तरह गड़ा हुआ पड़ा रहता है। अदालतोंमें भी यही दशा है। न्यायाधीश [मुकदमोंके दौरान] अनेक

शिक्षाप्रद बातें कहते रहते हैं। सम्बन्धित व्यक्ति उन्हें सुनकर लाभ भी उठा सकते हैं, परन्तु न्यायाधीशकी आखिरी शुष्क आज्ञाके सिवा कोई अन्य बात उनके पल्ले नहीं पड़ती। वे अपने वकीलों तक की जिरह नहीं सुन सकते। अंग्रेजीके माध्यमसे चिकित्सा-शास्त्रका ज्ञान पाये डॉक्टरोंकी भी यही दशा है। वे रोगीको जरूरी ज्ञान नहीं दे सकते। उन्हें तो शरीरके अवयवोंके गुजराती नाम भी नहीं आते। इसलिए अधिकतर दवाका नुसखा लिख देनेके सिवा रोगीके साथ उनका और कोई सम्बन्ध नहीं रहता। भारतमें पहाड़ोंकी चोटियोंसे चौमासेमें पानीके जो प्रपात गिरते हैं, उनसे हम अपने अविचारके कारण कोई लाभ नहीं उठाते। हम नित्य लाखों रुपयेकी सोने-जैसी कीमती खाद पैदा करते हैं, किन्तु उसका उचित उपयोग नहीं करते और फलतः रोग मोल लेते हैं। इसी तरह हम अंग्रेजी भाषाके बोझसे कुचले हुए लोग दूरदर्शिताके अभावमें ऊपर लिखे अनुसार जनसाधारणको जो कुछ देना चाहिए, उसे उनको नहीं दे पाते। इस कथनमें अतिशयोक्ति नहीं है। उससे केवल मेरी तीव्र भावना प्रकट होती है। हम मातृ-भाषाका जो अनादर करते रहे हैं, उसका हमें भारी प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। इससे जनसाधारणका बड़ा नुकसान हुआ है। इस नुकसानसे उसे बचाना मैं पढ़े-लिखे लोगोंका पहला फर्ज समझता हूँ।

जो नरसी मेहताकी[१] भाषा है, जिसमें नन्दशंकरने अपना 'करणघेलो[२]' उपन्यास लिखा, जिसमें नवलराम[३], नर्मदाशंकर[४], मणिलाल[५], मलबारी[६] आदि लेखक अपना साहित्य लिख गये हैं, जिस भाषामें स्व० राजचन्द्र[७] कविने अमृतवाणी सुनाई है, हिन्दू, मुसलमान और पारसी जातियाँ जिस भाषाकी सेवा करती हैं, जिसके बोलनेवालोंमें पवित्र साधु-सन्त हो चुके हैं, जिस भाषाको बोलनेवालोंमें धन भी प्रचुर है और जिनमें जहाजों द्वारा परदेशोंमें व्यापार करनेवाले व्यापारी भी हैं, जिसमें मुलू माणिक[८] और जोधा माणिककी[९] बहादुरीकी प्रतिध्वनि काठियावाड़के बरड़ा पहाड़में आज भी गूँजती है, उस भाषाके विकासकी सीमा नहीं बाँधी जा सकती। ऐसी भाषाके द्वारा गुजराती लोग शिक्षा भी न लें, तो उनसे भला और क्या होगा? इस प्रश्नपर विचार करना पड़े यही बड़े दुःखकी बात है।

इस विषयको समाप्त करते हुए मैं आप सबका ध्यान डॉक्टर प्राणजीवन मेहता द्वारा लिखे लेखोंकी तरफ खींचता हूँ। उनका गुजराती अनुवाद प्रकाशित हो चुका

१. १४१४–७९; गुजरातके सन्त कवि। उनकी एक रचना "वैष्णव जन तो तेने कहिए" गांधीजीको अत्यन्त प्रिय थी।

२. गुजराती साहित्यका प्रथम उपन्यास जिसमें गुजरातके अन्तिम स्वतन्त्र हिन्दू राजाकी कहानी है।

३. नवलराम लक्ष्मीशंकर पंड्या (१८३६–१८८८); गुजराती साहित्यकार।

४. १८३३–१८८९; सुप्रसिद्ध गुजराती कवि व लेखक।

५. गांधीजीके मित्र रेवाशंकर झवेरीके पुत्र, गुजराती विचारक व लेखक।

६. बहरामजी मेरवानजी मलबारी (१८५४–१९१२); कवि, पत्रकार और समाज सुधारक।

७. राजचन्द्र रावजीभाई मेहता; जैन दार्शनिक विचारक, कवि और जौहरी, देखिए **आत्मकथा**, भाग २, अध्याय १।

८. व ९. प्रसिद्ध बागी सरदार; इन्होंने ब्रिटिश राज्यकी स्थापनाका विरोध किया था।

है। मैं आपको उन्हें पढ़ जानेकी सलाह देता हूँ। उनमें उक्त मतके समर्थक बहुतसे विचार मिलेंगे।

यदि हमें यह विश्वास हो गया है कि मातृ-भाषाको शिक्षाका माध्यम बनाना अच्छा है, तो हमें यह सोचना चाहिए कि उस विश्वासपर अमल करनेके लिए क्या उपाय किये जायें। दलीलें दिये बिना मुझे जो उपाय सूझते हैं, उन्हें सामने रखता हूँ :

१. अंग्रेजी जाननेवाले गुजराती, जानबूझकर या अनजाने भी आपसी व्यवहारमें अंग्रेजीका उपयोग न करें।

२. जिन्हें अंग्रेजी और गुजराती दोनोंका अच्छा ज्ञान है, वे अंग्रेजीमें प्राप्त अच्छी उपयोगी पुस्तकें या विचारोंको गुजरातीमें लोगोंके सामने रखें।

३. शिक्षा-समितियाँ [गुजरातीमें सब विषयोंकी] पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराएँ।

४. धनवान लोग जगह-जगह गुजरातीके माध्यमसे शिक्षाके लिए स्कूल खोलें।

५. इसके साथ-साथ परिषदों और शिक्षा-समितियोंको सरकारके पास अर्जी भेजनी चाहिए कि समस्त शिक्षा मातृ-भाषाके माध्यमसे ही दी जाये और अदालतों और धारा-सभाओंका सारा कामकाज गुजरातीमें किया जाये। लोगोंको भी अपना सब काम इसी भाषामें करना चाहिए। आज जो यह रिवाज पड़ गया है कि अंग्रेजी जाननेवालेको ही अच्छी नौकरी मिल सकती है, उसे बदलकर भाषाका भेदभाव रखे बिना नियुक्तियाँ योग्यताके अनुसार की जायें। सरकारको अर्जी भी दी जानी चाहिए कि ऐसे स्कूल खोले जायें, जिनमें सरकारी नौकरोंको गुजराती भाषाका जरूरी ज्ञान दिया जा सके।

इस योजनामें एक आपत्ति दिखाई देगी। वह यह है कि धारासभामें मराठी, सिंधी और गुजराती सदस्य हैं और कर्नाटकके सदस्य भी हो सकते हैं। यह आपत्ति बड़ी तो है, परन्तु इसका निवारण किया जा सकता है। तेलगू लोगोंने इस विषयकी चर्चा शुरू की है और इसमें शक नहीं कि किसी-न-किसी दिन भाषाके अनुसार नये प्रान्त बनाने ही होंगे। परन्तु तबतक धारासभाके सदस्योंको हिन्दीमें या अपनी मातृ-भाषामें बोलनेका अधिकार दिया जाना चाहिए। यह सुझाव आज हास्यास्पद मालूम हो, तो माफी माँगकर इतना ही कहूँगा कि बहुतसे सुझाव शुरूमें हास्यास्पद ही मालूम होते हैं। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि देशकी उन्नति शिक्षाके माध्यमके सही निर्णयपर निर्भर है। इसलिए मुझे अपने सुझावमें बहुत सार मालूम होता है। जब मातृभाषाकी कीमत बढ़ेगी और उसे राजभाषाका पद मिलेगा, तब उसमें वे शक्तियाँ देखनेको मिलेंगी, जिनकी हमें कल्पना भी नहीं हो सकती।

जैसे हमें शिक्षाके माध्यमका विचार करना पड़ा, वैसे ही हमें राष्ट्रभाषाका भी विचार करना चाहिए। यदि अंग्रेजी राष्ट्रभाषा बनाई जाये तो उसे अनिवार्य स्थान दिया जाना चाहिए।

क्या अंग्रेजी राष्ट्रभाषा हो सकती है? कुछ देशभक्त विद्वानोंका कहना है कि अंग्रेजी राष्ट्रभाषा बनाई जा सकती है या नहीं, यह प्रश्न ही अज्ञानावस्थाका सूचक है। अंग्रेजी तो राष्ट्रभाषा बन चुकी है। हमारे वाइसरॉय महोदयने[1] जो भाषण दिया

१. लॉर्ड चैम्सफोर्ड (१८६८–१९३३); भारतके वाइसरॉय १९१६–२१।

है, उसमें उन्होंने केवल ऐसी आशा ही प्रकट की है। उनका उत्साह उन्हें उपर्युक्त श्रेणीमें नहीं ले जाता। वाइसरॉय आशा करते हैं कि अंग्रेजी भाषा दिन-प्रतिदिन इस देशमें फैलेगी, हमारे परिवारोंमें प्रवेश करेगी और अन्तमें राष्ट्रभाषाके ऊँचे पदपर पहुँचेगी। ऊपर-ऊपरसे देखें तो आज इस विचारका समर्थन किया जा सकता है। हमारे पढ़े-लिखे लोगोंकी दशाको देखते हुए ऐसा मालूम पड़ता है कि अंग्रेजीके बिना हमारा कारबार बन्द हो जायेगा। तिसपर भी यदि हम जरा गहराईसे देखें, तो पता चलेगा कि अंग्रेजी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती, और न उसका प्रयत्न किया जाना चाहिए।

तब राष्ट्रभाषाके क्या लक्षण होने चाहिए? इसपर विचार करें:

१. वह भाषा सरकारी नौकरोंके लिए आसान होनी चाहिए।

२. उस भाषाके द्वारा भारतका आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक काम-काज शक्य होना चाहिए।

३. उस भाषाको भारतके ज्यादातर लोग बोलते हों।

४. वह भाषा राष्ट्रके लिए आसान होनी चाहिए।

५ उस भाषाका विचार करते समय क्षणिक या अस्थायी स्थितिपर जोर न दिया जाये।

अंग्रेजी भाषामें इनमें से एक भी लक्षण नहीं है।

पहला लक्षण मुझे अन्तमें रखना चाहिए था। परन्तु मैंने उसे पहले रखा है, क्योंकि वह लक्षण अंग्रेजी भाषामें दिखाई पड़ सकता है। ज्यादा सोचनेपर हम देखेंगे कि आज भी राज्यके नौकरोंके लिए वह भाषा आसान नहीं है। यहाँके शासनका ढाँचा इस तरहका सोचा गया है कि अंग्रेज कम होंगे, यहाँ तक कि अन्तमें वाइसरॉय और दूसरे अंग्रेज अँगुलियोंपर गिनने लायक रहेंगे। अधिकतर कर्मचारी आज भी भारतीय हैं और वे दिन-दिन बढ़ते ही जायेंगे। यह तो सभी मानेंगे कि इस वर्गके लिए अंग्रेजी भारतकी किसी भी भाषासे ज्यादा कठिन है।

दूसरे लक्षणपर विचार करते समय हम देखते हैं कि जबतक जनसाधारण अंग्रेजी बोलनेवाले न हो जायें, तबतक हमारा धार्मिक व्यवहार अंग्रेजीमें नहीं चल सकता। इस हदतक अंग्रेजी भाषाका समाजमें फैल जाना असम्भव मालूम होता है।

तीसरा लक्षण अंग्रेजीमें नहीं हो सकता, क्योंकि वह भारतके अधिकतर लोगोंकी भाषा नहीं है।

चौथा लक्षण भी अंग्रेजीमें नहीं है, क्योंकि सारे राष्ट्रके लिए वह इतनी आसान नहीं है।

पाँचवें लक्षणपर विचार करते समय हम देखते हैं कि अंग्रेजी भाषाकी आज जो शक्ति है वह क्षणिक है। स्थायी स्थिति तो यह है कि भारतमें सार्वजनिक कामोंमें अंग्रेजी भाषाकी जरूरत सदा कम रहेगी। अंग्रेजी साम्राज्यसे व्यवहार करनेमें अवश्य उसकी जरूरत पड़ेगी; अर्थात् वह साम्राज्यके अन्तर्गत पारस्परिक राजनैतिक व्यवहार [डिप्लोमेसी]की भाषा होगी, यह सवाल जुदा है। उसके लिए अंग्रेजी जरूर रहे। हमें अंग्रेजी भाषासे कुछ भी द्वेष नहीं है। हमारा आग्रह तो इतना ही है कि उसे मर्यादासे

बाहर न जाने दिया जाये। साम्राज्यकी भाषा तो अंग्रेजी ही होगी और इसलिए हम अपने मालवीयजी, शास्त्रियर, बनर्जी जैसे लोगोंके लिए इसको पढ़ना अनिवार्य कर देंगे और यह विश्वास रखेंगे कि ये लोग विदेशोंमें भारतकी कीर्ति फैलायेंगे। परन्तु राष्ट्रकी भाषा अंग्रेजी नहीं हो सकती। अंग्रेजीको राष्ट्रभाषा बनाना कृत्रिम विश्वभाषा [एस्पेरेंटो] दाखिल करने जैसी बात है। अंग्रेजी राष्ट्रभाषा हो सकती है, यह कल्पना उसी प्रकार हमारी कमजोरीकी सूचक है जिस प्रकार एस्पेरेंटोको विश्वभाषा बनानेका प्रयत्न अज्ञानका सूचक है।

तब कौन-सी भाषा उन पाँच लक्षणोंसे युक्त है? यह माने बिना काम चल ही नहीं सकता कि हिन्दी भाषामें ये सारे लक्षण मौजूद हैं।

हिन्दी भाषा मैं उसे कहता हूँ, जिसे उत्तरमें हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या फारसी (उर्दूकी) लिपिमें लिखते हैं। इस व्याख्याका थोड़ा विरोध किया गया है।

ऐसी दलील दी जाती है कि हिन्दी और उर्दू दो अलग भाषाएँ हैं। यह दलील सही नहीं है। उत्तर भारतमें मुसलमान और हिन्दू दोनों एक ही भाषा बोलते हैं। भेद पढ़े-लिखे लोगोंने डाला है। इसका अर्थ यह है कि हिन्दू शिक्षित-वर्गने हिन्दीको केवल संस्कृतमय बना दिया है। इस कारण कितने ही मुसलमान उसे समझ नहीं सकते। लखनऊके मुसलमान भाइयोंने उस उर्दूमें फारसी भर दी है और उसे हिन्दुओंके समझनेके अयोग्य बना दिया है। ये दोनों केवल पण्डिताऊ भाषाएँ हैं और उनको जनसाधारणमें कोई स्थान प्राप्त नहीं है। मैं उत्तरमें रहा हूँ, हिन्दू-मुसलमानोंके साथ खूब मिला-जुला हूँ, और मेरा हिन्दी भाषाका ज्ञान बहुत कम होनेपर भी मुझे उन लोगोंके साथ व्यवहार रखनेमें जरा भी कठिनाई नहीं हुई है। जिस भाषाको उत्तरी भारतमें आम-लोग बोलते हैं, उसे चाहे उर्दू कहें चाहे हिन्दी दोनों एक ही भाषाकी सूचक हैं। यदि उसे फारसी लिपिमें लिखिये तो वह उर्दू भाषाके नामसे पहचानी जायेगी और नागरी लिपिमें लिखें तो वह हिन्दी कहलायेगी।

अब रहा लिपिका झगड़ा। अभी कुछ समय तक तो मुसलमान लड़के फारसी लिपिमें अवश्य लिखेंगे और हिन्दू अधिकतर देवनागरीमें लिखेंगे। 'अधिकतर' इसलिए कहता हूँ कि हजारों हिन्दू आज भी अपनी हिन्दी फारसी लिपिमें लिखते हैं और कितने ही तो देवनागरी लिपि नहीं जानते। अन्तमें जब हिन्दू-मुसलमानोंमें एक दूसरेके प्रति तनिक भी सन्देहकी भावना नहीं रह जायेगी और अविश्वासके सारे कारण दूर हो जायेंगे, तब जिस लिपिका ज्यादा जोर रहेगा, वह लिपि ज्यादा लिखी जायेगी और वही राष्ट्रीय लिपि हो जायेगी। इस बीच जिन मुसलमान भाइयों और हिन्दुओंको फारसी लिपिमें अर्जी लिखनी होगी, उनकी अर्जी सरकारी कार्यालयोंमें स्वीकार की जानी चाहिए।

इन पाँच लक्षणोंसे युक्त हिन्दीकी होड़ करनेवाली और कोई भाषा नहीं है। हिन्दीके बाद दूसरा दर्जा बँगलाका है। फिर भी बंगाली लोग बंगालके बाहर हिन्दीका ही उपयोग करते हैं। हिन्दी-भाषी जहाँ जाते हैं, वहाँ हिन्दीका ही उपयोग करते हैं और इससे किसीको अचम्भा नहीं होता। हिन्दी-भाषी धर्मोपदेशक और उर्दू-भाषी मौलवी

सारे भारतमें अपने भाषण हिन्दीमें ही देते हैं और अपढ़ जनसाधारण उन्हें समझ लेते हैं। जहाँ अपढ़ गुजराती भी उत्तरमें जाकर थोड़ी-वहुत हिन्दीका उपयोग कर लेता है, वहाँ उत्तरका 'भैया' बम्बईके सेठकी नौकरी करते हुए भी गुजराती बोलनेसे इनकार करता है और सेठ 'भैया' के साथ टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेता है। मैंने देखा है कि ठेठ द्रविड़ प्रान्तमें भी हिन्दीकी आवाज सुनाई देती है। यह कहना ठीक नहीं कि मद्रासमें तो अंग्रेजीसे ही काम चलता है। वहाँ भी मैंने अपना सारा काम हिन्दीसे चलाया है। सैकड़ों मद्रासी मुसाफिरोंको मैंने दूसरे लोगोंसे हिन्दीमें बातचीत करते सुना है। इसके सिवा, मद्रासके मुसलमान भाई तो हिन्दी भाषा अच्छी तरह जानते हैं। यहाँ यह ध्यानमें रखना चाहिए कि सारे भारतके मुसलमान उर्दू बोलते हैं और उनकी संख्या सब प्रान्तोंमें कुछ कम नहीं है।

इस तरह हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा बन चुकी है। हमने वर्षों पहले उसका राष्ट्रभाषाके रूपमें उपयोग किया है। उर्दू भी हिन्दीकी इस शक्तिसे ही पैदा हुई है।

मुसलमान बादशाह फारसी अथवा अरबीको भारतकी राष्ट्रभाषा नहीं बना सके। उन्होंने हिन्दीके व्याकरणको मानकर फारसी लिपिको अपनाया और फारसी शब्दोंका ज्यादा उपयोग किया। परन्तु वे जनसाधारणके साथ विदेशी भाषासे व्यवहार नहीं चला सके। यह हालत अंग्रेज अधिकारियोंसे छिपी हुई नहीं है। जिन्हें सैनिक प्रशासन-का अनुभव है, वे जानते हैं कि जवानोंके लिए हिन्दी या उर्दू पारिभाषिक शब्द बनाने पड़े हैं।

मद्रासके शिक्षित-वर्गके लिए इस मामलेमें कुछ कठिनाई है, फिर भी हम देखते हैं कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है।

महाराष्ट्री, सिन्धी, गुजराती और बंगाली लोगोंके लिए तो वह बड़ी आसान है। वे कुछ महीनोंमें हिन्दीपर अच्छा अधिकार प्राप्त कर सकते हैं, उसमें राष्ट्रीय काम-काज चला सकते हैं। तमिल भाइयोंके लिए यह उतनी सहल नहीं है। तमिल और अन्य दक्षिणी भाषाएँ द्रविड़ वर्गकी पृथक् भाषाएँ हैं और उनकी बनावट तथा उनका व्याकरण संस्कृतसे अलग ही है। कुछ शब्दोंकी एकताके सिवा कोई अन्य एकता संस्कृतज भाषाओं और द्रविड़ भाषाओंमें नहीं पाई जाती। परन्तु यह कठिनाई सिर्फ आजके पढ़े-लिखे लोगों तक ही सीमित है। हमें उनके देश-प्रेमपर भरोसा करने और उनसे विशेष प्रयत्नसे हिन्दी सीख लेनेकी आशा करनेका अधिकार है। यदि भविष्यमें हिन्दीको राष्ट्रभाषाका स्थान दिया जाता है तो हर मद्रासी स्कूलमें हिन्दी पढ़ाई जायेगी और मद्रासका दूसरे प्रान्तोंसे विशेष परिचय होनेकी सम्भावना बढ़ जायेगी। अंग्रेजी भाषा द्रविड़ जनतामें प्रवेश नहीं पा सकी है। परन्तु हिन्दीको उनमें प्रवेश करनेमें देर नहीं लगेगी; तेलगू भाषी लोग आज ऐसा प्रयत्न कर भी रहे हैं। यदि यह सम्मेलन इस बारेमें राष्ट्रभाषा कैसी होनी चाहिए यह स्थिर कर सके, तब तो इस कामको पूरा करनेके उपाय करनेकी जरूरत भी मालूम होगी। जैसे उपाय मातृ-भाषाके बारेमें बताये गये हैं, वैसे ही आवश्यक परिवर्तनके साथ, राष्ट्रभाषाके बारेमें भी उपयुक्त हो सकते हैं। गुजरातीको शिक्षाका माध्यम बनानेमें खास तौरपर हमको ही प्रयत्न करना पड़ेगा। परन्तु राष्ट्रभाषाके आन्दोलनमें तो सारा भारत भाग लेगा।

हमने शिक्षाके माध्यम, राष्ट्रभाषा और शिक्षामें अंग्रेजीके स्थानके सम्बन्धमें विचार किया। अब हमें यह सोचना बाकी है कि हमारी पाठशालाओंमें दी जानेवाली शिक्षामें कमी है या नहीं।

इस विषयमें कोई मतभेद नहीं है। सरकार और लोकमत सब प्रचलित शिक्षा-पद्धतिको बुरी बताते हैं। इस बारेमें काफी मतभेद है कि इसमें क्या ग्राह्य है और क्या त्याज्य है। इन मतभेदोंपर बहस करने योग्य ज्ञान मुझमें नहीं है। मैं, जो विचार मैंने बनाये हैं, उन्हें इस सम्मेलनके आगे रख देनेकी धृष्टता करता हूँ।

शिक्षा मेरा क्षेत्र नहीं कहा जा सकता। इसलिए मुझे इस विषयमें कुछ भी कहते संकोच होता है। जब कोई अनधिकारी व्यक्ति अपने अधिकारसे बाहर बात करता है, तो मैं उसकी बातका खण्डन करनेके लिए अधीर हो उठता हूँ। यदि कोई वैद्य वकील बननेका प्रयत्न करे, तो वकीलको गुस्सा आना ठीक ही है। इसी तरह मैं मानता हूँ कि शिक्षाके बारेमें जिसे कुछ भी अनुभव न हो उसे उसकी टीका करनेका कोई अधिकार नहीं है। इसलिए पहले मुझे दो शब्द अपने अधिकारके बारेमें कहने पड़ेंगे।

मैंने आधुनिक शिक्षापर अबसे पच्चीस वर्ष पहले ही विचार करना आरम्भ कर दिया था। मेरे और मेरे भाई-बहनोंके बच्चोंकी शिक्षाकी जिम्मेदारी मुझपर पड़ी। मुझे अपने स्कूलोंकी कमियाँ मालूम थीं, इसलिए मैंने अपने लड़कोंको शिक्षा देते हुए उनपर प्रयोग शुरू किये। मैंने उन्हें इधर-उधर भटकाया भी। मैंने किसीको कहीं, तो किसी-को कहीं भेजा। किसी-किसीको मैंने स्वयं पढ़ाया। मैं दक्षिण आफ्रिका गया। वहाँ भी मेरा असन्तोष ज्योंका-त्यों बना रहा और मुझे इस बारेमें विशेष विचार करना पड़ा। वहाँ भारतीय शिक्षा-संघका[1] कारोबार बहुत समय तक मेरे हाथ में रहा; किन्तु अपने लड़कोंको मैंने स्कूलोंमें शिक्षा नहीं दिलवाई। मेरे सबसे बड़े लड़केने मेरी अलग-अलग अवस्थाएँ देखी थीं। उसने मुझसे निराश होकर कुछ समय तक अहमदाबादके स्कूलमें शिक्षा ली। परन्तु उसे ऐसा नहीं लगा कि उसे इससे लाभ हुआ। मैं ऐसा मानता हूँ कि जिन्हें मैंने स्कूल नहीं भेजा, उनका नुकसान नहीं हुआ है, और उन्हें अच्छी शिक्षा मिली है। उनकी कमी भी मैं जानता हूँ, परन्तु कमीका कारण यही है कि वे मेरे प्रयोगोंकी शुरूआतमें पल-पुसकर बड़े हुए, इसलिए उनपर सारे प्रयोगोंमें दृष्टिकी एकताके बावजूद उसमें किये गये परिवर्तनोंका प्रभाव पड़ा। दक्षिण आफ्रिकामें सत्याग्रहके समय कभी मेरे पास लगभग पचास लड़के पढ़ते थे।[2] इस स्कूलकी रचना अधिकतर मेरे हाथों हुई थी। उसका सम्बन्ध दूसरे स्कूलों या सरकारी शिक्षा-पद्धतिसे नहीं था। यहाँ भी ऐसा ही प्रयत्न चल रहा है और मैंने आचार्य ध्रुव और दूसरे विद्वानोंका आशीर्वाद लेकर अहमदाबादमें एक राष्ट्रीय स्कूल खोला है। उसे पाँच महीने हुए हैं। उसके प्रिंसिपल गुजरात कॉलेजके भूतपूर्व प्रोफेसर सांकलचन्द शाह हैं। उन्होंने प्रोफेसर गज्जरकी देखरेखमें शिक्षा पाई है और उनके साथ दूसरे भी भाषाप्रेमी लोग हैं। इस योजनाके लिए मुख्य रूपसे मैं जिम्मेदार हूँ। परन्तु

१. यहाँ नेटाल भारतीय शिक्षा संघकी ओर संकेत है। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३३४ और **दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास**, अध्याय ६।

२. फीनिक्सकी पाठशालामें; देखिए खण्ड ९, पृष्ठ १२३, १३७-४१।

उसमें इन सब शिक्षकोंकी सहमति है और उन्होंने केवल अपनी जरूरतके लायक वेतन लेकर इस कामके निमित्त अपना जीवन अर्पण किया है। परिस्थितिवश मैं स्वयं इस स्कूलमें पढ़ानेका काम नहीं कर सकता, परन्तु मेरा ध्यान उस तरफ हमेशा रहता है। इस तरह मैंने बनाया तो सिर्फ ढांचा ही है, परन्तु मैं समझता हूँ कि वह थोड़ा सोच-विचार कर बनाया गया है। मुझे उम्मीद है कि आप लोग इसे ध्यानमें रखकर मेरी बातोंपर विचार करेंगे।

मुझे सदा ऐसा लगता रहा है कि [आधुनिक शिक्षामें हमारी कौटुम्बिक व्यवस्थापर ध्यान नहीं दिया गया। उसकी रचना करनेमें हमारी जरूरतोंका खयाल रखना स्वाभाविक ही है।]

[मैकॉलेने हमारे साहित्यका तिरस्कार किया, हमें अन्धविश्वासी माना। जिन लोगोंने हमारी शिक्षाकी योजना बनाई, उनमें से अधिकांशको हमारे धर्मके बारेमें गहरा अज्ञान था। कितनों ही ने उसे अधर्म समझा। उन्होंने हमारे धर्मग्रंथोंको अन्धविश्वासोंका समुच्चय माना। उन्हें हमारी सभ्यता दोषपूर्ण मालूम हुई। यह समझा गया कि हमारा राष्ट्र अवनत है, और इसलिए हमारी प्रणालियोंमें बहुत दोष होने चाहिए। इससे शुद्ध भावना होते हुए भी उन्होंने प्रणाली गलत बनाई। चूंकि रचना नई करनी थी, इसलिए प्रयोजकोंने तत्कालीन स्थितियोंका ही ध्यान रखा। सारी योजना इस खयालको आगे रखकर बनाई कि उन्हें अपनी मददके लिए वकीलों, डॉक्टरों और क्लर्कोंकी जरूरत होगी और हम सबको नये ज्ञानकी जरूरत होगी। इसलिए हमारे जीवनका विचार किये बिना पुस्तकें तैयार की गईं और जैसी कि अंग्रेजीमें कहावत है, 'गाड़ीके पीछे घोड़ा जोत दिया गया।']

[मलबारीने कहा है कि इतिहास-भूगोल पढ़ाना हो, तो पहले बच्चोंको घरका इतिहास-भूगोल सिखाना चाहिए। मुझे याद है कि मुझे इंग्लैण्डकी 'काउण्टियों' को रटना पड़ा था और भूगोल-जैसा दिलचस्प विषय मेरे लिए जहर हो गया था। इतिहासमें भी मुझे कोई उत्साहप्रद बात नहीं मिली। इतिहास देशपर गर्व अनुभव करना सिखानेका साधन होता है। मुझे इतिहास सिखानेकी अपने स्कूलकी पद्धतिमें इस देशके बारेमें गर्व अनुभव करनेका कोई कारण नहीं मिला। उसके लिए मुझे दूसरी ही किताबें पढ़नी पड़ीं।

अंकगणित और अन्य विषयोंके शिक्षणमें भी देशी-पद्धतिको कम स्थान दिया गया है। पुरानी पद्धति लगभग छोड़ ही दी गई है। हिसाब सिखानेकी देशी पद्धति मिट जानेसे हमारे बड़े-बूढ़ोंमें जल्दीसे हिसाब लगा लेनेका जो गुण था, वह हममें नहीं रहा।

विज्ञान नीरस है। उसके ज्ञानसे हमारे बच्चे कोई लाभ उठा ही नहीं सकते। खगोल-जैसे शास्त्र, जो बच्चोंको आकाश दिखाकर सिखाये जा सकते हैं, सिर्फ पुस्तकोंसे पढ़ाये जाते हैं। मैं नहीं समझता कि स्कूल छोड़नेके बाद किसी विद्यार्थीको पानीकी बूंदका विश्लेषण याद रहा होगा।]

[स्वास्थ्यके सम्बन्धमें शिक्षा दी ही नहीं जाती, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है। साठ सालकी शिक्षाके बाद भी हमें हैजा, प्लेग आदि रोगोंसे बचाव करना नहीं आया है।] हमारे डॉक्टर भी इन रोगोंको दूर नहीं कर सके। मैं इसे अपनी शिक्षा-पद्धतिपर सबसे

बड़ा आक्षेप समझता हूँ। अपने सैकड़ों घरोंको देखनेपर भी मुझे यह अनुभव नहीं हुआ कि उनमें स्वास्थ्यके नियमोंने प्रवेश किया है। साँप काटनेपर क्या किया जाये, यह हमारे स्नातक बता सकेंगे, इसमें मुझे पूरा शक है। यदि हमारे डॉक्टरोंको छोटी उम्रसे ही आरोग्य-शास्त्र सीखनेका मौका मिला होता, तो आज उनकी जो दयनीय अवस्था है, वह न हुई होती। यह हमारी शिक्षाका भयंकर दुष्परिणाम है कि दुनियाके दूसरे सब हिस्सोंके लोगोंने अपने यहाँसे महामारीको निकाल बाहर कर दिया, परन्तु हमारे यहाँ तो वह जड़ें जमाती चली जा रही है और हजारों भारतीय बेमौत मरते जा रहे हैं। यदि इसका कारण हमारी गरीबी बताई जाये, तो इस बातका जवाब भी शिक्षा-विभागकी तरफसे मिलना चाहिए कि साठ सालकी शिक्षाके बाद भी भारतमें गरीबी क्यों है?

अब जिन विषयोंकी शिक्षा ही नहीं दी जाती, उनपर विचार करें। शिक्षाका मुख्य हेतु चरित्रगठन होना चाहिए। धर्मके बिना चरित्र कैसे बन सकता है, यह मेरी समझमें ही नहीं आ सकता। हम 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः' होते जा रहे हैं; इसका भान हमें आगे चलकर होगा। इस बारेमें मैं ज्यादा नहीं कर सकता। लेकिन मैं सैकड़ों शिक्षकोंसे मिला हूँ। उन्होंने गहरे दुःखके साथ मुझे अपने अनुभव सुनाये हैं। इस सम्मेलनको इस प्रश्नपर गम्भीरता-पूर्वक विचार करना ही पड़ेगा। यदि विद्यार्थियोंकी नैतिकता चली गई, तो सब कुछ गया समझिए।

जिस देशमें ८५ से ९० फी सदी स्त्री-पुरुष खेतीके धंधेमें लगे हुए हैं, उसमें इस धन्धेका जितना ज्ञान दिया जा सके उतना ही कम है। फिर भी हाई स्कूल तक के हमारे पाठ्यक्रममें उसका कोई स्थान ही नहीं है। ऐसी विषम स्थिति निभ नहीं सकती।

बुनाईका धन्धा नष्ट होता जा रहा है। किसानोंके लिए यह फुरसतका धन्धा था। इस धन्धेको हमारे पाठ्य-क्रममें स्थान प्राप्त नहीं है। हमारी शिक्षासे सिर्फ क्लर्क पैदा होते हैं। और उसका ढंग ऐसा है कि सुनार, लुहार या मोची, जो भी स्कूलके फंदेमें फँस जाते हैं क्लर्क बन जाते हैं। हम सबकी यह कामना होनी चाहिए कि अच्छी शिक्षा सभीको मिले। परन्तु यदि शिक्षित होकर भी क्लर्क बन जायें तो क्या होगा?

हमारी शिक्षामें युद्ध विज्ञानका स्थान नहीं है। मेरे खुदके लिए तो यह दुःखकी बात नहीं है। मैंने तो इसे एक सहज प्राप्त सुख माना है। लेकिन लोग हथियार चलाना सीखना चाहते हैं। जिसे सीखना हो उसे इसका मौका मिलना चाहिए। परन्तु यह तो पाठ्यक्रममें भुला ही दिया गया दीखता है।

संगीतके लिए कहीं स्थान नहीं दीखता। हमपर संगीतका बहुत असर होता है। हम काफी हदतक यह बात भूल गये हैं, नहीं तो हम किसी-न-किसी तरह अपने बच्चोंको संगीत जरूर सिखाते। वेद-मन्त्रोंकी रचना संगीतके आधारपर हुई जान पड़ती है। मधुर संगीत आत्माके तापको शान्त कर सकता है। हजारों लोगोंकी सभामें हमें कभी-कभी कोलाहल सुनाई देता है। हजारों कंठोंसे एक स्वरमें कोई राष्ट्रीय गीत गाया जाये, तो वह कोलाहलके बदले प्रेरणा बन सकता है। हजारों बालक एक स्वरसे वीर रसकी कविता गाकर शौर्य पैदा कर सकते हैं। यह कोई साधारण बात नहीं है। मल्लाह और दूसरे मजदूर मिलकर 'हरिहर', 'अल्लाबेली' जैसे नारे लगाते हैं और

उनके सहारे अपना कठिन काम निभा पाते हैं, यह संगीतकी शक्तिका एक उदाहरण है। अंग्रेज मित्रोंको मैंने गाना गाकर अपनी ठंड भगाते देखा है। हमारे बालक चाहे जब चाहे जैसे नाटकके गाने सीख लेते हैं और हारमोनियम वगैरा बेसुरे बाजे बजाते हैं। इससे उनका बड़ा नुकसान होता है। अगर संगीतकी शुद्ध शिक्षा मिले, तो नाटकके गीत गानेमें और बेसुरे राग अलापनेमें उनका समय नष्ट न हो। जैसे सच्चा गवैया बेसुरा या बेवक्त नहीं गाता, वैसे ही शुद्ध संगीत सीखनेवाला अश्लील गाने नहीं गायेगा। जन-जागृतिके लिए संगीतका उपयोग किया जाना चाहिए। इस विषयपर डॉक्टर आनन्द कुमारस्वामीके[1] विचार मनन करने योग्य हैं।

व्यायाम शब्दमें खेल-कूद वगैराको शामिल किया गया है। परन्तु इसका भी किसीने खयाल नहीं किया। देशी खेल छोड़ दिये गये हैं और टेनिस, क्रिकेट और फुटबालका बोलबाला हो गया है। यह माननेमें कोई हर्ज नहीं कि इन तीनों खेलोंमें रस आता है। परन्तु हम पश्चिमी चीजोंके मोहमें न फँसते, तो इन्हीं जैसे मजेदार तथापि लगभग बिना खर्चके गेंद-बल्ला, गिल्ली-डंडा, खो-खो, मग-माटली, नवनागेली, सात-ताली, कबड्डी, और खारोपाट आदि खेलोंको न छोड़ते। ऐसी कसरत तथा कुश्तीके अखाड़े, जिसमें सभी अंगोंको पूरी-पूरी गति मिलती है और जिसमें बहुतसे लाभ निहित हैं, लगभग मिट गये हैं। मुझे लगता है कि यदि किसी पश्चिमी चीजकी हमें नकल करनी चाहिए तो वह 'ड्रिल' या कवायद है। एक मित्रने टीका की थी कि हमें चलना ही नहीं आता और एक साथ ठीक ढंगसे चलना तो हम बिलकुल नहीं जानते। हजारों आदमी एक ताल और शान्तिसे किसी भी परिस्थितिमें दो-दो, चार-चारकी कतार बनाकर चल सकें, यह योग्यता हममें नहीं है। ऐसी कवायद सिर्फ लड़ाईमें ही काम आती हो सो बात नहीं। परोपकारके बहुतेरे कामोंमें भी कवायद बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। जैसे आग बुझाने, डूबे हुओंको बचाने, बीमारोंको डोलीमें ले जाने आदिमें कवायद बहुत ही कीमती साधन है। इस तरह हमारे स्कूलोंमें देशी खेल, देशी कसरतें, और पश्चिमी ढंगकी कवायद जारी करनेकी जरूरत है।

पुरुषोंकी शिक्षापद्धति जैसी दोषपूर्ण है, वैसी ही स्थिति स्त्रियोंकी शिक्षा-पद्धतिकी भी है। भारतमें स्त्री-पुरुषोंका क्या सम्बन्ध है, स्त्रीका आम समाजमें क्या स्थान है, इन बातोंपर विचार ही नहीं किया गया है।

प्रारम्भिक शिक्षाका बहुत-सा भाग दोनों वर्गोंके लिए समान हो सकता है। इसके सिवा और सब बातोंमें बहुत असमानता है। जैसे कुदरतने पुरुष और स्त्रीमें भेद रखा है, वैसे ही शिक्षामें भी भेदकी आवश्यकता है। संसारमें दोनोंका स्थान समान है। परन्तु उनके कामोंमें बँटवारा पाया जाता है। घरमें राज करनेका अधिकार स्त्रीका है। बाहरकी व्यवस्थाका स्वामी पुरुष है। पुरुष आजीविकाके साधन जुटानेवाला है, स्त्री संग्रह और खर्च करनेवाली है। स्त्री बच्चोंको पालनेवाली है, उनकी विधाता है, उसपर बच्चोंका चरित्र निर्भर है, वह बच्चोंकी शिक्षिका है, इस अर्थमें भी वह

१. १८७७–१९४७; प्राच्यकला और संस्कृतिके मर्मज्ञ-समीक्षक, डांस ऑफ शिव आदि पुस्तकोंके लेखक।

सन्तानकी माता है। पुरुष इस अर्थमें सन्तानका पिता नहीं है। एक खास उम्रके बाद पिताका असर पुत्रपर कम हो जाता है। परन्तु माँ अपना दर्जा कभी नहीं छोड़ती। बच्चा आदमी बन जानेपर भी माँके सामने बच्चेकी तरह व्यवहार करता है। पिताके साथ वह ऐसा सम्बन्ध नहीं रख सकता।

यह योजना स्वाभाविक और ठीक हो, तो स्त्रीके लिए स्वतन्त्र कमाई करनेकी व्यवस्था नहीं होनी चाहिए। जिस समाजमें स्त्रियोंको तार-मास्टर या टाइपिस्ट अथवा कम्पोजीटरका काम करना पड़ता हो, उसकी व्यवस्था बिगड़ी हुई ही होनी चाहिए। उस जातिने अपनी शक्तिका दिवाला निकाल दिया है और वह जाति अपनी पूँजीमें से खर्च करने लगी है, ऐसी मेरी राय है।

इसलिए जिस तरह स्त्रीको अंधेरेमें और हीन दशामें रखना बुरा है, उसी तरह उसे पुरुषके काम सौंपना निर्बलताका सूचक है और उसपर जुल्म करनेके बराबर है।

इसलिए एक खास उम्रके बाद स्त्रियोंके लिए दूसरी ही तरहकी शिक्षाका प्रबन्ध होना चाहिए। उन्हें गृह-व्यवस्था करनेका, गर्भकालमें सावधानी रखनेका, बालकोंका पालन-पोषण करनेका ज्ञान देनेकी जरूरत है। इस योजनाको बनानेका काम बहुत कठिन है। शिक्षाक्रममें यह नया विषय है। इस बारेमें खोज और निर्णय करनेके लिए चरित्रवान् और ज्ञानवान् स्त्रियों तथा अनुभवी पुरुषोंकी समिति नियुक्त करके कोई योजना बनवानेकी जरूरत है।

उपर्युक्त काम करनेवाली समिति कन्याकालसे शुरू होनेवाली शिक्षाका उपाय खोजेगी। परन्तु जिन कन्याओंका बचपनमें ही विवाह हो गया हो, उनकी संख्याका भी तो पार नहीं है। फिर यह संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। विवाहके बाद तो उनका पता ही नहीं चलता। उनके बारेमें मैंने अपने जो विचार 'भगिनी समाज पुस्तकमाला' की पहली पुस्तककी प्रस्तावनामें दिये हैं, उन्हींको यहाँ उद्धृत करता हूँ :

> स्त्री-शिक्षाको हम केवल कन्या-शिक्षासे ही पूरा नहीं कर सकेंगे। सहस्रों लड़कियाँ बारह सालकी उम्रमें ही बाल-विवाहकी बलि चढ़ जाती हैं और हमारी दृष्टिसे ओझल हो जाती हैं। वे गृहिणी बन जाती हैं। यह पापपूर्ण प्रथा जबतक हमारे समाजसे नहीं मिटेगी, तबतक पुरुषोंको स्त्रियोंका शिक्षक बनना सीखना पड़ेगा। उनको इस विषयकी शिक्षा दिये जानेपर अनेक बातोंकी आशा कर सकते हैं। जबतक हमारी स्त्रियाँ हमारे विषयभोगकी सामग्री और रसोई करने-वाली न रहकर हमारी जीवन-सहचरी, अर्धांगिनी और सुख-दुःखकी साझीदार नहीं बनतीं, तबतक हमारे सारे प्रयत्न मिथ्या जान पड़ते हैं। कोई-कोई अपनी स्त्रीको जानवरके बराबर समझते हैं। इस स्थितिके लिए कुछ संस्कृतके वचन और तुलसीदासजीकी यह प्रसिद्ध चौपाई भी बहुत जिम्मेदार है। तुलसीदासजीने एक जगह लिखा है : "ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़नके अधिकारी।" तुलसी-दासजीको मैं पूज्य मानता हूँ। परन्तु मेरी पूजा अंधी पूजा नहीं है। या तो उपर्युक्त चौपाई प्रक्षिप्त है, अथवा यदि वह तुलसीदासजीकी ही है तो उन्होंने उसे बिना विचारे केवल प्रचलित प्रथाके अनुसार जोड़ दिया है। संस्कृत वचनोंके

बारेमें ऐसा कुछ भ्रम व्याप्त पाया है कि संस्कृतमें लिखे श्लोक तो शास्त्र-वचन ही होने चाहिए। यह भ्रम मिटाकर स्त्रियोंको हीन समझनेकी जो प्रथा पड़ी हुई है, हमें उसे जड़से उखाड़ फेंकना होगा। दूसरी तरफ हममें से कितने ही विषयान्ध होकर स्त्रीकी पूजा करते हैं और जैसे हम ठाकुरजीको हर समय नये आभूषणोंसे सजाते हैं, वैसे ही वे स्त्रीको सजाते रहते हैं। इस पूजाकी बुराईसे भी हमें बचना जरूरी है। अन्तमें तो जैसे महादेवके लिए पार्वती, रामके लिए सीता और नलके लिए दमयन्ती थी, वैसे ही जब हमारे लिए हमारी स्त्रियाँ होंगी और वे हमारी बातचीतमें भाग लेंगी, हमारे साथ वाद-विवाद करेंगी, हमारे विचारोंको समझकर उनका पोषण करेंगी, हमारी बाहरी मुसीबतोंको इशारेमें समझकर अपनी अलौकिक शक्तिसे उनको दूर करनेमें भाग लेंगी और हमें शान्ति देंगी, तभी हमारा उद्धार हो सकेगा, उससे पहले नहीं। कन्या-शालाओंसे जल्दी ही ऐसी स्थिति प्राप्त करनेकी सम्भावना बहुत कम है। जबतक बाल-विवाहका फंदा हमारे गलेमें पड़ा है, तबतक पुरुषोंको अपनी स्त्रियोंका शिक्षक बनना पड़ेगा। और उनकी यह शिक्षा केवल अक्षर-ज्ञान तक ही सीमित नहीं होगी; उन्हें धीरे-धीरे राजनीति और समाज-सुधारके विषयोंकी शिक्षा भी दी जा सकती है। ऐसा करनेमें पहले अक्षर-ज्ञानकी जरूरत नहीं पड़ती। इसी तरह पुरुषको अपनी पत्नीके बारेमें अपना रवैया बदलना पड़ेगा। पत्नी जबतक वयस्क न हो जाये तबतक विद्योपार्जन करे और पति उसके साथ ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे। यदि हम एकदम ही जड़ नहीं हो गये हैं तो हम बारह या पन्द्रह सालकी लड़कीपर प्रसवकी महावेदनाका बोझ हर्गिज नहीं डालेंगे। हमारा हृदय ऐसे विचार मात्रसे काँप जाना चाहिए।]

विवाहित स्त्रियोंके लिए वर्ग खोले जाते हैं, उनके लिए भाषण होते हैं। यह सब अच्छा है। इस काममें लोग अपना समय भी देते हैं। यह सब हमारे खातेमें जमाकी ओर लिखा जाता है। परन्तु इसके साथ ही जबतक पुरुष-वर्ग उपरोक्त कर्त्तव्यका पालन नहीं करता, तबतक ऐसा मालूम होता है कि परिणाम बहुत अच्छा नहीं निकलेगा। गहरा विचार करनेपर यह बात सबको स्वयमेव सुस्पष्ट हो जायेगी।

[हम जहाँ-जहाँ नजर डालते हैं, वहाँ-वहाँ दिखाई पड़ता है कि कच्ची नींवपर भारी इमारतें खड़ी की गई हैं। प्रारम्भिक शिक्षाके लिए चुने हुए शिक्षकोंको शिष्टाचारवश भले ही शिक्षक कहा जाये, परन्तु यथार्थमें उन्हें यह नाम देना शिक्षक शब्दका दुरुपयोग करना है। विद्यार्थीकी बाल्यावस्था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। जिस अवस्थामें मिले हुए ज्ञानकी स्मृति अमिट होती है। उसी अवस्थामें उसपर कमसे-कम ध्यान दिया जाता है और वह चाहे जैसी सामान्यसे सामान्य पाठशालामें डाल दिया जाता है। मेरी समझमें कॉलेजों और हाईस्कूलोंमें साज-सामानपर इतना खर्च किया जाता है कि उसे यह गरीब देश नहीं उठा सकता। इसके विपरीत यदि प्रारम्भिक शिक्षा सुशिक्षित, प्रौढ़ और सदाचारी शिक्षकों द्वारा ऐसी जगह दी जाती हो जहाँ सृष्टि-सौन्दर्यका

खयाल रखा गया हो, तथा स्वास्थ्यकी सँभाल रखी जाती हो तो कुछ समयमें ही इसके बहुत अच्छे नतीजे देखे जा सकते हैं। ऐसा परिवर्तन करनेके लिए यदि आजके शिक्षकोंका माहवारी वेतन दुगुना कर दिया जाये, तो भी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। बड़े परिणाम ऐसे छोटे परिवर्तनसे पैदा नहीं हो सकते। प्रारम्भिक शिक्षाका स्वरूप ही बदला जाना चाहिए। मैं जानता हूँ कि यह बहुत कठिन बात है और इसमें बाधाएँ भी बहुत हैं। फिर भी इसका हल गुजरात शिक्षा मण्डलकी शक्तिके बाहर नहीं होना चाहिए।

यहाँ यह कहना शायद जरूरी है कि मेरा उद्देश्य प्राथमिक स्कूलोंके शिक्षकोंके दोष बताना नहीं है। ये लोग अपनी शक्तिसे बाहर जो काम करके नतीजे दिखा पाते हैं, मेरी धारणा है कि उसका कारण हमारी सुन्दर सभ्यता है। यदि इन्हीं शिक्षकोंको पूरा प्रोत्साहन मिले तो जो नतीजा निकलेगा उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य होनी चाहिए या नहीं, इस बारेमें मैं कुछ भी कहना ठीक नहीं समझता। मेरा अनुभव कम है। इसके सिवा, जब किसी भी तरहका कर्त्तव्य लोगोंपर लादना मुझे ठीक नहीं मालूम होता तब यह अतिरिक्त कर्त्तव्य उन-पर कैसे डाला जाये। मुझे यह बात खटकती रहती है। इस समय हम शिक्षाको मुफ्त और ऐच्छिक रखकर उसके प्रयोग करें, तो यह अधिक समयानुकूल होगा। जबतक हम 'जो हुक्म' के जमानेसे गुजर नहीं जाते, तबतक शिक्षाको अनिवार्य करनेमें मुझे कई बाधाएँ दिखाई देती हैं। यह विचार करते समय महाराजा गायकवाड़की सर-कारका अनुभव कुछ हदतक सहायक हो सकता है। मेरी जाँचका नतीजा अनिवार्य शिक्षाके खिलाफ है; परन्तु वह जाँच नहींके बराबर है इस कारण उसपर जोर नहीं दिया जा सकता। मैं आशा करता हूँ कि इस विषयपर सम्मेलनमें आये हुए सदस्य हमें कीमती जानकारी देंगे।

मेरा यह विश्वास है कि अर्जियाँ देना इन सब दोषोंको दूर करनेका राजमार्ग नहीं है। शासक सहसा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं कर सकते। यह साहस लोक-नेताओंको ही करना चाहिए। अंग्रेजोंके संविधानमें लोकसाहसका विशेष स्थान है। यदि हम यही सोचें कि सरकारके किये ही सब कुछ होगा, तो हमें अपना सोचा हुआ काम करनेमें सम्भवतः युग बीत जायेंगे। इंग्लैण्डकी तरह यहाँ भी सरकारसे प्रयोग करानेके पहले हमें स्वयं प्रयोग करके बताना चाहिए। जिसे जिस दिशामें कमी दीखे, वह उसी दिशामें कमी दूर करे और अच्छे नतीजे निकालकर दिखाये। वह तभी सरकारसे परिवर्तन करा सकता है। ऐसे साहसके लिए देशमें शिक्षाकी कई विशेष संस्थाएँ कायम करनेकी जरूरत है।

इसमें एक बहुत बड़ी बाधा है हमारा 'डिग्री' का मोह। हम समझते हैं कि हमारा सम्पूर्ण जीवन परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर निर्भर करता है। इससे जनताकी बड़ी हानि होती है। हम यह भूल जाते हैं कि 'डिग्री' सिर्फ सरकारी नौकरी करने-वाले लोगोंके ही कामकी चीज है। परन्तु जनताकी इमारत कोई नौकरीपेशा लोगों-पर थोड़े ही खड़ी करनी है। हम अपने चारों तरफ देखते हैं कि बिना नौकरीके तमाम लोग बहुत अच्छी तरह जीविकोपार्जन कर सकते हैं। यदि अपढ़ लोग अपनी होशियारीसे करोड़पति हो सकते हैं, तो पढ़े-लिखे लोग क्यों नहीं हो सकते? यदि

पढ़े-लिखे लोग डर छोड़ दें, तो उनमें अपढ़ लोगोंके वरावर सामर्थ्य तो जरूर आ सकता है।

यदि 'डिग्री' का मोह दूर कर दिया जाये तो देशमें गैरसरकारी पाठशालाएँ बहुत चल सकती हैं। कोई भी शासन जनताकी सारी शिक्षाको नहीं चला सकता। अमरीकामें तो वह मुख्यतः गैरसरकारी संस्थाओंके वलपर ही चलती है। इंग्लैण्डमें भी अनेक संस्थाएँ इसी प्रकार अपने वलपर चलती हैं। वे अपने ही प्रमाणपत्र भी देती हैं।

इस शिक्षाको मजवूत बुनियादपर खड़ा करनेके लिए भगीरथ-प्रयत्न करना पड़ेगा। इसमें तन, मन, धन और आत्मा सब कुछ लगाना होगा।

मुझे ऐसा लगा है कि अमरीकासे हम वहुत नहीं सीख सकते। परन्तु उनकी एक वात तो अनुकरणीय है; वहाँकी वड़ी-वड़ी शिक्षा संस्थाएँ एक वड़े ट्रस्टके जरिये चलाई जाती हैं। उसमें धनवान लोगोंने करोड़ों रुपया दान दिया है। उसकी तरफसे वहुत-सी गैरसरकारी पाठशालाएँ चलाई जाती हैं। उसमें जैसे यह रुपया इकट्ठा हुआ है, वैसे ही शरीर सम्पत्तिके धनी, देशप्रेमी और विद्वान् लोग भी इकट्ठे हुए हैं। वे सारी संस्थाओंकी जाँच करते हैं और उनकी रक्षा करते हैं। उन्हें जहाँ जितना ठीक लगता है, वहाँ उतनी मदद देते हैं। एक निश्चित विधान और नियमावलीको माननेवाली संस्थाओंको यह मदद सहज ही मिल सकती है। इस ट्रस्टकी तरफसे उत्साहके साथ किये गये आन्दोलनके परिणामस्वरूप अमरीकाके बूढ़े किसानोंको भी खेतीकी नई खोजोंसे सम्वन्धित ज्ञान मिला है। ऐसी ही कोई योजना गुजरातमें भी चलाई जा सकती है। यहाँ धन है, विद्वत्ता है और धर्मवृत्ति भी मिटी नहीं है। वच्चे तो विद्याकी राह देख ही रहे हैं। ऐसा साहस किया जाये, तो कुछ ही वर्षोंमें हम सरकारको वता सकते हैं कि हमारा प्रयत्न सच्चा है। फिर सरकार उसपर अमल करनेमें नहीं चूकेगी। हमारा करके दिखाया हुआ काम अर्जियोंसे कहीं ज्यादा सफल होगा।

उपर्युक्त सुझावमें गुजरात शिक्षा मण्डलके दूसरे दो उद्देश्योंका अवलोकन आ जाता है। इस प्रकारके ट्रस्टकी स्थापनासे शिक्षा-प्रचारका लगातार आन्दोलन होगा और शिक्षाका व्यावहारिक काम होगा। लेकिन, यह काम हो गया तो समझिए कि फिर सब-कुछ हो जायेगा। इसलिए यह काम आसान नहीं हो सकता। सरकारकी तरह धनवान् लोग भी जगानेसे ही जागते हैं। उन्हें जगानेका एक ही साधन है। वह है तपस्या। तपस्या धर्मका पहला और अन्तिम चरण है। मैं समझता हूँ कि गुजरात शिक्षा मण्डल तपस्याकी प्रतिमूर्ति है। उसके मन्त्रियों और सदस्योंमें परोपकार-वृत्ति रहे और वे विद्वान् भी हों तो लक्ष्मी वहाँ अपने-आप चली आयेगी। धनवान् लोगोंके मनमें सदा सन्देह रहता है। सन्देहके कारण भी होते हैं। इसलिए यदि हम लक्ष्मीदेवीको खुश करना चाहते हैं, तो [उसके लिए] हमें अपनी पात्रता सिद्ध करनी पड़ेगी।

इसके लिए साधन तो वहुत चाहिए फिर भी, इसे अधिक महत्त्व देनेकी जरूरत नहीं। जिसे राष्ट्रीय शिक्षा देनी होगी, वह पढ़ा न होगा, तो अपना दैनिक कार्य करते हुए पढ़ लेगा, फिर वह पढ़-लिखकर एक पेड़के नीचे बैठेगा और जिन्हें विद्या चाहिए उन्हें

उसका दान देगा। यह ब्राह्मणका धर्म है; जिससे इसका पालन हो वही कर सकता है। ऐसे ब्राह्मण पैदा होंगे, तो उनके आगे धन और सत्ता दोनों सिर झुकायेंगे।

मैं चाहता हूँ और परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि गुजरात शिक्षा मण्डलमें इतनी अटल श्रद्धा जागे।

शिक्षा स्वराज्यकी कुंजी है। राजनैतिक नेता भले ही श्री मॉण्टेग्युके[1] पास जायें, राजनैतिक क्षेत्र भले ही इस सम्मेलनकी मर्यादाके अन्तर्गत न हो, परन्तु शुद्ध शिक्षा-के बिना उस दिशामें भी सब प्रयत्न व्यर्थ हैं। शिक्षा इस सम्मेलनका खास क्षेत्र है। इसमें हमारी जीत हुई, तो फिर सर्वत्र जीत ही जीत है।

[गुजरातीसे]

महात्मा गांधीनी विचारसृष्टि

८. पत्र : मगनलाल गांधीको

[अक्तूबर २०, १९१७ के बाद][2]

चि० भाई मगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। गुरुप्रसादजीकी बात तुम्हींपर छोड़ता हूँ। यदि तुम्हें लगे कि वे सच्चे देशभक्त हैं, और आश्रममें बिना झंझटके रह सकते हैं, तथा जो काम दिया जाता है उसे शुद्ध निष्ठासे करते हैं, तो १० रुपये तक भेजनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं दिखती। लेकिन इसका दायित्व तुमपर होगा। मैं नहीं चाहता कि मैं कोई काम करूँ और उसका परिणाम तुम्हें झेलना पड़े। मैंने उन्हें कुछ भेजनेकी बात नहीं सोची थी, मुझे उनकी जरूरतोंके बारेमें ही कुछ मालूम नहीं है; फिर भी किसी योग्य व्यक्तिके लिए तो हम गुंजाइश निकाल ही सकते हैं। व्रजलालभाईकी[3] तबीयत ठीक रहती है। भाई फूलचन्दकी[4] तबीयत भी ठीक हो गई होगी। उनसे कहना कि मुझे अपनी पत्नीकी हालतके बारेमें लिखें। भाई सांकलचन्दसे कहना कि शिक्षा सम्मेलनके भाषणका अनुवाद मुझे जल्दी भेज दें।

बापूके आशीर्वाद

महादेव देसाईके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (एस०एन० ६४१३) की फोटो-नकलसे।

१. ई० एस० मॉण्टेग्यु (१८७९–१९२४); भारत-मंत्री (१९१७–२२) और मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारोंके सह-प्रणेता।

२. शिक्षा सम्मेलनके जिस भाषणकी चर्चा इसमें की गई है वह २०–१०–१९१७ को दिया गया था; देखिए पिछला शीर्षक।

३. आश्रमके निवासी।

४. (१८८४–१९३४) गुजरातके एक राजनीतिज्ञ और रचनात्मक कार्यकर्ता।

९. राष्ट्रीय शिक्षाकी योजना[1]

बहुत वर्षोंसे कुछ मित्रोंको और मुझे यह महसूस होता रहा है कि [हमारी आधुनिक शिक्षा राष्ट्रीय नहीं है और फलस्वरूप इससे प्रजाको जो लाभ मिलना चाहिए वह नहीं मिलता। हमारे बालक शिक्षा प्राप्त करते-करते क्षीण हो जाते हैं। वे पुरुषार्थ नहीं कर पाते तथा उनको मिले ज्ञानका प्रसार जनसमाजमें, यहाँतक कि उनके परिवारोंमें भी नहीं होता। युवक समुदायके मनमें आधुनिक शिक्षाका उद्देश्य केवल नौकरी प्राप्त करके आर्थिक स्थिति सुधारना ही होता है।]

प्रोफेसर आनन्दशंकर बापुभाई ध्रुव लिखते हैं:

"पिछले पाँच-सात वर्षोंमें जब हिन्दुस्तानकी नींद टूटी और उसने आँखें खोलीं तो उसने शिक्षाकी समस्याको सामने खड़ा पाया। हिन्दुस्तानकी प्रजा अपने राज्य-संचालनमें भाग लेनेकी माँग करेगी, वह भाग लेगी भी। तो क्या उसकी तीन-चौथाई आबादी अशिक्षित रहेगी? हिन्दुस्तानकी जनता स्वदेशी मालका उपयोग करनेकी प्रतिज्ञा करेगी; तो क्या उनकी शिक्षामें व्यापारिक तथा औद्योगिक शिक्षाका उचित समावेश नहीं होगा? हिन्दुस्तान जब आत्मसम्मानको पहचानेगा तो क्या वह अपने प्राचीन साहित्य, कला, धर्म तथा तत्त्वज्ञानका निरूपण विदेशी विद्वानोंके हाथों होने देगा? इन अभिलाषाओं और जीवनको पूर्ण बनानेकी ऐसी ही अन्य अभिलाषाओं तथा नई परिस्थितियोंको ध्यानमें रखते हुए हम शिक्षाके प्रश्नको आजके युगमें विशेष महत्त्व देते हैं। जब हम इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नकी गम्भीरताको समझकर अपनी शिक्षाके कुछ बुनियादी नियमोंका दृढ़तापूर्वक पालन करेंगे तभी हम न केवल अपने तथा अपने देशके प्रति, बल्कि मानवताके प्रति अपने कर्त्तव्यको पूरा कर सकेंगे।

उन्होंने आगे कहा है:

गत कालके नेताओंको समाज-सुधार तथा धार्मिक जीवन अत्यन्त सरल प्रतीत होता था; लेकिन ताने-बानेके वे तार जिनसे धर्म बना है विभिन्न रंगोंसे रंजित हैं और उनकी बुनाई बड़ी अच्छी तरह की गई है। और हिन्दू प्रजाका दारमदार इसीपर है। नये युगके लोगोंका यह कर्त्तव्य है कि वे इस सत्यको समझें और उसके अनुसार जीवन व्यतीत करें। प्रचलित शिक्षा-प्रणालीमें एक दोष यह है कि यह अधिकांशतः सरकारी नौकर, वकील तथा डॉक्टर तैयार करने तक ही सीमित है।

१. यह लेख गुजरातीमें मोहनदास करमचन्द गांधीके नामसे प्रकाशित हुआ था। इसमें शीर्षक लेख 'राष्ट्रीय गुजराती शाला' का एक अंश भी शामिल है। देखिये खण्ड १३, पृष्ठ ३३४–३६।

मैं भारतमें जहाँ-जहाँ घूमा-फिरा हूँ, वहाँ-वहाँ मैंने नेताओंसे इस विषयपर बातचीत की है। और लगभग बिना किसी अपवादके सबने यह स्वीकार किया है कि शिक्षा-पद्धतिमें परिवर्तन होना चाहिए। निम्नलिखित उद्धरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकारने इस शिक्षा-प्रणालीकी रचना जनसमाजकी समस्त आवश्यकताओंको पूरा करनेके उद्देश्यसे नहीं की थी :

> **हमने शिक्षाको बढ़ावा देनेके कार्यको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है; क्योंकि यह केवल बुद्धिका चरम विकास ही नहीं करती बल्कि जो इसका लाभ लेते हैं उनके नैतिक चरित्रको भी ऊँचा उठाती है। और इस प्रकार आपको [सरकारको] ऐसे सेवक तैयार करके देती है जिनकी प्रामाणिक निष्ठामें विश्वास रखकर आप उन्हें भारतमें ऊँचे ओहदोंपर प्रतिष्ठित कर सकें।**

[शिक्षाके आधारभूत सिद्धान्तोंमें एक सिद्धान्त यह है कि समाजकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर इसकी रचना की जानी चाहिए। अपनी पाठशालाओंमें समाजकी आवश्यकताओंका विचार ही नहीं किया जाता।

शिक्षाकी पद्धतिमें परिवर्तन होना ही चाहिए,] लेकिन इस सम्बन्धमें [यदि हम] सरकारपर भरोसा रखकर बैठे रहें तो यह समय व्यर्थ गँवानेके समान होगा। सरकार लोकमतकी राह देखेगी और विदेशी होनेके नाते फूँक-फूँककर कदम रखेगी। वह हमारी आवश्यकताओंको नहीं समझ सकती। यह भी हो सकता है कि उसके सलाहकारोंको [स्थितिकी] गलत जानकारी हो अथवा वे स्वार्थी हों। सम्भव है, ऐसे अनेक कारणोंसे सरकारकी मारफत वर्तमान पद्धतिमें महत्त्वपूर्ण फेरफार होते-होते बहुत समय निकल जाये। समय जितना बीत रहा है; प्रजाकी उतनी ही हानि हो रही है। फिर भी इसका मतलब यह नहीं कि हम सरकारसे कोई सहायता ही न लें। सरकारको आवेदन-पत्र अवश्य दिये जायें, लोकमत इकट्ठा किया जाये लेकिन अच्छेसे-अच्छा आवेदन-पत्र तो वही है जो हम स्वयं करके दिखायें। लोकमतको शिक्षित करनेके लिए भी यह सीधा रास्ता है, इससे कुछ-एक विद्वानोंसे सलाह-मशविरा करनेके बाद एक राष्ट्रीय पाठशाला खोलनेका प्रस्ताव पास हुआ है।

पाठशालाकी शिक्षा

इस पाठशालामें पूरी शिक्षा मातृ-भाषाके माध्यमसे दी जायेगी। [किसी भी देशकी प्रजामें मातृ-भाषाका स्थान प्रमुख होता है लेकिन आश्चर्यकी बात है, हमारे यहाँ यह स्थान अंग्रेजीको प्राप्त है। यह अन्ततः प्रजाके लिए हानिकारक है।] प्रथम गुजरात शिक्षा परिषदके अध्यक्षने भी कहा था कि शिक्षा मातृ-भाषाके माध्यमसे दी जानी चाहिए। स्वागत मण्डलके प्रमुखके भाषणमें भी मातृ-भाषाके जरिये शिक्षा देनेकी बातको जोरदार शब्दोंमें व्यक्त किया गया था। १८५४ के सरकारी खरीतेमें इस बातकी विशेष रूपसे चर्चा की गई है। फिर भी समझमें नहीं आता कि शिक्षा-पद्धतिका आधार कैसे परिवर्तित हो गया। खरीतेमें कहा गया है :

> **देशकी विभिन्न भाषाओंके स्थानपर अंग्रेजीको प्रतिष्ठित करनेकी न तो हमारी इच्छा है और न हम उसे ठीक ही समझते हैं। जिन भाषाओंको आबादी-**

का एक बहुत बड़ा हिस्सा समझ सकता है, हम उनके उपयोगके महत्त्वको हमेशासे अच्छी तरह समझते आये हैं। और हमने न्याय-प्रशासन तथा सरकारी अमलदारों और जनताके बीच व्यवहृत फारसीके स्थानपर अंग्रेजीको नहीं, बल्कि इन भाषाओंको ही प्रतिष्ठित किया है। इसलिए शिक्षाकी किसी भी योजनामें इन देशी भाषाओंके अभ्यासको बहुत प्रोत्साहन मिलना नितान्त आवश्यक है। जनताका वह बड़ा हिस्सा जिसकी परिस्थितियाँ उसे विज्ञानके क्षेत्रमें विचरनेके लिए सुविधा प्रदान नहीं करतीं और जो विदेशी भाषाकी कठिनाइयोंको नहीं लाँघ सकता, उसे यदि शिष्ट यूरोपीय विज्ञानसे परिचित कराना हो तो वह देश [हिन्दुस्तान] की एक अथवा दूसरी भाषामें ही किया जा सकता है। इसीलिए हम अंग्रेजी भाषाको और वैसे ही हिन्दुस्तानकी देशी भाषाओंको यूरोपीय विज्ञानके प्रचारका साधन मानते हैं। हमारी इच्छा है कि हिन्दुस्तानकी प्रत्येक पाठशालामें इन भाषाओंका अच्छी तरहसे विकास हो तथा अपेक्षणीय गुणोंसे सम्पन्न, अनुभवी तथा कुशल शिक्षक इन पाठशालाओंमें उच्च वर्गोंका संचालन करें।

[हमारे माननीय वाइसरॉय लॉर्ड चैम्सफोर्डने भी २२ फरवरी, १९१७ को दिल्लीमें शिक्षा निदेशकोंके सम्मेलनमें भाषण देते हुए देशी भाषाओंके स्थानपर अंग्रेजी भाषाको प्रमुख स्थान देनेसे जो नुकसान हुआ है, उसका विवरण दिया। उन्होंने कहा कि अगर अंग्रेज जनताको विदेशी भाषाके माध्यमसे शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती तो क्या होता? उन्होंने यहाँतक कहा कि बहुतसे अंग्रेज निराश होकर पढ़ना ही छोड़ देते। वे चालू शिक्षाके द्वारा शिक्षण देनेकी पद्धतिको 'विशस सिस्टम' [दूषित प्रणाली] कहते हैं। उनके वचन निम्नलिखित हैं:

[मेरा अभिप्राय अंग्रेजी और देशी भाषाओंके सापेक्ष्य दावेसे है। वर्तमान कालमें हम अंग्रेजीको उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके माध्यमके रूपमें मानते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि नौकरी प्राप्त करनेके लिए अंग्रेजीका ज्ञान पासपोर्ट है और देशी भाषाओंमें अपेक्षित पाठ्यपुस्तकोंका अभाव है। लेकिन उसका परिणाम क्या होगा यह स्पष्ट है। एक विदेशी भाषाके जरिये कितने ही जटिल विषयोंको समझनेके लिए विद्यार्थियोंको बड़ी परेशानी होती है और अनेक प्रसंगोंमें तो उन्हें [विद्यार्थियोंको] उस भाषाके ज्ञानकी कमी होनेके कारण पाठ्य पुस्तकोंको घोटना-तक पड़ता है। हम घोटनेकी इस प्रवृत्तिकी तीव्र भर्त्सना करते हैं; लेकिन हमारे विचारानुसार विद्यार्थियोंकी ज्ञान-प्राप्तिकी तीव्र आकांक्षा सचमुच प्रशंसनीय है क्योंकि वे केवल पृष्ठ ही नहीं वरन् पूरीकी-पूरी कितावोंको उनका अर्थ समझे विना रट लेते हैं। शिक्षाकी यह पद्धति निस्सन्देह उपहासास्पद है। . . . मैं आपसे तथा अपने-आपसे, विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध व्यक्तियोंकी हैसियतसे, पूछना चाहूँगा कि यदि हमें विदेशी भाषाके द्वारा ही पूरी शिक्षा दी गई होती तो हम किस प्रकार आगे बढ़ते? मुझे आशंका है कि हमने कदाचित् उस प्रयत्नको निराश होकर छोड़ दिया होता। इस दूषित शिक्षा-प्रणालीने विद्यार्थियोंके मार्गमें जो काँटे

बिछाये हैं उनको दूर करनेका वे बड़ा जबरदस्त प्रयत्न करते हैं। उनकी इस ईश्वरप्रदत्त प्रतिभाको देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया हूँ।

पूनामें देशी भाषा द्वारा शिक्षा देनेका प्रयत्न किया गया है और उस पाठशालाके व्यवस्थापकोंके विचारानुसार सरकार और जनता — दोनोंका यही मत है। हमारा उद्देश्य भी देशी भाषाके माध्यमसे शिक्षा प्रदान करनेका है।

प्रथम [गुजरात] शिक्षा परिषद्के अध्यक्षने अपने भाषणमें बताया कि यदि मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा दी जाये तो [विद्यार्थियोंको] हाई स्कूलमें जितना ज्ञान इस समय ग्यारह वर्षोंमें प्रदान किया जाता है उतना सात वर्षोंमें दिया जा सकता है। समयकी यह बचत कोई छोटी-मोटी बात नहीं है। इस शिक्षा-पद्धतिसे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि इससे जनताके खर्चका भारी बोझ हल्का हो जायेगा।

इस पाठशालाके पाठ्यक्रममें हिन्दी भाषा पढ़ाई जाती है, उसका कारण यह है कि इस समय हिन्दी भाषा बोलनेवालोंकी संख्या लगभग २२ करोड़ है। और हमारे देशके इतने लोग जो भाषा बोलते हैं यदि वह [सब लोगोंको] पढ़ाई जाये तो प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न राजनैतिक हलचलोंको आसानीसे समझ सकेगा। मेरा दृढ़ विचार है, केवल हिन्दी ही राष्ट्रभाषाका स्थान ले सकती है। हिन्दीमें बहुत अच्छा साहित्य है। वह हमारी भाषाओंके साहित्यको समृद्ध बना सकती है।

आजकी पाठशालाओंमें धर्मशास्त्रकी शिक्षाकी कोई व्यवस्था नहीं है। इस पाठ-शालाके पाठ्यक्रममें इसको भी स्थान दिया गया है।

यहाँ लोगोंको दो धन्धोंकी शिक्षा दी जायेगी (१) खेती और (२) बुनाईका काम। इन दो धन्धोंके अंगरूप लोगोंको लुहारी और बढ़ईगीरीका अभ्यास भी कराया जायेगा। उनको भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र और प्राणी-शास्त्रकी शिक्षा भी दी जायेगी। हिन्दुस्तानमें इन दो धन्धोंको सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और जो लोग इन धन्धोंको सीख लेंगे उन्हें नौकरी तलाश करनेकी कोई जरूरत नहीं होगी।

प्रत्येक विद्यार्थीको स्वास्थ्य-रक्षाके उपाय बताये जायेंगे तथा सामान्य रोगोंका घरेलू उपचार करनेकी शिक्षा दी जायेगी। विद्यार्थीकी मानसिक शिक्षाकी ओर जितना ध्यान दिया जायेगा, शारीरिक शिक्षाकी ओर उससे तनिक भी कम ध्यान नहीं दिया जायेगा। प्रत्येक विद्यार्थीको पाँच भाषाएँ सिखाई जायेंगी :

(१) गुजराती (२) हिन्दी (३) मराठी (४) संस्कृत तथा (५) अंग्रेजी।

गणितके विषयोंमें अंक-गणित, बीज-गणित, भूमिति, त्रिकोणमितिका ज्ञान दिया जायेगा। इस प्रकार आजकल कॉलेजोंमें पाँच वर्षमें जितनी शिक्षा दी जाती है उतनी शिक्षा प्रत्येक विद्यार्थीको दी जायेगी।

इतिहास-भूगोल : गुजरात, हिन्द, इंग्लैण्ड, ग्रीस, रोम तथा आधुनिक कालका इतिहास पढ़ाया जायेगा। अन्तिम वर्षमें इतिहासका रहस्य तथा समाज-शास्त्र भी पढ़ाया जायेगा। भूगोल सम्बन्धी जितना ज्ञान अन्य पाठशालाओंमें दिया जाता है उतना ही इस पाठशालामें भी दिया जायेगा।

खगोल सम्बन्धी मूलतत्त्वोंकी जानकारी दी जायेगी। अर्थ-शास्त्रके अभ्यासकी भी आवश्यकता है; [पाठ्यक्रममें] उसका भी समावेश किया गया है।

कानूनका थोड़ा-बहुत ज्ञान प्रत्येक व्यक्तिके लिए उपयोगी है, इसलिए व्यवहारमें इसकी जितनी जानकारी उपयोगी हो उतनी दी जायेगी।

बालकोंका प्रथम वर्षसे ही मनोरंजन हो और व्यायाम भी हो, इस उद्देश्यसे कवायदका विषय भी [पाठ्यक्रममें] शामिल किया गया है।

संगीतका विषय भी रखा गया है जिससे प्रत्येक विद्यार्थीको उसका कुछ ज्ञान मिले और कविता-पाठमें भी मदद मिले। पहले वर्षमें सारी शिक्षा मौखिक रूपमें ही दी जायेगी। उद्देश्य यह है कि बच्चोंको खेलते-खेलते सामान्य ज्ञानकी शिक्षा मिले और उनके मस्तिष्कका भी विकास हो। रंग, रूप, आकार आदिका ज्ञान भी कराया जायेगा जिससे बच्चेकी अवलोकन-शक्तिको बढ़ावा मिले। इस प्रकार शिक्षाका यह साधन शिक्षण-पद्धतिका एक अंग रहेगा।

हिन्दुस्तानमें परीक्षाओं-जैसी कोई चीज थी ही नहीं। यह पद्धति अभी हाल ही में शुरू की गई है। सन् १८५४ के खरीतेमें इसको महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया। अब परीक्षाका बहुत दुरुपयोग होने लगा है; हरएक विषय परीक्षाको ध्यानमें रखते हुए पढ़ाया जाता है और विद्यार्थीके मनमें यह बात अच्छी तरह घर कर लेती है कि परीक्षामें उत्तीर्ण होना ही पर्याप्त है। अध्यापकको भी इसी तरीकेसे अपना काम करनेकी आदत पड़ गई है। इसलिए विद्यार्थीको जो ज्ञान मिलता है वह ऊपरी होता है। कोई भी विषय पूरी तरहसे नहीं पढ़ाया जाता। इस सम्बन्धमें निम्नलिखित वाक्य पढ़ने लायक हैं:

> **पिछले कुछ वर्षोंसे ये [परीक्षा] संस्थाएँ असाधारण रूपसे बढ़ गई हैं तथा हिन्दुस्तानकी समस्त शिक्षा-पद्धति इसके प्रबल प्रभावमें पड़ी हुई है। उसका परिणाम यह हुआ है कि शिक्षक भी इसी दृष्टिकोणसे कार्यका संचालन निश्चित पाठ्यक्रमके अनुसार बेमनसे करता चला जाता है तथा लिखित परीक्षाके अलावा जिसकी कसौटी नहीं हो सकती वैसे शिक्षणकी अवहेलना की जाती है। इसलिए बहुतसे शिक्षक और विद्यार्थी अपनी कार्य-शक्ति, सच्ची शिक्षापर नहीं बल्कि परीक्षामें परीक्षक कैसे प्रश्न पूछेगा, उसपर विचार करनेमें लगाते हैं।**

परीक्षाकी पद्धति बहुत खराब है इस बातको ध्यानमें रखकर इस संस्थामें, अध्यापक ठीक तरहसे पढ़ाते हैं या नहीं तथा विद्यार्थी अच्छी तरहसे समझ पाते हैं या नहीं — इन दो उद्देश्योंको निगाहमें रखते हुए समय-समयपर विद्यार्थियोंकी परीक्षा ली जायेगी। विद्यार्थियोंको परीक्षाके भयसे मुक्त करनेका प्रयत्न किया जायेगा। ये परीक्षाएँ पाठशालाके अध्यापकों तथा उसकी [पाठशालासे] जानकारी रखनेवाले व्यक्तियों द्वारा ली जायेंगी। मान्यता यह है कि जो विद्यार्थी दस वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करेगा उसको आजकलके स्नातक जितना ज्ञान होगा। इसके उपरान्त उसे खेती तथा बुननेके कामका व्यावहारिक ज्ञान दिया जायेगा। पाठशालासे निकलनेके बाद विद्यार्थियोंमें जो शक्ति होगी उसका व्यावहारिक जीवनमें उपयोग करनेमें ही उनकी खरी कसौटी मानी जायेगी। विद्या सीखनेका उद्देश्य नौकरी प्राप्त करना है, इस वहमको हर तरहसे

दूर करनेकी कोशिश की जायेगी। फिलहाल सामान्य तौरपर व्यावसायिक वर्गमें अंग्रेजी पढ़े-लिखे और वह भी सरकारी पद्धतिके अनुसार शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियोंको अच्छे स्थानोंपर नियुक्त करनेका रिवाज है। लेकिन जब इस पाठशालासे विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करके निकलेंगे तब व्यापारियोंके लिए पसंद करनेको और भी क्षेत्र मिलेंगे। उस समय इस पाठशालाके शिक्षणकी कार्यक्षमताकी ओर जन-समाजका ध्यान जायेगा। व्यापारी लोग 'डिग्री' से मोहित नहीं होते, वे तो जिनमें कार्य करनेकी योग्यता होगी उसे स्थान देंगे।

यदि कोई विद्यार्थी दस वर्षतक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद किसी एक विषयमें विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो उसके लिए समुचित व्यवस्था करनेकी बातको भविष्य के लिए उठा रखा गया है।

निःशुल्क शिक्षा

इस पाठशालामें कोई शुल्क नहीं लिया जायेगा; और इसका खर्च दान द्वारा प्राप्त रकमसे चलाया जायेगा।

शिक्षक

वैतनिक शिक्षक रखे जायेंगे और वे सबके-सब बड़ी उम्रके तथा ऐसे लोग होंगे जिन्होंने कॉलेजकी शिक्षा पाई हो अथवा जिनका ज्ञान कॉलेजकी शिक्षाके स्तरका हो। मान्यता यह है कि बालकोंको प्रारम्भमें अच्छेसे-अच्छे शिक्षकोंकी आवश्यकता है।

[गुजरातीसे]

गुजराती, २१-१०-१९१७

१०. भाषण : सम्मेलनकी समाप्तिपर[1]

भड़ौंच

अक्तूबर २१, १९१७

मुझे धन्यवाद तो पहले ही मिल चुका है। अपनी भावना प्रकट करनेका मुझे कोई मौका ही नहीं मिला। [पूरे मनसे की गई] ऐसी सेवाओंको ही मैं मोक्षका द्वार मानता हूँ। आज तीन दिनोंसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं श्री हरिभाईका उपकार मानता हूँ; क्योंकि वे रात-दिन एक करके आगत सज्जनोंकी सेवा कर रहे हैं। जो लोग असन्तुष्ट रह गये हों उनसे मैं उनकी ओरसे क्षमा-याचना करता हूँ। दुधारू गायकी लात भी सहन करनी चाहिए। मुझे अपनी मातृभाषासे प्यार हो गया है—उसका रंग चढ़ गया है। मुझे लगता है कि इसके बिना हमारा गुजारा नहीं हो सकता। उसके बिना हमारा उद्धार नहीं हो सकता। इसी कारण मैं जहाँ-तहाँ इसके सम्बन्धमें आग्रह करता रहता हूँ। और मेरे आग्रहका यहाँ कुछ असर पड़ा है, यह देखकर मैं आप सबका बड़ा

१. सम्मेलनके दूसरे दिन; देखिए पिछला शीर्षक।

कृतज्ञ हुआ हूँ। आप मेरा उपकार क्यों और किस लिए मानें? और यदि आप मेरा उपकार मानें ही, तो उसे मैं सुन नहीं सकता। मुझे आशा है कि विभिन्न समितियोंको जो कार्य सौंपा गया है वे उसे पूरा करेंगी। पुरुषार्थके सम्मुख कठिनाइयाँ टिक नहीं सकतीं। समयके अभावके कारण सभाके समक्ष लम्बे भाषणकी माँग को मैं स्वीकार नहीं कर सका उसके लिए मुझे खेद है। मैं आप सब भाइयों और बहनोंको धन्यवाद देता हूँ। मैं अपना जीवन तभी सार्थक समझूँगा जब भारतके लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर पाऊँ।

[गुजरातीसे]

गुजराती, २८–१०–१९१७

११. भाषण: जीवदया परिषद्में[1]

भड़ौंच

अक्तूबर २१, १९१७

जिस दिनसे मैं श्री आनन्दशंकर ध्रुवके सम्पर्कमें आया हूँ उसी दिनसे उनपर मुग्ध हूँ। वे निस्सन्देह गुजरातके एक अनमोल रत्न हैं। सम्भवतः गुजरात उन्हें अभी पूर्ण रूपसे नहीं जानता। इस संस्थाने जब श्री ध्रुवको अध्यक्ष-पद प्रदान किया तो मुझे लगा कि यह संस्था भी बड़ी प्रतिष्ठित होनी चाहिए। श्री ध्रुवने समस्त हिन्दू संसारके सम्मुख सिद्ध कर दिया है कि 'अहिंसा परमोधर्मः' वचन सारे भारतका है। जैन और हिन्दू धर्मके बीच ऐसा कोई भेद नहीं है कि उन्हें भिन्न माना जाये। गौतम बुद्धका बौद्ध धर्म वही बात कहता है कि जो हिन्दू धर्म कहता है।

श्री ध्रुव केवल गुजरातके ही रत्न नहीं हैं, वे सारे भारतवर्षके रत्न हैं। वे गुजरातमें लोगोंके सामने नहीं आये इसलिए भारतीय जनतामें सुप्रसिद्ध नहीं हो पाये। वे बड़े ही समर्थ विद्वान् हैं। यह मैं उनके भाषणोंसे ही समझ गया हूँ। उनकी कार्य-कुशलता व्यावहारिक जीवनके लिए अत्यन्त आवश्यक है। संसारी जीवनका मुझे भी बड़ा अनुभव है और मैंने सहन भी बहुत किया है। श्री ध्रुवके शुद्ध अन्तःकरणसे निकले उद्‌गार मुझे बड़े प्रिय लगने लगे हैं और मुझमें उनका सत्संग करनेकी आकांक्षा जाग गई है।

श्री ध्रुव गुदड़ीके लाल हैं। उन्हें प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दू जीवनका अच्छा अनुभव है। आजकी जो पीढ़ी ऐशो-आरामके वातावरणमें पलकर बड़ी हुई और जो मनसूबोंके दुर्ग बाँधती हुई [आधुनिक] सभ्यताके प्रवाहमें, बिना विचारे बह चली है, उसे समुचित और योग्य स्थानपर पहुँचानेके लिए श्री ध्रुव नौका-रूप हैं। वे ऐसे नेता हैं। बुजुर्ग लोग फूलोंके महत्त्वको जानते हैं। इसीलिए उन्होंने भी [नई पीढ़ीकी] ठीक कद्र की है और युवकोंके साथ मिलकर अपने विचारोंको उनमें किस प्रकार दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित किया जाये इस सम्बन्धमें अपनी कार्य-कुशलताका परिचय दिया है।

१. सम्मेलनके दूसरे दिन गांधीजीने, अध्यक्ष प्रो० आनन्दशंकर ध्रुवके प्रति धन्यवादका प्रस्ताव किया।

जीवदया मण्डल श्री ध्रुवको अपने अध्यक्ष-पदपर मनोनीत कर सका है, यह इस बातका प्रमाण है कि यह संस्था बड़े सुदृढ़ पायेपर कामकर सकी है और जीवदयाके अपने सिद्धान्तोंका प्रचार भविष्यमें भी जनताके बीच अधिकाधिक कर सकेगी तथा जनमतको इसके पक्षमें तैयार कर सकेगी। इतना कहकर मैं अध्यक्ष महोदयके प्रति धन्यवादका प्रस्ताव पेश करता हूँ। मुझे उम्मीद है कि आप सब इसका समर्थन करेंगे।

[गुजरातीसे]

मुम्बई समाचार, २३–१०–१९१७

१२. पत्र : वाणिज्य और उद्योग विभागके सचिवको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
अक्तूबर ३१, १९१७

सचिव
वाणिज्य और उद्योग विभाग
दिल्ली

महोदय,

इसके साथ एक पत्रकी[1] नकल भेजता हूँ जो मैंने अभी हालमें समाचारपत्रोंको रेलके तीसरे दर्जेके यात्रियोंके सम्बन्धमें लिखा था।

ये कष्ट दो तरहके हैं: एक वे जिनका कारण स्वयं यात्रियोंकी लापरवाही है और दूसरे वे जिनको केवल रेल-कम्पनियाँ ही दूर कर सकती हैं। इनके भी दो हिस्से किये जा सकते हैं — कुछका निराकरण कोई बड़ा खर्च उठाये बिना किया जा सकता है और कुछका निराकरण बहुत ज्यादा रुपया खर्च करनेपर ही हो सकता है।

मैं स्वीकार करता हूँ कि जबतक युद्ध चलता है तबतक दूसरे वर्गके कष्टोंको दूर करनेका कोई प्रभावकारी उपाय नहीं किया जा सकता। इन कष्टोंका कारण स्थानकी अपर्याप्तता है। मैं इस सम्बन्धमें सुझाव देना चाहता हूँ कि टिकट बाँटनेमें कुछ कमी अवश्य की जा सकती है और गार्डों एवं अन्य अधिकारियोंको यात्रियोंके यातायातको व्यवस्थित करनेके निर्देश भी दिये जा सकते हैं। स्थिति यह है कि ताकतवर यात्री अधिकारियोंके प्रबन्ध या नियन्त्रणके बिना ही स्थान प्राप्त कर लेते हैं और कमजोर यात्री प्रायः रह जाते हैं। अधिकारियोंको यात्रियोंके यातायातको व्यवस्थित करनेके निर्देश देना ही काफी नहीं है; बल्कि उनका समय-समयपर डिब्बोंकी हालतकी जाँच करना और यह देखना भी लाजिमी कर देना चाहिए कि कोई यात्री अन्य यात्रियोंको असुविधामें डालकर ज्यादा जगहपर कब्जा किये तो नहीं बैठा है।

१. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ ५५८-६२।

मैंने जो बुराइयाँ बताई हैं उनके लिए जहाँतक स्वयं यात्रियोंके दायित्वका सम्बन्ध है, डिब्बोंकी दीवारोंपर ऐसे नोटिस चिपका देने चाहिए और स्टेशनोंपर ऐसे नोटिस-बोर्ड लगा देने चाहिए जिनमें पाखानों आदिके प्रयोगके सम्बन्धमें विस्तृत निर्देश दिये गये हों। गन्दी या घृणित आदतोंको वर्जित करनेवाले विनियम सावधानीसे लागू किये जा सकते हैं। विभिन्न देशी भाषाओंमें छपी एक निर्देश-पुस्तिका लम्बी यात्राके टिकटोंके साथ बाँटी जा सकती है और अन्य लोगोंको माँगनेपर मुफ्त दी जा सकती है। इस शिक्षणात्मक कार्यकी पूर्तिके लिए आम जनतामें से स्वयंसेवक माँगने चाहिए और उनका सहयोग लेना चाहिए।

अन्य शिकायतोंके बारेमें :

स्टेशन-निरीक्षकों और अन्य अधिकारियोंको हिदायत कर देनी चाहिए कि वे हर जंक्शन या मुख्य स्टेशनपर डिब्बोंको और पाखानोंको झड़वाएँ और साफ करवाएँ।

स्टेशनोंपर बने हुए पाखानोंकी सफाईके बारेमें पूरी सावधानी रखी जानी चाहिए। पाखानोंके उपयोगके बाद हर बार मिट्टी या कीटाणुनाशक दवा डालनी चाहिए। इसके लिए हर स्टेशनपर हर समय भंगी नियुक्त रखने चाहिए। मेरी विनम्र सम्मतिमें इस मामलेके महत्त्वको देखते हुए हर समय भंगी नियुक्त रखना अत्यावश्यक है। सम्भवतः ऐसे विशेष पाखाने बनवाना दूरदर्शितापूर्ण होगा जिनका उपयोग थोड़ा-सा शुल्क देकर कोई भी यात्री कर सके। इस समय स्टेशनोंपर जो पाखाने हैं वे बिलकुल बेपर्दा हैं। मेरा खयाल है कि पर्देकी व्यवस्था थोड़ा-सा खर्च उठाकर की जा सकती है।

समस्त प्रमुख स्टेशनोंपर स्नानकी सुविधाएँ सुलभ होनी चाहिए।

मुझे मालूम हुआ है कि स्टेशनोंपर खाने-पीनेकी चीजें बेचनेकी अनुमति केवल लाइसेंस-प्राप्त विक्रेताओंको ही मिली हुई है। लाइसेंस देनेसे पहले विक्रेताओंको चीजोंके भावोंकी लिखित सूची देनी चाहिए और खाने-पीनेकी चीजें और विक्रेता साफ हों, यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए। तीसरे दर्जेके मुसाफिरखाने जैसे इस समय गन्दे रहते हैं वैसे गन्दे नहीं रखने चाहिए। बल्कि वे सावधानीके साथ स्वच्छ रखे जाने चाहिए।

यात्रियोंको टिकट प्राप्त करनेमें अकथनीय कष्टोंका सामना करना पड़ता है। टिकट प्रायः गाड़ी छूटनेसे केवल कुछ समय पहले ही दिये जाते हैं। इसका नतीजा होता है घूसखोरी, टिकटें खरीदनेके लिए यात्रियोंमें लड़ाई-झगड़े और अनेक लोगोंको निराशा।

मुख्य-मुख्य स्टेशनोंपर मुसाफिरखानोंको बिलकुल नया रूप देनेकी आवश्यकता है। वहाँ यात्रियोंके अनुसरणके लिए विनियम होने चाहिए। बेंचोंकी व्यवस्था बड़ी संख्यामें होनी चाहिए। वे दिनमें कई बार साफ की जायें। स्त्री-वर्गके उपयोगके लिए कमरोंकी व्यवस्था हो।

मेरी विनम्र सम्मतिमें अतिरिक्त डिब्बोंकी व्यवस्थाको छोड़कर अन्य सब बुराइयोंको रेलवे प्रशासन बहुत-थोड़ा अतिरिक्त खर्च उठाकर दूर कर सकता है। जरूरत सहानुभूति दिखाने और तीसरे दर्जेके यात्रियोंके अधिकारोंको मान्य करनेकी है, क्योंकि उनसे रेलवेको यात्रा-यातायातसे प्राप्त आयका सबसे बड़ा हिस्सा मिलता है।

यद्यपि यहाँ उल्लिखित शिकायतें पुरानी हैं, किन्तु वे इतनी आवश्यक हैं कि उनकी ओर तुरन्त ध्यान देना चाहिए। आशा है कि आपका विभाग इस मामलेको जल्दी हाथमें लेगा। मेरी सेवाएँ आपके सुपुर्द हैं, आप उनका जिस तरह उचित समझें उपयोग कर सकते हैं।

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ६३९३) की फोटो-नकल तथा रेलवे डिपार्टमेंट रेकर्ड्स, मार्च १९१८ : ५५२-टी-१७ : १-२४; नेशनल आकाईव्ज़ ऑफ इंडियासे।

१३. पत्र : भगवानजी मेहताको

साबरमती
आश्विन बदी २ [नवम्बर १, १९१७][1]

भाईश्री,

तुम्हारा पत्र मिला। वीरमगाँवके[2] बारेमें मैंने बातचीत की है और उसके उत्तरकी प्रतीक्षा है। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि यह बन्द होना चाहिए और होकर ही रहेगा।

पंजीयित पत्र मेरे पास है। आवश्यकता होगी तब जैसा तुम कहते हो वैसा कुछ-तो करूँगा।

काठियावाड़ आनेकी बड़ी इच्छा है परन्तु जब आ पाऊँ तब है। फिलहाल छः महीने तो बिहारके[3] लिए सुरक्षित हैं।

१. बिहारके उल्लेखसे यह पत्र १९१७ में लिखा लगता है।

२. यह ब्रिटिश भारतीय क्षेत्र और काठियावाड़ रियासतोंकी सीमापर स्थित था। यहाँ सरकारने चुंगी लगा दी थी जिससे रेल-यात्रियोंको बहुत असुविधा होती थी। मोतीलाल नामक एक दर्जीने सर्वप्रथम गांधीजीका ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। देखिए **आत्मकथा** भाग ५, अध्याय ३। समस्याको पूरी तरह समझ लेनेके बाद गांधीजीने उसके बारेमें बम्बई सरकार और बादमें गवर्नर लॉर्ड विलिंग्डनसे पत्र-व्यवहार किया। वाइसरॉय लॉर्ड चेम्सफोर्डसे अपनी भेंटके दौरान भी गांधीजीने इस कठिनाईका उल्लेख किया, जिसपर वाइसरॉयने कष्ट-निवारणका वचन दिया। अन्ततः नवम्बर १० को यह चुंगी समाप्त कर दी गई। देखिए "भाषण : प्रथम गुजरात राजनीतिक परिषद्में", ३-११-१९१७ और "प्रस्ताव : प्रथम गुजरात राजनीतिक परिषद्में-२", ५-११-१९१७।

३. चम्पारन, बिहारमें नीलकी खेती करनेवाले किसानोंकी समस्या सुलझ जानेपर गांधीजीने प्रान्तमें शिक्षा-प्रसार और स्वास्थ्य सम्बन्धी काम करनेका निश्चय किया था।

तुम्हारी तबीयत ठीक हो गई होगी।

तुम्हारा,
मोहनदास करमचन्द गांधी

भाई भगवानजी अनूपचन्द मेहता
वकील
सदर
राजकोट

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें पोस्टकार्डपर लिखित मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३०३०) से।

सौजन्य: नारणदास गांधी

१४. भाषण: प्रथम गुजरात राजनीतिक परिषद्में[1]

[गोधरा]
नवम्बर ३, १९१७

गांधीजी परिषद्के मण्डपमें ठीक समयपर आ गये थे किन्तु लोकमान्य तिलक[2] ४५ मिनट देरसे आये इसलिए कार्यका आरम्भ भी किंचित् देरसे हुआ। अपना भाषण पढ़नेसे पहले गांधीजीने इस बातका उल्लेख करते हुए कहा:

इस देरके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँ। हम स्वराज्यकी माँग करते हैं। अगर उससे सम्बन्धित परिषद्में पौन घंटेकी देर चिन्त्य नहीं मानी जाती तो स्वराज्यकी प्राप्तिमें भी पौन घंटेकी देर हमें खटकनी नहीं चाहिए।

इसके बाद गांधीजीने अपना भाषण पढ़ा:

भाइयो और बहनो!

मुझे आपने जो उच्च पद प्रदान किया है उसके लिए मैं आप सबका आभार मानता हूँ। भारतके राजनीतिक क्षेत्रमें मैं अभी ढाई वर्षका बच्चा हूँ।[3] मैं दक्षिण आफ्रिकाके अपने अनुभवसे यहाँ काम नहीं कर सकता। ऐसी स्थितिमें इस पदको स्वीकार करना कितने ही अंशमें उद्दण्डता समझी जा सकती है, तो भी आप लोगोंके अपार प्रेमके कारण मैंने यह पद स्वीकार किया है।

मैं अपनी जिम्मेदारी समझता हूँ। यह परिषद् गुजरातमें पहली है। समस्त देशके लिए यह समय बड़ा नाजुक है। इस समय साम्राज्यपर जैसी विपत्ति आई है वैसी

१. प्रथम गुजरात राजनीतिक परिषद्में अध्यक्ष पदसे दिया गया।

२. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक (१८५६–१९२०); भारतके महान् राष्ट्रीय नेता और विद्वान्। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४१८।

३. गांधीजी ९ जनवरी, १९१५को भारत लौटे थे।

पहले कभी नहीं आई थी। मेरे विचार सामान्य प्रवाहकी दिशामें नहीं बहते हैं। मुझे जान पड़ता है कि कुछ तो सामान्य प्रवाहकी उलटी दिशामें बहते हैं। ऐसी दशामें मुझे इस पदको स्वीकार करनेका अधिकार बहुत कम है। सभापतिका भाषण प्रायः सभाके विचारोंका दर्शक होता है। परन्तु मेरे विषयमें यह बात चरितार्थ न हो सकेगी। यह आपकी उदारता है कि ऐसे सुन्दर अवसरपर आपने मुझे अपने विचार गुजरातकी जनताके सामने रखनेकी अनुमति दी है। मेरे इन विचारोंपर इस सभामें टीका-टिप्पणी हो, उनसे मतभेद प्रकट किया जाये तथा उनका कड़ा विरोध हो तो इससे मुझे दुःख नहीं होगा। मैं तो यह चाहता ही हूँ कि उनपर खुलकर, पूरी-पूरी चर्चा हो। अपने इन विचारोंके सम्बन्धमें मैं इतना ही कहूँगा कि वे आजकलके नहीं, वरन् बहुत पुराने हैं। मैं तो उन्हींपर मुग्ध हूँ और इन ढाई वर्षोंके अनुभवसे उनमें कोई परिवर्तन भी नहीं हुआ है।

इस परिषद्की योजनाका विचार करनेवालों और उस विचारको कार्यका रूप देनेवालोंको मैं धन्यवाद देता हूँ। गुजरातके लिए यह एक महत्त्वकी घटना है और हम उसमें से बहुत सुन्दर परिणाम पैदा कर सकते हैं। यह परिषद् नींव-स्वरूप है। यदि नींव दृढ़ और मजबूत होगी तो मकानके विषयमें हम निश्चिन्त रह सकेंगे। यह परिषद् नींव-स्वरूप है, इससे इसका उत्तरदायित्व भी बड़ा है। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह हम सबको सुमति प्रदान करे और हमारा कार्य लोगोंके लिए भविष्यमें लाभदायी सिद्ध हो।

यह परिषद् राजनीतिक है। इस 'राजनीतिक' शब्दपर हम थोड़ा विचार करें। 'राजनीतिक' शब्द अंग्रेजीके 'पोलिटिकल' शब्दका अनुवाद है। अक्सर इस शब्दका संकुचित अर्थ किया जाता है, किन्तु मेरा खयाल है कि हमें उसका व्यापक अर्थ करना चाहिए। ऐसी परिषदोंकी इतिश्री यदि राजा-प्रजाके सम्बन्धोंके विचार-मात्रमें ही हो जाये तो इससे न केवल काम अधूरा रह जायेगा बल्कि इस विषयकी पूरी कल्पना भी हम न कर सकेंगे। उदाहरणके लिए, महुएके फूलोंका सवाल गुजरातके एक हिस्सेके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि ['राजनीतिक' शब्दके संकुचित अर्थमें] हम उसे एक राजनीतिक सवाल मानकर उसपर विचार करें तो सम्भव है उसका कड़वा परिणाम निकले या चाहा हुआ परिणाम न निकले। किन्तु यदि हम महुआ-सम्बन्धी कानूनकी उत्पत्तिका विचार करें और उसके साथ अपने कर्त्तव्यका भी विचार करें, तो सरकारसे अपनी लड़ाईमें हम ज्यादा जल्दी कामयाब होंगे और लड़नेकी चाबी भी हमें आसानीसे मिल जायेगी। मैं अपने जो विचार आपके सामने उपस्थित करनेवाला हूँ उससे आपको और स्पष्ट हो जायेगा कि राजनीतिक शब्दसे मेरा क्या अभिप्राय है।

अधिवेशन समाप्त होनेके पश्चात् परिषदें अपने पीछे कोई कार्यकारी मण्डल नहीं छोड़ जातीं और यदि ऐसा कोई कार्यकारी मण्डल हो भी तो उसमें स्वर्गीय महात्मा गोखलेके[1] शब्दोंमें "अपने धंधोंसे समय मिलनेके बाद कार्य करनेवाले" होते हैं। हमें

१. गोपाल कृष्ण गोखले (१८६६-१९१५); भारतके एक प्रतिष्ठित नेता और राजनीतिज्ञ। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४१७-१८।

ऐसे आदमियोंकी आवश्यकता है जो परिषदोंके प्रस्तावोंको व्यवहारमें लाना ही अपना कार्य समझें। ऐसे ही आदमियोंके अधिक होनेसे परिषदोंका कार्य सुन्दर और सफल हो सकता है। अभी तो बहुत-सा कार्य व्यर्थ जा रहा है। [देशमें भारत सेवक समाज जैसी संस्थाओंकी आवश्यकता है। सेवाको ही धर्म माननेवालोंकी संख्या जब अधिक होगी तभी हम बड़े परिणाम देखनेकी आशा कर सकते हैं।] [हमारे सौभाग्यसे भारत धर्म-बद्ध है इसलिए यदि यह विचार उत्पन्न हो जाये कि इस समय देशसेवा ही धर्मकी अन्तिम सीमा है तो धार्मिक वृत्तिवाले मनुष्य बड़ी संख्यामें राजनीतिक कार्यमें सम्मिलित हो सकते हैं। मेरा विश्वास है कि जिस समय भारतके साधु-संत इस कामको अपने हाथोंमें ले लेंगे, उस समय भारत अपना अभीष्ट सरलतासे सिद्ध कर सकेगा।] जो भी हो, परन्तु हमें इस परिषद्के कामके लिए एक कार्यकारी-मण्डल संगठित करना चाहिए जिसका काम परिषद्के उद्देश्योंको कार्य-रूपमें परिणत करना और कराना हो।

देशमें स्वराज्यकी ध्वनि गूंज रही है। विदुषी श्रीमती एनी बेसेंट लाखों स्त्री-पुरुषोंसे स्वराज्यका मन्त्र जपवा रही हैं। जिस बातको दो वर्ष पहले बहुतसे स्त्री-पुरुष नहीं जानते थे, श्रीमती बेसेंटने[1] अपनी चतुराई और अपने भारी प्रयत्नसे उसी बातका प्रचार कर दिया। लोगोंमें इस आशाका संचार करनेमें कि स्वराज्य दूर नहीं है उनका नाम इतिहासमें प्रथम पंक्तिमें लिखा जायेगा, इसमें सन्देह नहीं। स्वराज्य ही कांग्रेसका आदर्श था और है। स्वराज्यका विचार श्रीमती बेसेंटका दिया हुआ नहीं है, परन्तु यह स्वराज्य थोड़े दिनोंमें प्राप्त हो सकता है, इसका ज्ञान करा देनेवाली यही देवी हैं। इसके लिए उनका जितना उपकार माना जाये, कम है। उन्हें तथा उनके साथी श्री अरुण्डेल[2] और श्री वाडियाको[3] छोड़कर सरकारने कृपा की है तथा यह स्वीकार किया है कि स्वराज्यका आन्दोलन उचित है। हम चाहते हैं कि सरकारने जो उदारता श्रीमती बेसेंट एवं उनके साथियोंके प्रति दिखलाई है वही वह भाई मुहम्मदअली[4] और भाई शौकतअलीके प्रति भी दिखाये। सर विलियम विन्सेंटने[5] इन दोनों भाइयोंके बारेमें जो कुछ कहा है उसमें विचार करने योग्य कितना है — इसकी जाँच करनेकी कोई जरूरत नहीं है। आशा है, प्रजाकी यह प्रार्थना स्वीकार करके सरकार उन्हें छोड़ देगी और उनके छोड़नेसे कोई अयोग्य परिणाम न निकले, इसका उत्तरदायित्व प्रजापर ही रखकर उसको ऋणी बनायेगी। जबतक सरकार इनको न छोड़ेगी तबतक उसकी उदारता

१. एनी बेसेंट (१८४७–१९३३); सुप्रसिद्ध वक्ता तथा थियोसॉफिस्ट; १९१६ में भारतीय होमरूल लीगकी स्थापना की; १९१७ के कांग्रेस अधिवेशनकी अध्यक्ष।

२. डॉ० जॉर्ज सिडने अरुण्डेल; एनी बेसेंट द्वारा संगठित राष्ट्रीय शिक्षा प्रसार समितिके अध्यक्ष; होमरूल लीगके सक्रिय कार्यकर्त्ता।

३. बी० पी० वाडिया; होमरूल लीगके संघटनकर्त्ता।

४. शौकतअलीके छोटे भाई और साप्ताहिक कॉमरेडके सम्पादक। सरकारने प्रथम विश्व-युद्ध शुरू होनेके तुरन्त बाद दोनों भाइयोंको नजरबन्द कर लिया था।

५. सर विलियम विन्सेंट; गवर्नर-जनरलकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य, १९१७। भारतीय परिषद्के सदस्य, १९२३–३१।

अधूरी समझी जायेगी। हमारी उम्मीद है कि सरकार पूर्ण उदारता दिखाकर प्रजाका चित्त जीत लेगी और उसे अपना बना लेगी।

श्री मॉण्टेग्यु साहब आ रहे हैं। उनकी सेवामें पेश करनेके लिए प्रार्थनापत्र[1] तैयार किया गया है और उसपर हस्ताक्षर किये जा रहे हैं। इस प्रार्थनापत्रका प्रधान हेतु [स्वराज्यके बारेमें] प्रजाको शिक्षित करना है। स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए अक्षर-ज्ञान-की आवश्यकता है, यह कहना इतिहासका अज्ञान प्रकट करता है। प्रजामें यह भावना भरनेके लिए कि हमें अपना कामकाज स्वयं करना है, अक्षर-ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है। इस विचारका होना ही काफी है। सैकड़ों अपढ़ राजाओंने अच्छी तरह राज-काज किया है। उपर्युक्त भावना प्रजामें कहाँ तक है, यह देखना और यदि न हो तो उसे उत्पन्न करना — यह उस प्रार्थनापत्रका उद्देश्य है। इसलिए यह जरूरी है कि इस प्रार्थनापत्रपर लाखों स्त्री-पुरुष उसका मतलब समझकर हस्ताक्षर करें। श्री मॉण्टेग्यु-पर ऐसे प्रार्थनापत्रका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा।

कांग्रेस और मुस्लिम लीग द्वारा स्वीकृत योजनामें फेरफार करनेका किसीको अधि-कार नहीं है, इसलिए इसके गुण-दोषोंका विचार करनेका सवाल ही नहीं उठता। प्रस्तुत प्रयोजनकी दृष्टिसे अभी तो हमें इतना ही करना है कि प्रजाके नेताओंने बहुत विचार-पूर्वक जो योजना बनायी है उसे हम अच्छी तरह समझें और ऐसा प्रयत्न करें जिससे उसका अमल हो सके।

यह योजना[2] — स्वराज्य नहीं है, स्वराज्यकी नसैनीपर चढ़ते हुए पैर रखनेकी जगह है। कुछ अंग्रेज आलोचक कहते हैं कि हमें — भारतीयोंको — स्वराज्य भोगनेका अधिकार नहीं; क्योंकि जो लोग स्वराज्य माँगते हैं उनमें हिन्दुस्तानकी रक्षा करनेकी शक्ति ही नहीं है। वे पूछते हैं कि क्या अंग्रेज, सिपाहियोंकी तरह, भारतकी रक्षा करेंगे और भारतीय प्रजा शासन-कार्य चलायेगी। यह प्रश्न हास्यजनक और दुःखद है। हास्यजनक तो यों है कि हमारे अंग्रेज मित्र अपनेको हमसे जुदा मानते हैं। हमारी कल्पना तो यह है कि हम ब्रिटेनके साथ रहकर स्वराज्य भोगेंगे। हम यह नहीं चाहते कि जो अंग्रेज यहाँ बस गये हैं वे यहाँसे चले जायें। बल्कि हम तो उन्हें स्वराज्यके हिस्सेदार मानते हैं। स्वराज्यके संगठनमें यदि उनके हिस्सेमें सिपाहीगीरी आये तो उन्हें शिकायतका कारण नहीं रहता। परन्तु उनका यह कहना कि हम सिपाहीगीरीमें भाग न लेंगे, उतावलापन है। भारतकी वृत्ति जिस समय सैनिक शक्ति प्राप्त करनेकी होगी उस समय वह थोड़े ही समयमें प्राप्त हो जायेगी। संहार करनेकी शक्ति कठोर वृत्तिका परिणाम है और कठोरताका पोषण करनेमें देर नहीं लगती। वह घासकी तरह उग सकती है। प्रश्न दुःखद इसलिए है कि वह स्मरण दिलाता है कि आजतक सरकारने हमें सैनिक शिक्षासे वंचित रखा है। यदि उसने हमें सैनिक शिक्षा देना चाहा होता तो आजतक शिक्षित-वर्गकी एक बड़ी सेना तैयार हो गई होती। इस युद्धमें शिक्षित-दलने

१. २६ नवम्बरको कांग्रेस-लीगके शिष्टमण्डल द्वारा भारत-मंत्री तथा वाइसरॉयको दिया गया था। देखिए परिशिष्ट १।

२. देखिए परिशिष्ट २।

भाग नहीं लिया, इसका दोष शिक्षित-दलकी अपेक्षा सरकारपर ही अधिक है। यदि सरकारकी नीति आरम्भसे भिन्न प्रकारकी होती तो आज सरकारके पास अजेय सेना तैयार होती। लेकिन वर्तमान स्थितिके लिए कौन दोषी है, इस प्रश्नको हम जाने दें। जिस समय अंग्रेजी शासन स्थापित हुआ, उस समय करोड़ोंपर सत्ता चलानेके लिए बुद्धिमानीकी नीति यही मानी गई कि प्रजासे हथियार छीन लिये जायें और उसे सैनिक शिक्षा न दी जाये। लेकिन जब जागे तभी सबेरा समझकर राजा-प्रजा दोनोंको यह भूल सुधार लेनी चाहिए।

ये विचार यह मानकर पेश किये गये हैं कि वर्तमान प्रवाह उचित है। किन्तु वर्तमान स्थिति सब प्रकारसे ठीक है, इस बातसे मैं सहमत नहीं हूँ। हम जो आन्दोलन चला रहे हैं वह पश्चिमी परिपाटीका है। हम जो स्वराज्य चाहते हैं वह भी पश्चिमी नमूनेका है। इसका परिणाम यह होगा कि भारतको पश्चिमी देशोंके साथ प्रतियोगिता करनी पड़ेगी — उनका अनुसरण करना पड़ेगा। कई लोग कहते हैं कि दूसरा रास्ता ही नहीं है। मैं ऐसा नहीं मानता। [भारत यूरोप नहीं है, जापान नहीं है, चीन नहीं है, इसे मैं भूल नहीं सकता। मेरे मनमें तो यह देववाणी समा गई है कि भारत ही कर्म-भूमि है; शेष सब भोग-भूमियाँ हैं। मुझे लगता है कि और देशोंसे इस देशका काम भिन्न है। भारतमें धार्मिक साम्राज्य भोगनेकी शक्ति है। जैसी तपस्या इस देशमें हुई वैसी और कहीं नहीं हुई। भारतको लोहेके हथियारोंकी जरूरत नहीं है। वह तो दिव्य अस्त्रोंसे लड़ता आया है और अब भी लड़ सकता है। अन्य देशोंने शरीर-बलकी उपासना की है।] [यूरोपमें जो दारुण युद्ध अभी चल रहा है वह इसका ज्वलन्त प्रमाण है। भारत आत्मबलसे सब-कुछ जीत सकता है। आत्माकी शक्तिके आगे शरीरकी शक्ति तृणवत् है, इसके अनेक उदाहरण हैं। ऐसा कवियोंने गाया है। अनुभवी मनुष्योंने वर्णन किया है। हृष्ट-पुष्ट ३० वर्षका जवान अपने ८० वर्षके बापके सामने बकरी हो जाता है। यह प्रेम-बलका उदाहरण है।] [प्रेम ही आत्मा है, आत्माका गुण है। इस प्रेमका उपयोग हम श्रद्धापूर्वक समस्त जगत्पर कर सकते हैं। हम धर्मके प्रति अपनी श्रद्धा खो बैठे हैं, इससे आधुनिक तूफानमें हम अपने पैर स्थिर नहीं रख सकते और इधर-उधर धक्के खाते फिरते हैं।] इस बातपर आगे मैं और विचार करूँगा।

अपने इन विचारोंके बावजूद मैं स्वराज्यके आन्दोलनमें भाग लेता हूँ — क्योंकि सरकार आजकल जिस पद्धतिसे शासन कर रही है वह आधुनिक पद्धति है। इस पद्धतिका शुद्ध स्वरूप पार्लियामेंट है, इस बातको सरकार स्वयं मानती है। यदि ऐसी पार्लियामेंट हमें न मिले तो हम 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः' हो जायेंगे [न तो हम स्वराज्यका अपना पुराना आदर्श सिद्ध कर पायेंगे और न हमें नया ही मिलेगा।] श्रीमती एनी बेसेंटका यह कहना बिलकुल ठीक है कि "या तो भारतको स्वराज्य मिले, नहीं तो यहाँ भूखों मरनेका रोग फैल जायेगा।" [मैं आँकड़ोंके फेरमें नहीं पड़ना चाहता। मेरे लिए मेरी आँखोंकी गवाही पर्याप्त है। यह गवाही बताती है कि भारतमें दरिद्रता बढ़ रही है। दूसरा कोई नतीजा हो भी कैसे? जो देश अपना कच्चा माल बाहर भेजता है और बाहरसे उसकी चीज बनकर यहाँ आती हैं तब जो उन्हें लेता है, जो देश स्वयं कपास पैदा करता है फिर भी अपने कपड़ोंके लिए करोड़ों रुपये बाहर

भेजता है उस देशमें गरीबी न हो तो क्या हो? जिस देशमें ब्याह-शादीपर होनेवाले खर्चको फजूल-खर्ची कहते हैं उसे गरीब ही कहना होगा। जो देश प्लेग आदि रोगोंको समाप्त करने योग्य खर्च नहीं कर सकता उसकी स्थिति भिखारी-जैसी ही है। जिस देशके लोग कड़े जाड़ेमें ऊनी वस्त्रोंके अभावमें सोने-जैसा बहुमूल्य खाद जलाकर शीत-निवारण करते हैं, जिस देशके अधिकारी-वर्गकी तनख्वाहोंका बड़ा हिस्सा बाहर देशोंमें खर्च किया जाता है वह देश यदि कंगाल रहे और उस देशकी प्रजा दिनभर-दिन दरिद्र होती जाये तो आश्चर्य ही क्या है। समस्त भारतमें घूमते हुए मैंने कहीं प्रजामें श्री और सम्पन्नता नहीं देखी। मध्यम श्रेणीके लोगोंकी बड़ी दुर्दशा है। कनिष्ठ श्रेणीके लोगोंके पास बस नीचे धरती और ऊपर आसमान है। उनके लिए अच्छा दिन ही नहीं है। भारतका धन पृथ्वीके पेटमें गड़ा हुआ है या जेवरोंमें पड़ा हुआ है, यह कोरी कल्पना है। वह नगण्य है। लोगोंकी आमदनी तो बढ़ी नहीं, खर्च अलबत्ता बढ़ गये हैं। यह दशा सरकारने जान-बूझकर पैदा की है, सो नहीं। मैं मानता हूँ कि सरकारका हेतु शुद्ध है। उसका विश्वास है कि प्रजाकी उन्नति होती जाती है। अपनी "ब्ल्यु बुकों" पर उसकी अटल श्रद्धा है। एक अंग्रेजी कहावत है कि 'अंकोंसे जो चाहे सो सिद्ध हो सकता है'; वह यथार्थ है। इन्हीं आँकड़ोंके बलपर सरकारी अर्थशास्त्री सिद्ध करते हैं कि भारत उन्नति कर रहा है। मेरे जैसे साधारण लोग तो इन आँकड़ोंको देखकर शंका-युक्त हो सिर हिलाते हैं। ऊपरसे देवता आकर कुछ कहें तो भी मैं यही कहूँगा कि "भारतको मैं कंगाल होता देख रहा हूँ।"

हमारी पार्लियामेंट हो तो वह क्या करेगी? जब भारतवर्षमें पार्लियामेंट हो जायेगी तब भूलें करने तथा उन्हें सुधारनेकी सत्ता हमें प्राप्त होगी। पहले तो हमसे भूलें जरूर होंगी; परन्तु चूँकि हम इस देशकी मिट्टीके बने हैं इसलिए उन्हें सुधारनेमें भी देर न लगेगी और इस कंगालीका इलाज भी हमें तुरन्त सूझेगा। तब हम लंकाशायरकी चीजोंपर निर्भर नहीं होंगे। तब हमें अपार धन लगाकर शाही दिल्ली बनानेकी भी आवश्यकता नहीं होगी। शाही दिल्लीका आकार भारतकी झोंपड़ियोंके अनुसार होगा। झोंपड़ियों और पार्लियामेंट हाउसमें कुछ मेल तो रहेगा। प्रजा इस समय निर्धन हो गई है। उसे भूलें करनेका भी हक नहीं रहा। जिसे भूलें करनेका हक न हो वह कभी उन्नति भी नहीं कर सकता। हाउस ऑफ कॉमन्सका इतिहास भूलोंका इतिहास है। एक अरबी कहावत है कि "इन्सान भूलोंका पुतला है।" भूलें करनेका अधिकार और उन्हें सुधारनेकी सत्ता — यह स्वराज्यकी व्याख्या है। यह स्वराज्य पार्लियामेंटमें है और हमें वह आज ही चाहिए। हम उसके योग्य हैं — आज ही। इसलिए हम उसे माँगेंगे तो वह हमें मिलेगा। वह "आज" कब आयेगा यह हमारे ही ऊपर अवलम्बित है।

ब्रिटिश प्रजातन्त्रके — ब्रिटिश प्रजाके आगे रोनेसे स्वराज्य नहीं मिलेगा। ब्रिटिश प्रजा ऐसी माँगको नहीं पहचानती। वह कहेगी — "हम किसीके पास स्वराज्य माँगने नहीं गये। हमने अपनी शक्तिके बलसे उसे प्राप्त किया है। तुम्हें नहीं मिला; क्योंकि तुम अयोग्य हो। जब तुम योग्य होगे तब तुम्हें वह मिलेगा ही।"

यह योग्यता कैसे आयेगी? हमें भारतवर्षकी प्रजासे स्वराज्य माँगना है। हमारी प्रार्थना उसी भारतीय प्रजासे है। [जब भारतवर्षके किसान यह जानने लगेंगे कि स्वराज्य क्या है, तब स्वराज्यको कोई नहीं रोक सकेगा।]

सर विलियम विल्सन हंटरने[1] लिखा है, "ब्रिटिश साम्राज्यमें अभीष्ट सिद्धिका सहजसे-सहज उपाय संग्राममें प्राप्त की हुई विजय है।" यदि हमारा शिक्षित-वर्ग चुपचाप इस लड़ाईमें शामिल हो जाता और अपना हिस्सा अदा करता तो मेरा विश्वास है कि हमारी माँग आज ही पूरी हो जाती; इतना ही नहीं, यह प्राप्ति कुछ अलग प्रकारकी होती है।

हम वहुधा कहते हैं कि भारतके सिपाहियोंने फ्रांस और मेसोपोटामियाके मैदानोंमें अपने प्राणोंकी आहुति दी है। इसका श्रेय हम शिक्षितोंको नहीं मिल सकता। इन सिपाहियोंको हमने तैयार नहीं किया और न सिपाही देशाभिमानसे प्रेरित होकर युद्ध-क्षेत्रमें गये। उनको स्वराज्यका ज्ञान नहीं है। युद्धकी समाप्तिपर वे स्वराज्य माँगेंगे भी नहीं। वे अपने अन्नदाताका नमक अदा करने — अपनी नमक हलालीका परिचय देने — वहाँ गये हैं। स्वराज्यकी माँगके लिए हम उनको बीचमें नहीं ला सकते। शिक्षित-वर्गने लड़ाईमें भाग नहीं लिया है, इसके लिए वह दोषी नहीं है, इतना ही कह सकते हैं।

हमने कठिन समयमें राजभक्ति दिखाई है, इससे भी हमारी योग्यता सूचित नहीं होती। [राजभक्ति गुण नहीं है। राजभक्ति तो राष्ट्रके अस्तित्वकी अनिवार्य आवश्यकता है। राजभक्तिसे स्वराज्य नहीं मिल सकता, यह तो स्वयंसिद्ध है।]

स्वराज्यकी हमारी योग्यताका पता इस बातसे चलता है कि हममें स्वराज्यकी तीव्र इच्छा उत्पन्न हो गई है और हम यह अच्छी तरह जान गये हैं कि अधिकारी-वर्गने चाहे कितने ही शुद्ध भावसे कार्य किया हो, पर अब उसका अन्त समय आ रहा है। बस इतनी योग्यता हमें अपने कार्यके लिए काफी है। स्वराज्यके बिना अब भारतमें शान्ति सम्भव नहीं है।

किन्तु यदि स्वराज्यका आन्दोलन हम केवल सभाएँ करके ही करते रहे तो इससे प्रजाकी हानि होना सम्भव है। [सभाएँ और व्याख्यान योग्य स्थान और योग्य समयपर हों, यह ठीक है; परन्तु सभाओं और व्याख्यानोंसे राष्ट्रका निर्माण नहीं हो सकता।]

जिस प्रजाके हृदयमें स्वराज्यकी तरंगें हिलोरें मार रही हों उसमें और सब दिशाओंमें जागृतिके चिह्न दिखने चाहिए। [स्वराज्यका पहला आधार प्रत्येक व्यक्ति है। "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" यह महावाक्य इस स्थानपर भी बिलकुल सच है। यदि हमारे हृदयमें निरन्तर लड़ाई चलती रहे, यदि हम टेढ़े चलें, अपनी इन्द्रियोंपर अंकुश रखनेके बदले इन्द्रियाँ हमारे ऊपर राज्य करती हों तो हमारे लिए स्वराज्यका अर्थ क्या हो सकता है? पहली सीढ़ी तो यह है कि हम अपने ही ऊपर राज्य करना सीखें।

इसके बाद कुटुम्ब: यदि कुटुम्बमें कलह हो, भाई-भाई लड़ें, कुटुम्बी एक साथ न रह सकें, अविभक्त कुटुम्ब यानी स्वराज्य भोगनेवाले कुटुम्ब भी झगड़कर विभक्त हो जायें तो हम स्वराज्यके योग्य कैसे बन सकते हैं?

१. (१८४०-१९००); भारतीय मामलोंके विशेषज्ञ; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९६।

इसके बाद जाति: यदि हम जातिमें एक दूसरेसे द्वेषपूर्वक व्यवहार करें, जातियाँ अपना काम-काज न चला सकें, उनमें कोई व्यवस्था न हो, बड़े लोग बड़प्पन चाहें तथा जातिभाई स्वेच्छाचारी हों और यदि हम इतना संकुचित स्वराज्य भी न चला सकें तो राष्ट्रीय स्वराज्य कैसे चला सकेंगे?

कुटुम्ब और जातिके बाद शहर: अपने शहरका कारोबार हम स्वयं न चला सकें, अपनी गलियाँ साफ न रखें, हमारे घर खण्डहर हों, रास्ते टेढ़े-मेढ़े हों, शहरका कारोबार चलानेवाले लापरवाह, बे-जवाबदेह अथवा स्वार्थी हों तो हमें विशेष सत्ता ग्रहण करनेका क्या अधिकार है?

शहरकी व्यवस्था कर सकनेमें ही सच पूछिए तो स्वराज्यकी कुंजी है। इसलिए उसके विषयमें अधिक विचार करनेकी आवश्यकता है। भारतमें प्लेगने अपना घर बना लिया है।[1] हैजा तो हमारे साथ है ही। मलेरिया प्रति वर्ष सहस्रों प्राणियोंकी बलि लेता है। दुनियाके दूसरे हरएक हिस्सेमें लोगोंने वहाँसे प्लेगको मार भगाया है। ग्लासगोमें जाते ही वह निकाल दी गई, जोहानिसबर्गमें वह एक ही बार आ सकी।[2] वहाँकी नगरपालिकाओंने बड़े प्रयत्नसे एक ही मासमें उसको निर्मूल कर दिया। परन्तु प्लेगपर हम कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकते। इसके लिए हम सरकारपर दोषारोपण नहीं कर सकते। सच पूछिए तो दरिद्रताको भी हम दोष नहीं दे सकते। प्लेगके प्रतिकारमें हमें कोई भी नहीं रोकता — हमारे रास्तेमें रुकावटें नहीं डालता। अहमदाबाद-जैसा शहर दरिद्रताका बहाना करके नहीं छूट सकता। मुझे डर है कि प्लेगके बारेमें हमें अपनी जिम्मेदारी माननी ही पड़ेगी। यह आश्चर्यकी बात है कि जब हमारे मुहल्लोंमें — हमारे रहनेके स्थानोंमें — प्लेग जारी रहता है, तब अंग्रेजोंके मुहल्लोंमें उसका पता भी नहीं लगता। इसका कारण भी शीघ्र समझमें आ जाता है। वहाँ हवा स्वच्छ रहती है, घर दूर-दूर हैं, रास्ते चौड़े और साफ हैं और पाखानोंकी व्यवस्था बहुत अच्छी है। हमारे यहाँ तो पाखाने जाना नरक-वास करने जैसा है। जिस देशमें ९० फीसदी लोग नंगे पाँव चलते हैं, लोग चाहे जहाँ थूकते हैं, जहाँ चाहें पाखाना फिरते हैं और ऐसे ही रास्तोंपर हमें चलना पड़ता है। ऐसी दशामें यदि वहाँ प्लेग अपना डेरा डाले तो आश्चर्यकी कौन-सी बात है?

जबतक हम अपने शहरोंकी हालत नहीं बदलते, अपनी बुरी आदतोंको नहीं छोड़ते, अपने पाखानोंको नहीं सुधारते तबतक हमारे लिए स्वराज्यका मूल्य कुछ भी नहीं है।

यहाँ एक बात कहना अनुचित न होगा। हम अपने सबसे उपयोगी सेवक मेहतरोंको अस्पृश्य मानते हैं। उसका फल यह होता है कि हम उन्हें अपने पाखाने भी अच्छी तरह साफ नहीं करने देते और खुद उन्हें साफ करते नहीं; क्योंकि धर्मके नामपर हम मानते हैं कि उससे हम अशुद्ध हो जायेंगे। इसलिए यद्यपि हम स्वयं स्वच्छ माने जाते हैं तथापि हमारे घरका एक भाग दूसरे देशोंकी तुलनामें सबसे ज्यादा गन्दा रहता है और इसी कारण हम सदा गंदी हवामें पलते और बड़े होते हैं। जबतक हम गाँवोंमें रहते थे तबतक हम आरामसे थे। परन्तु शहरोंमें हम अपनी कुटेवोंके कारण आत्मघात कर रहे हैं।

१. भारतमें यह बीमारी १९१७ में फैली और जुलाई १९१७ से जून १९१८ के बीच लगभग ८०,००० लोग मरे।

२. १९०४ में; देखिये खण्ड ४, पृष्ठ १६२-३ व ५, पृष्ठ ११४-५।

जहाँ लोग इतनी बड़ी संख्यामें बेमौत मरते हों वहाँ ऐसा ही मालूम होता है कि लोगोंमें धर्म, कर्म और आचारका अभाव है। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि प्लेगको नष्ट करना हमारी शक्तिके बाहर नहीं है। यदि हम प्लेगको निर्मूल कर सकें तो इससे हमारी स्वराज्य-विषयक योग्यता जितनी बढ़ेगी उतनी महान् आन्दोलनसे भी नहीं बढ़ सकेगी। इस सवालपर हमारे डॉक्टरों और वैद्योंको विचार करना चाहिए।

हमारे पड़ोसमें ही डाकोरजीका प्रसिद्ध धाम है। मैंने उसे देखा है। उस पवित्र धामकी अपवित्रताका पार नहीं है। मैं अपनेको शुद्ध वैष्णव मानता हूँ इसलिए मुझे इस विषयमें आलोचना करनेका अधिक अधिकार है। डाकोरजीमें ऐसी घोर गन्दगी है कि जिसे स्वच्छताकी आदत हो उसे डाकोरजीमें एक दिन बिताना भी कठिन हो जाता है। यात्री, जैसा उनके जीमें आता है उस तरह, तालाबको और रास्तोंको गन्दा करते हैं। मन्दिरके मुखिया लोग आपसमें लड़ते हैं और रणछोड़रायजीके आभूषणों आदिकी हिफाजतके लिए "रिसीवर" नियुक्त हुआ है, सो अलग। इस स्थितिको सुधारना हमारा काम है। स्वराज्य लेनेको दौड़नेवाले हम गुजराती यदि अपना ही आँगन साफ न रखें, घर न सुधारें तो स्वराज्यकी सेनामें हम कौन-सी विजय प्राप्त कर लेंगे।

शहरोंमें शिक्षाकी स्थितिपर विचार करनेसे भी निराशा ही होती है। अपने निजी साहससे लोगोंकी शिक्षाका प्रबन्ध करना हमारा पवित्र कर्त्तव्य है। किन्तु होता यह है कि देशमें हजारों बालक अशिक्षित रहते हैं और उनकी शिक्षाके लिए हमारी दृष्टि सरकारपर लगी रहती है।

शहरोंमें शराबका व्यसन बढ़ रहा है। ईरानियोंकी [चाय-आदिकी] दूकानें बढ़ रही हैं। जुआ बढ़ रहा है। यदि हम इन सबका प्रतिकार न कर सकें तो स्वराज्य हम कैसे प्राप्त कर सकेंगे? स्वराज्यका अर्थ ही यह है कि हम अपना कारोबार स्वयं चलायें।

जान पड़ता है कि अब वह समय आ गया है जब हमारे और हमारे बच्चोंके मुँहसे दूध छिन जायेगा — गुजरातमें डेरियाँ हमारा बड़ा अहित कर रही हैं। वे बहुत-सा दूध खरीदकर मक्खन, पनीर इत्यादि बनाकर बेचती हैं। जिस प्रजाका आधार मुख्य करके दूध रहा है वह इस प्रकार अपनी खूराकको कैसे नष्ट होने देती है? ऐसे स्वार्थी मनुष्य क्यों जन्म लेते हैं, जो प्रजाके आरोग्यपर ध्यान न देकर पैसेके लिए उसके खानेकी वस्तुओंका अयोग्य व्यापार करते हैं? दूध, घी तथा दूधकी बनी चीजें प्रजाके लिए इतनी अमूल्य हैं कि नगरपालिकाओंको उनपर पूरा अंकुश रखना चाहिए। हम इस सम्बन्धमें क्या कर रहे हैं?

मैं अभी-अभी एक ऐसे प्रदेशसे आया हूँ, जहाँ बकरीदके मौकेपर दंगे हुए। दो जातियाँ एक क्षुद्र बातपर लड़ पड़ीं, उसमें उपद्रवी लोग शामिल हो गये और झगड़ा बढ़ गया। हम उसका कोई उपाय न कर सके। केवल सरकारकी कार्रवाईपर ही हमें अवलम्बित होना पड़ा। इससे हमारी कमजोरी प्रकट होती है।

यहाँ कुछ देरके लिए गो-रक्षापर विचार करना अप्रासंगिक नहीं होगा। यह एक महत्त्वका सवाल है। फिर भी उसे हल करनेका कार्य हमने तथाकथित गो-रक्षा सभाओंपर छोड़ दिया है। गो-रक्षाकी प्रथा पुरानी मालूम होती है। उसकी उत्पत्ति

इस देशकी विशिष्ट आवश्यकताओंमें से हुई हैं। जहाँ ९० सैकड़ा मनुष्य खेतीपर गुजर करते हैं, जहाँ खेतीके लिए बैलोंकी जरूरत होती है, वहाँ गायकी रक्षा करना सहज कर्त्तव्य हो जाता है। ऐसी जगह मांसाहारीको भी गो-मांसका त्याग करना चाहिए। ये स्वाभाविक कारण गायकी रक्षा करनेके लिए काफी माने जाने चाहिए। पर यहाँ विचित्र परिस्थिति है। यहाँ गो-रक्षाका मुख्य अर्थ यह देख पड़ता है कि गायें मुसलमान भाइयोंके हाथ न पड़ने दी जायें, उन्हें गो-मांसका भक्षण न करने दिया जाये। हमारे शासकोंको गायका मांस जरूरी होता है। उनके लिए रोज हजारों गायोंका वध होता है। इसे रोकनेके लिए हम कुछ नहीं करते। कलकत्तेमें हिन्दू ही फूँकेकी क्रूर क्रियाके द्वारा गायका सारा दूध रोज खींच लेते हैं। हमने शायद ही कभी गायके साथ की जानेवाली इस घोर हिंसाको मिटानेकी चेष्टा की हो। गुजरातमें हिन्दू बैलको हाँकनेके लिए कील लगी लकड़ियाँ काममें लाते हैं। हम इसके खिलाफ कुछ नहीं कहते। अपने शहरके बैलोंकी दशा करुणाजनक है। गाय और उसके वंशकी रक्षा करनेका काम बड़ा भारी है। उसे हमने मुसलमानोंके साथ झगड़ा करनेका संकुचित रूप देकर गो-वध-की वृद्धि की है। गो-रक्षाके लिए मुसलमान भाइयोंका वध धर्म नहीं, अधर्म है। मेरा विश्वास है, यदि हम मुसलमान भाइयोंके साथ प्रेमपूर्वक परामर्श करें तो वे भी भारतकी स्थितिपर ध्यान देकर गायकी रक्षाके लिए कटिबद्ध हो जायेंगे। हम उनसे विनय करें, सत्याग्रह करें, तो गो-रक्षाके कार्यमें हम उनका सहयोग प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु ऐसा करनेके पहले इस प्रश्नका सच्चा स्वरूप समझ लेना चाहिए। अपने भाइयोंके मारनेके बदले हमें स्वयं मरनेको तैयार होना चाहिए। परन्तु इसका होना तभी संभव है, जब हम गायका मूल्य समझ लेंगे और हमारे हृदयमें शुद्ध दयाका स्फुरण होगा। यह कार्य करनेमें एक साथ और भी कई कार्य हो जायेंगे। हिन्दू-मुसलमानोंके बीचका झगड़ा खत्म हो जायेगा, गायकी रक्षा होगी, और शुद्ध और सस्ता घी-दूध मिलेगा। इसके साथ ही हमारे बैल दुनियामें सबसे बढ़कर होंगे। यदि हमारी तपस्या शुद्ध होगी तो हम अंग्रेज, मुसलमान या हिन्दू सबके हाथसे गो-वधका होना रोक सकेंगे। यह एक कार्य भी स्वराज्यको समीप लानेवाला है।

ऊपर जिन सवालोंकी चर्चा हुई है उनमें से अधिकांश नागरिक जीवनसे सम्बन्ध रखते हैं। हम देख सकते हैं कि अपने देशका कारोबार हम तभी चला सकते हैं जब इन नागरिक सवालोंसे सम्बन्धित कारोबारको अच्छी तरह नीतिपूर्वक चला दिखायें।

स्वदेशीका आन्दोलन देशमें नाम-मात्रको ही है, ऐसा कहना गलत न होगा। हमें यह नहीं सूझता कि स्वदेशीमें लगभग स्वराज्यकी चाबी है। यदि हमें अपनी भाषा से अरुचि हो, देशका बना हुआ अपना कपड़ा अच्छा न लगे, अपना पहनावा-पोशाक बुरी मालूम हो, अपनी चोटीकी शरम आये, अपनी जलवायु और भोजन अच्छा मालूम न हो, अपने आदमी अनगढ़ मालूम हों और अपने साथ रहने योग्य न जान पड़ें, अपनी सभ्यता अच्छी न लगे तथा विदेशी सभ्यता अच्छी लगे, सारांश यह कि अपना सब बुरा और विदेशी सब अच्छा लगे तो स्वराज्यका क्या अर्थ रह जायेगा — यह मेरी समझमें नहीं आता। यदि हमें हर चीज विदेशी ही ग्राह्य मालूम होती हो तब तो अभी हमें विदेशी तालीमकी बहुत आवश्यकता है; क्योंकि विदेशी रीति-नीतिने हमारे जन-

समाजमें बहुत ही कम प्रवेश किया है। मेरा खयाल तो यह है कि हमें स्वदेशीके प्रति प्रेम ही नहीं अनुराग भी होना चाहिए। तभी हम स्वराज्यका रसास्वादन कर सकेंगे। हमारे प्रत्येक कार्यमें स्वदेशीकी छाप दृष्टिगोचर होनी चाहिए। स्वराज्यकी इमारत इसी कल्पनाकी नींवपर खड़ी की जा सकती है कि कुल मिलाकर हमारी अधिकांश वस्तुएँ अच्छी हैं। स्वदेशीका आन्दोलन यहाँ बहुत बड़े पैमानेपर होना चाहिए। जहाँ-जहाँ स्वराज्यकी हलचल हुई है वहाँ-वहाँ लोगोंने स्वदेशीके महत्त्वको पूरी तरह समझा है। स्कॉटलैण्डके सिपाही मृत्युके भयसे भी अपना किल्ट [घाघरा] छोड़नेकी इच्छा नहीं करते। हम लोग हँसीमें उन्हें 'घाघरा पलटन' कहते हैं। किन्तु इन घाघरा पहननेवालोंके बलको दुनिया जानती है। वह असुविधाजनक है, शत्रु उसके कारण उन्हें आसानीसे अपना निशाना बना सकते हैं, फिर भी स्कॉटलैण्डके सिपाही उसे छोड़ते नहीं। मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि हम अपने दुर्गुणोंका न त्याग करें; मेरा अभिप्राय यह है कि हमारी चीज विगुण हो तो भी हमारे लिए ग्राह्य है और विदेशी स्वनुष्ठित होनेपर भी त्याज्य है। जो आज विगुण है उसे हम अपने पराक्रमसे गुणपूर्ण कर लेंगे। मैं चाहता हूँ कि इस परिषद्के सदस्योंकी रग-रगमें स्वदेशीके प्रति प्रेम और उत्साह व्याप्त हो। वे महान् संकटों और कष्टोंको सहकर भी स्वदेशी-व्रतको धारण करें और निष्ठापूर्वक उसका पालन भी करें। यदि ऐसा हो जाये तो हमें घर बैठे स्वराज्य मिल जायेगा।

पूर्वोक्त दृष्टान्तोंसे स्पष्ट हो जाता है कि हमारा आन्दोलन दोहरा होना चाहिए। सरकारको आप प्रार्थनापत्र भले ही भेजिए, शाही परिषद्में आप अपने अधिकार भले ही माँगिए; परन्तु लोक-जागृतिके लिए हमें इन कार्योंकी अपेक्षा आन्तरिक आन्दोलनकी ज्यादा आवश्यकता है। बाह्य व्यापारमें दम्भ, स्वार्थ आदिके प्रवेशका भय है; आन्तरिक व्यापारमें इसकी बहुत कम सम्भावना है। आन्तरिक क्रियाके बिना बाहरी क्रिया न केवल शोभेगी नहीं, बल्कि संभव है वह निरर्थक सिद्ध हो। मेरे कथनका यह अर्थ नहीं है कि हम आन्तरिक क्रियासे एकदम खाली हैं। परन्तु मैं यह कह देना चाहता हूँ कि हम आन्तरिक क्रियाको यथेष्ट महत्त्व नहीं देते।

यह भी सुनाई देता है कि एक बार भारतकी शासन-सत्ता हाथमें आ जाने दीजिए, फिर यह सब ठीक हो जायेगा। इससे बड़ा भ्रम और नहीं हो सकता। कोई देश इस प्रकार स्वतंत्र नहीं हुआ। बसन्त जब बहारपर आता है उस समय उसकी शोभा हरएक झाड़में देखी जा सकती है, सारी भूमिमें नवयौवनका संचार हो जाता है। इसी प्रकार जब हम स्वराज्यके बसन्तमें प्रवेश करेंगे उस समय अगर यहाँ कोई यात्री आये तो वह हमारे जीवनमें हर जगह नवयौवनकी ताजगी देखेगा। वह देखेगा कि प्रजाके सेवक अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार विभिन्न सार्वजनिक कार्योंमें लगे हुए हैं।

यदि यह कहा जाये कि हमारी प्रगति यथेष्ट नहीं है तो इसके दो कारण भी स्वीकार करने पड़ेंगे। हमने अपनी स्त्रियोंको अपने आन्दोलनसे अलग रखा, इससे हम पक्षाघातके शिकार हो गये हैं। जनता एक पाँवसे चल रही है। यही कारण है कि उसके सारे कार्य अधूरे और आधे होते देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त देशका शिक्षित समाज विदेशी भाषाके द्वारा शिक्षा पाकर अशक्त हो रहा है। और जो शक्ति वह प्राप्त करता है उसका लाभ देशको नहीं मिलता। इस विषयपर अपने विचार मैं गुज-

रात शिक्षा परिषद्में[1] पेश कर चुका हूँ इसलिए यहाँ उन्हें दुहराना नहीं है। इस परिषद्ने अपना सारा कार्य मातृ-भाषामें करनेका निश्चय करके बहुत अच्छा किया है। मुझे आशा है कि गुजराती जनता किसी भी प्रलोभनमें आकर इस निश्चयसे टलेगी नहीं।

शिक्षित-वर्गका, स्वराज्य-प्रेमियोंका कार्य जन-समाजमें मिले बिना नहीं चलेगा। हम जनताके एक भी अंगकी उपेक्षा नहीं कर सकते, किसीको छोड़ नहीं सकते। सबको साथ लेकर चलेंगे तब हम बढ़ सकेंगे। यदि शिक्षित-वर्ग सामान्य जनतासे मिलता-जुलता रहता तो बकरीदके मौकेपर जो दंगे हुए वे होते ही नहीं।

अन्तिम विषयपर आनेके पहले मुझे एक अन्य कर्त्तव्यका पालन करना है और कुछ सुझाव भी देने हैं।

यमराज प्रतिवर्ष हमारे नेताओंमें से कुछको उठा लेते हैं। पिछले बारह महीनोंमें ऐसी जितनी घटनाएँ हमारे यहाँ हुई हैं उन सबका उल्लेख तो मैं यहाँ नहीं करना चाहता किन्तु हिन्दके दादा ऋषि-तुल्य स्वर्गीय दादाभाई नौरोजीका नाम तो छोड़ा नहीं जा सकता। उनकी देशसेवाकी कीमत आँकनेका काम मेरा नहीं हो सकता। मैं तो उन लोगोंमें से हूँ जो उनके चरणोंमें बैठकर बड़े हुए हैं। ठेठ युवावस्थामें जब मैं विलायत गया तब मैंने उनके दर्शन किये थे। उनके नामका एक सिफारिशी पत्र मैं उनके पास ले गया था; तभीसे मैंने उनकी पूजा करना सीखा। उनकी निष्कलंक और अखण्ड देशसेवा, उनकी निष्पक्ष समदृष्टि, उनका शुद्ध चरित्र एक ऐसा आदर्श उपस्थित करते हैं जिसका भारत हमेशा अनुकरण करता रह सकता है। ईश्वर उनकी आत्माको शान्ति दे। उनके परिवारको और राष्ट्रको यह वियोग सहन करनेकी शक्ति दे। उनके चरित्रको अपने जीवनमें उतारकर और उनकी देशसेवाका अनुसरण करके और अपने हृदयमें स्थान देकर हम उन्हें सदाके लिए अमर कर सकते हैं।

वाइसरॉय महोदयने वीरमगाँवकी सीमापर ली जानेवाली चुंगीको रद करनेकी घोषणा की है, इसके लिए उन्हें धन्यवाद देना हमारा कर्त्तव्य है। यह कार्य जल्दी हो जाना चाहिए था। प्रजा उसके बोझसे पिसी जा रही थी। उसके कारण कई लोगोंका व्यापार चौपट हो गया; कई स्त्रियोंको भी उसके कारण बहुत कष्ट भोगना पड़ा। अभी इस निर्णयपर अमल शुरू हुआ नहीं मालूम होता। आशा है कि शीघ्र ही शुरू हो जायेगा।

रेलके तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंको जो कष्ट होते हैं उसके विषयमें मैंने अपना अनुभव समाचारपत्रोंके द्वारा जनताके सामने रखा है।[2] ये कष्ट सचमुच असह्य हैं। भारतकी प्रजा बड़ी सीधी-सादी है। उसे चुपचाप दुःख सहन करनेकी शिक्षा मिली है। यही कारण है कि वह लाखों दुःख सहती है तथापि उनका निवारण नहीं होता। इस प्रकार दुःख सहन करनेमें बहुत गुण हैं; परन्तु उनकी सीमा होनी चाहिए। निर्बलताके कारण कष्ट-सहन करना पौरुषहीनताका सूचक है। रेलगाड़ियोंमें यात्री जो कष्ट सहते जा रहे

१. देखिए "भाषण: द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलनमें", २०-१०-१९१७।
२. देखिए खण्ड १३, "पत्र: अखबारोंको", पृष्ठ ५५८-६२।

हैं उससे पौरुषहीनता ही सूचित होती है। ये कष्ट दो प्रकारके हैं — एक तो रेल-विभागकी अकर्मण्यतासे होनेवाले और दूसरे यात्रियोंकी लापरवाहीसे होनेवाले। इनके इलाज भी दो प्रकारके हैं: पहला उपाय है कि जिन कष्टोंका सम्बन्ध रेलवे विभागसे है, उनकी शिकायतें पीड़ित लोगोंको रेलवे विभागसे करनी चाहिए। शिकायत गुजरातीमें [अपनी मातृभाषामें] भी लिखी जा सकती है। इसके सिवा समाचारपत्रोंके द्वारा भी पुकार मचाई जाये। दूसरा उपाय यह है कि ज्ञानवान् यात्री अज्ञानी यात्रियोंको ढंग सिखाएँ। उनकी गन्दगी, लापरवाही इत्यादि की ओर उनका ध्यान आकर्षित करें। इस कार्यके लिए स्वयंसेवकोंकी आवश्यकता है। इसमें सब लोग यथाशक्ति भाग ले सकते हैं। नेता लोग कभी-कभी इन दुःखोंका अनुभव करनेके लिए अपना परिचय दिये बिना तीसरे दर्जेमें यात्रा करें। फिर उन्हें जो अनुभव हो उसकी खबर रेलवे विभागको दें। ऐसा करनेपर थोड़े ही दिनोंमें महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखलाई देंगे।

फीजी इत्यादि टापुओंमें भेजे जानेवाले गिरमिटिया मजदूरोंके लिए एक समिति लन्दनमें स्थापित हुई थी। उस कमेटीने अपने विचार बाजाब्ता प्रकाशित किये हैं और भारत-सरकारने उनपर लोगोंकी राय माँगी है। इस विषयपर भी मैं अपनी सम्मति समाचारपत्रोंमें दे चुका हूँ। अतएव यहाँ उसके विवेचनकी आवश्यकता नहीं। मैंने अपनी राय यह दी है कि समितिकी सिफारिशोंका परिणाम भी एक प्रकारका गिरमिट ही होगा। हमें एक ही सम्मति देनी चाहिए और वह यह है कि हम अपने मजदूरोंको किसी प्रकारके बन्धनमें बँधकर विदेश जाते नहीं देखना चाहते। उसकी जरूरत नहीं है। गिरमिटका नियम बिलकुल रद होना अत्यन्त आवश्यक है। उपनिवेशोंको किसी प्रकारकी सुविधा कर देनेके लिए हम बँधे नहीं हैं।

अब मैं अन्तिम विषयपर आता हूँ। अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिके लिए दो मार्ग हैं: सत्याग्रह और दुराग्रह। हमारे ग्रन्थोंमें इन्हीं को दैवी और आसुरी प्रवृत्ति कहा है। सत्याग्रहके मार्गमें सदैव सत्यका आग्रह रहता है। किसी भी कारणसे सत्यका त्याग नहीं किया जाता। इसमें देशके लिए झूठका प्रयोग भी नहीं हो सकता। सत्याग्रहकी मान्यता है कि सत्यकी सदैव ही जय होती है। कभी-कभी मार्ग कठिन जान पड़ता है; परिणाम भयंकर मालूम होता है; और ऐसा लगता है कि सत्यको थोड़ा छोड़ दें तो सफलता मिल जायेगी। किन्तु सत्याग्रही सत्यका त्याग नहीं करता। उसकी श्रद्धा ऐसे समय भी सूर्यके तेजके समान चमकती रहती है। सत्याग्रही निराश तो होता ही नहीं। उसके पास सत्यकी तलवार होती ही है इसलिए उसे लोहेकी तलवार या गोली-बारूदकी आवश्यकता नहीं होती। वह आत्मबल या प्रेमसे शत्रुको भी अपने वशमें कर लेता है। मित्र-मण्डलीमें प्रेमकी कसौटी नहीं होती। यदि मित्र मित्रपर प्रेम करे तो इसमें कोई नवीनता नहीं है। वह गुण नहीं है, उसमें श्रम नहीं है; परन्तु शत्रुके प्रति मित्रता रखनेमें प्रेमकी कसौटी है। इसमें गुण है, श्रम है। इसीमें पुरुषार्थ है और इसीमें सच्ची बहादुरी है। शासन-कर्त्ताओंके प्रति भी हम ऐसी दृष्टि रख सकते हैं। ऐसी दृष्टि रखनेसे हम उनके अच्छे कार्योंका मूल्य आँक सकेंगे और उनकी भूलोंके लिए द्वेष करनेके बजाय प्रेम-भावसे वे भूलें बताकर उन्हें तुरन्त दूर करनेमें समर्थ होंगे। इस प्रेम-भावमें

भयको कोई स्थान नहीं है। निर्बलता तो उसमें हो ही नहीं सकती। निर्बल मनुष्य प्रेम नहीं कर सकता; प्रेम तो शूर ही दिखा सकते हैं। प्रेमकी दृष्टिसे विचार करें तो हमें अपने शासन-कर्त्ताओंको सन्देहकी दृष्टिसे नहीं देखना चाहिए और न यह मानना चाहिए कि वे सब काम बुरी नीयतसे ही करते हैं। हमारे द्वारा प्रेमपूर्वक की हुई उनके कार्योंकी परीक्षा इतनी शुद्ध होगी कि उनके ऊपर उसकी छाप पड़े बिना न रहेगी।

प्रेम लड़ सकता है। प्रेमको कितनी ही बार लड़ना पड़ता है। सत्ताके मदमें मनुष्य अपनी भूलोंको नहीं देखता। इस समय सत्याग्रही बैठा नहीं रहता। वह स्वयं दुःख सहन करता है। सत्ताधीशकी आज्ञा — उनके कानूनों — का सादर निरादर करता है और उस निरादरके परिणामस्वरूप होनेवाले कष्ट — जेल, फाँसी इत्यादि सहन करता है। इस प्रकार आत्मा उन्नत होती है, इसमें जो समय जाता है वह व्यर्थ नहीं जाता।

इस प्रकार विनयपूर्वक किये गये निरादरमें यदि बादमें भूल प्रतीत हो तो इस भूलका परिणाम मात्र सत्याग्रही और उसके साथियोंको सहन करना पड़ता है। इसमें सत्ताधीशसे अनबन नहीं होती, बल्कि अन्तमें वे सत्याग्रहीके वशमें हो जाते हैं। वे समझ लेते हैं कि सत्याग्रहीके ऊपर हमारा शासन नहीं चल सकता; सत्याग्रहीकी सम्मति और इच्छाके बिना वे एक भी काम उससे नहीं ले सकते। यह स्वराज्यकी परिसीमा हुई; क्योंकि इसमें सम्पूर्ण स्वतन्त्रता आ जाती है। ऐसा न समझना चाहिए कि इस प्रकारका सत्याग्रह सभ्य और सुसंस्कृत सत्ताधीशके सामने ही हो सकता है। वज्रके समान कठोर हृदयवाला भी आत्मबलकी अग्निमें पिघल सकता है। नीरो-जैसा क्रूर शासक भी इस बलके आगे बकरीकी तरह दीन बन जाता है। यह अतिशयोक्ति नहीं है। यह तो बीजगणितके समीकरणके प्रश्न समान है। यह सत्याग्रह भारतवर्षका विशिष्ट शस्त्र है। भारतमें और भी शस्त्रास्त्र हैं; परन्तु सत्याग्रहका ही उपयोग यहाँ अधिक हुआ है। यह सर्वव्यापक शक्ति है और इसका प्रयोग प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थितिमें किया जा सकता है। इस सत्याग्रहके लिए कांग्रेस आदिकी मुहरकी भी आवश्यकता नहीं। जिसको इस शक्तिका ज्ञान हो जाता है, वह इसका प्रयोग किये बिना नहीं रहता। पलकें जिस तरह आप ही आँखोंकी रक्षा किया करती हैं उसी प्रकार सत्याग्रह प्रकट होकर आत्म-स्वतन्त्रताकी रक्षा स्वयं ही किया करता है।

दुराग्रह इससे विपरीत लक्षणोंवाली शक्ति है। उसका नमूना जैसा कि ऊपर कहा है यूरोपमें चल रहा दारुण युद्ध है। एक देश दूसरे देशको शरीर-बलसे हराता है, इससे यह कहाँ सिद्ध होता है कि उसका पक्ष सच्चा है? बली मनुष्य प्रायः निर्बल मनुष्यपर अत्याचार करते देखे जाते हैं। निर्बल हार जाता है। इससे न तो उसकी अनीति सिद्ध होती है और न बली ही की नीति सिद्ध होती है। दुराग्रही साधनोंका विचार नहीं करता। उसका लक्ष्य योग्य अथवा अयोग्य साधनोंसे केवल अपनी अभीष्ट-सिद्धिकी ओर ही रहता है। यह तो धर्म नहीं, अधर्म है। धर्ममें किसी प्रकारका असत्य नहीं होता, कठोरता नहीं होती और हिंसा नहीं होती। धर्मकी नाप तो प्रेमसे, दयासे और सत्यसे होती है। इनके त्यागसे प्राप्त हुआ स्वर्ग भी निन्द्य है। सत्यके त्यागसे यदि भारत को स्वराज्य मिलता हो तो वह किसी कामका नहीं। इससे अन्तमें प्रजाका नाश ही होगा। दुराग्रही अधीर होकर अपने माने हुए वैरीका संहार करनेकी इच्छा रखता है।

इसका परिणाम वैर-भावकी वृद्धिके सिवा और कुछ नहीं होता। पराजित शत्रु हृदयमें वैर रखकर समयकी प्रतीक्षा किया करता है। इस तरह वैरकी विरासत पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती जाती है। हम आशा करते हैं कि भारत कभी दुराग्रहको प्रधान पद नहीं देगा। यदि इस परिषद्के सदस्य समझके साथ सत्याग्रहको स्वीकार कर अपनी कार्य-रेखा बनायेंगे तो निश्चय है कि साध्य वस्तु बड़ी आसानीसे प्राप्त कर लेंगे। यह सम्भव है कि प्रारम्भमें निराशा ही दिखाई दे, भले ही कुछ काल तक उसका परिणाम न दिखाई दे; परन्तु अन्तमें सत्याग्रहकी ही जीत होगी। दुराग्रही कोल्हूके बैलकी तरह चक्राकार घूमता रहता है। उसका यह घूमना गति है, प्रगति नहीं। सत्याग्रही लगातार आगे बढ़ता जाता है।

उतावलीमें मेरे विचारोंकी आलोचना करनेवाला कहेगा कि उनमें कितने ही स्थलोंमें अन्तर्विरोध है। एक ओर तो मैं सरकारसे शस्त्रोंकी तालीमकी माँग करता हूँ, दूसरी ओर सत्याग्रहीको सर्वोपरि पद प्रदान करता हूँ। सत्याग्रहमें शस्त्रका क्या काम? सचमुच कोई काम नहीं है। परन्तु शस्त्र-शिक्षाकी आवश्यकता उनके लिए है जो सत्याग्रही नहीं हैं। मैं ऐसी कल्पना नहीं करता कि सारा देश सत्याग्रही बन जायेगा। लेकिन कायर बनकर देशकी सेवा अथवा निर्बलोंकी रक्षा तक न करना सदा सर्वथा त्याज्य है। अत्याचारी मनुष्यसे निरपराधिनी स्त्रीकी रक्षा करनेके लिए या तो हमें अपना बलिदान देकर उसे आत्मबलसे — प्रेमबलसे — वशीभूत करना चाहिए और यदि ऐसी शक्ति न हो तो शरीरबलसे उसको अत्याचार करनेसे रोकना चाहिए। सत्याग्रही और शस्त्रधारी दोनों योद्धा हैं। शस्त्रधारी निःशस्त्र होकर दीन बन जाता है। परन्तु सत्याग्रही कभी दीन बनता ही नहीं। वह नश्वर शरीर या शरीरके शस्त्रोंपर भरोसा नहीं रखता, वह तो अजेय, अमर, अविनाशी आत्माके बलपर युद्ध करता हैं। जो न शस्त्रधारी है, न सत्याग्रही वह आदमी ही नहीं है। उसे आत्माका कुछ भी भान नहीं; अन्यथा वह डरसे कभी भाग नहीं सकता। वह शरीरको कृपणके धनके समान संचय करनेमें सर्वस्व खो बैठता है। उसे मरना नहीं आता। शस्त्रधारी तो प्राण हथेलीपर लिये फिरते हैं; किसी दिन उनके सत्याग्रही होनेकी सम्भावना है। भारतसे हम यह आशा रखते हैं कि यह महान् पवित्र आर्यदेश अपनी आर्यताको — दैवी वृत्तिको — प्रधान पद प्रदान कर अधिकांशमें सत्याग्रहका उपयोग करेगा और शस्त्रक्रियाको सर्वोपरि आसन न देगा। भारतवर्षमें 'शरीरबल सत्य है' — वाले सूत्रका मान न होगा। परन्तु "सत्यमेव जयते" — वाले सूत्रका निस्संशय आदर होगा।

सूक्ष्म-दृष्टिसे विचार करनेपर मालूम होगा कि सत्याग्रहसे हम समाजका सुधार कर सकते हैं। अपनी जाति-प्रथाकी त्रुटियाँ दूर कर सकते हैं, हिन्दू-मुसलमानोंके बीचका झगड़ा दूर कर सकते हैं और अपने राजनीतिक प्रश्नोंको भी हल कर सकते हैं। कार्यकी सरलताके लिए हम इन सब विषयोंको अलग-अलग मानते हैं और यह ठीक भी है, किन्तु हमें भूलना न चाहिए कि उनमें आपसमें प्रगाढ़ सम्बन्ध है। राजनीतिक विषयोंका और धर्म अथवा समाज-सुधारका कोई सम्बन्ध ही नहीं है, यह खयाल ठीक नहीं है। धार्मिक वृत्तिसे हम राजनीतिक सवालोंको जिस तरह हल कर सकते हैं उस तरह धर्मवृत्तिको छोड़कर नहीं कर सकते; धर्मवृत्तिको छोड़कर हम जो फल प्राप्त करेंगे

वह और ढंगका होगा। राजनीतिक विषयोंका विचार करते हुए हम भटकते-रमते छप्पन हजार [लाख] अज्ञात साधुओंको छोड़ नहीं सकते। ऐसे ही मुसलमान भाई फकीरोंको नहीं भुला सकते। हिन्दू समाज विधवाओंके अथवा बाल-विवाहके सवालकी अवगणना नहीं कर सकता। इसी तरह मुसलमान समाज पर्देके प्रश्नको नहीं छोड़ सकता। हिन्दू और मुसलमान, दोनों एक दूसरेके सम्बन्धमें प्रश्न उठाते रहते हैं; इन प्रश्नोंसे भी हम आँखें नहीं मूँद सकते।

सचमुच हमारी कठिनाइयाँ हिमालयके समान हैं। परन्तु जैसी हमारी कठिनाइयाँ हैं वैसे ही बढ़िया साधन भी, उन्हें दूर करनेके लिए, हमारे पास हैं। हम प्राचीन जातिकी सन्तान हैं। रोम, यूनान, मिस्र इत्यादि देशोंकी सभ्यताके क्षयके हम साक्षी हैं। हमारी सभ्यतामें समुद्रके पानीकी तरह ज्वार-भाटा आता रहा है। परन्तु वह समुद्रकी तरह अचल रही है। हमारे देशमें पूर्ण स्वतन्त्र रहनेके लिए आवश्यक समस्त सामग्री उपलब्ध है। यहाँ महान् पर्वत हैं, नदियाँ हैं, सृष्टि-सौन्दर्य है। इसकी सन्तान हमारे लिए पराक्रम की विरासत दे गई है। यह देश तपश्चर्याका भण्डार है। यहाँ सब धर्म साथ रहते हैं। सब देवी-देवताओंकी पूजा होती है। यह सारी साधन-सम्पत्ति होते हुए भी यदि हम कोई अलौकिक कार्य करके संसारको शान्ति प्राप्त न करा सके, अपनी सात्विक प्रवृत्तिसे यदि हम अंग्रेज प्रजाको न जीत सके, तो हम अपनी इस विरासतको लजायेंगे। अंग्रेज जातिके साथ हमारा सम्बन्ध निरर्थक गया माना जायेगा। अंग्रेज जाति साहसी है। उसमें धर्मकी वृत्ति भी है। उसमें अटल आत्म-विश्वास है। वह वीर है; वह स्वतन्त्रताकी आराधना करती है। किन्तु उसमें व्यापार-वृत्तिका स्थान प्रधान है। धनोपार्जन करनेमें उसने योग्य और अयोग्य साधनोंका विचार नहीं किया है; वह आधुनिक सभ्यताकी पूजा करती है। उसके मनपर से प्राचीन आदर्शोंका प्रभाव बहुत कम हो गया है। यदि हम उस जातिकी नकल करनेके बदले अपनी प्राचीन विरासतका खयाल रखें, अपनी सभ्यताके प्रति सच्चा भाव रखें, उसकी श्रेष्ठतापर हमें दृढ़ विश्वास हो, तो हम उस जातिके साथ अपने सम्बन्धका सदुपयोग करेंगे और अपनेको उससे तथा सारे संसारको लाभ पहुँचायेंगे। जगन्नियन्ता परमात्मासे मेरी प्रार्थना है कि यह परिषद् इस महान् कार्यमें अपना पूरा हिस्सा अदा करे और गुजरात और भारतवर्षकी कीर्तिको उज्ज्वल करे।

[गुजरातीसे]

महात्मा गांधीनी विचारसृष्टि

१५. प्रस्ताव: प्रथम गुजरात राजनीतिक परिषद्में – १[1]

नवम्बर ४, १९१७

१. यह परिषद् दादाभाई नौरोजीके निधनपर शोक और उनके परिवारके प्रति अपनी समवेदना प्रकट करती है तथा ईश्वरसे प्रार्थना करती है कि इस महात्मा पुरुषको शान्ति मिले।

२. परिषद् अखिल भारतीय मुस्लिम लीग तथा कांग्रेसके प्रसिद्ध नेता श्री अब्दुल रसूलके स्वर्गवासहोनेपर दुःख प्रकट करती है और उनके परिवारके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करती है एवं भगवान्से प्रार्थना करती है कि उनकी आत्माको शान्ति मिले।

३. श्री मॉण्टेग्यु महोदय अपने यात्रा-कार्यक्रमके अनुसार २४ दिसम्बर, १९१७ से २ जनवरी, १९१८ तक वम्बईमें रहेंगे। लेकिन उस सप्ताहके दौरान कांग्रेस तथा मुस्लिम लीगकी कलकत्तेमें जो सभा होनेवाली है उसमें सम्मिलित होनेके लिए इस प्रान्तके नेता कलकत्ते गये हुए होंगे और इस कारण उन्हें श्री मॉण्टेग्युके साथ परामर्श करनेका अवसर नहीं मिल सकेगा। इसलिए यह परिषद् सरकारसे अनुरोध करती है कि वह ऐसा प्रवन्ध करे जिससे श्री मॉण्टेग्यु पूर्वोक्त सप्ताह वम्वईमें व्यतीत न करके कलकत्तेमें व्यतीत करें।

४. यह परिषद् गुजरातकी कांग्रेस समितियों, होमरूल लीगकी शाखाओं तथा अन्य राजनैतिक संस्थाओंसे आग्रहपूर्वक विनती करती है कि वे कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग द्वारा अंगीकार की गई स्वराज्य-योजनाके लिए निरन्तर कार्य करें; उसी प्रकार परिषद् गुजरातियोंको सलाह देती है कि वे श्री मॉण्टेग्युको भेजे जानेवाले स्वराज्य-सम्बन्धी प्रार्थनापत्रपर[2], जिसपर फिलहाल हस्ताक्षर लिये जा रहे हैं, अधिकसे-अधिक संख्यामें हस्ताक्षर लें।

[गुजरातीसे]

गुजराती, ११-११-१९१७

१. ये प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत किये गये थे और सम्भवतः इनका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था।

२. श्री मॉण्टेग्युको भेंट की गई याचिका; इसका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था। देखिए खण्ड १३ पृष्ठ ५३७। बिहार और उड़ीसाके लोगोंकी ओरसे भी एक वैसा ही प्रार्थनापत्र भेजा गया था।

१६. भाषण : प्रथम गुजरात राजनीतिक परिषद्में – २

[गोधरा]
नवम्बर ४, १९१७

परिषद्की कार्रवाई शुरू करनेसे पहले गांधीजीने वीरमगाँव सीमापर ली जानेवाली चुँगी रद्द करनेके सरकारके निर्णयकी घोषणा की :

वीरमगाँवमें ली जानेवाली चुंगीके सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार चल रहा था और मैंने [कुछ समय पहले] पूछताछ की थी कि यह कर कबतक उठा दिया जायेगा। मुझे यह बताते हुआ प्रसन्नता हो रही है, यह कर उठा दिया जायेगा और इससे सम्बन्धित सरकारी प्रस्ताव, 'गजट' के आगामी अंकमें प्रकाशित कर दिया जायेगा।

श्री जिन्नाने[1] सुधारोंके लिए कांग्रेस-लीग योजना सम्बन्धी प्रस्ताव गांधीजीके अनुरोधपर[2] गुजरातीमें पेश किया और गांधीजीने उनको धन्यवाद देते हुए कहा :

श्री जिन्नाने मेरे सुझावको मानकर मुझपर उपकार किया है। आज वे शाही विधान परिषद्के सदस्य हैं। लेकिन कल उन्हें हिन्दू, मुसलमान, घांची[3], गोला[4] आदि अंग्रेजी न जाननेवाले लोगोंके पास मत माँगनेके लिए जाना पड़ेगा। इसलिए, यदि उन्हें गुजराती न आती हो तो उन्हें सीखनी चाहिए।

गांधीजी द्वारा इस प्रस्तावपर लोकमान्य तिलकसे बोलनेके लिए अनुरोध किये जानेपर श्री तिलक किस भाषामें बोलें, यह प्रश्न उठा। इस सम्बन्धमें अपना निर्णय देते हुए गांधीजीने कहा :

आप स्वराज्य माँगते हैं तो अपने द्वारा निर्वाचित किये गये सभाध्यक्षका कहना आपको मानना चाहिए। श्री तिलक गुजराती समझते हैं, बोल नहीं सकते। वे अपनी

१. मुहम्मद अली जिन्ना (१८७९–१९४८); बैरिस्टर और राजनीतिज्ञ। पाकिस्तानके संस्थापकोंमें से एक तथा उसके प्रथम गवर्नर-जनरल।

२. ६–११–१९१७के बॉम्बे क्रॉनिकलमें निम्नलिखित संक्षिप्त रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी: मु० अ० जिन्नासे उस प्रस्तावको, जिसमें श्री मॉण्टेग्युकी भावी यात्राके सम्बन्धमें परिषद्की ओरसे कृतज्ञता प्रकट की गई थी और हाल ही में भारत-मन्त्री द्वारा घोषित नीतिकी प्रथम किश्तके रूपमें कांग्रेस-मुस्लिम लीगकी सुधार योजनापर स्वीकृति दिये जानेकी प्रार्थना की गई थी, पेश करनेका अनुरोध करनेसे पूर्व गांधीजीने कुछ शब्द कहे जिनमें उन्होंने स्वयं श्री जिन्ना द्वारा ही प्रस्ताव पढ़े जानेके कारणोंका जिक्र किया तथा उनसे गुजरातीमें बोलनेका अनुरोध किया।

बादमें, गांधीजीने अध्यक्ष-पदसे एक प्रस्ताव पेश किया। इसमें श्री मॉण्टेग्युसे ऐसे समय अपनी बम्बई यात्राको स्थगित करनेका अनुरोध किया जिस समय सब प्रमुख नेता शहरसे बाहर होंगे तथा उनसे कलकत्तेमें होनेवाले कांग्रेस-मुस्लिम लीगके अधिवेशनमें उपस्थित होनेको प्रार्थना की।

३ व ४. शिक्षाकी दृष्टिसे पिछड़ी जातियोंके नाम।

मातृभाषामें[1] ही बोलेंगे। वे वृद्ध हो गये हैं, लेकिन यदि वे गुजराती शिक्षक रखकर गुजराती सीखें तो यह उचित ही होगा। हम तो बम्बई प्रदेशके रहनेवाले हैं, इसलिए जनताकी भावनाओंको जाननेके लिए [हमें] दोनों भाषाओंका अभ्यास करना चाहिए। महारानी विक्टोरियाने उर्दू सीखी थी।

[गुजरातीसे]

गुजराती, ११-११-१९१७

१७. भाषण : प्रथम गुजरात राजनीतिक परिषद्में – ३[2]

नवम्बर ५, १९१७

कुछ-एक सुन्दर भाषण पूरे नहीं करने दिये गये, उसके लिए मुझे अफसोस है; मैं उन सज्जनोंसे क्षमा माँगता हूँ। जिनकी उमंगें मनमें रह गई हों, वे किसी अन्य रीतिसे उन्हें प्रकट कर सकते हैं। मुझे गोधराके निवासियोंके प्रेमको त्यागकर आज ही जाना पड़ेगा। अधिक रहा होता तो शान्ति मिलती, लेकिन फिलहाल जहाँ दावाग्नि सुलग रही है वहाँ शान्ति कहाँ? जो गीत गाया गया वह कानोंको मधुर लगा, लेकिन इतनेसे ही बात खत्म नहीं हो जाती। मुझे उम्मीद है कि उन वचनोंको आप व्यावहारिक जीवनमें उतारेंगे। गीत गानेके बाद यदि आप देश कल्याणके निमित्त अपने प्राण उत्सर्ग करेंगे तो श्री तलाटीने[3] जो आशा प्रकट की है वह अवश्य पूर्ण होगी। यदि आप बारह मासके भीतर स्वराज्य प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा लेनेका साहस करें तो वह प्रतिज्ञा ली जाये। हमने परिषद्में देखा कि मातृभाषामें कितनी शक्ति है। हमारी भाषा विधवाके समान है। श्री खापर्डे[4] आदिने मातृभाषाकी खूबियाँ बताई हैं। श्री तिलकने कल जो भाषण दिया उसे लगभग ७५ प्रतिशत लोगोंने समझा। [विदेशी भाषा सुवर्णमय होनेपर भी उपयोगी नहीं हो सकती। हमारी भाषा तृणवत् हो, तो उसे स्वर्णमय बनाना चाहिए।]

पास किये गये प्रस्तावोंमें पाँच प्रस्ताव ऐसे मामलोंसे सम्बन्धित हैं जिन्हें हम एक वर्षके भीतर पूरा कर सकते हैं। बेगारसे सम्बन्धित प्रस्तावको कार्यकारिणी समिति यदि एक वर्षमें पूरा नहीं करती तो सदस्योंको त्यागपत्र दे देना चाहिए। यदि वे विद्यार्थियोंकी स्थितिमें सुधार करनेमें सफल न हों तो उन्हें चूड़ियाँ पहन लेनी चाहिए।

१. मराठी।

२. यह गांधीजीका समापन भाषण था। ७-११-१९१७ के बॉम्बे क्रॉनिकलमें कहा गया था कि "परिषद्को विसर्जित करते हुए श्री गांधीने एक छोटेसे भाषणमें उनसे अनुरोध किया कि वे अपने प्रचारके कार्यको जारी रखें और श्री मॉण्टेग्युको भेजे जानेवाले आवेदनपत्रपर लोगोंसे हस्ताक्षर लें।"

३. उन्होंने यह आशा प्रकट की थी कि स्वराज्य प्राप्तिके बाद प्रथम सम्मेलन गुजरातमें स्थित नडियादमें हो।

४. जी० एस० बाबासाहब खापर्डे, बरारके प्रसिद्ध वकील और बाल गंगाधर तिलकके प्रबल समर्थक।

पुरुषोंको चूड़ियाँ पहनना शोभा नहीं देगा। मुहम्मदअली और शौकतअलीको छुड़वानेके लिए भी हमें प्रयत्न करना होगा। मुस्लिम लीगके अध्यक्षका पद खाली रहे, यह नहीं हो सकता।

[गुजरातीसे]

गुजराती, ११–११–१९१७

१८. प्रस्ताव: प्रथम गुजरात राजनीतिक परिषद्में – २[1]

नवम्बर ५, १९१७

५. काठियावाड़से ब्रिटिश हद्दमें आनेवाली कुछ-एक वस्तुओंपर, वीरमगाँव चुंगीके नामसे प्रसिद्ध जो सीमा-शुल्क लिया जाता है, माननीय वाइसरॉयने उसके हटा दिये जानेकी घोषणा की है। उसके लिए यह परिषद् उनको धन्यवाद देती है तथा उनसे उस प्रस्तावको तुरन्त अमलमें लानेका अनुरोध करती है।

६. हमेशासे चले आ रहे रिवाजके मुताबिक किसानोंसे भूमिकर दो किस्तोंमें न लेकर एक ही किस्तमें लिया जाता है, जिससे गरीब खेतिहरोंको बहुत अधिक दिक्कत उठानी पड़ती है। तथा जीवन-निर्वाह करनेके अपने विशेष उपकरणोंको बेचकर उक्त कर चुकाना पड़ता है। अन्तः, परिषद् सरकारसे प्रार्थना करती है कि भूमि-कर दो किस्तोंमें वसूल किया जाये तथा किस्त लेते समय फसलकी स्थितिको ध्यानमें रखा जाये।

७. प्रत्येक जिलेके उप-विभागीय अधिकारी चौमासेमें जिलोंके सदर मुकाममें नहीं रहते। परिषद्के विचारानुसार उन्हें विभागके प्रमुख गाँवमें रहना चाहिए। दाहोदके जिला डिप्टी कलक्टरका दफ्तर कुछ अरसेसे बरसातमें गोधरा चला जाता है जिससे झालोद, भीमड़ी आदिकी जनताको काफी परेशानी उठानी पड़ती है तथा आने-जानेपर भी बहुत खर्च आ जाता है। इसलिए, यह परिषद् सरकारसे निवेदन करती है कि मुख्य कार्यालय दाहोदमें ही रहे।

८. भारत रक्षा कानूनके अन्तर्गत राजनीतिक कारणोंसे जिन स्त्री-पुरुषोंको नजरबन्द किया गया है यह परिषद् सरकारसे उन लोगोंको रिहा कर दिये जानेका अनुरोध करती है और अपनी यह राय प्रकट करती है कि माननीय वाइसरॉय द्वारा व्यक्त, श्री मॉण्टेग्युके यहाँ पधारनेपर सर्वत्र शान्तिकी इच्छा तभी फलीभूत होगी जब सब कैदियोंको मुक्त कर दिया जायेगा।

९. राजस्व-सम्बन्धी मामलों और जिलेमें शान्ति सुव्यवस्था बनाये रखनेके सम्बन्धमें कलक्टर फिलहाल तो मामलतदारों और पुलिस द्वारा पेश किये गये इकतरफा तथ्योंपर ही निर्भर करते हैं, उससे अनेक बार जिलेके प्रशासनमें बहुत बड़ी भूल

१. ये प्रस्ताव परिषद्के तीसरे दिन पेश किये गये थे और सम्भवतः इनका मसविदा गांधीजीने तैयार किया था।

हो जाती है तथा लोगोंको अन्याय सहन करना पड़ता है। इसलिए, यह परिषद् सरकारसे सिफारिश करती है, वह प्रत्येक जिलेसे निर्वाचित सदस्योंका एक सलाहकार बोर्ड नियुक्त करे।

१०. हाल ही में गुजरातमें जहाँ-तहाँ प्रजाके हितका विचार किये बिना कुछ लोगोंने दूध [से मक्खन आदि निकालने] की मशीनें लगा रखी हैं और सरकार भी ऐसा ही कर रही है; फलस्वरूप लोगोंको दूध, घी आदि पौष्टिक खुराक नहीं मिलती। इसके लिए यह परिषद् सरकारको सुझाव देती है कि इन मशीनोंको तुरन्त बन्द कर दिया जाये।[1]

[गुजरातीसे]

गुजराती, ११-११-१९१७

१९. भाषण : समाज-सम्मेलनमें[2]

गोधरा
नवम्बर ५, १९१७

प्यारे भाइयो,

हम उन लोगोंके बीचमें हैं जिन्हें आप ढेढ, भंगी, अन्त्यज या ऐसा ही दूसरा नाम देते हैं। मेरा खयाल है कि मेरे पास यहाँ वकील और डॉक्टर तथा अन्य सज्जन भी बैठे हैं। हम आज कथित अवनत वर्गोंसे मिल गये हैं। हमें अब स्वराज्य अवश्य मिल जायेगा। (करतल-ध्वनि)। हम हिन्दू और मुसलमान एक हो गये हैं; यहाँ हम इस ढेढ जातिसे मिल-जुल रहे हैं। हम यह न मानें कि इस जातिका दर्जा नीचा है; आप इस जातिसे हिल-मिलकर एक हो जायें और तब आप स्वराज्यके योग्य हो जायेंगे। हमने इस जातिके प्रति इतनी उपेक्षा बरती, यह हमने ईश्वरके सम्मुख पाप किया है; इसीलिए हमने इससे पूर्व स्वराज्यका अधिकार खो दिया था। हम अन्त्यजोंको छूनेसे क्यों झिझकते हैं? किसी भी समाजके धर्मग्रन्थमें यह नहीं कहा गया है कि हमें इस जातिको नहीं छूना चाहिए या उससे ऐसा व्यवहार करना चाहिए जैसा हम इस समय कर रहे हैं। जातियोंकी तुलनामें इस जातिको निम्नतम स्थान देना भूल है। मुझे विश्वास है कि जहाँ हृदय एक हो जाते हैं वहाँ ईश्वरका वास होता है। ईश्वर सर्वशक्तिमान् है; यद्यपि हममें से कुछ लोग इसपर विश्वास नहीं करते और इसीलिए

१. गोधरासे नवम्बर ५, १९१७को प्रकाशित एक पुस्तिकामें यह प्रस्ताव विस्तारपूर्वक दिया गया है जो सम्भवतः गांधीजी द्वारा तैयार नहीं किया गया था। यहाँ दिये गये प्रस्तावोंका मिलान ८-११-१९१७के **मुम्बई समाचार**में प्रकाशित विवरणसे कर लिया गया है।

२. गुजरात राजनीतिक परिषद्में एकत्रित उच्च वर्गोंके अनुरोधपर ढेढ जातिने अपनी एक सभा की थी। इसकी अध्यक्षता करते हुए गांधीजीने गुजरातीमें यह भाषण दिया था। अब्बास तैयबजी, विट्ठलभाई जे० पटेल, रतनसी धरमसी, मोरारजी गोकलदास और अन्य लोग इसमें सम्मिलित हुए थे।

हम आपसमें लड़ते-झगड़ते हैं। हममें और इस जातिके लोगोंमें क्या अन्तर है? उनके भीतर भी वैसा ही हृदय है, उनकी भी वैसी ही नाक है, वैसी ही जीभ है और उनकी भावनाएँ भी वैसी ही हैं। वे सभी बातोंमें तो मिलते-जुलते हैं। (हर्ष-ध्वनि)। जहाँ हृदयोंमें अन्तर होता है वहाँ भगवान् रामचन्द्रका वास नहीं हो सकता। वहाँ इमाम भी नहीं होते। (हँसी)। ईश्वर राजनीतिक परिषद्में था, ऐसा मेरा खयाल नहीं है। (हँसी)। किन्तु मुझे विश्वास है कि वह यहाँ अवश्य है। (हर्ष-ध्वनि)। मैं यहाँ कोई लम्बा भाषण देनेके लिए नहीं आया हूँ। मैं तो यहाँ एक पदार्थ-पाठ सिखाने आया हूँ। (हर्ष-ध्वनि)। समाज-सुधारके सम्बन्धमें यह पदार्थ-पाठ अन्यत्र नहीं मिलेगा। (हर्ष-ध्वनि)। यहाँ बहुत बड़ा जनसमुदाय इकट्ठा है। यह एक महासागरके समान है। कोई भी इस पानीको अपना भात पकानेके काममें ला सकता है। (हँसी)। सभी बोलें। अब मैं माननीय श्री पटेलसे भाषण देनेकी प्रार्थना करता हूँ। (जोरकी हर्ष-ध्वनि)

इसके बाद एक ढेढ युवकने बोलनेकी अनुमति माँगी। वह बहुत घबराया हुआ-सा आगे बढ़ा। उसने कहा, मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। मैं ढेढका बेटा हूँ। मैं अपनी जातिकी ओरसे इस जन-समुदायको धन्यवाद देता हूँ और बाबाजी (श्री पटेल)के प्रति प्रेम और कृतज्ञताकी यह श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। उसमें धीरे-धीरे आत्मविश्वास बढ़ा और उसने अपनी जातिके इस दावेको पुष्ट करनेका प्रयत्न किया कि ढेढोंका स्थान राजपूत जातियोंमें अग्रिम है।

श्री गांधी उसका भ्रम-निवारण करनेके लिए एक बार फिर खड़े हुए। उन्होंने उसे यह सलाह दी कि वह अपने वंशके मूलके सम्बन्धमें ऐसी बेसिर-पैरकी बातोंपर विश्वास न करे। उन्होंने ढेढोंको भी सलाह दी कि वे अपने उद्भवके सम्बन्धमें सन्तोष करें और अपने प्रयत्नोंसे ऊँचे बनें, क्योंकि अब उन्हें उच्च वर्गोंने भी ममतापूर्वक सहारा दिया है।

इसके बाद अन्य वक्ताओंके भाषण हुए और उन सभीने ढेढ जातिको सान्त्वना देने और प्रोत्साहित करनेका प्रयत्न किया . . .।

श्री गांधीने अन्तमें भाषण देते हुए कहा कि उच्च वर्ग ढेढोंके प्रति अपनी शाब्दिक सहानुभूतिको व्यवहारिक रूप दें और ढेढोंके बच्चोंके लिए एक स्कूल खोलने और चलानेके लिए चन्दा दें। उनकी अपीलपर १६५३ रुपये तत्काल इकट्ठे हो गये।[1]

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९१७

१. इसके बाद गांधीजीको और अन्य लोगोंको मालायें पहनाई गईं और सभा "गांधीजीकी जय"के नारे लगाती हुई विसर्जित हो गई।

२०. भाषण : अन्त्यज परिषद्में

गोधरा
नवम्बर ५, १९१७

जिनके[1] सहारे मैं खड़ा हूँ उनको लक्ष्य करके कहता हूँ कि [अपनी बाहरी पोशाकसे वे जैसी साधुवृत्तिके लगते हैं, यदि भीतरसे भी वैसी ही साधुवृत्तिके हों तो स्वराज्य जल्द ही मिल जायेगा।] वे धारासभामें भी इसी वेशमें संघर्ष चलायें तो हमारी इच्छा और भी जल्दी पूरी हो। अन्त्यज भाइयोंसे मैं यह कहता हूँ कि आज आप हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचमें बैठे हैं। [हिन्दू धर्ममें यह बात कहीं भी नहीं है कि जो लोग हमारी सेवा करते हैं उन्हें छूनेमें पाप होता है। इतनी भीड़ होनेके बावजूद किसीका पैर तक नहीं कुचला गया। जहाँ ऐसी शांति हो वहाँ परमेश्वर है ही। ईश्वर सर्वव्यापी है, यह सूत्र किसी राजनैतिक सम्मेलन अथवा संसार-सुधार परिषदमें निश्चित किया गया हो, यह मैं नहीं मानता; लेकिन वह यहाँ तो अवश्य उपस्थित है। जहाँ पाखण्ड, झूठ, भेदभाव तथा अमुक व्यक्तिको स्पर्श न करनेकी मान्यता हो वहाँ विष्णु भगवान्, खुदा अथवा रसूल उपस्थित नहीं रह सकते।]

इसके बाद गांधीजीने गंगाबेनसे[2] अन्त्यजोंको आश्रय देने और उन्हें पढ़ना-लिखना सिखानेका अनुरोध किया।

[गुजरातीसे]
गुजराती, ११-११-१९१७

२१. हिन्दू धर्मके माथेपर कलंक

[गोधरा
नवम्बर ५, १९१७ के बाद]

[अछूतोंका एक जुदा वर्ग बना देना हिन्दू धर्मके माथेपर कलंक है। जात-पाँत एक बन्धन है, पाप नहीं। अछूतपन तो पाप है, सख्त जुर्म है, और यदि हिन्दू धर्म इस बड़े साँपको समय रहते नहीं मार डालेगा, तो वह उसको खा जायेगा। अछूतोंको अब हिन्दू धर्मके बाहर हरगिज न समझना चाहिए। उन्हें हिन्दू-समाजके मातबर आदमी समझना चाहिए और उनके धन्धेके मुताबिक वे जिस वर्णके लायक हों, उसी वर्णका उन्हें समझना चाहिए।]

१. विट्ठलभाई जे० पटेल, जो बादमें मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारोंके अन्तर्गत केन्द्रीय विधान सभाके सर्वप्रथम स्पीकर निर्वाचित हुए थे। वे परिषदमें साधु-वेशमें उपस्थित हुए थे।

२. साबरमती आश्रममें निवास करनेवाली एक महिला जिन्होंने आगे चलकर चरखे अथवा करघेके जनप्रिय रूपका प्रचलन किया।

वर्णकी मेरी की हुई व्याख्या या तारीफके हिसाबसे तो आज हिन्दू धर्ममें वर्ण-धर्मका अमल होता ही नहीं। ब्राह्मण नाम रखनेवाले विद्या पढ़ाना छोड़ बैठे हैं। वे और-और धन्धे करने लगे हैं। यही बात थोड़ी-बहुत दूसरे वर्णोंके बारेमें भी सच है। असलमें विदेशी हुकूमतके नीचे होनेके कारण हम सब गुलाम हैं और इस तरह पश्चिम-वालोंकी निगाहमें शूद्रसे भी हल्के अछूत हैं।

ईश्वर यह अत्याचार क्यों चलने देता है? रावण राक्षस था, पर यह अस्पृश्यता-रूपी राक्षसी तो रावणसे भी भयंकर है। और इस राक्षसीकी धर्मके नामपर जब हम पूजा करते हैं, तब तो हमारे पापकी गुरुता और भी बढ़ जाती है।...इससे हब्शियोंकी गुलामी भी कहीं अच्छी है। यदि इसे धर्म कहें तो ऐसे धर्मसे मुझे घृणा होती है। यह हिन्दू धर्म हो ही नहीं सकता। मैंने तो हिन्दू धर्म द्वारा ही ईसाई धर्म और इस्लामका आदर करना सीखा है। फिर यह पाप हिन्दू धर्मका अंग कैसे हो सकता है? पर क्या किया जाये?

इस पाखण्ड और अज्ञानके खिलाफ यदि जरूरत पड़े तो मैं अकेला लडूँगा, अकेला तपश्चर्या करूँगा और उसका नाम जपते हुए मरूँगा। शायद ऐसा भी हो कि मैं किसी दिन पागल हो जाऊँ और कहने लगूँ कि मैंने अस्पृश्यता सम्बन्धी विचारोंमें भूल की। अस्पृश्यताको हिन्दू धर्मका पाप कहकर मैंने पाप किया, तो आप मानना कि मैं डर गया हूँ, सामना नहीं कर पाया और हारकर अपने विचार बदल रहा हूँ। उस दशामें आप मानना कि मैं बेहोशीमें क्या-कुछ बक रहा हूँ।

मेरी अल्प बुद्धिके अनुसार तो भंगी जो मैल उठाता है, वह शारीरिक है और वह तुरन्त दूर किया जा सकता है। किन्तु जिनपर असत्य और पाखण्डका मैल चढ़ गया है, उनका मैल इतना सूक्ष्म है कि उसे दूर करना बहुत कठिन है। यदि किसीको अस्पृश्य गिन सकते हैं तो असत्य और पाखण्डसे भरे हुए इन लोगोंको ही।[1]

गोधराके महारवाड़ेमें भंगी, डोम आदि अछूत जातियोंका जो जलसा हुआ था उसके सम्बन्धमें 'गुजराती' नामक पत्रमें बड़ी आलोचना की गई है। और इन आलो-चकोंने वास्तविक घटनाका विवरण तोड़-मरोड़कर दिया है और उससे पाठकोंके मनमें भ्रम उत्पन्न किया है। अतः उसे दूर करनेके लिए मैं निम्नलिखित पंक्तियाँ लिख रहा हूँ।

धर्म सम्बन्धी बातोंमें मैं अपने आपको बालक नहीं, किन्तु खासा ३५ वर्षोंका तजुर्बेकार समझता हूँ। क्योंकि इतने वर्ष मैंने धर्मके विषयका विचार और मनन किया है। विशेषकर मुझे जहाँ-जहाँ सत्य दीख पड़ा, वहाँ-वहाँ मैंने उसे कार्यमें परिणत किया। मेरी धारणा है कि निरे शास्त्राभ्याससे ही धर्मका स्वरूप हस्तगत नहीं होता। हम

१. इसके बाद यहाँ जो अनुच्छेद आते हैं उनका सारांश गांधीजीने अपने उस पत्रमें भी दिया है जो उन्होंने नवम्बर ५, १९१७ को गोधरामें हुई अन्त्यज परिषद्की **गुजराती** द्वारा की गई टीका-टिप्पणीके सम्बन्धमें उसको लिखा था। पत्र **गुजराती**के ३०-११-१९१७ के अंकमें प्रकाशित किया गया था।

सदा ही देखते हैं कि शास्त्र-पठन किये बिना और नियमोंके पालनके बिना मनुष्य मनमाने मार्गसे चलने लगता है। मैं ऐसे मनुष्यसे शास्त्रका अर्थ न पूछूँगा, जिसने लोगोंसे पण्डित कहानेके लिए शास्त्र पढ़े हैं। इसीलिए मैक्समूलर जैसे महान् विद्वानोंने विकट अध्ययनके अनन्तर जो पुस्तकें लिखी हैं उनसे भी मैं अपने आचरण सम्बन्धी नियम बनानेमें सहायता न लूँगा। आजकल अपनेको शास्त्रोंके ज्ञाता कहनेवाले बहुतेरे लोग अज्ञानी और दम्भी ही पाये जाते हैं। मैं धर्मगुरुकी खोजमें हूँ। गुरुकी आवश्यकता है, यह मैं मानता हूँ। परन्तु जबतक मुझे कोई योग्य गुरु न दीख पड़े, तबतक मैं अपने आपको ही अपना गुरु मानता हूँ। यह मार्ग विकट अवश्य है, परन्तु आजकलके इस विषम-कालमें यही योग्य जान पड़ता है। हिन्दू धर्म इतना महान् और व्यापक है कि आजतक कोई उसकी व्याख्या करनेमें कृतकार्य नहीं हो सका। मेरा जन्म वैष्णव सम्प्रदायमें हुआ है और इसके सिद्ध सिद्धान्त मुझे बड़े ही प्रिय हैं। वैष्णव धर्ममें अथवा हिन्दू धर्ममें मुझे कहीं यह विधान नहीं मिला कि भंगी, डोम आदि जाति अस्पृश्य हैं। हिन्दू धर्म अनेक रूढ़ियोंसे घिरा हुआ है। उनमें से कुछ रूढ़ियाँ प्रशंसनीय हैं, शेष निन्द्य हैं। अस्पृश्यताकी रूढ़ि तो सर्वथा ही निन्द्य है। इसकी बदौलत दो हजार वर्षोंसे धर्मके नामपर पापकी राशि हिन्दू धर्मपर लादी जाती रही है और अब भी लादी जाती है। मैं इस रूढ़िको पाखण्ड कहता हूँ। इस पाखण्डसे आपको मुक्त होना पड़ेगा; और इसका प्रायश्चित्त आप कर ही रहे हैं। इस रूढ़िके समर्थनमें मनुस्मृति आदि धर्म-ग्रन्थोंके श्लोक उद्धृत करनेसे कोई लाभ नहीं। इन ग्रन्थोंमें कितने ही प्रक्षिप्त श्लोक हैं। कितने ही श्लोक नितान्त अर्थहीन हैं। फिर मनुस्मृतिकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करनेवाला या पालन करनेकी इच्छा रखनेवाला एक भी हिन्दू मेरे देखनेमें नहीं आया। और यह सिद्ध करना बहुत सहज है कि जो ऐसा करेगा वह अन्तमें गिरकर रहेगा। धर्म-ग्रन्थोंमें मुद्रित प्रत्येक श्लोकका समर्थन कर देनेसे सनातन धर्मकी रक्षा न होगी, बल्कि उनमें प्रतिपादित त्रिकालाबाधित-तत्त्वोंको कार्यरूपमें परिणत करनेसे ही उसकी रक्षा होगी। जिन-जिन धार्मिक नेताओंसे इस विषयमें सम्भाषण करनेका मुझे अवसर मिला है, सबने इस बातको स्वीकार किया है। उन धर्म-प्रचारकोंने, जिनकी गणना विद्वानोंमें होती है और जो समाजमें पूज्य माने जाते हैं, स्पष्ट कहा है कि भंगी, डोम आदिके साथ हम लोग जैसा बर्ताव करते हैं उसका इसके सिवा और कोई आधार नहीं कि वैसी रूढ़ि या प्रथा चल गई है। सच पूछिये तो इस रूढ़िका कोई पालन भी नहीं करता। रेलमें उनका स्पर्श होता है। मिलोंमें उनसे काम लिया जाता है और हम उन्हें बेहिचक छूते हैं। फर्ग्युसन तथा बड़ौदा कालेजोंमें अन्त्यज प्रविष्ट किये गये हैं। इन सब बातोंमें समाज बाधा नहीं डालता। अंग्रेजों और मुसलमानोंके घरोंमें उनका सत्कार किया जाता है और अंग्रेजों या मुसलमानोंको छूनेमें हमें कुछ भी संकोच नहीं होता, बल्कि इनमें से कितनोंके साथ हाथ मिलानेमें तो हम उलटा गौरव समझते हैं। ईसाई धर्म ग्रहण कर लेनेपर इन्हीं अन्त्यजोंको हमें अछूत माननेका साहस नहीं होता। इस प्रकार जिस रूढ़िका पालन करना असम्भव है, व्यक्तिगत मत भिन्न होनेपर भी, उसका समर्थन कोई समझदार हिन्दू नहीं कर सकता।

अस्पृश्यताकी भावनामें घृणाका अन्तर्भाव माननेसे इनकार करनेवालोंके लिए तो कोई विशेषण ही मेरे ध्यानमें नहीं आता। भूलसे कोई भंगी हमारे डिब्बेमें सवार हो जाये तो बेचारा पिटे बिना नहीं रह सकता और गालियोंकी तो मानो उसपर वर्षा ही होने लगेगी। उसके हाथ चायवाला चाय और दूकानदार सौदा नहीं बेचता। वह मरता हो तो भी हम उसको छूना गवारा नहीं करते। अपना जूठा हम उसे खानेको देते हैं और फटे तथा मैले कपड़े पहननेको। कोई हिन्दू उसे पढ़ानेको तैयार नहीं होता। वह अच्छे मकानोंमें नहीं रह सकता। रास्तेमें हमारे भयसे उसे बार-बार अपनी अस्पृश्यताकी घोषणा करनी पड़ती है। इससे बढ़कर घृणा-सूचक व्यवहार और कौन-सा हो सकता है? उनकी दशासे और क्या सूचित होता है? जिस तरह यूरोपमें एक समय धर्मकी ओटमें गुलामीकी प्रथाकी हिमायत की जाती थी, उसी तरह आज हमारे समाजमें भी धर्मके नामपर अन्त्यजोंके प्रति घृणा-भावकी रक्षा की जाती है। यूरोपमें भी अन्त तक ऐसे कुछ-न-कुछ लोग निकल ही आते थे जो बाइबिलके वचन उद्धृत करके गुलामीकी प्रथाका समर्थन करते थे। अपने यहाँके वर्तमान रूढ़िके हिमायतियोंको भी मैं उसी श्रेणीमें गिनता हूँ। हमें अस्पृश्यताका विचार-दोष धर्मसे अवश्य दूर कर देना होगा। इसके बिना प्लेग, हैजे आदि रोगोंकी जड़ नहीं कट सकती। अन्त्यजोंके धन्धोंमें नीचताकी कोई बात नहीं है। डॉक्टर और हमारी मातायें भी वैसे काम करती हैं। कहा जा सकता है कि वे सब फिर स्वच्छ हो जाती हैं। अच्छा, यदि भंगी आदि स्वच्छताका पालन नहीं करते तो दोष उनका नहीं, सोलहों आने हमारा ही है। यह स्पष्ट है कि जिस समय हम प्रेमपूर्वक उनका आलिंगन करने लगेंगे उस समय वे अवश्य ही स्वच्छ रहना सीख लेंगे।

सहभोज आदि आन्दोलनोंकी तरह इस आन्दोलनको आघात देनेकी आवश्यकता नहीं है। इस आन्दोलनसे वर्णाश्रम धर्मका लोप नहीं हो सकता। इसका उद्देश्य इसके अतिरेकको दूर करके उसकी रक्षा करना है। इस आन्दोलनके पुरस्कर्त्ताओंकी यह भी इच्छा नहीं है कि भंगी आदि अपने काम छोड़ दें। किन्तु उन्हें यह दिखा देना है कि मल, गन्दगी आदि साफ करनेका उद्यम इतना आवश्यक और पवित्र है कि उसके करनेसे वैष्णव तककी शोभा हो सकती है। इस धन्धेको करनेवाले नीच नहीं, किन्तु दूसरे पेशेवालोंके बराबर सामाजिक अधिकारोंके पात्र हैं और उनका उद्यम कितने ही रोगोंसे देशकी रक्षा करता है। इसलिए वे डॉक्टरोंके समान सम्माननीय हैं।

एक ओर यह देश तपश्चर्या, पवित्रता, दया आदिके कारण सबके लिए वन्दनीय है दूसरी ओर स्वेच्छाचार, पाप, क्रूरता आदि दुर्गुणोंका भी क्रीड़ास्थल बना हुआ है। ऐसे समयमें लेखक समुदायके पाखण्डका विरोध कर समाजसे उसकी जड़ काट देनेके लिए बद्ध परिकर होनेमें ही आपकी शोभा है। आपसे मेरी प्रार्थना है कि गोधरामें किये गये पुण्य कार्यका अभिनन्दन कर आप उस पुण्यके भागी और इस निमित्त किये जानेवाले इस उद्योगमें सहायक हों, ताकि ६ करोड़ मनुष्य हताश होकर उससे अलग न हो जायें।

इस आन्दोलनमें सम्मिलित होनेके पहले मैंने अपने धार्मिक उत्तरदायित्वको अच्छी तरहसे सोच-समझ लिया है। एक आलोचकने यह भविष्यवाणी की है कि कालान्तरमें

मेरे विचार बदल जायेंगे।[1] इस सम्बन्धमें मुझे इतना ही कहना है कि यदि कभी ऐसा समय आयेगा, तो उसके पहले मैं हिन्दू धर्म ही नहीं, संसारके धर्म-मात्रका त्याग कर चुकूंगा। परन्तु मेरी यह दृढ़ धारणा है कि हिन्दू धर्मको पूर्वोक्त कलंकसे मुक्त करनेमें यदि अपना शरीर भी देना पड़े, तो भी यह कोई बड़ी बात नहीं है। जिस धर्ममें नरसी मेहता-जैसे समदर्शी भगवद्‌भक्त हो गये हों उसमें अस्पृश्यताकी भावनाका रह सकना कदापि सम्भव नहीं है।

बापू और हरिजन

२२. भाषण : मुजफ्फरपुरमें[2]

नवम्बर ११, १९१७

भाइयो,

मेरा इरादा तो आपसे केवल तीन बातें कहनेका ही था परन्तु यहाँ स्टेशनपर जो हाल देखा उसके कारण उनमें एक बात और जुड़ जाती है। मैं जहाँ भी जाता हूँ, लोग, प्रेमके वशीभूत होकर, मेरी ओर कुछ ऐसे उमड़ते आते हैं और हुल्लड़ मचाते हैं कि मैं विमूढ़ हो उठता हूँ। ऐसी भीड़-भाड़से बड़ा क्लेश होता है और देशके सेवा-कार्यको हानि पहुँचती है। यदि किसी भी देशसेवकका हम सम्मान करना चाहें तो उसका भी तरीका होता है और उसे सीखना आवश्यक है। हम लोगोंको तो स्टेशन पर व्यवस्थित ढंगसे खड़े रहना भी नहीं आता। हम राष्ट्रीय कार्य करना चाहते हैं। हमने देशकी सेवा करनेका कार्य हाथमें लिया है। तो समाजमें हमारा व्यवहार कैसा हो, हम किस प्रकार उठें-बैठें, और किस प्रकार लोकसेवकोंका सम्मान करें, यह सब सीखना भी हमारा फर्ज हो जाता है। ऐसे प्रसंगोंपर हमारा व्यवहार कैसा हो इसके लिए हमें कवायद सीखनी चाहिए।

दूसरी बात चम्पारनके सम्बन्धमें है। वहाँकी जनताको जिस बातकी आवश्यकता थी, अब वह उसे मिल गई है।[3] बागान-मालिकोंके साथ हमारा कोई झगड़ा नहीं था। हमें तो केवल उनकी गुलामीसे मुक्त होना था और उतना हमने प्राप्त भी कर लिया। वैसे चम्पारनकी जनताके सम्बन्धमें जारी किये गये निर्देश मुजफ्फरपुरपर लागू

१. गुजरातीमें यहाँ नर्मदाशंकरका उदाहरण दिया गया है।

२. यह भाषण मुजफ्फरपुर, धर्मशाला, बिहारमें नवम्बर ११, १९१७ को दिया गया था। बिहार-उड़ीसा पुलिस एब्स्ट्रैक्ट्स, १९१७ से पता चलता है कि इस सभामें लगभग पाँचसे सात हजार लोग उपस्थित थे।

३. गांधीजीके नेतृत्वमें हुए चम्पारन सत्याग्रहके परिणामस्वरूप नील काश्तकारोंपर से तिनकठिया कर उठा दिया गया था। देखिए खण्ड १३।

नहीं होते; लेकिन मैं ऐसा मानता हूँ कि वे धीरे-धीरे लागू होने लगेंगे। यदि हम किसी वस्तुको प्राप्त न कर पायें तो उसका कारण यही होता है कि हम जिस व्यक्तिसे उस वस्तुकी माँग करते हैं उसके और हमारे बीच विश्वासकी भूमिका नहीं होती। मैंने जब चम्पारनमें काम शुरू किया तो बागान-मालिकों और अधिकारियोंको लगा कि मैं उनसे संघर्ष करने जा रहा हूँ, पर अन्तमें दोनोंको जब यह विश्वास हो गया कि मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं है और मैं तो केवल इतना चाहता हूँ कि बागान-मालिक मजदूर-जनताके साथ न्याय किया करें, तो इच्छित बातके हो जानेमें कोई मुश्किल नहीं रही।

चम्पारनका यह कार्य तो सफल हो गया। पर दूसरा कार्य, जो कहीं अधिक कष्टसाध्य है, अभी बाकी है। वह मनुष्य जो गुलामीसे मुक्त होकर स्वतन्त्रता पा जाता है, उसे यदि उचित शिक्षा न मिल पाये तो वह प्रायः स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करने लगता है। चम्पारनकी जनता एक प्रकारका स्थानिक स्वराज्य तो पा ही चुकी है। लेकिन अब जो प्रश्न रह जाता है वह यह है कि इस स्वराज्यका संचालन किस प्रकार किया जाये। इसके लिए बाबू ब्रजकिशोर[1] तथा दूसरे भाइयोंने — जो मेरे साथ काम करते हैं, यह तय किया है कि स्थान-स्थानपर पाठशालाएँ खोली जायें और लोगोंको सामान्य ज्ञान तथा आरोग्यके नियमोंका विशेष ज्ञान कराया जाये। कल्पना यह है कि बालक-बालिकाओंको अक्षर-ज्ञान और साफ-सुथरा रह सकने योग्य आरोग्यका ज्ञान कराया जाये तथा बड़ी उम्रके लोगोंको ग्राम स्वास्थ्यकी, रास्तों, इस्तेमालमें न आनेवाले कुओं और पाखानोंकी सफाईकी शिक्षा दी जाये।

इसी हेतुको ध्यानमें रखकर मंगलवारके शुभ दिन ढाका नामक गाँवमें एक पाठशाला खोली जायेगी। इस कार्यके लिए स्वयंसेवकोंकी बड़ी आवश्यकता है। शिक्षित बन्धुओंमें जिनकी इच्छा हो, वे इसके लिए आगे आयें। उनकी परीक्षा ली जायेगी और जो योग्य साबित होंगे उन्हें यह काम दिया जायेगा।

तीसरी बात यह है। हिन्दू-मुसलमानोंके बीच जो गाँठ पड़ गई है, उनके दिलमें जो कड़वाहट पैदा हो गयी है — इसे कैसे दूर किया जाये? इन दोनों कौमोंके बीच मित्रभावकी स्थापना करना ही मेरे जीवनका कार्य है। २५ वर्षोंसे मैं इसके उपाय खोजता आ रहा हूँ। मैं मुसलमान भाइयोंके बीच रहा। शाहाबादका मामला[2] सुनकर मेरा दिल फट जाता है; और मेरा दिल रो उठता है कि यदि मुझसे बन पड़ता तो मैं शाहाबाद जाकर अपने मुसलमान भाइयोंसे मिलता, उनसे सलाह-मशविरा करता। लेकिन

१. बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद; दरभंगाके एक प्रमुख वकील, उग्र राष्ट्रवादी और गांधीजीके सक्रिय सहयोगी; जिन्होंने सन् १९१७ में चम्पारन सत्याग्रहमें उनके साथ काम किया था। सन् १९२० में वकालत छोड़कर आप असहयोग आन्दोलनमें शरीक हो गये थे।

२. सन् १९१७ के सितम्बर-अक्तूबरमें बकरीदके अवसरपर इस जिलेमें हिन्दू-मुसलमानोंके बीच दंगा हो गया था। इसका विषैला प्रभाव देशके दूसरे भागोंमें भी हुआ था।

अपनी सीमित शक्तिका मुझे भान है। चम्पारनका कार्य अभी समाप्त नहीं हो पाया है, और मेरा यह सिद्धान्त है कि जबतक एक काम पूरा न हो जाये तवतक उसीके लिए जिऊँ और उसीके लिए मरूँ। पर मैं इस समस्यापर सोचता रहा हूँ और मुझे अपने हिन्दू भाइयोंसे कहना पड़ता है कि इस अवसरपर हमसे बड़ी गलती हुई है। इस घटनाके लिए हम ही अधिक दोषी हैं। अब जो समझदार हिन्दू हैं उनका यह फर्ज है कि वे मुसलमानोंको इससे जो दुःख पहुँचा है उसे मिटायें। हमने आरामें उनका जितना नुकसान किया है उससे दुगुना हमें उन्हें लौटा देना चाहिए। मैं तो यहाँतक कहूँगा कि अकेले शाहाबादके हिन्दुओंसे यदि इतना न बन पाये तो सारे भारतके हिन्दुओंको यह नुकसान पूरा कर देना चाहिए। हमारे जो वकील भाई दोनों पक्षोंकी ओरसे लड़ रहे हैं उन्हें चाहिए कि वे अदालतोंसे अपने-अपने मामले उठा लें; और सरकारसे कह दें कि इन मामलोंको अब वे जारी नहीं रखना चाहते। मैं अपने मुसलमान भाइयोंसे भी कहूँगा कि एक जिलेमें दो कौमोंके बीच जो संघर्ष हुआ है उसे वे सारे भारतका संघर्ष न बना दें। झगड़ा तो दो भाइयोंमें भी होता है पर उसका परिणाम सारे कुटुम्बपर नहीं होना चाहिए। ठीक इसी प्रकार दोनों समाजोंको चाहिए कि वे इन झगड़ोंको प्रान्तके बाहर न फैलायें। मुस्लिम लीग और कांग्रेस दोनोंने जिस कार्यको अपने कन्धोंपर उठाया है उसे हम अपना धर्म समझकर करें। जो कार्य हमारे नेताओंने विचारपूर्वक देखभालकर हाथमें लिया है, उसमें हमें दखल देनेका कोई अधिकार नहीं है। हम तो स्वराज्यके लिए कमर कस रहे हैं अतः यदि हम इस प्रकारके भेदोंमें अपना समय गँवायेंगे तो हमारी आनेवाली पीढ़ियाँ हमें दोषी ठहरायेंगी। हमारे अपने झगड़े हमें स्वयं ही निपटाने हैं, पर अबतक हम वैसा कर नहीं पाये हैं। इन झगड़ोंकी बुनियादमें एक कारण यह भी है कि हमारी शिक्षा अंग्रेजीमें होती है। एक विदेशी भाषामें शिक्षा पानेके कारण हमारा तेज और बल क्षीण हो गया है। केवल यही नहीं, इसीके कारण हम अपने जनसमाजमें घुल-मिल नहीं पाते। हमारे शिक्षित-वर्ग और जन-समाजके बीच एक खाई पड़ चुकी है। शिक्षितों और अशिक्षितोंके बीचके आपसी सम्बन्ध यदि अच्छे होते तो आज ये बखेड़े खड़े ही नहीं होते।

हिन्दू और मुसलमानोंके बीच झगड़ा गोमाताको लेकर खड़ा हुआ है। यदि हमें गायकी रक्षा करनी है तो हमें उसे कसाईखानेसे बचाना चाहिए। अंग्रेज बन्धुओंके लिए हररोज कमसे कम ३० हजार गाय और बछड़े कत्ल किये जाते हैं। और जबतक हम इस हत्याको रोक नहीं पाते तबतक मुसलमान भाइयोंपर हाथ उठानेका हमें कोई अधिकार नहीं है। अपने हिन्दू भाइयोंसे मैं कहूँगा कि गोमाताको बचानेके लिए मुसलमान बन्धुओंका खून करना कोई धर्म नहीं है। हिन्दू धर्म तो केवल एक मार्ग बताता है और वह है तपश्चर्याका मार्ग। तुलसीदासजीकी वाणीमें कहें तो 'दया धर्मको मूल है।' इसलिए हमें तो दयासे ही काम लेना चाहिए। गायकी रक्षा तो मैं भी करना चाहता हूँ। पर गायके लिए मैं अपने मुसलमान भाइयोंसे कहूँगा कि गायको छुरा मारनेके बदले आप मेरी गर्दनपर छुरी चलावें और मेरा खून करें। मुझे विश्वास है कि मेरी यह दीन वाणी मुसलमान-बन्धु अवश्य सुनेंगे। हम यदि अपनी स्वतन्त्रता चाहते हैं तो हमें

दूसरोंकी स्वतन्त्रता छीन लेनेका कोई अधिकार नहीं है। एक दूसरेकी स्वतन्त्रता छीन लेनेका प्रयत्न करनेमें ही झगड़े खड़े होते हैं। यदि कोई मुसलमान आदेशके स्वरमें कहेगा कि कोई भी हिन्दू ढोल न बजाये तो हिन्दू कभी नहीं मानेगा, पर यदि अपने मुसलमान भाई नम्रतापूर्वक कहें कि आप ढोल न बजायें, हमारे धर्म-कार्य नमाजमें खलल न डालें, और यदि आप ऐसा करेंगे तो हम अपने ही खूनकी नदी बहा देंगे, तो मैं विश्वास करता हूँ कि कोई भी हिन्दू भाई इतना नासमझ नहीं निकलेगा जो इस प्रार्थनाके विरुद्ध व्यवहार करेगा। परन्तु सच्ची बात तो यह है कि इस सम्बन्धमें हिन्दू और मुसलमान, किसीका भी मन साफ नहीं है। यदि हम मेल और प्रेम चाहते हैं तो वह मुहब्बतसे ही हो सकेगा; भय दिखाकर तो कभी नहीं हो सकेगा। हम अपने दिलकी बात कभी भी साफ-साफ नहीं कह पायेंगे।

मैं यह कहता आया हूँ कि राष्ट्रीय भाषा एक होनी चाहिए और वह हिन्दी होनी चाहिए। मैंने सुना है कि इस सम्बन्धमें कई मुसलमान बन्धुओंके मनमें गलतफहमी है। उनमें बहुतेरोंका खयाल है कि 'हिन्दी होनी चाहिए' यह कहकर मैं उर्दूका विरोध करता हूँ। हिन्दी भाषासे मेरा मतलब उस भाषासे है जिसे उत्तर भारतमें हिन्दू और मुसलमान दोनों बोलते हैं और जो नागरी तथा उर्दू लिपिमें लिखी जाती है। उर्दूके लिए मेरे मनमें कोई द्वेष नहीं है। मेरी तो यह मान्यता है कि दोनों भाषाएँ एक ही हैं। मेरे खयालसे तो दोनों भाषाओंका गठन, दोनोंका ढंग, संस्कृत और अरबी शब्दोंके भेदको छोड़कर, एक ही प्रकारका है। मेरा झगड़ा तो अंग्रेजीके विरुद्ध है। मुझे द्वेष उससे भी कोई नहीं है; परन्तु अंग्रेजी भाषाके माध्यमसे हम अपनी जनतासे घुलमिल नहीं सकते और उनके साथ एकरस होकर काम नहीं कर सकते। मेरे कहनेका आशय इतना ही है। हिन्दीको आप हिन्दी कहें या हिन्दुस्तानी; मेरे लिए तो दोनों एक ही हैं। हमारा कर्त्तव्य यह है कि हम अपना राष्ट्रीय कार्य हिन्दी भाषामें करें। लिपिके सम्बन्धमें यह होगा कि हिन्दू बालक नागरीमें लिखेगा और मुसलमान उर्दूमें। इससे किसी प्रकारकी भी हानि नहीं है। पर दोनों ही दोनों लिपि सीखेंगे। हमारे बीच हमें अपने कानोंमें हिन्दीके ही शब्द सुनाई दें — अंग्रेजीके नहीं। इतना ही नहीं हमारी धारासभाओंमें जो वाद-विवाद होता है वह भी हिन्दीमें होना चाहिए। ऐसी स्थिति लानेके लिए मैं जीवन-भर प्रयत्न करूँगा।

अब एक बात और कहनी बाकी रह गई है। सारे हिन्दुस्तानमें स्वराज्यका आन्दोलन चल रहा है। शाहाबादमें जो दंगा हुआ है उससे हमें स्वराज्यकी प्राप्तिमें विलम्बका कारण ज्ञात होता है। स्वराज्य निरी अर्जियों या भाषणोंसे नहीं मिलेगा। यदि हिन्दू कहेगा कि एक गायकी रक्षा करनेके लिए मैं एक मुसलमानका खून पी जाऊँगा तब तो हमें कभी स्वराज्य प्राप्त नहीं होगा। यदि दोनों कौमोंके बीच मेल हो जाये; यदि दोनों कह दें कि हम आपसी झगड़ोंको स्वयं ही निबटा लेंगे, उसमें किसी बाहरी व्यक्तिके बीचमें पड़नेकी जरूरत नहीं है। यदि हम इतना विश्वास दे सकें तो स्वराज्य मिलकर रहेगा। स्वराज्यके लिए शिक्षाकी आवश्यकता नहीं है, केवल हमारे बीच एकता होनी चाहिए। हममें ताकत होनी चाहिए। स्वराज्यसे भी पूर्व हममें निर्भयता होनी

चाहिए। जबतक हममें ईश्वरीय अंश वर्तमान है तब तक हमें मनुष्यसे कभी भय नहीं खाना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महात्मा गांधीनी विचारसृष्टि

२३. भाषण : उमरेठमें[2]

[उमरेठ]
नवम्बर १२, १९१७

मित्रो,

आप लोगोंने मुझे श्री गोखलेके नामपर खोले जानेवाले पुस्तकालयका उद्घाटन और उनकी तसवीरका अनावरण करनेके लिए बुलाया है। यह काम बहुत पवित्र है और गम्भीर है। आजकल पश्चिमके लोगोंमें एक ऐसी गलतफहमी फैली हुई है कि पुस्तकालय खोल दिया तो समाजकी सेवा हो गई। अमेरिकाके एक शहरमें कार्नेगी नामके एक करोड़पति सज्जन रहते हैं। उनके पास इतना ज्यादा पैसा है कि वे लाखों रुपया बाँटें तो भी उनकी पूँजीमें कोई कमी नहीं होगी। वे अनेक जगहोंमें पुस्तकालय खोलनेके लिए पैसा देते हैं और ये सारे पुस्तकालय उन्हींके नामपर होते हैं। स्कॉटलैंडके कुछ नेताओंने उनसे विनती की है कि कृपया ऐसी प्रथा आप हमारे यहाँ हमारी मर्जीके बिना न फैलायें, क्योंकि हमारी समझमें इससे हितके बदले हानि होनेकी ही ज्यादा सम्भावना है। पेरिसमें पुस्तकालयोंका दुरुपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। इससे आप यह न समझें कि मैं पुस्तकालयोंके खिलाफ हूँ। पुस्तकालय खोलते समय और उसके पहले यह विचार करना आवश्यक है कि वह किसके नामपर खोला जाये और स्थानीय हितकी दृष्टिसे वहाँ पुस्तकें कैसी चुनी जायें ताकि व्यक्तिका नाम और पुस्तकोंका वाचन सार्थक हो।

अब उनकी तसवीरके विषयमें। गोखले नामके भूखे नहीं थे; बल्कि वे अपना सार्वजनिक सम्मान पसन्द ही नहीं करते थे। अकसर ऐसे अवसरोंपर उनकी आँखें झुक जाया

१. बिहार-उड़ीसा पुलिस एब्स्ट्रैक्ट्समें बताया गया है कि अन्तमें गांधीजी 'होमरूल' आन्दोलनके सम्बन्धमें बोले और उन्होंने लोगोंसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीगकी सिफारिशोंका समर्थन करनेका अनुरोध किया। उन्होंने उपस्थित जन-समुदायके सम्मुख श्री मॉण्टेग्युको भेजे जानेवाले प्रार्थना-पत्रका वर्णन किया और उसपर हस्ताक्षर करनेका अनुरोध किया। उसी शामको गांधीजीने हिन्दू-मुस्लिम नेताओंके एक सम्मेलनमें भाग लिया। मुजफ्फरपुरके पुलिस अधीक्षकसे प्राप्त हुई नवम्बर १२, १९१७ की गुप्त रिपोर्टके अनुसार श्री गांधीजीने शाहाबादके दंगोंकी भर्त्सना की और खेद प्रकट किया।... श्री गांधीने कहा कि वे यह नहीं चाहते कि हिन्दीको अपनाया जाये, उर्दूको नहीं। उन्होंने कहा विदेशी भाषा नहीं अपनाई जानी चाहिए और सिर्फ ऐसी भाषा अपनाई जानी चाहिए जिसे सब लोग समझ सकें। अधिकांशतः हिन्दी और उर्दू भाषाएँ बोली जाती हैं और ये आसानीसे समझ आ जाती हैं।

२. गुजरातमें।

करती थीं। यदि आप ऐसा मानते हैं कि गोखलेकी तसवीरका उद्घाटन करनेसे उनकी आत्माको शान्ति मिलेगी, तो वह सही नहीं है। मरते समय इस महात्माने अपनी चिर-पोषित इच्छा स्पष्ट कर दी थी। उन्होंने कहा था: "मेरी मृत्युके बाद मेरा जीवन-चरित्र लिखा जाये, मेरा स्मारक बनाया जाये या शोक-प्रदर्शनकी सभाएँ हों, तो उनसे मेरी आत्माको शान्ति नहीं मिलेगी। मेरा जीवन सारे भारतका जीवन बन जाये, और संस्थापित भारत-सेवक-समाजकी प्रगति हो, यही मेरी अभिलाषा है।" जो लोग उनका यह वसीयतनामा स्वीकार करते हों, उन्हींको उनकी तसवीरका उद्घाटन करनेका अधिकार है।

गोखलेने अपने जीवनमें बहुतसे काम किये; मगर आज तो मैं यहाँ आई हुई बहनोंके ध्यानसे उनके जीवनके कुछ कौटुम्बिक प्रसंग ही सुनाऊँगा। बहनोंको गोखलेके इस उदाहरणसे सीख लेनी चाहिए कि उन्होंने अपने कुटुम्बकी काफी सेवा की थी। उन्होंने ऐसा कोई काम कभी नहीं किया जिससे कुटुम्बका जी दुखे। आजकल हिन्दू परिवारोंमें लड़कीको गुड़ियाकी तरह ब्याहकर आठ वर्षकी उम्रमें ही अथाह संसार सागरमें ढकेल दिया जाता है। लेकिन गोखलेने वैसा नहीं किया। उनकी लड़की अभी भी अविवाहित है। ऐसा करनेमें उन्हें काफी मुसीबतें सहन करनी पड़ीं। उनकी युवावस्थामें ही उनकी पत्नीकी मृत्यु हो गई थी। वे फिरसे विवाह कर सकते थे, पर उन्होंने वैसा नहीं किया। अपने कुटुम्बकी सेवा तो उन्होंने अनेक तरहसे की। दूसरे लोग भी सामान्यतः कुटुम्ब-सेवा करते ही होंगे। परन्तु कुटुम्ब-सेवा दो तरहसे हो सकती है — एक स्वार्थदृष्टिसे और दूसरी स्वदेशहितकी वृत्तिसे। गोखलेने स्वार्थवृत्तिको तिलांजलि दे दी थी। पहले कुटुम्ब, उसके बाद ग्राम और फिर देश — जिस समय जिसके प्रति कर्त्तव्य करनेका प्रसंग उपस्थित हुआ, उस समय वही कर्त्तव्य उन्होंने सम्पूर्ण साहस, लगन और श्रमसे पूरा किया।

गोखलेके मनमें हिन्दू-मुसलमानके भेदका लेशमात्र भी नहीं था। वे सबको समान दृष्टिसे और स्नेहभावसे देखते थे। कभी-कभी वे नाराज हो जाते थे, लेकिन उनकी यह नाराजी स्वदेशके हितके साथ सम्बन्ध रखनेवाली होती थी और विपक्षीके मनपर उसका अच्छा ही असर होता था। उनके क्रोधकी इस विशेषताके कारण ही जो यूरोपीय पहले उनके प्रति शत्रुताका भाव रखते थे, उनके गाढ़े मित्र बन गये थे।

जो व्यक्ति गोखलेके सम्पूर्ण जीवनपर दृष्टि डालेंगे वे देखेंगे कि उन्होंने अपने जीवनको देश-सेवाका पर्याय ही बना डाला था। वे अपनी उम्रके पचास वर्ष पूरे होनेके पहले ही इस दुःखपूर्ण संसारसे चले गये और इसका एकमात्र कारण था चौबीसों घन्टे तन और मनसे अनवरत देश-सेवा। अपने और अपनी गृहस्थीकी छोटी-मोटी बातोंको तो वे अपने मनमें कोई जगह ही नहीं देते थे। उनको केवल इस बातकी चिन्ता रहती थी कि वे देशके लिए क्या कर सकते हैं। गोखलेकी महान् आत्माको हमारे भारतकी शक्ति — अन्त्यज वर्ग — के उद्धारका प्रश्न भी सदा चिन्तित रखता था। उनके उद्धारके लिए उन्होंने बहुत प्रयत्न किये। अगर कोई उन्हें वैसा करते देखकर टोकता, तो वे साफ कह देते थे कि अपने भाई अन्त्यजोंको छूनेसे हम भ्रष्ट नहीं होते, बल्कि अस्पृश्यताकी दुष्ट भावना रखनेसे ही घोर पापमें पड़ते हैं।

अभी मैं यहाँके मेघवाल[1] भाइयोंका बुनाईका काम देखने गया, तब साथमें आये हुए लड़कोंमें छुआछूतकी बात निकली। उसे सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैं यहाँ अभी जाति-पाँतिके विषयपर कुछ कहना नहीं चाहता, लेकिन इतना तो कहूँगा कि इस वर्गको अपने साथ मिलाये बिना हमारी, हमारे गाँवकी और हमारे देशकी उन्नति नहीं होगी। इसके बिना स्वराज्यकी आशा रखना भी व्यर्थ होगा। जबतक हमारे मनमें अन्धश्रद्धा बनी रहेगी, जबतक घरमें, कुटुम्बमें, गाँवमें और समाजमें लड़ाई-झगड़े होते रहेंगे, तबतक हम कितना ही स्वराज्य-स्वराज्य चिल्लाते रहें, उससे कुछ होगा नहीं। आपके उमरेठमें पहले पचास करघे चलते थे, लेकिन अब केवल दो रह गये हैं और उनपर भी सन्तोष देने योग्य ढंगसे काम नहीं हो पाता। इसका कारण आपकी संकुचित वृत्ति है। उमरेठके नेताओंका कर्त्तव्य है कि वे अपने देशी उद्योगोंके विकासमें मदद करें और उन्हें प्रोत्साहन दें। अगर उनमें ऐसी भावना न हो, तो उन्हें गोखले-जैसे परमार्थी सन्तकी तसवीरके उद्घाटनका कोई अधिकार नहीं। पर मुझे लगता है कि उमरेठ एकदम भावना और उत्साहशून्य नहीं है। महात्मा गोखलेके प्रति वह सद्भाव रखता है और अपने कर्त्तव्यको पहचान गया है। यह सन्तोषकी बात है।

[गुजरातीसे]

धर्मात्मा गोखले

२४. समाचारपत्र

[नवम्बर १४, १९१७ से पूर्व]

मैंने 'हिन्दुस्तान' के सम्पादकको दीवाली विशेषांकके लिए कुछ लिख भेजनेका वचन दिया है। वचनका पालन करनेके लिए मेरे पास समय नहीं है, फिर भी यह सोचकर कि किसी तरह थोड़ा-बहुत लिखकर भेजना चाहिए, पाठकोंके सम्मुख समाचार-पत्रके सम्बन्धमें अपने विचार रख रहा हूँ। परिस्थितियोंके वशीभूत होकर दक्षिण आफ्रिकामें मुझे यह काम करना पड़ा, उससे मुझे इस विषयपर विचार करनेका अवसर मिला। जिन विचारोंको मैं यहाँ प्रकट करनेकी धृष्टता कर रहा हूँ उन सबको मैंने कार्यरूप दिया है।

मेरी विनम्र रायमें, समाचारपत्रके कार्यको आजीविका कमानेका साधन मानना अनुचित है। कुछ-एक कार्य [क्षेत्र] ऐसे खतरनाक और सार्वजनिक होते हैं कि उनके द्वारा आजीविका प्राप्त करनेसे मूल उद्देश्यको हानि पहुँचती है। जब समाचारपत्रको नफा कमानेका साधन बनाया जाता है तब तो बहुत अनर्थ होनेकी सम्भावना रहती है। ऐसा बहुत अधिक मात्रामें हो रहा है। यह बात मुझे उन लोगोंके सम्मुख, जिन्हें पत्रकारिताका पूरा अनुभव है, सिद्ध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

१. निम्न वर्गकी एक जाति।

समाचारपत्रोंका कार्य है लोक-शिक्षा। इन्हींके द्वारा लोगोंको आधुनिक इतिहासकी जानकारी होती है। यह काम कम जिम्मेदारीका नहीं है। इतना होनेपर भी हम महसूस करते हैं कि पाठक-समुदायका समाचारपत्रोंपर पूर्ण विश्वास करना सम्भव नहीं है। अनेक बार तो समाचारपत्रोंमें दिया गया विवरण घटनासे बिलकुल विपरीत होता है। यदि समाचारपत्र लोगोंको शिक्षित करना अपना कर्त्तव्य समझें तो समाचार देनेसे पहले उसकी जाँच करनेसे न चूकें। इसमें सन्देह नहीं कि इनको अनेक बार कठिन परिस्थितियोंमें काम करना पड़ता है। बहुत ही अल्प-समयमें इन्हें सत्य-असत्यका निर्णय करना पड़ता है और प्राय: अनुमानके आधारपर सत्य निर्धारित करना होता है। इतना होनेपर भी मैं मानता हूँ कि जिस समाचारके सही होनेका निश्चय न हो सके उस समाचारको प्रकाशित न करना ही अधिक उचित है।

इनमें वक्ताओंके भाषणकी जो रिपोर्ट दी जाती है वह अधिकतर दोषपूर्ण होती है। रिपोर्टको सही-सही उतारनेकी क्षमता बहुत ही कम लोगोंमें होती है इसीलिए सामान्यत: देखनेमें आता है कि भाषणोंकी खिचड़ी बन जाती है। सबसे अच्छा नियम तो यही है कि भाषणके "प्रूफ" स्वयं वक्ताके पास संशोधनके लिए भेज दिये जायें और यदि वह उनमें संशोधन न करे तो समाचारपत्र अपनी ली हुई रिपोर्ट ही प्रकाशित कर सकते हैं।

अनेक बार यह देखनेमें आता है कि समाचारपत्र मात्र स्थान भरनेके लिए ऐसी-वैसी सामग्री प्रकाशित कर देते हैं। यह चलन सर्वव्यापक है। पश्चिममें भी ऐसा ही है। उसका कारण यह है कि समाचारपत्र मुख्यत: धन कमानेपर नजर रखते हैं। समाचारपत्र [जनताकी] भारी सेवा करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। इससे उनके दोष ढक जाते हैं। लेकिन मेरे मतानुसार वे जितनी सेवा करते हैं उससे कम हानि नहीं करते। पश्चिमके कुछ-एक पत्र इतनी अनीतिसे भरे हुए होते हैं कि उनका स्पर्श करना भी दोषपूर्ण है। अनेक पत्र पूर्वाग्रहसे भरे होनेके कारण लोगोंमें द्वेषका प्रसार करते हैं अथवा उसे और भी बढ़ाते हैं। अनेक बार वे परिवारों और जातियोंमें कटुता पैदा कर देते हैं। इस प्रकार लोक-सेवा करनेके बावजूद वे टीका-टिप्पणीसे बच नहीं सकते। कुल मिलाकर उनके अस्तित्वसे, हानि और लाभ होनेकी समान सम्भावना है।

समाचारपत्रोंमें यह पद्धति देखनेमें आती है कि वे मुख्य रूपसे चन्दोंपर नहीं बल्कि विज्ञापनोंकी रकमके ऊपर निर्भर करते हैं। इसका परिणाम हानिकारक सिद्ध हुआ है। जो समाचारपत्र मदिरा-पानके विरुद्ध लिखता है उसमें ही मदिराका बखान करते हुए विज्ञापन दिया गया होता है। जिस समाचारपत्रमें हम तम्बाकूके दोषोंको पढ़ेंगे उसीमें अच्छेसे-अच्छा तम्बाकू कहाँ बिकता है, वह भी पढ़नेको मिल जायेगा। किसी नाटकका लम्बा विज्ञापन और उसकी [विपरीत] आलोचना एक ही पत्रमें देखनेमें आ सकती है। दवाइयोंके विज्ञापनमें अधिकसे-अधिक कमाई होती है फिर भी दवाइयोंके विज्ञापनसे प्रजाका जितना नुकसान हुआ है और हो रहा है, उसकी कोई सीमा नहीं है। इन विज्ञापनोंके कारण समाचारपत्रोंने [लोगोंकी] जो सेवा की है उसपर लगभग हरताल फिर जाती है। दवाइयोंके विज्ञापनसे हुए नुकसानको मैंने खुद अपनी आँखोंसे देखा है। अनेक व्यक्ति इन विज्ञापनोंसे आकर्षित होकर हानिकर दवाइयोंको खरीद लेते हैं। अनेक

बार दवाइयाँ अनीतिकी पोषक होती हैं। ऐसे विज्ञापन धार्मिक पत्रोंमें भी देखनेमें आते हैं। यह परिपाटी पश्चिमसे ही आई है। चाहे कितने भी प्रयत्न क्यों न करने पड़ें लेकिन हमें विज्ञापनोंके इस रिवाजको खत्म करना चाहिए अथवा विज्ञापनोंमें बहुत सुधार करने चाहिए। प्रत्येक समाचारपत्रका कर्त्तव्य है कि वह विज्ञापनोंपर अंकुश रखे।

अन्तिम प्रश्न विचार करने योग्य यह है कि जहाँ "राजद्रोहात्मक लेख आदि सम्बन्धी कानून" और "भारत सुरक्षा कानून" जैसे कानून प्रचलित हों वहाँ समाचारपत्रोंको क्या करना चाहिए? हमारे समाचारपत्रोंमें अनेक बार दोअर्थी भाषा देखनेमें आती है। कुछ-एक पत्रोंने तो इस पद्धतिको शास्त्रका रूप दे दिया है। मेरी सम्मतिमें इससे देशको नुकसान पहुँचता है। लोगोंमें कायरताका प्रसार होता है और दोअर्थी वचनोंको बोलनेकी आदत पड़ती है। इससे भाषाका स्वभाव ही बदल जाता है और वह विचार प्रकट करनेके स्थानपर उन्हें छिपानेका साधन बन जाती है। इससे प्रजाका [चारित्रिक] विकास नहीं होता, यह मैं विशेष रूपसे मानता हूँ। हमारे मनमें जो हो वही बोलनेकी आदत प्रजामें तथा व्यक्तियोंमें पड़नी चाहिए। यह शिक्षा समाचारपत्रों द्वारा अच्छी तरह मिल सकती है। अतएव जिन्हें उपर्युक्त कानूनोंसे बचकर कार्य करना हो उनके लिए यही श्रेयस्कर है कि समाचारपत्रको प्रकाशित ही न करें। अथवा इन कानूनोंकी परवाह किये बिना मनमें जो विचार आये उन्हें निडर होकर, [लेकिन] विनयपूर्वक प्रकट कर दें और उसका जो भी परिणाम हो उसे सहन करें। न्यायमूर्ति स्टीफनने कहीं यह विचार प्रकट किया है कि जिस व्यक्तिने कभी द्रोहकी कल्पना नहीं की है उसकी भाषामें द्रोह हरगिज नहीं हो सकता। और यदि मनमें द्रोह हो तो उसे निधड़क होकर व्यक्त करना चाहिए। अगर ऐसा करनेकी हिम्मत न हो तो पत्रका प्रकाशन बन्द कर देना चाहिए। इसीमें सबका कल्याण है।

[गुजरातीसे]

महात्मा गांधीनी विचारसृष्टि

२५. सन्देश: गुजराती हिन्दू स्त्री-मण्डलको[१]

[नवम्बर १४, १९१७ या उससे पूर्व]

जिन बहनोंके पास यह लेख पहुँचेगा वे कम-ज्यादा शिक्षित तो होंगी ही, इसलिए मैं एक विषयपर विचार करना चाहता हूँ। शिक्षित स्त्रीवर्गको अपनी अशिक्षित बहनोंके लिए क्या करना चाहिए? यह प्रश्न बहुत महत्त्वका है। यह निर्विवाद है कि यदि स्त्रियाँ चाहें तो वे इस क्षेत्रमें पुरुषोंसे कहीं अधिक सफलता प्राप्त कर सकती हैं। शिक्षित महिलाएँ अभी इस कामको पर्याप्त मात्रामें करती नजर नहीं आतीं। इसमें उनका दोष नहीं; उनको मिली शिक्षाका दोष है, ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिए शिक्षित स्त्रियोंका पहला कार्य ऐसे प्रयत्न करना है जिससे उनकी बहनें इस दोषका शिकार न हों। इस विषयमें किसीको सन्देह नहीं कि आधुनिक शिक्षा स्त्रियोंको उनके विशेष

१. यह सन्देश गुजराती नववर्षके अवसरपर उक्त महिला-मण्डलको भेजा गया था।

कार्यके लिए बिलकुल तैयार नहीं करती। यहाँ मैं न तो आधुनिक शिक्षाके दोषोंकी छानबीन करनेके झमेलेमें पड़ना चाहता हूँ और न इन दोषोंका निवारण कैसे हो, इस प्रश्नपर मगजपच्ची ही करना चाहता हूँ। मेरी तो इतनी ही इच्छा है कि शिक्षित बहनें इस प्रश्नको अपना मानकर तथा जिन्हें कुछ अनुभव है वे बहनें भी, अपना सर्वस्व समर्पित करके इस विषयपर गुजरातको जागृत करें और सही दिशाका ज्ञान करायें।

शिक्षित स्त्रियाँ अशिक्षितोंके साथ सम्पर्क स्थापित नहीं करतीं, और प्राय: ऐसे सम्पर्कको बढ़ावा नहीं देतीं। इस रोगका उपचार करना चाहिए। शिक्षित स्त्रियोंको अपने सहज कर्त्तव्यका भान करानेकी आवश्यकता है। इन दोषोंसे पुरुष-वर्ग भी मुक्त नहीं है, लेकिन स्त्रियोंको पुरुषोंके पीछे-पीछे चलनेकी जरूरत नहीं। स्त्रियोंमें नवीन भावनाओंके सृजनकी तथा उनको व्यवहारमें लानेकी जो शक्ति विद्यमान है वह पुरुषोंमें नहीं है। पुरुष अपेक्षाकृत अविचारी, उतावला और सदैव नवीनताकी खोजमें लगा रहनेवाला होता है। स्त्री गम्भीर, धैर्यवान् और अधिकतर पुरानी वस्तुओंसे चिपककर रहनेवाली होती है। इसलिए उसे जब भी कोई नई वस्तु सूझ पड़ती है तो उसकी उत्पत्ति स्त्रीके हृदयकमलसे होती है। इस प्रकार उद्‌भूत हुई वस्तुके प्रति उसकी अचल श्रद्धा होती है और इस कारण उसका प्रचार जल्दी हो सकता है। अतएव मेरी मान्यता है कि यदि शिक्षित स्त्रियाँ, पुरुषोंकी नकल करना छोड़ दें और स्त्रियों-सम्बन्धी महान प्रश्नोंपर स्वतन्त्र रूपसे विचार करें तो हम अनेक उलझनोंको आसानीसे सुलझा सकते हैं।

विधवाओंका प्रश्न साधारण प्रश्न नहीं है। इसमें अनेक स्त्रियाँ अपना जीवन अर्पित कर सकती हैं। विधवा अपनी इच्छानुसार पुनर्विवाह करे यह एक बात है और बाल-विधवाओंको पुन: लग्न करनेकी शिक्षा देनेमें समय गँवाना दूसरी बात है। इसके बजाय स्त्रियाँ विधुर पुरुषसे स्वयं अथवा अपनी लड़कीका पाणिग्रहण संस्कार न करने तथा पालनेमें झूलने लायक बाल-वरको अपनी बेटी देकर उसकी आहुति न देनेका दृढ़ निश्चय करें और करायें तो मुझे विश्वास है कि भारतके लिए इसका परिणाम मधुर होगा। छोटी-बड़ी सैकड़ों विधवाओंका उपयोग देशके निमित्त कैसे हो यह प्रश्न बहुत विचार करने योग्य है तथा इसपर शिक्षित स्त्रियाँ विचार नहीं करेंगी तो और कौन करेगा? अनेक वर्षोंसे एक विचार मेरे मनमें है; उसे यहाँ व्यक्त करता हूँ। थोड़े ही समय पहले हमारी स्त्रियाँ सूत कातने और बुननेका भी काम करती थीं। अब यह धन्धा खत्म होने पर है। इस धन्धेकी अवनतिसे हिन्दुस्तानको नुकसान पहुँचा है। करोड़ों रुपये बाहर भेज दिये जाते हैं। विधवाएँ अभी मन्दिरोंमें अथवा कथित साधु-सन्तोंकी सेवामें अथवा गप्पें हाँकनेमें अपना समय गँवाती हैं। मन्दिर जानेमें ही धर्म है, मुझे ऐसा प्रतीत नहीं होता। लेकिन सदुद्देश्यको दृष्टिमें रखकर मन्दिर जानेसे कुछ फायदा नहीं होता, मैं यह भी नहीं कहना चाहता। परन्तु अन्य कार्योंको छोड़कर मन्दिरमें बैठना परमार्थकी पराकाष्ठा है, यह विचार तो कोरा भ्रम जान पड़ता है। उसी प्रकार जिन साधु-सन्तोंको किसी प्रकारकी सेवाकी आवश्यकता नहीं है उनके पास बैठे रहनेसे दोनोंकी ही हानि और व्यर्थका कालक्षेप है। ऐसी प्रवृत्तियोंसे विधवाओंको हटाकर हिन्दुस्तानका उपकार करनेकी पारमार्थिक प्रवृत्तिमें उन्हें फिर लगाना ही उनका शुद्ध पुनर्विवाह है। शिक्षित स्त्रियाँ ऐसा साहस क्यों नहीं करतीं? ऐसा काम

करनेकी इच्छुक स्त्रियोंको पहले तो स्वयं उद्योगकी पाठशालामें पहला पाठ पढ़ना होगा, कातना होगा तथा खड्डियोंपर कपड़ा बुनना होगा।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]

गुजराती, २-१२-१९१७

२६. पत्र: जे० एल० मेरीमैनको

मोतीहारी
नवम्बर १४, १९१७

प्रिय श्री मेरीमैन,[1]

मैं सोचता हूँ कि मैं यहाँ जो-कुछ कर रहा हूँ मुझे उसकी सूचना आपके पास भेजते रहना चाहिए। स्कूलके लिए बनी-बनाई इमारत मिल जानेके तथा खास गाँवमें स्कूल खोलनेका निमन्त्रण मिलनेके फलस्वरूप मैंने आज ढाकाके समीप बरहरवा लखमसेन नामक गाँवमें एक स्कूल खोल दिया है। जिन लोगोंने मुझे मदद देनेकी इच्छा प्रकट की थी उनमें से अच्छेसे-अच्छे अवैतनिक अध्यापकोंको मैंने वहाँ लगा दिया है और वे हैं बम्बईके श्री और श्रीमती गोखले। उनकी जीविकाके अपने स्वतन्त्र साधन हैं। श्रीमती गोखले बम्बईमें शिक्षाका कार्य कर रही थीं। उन्हें जिस किस्मका कार्य यहाँ करना है, वह मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ। यदि बन सका तो उन कारखानोंके विभिन्न संचालकोंकी सहायतासे इसी प्रकारके अन्य स्कूल, एक स्कूल पीपरा देहातमें, दूसरा तुरकौलिया देहातमें और तीसरा बेलवा देहातमें खोलनेकी आशा करता हूँ। चूँकि यह प्रयास प्रयोगात्मक है; इसलिए इन स्कूलोंसे कुछ निश्चित सफलता न मिलने तक मैं चार या पाँचसे अधिक स्कूल नहीं खोलना चाहता। मुझे आशा है कि इस प्रयोगमें मुझे स्थानीय अधिकारियोंसे सहयोग प्राप्त होगा; यद्यपि मैं जानता हूँ इसमें अनेक कठिनाइयाँ हैं। लेकिन अगर इसमें सफलता मिलती है तो महत्त्वपूर्ण परिणाम निकलनेकी सम्भावना है।[2]

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

महादेव देसाईके अक्षरोंमें और गांधीजीके हस्ताक्षरयुक्त मूल अंग्रेजी पत्र (नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडियासे); तथा **सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन, १९१७-१८** से भी।

१. चम्पारनके जिला मजिस्ट्रेट।

२. इसके उत्तरमें मेरीमैनने १८ नवम्बरको निम्नलिखित उत्तर दिया था: १४-११-१९१७ का आपका पत्र मुझे प्राप्त हुआ। मुझे आपके द्वारा स्कूलोंकी स्थापनाके प्रयोगमें दिलचस्पी है और उनके सम्बन्धमें मैं और भी जानना चाहता हूँ। आप किस प्रकारके स्कूल और उन्हें कहाँ खोलेंगे तथा उनमें किस प्रकारकी शिक्षा दी जायेगी यह सब जानकारी पाकर मुझे प्रसन्नता होगी। गांधीजीके उत्तरके लिए देखिए "पत्र: जे० एल० मेरीमैनको", १९-११-१९१७।

२७. पत्र : मगनलाल गांधीको

बेतिया[1]

दीवाली [नवम्बर १४, १९१७]

चि० मगनलाल,

आज ही बेतिया वापस आनेपर तुम्हारी डाक पढ़ी। यह पत्र प्रतिपदाको भेजा जा सकेगा।

ठाकोरलालको जो जवाब[2] दिया है उसे पढ़कर उनके पतेपर भेज देना।

नानुभाई अगर सन्तुष्ट हो गये हों तो काफी है। गलतियाँ करते हुए भी हम प्रगति करेंगे। अगर फिर हम वही गलती न करें तो काफी है। तुम जबतक बाहर रहना चाहो, रहना। यदि उमरेठ भी हो आओ तो अच्छा रहेगा। मैं समझता हूँ छगनलाल तो अहमदाबादमें ही होगा। शहर जानेका अवसर तो बहुत कम आता होगा। देवभाभी[3] और खुशालभाईको[4] मेरा प्रणाम कहना। तुम सबको नये सालके मेरे आशीर्वाद।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७०६) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

२८. पत्र : हरिलाल गांधीको

मोतीहारी

[नवम्बर १५, १९१७][5]

चि० हरिलाल,

आज दीवाली है, नया वर्ष तुम्हें फले, तुम्हारी शुभेच्छाएँ पूरी हों और तुम सबके चारित्र्यकी पूँजीमें वृद्धि हो, यही मैं चाहता हूँ। यही सच्ची लक्ष्मी है, उसीका पूजन करनेमें कल्याण है। मेरी भगवान्से प्रार्थना है कि यह सत्य तुम्हें अधिकाधिक स्फूर्ति दे।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ५

१. गुजराती पंचांगके अनुसार दीवाली १४ नवम्बरको पड़ी थी।
२. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।
३. और ४. मगनलालके माता-पिता।
५. महादेव देसाईकी डायरीके अनुसार यह पत्र १५ नवम्बरको लिखा गया था।

२९. पत्र : मगनलाल गांधीको

मोतीहारी

नव वर्ष, सं० १९७४ [नवम्बर १५, १९१७]

आजके मंगल-प्रसंगपर तुम्हें मैं क्या दूँ? जिसकी तुममें मुझमें, बहुतोंमें कमी है, वही देनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। वह मिल गया, तो सब कुछ मिल गया। जिसमें कुछ हो, वही दे सकता है। इस न्यायसे मैं क्या दूँ? हम एक साथ ही माँगें।[1]

मैं मनुष्य और देवताकी वाणी भले बोलूँ, पर मुझमें प्रेम न हो, तो मैं ढोल या खाली घड़ेके समान हूँ। भले ही मैं भविष्यवाणी कर सकूँ, मुझे पूर्ण ज्ञान हो, मुझमें पर्वतोंको खिसका सकनेकी श्रद्धा हो, पर प्रेम न हो, तो मैं तिनकेके बराबर हूँ। अगर मैं अपना सब-कुछ गरीबोंको खानेके लिए दे दूँ और अपना शरीर भी जला डालूँ, पर मुझमें प्रेम न हो, तो मेरे कार्यसे कुछ भी लाभ न होगा।

प्रेम बहुत सहन करता है; जहाँ प्रेम है वहाँ दया है। प्रेममें द्वेषकी गुंजाइश ही नहीं, प्रेममें अहम्-भाव नहीं, प्रेममें मद नहीं, प्रेममें अयोग्यता नहीं, प्रेम स्वार्थी नहीं, प्रेम जल्दी नहीं चिढ़ता, प्रेमको दुष्ट विचार नहीं आते, प्रेम अन्यायसे प्रसन्न नहीं होता। प्रेम सत्यसे ही प्रसन्न रहता है, प्रेम सब-कुछ सहन करता है, सब-कुछ मान लेता है। प्रेम आशामय है, सब-कुछ सह लेता है। भविष्यवाणी झूठी हो जाती है, वाचा बन्द हो जाती है और ज्ञानका नाश हो जाता है; पर प्रेम कभी निष्फल नहीं होता।

जब मैं बालक था, तब बालककी तरह बोलता था। बालकके बराबर मेरी समझ थी और बालककी तरह सोचता था। जब बड़ा हुआ, तो मैंने बचपना छोड़ दिया। अभी तो हमपर पर्दा पड़ा हुआ है और हम धुँधला-धुँधला देखते हैं। बादमें तो हम आमने-सामने खड़े होकर देख सकेंगे। अभी तो मुझे थोड़ा ज्ञान है। फिर मैं जैसा जाना जाता हूँ वैसा भी जानूँगा। अन्तमें, श्रद्धा, आशा और प्रेम ये तीन चीजें ही स्थायी हैं। उनमें भी प्रेम श्रेष्ठ है।"

इसे पढ़ना, इसपर विचारना और फिर पढ़ना। इसकी अंग्रेजी पढ़कर हिन्दी करना। जैसे भी हो, घड़ीभर तो प्रेमकी खासी झाँकी ले लेना। मीराको प्रेमकी कटारी गहरी लगी थी, प्रेमकी वैसी कटारी हमारे भी हाथ लगे और हममें उसे

१. देखिए **१ कॉरिन्थियन्स**, अध्याय १३। गांधीजीने इसे गुजरातीमें दिया था। यहाँ उसीका हिन्दी अनुवाद किया गया है।

भोंकनेका बल आ जाये, तो हम दुनियाको हिला दें। प्रेमके अपने अन्तरमें होते हुए भी मैं हर क्षण उसके अभावका अनुभव करता रहता हूँ। कमी तो मुझमें बहुत है। कभी-कभी अधजल घड़ेकी तरह हो जाता हूँ। कल ही जो लोग मुझे प्रेमसे रोक रहे थे, उनके लिए मेरे पास समय नहीं था। इसलिए मनही-मन दुःखी होता रहता हूँ। यह कोई प्रेमकी निशानी नहीं। यह तो 'अधजल गगरी छलकत जाये' जैसी बात है। नया वर्ष तुम्हारे लिए लाभदायी सिद्ध हो। अपनी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विभूतियाँ बढ़ाकर उन सबको तुम भारतके चरणोंपर प्रेम-भावसे अर्पित-कर दो, यही मेरी इच्छा है और यही आशिष।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३०. पत्र : जे० एल० मेरीमैनको

मोतीहारी
नवम्बर १७, १९१७

प्रिय श्री मेरीमैन,

मैं कल कोयरी गया था। वहाँ शिवरत्न[1] तथा अन्य लोगोंसे मुलाकात हुई। मुझे पता चला है कि जो जाँच आपके आदेशानुसार की गई है उसका परिणाम शिवरत्नको इसी २३ तारीखको सूचित किया जानेवाला है,-इस कारण मैं तबतक के लिए अपने विचार प्रकट करना स्थगित कर रहा हूँ।

सिराहा देहातकी रैयतका कहना है कि उस कारखानेमें कुछ इकरारनामोंपर लोगोंसे अँगूठेकी छाप ली जा रही है। किन्तु मैं मसविदा देखे बिना उन्हें क्या करना चाहिए इसके बारेमें सलाह नहीं दे सकता। इसलिए मैंने उनसे कह दिया है कि यदि वे मेरी सलाह चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि जबतक मैं मजमूनको न देख लूँ तबतक उन्हें किसी कागजपर हस्ताक्षर नहीं करने चाहिए; क्योंकि उन्हें देखे बिना मैं सलाह दे ही नहीं सकता। मैंने सोचा कि यह बात आपको बतला देना ठीक होगा। मैं यह भी कह दूँ कि यदि जमींदार, रैयतके साथ जो इकरारनामा लिखा जाना है, वह आपको दिखा दिया करे तो इससे जमींदार और रैयतके सम्बन्ध मधुर होने लगेंगे। आपको इस बातकी जानकारी होगी ही कि रैयतकी बहुधा यह शिकायत रहा करती है कि

१. शिवरत्न नोनिया।

उन्हें अक्सर ऐसे कागजातोंपर जिनको वे समझ भी नहीं सकते हैं[1] हस्ताक्षर देनेके लिए कहा या मजबूर किया जाता है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

महादेव देसाईके अक्षरोंमें और गांधीजीके हस्ताक्षरयुक्त मूल अंग्रेजी पत्र (नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया.) से; तथा **सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज़ मूवमेंट इन चम्पारन**, १९१७–१८, पृष्ठ ४२५ से भी।

३१. पत्र : रणछोड़लाल पटवारीको

मोतीहारी
कार्तिक सुदी ४ [नवम्बर १८, १९१७]

आदरणीय भाईश्री,

आपका पत्र मिलनेपर चित्तको वैसी ही शान्ति प्राप्त हुई जैसी कालाभाईके[2] पत्रको पाकर हुई थी। पटवारी-परिवारपर मैं मुग्ध हूँ। आपने मुझे संकटके समय जो सहायता दी थी वह मैं कभी नहीं भूल सकता।[3] मैं आपको हमेशासे बड़े भाई जैसा मानता आया हूँ। अगर आपने मुझे बम्बईमें मदद न की होती, तो, कोई नहीं कह सकता, मेरी क्या दशा हुई होती।

इसका मैं एक ही प्रतिदान दे सकता हूँ : मैं इस प्रकारसे रहूँ, जिससे आपको लगे कि इस व्यक्तिको मदद देकर हमने ठीक किया। मुझे लगता है, आपको मेरे हरिजन-सम्बन्धी कार्योंसे दुःख हुआ है। अपने इस कामको मैं छोड़ नहीं सकता। लेकिन आपको दुःख हो यह मेरे लिए कष्टदायक है, इसलिए जब आपका पत्र मिला तब मैंने सोचा कि मेरा हरिजन-सम्बन्धी कार्य आपको नापसन्द है किन्तु कुल मिलाकर मैं जो-कुछ कर रहा हूँ उसे आप अनुचित नहीं मानते। यह मुझे आशीर्वाद-समान जान पड़ा।

लेकिन, अभी मैं इससे भी अधिक की आशा रखता हूँ। वैष्णव-धर्मके नामपर इस महापवित्र धर्मका लोप हो रहा है। गो-रक्षाके नामपर गायकी हत्या हो रही है। धर्मके नामपर पाखण्डका प्रसार हो रहा है। धार्मिक होनेका ढोंग करनेवाले अधार्मिक लोग धर्म-सम्बन्धी नियमोंका विधान करते हैं। मैं यह सब अनुभव करता हूँ तो फिर वैष्णव

१. मेरीमैनने नवम्बर १८ के अपने जवाबमें लिखा था; अगर वे लोग सोचते हैं कि उन्हें सताया जा रहा है तो वे अदालतमें जानेके लिए स्वतंत्र हैं। मैं अदालतमें पेश किसी भी मुकदमेके सम्बन्धमें ऐसी कोई बात नहीं सुनना चाहता, जिससे अदालतके मनमें पक्षपातकी भावना आनेकी संभावना हो। इसलिए मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आपका इरादा मुझे शिवरत्न नोनिया द्वारा पेश किये गये मामलेसे सम्बन्धित अपनी जानकारी बतानेका नहीं है।

२. लक्ष्मीदास गांधी, गांधीजीके बड़े भाई।

३. पटवारीजीके पिताने गांधीजीको वकालतकी शिक्षा प्राप्त करनेके उद्देश्यसे सन् १८८८ में इंग्लैंड जानेके लिए आर्थिक सहायता दी थी; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ११।

धर्मकी प्रतिष्ठा चाहनेवाले आप यह सब कैसे नहीं देख पाते? यह प्रश्न निरन्तर मेरे सम्मुख रहता है। भंगीका स्पर्श करनेमें कदापि पाप नहीं है। गायके नामपर मुसलमानका वध करनेमें कदापि पुण्य नहीं है, धर्म-पुस्तकोंमें कदापि असत्यका प्रतिपादन नहीं हो सकता, स्वेच्छाचारीके हाथमें धर्मकी बागडोर कदापि नहीं दी जा सकती; ये सब वाक्य सूत्रों-जैसे हैं। इनमें मतभेद कैसे हो सकता है? वैष्णव समाजपर आपका जो अधिकार है, आप उसका उपयोग इस दिशामें क्यों नहीं करते? मुझ-जैसोंको आप और तरह न सही, वचनसे ही मदद क्यों नहीं देते? जो मैं देखता हूँ उसे मैं आपको किस तपस्याके द्वारा दिखाऊँ? ये विचार मेरे मनमें उठते ही रहते हैं। आप एक बार फिर मनही-मन विचार कीजिएगा।

मैं अपने भाषण[1] आपको, इस इच्छासे कि आप उपर्युक्त बातोंको दृष्टिमें रखकर एक बार फिर उन्हें पढ़ें, भेज रहा हूँ।

हालाँकि मैं फिलहाल पढ़ नहीं सकता फिर भी आप मुझे कहे हुए ग्रन्थ अवश्य भेजिये।

आश्रमके लिए साबरमतीके किनारे ५५ बीघे जमीन ली है। उसपर निर्माण-कार्य हो रहा है, लेकिन प्लेगके कारण उसकी रफ्तार बहुत धीमी है।

मोहनदासके प्रणाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (जी० एन० ४१२४) की फोटो-नकलसे।

३२. पत्र : जे० एल० मेरीमैनको

मोतीहारी
नवम्बर १९, १९१७

प्रिय श्री मेरीमैन,

मैं जो स्कूल खोल रहा हूँ उनमें १२ बरससे कम उम्रके ही बालक दाखिल किये जाते हैं। ज्यादासे-ज्यादा, जितने हो सकें उतने बच्चे लेने और उनको सब तरहकी शिक्षा देनेका इरादा है, अर्थात् उन्हें हिन्दी या उर्दूका ज्ञान देना है और उसके माध्यमसे गणित, इतिहास और भूगोलके प्रारम्भिक सिद्धान्त एवं सरल वैज्ञानिक सिद्धान्त सिखाने हैं और कुछ औद्योगिक शिक्षा देनी है। अभी तक कोई निश्चित पाठ्यक्रम तैयार नहीं किया गया है, क्योंकि मेरे लिए यह बिलकुल नया-नया अनुभव है। मुझे शिक्षाकी हमारी वर्तमान प्रणालीकी उपयोगितामें विश्वास नहीं है। उसमें छोटे बच्चोंकी नैतिक और मानसिक शक्तियाँ विकसित होनेके बजाय कुंठित हो जाती हैं। यद्यपि मैं अपने प्रयोगमें उसकी सब अच्छी बातें ले लूंगा, किन्तु मैं उसके दोषोंसे बचनेका प्रयत्न करूँगा। मुख्य लक्ष्य यह है कि बच्चोंका सम्पर्क सुसंस्कृत और निर्दोष चरित्रके स्त्री-

१. ये भाषण उपलब्ध नहीं हैं; लगता है कि गांधीजीका संकेत जिन भाषणोंकी ओर था अनुमानतः ये वही भाषण थे अथवा उनमें वे भाषण भी शामिल थे जो उन्होंने नवम्बर ५ को गोधरामें और नवम्बर १४ को मुजफ्फरपुरमें दिये थे।

पुरुषोंसे रहे। मेरी दृष्टिमें यही शिक्षा है। अक्षर-ज्ञानका प्रयोग उसी उद्देश्यकी पूर्तिके निमित्त करना है। औद्योगिक शिक्षा उन बच्चोंको, जो हमारे पास आयें, आजीविकाका अतिरिक्त साधन देनेके लिए सोची गई है। इसका उद्देश्य यह नहीं है कि वे शिक्षा पूरी करके अपने पैत्रिक धन्धे कृषिको त्याग दें, बल्कि यह है कि वे स्कूलमें अर्जित ज्ञानका उपयोग कृषिकी और कृषकके जीवनकी दशा सुधारनेके लिए करें। हमारे शिक्षक वयस्क लोगोंके जीवनको भी प्रभावित करेंगे और सम्भव होगा तो पर्देमें भी अर्थात् स्त्री-समाजमें भी प्रवेश करेंगे। इसलिए वयस्क लोगोंको स्वास्थ्य-सफाईकी शिक्षा दी जायेगी और उन्हें सामाजिक सुख-सुविधाओंमें वृद्धिके लिए संयुक्त कार्य करनेके लाभ बताये जायेंगे। इस संयुक्त कार्यका उपयोग ऐसे कार्योंमें किया जायेगा जैसे गाँवके रास्ते ठीक करना और कुँए खोदना आदि। चूँकि किसी भी स्कूलमें ऐसे स्त्री-पुरुष नियुक्त न किये जायेंगे जो सुशिक्षित न हों, इसलिए हम यथासम्भव मुफ्त दवा-दारू भी देना चाहते हैं। उदाहरणके लिए बबरवामें श्रीमती अवन्तिकाबाई गोखले, जो एक प्रशिक्षित नर्स और दाई हैं, स्कूलकी निर्देशिका हैं और उनके पति उनकी सहायता करते हैं। उन्होंने अभी चार ही दिन काम किया है। इन दिनोंमें वे बीसियों रोगियोंको अंडीका तेल और कुनैन बाँट चुकी हैं एवं कई रुग्ण स्त्रियोंको देख चुकी हैं।

यदि आप कुछ और जानकारी चाहते हैं, तो मैं अवश्य ही प्रसन्नतापूर्वक दूँगा। मैं तो आशा करता हूँ कि मैं अपने कार्यमें स्थानीय अधिकारियोंका पूरा सहयोग प्राप्त कर सकूँगा। मैं कल अमोलवासे दो मील दूर श्रीरामपुरमें एक दूसरा स्कूल खोल रहा हूँ।

दस्तावेजोंके बारेमें काश्तकारोंकी शिकायतोंके सम्बन्धमें प्रत्यक्ष है कि जो खास बात में कहना चाहता था वह मैंने नहीं कही है। मैं जानता हूँ कि जोर-जबरदस्तीके बारेमें काश्तकार अदालतमें जा सकते हैं। कठिनाई यह है कि उन्हें व्यवस्थित रूपसे कार्य करनेका न तो प्रशिक्षण मिला है और न वे उसके लिए काफी संगठित ही हैं। नैतिक दृष्टिसे जो बात जोर-जबरदस्तीमें आती है वह सम्भव है कानूनमें जोर-जबरदस्ती न भी हो। चम्पारनके किसानोंका मेरा अनुभव तो यह है कि वे बेहद नासमझ हैं और उनसे कोई भी बात आसानीसे मनवाई जा सकती है। इसलिए मेरी मान्यता तो यह है कि ऐसे लोगोंको उनके अपने अज्ञानसे बचानेका काम उनके संरक्षकके रूपमें सरकारको करना है। मैं यह नहीं कहता कि आपके ध्यानमें सरैयाका जो मामला लाया गया है उसमें कोई जोर-जबरदस्ती बरती गई है। मैंने तो केवल यही कहा है कि जैसे दस्तावेजोंका जिक्र मैंने अपने पिछले पत्रमें किया है उनपर दस्तखत कर चुकनेपर जोर-जबरदस्तीका कोई आरोप न किया जा सके, इस गरजसे आप उचित समझें तो काश्तकारोंको दस्तखत करनेके लिए जो करार अब दिये गये हैं उनके सम्बन्धमें पूछताछ कर लें।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

महादेव देसाईके अक्षरोंमें और गांधीजीके हस्ताक्षरयुक्त मूल अंग्रेजी पत्र (नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडियासे); तथा सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन, १९१७–१८, सं० २१०, पृष्ठ ४३०-१ से भी।

३३. पत्र : रामनवमी प्रसादको[1]

[मोतीहारी
नवम्बर २१, १९१७][2]

भाईश्री,

मैं २३ तारिखको[3] १० वजे यहांसे निकलुंगा. उस ट्रेनको मुजफ्फरपुर मीलीयेगा। उस वखत अरजी बारेमें सुनाउंगा. फीस दें तो लेनेमें कुछ हरज नहि देखता हुं. दूसरी मद्रसा कल खुली.

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल पत्र (जी० एन० ७३५) की फोटो-नकलसे।

३४. पत्र : जे० एल० मेरीमैनको

मोतीहारी
नवम्बर २२, १९१७

प्रिय श्री मेरीमैन,

पिछले मंगलवारको मैं भीतिहरवा गया और वहाँ एक स्कूल खोल आया। वेलगाँवके एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता श्री सोमण, बी० ए०, एलएल० बी० को इसकी व्यवस्था सौंपी है। गुजरातके एक नवयुवक बालकृष्ण उनकी सहायता करेंगे। श्रीमती गांधी परसों २४ तारीखको वहाँ पहुँच जायेंगी। उनका मुख्य काम स्त्रियोंसे मिलना-जुलना ही होगा।

कल मैं वधरवामें था। उसी समय श्रीमती गोखले और मेरा पुत्र एक मरणासन्न व्यक्तिसे भेंट करके लौट रहे थे। उन्होंने मुझे बताया कि जिलेके लोग मरीजोंकी ओरसे बहुत ही लापरवाह हैं। उनका विश्वास है कि उस जिलेमें बहुतेरी ऐसी मौतें होती रहती हैं जिनका होना रोका जा सकता है, क्योंकि ये मौतें स्वास्थ्य सम्बन्धी मामूली-मामूली नियमोंके पालनके अभावके कारण होती हैं। मैं जानता हूँ कि यह आपके लिए कोई नई बात नहीं है, क्योंकि यह, श्रीमती गोखले जिस जिलेमें काम कर रही

१. (१८४१–१९६३); मुजफ्फरपुरके प्रसिद्ध वकील; गांधीजीके साथ चम्पारनके आन्दोलनमें भाग लिया। १९१९–२२ में मुजफ्फरपुरमें असहयोग आन्दोलनका संयोजन किया था।

२. जिस दूसरे स्कूलका संदर्भ इस पत्रमें दिया गया है वह स्कूल २० नवम्बर, १९१७ को नेपालकी तराईके भीतिहरवा नामक गाँवमें खोला गया था।

३. गांधीजीको मॉण्टेग्युसे भेंट करने दिल्ली जाना था।

हैं, वहाँकी या चम्पारनकी विशेष स्थितिके कारण नहीं हो रहा है, बल्कि हिन्दुस्तानके गाँवोंकी बहुत दिनोंसे यही हालत चली आ रही है।

इन घटनाओंकी चर्चा तो मैंने सिर्फ इसलिए की है कि ज्यों-ही मेरा यह प्रयोग थोड़ा-बहुत आगे बढ़े त्यों-ही मैं इस काममें आपकी सक्रिय सहानुभूति और सहयोग चाहूँगा क्योंकि इसमें सभी लोग बिना संकोचके मिल-जुलकर योग दे सकते हैं।

डॉ० देव[1], जो शल्य-क्रिया और चिकित्सामें प्रवीण तथा अनुभव-प्राप्त व्यक्ति हैं और जो भारतसेवक समाजके मन्त्री भी हैं, मंगलवारको यहाँ आये थे। इस कामके लिए उनकी संस्थाकी ओरसे हमें उनकी सेवाएँ [कुछ कालके लिए] सुलभ कर दी गई हैं। उनके साथ तीन अन्य स्वयंसेवक भी हैं, जिनमें से कर्वेके विधवा आश्रमकी एक महिला भी हैं। हमारी योजनाके चिकित्सा विभागकी देखरेख डॉ० देवका मुख्य कार्य होगा।

मैं यह भी कह दूं कि पन्द्रह दिनसे कुछ अधिक समयके लिए मैं चम्पारनके बाहर जा रहा हूँ। मेरी अनुपस्थितिमें मेरा सब काम बाबू ब्रजकिशोर करेंगे।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

महादेव देसाईके अक्षरोंमें और गांधीजीके हस्ताक्षरयुक्त मूल अंग्रेजी पत्र (नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया) से; तथा **सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन, १९१७–१८**, सं० २१२, पृष्ठ ४३१-२ से भी।

३५. पत्र : चन्दुलालको

मोतीहारी

कार्त्तिक सुदी ८ [नवम्बर २२, १९१७]

भाईश्री चन्दुलाल,

आपका पत्र मिला है। आपने ठीक व्रत लिये हैं और उनका पालन भी सही ढंगसे किया है। व्रतोंके बिना चरित्रका विकास नहीं होता, ऐसी मेरी मान्यता है। जैसे जहाजके लिए लंगर है वैसे ही मनुष्यके लिए व्रत हैं और जैसे लंगर-विहीन जहाज इधर-उधर डोलता हुआ अन्तमें चट्टानोंसे टकराकर टूट जाता है, व्रतोंसे रहित मनुष्यकी दशा भी वैसी ही होती है। सत्य-व्रतमें और सब व्रतोंका समावेश हो जाता है। सत्यको समझनेवाला ब्रह्मचर्य कैसे तोड़ सकता है और चोरी कैसे कर सकता है? ब्रह्म ही सत्य है और सब मिथ्या है, यह सूत्र सच्चा है तो सत्यके पालनमें ब्रह्मज्ञान समाविष्ट है।

अहिंसा और सत्य पर्यायवाची व्याख्याएँ हैं। 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' में यही भावना ओतप्रोत जान पड़ती है। जिस सत्यमें दुःख नहीं है वही खरा है, और वही

१. डॉ० हरि श्रीकृष्ण देव।

अहिंसामय है। सत्य कड़वा लगता है लेकिन उसका परिणाम दुःखमय नहीं होता। सत्यके प्रयोगसे सामने बैठा हुआ व्यक्ति चिढ़ जायेगा, लेकिन उसकी आत्मा गवाही देगी कि उसके विषयमें जो कुछ कहा गया है वह शुद्ध उद्देश्यसे कहा गया है और सही है। सत्यका हम बहुत व्यापक अर्थ लेते हैं। सत्य अर्थात् केवल सत्यवचन नहीं बल्कि जो अर्थ ब्रह्म सत्यमें समाया हुआ है वह है। यही अर्थ 'ट्रुथ' शब्दका है।

मुझे याद है, मैंने आपसे कहा था कि आप स्त्री-शिक्षाके लिए नहीं बने हैं। [इसमें] मुझसे भूल भी हो सकती है लेकिन वह काम अपेक्षाकृत कठिन है और आपमें उस [कार्य]के लिए अपेक्षित शक्ति है, मुझे ऐसा नहीं लगा। आप स्वतन्त्र रीतिसे इस कार्यको कर सकते हैं, ऐसा मुझे आपके विषयमें अनुभव नहीं हुआ। इतना होनेके बावजूद यदि आपको इस कार्यके प्रति लगाव है तो आप भले ही इसे करते रहिए। मुझे लगता है कि शारदाबेन[1] भी अब आपके बिना गुजारा नहीं कर सकतीं। इसलिए यही ठीक होगा कि आप उस कामको न छोड़ें।

मुझे आपमें शारीरिक उत्साह कम नजर आया है। आपको आश्रममें अथवा दूसरी जगहमें, जितना शरीर झेल सके, उतना शारीरिक काम — अनाज साफ करनेसे लेकर गड्ढे खोदने तक करनेकी आवश्यकता है। वैसा करते हुए आपकी मानसिक शक्तिको नया तेज मिलेगा तथा आपमें जो शिथिलता है वह जाती रहेगी। आँख, हाथ, पैर आदिको व्यायामकी जरूरत है। मैंने आपमें कार्य-शक्तिका अभाव पाया है।

मैंने भाई नन्दलाल किसनका पत्र पढ़ा है। देशी रजवाड़ोंमें क्या प्रयत्न किया जा सकता है इस विषयपर बातचीत करेंगे। दिसम्बरमें आप बम्बई अथवा अहमदाबादमें तो मिलेंगे ही।

आप अपने विषयमें श्रद्धा रखेंगे तो परिवारके लिए बहुत-कुछ कर सकेंगे। माँको वश करना लड़कोंका काम है। माँका प्रेम ऐसा होता है कि वे लड़कोंकी इच्छाओंके भी वशीभूत हो जाती हैं। लड़कियोंको आप पर्याप्त समय नहीं देते यह तो अपराध है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (जी० एन० ३२५८) की फोटो-नकलसे।

१. एक सामाजिक कार्यकर्त्री; विद्यागौरी नीलकण्ठकी बहन।

३६. भाषण: अलीगढ़में[1]

नवम्बर २८, १९१७

. . . उन्होंने श्रोताओंको बताया कि जबतक हममें एकता नहीं हो जाती तबतक स्वराज्य प्राप्तिसे राष्ट्रका लाभ होगा, ऐसा कहना बेकार होगा। आजके दंगोंका उल्लेख करते हुए उन्होंने हिन्दुओं द्वारा प्रदर्शित घृणित और हेय बर्बरताके प्रति घृणा व्यक्त की और कहा कि हिन्दुओंको अपनी कमी पूरी करनी चाहिए। हिन्दुओं और मुसलमानोंके झगड़े पारिवारिक झगड़ोंकी तरह तय कर लिये जाने चाहिए। उन्होंने अली बन्धुओंका कई बार उल्लेख किया। . . .

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९१७

३७. भाषण: अलीगढ़ कॉलेजमें[2]

अलीगढ़

नवम्बर २८, १९१७

. . . उन्होंने कहा मुझे उम्मीद है कि मैं यहाँ इस कॉलेजमें अली बन्धुओंके साथ आऊँगा। मैंने अलीगढ़को राष्ट्र और देशके लिए कार्य करते देखा है परन्तु मुसलमान अपने देशके उत्थानकी दिशामें उस लगनसे काम नहीं कर रहे हैं, जिससे उनके हिन्दू भाई कर रहे हैं। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होगी कि अलीगढ़ कॉलेजके यदि सब नहीं तो कुछ विद्यार्थी, श्री गोखलेकी तरह राष्ट्रोन्नायक बनें। उन्होंने अपनी पोशाककी (सफेद कुर्ता, धोती और टोपी) का जिक्र करते हुए कहा कि भारतीयोंके लिए यही उपयुक्त पोशाक है। दलित-वर्गके लोग आधुनिक वेशभूषावाले व्यक्तियोंकी अपेक्षा

१. यहाँ पहुँचनेपर छात्रोंकी भारी भीड़ने गांधीजीका स्वागत किया और स्टेशनसे लायल पुस्तकालयके मैदान तक उनका जुलूस निकाला। मैदानमें गांधीजीने २,००० लोगोंकी सभामें हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यपर भाषण दिया। एक छात्रने स्वराज्यकी कामना करते हुए गांधीजीको माला पहनाई। १–१२–१९१७ के लीडरमें प्रकाशित गांधीजीके भाषणकी रिपोर्टमें कहा गया है कि गांधीजीने सर सैयद अहमदखाँकी इस उक्तिका उल्लेख किया कि "हिन्दू और मुसलमान भारतमाताकी दो आँखें हैं।"

२. पुस्तकालयके मैदानमें भाषण देनेके बाद, (देखिए पिछला शीर्षक) गांधीजीने कॉलेजके कार्यकारी प्रिंसिपल श्री रेनलसे अनुमति लेकर विद्यार्थियोंके समक्ष "सत्य और मितव्ययिता" पर भाषण दिया। बादमें वे ख्वाजा अब्दुल मजीदके घर गये और वहाँसे कलकत्ता जानेके लिए स्टेशन चले गये।

भारतके प्राचीन ढंगके अनुसार वस्त्र पहननेवालोंकी बात अधिक तत्परतासे सुनेंगे और उनसे सम्मति लेने भी अधिक प्रसन्नताके साथ उनके पास पहुँचेंगे।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९१७

३८. मगनलाल गांधीके नाम लिखे पत्रका अंश[1]

[नवम्बर ३०, १९१७ के पूर्व]

. . . *दोनोंके ऊपर अत्यधिक कार्यभार है। तुममें और मुझमें शायद एक अन्तर* है। मुझे जो-कुछ खुशी मिलती है, संयमसे मिलती है। संयमके बिना मैं जी ही नहीं सकता। जब-जब मुझसे संयम नहीं निभता मुझे दुःख होता है। बा पर जब भी मुझे गुस्सा आता है उसका प्रायश्चित्त मैं अपनेको कष्ट देकर पूरा करता हूँ। गोधरामें मुझे एक प्रतिनिधिपर गुस्सा आ गया था, परन्तु जबतक मैंने सबके सामने उससे माफी नहीं माँगी मुझे सन्तोष नहीं हुआ।

३० नवम्बरको मुझे कलकत्ता रहना होगा; इसीलिए उम्मीद है कि जल्दी ही अहमदाबाद पहुँचूंगा।[2] लेकिन रहना दो ही दिन हो सकेगा। यह भी हो सकता है कि मैं अहमदाबाद आ ही न सकूं। कोशिशमें अपनी हदतक कसर नहीं रखूंगा।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७०७) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

३९. प्लेगके सम्बन्धमें सामान्य सुझाव

नडियाद
दिसम्बर ६, १९१७

इसे कैसे रोका जाये

१. मनुष्यका रक्त यदि स्वच्छ हो तो उसमें प्रत्येक रोगके कीटाणुओंको नष्ट करनेकी शक्ति होती है।

२. इसलिए, यदि हम अपने शरीरको स्वस्थ रखें तो चाहे कितनी ही भयंकर महामारी क्यों न फैली हो, रक्तकी स्वच्छताके कारण, हम सुरक्षित रह सकते हैं।

३. रक्तको स्वच्छ बनाये रखनेके लिए मनुष्यको सादा, अल्प तथा नियमित भोजन करना चाहिए। अत्यधिक चर्बीयुक्त, मीठी अथवा चटपटी खुराक वर्जित है। सोनेसे

१. इस पत्रके पहले तीन पृष्ठ उपलब्ध नहीं हैं।

२. गांधीजी ४ और ५ दिसम्बरको अहमदाबादमें थे।

पहले कमसे-कम तीन घंटेतक मनुष्यको कुछ खाना नहीं चाहिए। हवा भी खुराक है, इसलिए ऐसे कमरेमें सोना चाहिए जिसमें खिड़की और दरवाजे हों; खिड़की-दरवाजे खुले रखने चाहिए और सिरपर चादर लपेट कर नहीं सोना चाहिए। सिरको सर्दी लगे तो टोपी पहनकर सोओ, लेकिन मुँह चादरसे बाहर ही रखना चाहिए। श्वास मुहसे नहीं, नाकसे लेनी चाहिए। नाकसे श्वास लेनेमें तनिक भी सर्दी लगनेकी सम्भावना नहीं होती। पानी भी साफ होना चाहिए। हमेशा उबला तथा मोटे कपड़ेसे छना हुआ पानी पीना अच्छा है। कपड़ेको बहुत सावधानीसे धोना चाहिए। उसी प्रकार गागर, कलश आदि भी प्रतिदिन अन्दरसे अच्छी तरह साफ किये जाने चाहिए। दो घंटे पैदल चलनेपर जितना श्रम होता है, प्रत्येक स्त्री-पुरुषको प्रतिदिन उतनी कसरत करना जरूरी है।

४. शरीरको उपर्युक्त विधिसे नीरोग रखनेके बावजूद यदि घर और [उसके] आस-पासका वातावरण स्वच्छ न हो तो भी रक्तके दूषित होनेकी सम्भावना है। घरकी खिड़कियाँ, दरवाजे, छत, जमीन, सीढ़ियाँ — संक्षेपमें प्रत्येक भागको बराबर साफ किया जाना चाहिए। अर्थात् धोने योग्य भागको अच्छी तरहसे धोनेके बाद सूखने देना चाहिए। मकड़ीका जाला, धूल, घास और कूड़े-करकटको अच्छी तरह बुहारकर घरसे बाहर फेंक देना चाहिए। घरके किसी भागमें सीलन न रहे ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। कालीन और दरी आदिको भी प्रतिदिन झाड़ना चाहिए और [उन्हें] हमेशा एक ही जगहपर नहीं बिछाना चाहिए। डॉक्टरोंका कहना है कि प्लेग पिस्सुओंकी मारफत फैलता है। स्वच्छ घरमें जहाँ हवा और उजाला काफी मात्रामें होते हैं वहाँ पिस्सू कदाचित् ही आयेंगे। उनका यह भी कहना है कि प्लेग चूहोंसे होता है। इसलिए मनुष्यको घरके कोनोंके पलस्तर आदिकी अच्छी तरहसे जाँच करके कहीं भी बिल न रहने पाये, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। यह काम ऐसा है कि इसे आसानीसे और बिना किसी खर्चके किया जा सकता है। सिर्फ हमारे आलस्यके कारण ही चूहे हमारे घरोंमें बिल बनाकर रह सकते हैं। घरमें बिल्ली पालनेसे चूहोंका आना रुक सकता है।

५. लेकिन हिन्दुस्तानमें इस रोगके होनेका सबसे बड़ा कारण हमारी जंगल जानेकी खराब और अत्यन्त हानिकारक टेव है। बहुतसे लोग बाहर जाते हैं और मैलेको मिट्टी अथवा अन्य रीतिसे ढँकते नहीं हैं जिसके फलस्वरूप करोड़ों मक्खियाँ पैदा होती हैं और वे मक्खियाँ मैलेपर बैठनेके बाद हमारे शरीर, हमारे वस्त्रों और हमारे भोजन-पर भी बैठती हैं। मैलेसे अनेक प्रकारकी विषैली गैस पैदा होती हैं और आसपासके वातावरणको बिगाड़ती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मनुष्योंकी सर्वोत्तम खुराक, हवा, दूषित हो जाती है और उनका शरीर स्वस्थ रह ही नहीं सकता। हमारे पाखा-नोंका मैला भी इतना ही अथवा इससे भी अधिक हानिकारक है, क्योंकि वह तो अपने घरमें ही होता है। इसलिए यदि हम बाहर शौच करनेके लिए जायें तो जैसे अन्य देशोंके लोग गड्ढे खोदकर शौच करनेके बाद मैलेको मिट्टीसे ढँक देते हैं, हमें भी वैसा ही करना चाहिए। और पाखानोंकी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे हर बार शौच करनेके बाद हम मैलेको अच्छी तरहसे सूखी मिट्टीसे ढँक सकें। मैला किसी तरहकी बाल्टीमें इकट्ठा किया जाना चाहिए। कूड़ा-स्थानोंका सर्वथा त्याग करना चाहिए तथा

मोरीमात्र बन्द की जानी चाहिए। पेशाब और पानी भी बाल्टीमें इकट्ठा किया जाना चाहिए। यदि हम मिथ्या धर्मके भ्रममें न पड़ें तो हम एक दिन भी नरकके समान इस गन्दगीको सहन न करें। पाखानोंकी रचना ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक भागमें भंगी प्रवेश कर सके। इन सुधारोंके विना हिन्दुस्तानके नगर कभी भी छूतके रोगोंसे मुक्त नहीं हो सकते।

६. रास्तोंमें चाहे जहाँ पेशाब करने, थूकने, गोबर और अन्य कूड़ा-करकट आदि फेंकनेसे भी हवा दूषित होती है। डॉक्टरोंने खोज की है कि कुछ-एक [ऐसे] रोगी —उदाहरणके तौरपर क्षय रोगसे ग्रसित व्यक्ति रास्तेमें थूकते हैं; इससे भी क्षयके कीटाणु फैलते हैं और अन्य लोगोंको रोगकी छूत लग जाती है। हमें किन स्थानों-पर शौचादि क्रियाएँ करनी चाहिए इस बातपर हमें अवश्य विचार करना चाहिए। इस देशमें करोड़ों मनुष्य नंगे पाँव चलते हैं। इन व्यक्तियोंको मैलेके ऊपर चलना पड़े [क्या] यह अत्यन्त दुःखकी बात नहीं है। हमारी सड़कें, हमारी गलियाँ, हमारे आँगन इतने स्वच्छ होने चाहिए कि हमें वहाँ बैठना अथवा सोना पड़े तो तनिक भी हिचकिचाहट न हो।

जिन शहरोंमें अंग्रेज रहते हैं वहाँ प्लेगका भारी प्रकोप हो जानेपर भी उनकी बस्तियाँ [इससे] मुक्त रहती हैं, उसका क्या कारण है यह बात खूब विचार करने योग्य है। इसका कारण इन बस्तियोंका स्वच्छ होना ही है। और कुछ नहीं। स्वच्छता रखनेमें पैसेकी जरूरत नहीं, विवेकपूर्वक सावधानीकी आवश्यकता है।

उपचार

७. जिन शहरोंमें उपर्युक्त नियमोंका बराबर पालन किया जायेगा उन शहरोंमें प्लेगका रोग प्रवेश नहीं कर सकता। लेकिन जहाँ इसका प्रवेश हो गया हो वहाँ क्या किया जाये, अब हम इस विषयपर विचार करते हैं। पहला काम तो यह है कि जहाँ प्लेग देखनेमें आये वहाँ उसके कारणका पता लगायें। चूहोंकी खोज करें, मरे हुए चूहे हों तो उन्हें चिमटेसे पकड़, दूर ले जाकर घास और मिट्टीका तेल डालकर जला दें अथवा जहाँ मनुष्योंका वास न हो उस स्थानपर गहरा गड्ढा खोदकर उन्हें दबा दें। जिस स्थानसे मरे हुए चूहे मिले हों उस स्थानपर गर्म राख छिड़कनी चाहिए तथा सफेदी की जानी चाहिए। उस कमरेको तुरन्त खाली करके साफ करें और फिर नीमकी पत्तियोंका धूँआँ दें। यदि दीवारें सफेदी करने लायक हों तो उनपर सफेदी की जानी चाहिए। घरमें बिल हो तो उसमें मरे हुए चूहे तो नहीं हैं, इस बातका निश्चय करके, बिलको पाट देना चाहिए। घरमें किसी स्थानपर और बिल हों तो उनकी भी वैसी ही व्यवस्था करनी चाहिए। खिड़की और दरवाजे खुले रखे जायें तथा [घरमें] खूब उजाला और गर्मी आने दी जाये; छत यदि खपरैलसे ढकी हो तो खपरे हटा दिये जाने चाहिए जिससे हवा और उजाला प्रवेश पा सकें। घरको इस प्रकार साफ करनेके बाद हम उसे छोड़ दें और यदि सम्भव हो तो खुले मैदानमें तम्बू तानकर अथवा झोंपड़ी बनाकर रहें। गाँवके अन्य व्यक्तियोंका स्पर्श न करें और वस्तुएँ आदि खरीदते समय भी दुकानदारके साथ सावधानीपूर्वक व्यवहार करें। इस रीतिसे यदि तुरन्त उपचार

किया जायेगा तो प्लेग नहीं फैलेगा। इस प्रकार प्लेगकी छूतसे पीड़ित परिवारकी मारफत प्लेगका उस अथवा किसी स्थानपर भी प्रवेश नहीं हो सकता। इस प्रकार ३१ दिन बाहर रहनेके बाद, शहरमें किसी अन्य स्थानपर प्लेगका प्रकोप न हुआ हो, और उक्त घरमें मरे हुए चूहे देखनेमें न आयें तो परिवार वापस अपने घरमें जाकर रह सकता है।

८. जिस गाँवमें प्लेग फैलने लगे उस गाँवके अन्य व्यक्तियोंको चाहिए कि वे अपने घरोंकी छानबीन कर लें। सारे सामानको बाहर निकालकर चूहोंकी खोजबीन करें। यदि मरा हुआ चूहा देखनेमें आये तो ऊपर दी गई सलाहके अनुसार बाहर जाकर रहें। मरे हुए चूहे दिखाई न पड़े तो भी घरको खूब साफ-सुथरा बनाये रखें। घरकी सफेदी करवाई जानी चाहिए। हवाके आने-जानेकी व्यवस्था न हो तो घरमें वैसा सुधार करें। और घरके आसपास भी पूरी सफाई रह सके, ऐसे उपाय किये जाने चाहिए। पड़ोसियोंके घर साफ न हों तो ऐसी तजवीज करनी चाहिए कि वे भी साफ कर दिये जायें।

९. रोगीको घबराने न दें। उसके पास [उसकी] सेवा-सुश्रूषा करनेवाले व्यक्तिके अलावा और किसीको भी मत जाने दीजिए। उसे ऐसे कमरेमें रखिए जहाँ उसे पुष्कल हवा और उजाला मिले। सार्वजनिक अस्पताल हो तो उसे वहाँ ले जाइए। भोजन एकदम बन्द कर दें। प्लेगके आसार नजर आते ही उसे खुराक न दी जाये और तीन घंटे बीत गये हों तो एनीमा दें। रोगीको ठंडे पानीके टबमें, दो मिनट अथवा उससे भी अधिक, पसन्द करे तो पाँच मिनट तक, इस प्रकार बैठाइये कि उसके पैर और छाती आदि पानीसे बाहर रहें तथा घुटनेसे जाँघ तकका भाग पानीमें रहे। रोगीको प्यास लगे तो उबला, छना हुआ और ठण्डा पानी, जितनी रोगीको जरूरत हो उतना दें। इसके अलावा अन्य कोई भी पेय पदार्थ न दें। माथा बहुत गरम हो तो उसपर मिट्टीकी पट्टी अथवा ठण्डे पानीकी पट्टी रखिए। इतने इलाजसे सम्भव है कि रोगी मौतके भयसे मुक्त हो जाये। यदि वह दूसरे दिन तक जीवित रहे और उसे भूख लगे तो नीबू अथवा नारंगीके रसमें गरम अथवा ठंडा पानी मिलाकर रोगीको पीनेके लिए दीजिए। बुखार उतरनेके तुरन्त बाद दूध शुरू कीजिए। शरीरमें गाँठ हो तो उसपर गरम पानीकी पट्टी रखें और उसे समय-समयपर बदलते रहें। डेढ़ फुट लम्बा और नौ इंच चौड़ा मोटा कपड़ा लेकर उसे गरम पानीमें अच्छी तरहसे भिगोइये; फिर उसे सूखे रूमालपर रखकर निचोड़ें तथा जितना रोगी सहन कर सके उतना गरम, चार तहें लगाकर गाँठपर रखकर पट्टी बाँध दें। इस पुल्टिसको हर तीस मिनटके बाद बदलिये। इस रोगमें रोगीका हृदय बहुत दुर्बल हो जाता है इसलिए उसे पूरा आराम दिया जाये।

१०. सार-सँभाल करनेवाला व्यक्ति अन्य लोगोंसे अलग रहे। और दूसरे कामोंको, जिनमें [अन्य] व्यक्तियोंके हाथ लगते हों, करना छोड़ दें। अपने शरीरकी रक्षाके लिए खुराककी मात्रा बहुत कम कर दे और शरीरका बराबर ध्यान रखे। चिन्ता बिलकुल न करे। यदि उसे पाखाना न आता हो तो वह एनीमा लेकर अंतड़ियोंको साफ करे और मात्र फलाहार करे।

११. रोगीके कपड़े, नदी अथवा ऐसे स्थानपर जहाँ अन्य [लोगोंके] कपड़े धोये जाते हों, न धोयें। उन्हें उबलते हुए साबुनके पानीमें डुबानेके बाद धोइये। अगर वे अत्यन्त गंदे हो गये हों तो उन्हें जला दें। लिहाफ आदिका किसी और व्यक्तिको उपयोग नहीं करना चाहिए —और यदि वे साफ हों तो आठ दिन तक रोज धूपमें सुखाये जायें वह भी इस प्रकार कि दोनों ओर धूप लगे। अगर उसे जला देनेकी सामर्थ्य हो तो जला ही दें।

[गुजरातीसे]

एस० एन० ६३९९ की फोटो-नकलसे।

४०. पत्र: ए० एच० वेस्टको

मोतीहारी
दिसम्बर १०, १९१७

प्रिय वेस्ट,

तुम्हारा महत्त्वपूर्ण पत्र मेरे सामने है। मेरा खयाल ऐसा है कि यदि तुम 'इंडियन ओपिनियन' शहरमें[१] ले जाये बिना चला ही नहीं सकते तो इसका प्रकाशन रोक दो। फुटकर छपाई या विज्ञापनोंके लिए स्पर्धा करनेका तुम्हारा विचार मुझे पसन्द नहीं है; मैं समझता हूँ कि यदि ऐसा करनेकी नौबत आयेगी तो इसकी कोई उपयोगिता ही न रह जायेगी। इसकी अपेक्षा तो मुझे यह ज्यादा अच्छा लगेगा कि तुम और सैम[२] फीनिक्स बेच डालो और कोई स्वतन्त्र काम करने लगो। अगर अखबारके बिना तुम फीनिक्सको कोई रूप दे सकते हो तो, वह मुझे ठीक लगेगा; परन्तु यदि तुम फीनिक्समें खेतीबारी करके अपना निर्वाह तक नहीं कर सकते तो फीनिक्सको बेच डालना ही चाहिए। हिल्डाकी शिक्षाका भार तुमपर रह सकता है। निःसन्देह अपने आदर्शको पूर्ण करनेके लिए [प्रायः] सख्त कदम उठाना बहुत आवश्यक हो जाया करता है।

यदि तुम फीनिक्समें पत्रको चलाते हुए अथवा उसके बिना अपना निर्वाह नहीं कर सकते, और अपने लिए कोई अच्छी नौकरी भी नहीं खोज सकते, तो मुझे तुम्हारे गुजारेके लिए यहाँसे व्यवस्था करनी होगी। उस सूरतमें तुम्हें सूचित करना होगा कि तुम्हें कितने रुपये चाहिए और कब तक के लिए। क्योंकि मैं यह तो मानता ही हूँ कि तुम वहाँ कोई न कोई काम खोज लेनेका प्रयत्न करोगे। अगर देवी[३] यहाँ आ सके तो मैं उसको बुला लेनेके लिए बिलकुल तैयार हूँ और अगर तुम अकेले कुछ समयके

१. डर्बन।
२. गोविन्दस्वामी, इंटरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस, फीनिक्सके फोरमैन।
३. ए० एच० वेस्टकी बहन एडा।

लिए आ सको तो तुमको भी। यहाँका वातावरण या जलवायु श्रीमती पायवेल[1] और शायद श्रीमती वेस्टको भी पसन्द नहीं आयेगा, सो मैं जानता हूँ।

अगर मणिलाल स्वयं अपने हाथसे छापकर देखना चाहता है तो उसे ऐसा करने दिया जाये।

यह मैं बखूबी जानता हूँ कि पत्रका शहरसे निकालनेका प्रयास बिलकुल व्यर्थ सिद्ध होगा। हमने इसको असाध्य पाकर ही छोड़ा था। बड़े गौरके साथ सोचने-समझनेके पश्चात्, जैसी-जैसी आवश्यकता पड़ती गई, हम अपनी विभिन्न मंजिलोंपर पहुँचे हैं। तुम्हारे तौर-तरीके साधारण व्यापारी जैसे नहीं हो सकते। तुम उनका सहारा लेनेसे जल्दी ही ऊब उठोगे। जिसका परिणाम निश्चित असफलता है, उसका प्रयोग ही क्यों किया जाये? अगर मणिलाल आजमाइश करना चाहे तो मैं उसे अवसर दिया जाना पसन्द करूँगा। मैं उसे भी पत्र[2] लिख रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४२७) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: ए० एच० वेस्ट

४१. पत्र: जे० एल० मेरीमैनको

मोतीहारी
[दिसम्बर][3] १०, १९१७

प्रिय श्री मेरीमैन,

आज सुबह यात्रासे लौटनेपर मुझे मेरे नाम लिखा एक पत्र रखा मिला; उसकी नकल[4] मैं इसके साथ भेज रहा हूँ।

डॉ० देवने मुझे बताया है कि मितहरवा और उसके आसपासके गाँवोंकी आबादीका लगभग ५० प्रतिशत ऐसे ज्वरसे पीड़ित है जो प्रायः जान लेकर ही जाता है। हमारे कार्यकर्त्ता यथासंभव सहायता कर रहे हैं।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया) से; तथा **सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन, १९१७–१८**, सं० २२६, पृष्ठ ४६३–४से भी।

१. ए० एच० वेस्टकी सास।

२. उपलब्ध नहीं है।

३. मूल पत्रमें गांधीजीने भूलसे नवम्बर लिख दिया है। वस्तुतः उन्होंने यह पत्र १० दिसम्बरको मोतीहारी वापस आनेपर लिखा था।

४. बबन गोखलेका पत्र; देखिए परिशिष्ट ५।

४२. पत्र : गोविन्दस्वामीको

मोतीहारी
दिसम्बर ११, १९१७

प्रिय सैम,

श्री वेस्टने मुझसे पूछा है कि क्या पत्रके प्रकाशनका कार्य शहरसे करना ठीक न होगा? मैंने कहा है "नहीं"। यदि तुम 'इंडियन ओपिनियन'को फीनिक्ससे न चला सके तो मुझे बहुत ही दुःख होगा। कुछ भी हो छापेखानेको वहाँसे कहीं मत ले जाओ। *अगर तुम पत्रको फीनिक्ससे नहीं निकाल सकते तो वह बन्द ही कर दिया जाये।* ऐसी स्थितिमें तुमको अपनी जीविका खेतीके द्वारा ही अर्जित करनी चाहिए और उसमें अपना सारा समय लगाना चाहिए। अगर इसमें भी सफलता न मिले, तो शहरमें जा कर जीविकोपार्जन करना चाहिए। मैंने मणिलालको लिखा है कि वह केवल राम,[1] देवीबहन और नागरजीकी सहायतासे गुजराती भाग ही प्रकाशित किया करे। अगर राम और नागरजीका भी गुजारा उसके द्वारा सम्भव न हो तो उनको भी चले जाना चाहिए। अगर गुजरातीके दो पृष्ठ ही हर सप्ताह प्रकाशित होते रहें तो भी मुझे बुरा नहीं लगेगा।

तुम्हारी कसौटी हो रही है; उसमें खरे उतरना है। जाब वर्कमें हम डर्बनके मुद्रकोंका मुकाबला कर ही नहीं सकते।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४२८) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : ए० एच० वेस्ट

१. रामनाथ; फीनिक्स प्रेसके कार्यकर्ता, देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ८२।

४३. पत्र : एस्थर फैरिंगको[1]

मोतीहारी
चम्पारन
दिसम्बर १२, १९१७

प्रिय एस्थर,

तुम्हारा पत्र अभी-अभी मिला; पढ़कर दुःख हुआ। तुम्हें लिखते समय एक पंक्ति याद आ रही है, "किसी भी वस्तुके प्रति आसक्ति न रखो।" यह व्यग्रता किस लिए? इन दिनों तुम संकटोंसे होकर गुजर रही हो। मुझे यकीन है तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। फिलहाल तुम्हारा स्पष्ट कर्त्तव्य यही है कि जिन लोगोंके हाथमें तुमने अपनी गतिविधियोंकी बागडोर सौंप रखी है, उनकी आज्ञाओंका पालन करो। तुम्हें उसी वक्त उनके विरुद्ध जाना उचित है, जब वे स्पष्ट रूपसे तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधक बनें। जबतक इस बातमें सन्देह हो तबतक उन्हें दोषी मत मानो। अलबत्ता तुम उन लोगोंसे समझा-कर कह सकती हो कि अहमदाबादका मौसम इन दिनों बड़ा सुहावना होता है; वहाँ मेरी सार-सँभाल, बड़े स्नेहके साथ की जायेगी, और मैं वहाँ हर प्रकारसे निश्चिन्त रहूँगी। स्थानके परिवर्तन-भरसे लाभ हो जायेगा। यदि तिसपर भी उनका विरोध बना रहे तो उसे समभावसे स्वीकार कर लो। परीक्षाकी फिक्र मत करो — वह तो एक बिलकुल मामूली चीज है। सबसे बड़ी परीक्षा तो तब होती है, जब हमारे पवित्र उद्देश्योंकी प्राप्तिके मार्गमें बाधाएँ पहुँचाई जाती हैं। ईश्वरकी गति न्यारी और बुद्धिसे परे है। हमें यह मानकर चलना चाहिए कि मनुष्यकी कोई बिसात नहीं, परमात्माकी मर्जी ही सब-कुछ है। मुझे बराबर पत्र लिखती रहो। इस वर्षके अन्त तक मोतीहारीके पतेसे भेजना। यदि यह पत्र पाने तक तुम्हारा मन उद्वेग-रहित हो चुका हो तो तुम उसकी सूचना तार द्वारा भी दे सकती हो — मुझे अच्छा लगेगा।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

१. एस्थर फैरिंग "डेनिश मिशनरी सोसाइटी" के कर्मचारी-मण्डलकी एक सदस्याकी हैसियतसे सन् १९१६ में भारत आई थीं। उन्हें शिक्षण-कार्य सौंपा गया था। सन् १९१७ में वे साबरमती आश्रम आई, और उससे बहुत प्रभावित हुई। उनकी संस्थाने यह बात नापसन्द की कि वे गांधीजीसे सम्पर्क बढ़ायें या उनके साथ पत्र-व्यवहार करें। संस्थाके अधिकारियोंने उनको साबरमती आश्रममें अपनी बड़े दिनकी छुट्टियाँ बितानेकी अनुमति नहीं दी। थोड़े दिनों बाद सन् १९१९ में उन्होंने मिशनका काम छोड़ दिया और कुछ अरसेके लिए साबरमती आश्रममें आकर भी रहीं। गांधीजीने उन्हें २० वर्षोंमें जो पत्र लिखे थे, वे सन् १९५६ में **माई डियर चाइल्ड** नामसे पुस्तकके रूपमें प्रकाशित हुए।

४४. पत्र : ई० एल० एल० हैमंडको

मोतीहारी
दिसम्बर १५, १९१७

प्रिय श्री हैमंड[1],

मुझे आपका इसी १३ तारीखका संक्षिप्त पत्र अभी मिला।[2] आपके साथ जो बातचीत हुई उससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला था कि मेरी सेवाओंकी जरूरत न होगी, इसलिए मैंने आगामी मार्च मासके अन्ततक महत्त्वपूर्ण कार्य स्वीकार कर लिये हैं और अभी एक शिक्षा-सम्बन्धी और स्वास्थ्य व सफाई-सम्बन्धी प्रयोग आरम्भ किया है। मैं इसे सबसे अधिक महत्त्व देता हूँ और उसपर मुझे लगातार ध्यान देनेकी आवश्यकता है। मैं इस कार्यको छोड़ना नहीं चाहता और फिर भी मैं वर्तमान युद्धमें जो थोड़ा-सा हिस्सा ले सकता हूँ, उसका अवसर भी नहीं खोना चाहता। मुझे ऐसी टुकड़ी बनाना, जिसमें मैं सेवा न करूँ, लगभग असम्भव लगता है। यदि मैं लोगोंको यह विश्वास न दिलाऊँ कि वे सब मिलकर, और मेरे साथ, काम करेंगे तो मुझे ऐसे लोगोंको प्राप्त करना भी मुश्किल होगा। क्या आप कृपया मुझे विस्तारसे बतायेंगे कि आपकी विभिन्न जरूरतें क्या हैं और आपको टुकड़ीकी जरूरत कब होगी; तब मैं देखूंगा कि मैं उसमें काम कर सकता हूँ या नहीं। आप कृपया मुझे यह बतायें कि प्रत्येक स्थितिमें कैसे कामकी जरूरत होगी और यदि बताना सम्भव हो तो यह भी लिखें कि प्रस्तावित टुकड़ी कहाँ भेजी जायेगी।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन, १९१७–१८

१. एगवर्ट लॉरी ल्यूकास हैमंड, आई० सी० एस०; १९२४ में बिहार और उड़ीसा सरकारके प्रधान सचिव नियुक्त हुए, **इंडियन इलेक्शन पिटीशंस; द इंडियन कैंडोडेट ऐंड रिटर्निंग ऑफिसरके** लेखक।

२. देखिये परिशिष्ट ६।

४५. पत्र . 'इंडियन ओपिनियन 'को'

मोतीहारी
दिसम्बर १५, १९१७

मैं जब दक्षिण आफ्रिकासे चला था, तब मैंने अपने दक्षिण आफ्रिकी भारतीय और अंग्रेज मित्रोंको समय-समयपर पत्र लिखते रहनेका पक्का विचार किया था; किन्तु भारतमें मेरी दशा मैंने जैसी सोची थी उससे बिलकुल भिन्न हुई। मुझे यहाँ अपेक्षाकृत अधिक शान्ति और अवकाश मिलनेकी आशा थी; किन्तु मैं अनिवार्यतः अनेक प्रवृत्तियोंमें फँस गया हूँ। मैं ये प्रवृत्तियाँ और स्थानीय दैनिक पत्र-व्यवहार मुश्किलसे ही सँभाल पा रहा हूँ। मेरा आधा समय रेलगाड़ियोंमें बीतता है। मुझे आशा है, मेरे दक्षिण आफ्रिकी मित्र, मैं जो उनकी उपेक्षा करता जान पड़ता हूँ, उसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि अबतक ऐसा एक भी दिन नहीं गया जिस दिन मुझे उन लोगोंका और उनकी कृपालुताका खयाल न आया हो। मेरे दक्षिण आफ्रिकाके साथी-सहवासी मेरी स्मृतिसे कभी उतर नहीं सकते।

अब आपको यह जानकर आश्चर्य न होगा कि मुझे इन विनाशक बाढ़ोंकी खबर, 'इंडियन ओपिनियन' आया, तब उसे आज पढ़नेपर ही मिली है। मैं अपने प्रवासमें अखबार कम ही पढ़ता हूँ और जब प्रवासमें नहीं होता, तब भी उनपर एक दृष्टि ही डालता हूँ। मेरे इस पत्रका उद्देश्य पीड़ितोंके प्रति अपनी सहानुभूति भेजना है। मैं अपने मनमें उनके कष्टोंकी यथार्थ कल्पना कर सकता हूँ। उनसे हमें ईश्वर और उसकी शक्तिका एवं इस जीवनकी क्षणभंगुरताका ध्यान आता है। उनसे हमें यह शिक्षा लेनी चाहिए कि हम सदा उस ईश्वरकी ही शरणमें जायें। कभी अपने दैनिक कर्त्तव्योंमें न चूकें। धर्मराजके हिसाबमें केवल हमारे कर्म ही अंकित किये जाते हैं, हमारा कथन नहीं। इस समय मेरे मनमें ये और ऐसे ही विचार उठ रहे हैं और मैं चाहता हूँ कि उन्हें मैं पीड़ितोंके सम्मुख भी रखूँ। मैंने इस देशमें जो भारी गरीबी देखी है, उसके कारण मैं बाढ़-पीड़ित गृहहीन लोगोंको कोई आर्थिक सहायता भेजनेका खयाल नहीं कर सकता। इस देशमें एक पाईका भी महत्त्व है। मैं इस समय ऐसे लोगोंके बीच रह रहा हूँ जिनमें से हजारोंको चना-चबेना या सत्तूके सिवा कुछ नहीं मिलता जिसे वे नमकके साथ पानीमें घोलकर खा लेते हैं। इसलिए हम पीड़ितोंको अपने हार्दिक दुःखका विश्वास ही दिला सकते हैं।

मुझे आशा है ऐसा उग्र आन्दोलन किया जायेगा कि जिन घरोंको प्राणघाती बाढ़ोंका खतरा रहता है उनमें रहना गैर कानूनी करार दे दिया जाये। गरीब लोग यदि रह सकेंगे तो परिणामोंकी परवाह न करके ऐसी जगहों में भी रहेंगे। उनको ऐसी जगहोंमें रहना असम्भव कर देना शिक्षित लोगोंका काम है।

१. यह "दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंको सलाह" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था ।

'इंडियन ओपिनियन' के जिस अंकसे बाढ़ोंसे हुए इस विनाशकी खबर मिली उसीसे श्री अब्दुल गनीकी[1] दुःखद मृत्युकी खबर भी मिली। कृपया उनके परिवारके सदस्योंके प्रति हमारी ओरसे ससम्मान संवेदना व्यक्त कर दें। श्री अब्दुल गनीने समाजकी जो सेवाएँ की हैं वे कभी भुलाई नहीं जा सकतीं। अपने संतुलित निर्णय और सहज शिष्टताके गुणके कारण उन्होंने प्रतिष्ठा पाई थी। उन्होंने सार्वजनिक समस्याओंको जिस बुद्धिमत्तासे सुलझाया है उससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि अंग्रेजीके ज्ञान या आधुनिक शिक्षणके बिना देशकी प्रभावकारी सेवा की जा सकती है। मैं यह भी देखता हूँ कि हमारे दक्षिण आफ्रिकावासी लोग अभीतक व्यापारिक परवानों और देशत्यागके प्रमाण-पत्रोंसे सम्बन्धित कठिनाइयोंसे मुक्त नहीं हुए हैं। मेरे भारतके अनुभवसे मेरी यह राय पक्की हो गई है कि ऐसी बुराइयोंका इलाज सत्याग्रहके सिवा दूसरा नहीं है। समाजको पहले अपेक्षाकृत नरम उपायोंका आश्रय लेना चाहिए; किन्तु मैं आशा करता हूँ कि इसके कारण सत्याग्रहकी तलवारका प्रयोग बन्द नहीं किया जायेगा और उसे जंग नहीं लगने दी जायेगी। जबतक यह युद्ध चलता है तबतक हमारा कर्त्तव्य है कि अभीष्ट सहायता प्राप्त करनेके लिए हम आवेदन-निवेदनों आदिका आश्रय लेकर ही सन्तोष करें; किन्तु मेरे खयालसे सरकारको यह जान लेना चाहिए कि जबतक उक्त प्रश्नोंका सन्तोषजनक समाधान नहीं हो जाता तबतक भारतीय समाज चैन न लेगा। यह भी उचित ही है कि मैं समाजको आन्तरिक खतरोंसे सावधान कर दूँ। दक्षिण आफ्रिकासे आये हुए लोगोंने मुझे बताया है कि हमारा समाज उन लोगोंसे कदापि सर्वथा मुक्त नहीं है जो गैर-कानूनी व्यापारमें लगे हैं। जो लोग न्याय पाना चाहते हैं उनका व्यवहार सन्देहातीत होना चाहिए; मुझे आशा है कि हमारे नेता जबतक इन आन्तरिक दोषोंको दूर न कर लेंगे, तबतक दम न लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ४–३–१९१८

४६. भाषण : नडियादमें[2]

नडियाद

दिसम्बर १६, १९१७

. . . श्री गांधीने निकट भविष्यमें होनेवाले परिवर्तनोंका उल्लेख किया और कहा कि सबको केवल अपने देशके हितमें ही कार्य करना चाहिए। अगर सब ऐसा करें तो

१. नेटालके प्रमुख व्यवसायी; ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष, १९०३-७।

२. गांधीजीके वहाँ पहुँचनेपर नडियादकी होमरूल लीगके सदस्योंने स्टेशनपर उनका स्वागत किया और जुलूसके साथ वे उनको गोकुलदास द्वारकादास तलातीके घर ले गये। गुजरात राजनीतिक परिषद्में पास किये हुए प्रस्तावोंको कार्यान्वित करनेके सम्बन्धमें कौन-कौनसे कारगर तरीके काममें लाये जायें इस-पर एक निजी बैठकमें विचार किया गया। तत्पश्चात् रातको ८ बजे गांधीजीने एक सार्वजनिक सभामें भाषण दिया, जिसमें लगभग ५,००० लोग उपस्थित थे। इसके उपरान्त गांधीजी हिन्दू अनाथालय देखने गये और कुछ देर बाद नडियादसे रवाना हो गये।

मॉण्टेग्युसे याचना किये बिना ही स्वराज्य मिल जायेगा। महुआ अधिनियमकी निन्दा करते हुए उन्होंने कहा कि सरकारको गलत सूचनाएँ दी गई हैं। उसके बाद वक्ताने प्लेगकी महामारीके बारेमें बोलते हुए कहा कि हमें चूहोंको धर्मका अंग मानकर मारना तथा सफाई रखनी चाहिए। उन्होंने इनके विषयमें अन्य उपयोगी बातें भी बतलाईं। उन्होंने इस बातकी भी चर्चा की कि आजकल फैलनेवाली अनेक बीमारियोंका कारण लोगोंको पर्याप्त मात्रामें दूधका न मिलना है, क्योंकि दुग्धशालाएँ सबका-सब दूध खरीद लेती हैं . . . ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९१७

४७. पत्र : मगनलाल गांधीको

मोतीहारी

अगहन सुदी ४, सम्वत् १९७४ [दिसम्बर १८, १९१७]

चि० मगनलाल,

मुझे चाहिए कि तुम्हें लम्बा पत्र लिखकर भेजूँ; लेकिन इन दिनों यह सम्भव नहीं है। और फिर समाज सेवा संघका काम आ गया है। ऐसा लगता रहता है कि जबतक मेरा सितारा बुलन्द है तबतक अपने आदर्शोंका जितना प्रसार किया जा सकता है करूँ। चूहोंपर निगरानी रखने और स्वच्छता बनाये रखनेसे आश्रममें[1] प्लेगका प्रवेश रोका जा सकेगा। 'प्रेमल ज्योति तारो दाखवी[2]' पढ़ना और उसपर विचार करना। हम भविष्यके सम्बन्धमें योजना बनायें; लेकिन उसे जाननेकी इच्छा न करें।

अध्यापकोंके घर तुरन्त बनवानेकी बात थी, उसका क्या हुआ? भाई नरहरि[3] तथा व्रजलाल दोनोंकी तबीयत ठीक है। देवदास अभीतक पाठशालामें ही है। सुरेन्द्र[4] भी वहीं है। बा[5] मेरे पास आ गई है।

अपने स्वास्थ्यका खूब ध्यान रखना।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७०८) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

१. कोचरब गाँवमें प्लेग फैल जानेपर गांधीजीने उसे छोड़कर साबरमती आश्रमकी स्थापना की। देखिए आत्मकथा भाग ५, अध्याय २१।

२. न्यूमैनके प्रसिद्ध प्रार्थना-गीत, 'लीड काइन्डली लाइट' का नरसिंहराव दिवेटिया द्वारा किया गया गुजराती अनुवाद। यह गांधीजीको बहुत प्रिय था।

३. नरहरि द्वारिकादास परीख, स्वराज [होमरूल] आन्दोलनकारी गांधीजीके एक सहयोगी।

४. साबरमती आश्रमके निवासी।

५. कस्तूरबा भीतिहरवा स्कूलमें काम कर रही थीं।

४८. पत्र : राजस्व सचिवको

मोतीहारी
दिसम्बर १९, १९१७

सेवामें
सचिव
राजस्व विभाग
विहार और उड़ीसा सरकार
पटना

महोदय,

मुझे आपके ६ दिसंबर १९१७ के पत्र सं० ११६–२–टी–४४–आर० टी० की, जिसके साथ आपने चम्पारन काश्तकारी विधेयककी एक प्रति भेजी है[1] और उसके सम्बन्धमें मेरी सम्मति माँगी है, प्राप्ति स्वीकार करनेका सम्मान प्राप्त है। मेरा निवेदन इस प्रकार है :

(१) खण्ड ४ के सम्बन्धमें, मैं देखता हूँ कि यद्यपि उपखण्ड (क) और उपखण्ड (ख) एक ही समझौतेसे सम्बन्धित हैं, फिर भी उपखण्ड (क) का क्षेत्र उपखण्ड (ख) के क्षेत्रसे अधिक व्यापक है। मैं इसके कारणकी कल्पना नहीं कर सका हूँ; किन्तु मेरा सुझाव है कि उपखण्ड (ख) की भाषा उपखण्ड (क) के लिए भी जैसीकी-तैसी ले ली जाये और इसलिए उपखण्ड (क) की पंक्ति २ में जो 'शर्त' शब्द आता है उसे निकाल दिया जाये। और तदनुसार पंक्ति ३ में जो 'खण्ड ३' शब्द आते हैं उनके स्थानमें "खण्ड ३ का उप-खण्ड २" शब्द रख दिये जायें।

(२) खण्ड ५ के सम्बन्धमें, मेरा निवेदन यह है कि समितिकी सिफारिशोंके अन्तर्गत जमींदारों और उनके काश्तकारोंके करार आते हैं, जमींदारों और उनके अपने पट्टेदारों एवं उन पट्टेदारोंके करार इसके अन्तर्गत नहीं आते।

ऐसे अनेक काश्तकार हैं जो उन जमींदारोंसे करार करते हैं जिनकी जमींदारीमें वे नहीं आते। इसलिए इस खण्डकी पंक्ति २में पड़े हुए शब्द "पट्टेदार चाहे उसका पट्टा उसकी अधीनतामें आता हो" इस प्रकार संशोधित कर दिये जायें — "पट्टेदार चाहे उसका पट्टा उसकी अधीनतामें आता हो या किसी अन्यकी अधीनतामें", और इस खण्डकी पंक्ति ३ और ४में से ये शब्द निकाल दिये जायें, "अपनी पट्टेदारीकी जमीनमें या उसके किसी भागमें उगाये गये।"

१. विधेयकको प्रवर समितिके सुपुर्द करनेके बाद इसकी प्रतियाँ राजस्व सचिवने गांधीजी, बिहार जमींदार संघ और बिहार बागान-मालिक संघको सम्मत्यर्थ भेजी थीं

निवेदन है कि ये अन्तिम शब्द अनावश्यक हैं। अभिप्रेत यह है कि कानूनसे, पैदावारकी बिक्रीके सम्बन्धमें जमींदारों और काश्तकारोंके बीच जो भी करार हुए हैं उन सबके सम्बन्धमें, काश्तकारोंकी रक्षा की जाये।

(३) खण्ड ६के सम्बन्धमें, मुझे भय है कि उसका वर्तमान रूप जैसा है, उससे सम्भवतः सरकार और समिति द्वारा सोचे हुए परिणामसे बिलकुल विपरीत परिणाम होगा। उसके उपखण्ड (१) के अन्तर्गत एक तुच्छ-सा कारिन्दा एक बेईमान जमींदार द्वारा अबवाब[1] इकट्ठा करनेके कामपर नियुक्त किया जा सकता है। ऐसा कारिन्दा पकड़ा जायेगा तो बिना झिझक इस खण्डमें बताई गई सजाको भुगत लेगा, क्योंकि मैंने जैसा बताया वैसा जमींदार हमेशा उसकी सजा भुगतनेसे होनेवाली क्षतिकी पूर्ति करनेकी व्यवस्था कर रखेगा। इसलिए मेरा सुझाव यह है कि प्रत्येक अवस्थामें दायित्व जमींदारपर ही डालना आवश्यक है। अतः उपखण्ड (१)में संशोधन कर देना चाहिए और उसकी पंक्तिमें से "या उसका कारिन्दा" शब्द निकालकर उसी पंक्तिमें सर्वनाम "जो" के बाद "चाहे सीधे या कारिन्देके द्वारा" शब्द जोड़ देने चाहिए। उक्त खण्डके उपखण्ड ३को बिलकुल हटा देना चाहिए। सम्भव है, किसी गरीब काश्तकारका मामला ठीक हो, किन्तु फिर भी वह उसे सिद्ध करनेमें असमर्थ हो। यदि ऐसा भोलाभाला कोई किसान दण्डित हो गया तो यह सरासर अन्याय होगा। इसके अलावा ऐसा उपखण्ड रहेगा जो काश्तकार अबवाब सम्बन्धी शिकायतें पेश करनेमें डरेंगे और इन शिकायतोंका आना कारगर रूपसे रुक जायेगा। यह भी कहा जाना चाहिए कि झूठी शिकायत करनेपर शिकायत करनेवालोंको दण्ड देनेकी सत्ताका प्रयोग कम ही किया जाना चाहिए। झूठी शिकायतोंके सम्बन्धमें निश्चित परिणामपर पहुँचनेके लिए न्यायाधीश अत्यन्त कुशल और मानसिक दृष्टिसे निष्पक्ष होना चाहिए। इसलिए कलक्टरोंको, जो न्यायाधीशकी तरह तोलकर फैसले नहीं देंगे, सरसरी कार्रवाईके अधिकार दे देना खतरनाक होगा। अन्तिम बात यह है कि खण्ड ३के अन्तर्गत एक भी मामलेमें अन्याय होनेका परिणाम निश्चित रूपसे यह होगा कि एक बेईमान जमींदारकी हिम्मत बेजा कर-वसूलीके सम्बन्धमें और भी बढ़ जायगी, क्योंकि वह जान लेगा कि उपखण्ड ३के अन्तर्गत कार्रवाई करनेपर काश्तकारोंको संत्रस्त कर दिया जायेगा। ऊपर बताई स्थितियोंपर विचार करते हुए मैं विश्वास करता हूँ कि उक्त उपखण्ड हटा दिया जायेगा। किन्तु यदि खण्ड ६में मेरे बताये संशोधन करना कठिन जान पड़े तो मेरा सुझाव है कि यह समस्त खण्ड ही वापस ले लिया जाये। मैं खण्ड ६के अन्तर्गत दिये गये संदिग्ध संरक्षणके बजाय बंगाल काश्तकारी कानूनके खण्ड ७५के अन्तर्गत दिये गये कम प्रभावकारी संरक्षणको अधिक पसंद करूँगा।

(४) मैं देखता हूँ, गाड़ियोंका साटा[2], जिसके सम्बन्धमें समितिने विचार किया है, प्रस्तावित कानूनके अन्तर्गत नहीं आता। कुछ साटे ७ से २० साल तक पुराने हैं जिनमें

१. मूल लगानके अतिरिक्त जमीनपर लगाये गये दूसरे कर।

२. कुछ पेशगी लेकर लिखा गया सामान या साधन देनेका करार।

दरें शुरूसे आखीर तक एक ही रहती हैं। कुछ गोरे जमींदारोंने, जो समितिके पूछने पर अपने साटोंकी शर्तोंको उचित सिद्ध नहीं कर सके थे, कहा था कि असलमें वे इन साटोंको लागू नहीं करते। मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि एक खण्ड ऐसा रखा जाना चाहिए जिसमें इन साटोंको अवैध घोषित किया गया हो। यदि आवश्यकता हो तो अल्प अवधिके नये साटे किये जा सकते हैं और उनकी दरें डिवीजनके कमिश्नरसे सलाह करके तय की जा सकती हैं। मैं कह सकता हूँ कि इस समय भी इन साटोंको तोड़नेपर किये गये हर्जानेके कुछ दावे विचाराधी नहैं।

मैंने अखबारोंमें सर्वश्री इर्विन[1] और जेम्सनका[2] पत्र-व्यवहार पढ़ा है, एवं विधेयकपर सर्वश्री जेम्सन और केनेडी[3] द्वारा कौंसिलम दिये गये भाषण भी देखे हैं। इन दोनोंके सम्बन्धमें मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि इन लेखकों और वक्ताओंने जो भी बातें कही हैं उनमें से हरएक बातका पूरा उत्तर मौजूद है। मैंने सरकारपर अनावश्यक भार पड़नेके भयसे उनके बारेमें अपना मुँह बंद रखा है। किन्तु यदि इन तीनों सज्जनोंके उठाये हुए मुद्दोंके सम्बन्धमें मेरे स्पष्टीकरणकी आवश्यकता हो तो मैं आपका पत्र मिलनेपर ऐसे किसी भी मुद्देके सम्बन्धमें अपने विचार प्रसन्नतापूर्वक प्रस्तुत करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन, १९१७–१८

४९. पत्र : जमनादास गांधीको

मोतीहारी
माघ सुदी ८ [दिसम्बर २१, १९१७]

चि० जमनादास,

तुम्हें मैं अपनी इच्छाके अनुरूप पत्र नहीं लिख सका। मेवाको[4] पत्र लिखनेका मन करता है। मेरे साथ ऐसा होता है कि मैं अच्छा पत्र लिखनेके लोभमें नहीं लिखता और फिर साधारण पत्र लिखना भी रह जाता है। मेरी इच्छा है कि तुम पत्र-व्यवहारमें अनियमित न रहो। तुम्हारा अनुवाद मैंने नहीं पढ़ा। आज महादेवभाईको[5] सौंप रहा हूँ। वे तो [अवश्य ही] पढ़कर तुम्हें लिखेंगे। मैं भी पढ़ जाऊँगा।

१. डब्ल्यू० एस० इर्विन; मोतीहारी इंडिगो कन्सर्नके प्रबन्धक।
२. जे० वी० जेम्सन, जुल्का फैक्ट्रीके प्रबन्धक।
३. प्रिंगल केनेडी; विधान परिषदके सदस्य।
४. जमनादास गांधीकी पत्नी।
५. महादेव हरिभाई देसाई।

लेकिन मुझे देर लगेगी। मेरे पास वालजीभाई[1] द्वारा किया गया अनुवाद भी है। वह देखनेके लिए तुम्हें भेजूंगा। तुम्हारे लिये नटेसनकी पुस्तक[2] भेज रहा हूँ।

तुम निश्चित होकर रहना और अपना कार्य करना। तुमपर डॉक्टरका बहुत स्नेह है। तुम हारोगे नहीं। यदि अपनी इच्छाके अनुरूप तुम कार्य नहीं कर पा रहे हो तो भी प्रामाणिक रूपसे प्रयत्न करनेवाला व्यक्ति अन्य व्यक्तियोंपर अच्छा प्रभाव डालता ही है। मेवाकी स्थिति क्या है यह भी बताना। तुम्हारी तबीयत कैसी रहती है?

मेरी प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। मेरा सितारा बुलन्द है। इस बीच मेरे जो-जो आदर्श हैं उनसे देशको परिचित करानेके लिए मैं अपने आपको खपाये दे रहा हूँ।

यहाँकी स्थितिका अन्दाज महादेवभाई तुम्हें देंगे। वे अभी-अभी आये हैं लेकिन पुराने जान पड़ते हैं।

मणिलालकी फीनिक्समें बड़ी कसौटी हो रही है। उसे तथा रामदासको पत्र लिखना। रामदासने जोहानिसबर्गमें एक दर्जीके यहाँ नौकरी कर ली है। बा और देवदास मेरे साथ कलकत्ते आ रहे हैं। मैं वहाँ २० तारीख तक पहुँचूँगा।

बापूके आशीर्वाद

चि० मेवा,

मैं पत्र न लिखूँ तो भी तुम लिखना। तुम मेरे साथ अकेले रह सको तो मैं तुम्हें चम्पारनमें रखनेको तैयार हूँ। लेकिन यह जोखिम तुम्हारी इच्छा होनेपर ही उठाई जा सकती है। तुम फिलहाल जमनादासके साथ रहो; मैं जानता हूँ कि इससे बढ़कर अच्छी बात और कोई नहीं हो सकती।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७०५) से।

सौजन्य: नारणदास गांधी

१. प्रोफेसर वालजी गोविन्दजी देसाई; गुजरात कॉलेज, अहमदाबादमें कुछ काल तक अंग्रेजीके प्राध्यापक; नौकरीसे त्यागपत्र देकर गांधीजीके साथ शामिल हो गये। गांधीजी कृत *दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास*, तथा अन्य रचनाओंके अनुवादक।

२. *स्पीचेज़ ऐंड राइटिंग्ज ऑफ महात्मा गांधी*।

५०. पत्र : अम्बालाल साराभाईको

मोतीहारी
दिसम्बर २१, १९१७

प्रिय भाई अम्बालालजी,

व्यापारके आपके कार्यके बीचमें पड़नेकी जरा भी इच्छा नहीं होती। फिर भी भाई कृष्णलालका[1] पत्र आज मिला है; वह ऐसा है कि मुझसे लिखे बिना नहीं रहा जा सकता। मेरा खयाल है कि श्रीमती अनसूयाबहनकी[2] खातिर भी जैसे बने बुनकरोंको सन्तुष्ट करना ही चाहिए। यह माननेका कोई कारण नहीं कि इन्हें सन्तुष्ट करनेसे दूसरे शोर मचायेंगे। ऐसा हो तो भी समयपर उचित कदम उठाया जा सकता है। मिल-मालिक मजदूरोंको दो पैसा अधिक देकर खुश क्यों न हों? उनका असन्तोष दूर करनेका एक ही राजमार्ग है: उनके जीवनमें प्रवेश कीजिये और प्रेमरूपी रेशमकी डोरसे उन्हें बाँधिए। हिन्दुस्तानके लिए इसमें असम्भव कुछ भी नहीं है। देशकी भलाईके लिए यदि पैसेका उपयोग करोगे तो वह अवश्य फल लायेगा। भाई, बहनका दिल दुखानेका कारण कैसे बन सकता है? और वह भी अनसूया-जैसी बहनका। मैंने तो उनकी आत्माको अत्यन्त पवित्र पाया है। उनका वचन आपके लिए आदेश बन जाये, तो यह भी अधिक नहीं होगा। इस प्रकार आपपर तो दोहरा बोझा है। कार्यकर्त्ताओंको खुश करना और बहनका आशीर्वाद लेना। मेरी धृष्टता भी दोहरी है। मैंने एक ही पत्रमें व्यापार और कौटुम्बिक व्यवहार दोनोंमें दखल दिया है। मुझे क्षमा कीजियेगा।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

५१. पत्र : एच० कैलेनबैकको[3]

मोतीहारी
दिसम्बर २१, १९१७

प्रिय मित्र,

इधर कुछ दिनोंसे ढर्रा बिगड़-सा गया है। मैं इतना घूम रहा हूँ कि स्नेहपत्र लिखनेका अवकाश ही नहीं मिलता, खास तौरपर तब जब वे खो जाते हैं। पिछले

१. कृष्णलाल एन० देसाई; अहमदाबादके एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता गुजरात-सभाके एक मन्त्री।

२. अम्बालाल साराभाईकी बहन।

३. हरमान कैलेनबैक, जर्मन वास्तुकार। दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी। ये भी गांधीजीके साथ ही दिसम्बर १९१४ में भारत आनेवाले थे। लेकिन महायुद्ध छिड़ जानेके कारण उन्हें पासपोर्ट नहीं मिला और वे इंग्लैंडमें नजरबन्द कर दिये गये थे। देखिए **आत्मकथा** खण्ड ४, अध्याय ३३ और खण्ड ८, पृष्ठ १४३।

तीन महीनोंमें मुझे तुम्हारे सिर्फ तीन ही पत्र मिले हैं। हाँ, पोलक और मिस विंटर-बॉटमने[1] तुम्हारे बारेमें मुझे लिखा था। तुमसे गले मिलनेको मेरा कितना जी हुआ करता है। यहाँ मुझे आये-दिन नये-नये अनुभव होते रहते हैं। इन सबमें तुम्हें अपना हिस्सेदार बनानेकी मेरी इच्छा हुआ करती है। किन्तु इस दानवी युद्धका कोई छोर ही नजर नहीं आता। सुलहकी तमाम बातोंसे तो दिलकी उलझनें बढ़ ही रही हैं। फिर भी समस्त मानव-प्रवृत्तियोंकी तरह इसका भी अन्त तो होगा ही। अगर हमारी मित्रता स्थान और कालका अन्तर सहन न कर सकी तथा इस उबा देनेवाली प्रतीक्षाके परिणाम-स्वरूप और भी दृढ़ एवं शुद्ध न बन पाई तो वह बिलकुल निकम्मी ठहरेगी। आखिर हमारा यह शरीर है क्या? कल मैं पवनके मन्द झकोरोंमें सामनेके वृक्षोंकी ओर निहा-रता बैठा रह गया। मैंने देखा कि नित्य परिवर्तनशील इन विराट वृक्षोंमें ऐसी कोई चीज जरूर है, *जो चिरकाल तक टिकी रहती है। हरएक पत्तेका अपना अलग जीवन* होता है। वह गिरता है और सूखता है, किन्तु पेड़ जिन्दा रहता है। हरएक वृक्ष भी समयकी गतिसे या क्रूर कुल्हाड़ीके प्रहारसे मौतका शिकार होता है; किन्तु जंगल, जिसका यह पेड़ एक हिस्सा है, जीवित रहता है। हम भी मानव-वृक्षके ऐसे पत्ते ही हैं। हम भले ही निष्प्राण हो जायें तो भी हममें जो सनातन तत्त्व है, वह अनन्त काल तक बिना किसी परिवर्तनके कायम रहता है। कल शामको इस तरह विचारमग्न होते हुए मुझे बड़ा आनन्द मिला। मुझे तुम्हारी याद आ गई और मैंने एक गहरी साँस ली। किन्तु मैंने तुरन्त ही अपनेको सँभाल लिया और अपने-आपसे कहा: "मैं जानता हूँ कि मेरा मित्र, कोई पार्थिव शरीर नहीं है, किन्तु उसमें जीवन संचारित करनेवाली आत्मा है।"

सस्नेह,

तुम्हारा पुराना मित्र,

[अंग्रेजीसे]

महादेवभाईकी हस्तलिखित डायरी
सौजन्य: नारायण देसाई

१. फ्लॉरेंस ए० विंटरबॉटम, नैतिकता समिति संघ, लन्दन (यूनियन ऑफ एथिकल सोसाइटीज) की मंत्री।

५२. भाषण: अखिल भारतीय समाज-सेवा सम्मेलनम[1]

कलकत्ता
दिसम्बर २७, १९१७

. . . अबतक कॉलेज स्क्वेयरका मैदान एक सिरेसे दूसरे सिरे तक खचाखच भर गया था; श्री गांधी उस एकत्रित जनसमूहके समक्ष हिन्दीमें बोले। उन्होंने कहा कि "सम्मेलनके प्रस्तावित कार्यक्रमको कार्यान्वित करना सम्भव नहीं रह गया है; इस-लिए अब किसी और समय किसी अन्य स्थानपर कार्यान्वित किया जायेगा।" कार्य-क्रम स्थगित करनेकी घोषणा श्री विपिनचन्द्र पालने की। ठीक उसी समय श्रीमती बेसेंट, माननीय सी० पी० रामस्वामी ऐयर और डॉ० वाडिया आ पहुँचे; परन्तु उनका कॉलेज स्क्वेयरमें अथवा इन्स्टीच्यूट हॉलके अन्दर पहुँचना असम्भव हो गया था।

[अंग्रेजीसे]
बंगाली, २८-१२-१९१७

५३. भेंट: 'बंगाली' के प्रतिनिधिको[2]

कलकत्ता
दिसम्बर २७, १९१७

भेंट देते हुए गांधीजीने 'बंगाली' के प्रतिनिधिसे कहा कि मैं तो पूर्ण रूपसे इस बातके पक्षमें हूँ कि यह सम्मेलन कांग्रेस अधिवेशनके समाप्त होते ही उसी पंडालमें किया जाये। विभिन्न दरोंपर बेची जानेवाली टिकटों द्वारा प्रवेश सीमित होना चाहिए। टिकटोंकी बिक्रीसे जो आय हो उसे समाज-सेवाके निमित्त रख दिया जाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
बंगाली, २८-१२-१९१७

१. यह सम्मेलन २७ दिसम्बरको कलकत्ता विश्वविद्यालयके इन्स्टीच्यूट हॉलमें होनेवाला था; परन्तु गांधीजी तथा अन्य लोगोंका व्याख्यान सुननेके लिए आये हुए अपार जनसमूहको बैठनेकी जगह दे सकनेकी कठिनाईके कारण सम्मेलन स्थगित करना पड़ा था। गांधीजीने अपना भाषण कॉलेज स्क्वेयरमें दिया।

२. समाज-सेवा सम्मेलनके स्थगित किये जानेके बाद (देखिए पिछला शीर्षक); गांधीजीने बंगालीके प्रतिनिधिको जो भेंट दी थी, उसका संक्षिप्त विवरण ही उपलब्ध है।

५४. प्रस्ताव : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसमें[1]

कलकत्ता
दिसम्बर २९, १९१७

यह महासभा इस बातपर पुनः खेद प्रकट करती है कि दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय अब भी निर्योग्यताओंसे कष्ट पा रहे हैं। इनका उनके व्यापारपर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है और इनके कारण वहाँ उनका निवास कठिन हो जाता है एवं साम्राज्यके इन भागोंमें उनके प्रवास और संचारपर अनुचित और बेजा प्रतिबन्ध लगते हैं। यह महासभा आशा करती है कि स्थानीय अधिकारी उन भारतीयोंके प्रति अपने दायित्वको अनुभव करेंगे जिन्होंने इन निर्योग्यताओंके बावजूद एक दल संगठित करके युद्धमें पूरा भाग लिया है; वह यह भी आशा करती है कि उनपर दूसरे मामलोंमें जो निर्योग्यताएँ लगी हुई हैं एवं जिनकी शिकायत की गई है, वे उन्हें दूर कर देंगे। यह महासभा अध्यक्षको अधिकार देती है कि वे इस प्रस्तावका सार सम्बन्धित अधिकारियोंको भेज दें।

[अंग्रेजीसे]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके १९१७में हुए ३२वें अधिवेशनकी रिपोर्ट।

५५. प्रस्ताव : अखिल भारतीय समाज-सेवा सम्मेलनमें[2]

कलकत्ता
दिसम्बर ३०, १९१७

सरकार तथा कुछ संस्थाओंने दलित-वर्गोंके उत्थान और शिक्षा-दीक्षाके लिए जो साधन प्रयुक्त किये हैं इस सम्मेलनकी रायमें उनसे जनसाधारणका ध्यान दो बातोंकी ओर आकर्षित हुआ है, एक तो यह कि पतनकारी सामाजिक विषमता मौजूद है और दूसरे यह कि उनके परिणामस्वरूप देशकी सामान्य उन्नतिमें बाधा पड़ रही है। परन्तु, इस सम्मेलनकी रायमें सरकार द्वारा अबतक काममें लाये गये साधन उक्त बुराइयोंको दूर करनेमें नितान्त अपर्याप्त रहे हैं। अतएव, यह सम्मेलन सरकार तथा समाज-सुधार-संस्थाओंसे आग्रहपूर्वक निवेदन करता है कि (१) दलित-वर्गोंको शिक्षित करनेके निमित्त

१. कलकत्तेमें राष्ट्रीय महासभा कांग्रेसका जो ३२ वाँ अधिवेशन हुआ था उसमें यह तेरहवाँ प्रस्ताव था और इसे गांधीजीने पेश किया था। उन्होंने अपना भाषण हिन्दीमें दिया था।

२. यह सम्मेलन कांग्रेस पंडालमें डॉ० पी० सी० रायकी अध्यक्षतामें हुआ था, अन्य लोगोंके साथ श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने भी इसमें भाग लिया था। गांधीजी द्वारा पेश किये गये इस प्रस्तावका समर्थन नाटोरके महाराजाने किया था और एम० आर० जयकरने इसका अनुमोदन किया था।

और अधिक सुविधाएँ प्रस्तुत की जायें और (२) हरिजनोंकी निर्योग्यताओं और उनके प्रति वरते जानेवाले द्वेषभावको दूर करनेकी दृष्टिसे समस्त सार्वजनिक संस्थाओंमें कानूनन समानताका व्यवहार प्रचलित किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

बंगाली, ५–१–१९१८

५६. भाषण : प्रथम बंग कृषि-विशेषज्ञोंकी परिषद्में[1]

कलकत्ता

दिसम्बर ३०, १९१७

. . . श्री गांधीने कहा "कृषि भारतीयोंका मुख्य व्यवसाय है और यह एक बहुत प्रतिष्ठित पेशा है। मैं किसानोंके साथ काम कर चुका हूँ और इसलिए मैं उनकी सब माँगों, शिकायतों, तकलीफों और जरूरतोंको जानता हूँ। मैं खुद भी शीघ्र ही कृषिका धन्धा शुरू करनेवाला हूँ और उसे सुधारनेके लिए जो-कुछ कर सकूँगा, करूँगा। मैं हृदयसे आशा करता हूँ कि काश्तकार लोगोंकी स्थिति शीघ्र ही सुधरने लगेगी। मैं और पंडित मालवीयजी कहीं और जानेके लिए एक साथ निकले थे और यहाँ आ पहुँचे हैं; इसलिए मैं यहाँ देरतक नहीं बोलूँगा।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ४–१–१९१८

५७. भाषण : राष्ट्रीय भाषा सम्मेलनमें[2]

दिसम्बर ३०, १९१७

लोकमान्य तिलक यदि हिन्दीमें बोलते तो बड़ा लाभ होता। लॉर्ड डफरिन तथा लेडी चेम्सफोर्डकी भाँति लो० तिलकको भी हिन्दी सीखनेका प्रयत्न करना चाहिए। रानी विक्टोरियाने भी हिन्दी सीखी थी। पण्डित मालवीयजीसे मेरी अर्जी है कि यदि वे कोशिश कर दें तो अगले वर्ष अन्य किसी भी भाषामें कांग्रेसके व्याख्यान न हों। मेरा यह झगड़ा है कि कल वे कांग्रेसमें हिन्दीमें क्यों नहीं बोले?

प्रताप, ७–१–१९१८

१. परिषद् श्री सी० आर० दासकी अध्यक्षतामें मुस्लिम लीगके पंडालमें हुई थी। इसके कार्यक्रममें लगभग ५,००० लोगोंने भाग लिया था, गांधीजी पंडित मदनमोहन मालवीयके साथ कुछ ही देरके लिए परिषद्में उपस्थित हुए थे।

२. कलकत्ताके अल्फ्रेड थियेटरमें; सम्मेलनके अध्यक्ष बाल गंगाधर तिलक थे। श्रीमती सरोजिनी नायडू और पण्डित मदनमोहन मालवीयने भी सम्मेलनमें भाग लिया था।

५८. प्रस्ताव: राष्ट्रीय भाषा सम्मेलनमें[1]

कलकत्ता
दिसम्बर ३०, १९१७

इस वस्तुस्थितिको ध्यानमें रखते हुए कि भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें बहुत बड़े पैमानेमें लोग हिन्दीका प्रयोग करते हैं और बहुसंख्यक लोग उसको आसानीसे समझ सकते हैं, इसको भारतकी सर्व सामान्य भाषा बनाना व्यावहारिक प्रतीत होता है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १५-१-१९१७

५९. भाषण: ऑल इंडिया मुस्लिम लीगमें[2]

कलकत्ता
दिसम्बर ३१, १९१७

श्री गांधीने उर्दूमें दिये गये अपने भाषणमें कोरे प्रस्तावोंकी निरर्थकता बतलाते हुए निवेदन किया कि सबको कुछ ठोस कार्य करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति चाहे हिन्दू हो अथवा मुसलमान, सरकारसे यह कह दे कि अगर वह अली भाइयोंको रिहा नहीं करती तो उनके साथ हम सबको भी नजरबन्द कर ले। विशेष हर्ष-ध्वनिके बीच गांधीजीने कहा, नजरबन्द किये गये मुसलमान लोगोंकी रिहाईके आन्दोलनमें प्रत्येक हिन्दू उनके साथ है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १-१-१९१८

१. गांधीजी द्वारा पेश किया गया था।

२. गांधीजीने लीगके अधिवेशनमें दूसरे दिन भाग लिया था। उन्होंने अली भाइयोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारके सम्बन्धमें भी कुछ शब्द कहे थे।

६०. भाषण : विश्वविद्यालय-भवनमें[1]

कलकत्ता
दिसम्बर ३१, १९१७

. . . भारतीयोंके हिन्दीके ज्ञान की कमीपर खेद प्रकट करते हुए गांधीजीने कहा कि देश-सेवा करनेके लिए उत्सुक सब हैं, परन्तु राष्ट्रसेवा तबतक सम्भव नहीं, जबतक कोई राष्ट्रभाषा न हो। उन्होंने कहा कि दुःखकी बात है कि हमारे बंगाली भाई राष्ट्रभाषाका प्रयोग न करके राष्ट्रीय हत्या कर रहे हैं। इसके बिना देशकी आम जनताके हृदयों तक नहीं पहुँचा जा सकता। इस अर्थमें बहुत लोगोंके द्वारा हिन्दीको काममें लाया जाना मानवतावादके क्षेत्रकी बात हो जाती है।

इसके बाद गांधीजीने मानवतावादके दूसरे पहलूकी चर्चा की अर्थात् देवियोंकी मूर्तियोंके आगे पशुओंकी बलि चढ़ाना और भोजनके लिए पशुओंको कत्ल करना। हिन्दू शास्त्र वास्तवमें पशुओंकी बलि चढ़ानेका आदेश नहीं देते। यह वर्तमान प्रथा उन अनेक बातोंमें से एक है जो हिन्दुत्वके नामसे चलती आ रही हैं। हिन्दू धर्म सही अर्थमें दो परिभाषाओं द्वारा व्यक्त किया गया है—"अहिंसा परम धर्म है"[2] और "सत्यसे बढ़कर अन्य शक्ति नहीं।"[3] पशु-बलि-जैसी नृशंस प्रथा इन सिद्धान्तोंके विपरीत बैठती है।

[अंग्रेजीसे]

अमृत बाजारपत्रिका, २-१-१९१८

६१. भाषण : अखिल भारतीय समाज-सेवा सम्मेलनमें

कलकत्ता
दिसम्बर ३१, १९१७

श्री गांधीने अध्यक्ष पद ग्रहण करते हुए निम्नलिखित भाषण दिया :

यदि मैं संगीत सुनना चाहूँ तो मुझे बंगालमें आना चाहिए। यदि मैं कविता सुनना चाहूँ तो भी मुझे बंगालमें आना चाहिए। भारत बंगालमें समाविष्ट है, परन्तु बंगाल भारतमें परिव्याप्त नहीं है। मैंने कुछ मारवाड़ी लड़कोंका गाना सुना। वह कुछ गँवारू-जैसा था। मैंने उन्हें सलाह दी कि वे बंगालियोंमें घुलें-मिलें।

१. बॉम्बे ऐंड बंगाल ह्यूमैनिटेरियन फण्ड्सके तत्त्वावधानमें आयोजित सभाकी अध्यक्षता गांधीजीने की थी। श्रोताओंके अनुरोधपर उन्होंने अंग्रेजीमें भाषण दिया। यह उस भाषणका सारांश है। उसके बाद पण्डित मदनमोहन मालवीयने हिन्दीमें भाषण दिया और पशु-बलिकी निन्दा की।

२. अहिंसा परमो धर्मः।

३. सत्यान्नास्ति परं बलम्।

उसके बाद उन्होंने निम्नलिखित अध्यक्षीय भाषण[1] दिया :

मित्रो,

आपने मुझे जो सम्मान दिया है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। इस सभाकी अध्यक्षताके निमन्त्रणके लिए मैं बिलकुल तैयार नहीं था। मैं नहीं जानता कि मैं इस कार्यके लिए उपयुक्त भी हूँ। मैंने राष्ट्रीय सभा-सम्मेलनोंमें हिन्दीका उपयोग करनेका निश्चय किया था। तभीसे मेरी इच्छा सदैव यह रहती है कि मैं अंग्रेजीमें न बोलूँ। किन्तु मैं अनुभव करता हूँ कि मेरे लिए अध्यक्षीय भाषण हिन्दीमें देनेकी अनुमति माँगनेका समय अभी नहीं आया है। इसके अतिरिक्त मैं सम्मेलनोंमें अधिक विश्वास भी नहीं करता। समाज-सेवाको यदि फलदायी बनाना हो तो वह मौन रहकर ही की जानी चाहिए। जब किसीको उसका पता कानों-कान भी न चले तभी वह सर्वोत्तम होती है। सर गिबलके कार्यको कोई भी नहीं जानता था; इसीलिए उसका प्रभाव हुआ। वे न तो प्रशंसासे बिगड़ सके और न निन्दासे रुक सके। यदि हमारी सेवा भी इसी तरहकी होती तो कितना अच्छा होता। ये विचार रखते हुए भी मैंने स्वागत-समितिके आदेशका पालन किया। यह बात नहीं कि ऐसा करते हुए मेरे मनमें बहुत-कुछ हिचक और शंका न हुई हो। इसलिए यदि आप यह देखें कि मैं सम्मेलनको आत्मविश्वास एवं निष्ठाके साथ उसके लक्ष्य तक पहुँचानेके योग्य पर्याप्त आग्रह नहीं दिखाता बल्कि इसकी अपेक्षा उसकी स्पष्ट आलोचना करता हूँ तो इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

फिर, मैं समझता हूँ कि यदि मैं आपका ध्यान समाज-सेवाकी उन शाखाओंकी ओर आकर्षित करूँ जिनकी हमने अबतक न्यूनाधिक रूपसे उपेक्षा की है तो यह अत्यन्त उपयुक्त होगा।

समाजकी हम जो सबसे बड़ी सेवा कर सकते हैं वह यह है कि हमने अंग्रेजी भाषाकी शिक्षाके प्रति जो अन्धविश्वासपूर्ण सम्मान करना सीखा है उससे स्वयं मुक्त हों और समाजको मुक्त करें। अंग्रेजी हमारे स्कूलों तथा हमारे कॉलेजोंमें शिक्षाका माध्यम है। यह देशकी आन्तरभाषा बनती जा रही है। हमारे सर्वोत्तम विचार इसीमें व्यक्त किये जाते हैं। लॉर्ड चैम्सफोर्डने यह आशा व्यक्त की है कि अंग्रेजी कुछ ही दिनोंमें उच्च परिवारोंकी मातृभाषा बन जायेगी। अंग्रेजी प्रशिक्षणकी आवश्यकताके बारेमें इस प्रकारके विश्वासने हमें गुलाम बना दिया है। इसने हमें सच्ची राष्ट्रीय सेवाके अयोग्य बना दिया है। यदि हम स्वभावसे बाध्य न होते तो हम यह अवश्य ही देख सकते थे कि अंग्रेजीको शिक्षाका माध्यम बनानेके कारण हमारी प्रतिभा एकान्तिक हो गई है और हम जनतासे दूर जा पड़े हैं। इससे राष्ट्रका सर्वोत्तम मस्तिष्क निष्क्रिय हो गया है और जनताको नये उपलब्ध विचारोंका लाभ नहीं मिल पाया। हमने ये पिछले ६० वर्ष विचित्र शब्दों तथा उनके उच्चारणोंको सीखनेमें ही व्यतीत कर दिये, तथ्योंको

१. यह अध्यक्षीय भाषण २७ दिसम्बरको सम्मेलनमें उद्घाटनके दिन दिया जाना था, किन्तु सम्मेलन स्थगित कर दिया गया था, देखिए "भाषण : अखिल भारतीय समाज-सेवा सम्मेलनमें", २७-१२-१९१७। फिर भी सम्मेलनके स्थगनकी उपेक्षा करके **न्यू इंडियाने** इसे अपने २८ दिसम्बरके अंकमें प्रकाशित कर दिया था। गांधीजीने इस सम्मेलनकी अध्यक्षता वाई० एम० सी० ए० भवनमें की थी और उसीमें यह भाषण दिया था।

आत्मसात् नहीं किया। हमें अपने माता-पिताओंसे जो शिक्षा मिली थी उसके आधार-पर हमने नया निर्माण नहीं किया है, बल्कि उस शिक्षाको ही लगभग भुला दिया है। इतिहासमें इस [मूर्खता] की तुलना नहीं है। यह एक दारुण राष्ट्रीय विपत्ति है। पहली और सबसे बड़ी समाज-सेवा जो हम कर सकते हैं वह यह है कि हम इस स्थितिसे पीछे हटें, देशी भाषाओंको अपनाएँ, हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें उसके स्वाभाविक पदपर पुन: प्रतिष्ठित करें और सभी प्रान्त अपना-अपना समस्त कार्य अपनी देशी भाषाओंमें तथा राष्ट्रका कार्य हिन्दीमें प्रारम्भ कर दें। हमें तबतक विश्राम नहीं लेना चाहिए जबतक कि हमारे स्कूलों और कॉलेजोंमें हमें देशी भाषाओंके माध्यमसे शिक्षा नहीं दी जाती। हमारे लिए अपने अंग्रेज मित्रोंके निमित्त भी अंग्रेजीमें बोलना आवश्यक नहीं होना चाहिए। प्रत्येक अंग्रेज शासनिक तथा सैनिक अधिकारीको हिन्दी जाननी चाहिए। बहुतसे अंग्रेज व्यापारी हिन्दी सीखते हैं, क्योंकि उन्हें अपना व्यापार चलानेके लिए उसकी आवश्यकता होती है। ऐसा दिन अवश्य ही जल्दी आना चाहिए जब कि हमारी विधान सभाओंमें राष्ट्रीय मामलोंपर देशी भाषाओंमें या हिन्दीमें, जहाँ जो भी उपयुक्त हो, बहस की जायेगी। अबतक तो जनसाधारण उनकी कार्रवाईसे अपरिचित रहे हैं। देशी भाषाओंके समाचार-पत्रोंने इस खराबीको दूर करनेका कुछ प्रयत्न किया है, किन्तु यह कार्य उनकी शक्तिसे परे है। "पत्रिका" का तीखा व्यंग तथा "बंगाली" का पाण्डित्य उन्हीं लोगोंके लिए है जिनके कान अंग्रेजीके अभ्यस्त हैं। सुसंस्कृत विचारकोंके इस प्राचीन देशमें ठाकुर[1] या बसु[2] या रायको[3] अपने बीच पाकर हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। फिर भी दु:खद तथ्य यह है कि यहाँ ऐसे लोग बहुत कम हैं। यदि मैंने ऐसे विषयकी, जो आपकी दृष्टिमें मुश्किलसे ही समाज-सेवाका अंग बन सकता है, चर्चा बहुत लम्बी कर दी है तो आप इसके लिए मुझे क्षमा करें। फिर भी मैंने इस विषयकी चर्चा प्रमुख रूपसे की है, क्योंकि मेरा विश्वास है कि हमारी शिक्षाके इस मूलभूत दोषके कारण सभी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों-को वास्तविक क्षति पहुँचती है।

अब मैं समाज-सेवाके अधिक परिचित विषयोंकी चर्चा करता हूँ। इनकी सूची इतनी लम्बी है उसे सोचकर भय लगता है। मैं इनमें से केवल उन्हींको चुनूँगा जिनका मुझे कुछ ज्ञान है।

दुर्भिक्ष तथा बाढ़-जैसे कभी-कभी आनेवाले संकटोंमें कार्य करना नि:सन्देह आवश्यक और अत्यन्त प्रशंसनीय है। किन्तु इससे कोई स्थायी परिणाम नहीं निकलता। समाज-सेवाके ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें संभव है, प्रसिद्धिकी प्राप्ति न हो, किन्तु जिनसे स्थायी परिणाम निकल सकते हैं।

सन् १९१४ में ४६,३९,६६३ व्यक्ति हैजा, बुखार तथा प्लेगके शिकार हुए। यदि इतने लोग ऐसे युद्धमें, जो इस समय यूरोपका विनाश कर रहा है, मोर्चोंपर मरते तो हमारी कीर्ति चारों ओर फैलती और स्वराज्यके प्रेमियोंको अपने उद्देश्यके समर्थनमें

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर
२. जगदीशचन्द्र बसु
३. प्रफुल्लचन्द्र राय

अधिक युक्तियाँ देनेकी आवश्यकता न होती। ये ४६,३९,६६३ लोग वस्तुतः घुल-घुलकर मरे। किसीने भी उनकी मृत्युपर आँसू नहीं बहाये और इससे हमें अप्रितिष्ठाके सिवा और कुछ नहीं मिला। उस दिन एक प्रसिद्ध अंग्रेजने कहा था कि "हम अंग्रेजोंने आपके लिए सब-कुछ सोचा-विचारा किन्तु आप हाथपर-हाथ धरे बैठे रहे। उसने आगे कहा कि बहुतसे अंग्रेजोंने अपने इंग्लैंडके अनुभवोंके आधारपर अपनी रायें कायम कीं और जिन खराबियोंकी उन्होंने जाँच-पड़ताल की थी उनके बहुत कठिन और मँहगे उपाय बताये हैं। उपर्युक्त कथनमें बहुत-कुछ सचाई है। दूसरे देशोंमें सुधारकोंने महामारियोंको काबूमें कर लिया है। किन्तु यहाँ अंग्रेजोंने प्रयत्न किया है और उसमें वे असफल रहे हैं। उन्होंने भारत तथा यूरोपके बीच जो जलवायु-सम्बन्धी तथा अन्य बहुत बड़े अन्तर हैं उनकी उपेक्षा करके पश्चिमी देशोंके आधारपर विचार किया है, किन्तु हमारे डॉक्टरों तथा वैद्योंने प्रायः कुछ नहीं किया। मुझे विश्वास है कि जहाँ अंग्रेज असफल हुए हैं वहाँ यदि प्रथम श्रेणीके आधे दर्जन डाक्टर भी इन तीनों अभिशापोंको दूर करनेके कार्यमें अपने जीवन लगा दें तो उन्हें सफलता मिल जायेगी। मैं यह सुझाव देना चाहता हूँ कि इसका उपाय उपचारोंकी खोज करना नहीं, बल्कि रोगोंकी रोक-थामके तरीके खोज निकालना, या वस्तुतः उन तरीकोंको लागू करना है। मैं 'लागू करना' शब्दोंका प्रयोग करना अधिक ठीक समझता हूँ, क्योंकि उपर्युक्त साक्षीके आधारपर मैं जानता हूँ कि प्लेग (और मैं इसके साथ हैजा और मलेरियाको भी जोड़ता हूँ) का निवारण बिलकुल आसान है। रोकथामके तरीकोंके बारेमें किसी प्रकार भी विचार-विरोध नहीं है, हम केवल उन्हें उपयोगमें नहीं लाते। हमें निश्चय हो गया है कि जनसाधारण उन तरीकोंको नहीं अपनायेंगे। किन्तु यह उनपर सबसे बड़ा मिथ्या आरोप है। यदि हम केवल नम्र बनकर उनके पास जायें तो उनका मन आसानीसे जीत सकते हैं। सचाई यह है कि हम इस कामकी अपेक्षा सरकारसे करते हैं। मेरे विचारमें इस मामलेमें मार्ग-दर्शन सरकार नहीं कर सकती। यदि हम मार्ग-दर्शन कर सकें तो वह हमारा अनुसरण कर सकती है और हमें सहायता दे सकती है। फिर तो यहाँ हमारे डॉक्टरोंके लिए काफी काम है और उन कार्यकर्त्ताओंके लिए भी काफी काम है जो उनकी सहायता करेंगे। मैं देखता हूँ कि बंगालके लोग इस दिशामें कुछ-कुछ काम कर रहे हैं। मैं कह सकता हूँ कि इस समय स्वयंसेवकोंका एक छोटा-सा किन्तु उत्साही दल चम्पारनमें इस प्रकारका कार्य करनेमें व्यस्त है। दलके सदस्य विभिन्न गाँवोंमें नियुक्त कर दिये गये हैं। वहाँ वे ग्रामीण बच्चोंको पढ़ाते हैं, बीमारोंको औषधिकी सहायता देते हैं और ग्रामीणोंको उनके कुओं तथा सड़कोंको साफ करके एवं मनुष्यके मैलेकी व्यवस्था आदि समझाकर स्वास्थ्य-विज्ञानकी व्यावहारिक शिक्षा देते हैं। भविष्यमें जो परिणाम होंगे उनके बारेमें अभी कुछ कहा नहीं जा सकता, क्योंकि अभी तो यह इस प्रयोगका आरम्भ ही है। यह सम्मेलन डॉक्टरोंकी एक समिति नियुक्त कर सकता है जो वहाँ जाकर तत्काल ग्रामीण स्थितिका अध्ययन करे और कार्यकर्त्ताओं तथा आम जनताके लिए हिदायतोंका एक पाठ्यक्रम तैयार करे। इस समितिकी नियुक्ति उपयोगी होगी।

रेलवेके तीसरे दर्जेके यात्री जिस महाकष्टको भोग रहे हैं इससे उन्हें मुक्ति दिलाकर कार्यकर्त्ता उनकी खासी सेवा कर सकते हैं। फिर चाहे वे पूरा समय काम करते हों

चाहे कुछ समय। उनके लिए इस कार्यकी ऐसी अच्छी सुविधाएँ मौजूद हैं जैसी अन्य किसी कार्यकी नहीं। मुझे यह कष्ट है, इसलिए मैं इसे बहुत अनुभव करता हूँ, ऐसी बात नहीं है; बल्कि चूँकि मैं इसे बहुत अनुभव करता हूँ इसलिए मैंने इसे जानबूझकर स्वयं अपने ऊपर लिया है। यह मामला देशके करोड़ों गरीब तथा मध्यमवर्गीय भाइयोंको प्रभावित करता है। वे विवश होकर जो तमाम कष्ट तथा अपमान सह लेते हैं उसके कारण प्रत्यक्षतः राष्ट्रकी दशा उसी प्रकार गिरती जा रही है, जैसे हमारे क्रूर व्यवहारसे तथाकथित दलित-वर्ग वैयक्तिक सफाईके नियमों तथा आत्मसम्मानके विचारके प्रति उदासीन हो गये हैं। जिन्हें रेलके मनहूस डिब्बेमें बैठने लायक जगह पानेके लिए सदा लड़ना-झगड़ना पड़ता है, जिन्हें खड़े होने लायक जगह पानेके उद्देश्यसे खिड़कीमें से कुछ कह सकनेसे पहले गाली-गलौज करनी पड़ती है और बुरा-भला कहना पड़ता है, जिन्हें धूलमें लेटे-लेटे यात्रा करनी पड़ती है, जो कुत्तोंकी तरह खाना लेते और खाते हैं, जिन्हें शारीरिक शक्तिमें अपनेसे अधिक शक्तिशाली लोगोंके सामने झुकना पड़ता है और भेड़-बकरियोंकी तरह ठसाठस भरे डिब्बोंमें कई-कई रातें बैठे-बैठे ऊँघ और थोड़ा-बहुत सोकर बितानी पड़ती हैं उनकी अधोगति अवश्यम्भावी है। रेलके कर्मचारी उन्हें बुरा-भला कहते हैं और ठगते हैं। हावड़ासे लाहौर जानेवाली रेलगाड़ीमें हमारे काबुली भाई तीसरे दर्जेके यात्रियोंके दु:खोंकी परिसीमा ही कर देते हैं। वे जिन डिब्बोंमें घुस जाते हैं उनपर पूरा कब्जा जमा लेते हैं। कोई उनका विरोध करे, यह सम्भव नहीं। वे नाममात्रका बहाना मिलते ही गालियाँ देते हैं और हिन्दी भाषाके समस्त अश्लील शब्दोंका उपयोग करते हैं। यदि प्रतिकार किया जाये या किसी तरहका विरोध किया जाये तो मारपीट करनेमें भी नहीं हिचकिचाते। वे अच्छी जगहोंपर जबरदस्ती कब्जा कर लेते हैं और डिब्बोंमें भीड़ होनेपर भी पैर फैलाकर सोनेकी जिद करते हैं। उनकी दृष्टिमें किसी भी डिब्बेमें अधिक भीड़ नहीं होती और वे सभीमें घुस जाते हैं। नितान्त निःसहाय होनेके कारण ही मुसाफिर उनकी सारी भयानक ढिठाईको धीरजके साथ सहते हैं। यदि उनमें सामर्थ्य होता तो वे गालियाँ देनेका साहस करनेवाले व्यक्तिको, जैसे ये काबुली करते हैं, धक्के मार कर गिरा देते, किन्तु वे शारीरिक दृष्टिसे किसी प्रकार भी काबुलियोंके मुकाबलेके नहीं होते और हर काबुली मैदानी यात्रियोंसे, चाहे उनकी संख्या कितनी ही बड़ी क्यों न हो, अपनेको अधिक शक्तिशाली समझता है। यह ठीक नहीं है। इस आतंकवादका प्रभाव राष्ट्रीय चरित्रके लिए पतनकारी हुए बिना नहीं रह सकता। हम थोड़ेसे शिक्षित लोगोंका कर्त्तव्य है कि यात्रा करनेवाले लोगोंको इस अत्याचारसे मुक्त करें। मेरा विश्वास है कि काबुली विवेकसे वशमें किये जा सकते हैं। वे ऐसे लोग हैं जो ईश्वरसे डरते हैं। यदि आप उनकी भाषा जानते हैं तो आप उनके सद्भावको जागृत कर सकते हैं। किन्तु वे प्रकृति माँके बिगड़ैल बेटे हैं। हममें जो कायर हैं वे निःसन्देह इनके शारीरिक बलका उपयोग अपने जघन्य उद्देश्योंके लिए करते हैं। और फलस्वरूप अब ये सोचने लगे हैं कि वे गरीबोंके साथ जैसा चाहें व्यवहार कर सकते हैं और अपनेको इस देशके कानूनसे परे मान सकते हैं। यहाँ समाज-सेवाका काम बहुत है। इस तरहका कार्य करनेके लिए स्वयंसेवक गाड़ियोंमें जा सकते हैं और लोगोंमें कर्त्तव्यकी भावना पैदा कर सकते हैं। वे अधिक भीड़-भाड़को दूर करनेके लिए गार्डों और अन्य अधिकारियोंको बुला

सकते हैं और ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं कि मुसाफिर बिना किसी संघर्षके गाड़ियोंमें चढ़ें और उतरें। यह स्पष्ट है कि जबतक काबुलियोंको धैर्यपूर्वक सद्व्यवहार करना नहीं सिखाया जाता तबतक उनका डिब्बा अलग रहना चाहिए और उन्हें किसी अन्य डिब्बेमें घुसनेकी अनुमति नहीं होनी चाहिए। अतिरिक्त स्थानकी व्यवस्थाको छोड़कर रेलयात्राकी अन्य सभी खराबियाँ तुरन्त दूर की जानी चाहिए। यह तो बहुत दिनोंसे चलता आ रहा है, इस अन्यायका कोई समाधान नहीं है। अन्याय शाश्वत अधिकार नहीं बन सकता।

दलित वर्गोंकी समस्या भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। हिन्दू समाजने उन्हें जिस स्थितिमें पहुँचा दिया है उससे उन्हें ऊपर उठाना हिन्दू धर्मपर से एक बहुत बड़े कलंकको दूर करना है। इन वर्गोंके साथ किया जानेवाला वर्तमान व्यवहार धर्म और मानवताके प्रति किया जानेवाला पाप है।

किन्तु इस कार्यके लिए उत्कृष्टतम सेवाकी आवश्यकता होती है। उनके लिए मात्र स्कूल खोल देनेसे हमारी प्रगति नहींके बराबर ही होगी। हमें निश्चित रूपसे जन-साधारण और रूढ़िग्रस्त लोगोंके रुखमें परिवर्तन लाना होगा। मैं बता ही चुका हूँ कि हम इन दोनोंसे अलग हो गये हैं। उनपर हमारा प्रभाव नहीं पड़ता। हम ऐसा तभी कर सकते हैं जब हम उनसे उन्हींकी भाषामें बोलें। जिन भारतीयोंका आंगलीकरण हो चुका है उनके कथनका इनपर प्रभाव नहीं पड़ सकता। यदि हम हिन्दू धर्ममें विश्वास करते हैं तो हमें उनके पास हिन्दुओंके ढंगसे जाना चाहिए। हमें तपस्या करनी चाहिए और हिन्दू धर्मको अकलुषित रखना चाहिए। अन्धविश्वासपूर्ण तथा अज्ञानमय धर्मनिष्ठाके विरुद्ध सज्ञान धर्मनिष्ठा खड़ी की जानी चाहिए। किसी भी सामाजिक संगठनके लिए हमारी कुल जनसंख्याके पाँचवें भागको उपर्युक्त सामाजिक स्थितिमें पुनः प्रतिष्ठित करना एक योग्य कार्य है।

कलकत्तेकी बस्तियों तथा बम्बईकी चालोंमें सेवा करनेके लिए नैष्ठिक समाजसेवी कार्यकर्त्ताओंकी आवश्यकता है। उनमें हमारे शिशु जल्दी ही मौतके मुँहमें चले जाते हैं और उनमें दुराचार, अधःपतन तथा गन्दापन पनपता और बढ़ता है।

हमारी शिक्षाकी दोषपूर्ण प्रणालीके कारण उत्पन्न होनेवाली मूलभूत बुराईको छोड़कर मैंने अबतक उन बुराइयोंका उल्लेख किया है जिनको दूर करनेके लिए जन-साधारणकी सेवा करनेकी आवश्यकता है। शायद विशिष्ट वर्गोंकी ओर भी जनसाधारण-की अपेक्षा कम ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं है। मेरे विचारमें सभी बुराइयाँ बीमा-रियोंकी तरह एक ही बुराई या बीमारीकी निशानी है। वे विभिन्न माध्यमोंसे विभक्त होनेके कारण अलग-अलग दिखाई देती हैं। मूलभूत बुराई है सच्ची आध्यात्मिकताका विनाश। किन कारणोंसे यह विनाश हुआ है इसका विवेचन मैं इस मंचसे नहीं कर सकता। हमारे पूर्वजोंकी सत्य, अहिंसा तथा ब्रह्मचर्यकी अखण्ड शक्तिमें जो अत्यन्त सशक्त आस्था थी वह हममें से चली गई है। हमें उनपर कुछ-कुछ विश्वास तो जरूर है। नीतिके रूपमें वे सर्वोत्तम हैं, किन्तु यदि हमारा अनुशासनहीन विवेक उनके उल्लंघनका आदेश दे तो हम उनका उल्लंघन कर सकते हैं। हममें यह अनुभव करने योग्य श्रद्धा नहीं है कि यद्यपि वर्तमान स्थिति निराशाजनक लगती है, फिर भी यदि हम सत्य या

अहिंसाके आदेशोंका अनुसरण करें, या ब्रह्मचर्यका पालन करें तो अन्तिम परिणाम अवश्यमेव अच्छा होगा। जिन लोगोंकी आध्यात्मिक दृष्टि धुँधली पड़ गई है वे भावी हितकी रक्षा करनेकी चिन्ता नहीं करते। उन्हें प्रायः वर्तमान हित ही दिखाई देता है। जो व्यक्ति हमें हमारी प्राचीन आध्यात्मिकतामें पुनः प्रतिष्ठित कर देगा वह सबसे बड़ी समाज-सेवा करेगा। किन्तु चूँकि हम क्षुद्र मानव हैं, इसलिए हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है कि हम इस हानिको स्वीकार करें और ऐसे तरीकोंसे, जो हमारे सम्मुख हैं, उस व्यक्तिके लिए मार्ग तैयार करें जिसकी शक्तिसे हम अनुप्राणित हों और अपने विवेकके बलपर स्पष्ट अनुभव करने योग्य बनें।

अब एक दृष्टि विशिष्ट वर्गोंपर डालें। मैं देखता हूँ कि राजा-महाराजा अपने सम्पत्ति-साधनोंको तथाकथित बेकार खेलोंपर और शराबखोरीमें नष्ट कर रहे हैं। उन दिन मुझे बताया गया कि कोकीनकी कुटेवसे राष्ट्रका पौरुष नष्ट हो रहा है। यह कुटेव शराबखोरीकी लतकी तरह बढ़ती जा रही है और इसका प्रभाव शराबखोरीसे भी अधिक घातक होता है। समाज-सेवीके लिए इस बुराईकी ओरसे आँखें मूंद लेना सम्भव ही नहीं है। हममें पश्चिमका अन्धानुकरण करनेका साहस नहीं। हमारा राष्ट्र ऐसा है जिसका गौरव तथा आत्मसम्मान चला गया है। जब हमारी जनसंख्याका दसवाँ भाग लगभग भूखों मर रहा है तब हमारे लिए विलासितामें पड़नेका अवकाश ही कहाँ है। पश्चिमी देश जिस कार्यको हानिकी आशंकाके बिना कर सकते हैं, वह हमारे लिए विनाशकारी बन सकता है। जो बुराइयाँ समाजके उच्च वर्गको नष्ट कर रही हैं उनके निराकरणका उपाय करना एक साधारण कार्यकर्त्ताके लिए कठिन है। उनके प्रति कुछ हदतक हमारे मनमें आदरका भाव बन गया है। किन्तु ये बुराइयाँ इस सम्मेलनके क्षेत्रसे बाहर नहीं होनी चाहिए।

हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियोंकी स्त्रियोंके दर्जेका प्रश्न भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। उन्हें अपने पतियोंके साथ पुनर्निर्माणमें पूरा भाग लेना चाहिए या नहीं लेना चाहिए? उन्हें मतदानका अधिकार अवश्यमेव दिया जाना चाहिए। अब हम उनसे गुड़ियों और दासियों-जैसा व्यवहार करते नहीं रह सकते। यदि ऐसा करेंगे तो समाज-रूपी शरीर सामाजिक अर्धांग रोगसे ग्रस्त रहेगा। और यहाँ फिर मैं सुधारकको यह सुझाव देना चाहता हूँ कि स्त्रियोंकी स्वतंत्रताका मार्ग शिक्षा नहीं है, बल्कि पुरुषोंके रुखमें परिवर्तन तथा तदनुरूप व्यवहार है। शिक्षा आवश्यक है, किन्तु वह स्वतन्त्रताके बाद आनी चाहिए। हम साहित्यिक शिक्षाके द्वारा अपने स्त्री समाजको उपयुक्त स्थानपर पुनः प्रतिष्ठित किये जाने तक नहीं ठहर सकते। साहित्यिक शिक्षाके बिना भी हमारी स्त्रियाँ संसारके अन्य सभी देशोंकी स्त्रियोंके समान ही सुसंस्कृत हैं। इसका उपचार बहुत-कुछ उनके पतियोंके हाथोंमें है।

जब मैं देशमें भ्रमण करता हूँ और निर्जीव मांसहीन और चमड़ेमें से उभरी हुई पसलियोंके बैलोंको बोझसे लदी गाड़ियाँ खींचते हुए या खेतमें हलमें जुते हुए देखता हूँ तो मेरा खून खौलने लगता है। अपने मवेशियोंकी नस्लको उन्नत करने, उन्हें उनके गोपूजक स्वामियोंके क्रूर व्यवहारसे मुक्ति दिलाने तथा कसाईखानोंसे उनकी रक्षा करनेसे

हमारी गरीबीकी आधी समस्या हल हो सकती है।... हमें लोगोंको मवेशियोंसे दयापूर्वक काम लेना सिखाना है और सरकारसे देशके चरागाहोंको सुरक्षित रखनेकी प्रार्थना करनी है। गोरक्षा आर्थिक दृष्टिसे आवश्यक है। किन्तु गोरक्षा जोर-जबरदस्तीसे नहीं की जा सकती। यह तभी हो सकती है जब हम गायोंको कसाईखानोंसे बचानेके लिए अपने अंग्रेज मित्रों तथा अपने मुसलमान भाइयोंकी सद्भावनाको उद्बोधित करें। यह प्रश्न पिंजरापोलों तथा गोरक्षा समितियोंकी व्यवस्थाके पूर्ण सुधारका प्रश्न है। इस अत्यन्त कठिन समस्याके समुचित समाधानका अर्थ है हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच पूर्ण एकताकी स्थापना तथा बकरीदके झगड़ोंकी समाप्ति।

मेरी प्रार्थनापर बहुतसे संघोंने जो साहित्य मुझे भेजा था उसे मैंने सरसरी निगाहसे देखा है। ये संघ प्रशंसनीय सामाजिक सेवा कर रहे हैं। मैं देखता हूँ कि कुछ संघोंके कार्यक्रममें उन विषयोंमें से, जिनका मैंने यहाँ उल्लेख किया है, बहुतसे विषय शामिल हैं। ये सभी संघ असाम्प्रदायिक हैं और देशके प्रसिद्ध स्त्री-पुरुष उनके सदस्य हैं। इसलिए ऐसी सेवाकी बहुत गुंजाइश है जिनका सुदूरगामी प्रभाव हो सकता है। किन्तु यदि कार्यको अपना प्रभाव राष्ट्रपर छोड़ना है तो, हमारे पास ऐसे कार्यकर्त्ता होने चाहिए, जो श्री गोखलेके शब्दोंमें कहें तो, इस कार्यके निमित्त अपना जीवन अर्पित कर दें। मुझे ऐसे कार्यकर्त्ता दीजिए और मैं वचन देता हूँ कि वे देशको उन सभी बुराइयोंसे मुक्ति दिला देंगे जिनसे यह पीड़ित है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २-१-१९१८

६२. पत्र : देवदास गांधीको

साबरमती

[१९१७ के अन्तमें]

चि० देवदास,

तुम्हारे पत्रकी राह देख रहा हूँ। तुम्हारा क्या कार्यक्रम है, लिखना। छोटालालकी, सुरेन्द्रकी और अपनी तबीयतका समाचार देना। जो कपड़ा वहाँ बनाया गया हो उसका नमूना भेजना। स्त्रियोंकी पाठशालामें अवन्तिका बहन क्या काम कर रही हैं?

यहाँसे अब मेरे पास लिखनेको बचा ही क्या है? महादेवभाई तुम्हें खबरोंसे शराबोर किये हैं।

जो हिन्दी अध्यापक चला गया था वह वापस आ गया है। मुझे विश्वास है कि हमारी पाठशाला लगभग पूर्णत्वको प्राप्त होगी। प्रयत्नमें तो विशेष कुछ बाकी नहीं रहा। दूसरी जमीन खरीदी है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

चि० छगनलाल अब अनसूया बहनके पास रहता है।

ऊपरका पत्र लिखनेके बाद तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे उद्‌गारोंसे मुझे बहुत सन्तोष हुआ है। किन्तु तुम्हारे अक्षरोंसे उतना ही असन्तोष हुआ। तुम अक्षर सुधारो। मुझे तुम्हारी खाँसीसे हमेशा चिन्ता बनी रहती है। खाँसी खत्म होनी ही चाहिए। तुम श्वासोच्छ्‌वास पूरी तरह लेते हो? जब खाँसीका दौरा हो तब दो-तीन दिन अलोना भोजन लेकर देखो। दूध और घी भी छोड़ दो; केवल दलिया और शाक खाओ। ऐसा करनेसे शरीर स्वस्थ हो जायेगा और फिर धीरे-धीरे और अच्छा होता जायेगा। लेकिन सबसे अच्छा तो यह है कि खाँसी जड़से चली जाये। उसको नष्ट करनेके लिए जब वह [खाँसी] न हो तब पूरी कोशिश की जानी चाहिए। उसमें मुख्य प्रश्न श्वास लेनेका है। श्वास लेते समय लापरवाही मत बरतना। क्या तुम सोते समय मुँह बन्द रखते हो या सिर खुला रखते हो?

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २०२६) की फोटो-नकलसे।

६३. पत्र : जे० एल० मैफीको

अहमदाबाद
जनवरी १, १९१८

सेवामें
जे० एल० मैफी, सी० आई० ई०, आई० सी० एस०
परमश्रेष्ठ वाइसरायके निजी सचिव,
दिल्ली

[प्रिय श्री मैफी]

परमश्रेष्ठको ऐसे अवसरपर, जब कि वे बहुत-से कठिन कार्योंमें व्यस्त हैं, कष्ट देते हुए मुझे दुःख होता है। किन्तु मेरा विचार है कि यह पत्र लिखकर मैं सेवा ही कर रहा हूँ। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि मैं सर्वश्री मुहम्मदअली तथा शौकत-अलीकी रिहाईके आन्दोलनका ध्यानपूर्वक अध्ययन करता रहा हूँ। जब मैं कलकत्तेमें ठहरा था, उनकी मातासे मिला था। उनसे मैंने अली भाइयोंकी स्थितिके बारेमें जान-कारी प्राप्त की। उन्होंने मुझे पूर्ण विश्वास दिलाया कि उनके पुत्र ब्रिटिश राज्यके द्रोही नहीं हैं और सुधार-योजनामें अली भाइयोंका मन्तव्य ब्रिटिश सम्बन्धको स्थायी बनाये रखना है। मुस्लिम लीगके यहाँ होनेवाले अधिवेशनोंमें मैं जाता रहा हूँ और प्रमुख मुसलमानोंसे भी मैं मुक्त भावसे मिलता-जुलता रहा हूँ। यह मेरा दृढ़ मत है कि दोनों भाइयोंको लगातार नजरबन्द रखने और रिहा करनेसे इनकार करनेके कारण

असन्तोष और क्षोभका भाव प्रतिदिन अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। मुसलमान, और मुसलमान ही क्यों हिन्दू भी, उनकी नजरबन्दीसे बहुत नाराज हैं। मेरा विश्वास है कि यह स्वस्थ भावना नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुसलमान बहुत क्षुब्ध हैं। मेरा विश्वास है कि दोनों भाइयोंकी रिहाईसे यह भावना काफी हदतक शान्त हो जायेगी। जबतक युद्ध चलता रहेगा तबतक इससे सम्पूर्ण रूपसे शान्ति नहीं होगी। अली-भाइयोंकी रिहाईके सम्बन्धमें लीगने जो प्रस्ताव पास किया है मुझे उसका समर्थन करनेका गौरव प्राप्त हुआ था।[1] जब उनकी माताका भाषण पढ़ा जा रहा था, श्रोतागण रो रहे थे।

मैं सरकारको उनके भावी आचरणके सम्बन्धमें समुचित आश्वासन दिलानेके लिए तैयार हूँ। मैं अनुभव करता हूँ कि स्वस्थ सार्वजनिक जीवनके लिए यह आवश्यक है कि या तो दोनों भाइयोंको छोड़ दिया जाये या उनपर उचित रूपसे मुकदमा चलाकर उन्हें सजा दी जाये। इस समय सार्वजनिक रूपसे मुकदमा चलाने और उससे सम्बद्ध परिणामोंके खतरेको मैं भलीभाँति समझता हूँ। किन्तु तब यह भी निश्चित है कि उन्हें लगातार बन्दीगृहमें रखना भी कम खतरनाक नहीं है। इसलिए मेरा सुझाव है कि मुझे छिन्दवाड़ा जाकर अली-भाइयोंसे मिलनेकी अनुमति दी जाये। उनकी राज-भक्तिके बारेमें मैं उनसे एक सार्वजनिक घोषणा कराऊँगा, जिसके आधारपर, मेरे नम्र विचारमें, सार्वजनिक शान्तिको जोखिममें डालनेका खतरा उठाये बिना उन्हें छोड़ा जा सकता है।

इसके अलावा, इतना और कह दूँ कि मेरा अली-भाइयोंसे घनिष्ठ परिचय है। अपने धर्ममें उनकी गहरी आस्था है और इतनी ही गहरी आस्था भारतके प्रति भी है। मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि वे मेरे सामने ऐसा वक्तव्य नहीं देंगे जिसपर चलनेके लिए वे पूर्ण रूपसे सहमत न हों। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि मैंने जिस अनुमतिकी प्रार्थना की है, वह मुझे दे दी जायेगी। क्या आप मेरी इस प्रार्थनाको परमश्रेष्ठके सामने रखनेकी कृपा करेंगे? कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यदि दिल्लीमें मेरी उपस्थितिकी आवश्यकता हो तो मैं बड़ी खुशीसे शीघ्र ही वहाँ आ जाऊँगा। इस मासकी १० तारीख तक मेरा पता अहमदाबादका होगा और १३ तारीखके बाद मोतीहारी, चम्पारन।

हृदयसे आपका,

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ६४२४) की फोटो-नकलसे; तथा नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया : होम, पोलिटिकल (डिपोजिट) : जनवरी १९१८, सं० ३१ से भी।

१. मुस्लिम लीगके १९१७ में हुए कलकत्ता-अधिवेशनमें।

६४. पत्र : भगवानजी मेहताको

मोतीहारी

अगहन वदी १४ [जनवरी १, १९१८]

भाईश्री भगवानजी,

काठियावाड़का सवाल मेरे मनमें हमेशा बना ही रहता है।[1] अनुकूल समयकी बाट जोह रहा हूँ। कच्छ-काठियावाड़ मंडलकी हलचलोंमें मैं फिलहाल अपना योग नहीं देना चाहता; मुझे लगता है कि यह संस्था जो करना चाहती है उसका समय अभी आया नहीं है। मैंने अपना यह मत मंडलके व्यवस्थापकोंको भी बता दिया है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३०२६) से।

सौजन्य : नारणदास गांधी

६५. भाषण : अहमदाबादकी सभामें[2]

अहमदाबाद

जनवरी १, १९१८

आजका कार्य बड़े ही महत्त्वका है; क्योंकि यह स्वराज्यका ही कार्य है। इसमें हम किसी प्रकारकी अतिशयोक्ति नहीं कर रहे हैं। स्वराज्य अर्थात् स्वयं अपनेपर शासन करना। ऐसी सभा, जिसमें इस विषयपर विचार किया जा रहा हो कि यहाँकी नगरपालिका अपना काम ठीक ढंगसे चला रही है या नहीं, स्वराज्यकी ही सभा कहलायेगी। आजकी सभाका विषय जनताके स्वास्थ्यसे सम्बन्धित है। खुराकके तीन मुख्य तत्त्व हैं — हवा, पानी और अनाज। हवा तो मुफ्त मिलती है परन्तु यदि वह दूषित हो तो हमारे शरीरको नुकसान पहुँचाती है। वैद्योंका कथन है कि दूषित हवासे जितनी हानि होती है उतनी दूषित पानीसे नहीं होती। दूषित वायुके सेवनसे हमारा स्वास्थ्य खराब होता है और इसलिए हमें आबोहवा बदलनेकी जरूरत हो जाया करती है। उसके बाद दूसरा स्थान पानीका है। हम लोग पानीके बारेमें बहुत लापरवाही करते हैं। यदि

१. भगवानजी अनूपचंद मेहताका वीरमगाँवकी चुंगी और काठियावाड़की समस्याओंके बारेमें गांधीजीके साथ पत्र-व्यवहार चला आ रहा था, देखिए "पत्र: भगवानजी मेहताको", नवम्बर १, १९१७।

२. इस सभाको आयोजित करनेका उद्देश्य अपर्याप्त और अनियमित जल-वितरण व्यवस्थाके विरुद्ध आवाज उठाना था। इसके अध्यक्ष गांधीजी थे।

हम हवा, पानी और अनाजके सम्बन्धमें उचित सावधानी बरता करें तो हमारे पास प्लेग कभी फटक नहीं सकता। अहमदाबादके कुछ मुहल्लोंको तो गत आठ वर्षोंसे पानीकी तकलीफ उठानी पड़ रही है। तीन महीनेसे तो सारा शहर पानीकी तकलीफका अनुभव कर रहा है। और इसलिए हम लोग आज अहमदाबादके जिलाधीश, उत्तरीय विभागके कमिश्नर तथा नगर-निगमके आयुक्तके पास अपनी फरियाद पेश करनेके लिए इकट्ठे हुए हैं। आजसे हम लोग अहमदाबादके लिए शुद्ध और पर्याप्त पानीकी प्राप्तिका प्रयत्न शुरू कर रहे हैं।

नगर-निगमके सदस्य जनताके नौकर हैं, हमें उनसे प्रश्न पूछनेका और यदि वे जिम्मेदारीके साथ अपना काम न करें तो उन्हें अलग कर देनेका अधिकार है। सरकार [नगर-निगम] अधिनियमके एक खण्डके अन्तर्गत आयुक्तकी नियुक्ति करती है। [किन्तु] हम लोग नगर-निगमके आयुक्त तथा इंजीनियरसे जवाब तलब करनेका हक भी रखते हैं। और यदि उससे भी आगे कदम उठानेकी जरूरत हुई तो हम वैसा भी करेंगे। जिस सभामें इस प्रकारके लोकोपयोगी विषयोंपर विचार किया जाता हो उस सभामें जितने अधिक लोग उपस्थित हों उतनी ही बुलन्द उसकी आवाज होगी। मेरा आप सब लोगोंसे निवेदन है कि इस मामलेमें जबतक सफलता प्राप्त न हो तबतक अपना प्रयत्न जारी रखें। यदि हम हरएक सवालको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानकर काम करें तो सफलता मिले बिना नहीं रह सकती। हमें अपना रुपया वापस मांगनेका पूरा हक है।[1]

हमें विरोध करना ही चाहिए; वरना, अधिकारियोंको कभी मालूम ही न हो पायेगा कि हमें क्या कष्ट है; इसके लिए हमें नये चुनावों तक प्रतीक्षा भी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि चुनाव तो एक वर्षके विलम्बसे भी हो सकते हैं।

[गुजरातीसे]

प्रजाबन्धु, १३-१-१९१८

१. इसके बादके वाक्य गांधीजीने मुख्य प्रस्तावके पास हो जानेपर सभाकी चर्चाका उपसंहार करते हुए कहे थे।

६६. पत्र : एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ताको

[जनवरी ११, १९१८ के बाद]

मुझे तुम्हारा काम बहुत पसन्द आया। कमिश्नरने[1] अपना असली रूप एक पलमें दिखा दिया। मैं यह बात दोष दिखानेके उद्देश्यसे नहीं लिखता, अपितु भविष्यमें तुम्हारे मार्गदर्शनके लिए लिखता हूँ कि जब कमिश्नरने पूरे शिष्टमण्डलसे मिलनेसे इनकार कर दिया था तब यदि मन्त्री भी अपने सम्मानकी रक्षा करते हुए उनसे न मिलते तो अधिक अच्छा होता . . .।[2] श्री प्रैटकी भूलसे जनताका काम बन जायेगा। यदि वे गुजरात सभाका तिरस्कार करना चाहते हैं तो करें।[3] यदि तुममें हिम्मत है, तो तुम निर्भयतापूर्वक लोक-पक्षका समर्थन करो और लोगोंको लगान अदा न करनेकी सलाह दो। यदि तुम इसमें गिरफ्तार कर लिये जाओगे तो माना जायेगा कि तुमने अपना काम पूरा कर दिया . . .। परिणामकी परवाह न करो। यही सत्याग्रह है। इतना निश्चित है कि हमें इसीसे पूर्ण आत्मसम्मान मिल जायेगा। अभी फिलहाल न मिले, यह सम्भव है। अवसर आनेपर अपनी शक्ति-भर सत्याग्रहकी महिमाको प्रदर्शित करना हमारा परम धर्म है।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

१. गुजरातके उत्तरी डिवीजनके कमिश्नर, एफ० जी० प्रैट।

२. १९१७ में खेड़ा जिलेमें अतिवृष्टिसे फसल नष्ट हो गई थी। गुजरात सभाने, जिसकी स्थापना १८८४ में लोगोंके कष्ट सरकारके सामने रखनेके उद्देश्यसे की गई थी, किसानोंकी इस माँगका समर्थन किया कि लगान निर्धारित करनेके सम्बन्धमें जो काम हो रहा है उसे मुल्तवी कर दिया जाये। पहली जनवरीको गुजरात सभाने **बॉम्बे क्रॉनिकलको** एक पत्र लिखा जिसमें उसने कुछ किसानोंको लगानमें छूट देने और कुछका लगान मुल्तवी करनेपर जोर दिया। गांधीजी इस समस्याका अध्ययन करनेके उद्देश्यसे अहमदाबाद गये और उन्होंने सभाको, जिसके वे अध्यक्ष थे, सलाह दी कि जबतक बम्बई सरकारकी ओरसे उत्तर नहीं मिल जाता वह लोगोंसे तबतक लगान अदा न करनेकी बात कहे। उन्होंने सभाको कमिश्नरके पास एक शिष्टमण्डल भेजनेका सुझाव भी दिया। १० जनवरीको सभाने कमिश्नरसे मुलाकात माँगी। जब शिष्टमण्डल कमिश्नरके कार्यालयमें गया तब कमिश्नरने केवल मन्त्रियों — कृष्णलाल देसाई और जी० वी० मावलंकर — से ही मिलना स्वीकार किया। गांधीजीको इस बातकी सूचना तारसे दे दी गई थी। (देखिए नरहरि परीख द्वारा लिखित **सरदार वल्लभभाई पटेल**, खण्ड १, पृष्ठ ४८-५५)।

३. भेंटमें कमिश्नरने कहा था कि वे सम्भवतः सरकारसे सभाको गैर-कानूनी घोषित करनेकी सिफारिश करेंगे।

६७. पत्र : एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ताको

[जनवरी ११, १९१८ के बाद]

तुम्हारा पत्र और तार मिले। उनसे मुझे बहुत सान्त्वना मिली। हाथमें लिये हुये कामको बिलकुल न छोड़ना। असलमें तुम्हें मेरी अथवा किसी अन्य व्यक्तिकी कोई आवश्यकता नहीं है। जो लोग लगान देनेमें असमर्थ हैं, सरकार उनकी असमर्थताको स्वीकार करे अथवा न करे, असमर्थता तो रहेगी ही। फिर वे लगान क्यों दें? आपको लोगोंको इतना ही समझाना है। चाहे एक ही व्यक्ति दृढ़ रहे, वह विजयी माना जायेगा। इससे हम नई फसल खड़ी कर सकते हैं। तुम अपना काम निर्भय होकर करना।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

६८. उत्तर : शिक्षकोंके शिष्टमंडलको[1]

[साबरमती आश्रम
जनवरी १३, १९१८ से पूर्व]

मैं आप लोगोंमें से उनको जो नौकरीकी तलाशमें हैं, फिलहाल दो तरहके काम दे सकता हूँ — एक तो सत्याग्रह आश्रमकी इमारत बनानेका काम जो शुरू होनेवाला है। नौकरी चाहनेवालोंमें से यदि कोई व्यक्ति इस प्रकारका काम करना चाहें तो मैं उनके द्वारा की गई ऐसी सहायताको बहुत मूल्यवान मानूँगा। उन्हें मैं १५ रु० मासिक वेतन दे सकता हूँ। इससे मुझे यह भी लगता है कि यदि आश्रमकी इमारतका निर्माण ऐसी भावनावाले व्यक्तियोंके योगसे हो तो वे स्वयं प्रशंसाके पात्र बनेंगे और आश्रमका महत्त्व भी बढ़ेगा। एक दूसरा भी काम है जिसकी व्यवस्था मैं कर सकता हूँ; जितने व्यक्ति स्वदेशी धंधोंकी उन्नति चाहते हों, उन्हें हाथ-करघेपर कपड़ा बुननेका काम मुफ्त सिखा सकता हूँ। इतना ही नहीं — जितने सूतकी आवश्यकता पड़ेगी उतना सूत भी दूँगा; और जो कपड़ा तैयार होगा उसकी बिक्री करा दूँगा। इसलिए जिनकी रुचि इस ओर हो वे मुझे सूचित कर दें। मेरे खयालमें इस प्रकारका काम स्वार्थ-साधनके साथ-साथ अच्छी खासी देशसेवा कर सकनेका अत्युत्तम साधन है।

[गुजरातीसे]

गुजराती, १३–१–१९१८

१. पत्रकी रिपोर्टके अनुसार इन शिक्षकोंने गांधीजीसे कहा था कि उन्होंने जनवरी १, १९१८ से अपनी नौकरियोंसे इस्तीफे दे दिये हैं और उनमें से कुछ गांधीजीकी मददसे स्वदेशी धंधे शुरू करना चाहते हैं।

६९. पत्र : एस्थर फैरिंगको

मोतीहारी

जनवरी १३, १९१८

प्रिय एस्थर,

यहाँ-वहाँ भटकते रहनेके कारण मैं तुम्हारे पत्रोंका जवाब नहीं दे सका। मैं कलकत्तामें था, वहाँसे बम्बई गया और फिर आश्रम, और कल ही यहाँ लौटा हूँ। कई प्रकारके अनुभव हुए, पर समयाभावके कारण उनको लिख नहीं सकता।

यह कहना कि इस संसारमें पूर्णता प्राप्त करना सम्भव नहीं, ईश्वरसे इनकार करना है। हमारे लिए सर्वथा पाप-मुक्त होना सम्भव नहीं — स्पष्ट है कि यह कथन जीवनकी एक अवस्था विशेषके लिए ही सही है। परन्तु इसका समर्थन पानेके लिए शास्त्रोंके पन्ने पलटनेकी जरूरत नहीं। प्रयत्न द्वारा और यम-नियमोंके पालनसे हम मनुष्योंको हमेशा उन्नतसे उन्नततर बनते देखते हैं। उन्नत करनेकी सामर्थ्यकी सीमा नहीं बाँधी जा सकती। अगर मुझे ऐसा लगे कि मैं इस संसारमें प्रेमको प्राप्त नहीं कर सकूँगा, तो मुझे जीवनमें बिलकुल दिलचस्पी न रहे। सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमारी प्रेमकी सामर्थ्य सतत बढ़ती जाती है। प्रक्रिया बहुत धीमी जरूर है। जो आदमी हमें अच्छा काम करनेसे भी रोके, उससे हम कैसे प्रेम कर सकते हैं? फिर भी ऐसे अवसरोंपर ही हमारी सच्ची परीक्षा होती है।

आशा है, तुम्हारा चित्त अब अधिक शान्त हो गया होगा। भगवान् करे, आश्रमके प्रति तुम्हारा प्रेम तुम्हें वहाँ[1] अपने कर्त्तव्य-पालनके प्रयत्नमें बल दे। आश्रमका उद्देश्य हमें यही सिखाता है कि अपने हिस्सेमें आया हुआ काम हम खूब ध्यान और प्रसन्न मनसे करें। हमारी इच्छाएँ (पवित्रसे-पवित्र होनेपर भी) पूरी नहीं होतीं — इसमें भी एक गूढ़ अर्थ है। हमारी इच्छा नहीं बल्कि ईश्वरकी इच्छा पूरी होगी।

आशा है कि तुम्हारी तमिलकी पढ़ाई ठीक चल रही होगी।

नटेसन ऐंड कं० ने मेरे भाषणों और लेखोंको एक पुस्तक[2] के रूपमें प्रकाशित किया है। वह पुस्तक तुमको उनसे मिली या नहीं? समाज-सेवाके सम्बन्धमें कलकत्तेके अपने भाषणकी एक प्रति मैं तुमको भेज रहा हूँ।

सस्नेह

तुम्हारा,

बापू

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

१. तिरुकोइलूर — दक्षिणमें, जहाँ एस्थर फैरिंग उस समय थीं।

२. स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज ऑफ महात्मा गांधी।

७०. पत्र : चिमनलाल चिनाईवालाको

[मोतीहारी]
पौष सुदी १ [जनवरी १३, १९१८]

भाईश्री चिमनलाल (चिनाईवाला)

आपका पत्र मिला। मजदूर-वर्ग मात्रको मदद देना हमारा काम है, इसमें मुझे कोई शक नहीं। वर्तमान सहकारी आन्दोलनमें मेरी श्रद्धा कम ही है। मुझे लगता है कि हमारा प्रथम कार्य मजदूरोंकी स्थितिका सूक्ष्म अध्ययन करना है। वे क्या कमाते हैं? कहाँ रहते हैं? कैसे रहते हैं? कितना खर्च करते हैं, कितना बचाते हैं? कितना कर्ज करते हैं? उनके कितने बच्चे हैं? उनका पालन-पोषण वे किस तरह करते हैं? शुरूमें वे क्या करते थे? उनकी स्थितिमें परिवर्तन कैसे हुआ? अब उनकी हालत कैसी है? —इन सब प्रश्नोंका उत्तर प्राप्त किये बिना एकाएक सहकारी समिति बनाना मुझे तनिक भी उचित नहीं लगता। हमें इस वर्गमें प्रवेश करनेकी जरूरत है। ऐसा करें, तो बहुत-सी उलझनें बहुत कम समयमें ही सुलझाई जा सकती हैं। अभी तो मैं तुम्हें उनमें घुलने-मिलने और उनकी स्थिति जाननेकी सलाह देता हूँ। अधिक बातें मिलने पर करेंगे।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

७१. पत्र : ई० एल० एल० हैमंडको

मोतीहारी
जनवरी १४, १९१८

सेवामें
श्री ई० एल० एल० हैमंड
सचिव
प्रान्तीय भर्ती निकाय
बिहार और उड़ीसा

प्रिय श्री हैमंड,

मैं आपके दिसम्बरमें प्राप्त बिना तारीखके पत्रका उत्तर जल्दी नहीं दे सका, इसके लिए क्षमा चाहता हूँ। बात यह है कि मैं चम्पारनसे बाहर सफरमें था। मैं अभी इस १२ तारीखको ही लौटा हूँ। इस समय मेरी कठिनाई यह है कि जबतक

किसानों और जमींदारोंके सम्बन्धोंकी स्थिति अनिश्चित है तबतक मैं आगे नहीं बढ़ सकता। कृषीय-विधेयक इस समय परिषद्में है। यह जब पास हो जायेगा तब मेरा रास्ता कुछ ज्यादा साफ हो जायेगा। तब मैं आपके सुझावको कार्यान्वित करनेका प्रयत्न करूँगा और देखूँगा कि क्या किया जा सकता है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन,

७२. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको[1]

मोतीहारी
जनवरी १४, १९१८

ऐसा प्रतीत होता है कि यदि इस अनुवादको हम जनताके सामने रखेंगे तो अन्याय ही होगा। इसलिए इसपर खर्च किया गया रुपया बरबाद ही हुआ; फिर भी हमारे पास कोई दूसरा प्रामाणिक मार्ग है ही नहीं। फिलहाल इतना ही निर्णय पर्याप्त है। इस अनुवादको यों ही पड़ा रहने दिया जाये, जिल्द न बँधाई जाये। दूसरे और तीसरे भागोंको प्रथम खण्डके रूपमें प्रकाशित कर सकते हैं . . .[2] अनुवादकी गुजराती भाषा सरल, स्वाभाविक, व्याकरण सम्बन्धी दोषोंसे मुक्त और ऐसी होनी चाहिए कि वह साहित्य-भण्डारमें अच्छा स्थान पा सके। इस अनुवादमें उपर्युक्त गुणोंमें से एक भी गुण नहीं दीख पड़ रहा है। . . . मैं देखता हूँ कि तुमने उस अनुवादके प्रूफोंको पढ़नेमें बहुत परिश्रम किया है। हमारा ध्येय यह होना चाहिए कि शुद्धिपत्र न छापना पड़े और किताबमें अशुद्धियाँ हों ही नहीं।

[गुजरातीसे]
बापूनी प्रसादी

१. मथुरादास त्रिकमजी, गांधीजीके भानजे; उन्होंने **महात्मा गांधीनी विचारसृष्टि** नामक गांधीजीके लेखों आदिका एक संकलन प्रकाशित किया था।

२. पुस्तकमें प्राप्त पाठमें यहाँ कुछ पंक्तियाँ छोड़ दी गयी हैं।

७३. पत्र : रामभाऊ गोगटेको

[मोतीहारी]
पौष सुदी २ [जनवरी १४, १९१८]

भाई रामभाऊ,

आपका पोस्टकार्ड मिला। रकम मुझे इन्दौरमें दे देनेसे भी काम चलेगा।[1]

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

भाई रामभाऊ गोगटे
पुराना नोक खाना
मकान नं० ३३२
इन्दौर

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३६१५) से।
सौजन्य : भाई कोतवाल

७४. पत्र : एल० एफ० मॉर्सहैड

मोतीहारी
जनवरी १५, १९१८

सेवामें
एल० एफ० मॉर्सहैड
कमिश्नर
तिरहुत डिवीज़न
बिहार

प्रिय श्री मॉर्सहैड,

मुझे आपका इसी १४ तारीखका पत्र[2] मिला। अबतक मैं सारा विधेयक बहुत ध्यानसे पढ़ चुका हूँ। मैं समझता हूँ कि मुझे अपना वह विचार जो मैंने आपसे बातें करते समय श्री कैनेडीके संशोधनके[3] सम्बन्धमें व्यक्त किया था, बदलना होगा। मेरा खयाल है कि यदि उक्त संशोधनमें समस्त खण्ड ३ का समावेश करना है तो इससे काम न चलेगा। आपने जिस संशोधनपर 'क' अंकित किया है उसे मैं खण्ड ३ की धारा

१. हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अवसरपर।
२. देखिए परिशिष्ट ८ (क)। मॉर्सहैड और गांधीजीकी भेंटके लिए देखिए परिशिष्ट ८ (ख)।
३. इसके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट ८ (क)।

२ की जगह स्वीकार कर सकता हूँ; किन्तु आपने श्री कैनेडीके जिस उपबन्धपर 'ख' अंकित किया है, वह मुझे सर्वथा अमान्य है। खण्ड ३की धारा १ करारबन्द तिनकठिया-को[1] रद करनेके लिए आवश्यक है। खण्ड ५ खुश्की[2] अनुबन्धोंके अतिरिक्त समितिकी अन्य सिफारिशोंको अमलमें लानेके लिए आवश्यक है; शर्त यह है कि उसमें वह संशोधन कर दिया जाये जो मैंने सरकारको लिखे गये अपने १९ दिसम्बरके पत्रमें सुझाया था। मेरी स्थिति साफ है। मैं काश्तकारोंकी जमीन किन्हीं विशेष फसलोंको उगानेके लिए बन्धक रखवाना तिनकठियाको पुनः चालू करना समझूँगा। यदि मैंने श्री कैनेडीका आशय ठीक समझा है तो उनका प्रयत्न ऐसे बन्धककी व्यवस्था कराना ही है। ये दोनों दृष्टिकोण एक दूसरेसे इतने विपरीत हैं कि उनका समन्वय कहीं नहीं हो सकता।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज़ मूवमेंट इन चम्पारन

७५. पत्र : 'स्टेट्समैन' को[3]

मोतीहारी
जनवरी १६, १९१८

सेवामें
सम्पादक
'स्टेट्समैन'
[कलकत्ता]

महोदय,

आपके पत्रके इस मासकी १२ तारीखके अंकमें[4] श्री इर्विनका जो नवीनतम पत्र छपा है, वह मुझे आपके स्तम्भोंमें कुछ लिखनेके लिए मजबूर करता है। जबतक आपके संवाददाताने अपनेको उन मामलोंतक सीमित रखा था जो सीधे उन्हींको प्रभावित करते थे तबतक उनकी गलतबयानियोंसे कोई खास फर्क नहीं पड़ता था, क्योंकि वास्तविक तथ्योंकी सरकारको तथा उन लोगोंको भी, जिनका चम्पारनमें भूमि-व्यवस्थासे

१. बिहारके नीलकी खेतीके जिलोंमें प्रचलित प्रथा, जिसके अनुसार जमींदार अपने काश्तकारोंको मजबूर करते थे कि वे अपनी जमीनमें बीघा पीछे तीन बिस्वे नील, जई या गन्ना उगायें और जिसकी मजदूरी वे बहुत कम देते थे।

२. बिना शर्त नीलकी खेती करवानेकी प्रथा।

३. यह "श्री इर्विनको श्री गांधीका उत्तर" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

४. इर्विनका ८ जनवरीका पत्र वास्तवमें ११ जनवरीको प्रकाशित हुआ था; देखिए परिशिष्ट ९।

सम्बन्धित प्रश्नोंसे सरोकार है, उतनी ही जानकारी थी जितनी कि मुझे। किन्तु उक्त पत्रमें तो श्री इर्विनने, लगता है, अपने अधिकार-क्षेत्रसे बाहर जाकर अशिष्टतापूर्वक उस महिलापर आक्रमण किया है, जो इस धरतीपर सबसे अधिक निर्दोष है (और मैं यह बात इस तथ्यके बावजूद कह रहा हूँ कि वह मेरी पत्नी है) और एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नकी ऐसे ढंगसे चर्चा की है, जिसके लिए उन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता। मेरा मतलब गो-रक्षाके प्रश्नसे है। जैसा कि किसी सज्जन व्यक्तिके लिए उपयुक्त होता, उन्हें तथ्योंके बारेमें स्वयं जानकारी प्राप्त करनेकी सावधानी तो बरतनी ही चाहिए थी, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

मैंने गोरक्षिणी सभामें[1] जो भाषण दिया था, उसे वे मुझे लिखकर आसानीसे मँगवा ले सकते थे। मानव मानवके बीच जैसा व्यवहार होता है, उसके अनुसार उन्हें मेरे प्रति कमसे-कम इतना सौजन्य तो दिखाना ही चाहिए था। आपके संवाददाताने मुझ पर आक्षेप लगाया है कि "मैंने साहब लोगोंपर (उनके भूस्वामियोंपर), जो रोज गायको मार कर खाते हैं, मिलजुल कर हमला किया है"। इससे तो यह व्यंजित होता है कि मैं बागान-मालिकोंके काश्तकारोंकी एक अपेक्षाकृत छोटी श्रोता-मण्डलीमें भाषण दे रहा था। तथ्य यह है कि श्रोताओंमें अधिकतर लोग गैर-काश्तकार वर्गके ही थे। किन्तु जब मैं बोल रहा था तो मुझे अपने सामने उपस्थित कुछ ही हजार श्रोताओंके समूहका नहीं, बल्कि उससे बहुत बड़े श्रोतासमूहका ध्यान था। मैंने अपने उत्तरदायित्वको पूरी तरह समझते हुए भाषण दिया था। मेरे विचारमें गो-रक्षाका प्रश्न उतना ही विशाल है जितना कि वह साम्राज्य, जिसमें मैं और श्री इर्विन दोनों रहते हैं। म जानता हूँ कि श्री इर्विन उस २४ वर्षीय नवयुवकके गौरवशाली पिता हैं, जिसने अपनी वीरताके कारण इस आयुमें ही कर्नलके पदका अद्वितीय सम्मान प्राप्त किया है। यदि श्री इर्विन चाहें तो गो-रक्षासे सम्बन्धित प्रश्नका अध्ययन करके उसे सुलझानेमें अपना पूरा योगदान देकर वे स्वयं इससे भी बड़ा सम्मान प्राप्त कर सकते हैं। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तब वे अपने समयका अधिक अच्छा उपयोग करेंगे, जिसे आज वे अखबारोंमें अपनी गलतबयानियोंको अंधाधुंध भेजते रहनेमें और—सिर्फ यह सोच-सोचकर एक संदिग्ध आनन्द प्राप्त करनेके लिए कि इस सबकी जिम्मेदारी मुझपर है—अपने किसानोंके खिलाफ २,२०० मुकदमे चलानेकी नितान्त अनावश्यक तैयारीमें गँवा रहे हैं।

मैंने यह बताया था कि जबतक हिन्दू लोग स्वयं ही, अपने हिन्दू मालिकोंके हाथों भयंकर दुर्व्यवहार झेलते हुए हजारों गाय-बैलोंको तिल-तिल कर मारने और कलकत्तेकी अमानवीय गोशालाओंकी गौओंसे प्राप्त दूधका पान करनेमें भागीदार हैं, और जबतक वे शान्तिपूर्वक भारतके यूरोपीय तथा ईसाई निवासियोंको गो-मांस उपलब्ध करानेके लिए भारतके कसाईखानोंमें हजारों गायोंका वध होते देखते रहते हैं, तबतक उन्हें अपने मुसलमान भाइयों द्वारा धार्मिक विश्वासके कारण गो-कशीपर क्षुब्ध होनेका कोई अधिकार नहीं है। मैंने यह कहा था कि गौओंके लिए पूर्ण संरक्षण प्राप्त करनेका पहला उपाय यह है कि हिन्दू लोग स्वयं हिन्दुओंके द्वारा गौओंके साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहारसे

१. देखिए "भाषण: सच्ची गोरक्षापर", अक्तूबर ९, १९१७के आसपास।

उन्हें पूरी मुक्ति दिलाकर अपने-आपको सुधारें, और तब यूरोपीयोंसे भारतमें रहते हुए गोमांस न खाने या कमसे-कम उसे भारतके वाहरसे मँगानेका अनुरोध करें। मैंने यह भी कहा था कि यदि हमें गोरक्षाके प्रचारको धार्मिक विश्वासपर आधारित करना है, तो गौओंकी जान बचानेके लिए मुसलमानोंके वध को किसी प्रकार भी सहन नहीं किया जा सकता; और मुसलमानों तथा ईसाइयोंसे भी गौओंके लिए संरक्षण प्राप्त करनेका धार्मिक तरीका यह है कि वे उनकी करुणाकी भावनाको जगानेके लिए खुशी-खुशी स्वयं अपना बलिदान करनेके लिए तैयार हो जायें। चाहे उचित हो या अनुचित, गो-पूजा हिन्दुओंके स्वभावमें रम गई है, और मेरी समझमें इस प्रश्नपर हिन्दुओं और ईसाइयों तथा मुसलमानोंके बीच कट्टरतम तथा घोर हिंसापूर्ण संघर्षसे बचनेका इसके सिवा और कोई रास्ता दिखाई नहीं देता कि अहिंसा धर्मको पूर्ण रूपसे स्वीकार करके उसपर आचरण करें। और इसी धर्मके प्रचारको मैंने स्वेच्छया अपने जीवनका नम्र उद्देश्य बनाना है। सत्यसे मुँह नहीं मोड़ना है। यह नहीं मान लेना चाहिए कि यूरोपीयोंके लिए जो गो-वध हो रहा है, उसके बारेमें हिन्दू कुछ भी महसूस नहीं करते। मैं जानता हूँ कि आज उनका क्रोध, उनके मनपर अंग्रेजी शासनका जो रोब छाया है, उसके कारण दबा हुआ है। किन्तु सारे भारतमें कोई भी हिन्दू ऐसा नहीं है जो एक दिन अपने देशको गो-वधसे मुक्ति दिलानेकी आशा नहीं लगाये हुए है। किन्तु, हिन्दू-धर्मको मैं जिस रूपमें जानता हूँ, उसकी प्रवृत्तिके प्रतिकूल वह लोगोंको — चाहे वे ईसाई हों या मुसलमान — तलवारके जोरपर गो-वध बन्द करनेके लिए मजबूर करनेको बुरा नहीं समझता। मैं ऐसे अनर्थको रोकनेके लिए अपनी विनम्र भूमिका निभाना चाहता हूँ, और मैं श्री इर्विनको धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मुझे आपके पाठकोंको तथा स्वयं श्री इर्विनको भी अपने कठिन प्रयत्नमें सहायता देनेके लिए आमन्त्रित करनेका अवसर दिया। हो सकता है, यह प्रयत्न गो-वध रोकनेमें सफल न हो। किन्तु कोई कारण नहीं कि धैर्यपूर्वक उद्योगरत रहने तथा उसके अनुसार निरन्तर आचरण करते रहने पर लोगोंको अपने साथी पशुको बचानेके लिए साथी मानवको मारनेके अपराधमें निहित भूल, बेवकूफी और अमानवीयताका एहसास करानेमें भी सफलता न मिले।

इतना तो बेचारी गौओंके बारेमें हुआ। अब मैं दो शब्द अपनी निरपराध पत्नीके बारेमें कहूँगा, जिन्हें कभी यह भी मालूम नहीं हो पायेगा कि आपके संवाददाताने उनके प्रति क्या अपराध किया है। उन्हें श्री इर्विन द्वारा उल्लिखित दोनों बाजारोंके बारेमें कोई जानकारी नहीं है — ठीक वैसे ही जैसे अभी हालतक, और श्री इर्विन द्वारा बताये गये प्रतिद्वंद्वी बाजारकी स्थापनाके कुछ समय बादतक, मुझे उसका कोई ज्ञान नहीं था। यदि श्री इर्विनको उनके साथ परिचय प्राप्त करनेका सम्मान मिले तो उन्हें तुरन्त मालूम हो जायेगा कि श्रीमती गांधी एक सीधी-सादी महिला हैं — लगभग अनपढ़। उनसे मिलनेपर वे अपनेको इस सम्बन्धमें और भी आश्वस्त कर सकेंगे कि श्रीमती गांधीका इसकी स्थापनामें कोई हाथ नहीं है और वे ऐसे बाजारका प्रबन्ध करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। और अन्तमें उन्हें तुरत मालूम हो जायेगा कि श्रीमती गांधीका समय श्री इर्विनके पत्रमें उल्लिखित देहातमें स्थापित स्कूल चलानेवाले अध्यापकों-

के लिए खाना बनाने तथा उनकी देख-भाल करने, डॉक्टरी सहायता देने तथा देहाती महिलाओंको स्वास्थ्यके सामान्य नियम बतानेके उद्देश्यसे उनके बीच घूमने-फिरनेमें व्यतीत होता है। मैं यह भी कह दूँ कि श्रीमती गांधीने भाषण देने या अखबारोंको पत्र भेजनेकी कला नहीं सीखी है।

पत्रके शेष भागके बारेमें जितना कम कहा जाये, उतना ही अच्छा है। यह गलत-बयानियोंसे, जिन्हें बिल्कुल साफ देखा जा सकता है, इस तरह भरा पड़ा है कि इसका उत्तर देते समय अपने ऊपर पर्याप्त नियन्त्रण रख सकना कठिन है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने बागान-मालिकों तथा काश्तकारोंके बीच सद्भाव लानेके लिए जो दायित्व उठाया है, मैं उसे निभानेके लिए अपने तईं पूरा प्रयत्न कर रहा हूँ। और यदि मैं असफल भी होऊँगा तो इसका कारण यह नहीं होगा कि मेरे प्रयत्नोंमें कोई कमी रह गई। उसका कारण तो, यदि पूर्णतः नहीं तो अधिकांशतः, वह शरारत-भरा प्रचार होगा जो चम्पारनमें श्री इर्विन खुलेआम और कुछ अन्य लोग छिपे तौरपर कर रहे हैं और जिसका उद्देश्य जाँच समिति द्वारा प्रकाशित रिपोर्टको प्रभावहीन बनाना है। श्री इर्विनका कहना है कि उक्त समिति मेरे निवेदनपर नियुक्त की गई, किन्तु, जैसा कि आपकी फाइलोंसे प्रकट होगा, इसकी नियुक्ति श्री इर्विन और उनके आंग्ल-भारतीय संघके मित्रों द्वारा चलाये गये आन्दोलनके परिणामस्वरूप हुई थी। यदि वे समझदार हैं तो वे उन वचनोंपर डटे रहेंगे जो उन्होंने काफी विचार-विमर्श करने और सोचने-विचारनेके बाद राँचीमें दिये थे।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
स्टेट्समैन, १९-१-१९१८

७६. पत्र : एस० के० रुद्रको

मोतीहारी
जनवरी १६, १९१८

प्रिय श्री रुद्र,[1]

यह पत्र मैं भाई देसाईसे लिखवा रहा हूँ। मेरी बाईं तरफ बड़ा दर्द हो रहा है। इसलिए बहुत लिखनेको जी नहीं करता। आपसे मुझे मिल सके, तो हमारी प्रान्तीय भाषाओंके लिए, उनके बारेमें जल्दीमें लिखा हुआ पत्र नहीं, उत्साहपूर्ण और सुन्दर समर्थन मुझे चाहिए, जिसका उपयोग मैं लोगोंकी कर्त्तव्य-बुद्धि जाग्रत करनेमें कर सकूँ। आप पढ़ाई प्रादेशिक भाषामें और परीक्षाके उत्तर अंग्रेजीमें लिखनेकी व्यवस्था क्यों रखना चाहते हैं? हरएक विद्यार्थीको अंग्रेजी क्यों जाननी ही चाहिए? क्या इतना

१. सुशीलकुमार रुद्र, सेंट स्टीफन्स कॉलिज, दिल्लीके प्रधानाचार्य।

काफी नहीं कि हरएक प्रान्तमें कुछ आदमी अंग्रेजीकी विशेष शिक्षा प्राप्त कर लें, जिससे वे नये विचारों और वैज्ञानिक खोजोंका ज्ञान प्रादेशिक भाषाओंके द्वारा आम जनतामें फैला सकें? ऐसा करके हम अपने लड़के-लड़कियोंको नये ज्ञानसे ओत-प्रोत कर सकेंगे और जो नवजागरण हम पिछले साठ वर्षोंमें अनुभव नहीं कर पाये, उसे अनुभव करनेकी आशा सँजो सकेंगे। रोज़-रोज़ मेरी यह प्रतीति दृढ़ होती जा रही है कि हमारे बच्चे तभी भिन्न-भिन्न विज्ञानोंको पचा सकेंगे जब वे प्रादेशिक भाषाओंमें शिक्षा पाने लगेंगे। इस अत्यन्त आवश्यक सुधारके लिए अधकचरे कदम उठानेसे काम नहीं चलेगा। जबतक हम यह स्थिति प्राप्त नहीं कर लेंगे, तबतक मुझे डर है कि अपने लिए विचार करनेका काम हमें अंग्रेजोंपर ही छोड़ देना पड़ेगा और हमारा काम गुलामोंकी तरह उनकी नकल करना ही रहेगा। जबतक यह बहुत ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो जाता, तबतक स्वराज्यकी कोई भी योजना इस विडम्बनाको टाल नहीं सकेगी। यदि आप इस मामलेमें मुझसे सहमत हों; तो उपर्युक्त विचार अपनी भाषामें प्रकट करते हुए एक पत्र मुझे लिख भेजिए।

कलकत्तेमें समय बड़ा अच्छा कटा, लेकिन कांग्रेसके मण्डपमें[1] नहीं; मंडपके बाहर ही। कविवर और उनकी मंडलीने 'डाकघर'[2] नाटक खेला, जिसे देखकर मैं मुग्ध हो गया। यह लिखाते समय भी कविकी मनोहर और मीठी आवाज मेरे कानोंमें गूँज रही है। बीमार बच्चेका अभिनय भी उतना ही सुन्दर रहा। बँगला संगीतने मुझे मोह लिया। यद्यपि मुझे अधिक सुननेको नहीं मिला, फिर भी जितना सुना, उससे मेरे ज्ञान-तन्तुओंको, जो हमेशा तनावकी स्थितिमें रहते हैं, बड़ा आराम मिला।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि समाज सेवा सम्मेलनमें मैंने अपने अध्यक्ष-पदके विशेषाधिकारका पूरा उपयोग किया। बंगाली जीवनमें जो बहुतेरा अच्छा है, उसके प्रेमीकी हैसियतसे मैंने बंगाली प्रान्तीयताके बारेमें कड़े शब्द बोलनेकी छूट पा ली।[3] श्रोताओंमेंसे किसीने बुरा भी नहीं माना। वे मेरी आलोचनाओंकी कद्र करते दीख पड़े। मैं अपने भाषणकी एक प्रति आपको भेज रहा हूँ। अलबत्ता, मैंने जो व्यक्तिगत अपील की थी, वह इसमें नहीं है।

अपने अनुभवोंका दसवाँ हिस्सा भी मैंने आपको नहीं बतलाया है, किन्तु भाई देसाई मुझे याद दिला रहे हैं कि एक और अनुभव तो मुझे आपको बतलाना ही चाहिए। वहाँ 'मानव-दया संघ' (ह्यूमैनिटेरियन लीग) की बैठकमें भी मैं गया था। उसमें भी मैं अध्यक्ष था। मुझे लगा कि कालीघाटपर होनेवाली आसुरी पूजाके बारेमें अगर मैं न बोलूँ, तो वह खुद अपने और श्रोताओंके प्रति ईमानदारी नहीं होगी। इसलिए मैं तो बिना किसी लाग-लपेटके साफ-साफ बोला।[4] बोलते समय श्रोताओंकी ओर बराबर देखता रहा। कह नहीं सकता कि मेरे कहनेका उनपर असर हुआ या

१. २९-३१ दिसम्बरको कांग्रेसका अधिवेशन चल रहा था।
२. रवीन्द्रनाथ ठाकुरका एक नाटक।
३. देखिए "भाषण : अखिल भारतीय समाज सेवा सम्मेलनमें", ३१-१२-१९१७।
४. देखिए "भाषण : विश्वविद्यालय भवनमें", ३१-१२-१९१७

नहीं, लेकिन इस विषयका विस्तारसे उल्लेख करके मैंने अपना जी हलका कर लिया। मुझमें यदि पूरा जोश-खरोश होता तो मैं घाटपर जानेवाली गलीके नुक्कड़पर खड़ा होकर हर स्त्री-पुरुषको धर्मके नामपर ईश्वरको लांछित करनेसे रोकता।

प्रादेशिक भाषाओंके सम्बन्धमें आपका पत्र इसलिए लौटा रहा हूँ कि स्मरण रखनेमें आपको सहायता मिले।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे
सौजन्य: नारायण देसाई

७७. तार: गुजरात-सभाको[1]

[मोतीहारी
जनवरी १६, १९१८ के बाद]

श्री पारेख और श्री पटेलको,[2] जिन्होंने मौकेपर पहुँच कर जाँच की है, दृष्टान्तों और दलीलोंके साथ विश्वासके योग्य जवाब देना चाहिए। स्वतन्त्र जाँचके लिए आग्रह करें। आन्दोलन प्रजाने आरम्भ किया है — और आपको यह साबित करना चाहिए कि सर्वश्री पारेख और पटेल तथा गुजरात सभा जनताके अनुरोध पर इसमें पड़े हैं। यह सलाह देनेमें मुझे कोई संकोच

१. गुजरात-सभाने १० जनवरीको खेड़ा जिलेके किसानोंको फसल खराब होनेके कारण लगान न देनेकी सलाह दी थी। इस सलाहकी आलोचना करते हुए खेड़ा जिलेके कलक्टरने अपने १४ जनवरीके वक्तव्यमें कहा कि "कलक्टरको लगान वसूल करने या मुलतवी रखनेका पूरा अधिकार है; मैंने अपने अन्तिम आदेश जिलेकी फसलके बारेमें पूरी जाँच-पड़ताल करनेके बाद ही जारी किये थे। जिलेके जिन कुछ गाँवोंमें मुझे राहत देना आवश्यक जान पड़ा, उनके सम्बन्धमें मैंने लगानके एक हिस्सेकी वसूली मुलतवी रखनेके हुक्म जारी कर दिये हैं। इसलिए अब काश्तकारोंको लगान और तकावीकी बकाया रकम अदा कर देनी चाहिए। लेकिन अगर इतनेपर भी कोई काश्तकार गलत सलाह देनेवालोंके बहकावेमें आकर लगान देनेसे इनकार करता है तो मुझे उसके विरुद्ध सख्त कानूनी कार्रवाई करनेको मजबूर होना पड़ेगा।" कलक्टरके इस वक्तव्यके बाद बम्बई सरकारने १८ जनवरी, १९१८ को एक वक्तव्य निकाला जिसमें कलक्टरकी कार्रवाईका समर्थन किया गया था। साथ ही उसमें खेड़ाके काश्तकारोंको सलाह देनेके सम्बन्धमें अहमदाबादकी गुजरात-सभाके हस्तक्षेप करनेके अधिकार (लोकस स्टैंडी) की वैधतामें भी सन्देह व्यक्त किया गया था, और सभाकी इस कार्रवाईको "विचारहीन और शरारत-भरी" बताते हुए कहा गया था कि सरकार इस "धन-धान्यसे पूर्ण और उपजाऊ जिले" में "लगान-वसूलीके स्वाभाविक कार्यमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप" बरदाश्त नहीं करेगी। गांधीजीने तार द्वारा इसी वक्तव्यके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त होनेपर यह तार भेजा था।

२. गोकुलदास पारेख और विट्ठलभाई पटेल; इन दोनोंने १२ दिसम्बरको नडियाद जाकर कपड़वंज और ठासरा ताल्लुकोंके कोई २० गाँवोंका निरीक्षण किया था और मौकेपर पहुँचकर समस्याका अध्ययन करनेके बाद इन्होंने गुजरात-सभाके सामने एक रिपोर्ट पेश की थी।

नहीं होगा कि जिन किसानोंको लगान चुकानेके लिए कर्ज लेना पड़ता हो या अपने मवेशी बेचने पड़ते हों, वे लगान न दें। सरकार जो चाहे सो करे। यदि लोगोंके कष्ट वास्तविक होंगे और काम करनेवाले होशियार होंगे, तो जीत होगी ही।

[अंग्रेजीसे]

सरदार वल्लभभाई पटेल, खण्ड १

७८. पत्र : डी० जे० रीडको

मोतीहारी
जनवरी १७, १९१८

प्रिय श्री रीड,[1]

जब मैं आपके साथ काम कर रहा था, उन दिनों मुझे नहीं मालूम था कि आपके लिए समितिमें होनेका क्या अर्थ है। मुझे अब मालूम हुआ कि आपने अपने सिर कैसा खतरा ले रखा था। मैं आपसे सहानुभूति नहीं प्रकट करता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि सर्वश्री इर्विन और जेम्सनके नेतृत्वमें मिथ्या आरोप लगानेका जो एक आंदोलन-सा चला हुआ है, उसका आपपर कोई असर नहीं हुआ है। ईमानदारीके साथ काम करनेकी इच्छा रखनेवाले लोक-सेवी व्यक्ति केवल अपने अन्तःकरणकी सम्मति-पर ही विश्वास कर सकते हैं। कोई अन्य प्रमाण उनके लिए कुछ भी अर्थ नहीं रखता। आप जिस आगसे होकर गुजर रहे हैं, ईश्वर आपको उसे सहनेकी शक्ति प्रदान करे।

आशा है, लंकामें आपका समय अच्छी तरह कटा होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४४४७) से।

१. बिहार बागान-मालिक संघके जनरल सेक्रेटरी तथा बिहार और उड़ीसा विधान-परिषद्के सदस्य; उन्होंने उत्पादन-कार्यमें लगे श्रमिकोंके प्रश्नकी जाँच-पड़तालके लिए १६ जून, १९१७ को नियुक्त चम्पारन जाँच-समितिमें काम किया था।

७९. पत्र : जमनादास गांधीको

मोतीहारी
पौष सुदी ५ [जनवरी १७, १९१८]

चि० जमनादास,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि मेवा मेरे साथ अकेली रह सके तो उसे यहाँ बुला लेनेकी व्यवस्था की जा सकती है। डॉक्टर उसे किसी अच्छे जाने-बूझे व्यक्तिके साथ अथवा तुम्हारे साथ भेज सकते हैं। उसे यहाँ पहुँचाकर तुम वापस जा सकते हो।

यहाँ चार महिलाएँ काम कर रही हैं; भाई नरहरिकी पत्नी, भाई महादेवकी पत्नी, आनन्दीबाई (एक विधवा) और अवन्तिकाबाई। सबको जुदा-जुदा गाँवोंमें भेज देनेका विचार है। तीन तो अभी गाँवमें ही रहती हैं। बा भी गाँवमें है और वहाँकी स्त्रियोंमें काम कर रही है।

कील लग जानेके कारण तुमने बहुत कष्ट भोगा। अब तो बिलकुल ठीक हो गये होगे।

रामदासने सोच-समझकर दर्जीका काम सीखना शुरू किया है। वह कुछ कमाई और कुछ कटु अनुभव प्राप्त करना चाहता है। वह नाराज होकर नहीं गया है। उसके वहाँ जानेसे मुझे प्रसन्नता हुई है। इस अनुभवसे वह बनेगा। रामदास मुझसे आर्थिक सहायताकी आशा नहीं रखता; रखनी भी नहीं चाहिए।

तुमने जो प्रश्न उठाया है वह इसीलिए उठता है कि मेरे जीवनमें परिवर्तन हुए हैं। यदि मैं शुरूसे ही गरीब होता, देश-सेवाभिलाषी ही होता, तो मुझसे किसी और बातकी आशा ही नहीं की जाती। उस सूरतमें मैं अपने बच्चोंका पालन-पोषण अपने आदर्शोंके अनुसार करता और वे बड़े होनेपर कोई और मार्ग ग्रहण करना चाहते तो कर सकते थे। परन्तु [उस हालतमें] वे मुझसे आशीर्वादके सिवाय और किसी वस्तुकी अपेक्षा न रखते। यदि मैं शुरूसे ही गरीब होता तो मुझे ऐसा अधिकार होता; तब फिर [यह अधिकार मुझे] आज भी होना चाहिए। माता-पिता अपने आदर्श बदल सकते हैं और यदि वे ऐसा करें तो बच्चोंको या तो उनके रास्ते जाना चाहिए या शान्तिपूर्वक अपना अलग रास्ता चुन लेना चाहिए। इसी तरह सब लोगोंको स्वराज्यका सुख मिल सकता है।

जब मालिककी वैसी दशा हो जाये जैसी कि तुमने चित्रित की है तो नौकरको नौकरी छोड़ देनेका हक है। हाँ, छोड़ते समय वह इस बातका ध्यान रखे कि [उससे] मालिकको उस समय कोई हानि न हो। मालिक यदि पशु बन जाये तो उसके कारोबारका क्या हाल होगा, नौकर इसका कोई भी विचार किये बिना उससे अलग हो जाये। मालिकके मातहतोंका व्यवहार भी वैसा ही हो तो भी वह नौकरी छोड़ सकता है। परन्तु सब परिस्थितियोंके लिए एक ही नियम नहीं बनाया जा सकता है। स्थितिके अनुसार ही निर्णय किया जा सकता है।

क्षत्रियके हाथमें जब कोई शस्त्र शेष नहीं रह जाता तब वह हाथ-पैरसे लड़ता है और लड़ते-लड़ते मर जाता है; इसके सम्बन्धमें भी कोई निश्चित नियम नहीं सुझाया जा सकता। कभी-कभी ऐसे अवसर भी आते हैं जब शस्त्रोंके न रहनेपर क्षत्रिय हार मान लेता है और बादमें शस्त्र प्राप्त करके पुन: संग्राम-स्थलमें आ डटता है।

सत्यका शोध पश्चिममें ही हुआ है, यह कहना उचित नहीं है। सत्य और अहिंसा एक जैसे हैं; यह धारणा ठीक है। एकमें दूसरेका समावेश हो जाता है। अहिंसक असत्य बोले अथवा असत्यका आचरण करे तो उसका व्रत भंग हो जाता है। सत्याचरण करनेवाला व्यक्ति हिंसा करे तो उसका भी व्रत भंग हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति भयके कारण उत्तर ही न दे तो वह अहिंसा व्रतको तोड़ता है।

श्रीकृष्णको हम मनुष्य न मानकर यदि एक महान् तत्त्व [शक्ति ?] मानें तो सब शंकाएँ नष्ट हो जाती हैं। श्रीकृष्ण काल्पनिक व्यक्ति हैं परन्तु हिन्दुओंके हृदयमें वे इतनी दृढ़तापूर्वक विराजमान हैं कि वे, हम जितने साकार हैं, उससे कहीं अधिक साकार हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जबतक हिन्दू धर्म जीवित है तबतक श्रीकृष्ण तो रहेंगे ही।

और भी लिख सकता हूँ परन्तु अब बस करता हूँ। [इतना जो] लिखा है वह भी कठिन परिस्थितियोंके बीचमें लिखा है।

बापूके आशीर्वाद

चि० मेवा,

अगर तुम साहसपूर्वक मेरे साथ अकेली रहनेके लिए आना चाहो तो आ जाना। तुम्हारा स्वास्थ्य सुधारूँगा और मुझे पुत्रीका अभाव है, उस अभावको तुम पूरा करनेका प्रयत्न करना।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७२४) से।
सौजन्य : नारणदास गांधी

८०. पत्र : जमनादास गांधीको

मोतीहारी
पौष सुदी ६ [जनवरी १८, १९१८]

चि० जमनादास,

आज यह पत्र स्वयं न लिखकर, बोलकर लिखवा रहा हूँ। ऐसा न करूँ तो इस पत्रके बिलकुल रह जानेका भय है। महँगाईके विषयमें तुमने जो लिखा है, सो ठीक है। अत्यन्त स्वादिष्ट भोजनोंसे घिरे रहकर अस्वादका व्रत लेना निश्चय ही महान् व्रत है। विरला मनुष्य ही इसका पालन कर पाता है और विरले मनुष्यको ही मोक्ष प्राप्त होता है। हम तो फिलहाल केवल प्रयत्न ही कर सकते हैं। तुम जितना बन सके उतना इसका पालन करना। मुझे लगता है कि मैं स्वयं इस समय, इस सम्बन्धमें अधिक अधिकारसे लिखनेके अयोग्य हूँ। परसों आचार्य कृपलानी जेल गये, इसलिए हमने उपवास किया।

उस दिन बड़े आनन्दका अनुभव किया; मैं आज वैसे आनन्दका अनुभव नहीं करता। कल उपवास छोड़ा, फलाहार किया। फल बहुत सुस्वादु थे लेकिन मैंने उन्हें स्वाद लेकर नहीं खाया, इसलिए आनन्दका अनुभव तो किया, मगर वह [पिछले दिनकी अपेक्षा] कम था। मैं जानता हूँ कि आज बिना स्वादके भोजनमें स्वाद लेनेका प्रयत्न करते हुए मैंने विशेष खाया और इससे आनन्दित होनेके बदले मन दुःखी हो रहा है। इस प्रकार [एक दिनमें] गिनतीकी पाँच वस्तुएँ खानेकी हद बाँधनेपर भी, और उन्हें षट्रस स्वादोंसे रहित रूपमें बनानेपर भी जिह्वा रस लिया करती है; इससे आत्माको क्लेश होता है। यदि मैं ४९ वर्षका होनेपर, संयमपूर्वक रहते हुए अपनी स्वादेन्द्रियको पूरी तरहसे नियन्त्रित नहीं कर सका तो तुम भरी-जवानीमें सब रसोंके बीच रहते हुए क्या कर सकते हो? इस त्रैराशिकका उत्तर मैं सहज ही पा सकता हूँ। मेरी तो तीव्र आकांक्षा है कि तुम और अन्य युवक जिन्होंने संयमके इस रहस्यको समझ लिया है और जो मेरे साथ उसके पालन करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, मुझसे आगे निकल जायें। यह हो भी सकता है। मैंने पूर्ण विजय प्राप्त करनेमें बहुत समय गँवाया है। इससे अधिक मैं तभी लिखूंगा जब इसके योग्य हो जाऊँगा।

गहरे घावके ऊपर कभी-कभी मिट्टी असर न करे, यह सम्भव है। [घावमें कपड़ेकी] बत्ती भरनेका जो इलाज चल रहा है, उसे धीरजके साथ जारी रखना। यदि अच्छी तरहसे बत्ती न भर सको तो डॉक्टरकी मदद लेना। घावका लम्बी अवधि तक न भरना ठीक नहीं है।

तुम्हें जो प्रश्न पूछना हो, सो पूछना। अवकाश मिलनेपर उत्तर दूंगा।

बापूके आशीर्वाद

महादेव देसाई द्वारा लिखित तथा गांधीजीके हस्ताक्षरयुक्त मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७२५) से।

सौजन्य : नारणदास गांधी।

८१. पत्र : के० वी० मेहताको

मोतीहारी

जनवरी १८, १९१८

प्रिय कल्याणभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। मार्ग दो ही दिखाई देते हैं। इनमें से एक जो उत्तम है यह है: यह बहन अपनी विद्याका शुद्ध उपयोग करे और भाग्यके संयोगसे प्राप्त पतिको सुधारनेका प्रयत्न करे। पहले स्त्रियोंने ऐसे काम किये हैं और यदि यह बहन आज इतना साहस करे तो सम्बन्धित सभी लोग जल्दी सुखी हो सकते हैं। इसके लिए इस बहनको आत्मबोध होना चाहिए। अगर इतना ज़र्फ पास न हो, तो वह निडर होकर अपने पतिके पास जानेसे साफ इनकार कर दे। अगर पिताके घरसे उसके जबरदस्ती भेजे-जानेकी सम्भावना हो, तो उसे वहाँसे चले आनेका अधिकार है और तब कोई मित्र

उसे आश्रय दे। अगर उसे देहातमें आश्रय न दिया जा सके, तो उसे वहाँसे ले आना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि आप अपनी मित्रताका उपयोग इस बहनके रक्षार्थ करें। उत्तम मार्ग पहले आजमाएँ।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

८२. पत्र : मगनलाल गांधीको

मोतीहारी
पौष सुदी ८ [जनवरी २०, १९१८]

चि० मगनलाल,

लगता है कि मुहम्मदअलीके बारेमें विकट संघर्ष करना होगा। अगर हिन्दुस्तान मेरे कहेपर चलेगा तो भारत-सरकारको अच्छी तरह मुँहकी खानी पड़ेगी। हिन्दू-मुसलमान जो कभी एक नहीं रहे, एक हो जायें; गोमाताकी रक्षा हो और दुनियामें अहिंसा-धर्मका जयनाद गूँजने लगे; किन्तु इस हद तक सफलता मिलनेके पूर्व मुझे कठिन अग्नि-परीक्षासे होकर गुजरना होगा। जिस सत्ताने आजतक किसी भारतीयको कुछ नहीं गिना, वह सत्ता मुट्ठी-भर भारतीयोंके द्वारा ललकारी जानेपर जरूर लड़ेगी और उस समय उसका प्रकोप असहनीय होगा। तथापि मैंने तो उसे झेलनेकी ठान रखी है। मैं यह पत्र तुम्हें इस बातकी याद दिलानेके लिए लिख रहा हूँ कि तुम सावधान रहना कि उस झंझावातमें कहीं आश्रमको मिला हुआ धन हम जाने-अनजाने खो न दें। यह तो मैं तुमसे कह ही चुका हूँ कि मेरे नामसे कोई चीज किसी भी जगह न रहे। सब-कुछ अपने ही नाम रखना। जहाँ-जहाँ मेरा नाम हो वहाँ-वहाँ अपना करा लेना। बम्बई बैंकमें रेवाशंकरभाईने जो रकमें जमा की हैं उनकी रसीदपर शायद हम दोनोंके, मेरे और उनके नाम हैं। उसमें मेरी जगह तुम्हारा नाम आ जाना चाहिए। दुर्घटना आदि आकस्मिक प्रसंगोंके खयालसे अपना वसीयतनामा कर देना और उसमें अपना वारिस[1] . . . और डॉक्टरको नियुक्त करना। इस प्रकार मैंने तुम्हारे कार्यकी रूपरेखा निश्चित कर दी है। तुम्हें कपड़ा बुनने तथा खेतीके काममें ही लगे रहना है। सन्तोकको[2] ऐसी तालीम देनी है कि वह उस कार्यमें तुम्हें पूरे मनसे योग दे सके। इस कामके साथ-साथ और इसकी सफलताके लिए तुम्हें राधा[3] और रुखीको[4] आदर्श कुमारिकाएँ बनानेका भगीरथ प्रयत्न करना है। यह सब करते हुए तुम्हें श्रेष्ठ धर्मका पालन करना ही पड़ेगा। इसलिए तुम दिन-प्रतिदिन स्वभावत: मोक्षकी दिशामें अग्रसर होते रहोगे। इस प्रकार इस कार्यके द्वारा तुम्हारा सत्याग्रह और तुम्हारी देशसेवा कृतार्थ होगी। जो-कुछ भी धन हमारे पास है वह इन्हीं दो प्रवृत्तियोंके लिए तथा राष्ट्रीय पाठशालाके लिए है। कानूनमें भी यही स्थिति रहेगी। जो रकमें तुम्हारे नाम की जानेवाली हैं वे तुम्हारी मिल्कियत नहीं

१. मूलमें यहाँ कुछ शब्द छोड़ दिये गये हैं।
२. मगनलाल गांधीकी पत्नी।
३ व ४. मगनलालकी कन्याएँ।

८४. पत्र : मेसर्स लिंजियर ऐंड कम्पनी, मदुराको

मोतीहारी (बिहार)
जनवरी २१, १९१८

मेसर्स लिंजियर ऐंड कं.
मदुरा
[महोदय,]

जिन लोगोंने बुनाई छोड़ दी है, उनके पुनर्वासके लिए मैंने यह पद्धति अपनाई है कि उनको सस्तेसे-सस्ते बाजार-भावपर सूत मुहैया कराया जाये और वे जितना कपड़ा बुनें उसे ऊँचेसे-ऊँचे बाजार-भावपर नकद दामों खरीद लिया जाये। अपनी सहूलियतके अनुसार वे सूतके दाम किस्तोंमें चुका दें, और इसपर ब्याज न लिया जाये। इस पद्धतिसे वे औसतन १७) मासिक तक कमा सकते हैं। ये जुलाहे अपना सारा समय बुनाईमें नहीं देते और बहुत मोटा कपड़ा बुनते हैं। इससे ज्यादा कमानेकी उनकी इच्छा भी नहीं। इतनेमें उनकी जरूरतें पूरी हो जाती हैं। मैं जानता हूँ कि जुलाहा होशियार हो, बारीक सूत बुने और थोड़ी कारीगरी भी करे, तो २५ रुपये महीना कमा सकता है। मेरी रायमें अगर किसी जुलाहेको अपना धन्धा छोड़ना पड़ता है, तो उससे राष्ट्रको भी उतनी ही हानि होती है; और जितने जुलाहोंको हम फिरसे धन्धेमें लगा देते हैं, उतना राष्ट्रको लाभ होता है। आप कोई भी योजना शुरू करें, किन्तु मैं चाहता हूँ कि समय-समयपर खबर देकर मुझे अपने कामसे परिचित बनाये रखें।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

८५. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

मोतीहारी
जनवरी २१, [१९१८]

प्रिय गुरुदेव,

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अधिवेशनमें इन्दौरमें मैं जो भाषण[1] दूंगा उसके लिए मैं निम्नलिखित प्रश्नोंपर विचारवान् नेताओंके मत एकत्र करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ :

१. क्या हिन्दी (भाषा या उर्दू) अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार तथा अन्य राष्ट्रीय कार्रवाइयोंके लिए उपयुक्त एकमात्र सम्भव राष्ट्रीय भाषा नहीं है?

१. यह भाषण २९ मार्च, १९१८को दिया गया था, देखिए "भाषण : हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें", २९-३-१९१८

२. क्या हिन्दी कांग्रेसके आगामी अधिवेशनमें मुख्यतः उपयोगमें लाई जानेवाली भाषा न होनी चाहिए?

३. क्या हमारे विद्यालयों और महाविद्यालयोंमें ऊँची शिक्षा देशी भाषाओंके माध्यमसे देना वांछनीय और सम्भव नहीं है? और क्या हमें प्रारम्भिक शिक्षाके बाद अपने विद्यालयोंमें हिन्दीको अनिवार्य द्वितीय भाषा नहीं बना देना चाहिए?

मैं महसूस करता हूँ कि यदि हमें जनसाधारण तक पहुँचना है और यदि राष्ट्रीय सेवकोंको सारे भारतवर्षके जनसाधारणसे सम्पर्क करना है तो उपर्युक्त प्रश्न तुरन्त हल किये जाने चाहिए और उन्हें अत्यन्त आवश्यक समझकर उनपर विचार किया जाना चाहिए। क्या आप कृपया जल्दीसे-जल्दी उत्तर देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे?[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

महादेव देसाई द्वारा लिखित तथा गांधीजीके हस्ताक्षर-युक्त मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २७६५) की फोटो-नकलसे।

८६. पत्र : एक मित्रको

[मोतीहारी]
जनवरी २१, १९१८

मेरे भाषणों और लेखोंकी पुस्तककी[2] प्रस्तावना कौन लिखे, अथवा उसकी आवश्यकता है या नहीं, इस प्रश्नका निर्णय प्रकाशकका नाम और उद्देश्य जाननेके बाद किया जा सकता है। यदि उसे कोई प्रकाशक रुपये कमानेकी नीयतसे छपवाये, तो उसके लिए सरोजिनीकी[3] प्रस्तावनाकी जरूरत होगी। यदि कोई श्रद्धालु वैष्णव छपवाए, तो वह जरूर रणछोड़भाईके[4] पास जाये। यदि मेरे लेख आदि किसी ऐसे तीसरे व्यक्तिके हाथोंमें हों जो मुझसे अपरिचित हो और वह किसीसे पुस्तककी बिक्री सुनिश्चित करा लेना चाहे, तो मेरे मित्र अर्थात् डॉक्टर मेहताको ढूंढ़े। यदि तुम या मथुरादास मालिक बनो, तो प्रस्तावना होगी ही नहीं। अभी फिलहाल तो मैं फेलिक्स सरकसके जानवरोंकी तरह प्रसिद्ध हूँ। इसलिए उक्त कारणोंके अतिरिक्त किसी अन्य कारणसे मेरे ऊपर किसीकी छाप लगानेकी आवश्यकता नहीं रहती। जहाँ ज्वार आ रहा हो, वहाँ मेरे विचारोंके समुद्रमें, जितने आदमी डुबकी लगा सकें, जल्दीसे लगा लें, इस प्रकाशनका वास्तविक

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुरने उत्तरमें लिखा था: "वास्तवमें भारतमें अन्तर्प्रान्तीय व्यवहारके लिए उपयुक्त राष्ट्रीय भाषा हिन्दी ही है। किन्तु . . . मैं समझता हूँ कि दीर्घकाल तक हम इसे लागू नहीं कर सकते।"

२. मथुरादास त्रिकमजी द्वारा सम्पादित *महात्मा गांधीनी विचारसृष्टि*।

३. सरोजिनी नायडू।

४. रणछोड़लाल पटवारी।

हेतु यही है। मुझे तो उन विचारोंपर ममत्व है, इसलिए आम तौर पर उनका लाभ जितने लोग ले सकें, उतने लोगोंको उनका लाभ लेनेका अवसर देनेकी इच्छा होती है। इस प्रकार इसे छपवानेमें अभी तो मैं भी प्रेरक हूँ। ऐसी स्थितिमें प्रस्तावनाकी जरूरत ही क्या है? मेरा आचरण ही शुद्ध प्रस्तावना है। जो पढ़ सकते हैं पढ़कर देख लेंगे।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

८७. पत्र : राजस्व सचिवको

मोतीहारी
जनवरी २४, १९१८[1]

सेवामें
सचिव
राजस्व-विभाग
बिहार और उड़ीसा सरकार

महोदय,

माननीय रायबहादुर पूर्णेन्दुनारायण सिंहको[2] चम्पारन कृषि-विधेयकके सम्बन्धमें जो कागजात दिये गये थे वे उन्होंने मुझे उपलब्ध कर दिये हैं। मैं देखता हूँ कि उनमें एक स्मृतिपत्र है जो बिहार बागान-मालिक संघ, चम्पारनके सदस्योंने दिया है[3], उसके साथ सिरनी संस्थानके प्रबन्धकोंका भेजा हुआ एक और स्मृतिपत्र भी है। प्रवर-समितिके विचारके लिए इन ज्ञापनों तथा कुछ अन्य पत्रोंका उत्तर देना आवश्यक है।

किन्तु अपने विचार व्यक्त करनेसे पहले मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि यदि सरकार विधेयकमें कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करना ही चाहती है तो किसानोंका एक प्रतिनिधि परिषद्में नियुक्त किया जाना चाहिए और प्रवर-समितिमें भी रहना चाहिए। और मैं महसूस करता हूँ कि बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद या मेरे सिवा दूसरा कोई व्यक्ति ऐसा नहीं कि जो इन हितोंका भलीभाँति प्रतिनिधित्व कर सके। मैं आशा करता हूँ कि मेरी इस प्रार्थनापर सरकार उचित ध्यान देगी।

विधेयकके उपबन्धोंपर विचार करते हुए मेरी नम्र रायमें सभी सम्बन्धित लोगोंके लिए यह स्मरण रखना अत्यन्त आवश्यक है कि सरकारने समितिकी सिफारिशोंपर

१. मूल प्रतिमें सन् १९१७ है जो स्पष्टतः छपाईकी भूल है।

२. बिहार और उड़ीसा विधान परिषद्के सदस्य। वे उस प्रवर समितिके सदस्य भी थे जिसे चम्पारन कृषि-विधेयक विचारके लिए सौंपा गया था।

३. ५ जनवरीको या उसके आसपास। देखिए परिशिष्ट १०।

एक घोषणा निकालकर अपना निर्णय[1] किसानोंको बता दिया है। हम आदरपूर्वक कहना चाहते हैं कि उपर्युक्त घोषणामें किसानोंको जो आश्वासन दिये गये हैं उनको कार्यरूप देनेके लिए विधेयक प्रस्तुत किया गया है। इसलिए विधेयकमें किसी महत्त्वपूर्ण मामलेमें परिवर्तनकी कोई गुंजाइश नहीं है। ऐसी स्थितिमें अखबारोंमें जो कटुता-भरे पत्र छप रहे हैं तथा सम्बन्धित पक्षों द्वारा जो भाँति-भाँतिकी अफवाहें फैलाई जा रही हैं उनसे किसान क्षुब्ध हो रहे हैं। 'तुरत दान महा कल्यान' यह कहावत इस मामलेमें बहुत सटीक बैठती है। विधेयकको पास करनेमें अनुचित विलम्ब करनेसे भारी अनर्थ हो सकता है। इसलिए, मैं अनुरोध करता हूँ कि विधेयक जितनी जल्दी हो सके प्रान्तकी कानून-संहितामें आ जाना चाहिए।

अब मैं इन उक्त पत्रोंकी जाँचपर आता हूँ। सबसे पहले मैं चम्पारनके जमींदारोंके स्मृतिपत्रको लूँगा। साधारणतः यह ऐसी गलतबयानियोंसे भरा है, जिनके कारण यह तनिक भी महत्त्व देने योग्य नहीं रह जाता। इसमें कहा गया है कि कृषीय जाँच-समिति असंदिग्ध रूपसे एक कृत्रिम आन्दोलनको बन्द करनेके लिए नियुक्त की गई थी। तथ्य यह है कि समिति जमींदारोंके उस आन्दोलनके फलस्वरूप नियुक्त की गई थी, जिसे उन्होंने इस आशासे आरम्भ किया था कि उससे किसानोंका आन्दोलन बन्द हो जायेगा या दबा दिया जायेगा। इसके समर्थनमें मैं 'पायनियर' से, जो देशमें आंग्ल भारतीयोंके विचारोंको व्यक्त करनेवाला एक प्रमुख पत्र है, एक उद्धरण प्रस्तुत करता हूँ। उसने १९१७ की मईके मध्य एक अंकमें लिखा था :

> हमें लगता है कि बिहार और उड़ीसा सरकार, नीलकी खेतीके जिलोंमें जमींदारों और किसानोंके मतभेदोंकी जाँच करनेके लिए तुरन्त एक आयोग नियुक्त कर देगी तो ठीक होगा। यह समझना कठिन है कि श्री गांधीकी जाँचसे क्या लाभ हो सकता है। किन्तु एक ऐसे आयोग द्वारा, जिसमें एक गैर-सरकारी तत्त्व रह सके, की गई निष्पक्ष जाँचसे दोनों पक्षोंको अपना-अपना मामला पेश करनेका अच्छा अवसर प्राप्त होगा और इसके परिणामस्वरूप अवश्य ही स्थायी शान्ति हो जायेगी।

और जूनके प्रारम्भमें बिहार और उड़ीसा सरकारने चम्पारन कृषीय जाँच-समिति नियुक्त करनेका निर्णय किया है। यूरोपीय संघके मन्त्रीने[2] ८ जून, १९१७ को बिहार और उड़ीसा सरकारके मुख्य सचिवको एक पत्र लिखा था, जिसमें कहा गया था :

> मेरी परिषद्को यह देखकर बहुत सन्तोष होता है कि आपकी सरकारने बिहार और उड़ीसा प्रान्तमें जमींदारों तथा किसानोंके आपसी सम्बन्धोंकी जाँचके लिए एक समिति नियुक्त करनेका निर्णय किया है।

१. ये आदेश सरकारके अक्तूबर १८, १९१७ के उस प्रस्तावमें सन्निहित किये गये थे, जिसे जाँच समितिकी रिपोर्टके साथ-साथ बिहार और उड़ीसा 'गज़ट' में तथा रैयतके लिए प्रान्तीय भाषामें छापा गया था।

२. एलेक मार्शं।

स्मृतिपत्रमें कहा गया है कि किसानोंका आन्दोलन 'कृत्रिम' था और उसका संगठन चम्पारनके बाहर किया गया था। तथ्य यह है कि यह केवल चम्पारन तक ही सीमित था और अभीतक चम्पारन तक ही सीमित रहा है तथा जिस आन्दोलनमें बड़ी संख्यामें जनसाधारणने भाग लिया हो उसे 'कृत्रिम आन्दोलन' कहना कठिन है। स्मृति-पत्रमें कहा गया है : "आन्दोलन व्यापक शिकायतका परिणाम कदापि नहीं था।" इसका खण्डन सरकारकी अपनी जाँचसे तथा सरकार द्वारा समितिके सामने प्रस्तुत किये गये बहुतसे कागजातसे हो जाता है।

मेरे लिए यह शोभाजनक न होगा कि मैं उन बहुत-से आक्षेपोंकी ओर ध्यान दूँ जो जाँच-समितिपर अनुचित रूपसे अकारण लगाये गये हैं।

चम्पारनके जमींदारोंने अपने स्मृतिपत्रमें विधेयकके उपबन्धोंमें जो विभिन्न संशोधन प्रस्तुत किये हैं अब मैं उनपर विचार करता हूँ।

खण्ड ३ की धारा (१) का संशोधन : स्मृतिपत्रमें यह कहकर असावधानीकी हद ही कर दी गई है कि विधेयकका उद्देश्य

> **"बिना क्षतिपूर्तिके तथा बिना पर्याप्त कारणके उस प्रथा (तिनकठिया) को रद करना है जो १०० वर्षसे भी अधिक समयसे प्रचलित है।"**

यह बात इस तथ्यके बावजूद कही गई है कि जमींदारोंने इस प्रथाको, जो अब लाभ-प्रद नहीं रही है, समाप्त करनेके लिए बहुत ज्यादा हर्जाना वसूल किया है और इस विधेयकका मंशा उस बेजा हर्जानेसे आंशिक रूपसे और मेरे विचारमें अपर्याप्त रूपसे राहत दिलाना है। एक जमींदारने अपने किसानोंसे तावानके रूपमें ३,२०,००० रु० वसूल किये और इस आयके अतिरिक्त उसे ५२,००० रु० वार्षिककी आय शरहबेशीसे हुई। उसने इस तथ्यका उल्लेख अखबारों तकमें बड़े गर्वसे किया है। और ऐसे जमींदार अनेक हैं।

स्मृतिपत्रमें खुश्की प्रणालीके बारेमें जो तर्क दिया गया है उस सबसे यही जाहिर होता है कि स्मृतिपत्रके दाता तिनकठियाको खुश्कीके नामसे परिवर्तित रूपमें पुनरुज्जीवित करना चाहते हैं। मेरे खयालसे खुश्की प्रणाली वह करार है जिसे किसान स्वेच्छया जमींदारके साथ करता है और जिसके अनुसार वह आपसमें तय किये गये उचित भावसे अपनी कोई खास उपज जमींदारको देता है। करारमें कोई ऐसी धारा रखनेसे जिससे किसान अपनी सारी जमीनमें या उसके एक भागमें या उसके किसी खास खेतमें, भले ही उसे उसने स्वयं चुना हो, कोई विशेष फसल बोनेके लिए बँधता हो, तो उस करारका रूप ऐच्छिक नहीं रह जाता और किसान अपनी जमीनको अपनी इच्छानुसार उपयोगमें लानेके अधिकारसे वंचित हो जाता है। इस तरहकी धारा बंगाल कृषि-अधिनियमके खण्ड १७८ (३) (ख) और खण्ड २३ की संयुक्त व्यवस्थाके विरुद्ध है। पेशगी देनेकी प्रथा अबतक प्रलोभन और जाल ही सिद्ध हुई है। खुश्की करारका किसानकी जमीनसे कोई सम्बन्ध न होना चाहिए। इसमें केवल यह शर्त होनी चाहिए कि किसान जमींदारको आपसमें तय किये गये भावसे निश्चित मात्रामें नील देगा। किसान नीलको अपनी जमीनमें पैदा कर सकता है या दूसरे किसानोंसे खरीद सकता है, अथवा किसी अन्य साधनसे प्राप्त कर सकता है। यदि एक बार उसकी जमीन करारके अन्तर्गत आ गई तो इसका

अनिवार्य परिणाम यह होगा कि बाध्यताकी वही भावना, जो अबतक नील उगानेके साथ सम्बद्ध रही है और जाँच-समिति तथा सरकारकी इच्छा जिलेकी भावी शान्तिके लिए जिसे दूर कर देनेकी है, धीरे-धीरे किसानके मस्तिष्कमें घुसने लगेगी और समय आनेपर उसपर हावी हो जायेगी। यहाँ मैं इसका उल्लेख कर दूँ कि विधान सभाका मुख्य ध्येय उद्योगको समृद्ध करना या कायम रखना उतना नहीं है जितना किसानोंका कल्याण करना। यदि किसानको तिनकठिया या खुश्की प्रथाके घातक प्रभावोंसे सर्वथा मुक्त करना है तो यह आवश्यक है कि (क) उस विशेष फसलको जिसे उपलब्ध करानेका जिम्मा उसने लिया है वह कहाँसे प्राप्त करना चाहता है और कैसे प्राप्त करना चाहता है, इसके लिए उसे स्वतन्त्र छोड़ दिया जाये और उसकी जिम्मेदारी परस्पर स्वीकृत मात्राको उपलब्ध कराने तक ही सीमित रहे; (ख) खुश्की करारोंकी अवधि यथासम्भव छोटी हो, और वह जिस उत्पादनको मुहैया करता है उसकी कीमत उसे बाजार दरपर दी जाये।

स्मृतिपत्रमें खण्ड ३ (१) में सुझाये गये (ख) और (ग) संशोधन उपर्युक्त कसौटियोंपर खरे नहीं उतरते इसलिए किसानोंके दृष्टिकोणसे वे पूर्ण रूपसे अमान्य हैं।

अब मैं स्मृतिपत्रमें खण्ड ३ (१) में प्रस्तावित संशोधन (क) पर आता हूँ जिसमें तिनकठिया प्रथाको, चाहे वह पट्टेकी शर्तके रूपमें हो अथवा साटे या करारोंसे अस्तित्वमें आई हो, १९२० तक बढ़ानेकी बात कही गई है। यह प्रस्ताव अत्यन्त खतरनाक है और इससे समितिकी रिपोर्टमें उल्लिखित तीन प्रमुख संस्थानों द्वारा दिया गया वचन भी भंग होता है। समितिकी सिफारिश है कि इसे अक्तूबर १९१७ से समाप्त कर देना चाहिए और इसपर कार्रवाईकी जा चुकी है। अब यदि चम्पारनके नील-उत्पादकोंका, जिन्होंने स्मृतिपत्रपर हस्ताक्षर किये हैं, प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये तो इससे घाव फिर हरा हो जायेगा और इसके अकल्पनीय परिणाम होंगे। वास्तवमें प्रस्तावका अभिप्राय समितिकी रिपोर्ट और उसके आधारपर की गई सरकारी घोषणाके प्रभावको बेकार करना है। इस प्रथाको जारी रखनेका मुख्य कारण यह बताया जाता है कि नील-उत्पादक बीज ले चुके हैं और वे नीलकी अगली फसल बोनेकी पूरी तैयारी कर चुके हैं। किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि वे खुश्कीकी प्रथाका आश्रय ले सकते हैं और वे बीज, यन्त्रों तथा अन्य सब वस्तुओंका उपयोग उसके अन्तर्गत कर सकते हैं। यह सच है कि वास्तविक खुश्की प्रथासे किसानोंपर उनका प्रभुत्व उतना न रहेगा, जितना साटेसे रहता है और न उन्हें उतना भारी लाभ ही होगा जितना अबतक होता रहा है। किन्तु उन्हें न्यायकी दृष्टिसे इस तरहकी एक पक्षीय सुविधाएँ लेनेका अधिकार कभी नहीं था। हम चाहे कैसे ही सोचें इस प्रथाको जारी रखनेका औचित्य सिद्ध करना कठिन है।

रही खण्ड ३ (१) के संशोधन (ग) की बात, जिसमें इस बाध्यताको पेशगीकी वापसी तक जारी रखवानेका प्रयत्न किया गया है। मुझे यह देखकर दुःख होता है कि राजस्व निकाय भी उसके जालमें फँस गया है। क्षण-भर विचार करनेसे ही मालूम हो जायेगा कि यदि यह बाध्यता इस प्रकार जारी रखी गई तो उसे अनन्तकाल तक जारी रखना पड़ सकता है, उससे किसान परेशान किये जा सकते हैं और बहुत-से

मुकदमे खड़े हो सकते हैं। तब यदि नील-उत्पादक चाहेगा तो किसानसे पेशगी कभी वापस ही न माँगेगा और तब संभव है, भोला किसान सदा गुलामीमें ही जकड़ा रह जाये। मुझे आशा है कि यह दलील न दी जायेगी कि नील-उत्पादकोंको पेशगीकी वापसीका भरोसा होना चाहिए। वस्तुतः उन्हें इसकी आवश्यकता नहीं है। किसान उनके आसामी हैं और उनपर उनका अधिकार होता है जिसके बलपर वे किसी भी देनदारीको उनसे वसूल कर सकते हैं। इसलिए मुझे यह कहना पड़ता है कि प्रस्तावित संशोधन इस अनिष्टकारी प्रथाको ज्यादासे-ज्यादा दिन तक जारी रखनेकी एक चाल-मात्र है। यदि उक्त संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो इससे प्रस्तावित विधानका सान्त्वनाप्रद प्रभाव लगभग नष्ट हो जायेगा और चम्पारनमें आग भड़क उठेगी।

खण्ड ४ (शरहबेशी) में प्रस्तावित संशोधन : इस खण्डके सम्बन्धमें पहला संशोधन सिरनी संस्थानके प्रबन्धक द्वारा किये गये आवेदनपर आधारित है। किन्तु यह संशोधन जिस रूपमें है, उसमें कहा गया है कि कमीकी दरके प्रश्नपर न केवल सिरनीके सम्बन्धमें बल्कि जलहा तथा मोतीहारीके संस्थानोंके सम्बन्धमें भी पुनर्विचार किया जाये। इस मामलेपर पुनर्विचारका कोई भी कारण नहीं है। मोतीहारी संस्थानके मैनेजर श्री इर्विन समझौतेमें शामिल थे। जहाँतक सिरनीके प्रश्नका सम्बन्ध है, मैं नहीं जानता कि मैं जाँच-समितिके रुखकी व्याख्या करनेके लिए स्वतन्त्र भी हूँ। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि जाँच-समितिको मामला पुनः सौंपे बिना उन अंकोंपर विचार नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे उस सुचिन्तित समझौतेके परिणाम हैं जो केवल समिति और नील-उत्पादकोंका ही समझौता नहीं है, बल्कि उन विभिन्न हितोंका भी समझौता है जिनका स्वयं समितिमें प्रतिनिधित्व था। समझौता एक पूरी चीज और अखण्ड है और पूरी चीजको भंग किये बिना उसकें एक अंशका भंग नहीं किया जा सकता। यह सच नहीं है कि श्री बायन[1] जैसा उन्होंने अपने आवेदनमें कहा है, गवाही देनेके लिए बुलाये गये या उन्हें अपना वक्तव्य दर्ज करानेका अवसर नहीं दिया गया। सब लोगोंके लिए आम सूचना निकाली गई थी कि यदि वे कोई गवाही देना चाहें तो अपना वक्तव्य भेज दें; वह उनपर भी लागू होती थी। इतना ही नहीं, बल्कि समितिकी रिपोर्टमें उनसे यह दिखानेके लिए खास तौरपर कहा गया था कि शरहबेशीमें किस दरसे कमी की जाये? इसका निश्चय मुख्यतः इस बातको ध्यानमें रखकर न किया जाना चाहिए कि शरहबेशी किस दरसे की गई थी। जो दलील इस मामलेमें लागू होती है वही आम तौरपर जलहाके मामलेमें भी लागू होती है।

खण्ड ४ (२)में संशोधन : एक मुद्दा ऐसा है जिसपर चम्पारनके नील-उत्पादकोंके स्मृतिपत्रसे सहमत होना सम्भव है। वह यह है कि इस विधेयकके अन्तर्गत जो लगान निश्चित किया जाये वह अन्तिम तथा अनिवार्य हो। यह उचित है। किन्तु जो भी संशोधन किया जायेगा उसमें अनियमितता तथा अधिकारपत्रके उल्लंघनकी बिनापर अपील करनेका अधिकार सावधानीसे सुरक्षित करना होगा।

विधेयकका खण्ड ५ : मैं इस आशयका संशोधन भेज ही चुका हूँ कि इस खण्डमें से "अपने पट्टेकी जमीनपर या उसके किसी भागपर लगाई गई" शब्द निकाल दिये

१. सिरनी संस्थानके मालिक।

जायें। तिनकठियापर विचार करते हुए इस पत्रके पूर्व भागमें मैं बता चुका हूँ कि खुश्की करारमें किसानकी जमीनका उल्लेख क्यों नहीं किया जाना चाहिए।

चम्पारनके नील-उत्पादकोंने स्मृतिपत्र द्वारा इस खण्डमें दो संशोधन प्रस्तावित किये हैं।

पहला यह है कि धारा (१) में 'तीन' शब्द के स्थानमें 'पाँच' शब्द कर देना चाहिए। दूसरे शब्दोंमें कहें तो साटेकी अवधि केवल तीन वर्षकी नहीं, बल्कि पाँच वर्षकी कर दी जाये। सचाई यह है कि तीन वर्षकी अवधि भी रियायतके रूपमें रखी गई है। खुश्की करारकी अवधि यथासम्भव छोटी होनी चाहिए। स्मृतिपत्रमें लम्बी अवधिके साटोंकी समाप्तिके प्रस्तावपर खेद प्रकट किया गया है और इस बातको भुला दिया गया है कि समितिके सामने साक्षी देनेवाले किसी भी नील-उत्पादकने लम्बी अवधिके साटोंके समर्थन करनेका साहस नहीं किया था और उनमेंसे कुछने तो यहाँतक कहा था कि वे साटोंको लागू नहीं करते। गन्नेके साटोंके बारेमें भी गॉर्डन कैनिंगने[1] कहा था कि "जब उन्होंने गन्ना बोना प्रारम्भ किया था तब साटें किये गये थे; किन्तु वे लागू नहीं किये गये थे, इसलिए उन्हें रद समझा जाये।"

स्मृतिपत्रमें एक अन्य सुझाव यह है कि किसान इस बातको सदा बहुत ज्यादा पसंद करेंगे कि उन्हें मालकी तोल या कूतकी अपेक्षा जमीन, जिसमें निर्दिष्ट फसल बोई गई हो, के रकबेके आधारपर एक बँधी दरसे दाम दिया जाये। यह मेरे अनुभवके प्रतिकूल है। यह समझ लेना चाहिए कि इस सम्बन्धमें भी अन्य बातोंकी तरह वास्तविक उद्देश्य तिनकठियाको[2] पुनर्जीवित करना ही है।

[अंग्रेजीसे]

सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन

८८. पत्र : डॉ० कुलकर्णीको

[मोतीहारी]
जनवरी, २४, १९१८

प्रिय श्री कुलकर्णी,

अपना पिछला पत्र भेजने तक मैं आपका भेजा हुआ साहित्य पढ़ चुका था; किन्तु मुझे वह अपने प्रयोगोंसे विमुख करने योग्य समर्थ नहीं लगा। आप जो कहते हैं, संभव है वह सच हो और न भी हो। नमक तमाम रोगोंके लिए रामबाण हो, तब तो उसका उपयोग दुगुना या चौगुना करानेकी कोशिश करनेमें भी कुछ उठा नहीं रखना

१. पुरसा संस्थानके प्रवन्धक।

२. कोई एक सप्ताह बाद गांधीजीने बिहार और उड़ीसा सरकारकी कार्यकारिणी परिषदके सदस्य श्री डब्ल्यू० मॉडसे भेंट की और उनसे खुश्की, शरहबेशी आदिके सम्बन्धमें विस्तृत रूपसे चर्चा की। इस भेंटके विषयमें केवल श्री मॉडकी टिप्पणी ही उपलब्ध है। देखिए परिशिष्ट ११।

चाहिए। मुझे तो प्लेग वगैरा रोगोंको नमकके प्रयोगसे सफल रूपमें दूर करनेके बारेमें आँकड़े चाहिए। निरामिष-आहार सम्बन्धी पुस्तकोंमें नमकके प्रयोगके विरुद्ध मैंने काफी पढ़ा है, इसीलिए मैंने स्वयं नमक छोड़कर देखा। लगभग सात वर्ष पहले कस्तूरबा सख्त रक्तस्रावसे बीमार थीं। कूनेके कटिस्नान और खुराकके कड़े प्रयोगोंसे मैं उसका उपचार कर रहा था। जब मैं लगभग निराश हो गया, तब मुझे विचार आया कि श्रीमती वेलैसने नमक और डॉ० हेगने दालके विरुद्ध खूब कहा है। डॉ० वेलैसकी दलील यह है कि नमक उत्तेजक और प्रदाह-जनक है। वह प्राणिज न होनेके कारण बिना पचे ही बाहर निकल जाता है और निकलते-निकलते काफी नुकसान कर जाता है। वह पाचन-रसकी ग्रन्थियोंको जरूरतसे ज्यादा उत्तेजित करता और मेदेमें प्रदाह उत्पन्न करता है और मनुष्यको जरूरतसे ज्यादा खिला देता है। इस प्रकार वह पाचन-तन्त्रपर जरूरतसे ज्यादा बोझ डालता और खूनको कमजोर करता है। सब लोगोंकी तरह कस्तूरबा और मैं नमकको पसन्द करते थे। उसे खासी मात्रामें लेते थे। मैंने अपने मनसे दलीलकी कि शरीरको जो नमक मिलता है, वही शायद उसकी बीमारीको लम्बा करनेके लिए जिम्मेदार है। दालके मामलेमें मैंने जो दलील की, उसमें उतरनेकी कोई जरूरत नहीं देखता। उस समय मैं खुद काफी स्वस्थ था। स्वास्थ्यके कारण मुझे कोई परिवर्तन करनेकी जरूरत ही नहीं थी। फिर भी मैंने देख लिया कि मैं नमक और दाल न छोड़ दूँ, तो कस्तूरबाको वैसा करनेपर राजी न कर सकूँगा। इसलिए ये दोनों चीजें मैंने छोड़ दीं और कस्तूरबासे भी छुड़वा दीं। उसके उपचारमें मैंने और कोई परिवर्तन नहीं किया। एक हफ्तेमें ही खून बन्द हो गया और उनका अस्थिपंजर-जैसा शरीर भरने लगा। तबसे अभीतक मैंने नमक नहीं खाया, किन्तु कस्तूरबाको तो नमककी आदत ऐसी पड़ी थी कि उसे छोड़ देनेकी जरूरत समाप्त होनेपर वह उसे फिर शुरू करनेके लालचका मुकाबला न कर सकी। इसलिए पूरी तरह अच्छी हो जानेके बाद उसने नमक लेना शुरू कर दिया। अब भी समय-समयपर जब उसे रक्तस्राव हो जाता है, तब नमक छोड़ देने और घर्षण-स्नान करनेसे वह बिलकुल अच्छी हो जाती है। अपने प्रयोगके इन सात वर्षोंमें मैंने दमा और फेफड़ोंकी दूसरी व्याधियोंवाले रोगियोंका इलाज बिना नमककी खुराक देकर किया और इसके हमेशा अच्छे ही परिणाम निकले हैं। अपने विषयमें मैं कह सकता हूँ कि जिन-जिन लोगोंके सम्पर्कमें आया हूँ, नमक न लेनेके कारण मैं उन सबसे कुछ-ज्यादा बीमार नहीं रहा। मैं मानता हूँ कि बिना नमककी खुराकसे अपने ब्रह्मचर्य-व्रतके पालनमें मुझे काफी मदद मिली है। ये सारे अनुभव मेरे सामने मौजूद होनेके कारण नमककी आपकी साग्रह हिमायतसे मुझे जरा आघात लगा है। हाँ, मैं अपने शरीरमें एक बड़ा परिवर्तन देख रहा हूँ और उसके बारेमें मैंने डॉक्टरोंके साथ चर्चा भी की है; किन्तु वे उसपर कोई प्रकाश नहीं डाल सके। मुझे कोई चोट लगती है, तो वह पहलेसे बहुत जल्दी अच्छी हो जाती है। लम्बे सफरके बाद भी मुझे बहुत अधिक थकावट महसूस नहीं होती। लेकिन मालूम पड़ता है कि मैं एक हरी टहनीकी तरह नाजुक और लचीला बन गया हूँ। मेरी चमड़ी बहुत नाजुक और नरम हो गई है। यह छुरीसे अपेक्षाकृत ज्यादा आसानीसे कट जाती है। यद्यपि मैं हमेशा नंगे पैर चलता हूँ, फिर भी मेरे पैरके तलवे औरोंकी तरह कड़े और मोटे नहीं पड़ रहे हैं। मेरे मसूड़े नरम हो गये हैं और मुँहमें जो थोड़ेसे दाँत हैं,

वे उपयोगकी अपेक्षा शोभाके लिए ही अधिक हैं। क्या यह भी सम्भव है कि यह नाजुकपन बिना नमककी खुराकका परिणाम हो? अलबत्ता, अपने जीवनके तरीकेमें मैंने और बहुत-से परिवर्तन किये हैं, इसलिए अकेले नमकको इसके लिए जिम्मेदार मानना मुश्किल है। अपने शरीरकी इस खराबीके प्रति — अगर उसे खराबी माना जा सकता हो तो — मेरा ध्यान न खिंचा होता, तो और बहुत-से लाभोंके कारण, जिनका मैंने अनुभव किया है, मैं बिना नमककी खुराककी बड़ी जोरदार हिमायत करता। अगर आपसे मुझे कोई नई जानकारी मिले, तो थोड़े ही समयके लिए क्यों न हो मैं नमक खाना शुरू करना चाहूँगा और अपने शरीरपर उसके क्या परिणाम होते हैं, यह देखूँगा। अपना प्रयोग थोड़े समयके लिए बन्द रखना वांछनीय है या नहीं, इसकी चर्चा डॉक्टर देवके साथ कर ही रहा था कि आपका पत्र आ गया। मैंने अपना पिछला पत्र उसीके उत्तरमें लिखा था। इस मामलेमें आपके पास निश्चित जानकारी हो और आप वैज्ञानिक दृष्टि रखनेपर इतना आग्रह करते हों कि उत्साहके आवेगमें भी सत्यके मार्गसे जरा भी विचलित होनेसे इनकार करें, तो मैं प्लेगकी जाँच और इस बातकी खोज करनेके लिए कि मनुष्यके भोजनमें नमकका मूल्य वास्तवमें कितना है, आपका सहयोग प्राप्त करना चाहूँगा। आपकी बताई हुई पुस्तकें जुटानेकी कोशिश करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

८९. पत्र : काका कालेलकरको[1]

[मोतीहारी]
जनवरी २४, १९१८

आरोप सच भी हो सकता है और झूठ भी। अगर सच हो तो अपराधीको प्रायश्चित्त स्वरूप जेल जाना चाहिए; और यदि व्यक्ति निरपराध हो [फिर भी उसे सजा दी गई हो तो] उसे चाहिए कि वह न्यायाधीशको शिक्षा देनेके विचारसे जेल जाये। यदि सभी निर्दोष व्यक्ति अपनेको निर्दोष घोषित करते हुए जेल जाने लगें तो हो सकता है किसी दिन कोई निर्दोष व्यक्ति सजा ही न पाये। इतना तो हुआ साधारण दृष्टिसे विवेचन। प्रोफेसरके मामलेमें बहुत-सी विशेषताएँ हैं। उनपर मामला घोड़ेको तेजीसे हाँकनेके कारण ही नहीं चलाया गया था। सरकारको यह तो एक बहाना मिल गया था। इस मामलेको चलानेका हेतु यही था कि जैसे भी हो मुझे और मेरी आड़में

१. यह पत्र उनके इस प्रश्नका उत्तर देते हुए लिखा गया था कि प्रोफेसर कृपलानीका जेल जाना सत्याग्रह कैसे हो सकता है और इस सम्बन्धमें अपील क्यों नहीं की गई।

इस आन्दोलनको अप्रिय बनाया जाये। मेरे विरुद्ध न सही मेरे किसी सहयोगीके विरुद्ध भी कुछ किया जा सके, तो मेरे प्रतिपक्षी खुश होंगे, ऐसी कुछ मान्यता इसके पीछे थी। ऐसे समय प्रोफेसरका जेल जाना और अपना स्वरूप दिखाना जरूरी था। फिर यहाँके लोग जेलमें जानेसे बहुत डरते हैं। उनका भय निकालनेका यह एक सुन्दर अवसर था। इसे छोड़ा नहीं जा सकता था। खुद प्रोफेसरके लिए भी यह अनायास प्राप्त अनुभव छोड़ देना ऐसा ही होता, जैसा लक्ष्मीके तिलक लगानेके लिए आनेपर कोई मुँह छिपा ले। स्वयं कष्ट भोगना और अन्यायका विरोध करना ही 'सत्याग्रह' है। न्यायाधीशका निर्णय खालिस अन्याय था। जेल-यात्राका कष्ट स्वीकार करके प्रोफेसरने सत्याग्रह किया। अपील करना सत्याग्रहके क्षेत्रमें ही नहीं आता। शुद्ध सत्याग्रहमें सफाईकी गुंजाइश नहीं होती। हम जिस सत्याग्रहको देख रहे हैं, वह शुद्ध नहीं, मिश्रित सत्याग्रह है। यह मिश्रण हमारी कमजोरीका माप और लक्षण है। जब शुद्ध सत्याग्रह किया जायेगा, तब दुनिया उसका आश्चर्यजनक प्रभाव देखेगी, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। इसलिए सत्याग्रह की दृष्टिसे तो अपील करनी ही नहीं थी; किन्तु अपील नहीं की गई इसमें सत्याग्रहका शुद्ध रूपमें पालन करनेकी इच्छा गौण थी। मेरे खयालसे मामला इतना कमजोर था कि हमने अपील वगैरह करके उसे बड़ा रूप नहीं दिया और इस प्रकार हम न्यायाधीशका पक्षपात और अज्ञान दोनों आसानीसे दिखा सके। फिर कोई भी वकील यह आश्वासन नहीं दे सका कि अपील करेंगे तो उसमें हम जीतेंगे ही। वकीलोंसे मैंने कह दिया था कि उनकी इच्छा हो तो वे अपील करें, किन्तु हारकर आयें, तो मैं जरूर दोष दूंगा। इस मुकदमेमें अपील नहीं की जा सकती थी, नजरसानी ही कराई जा सकती थी। नजरसानी में बड़ी अदालत भी तथ्योंपर विचार नहीं करती, सिर्फ कानूनी गलती ही सुधारती है। इस मामलेमें बचावकी कानूनी गुंजाइश नहीं थी। तुम देखोगे कि इसमें सत्याग्रह और संसार जिसे 'व्यावहारिकता' कहता है, उसकी भी रक्षा हुई है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

९०. पत्र : जमनादास गांधीको

[मोतीहारी]
जनवरी २४, १९१८

चि० जमनादास,

तुम्हें अपना काम छोड़कर मेरे पास रहनेसे कुछ मिलेगा नहीं। थोड़े दिन बाद तुम्हीं ऊब जाओगे और अपने उपेक्षित कर्त्तव्यको याद करोगे।

इसलिए तुम्हें वहीं रहकर आनन्द खोजना चाहिए। तुम्हारी इस समय मेरे पास रहनेकी इच्छा एक प्रकारका 'विषय' है। और जिस तरह विषयके उपभोगके बाद हममें थकान और निराशा आती है, उसी तरह तुममें भी अभी मेरे पास थोड़े समय रहने

के बाद निराशा आ जायेगी। यह आदर्श अपने सामने रखो कि तुम्हें किसी दिन मेरे पास आना है और इस बीच हाथके कामोंको पूरा करके आनेके योग्य बनो।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

९१. पत्र: मगनलाल गांधीको

मोतीहारी
पौष सुदी १२, [जनवरी २४, १९१८]

चि० मगनलाल,

प्रोफेसरकी जेल-यात्रापर तुम लोगोंने उत्सव मनाया सो अच्छा ही किया; संगीत-शास्त्रीपर भी ठीक रंग चढ़ गया है। काकाके नाम भेजे गये पत्रसे[1] प्रोफेसरके बारेमें तुम्हें सब कुछ मालूम हो जायेगा। अगर फकीराने[2] राजोंको स्वयंसेवकोंके रूपमें काम करनेको भेजा है तो इससे प्रकट होता है कि उसके अन्तस्तलमें अभी भी आश्रमके लिए स्थान है। ठाकुरलालकी बीमारीने तो बहुत दिन ले लिये। भाई ब्रजलाल जैसा स्वास्थ्यकर ले वहाँ पहुँचे, वैसा ही बनाये रखें तो ठीक है। यहाँ बागान-मालिक बड़ी चीख-पुकार कर रहे हैं। मैं जितना सावधान हूँ उतना ही निश्चिन्त भी हूँ; मुझे तो मुख्यतः इतनी ही निगरानी रखनी है कि किसान कोई गलत कदम न उठा पायें। मैं नरहरिको भरसक जल्दी ही वापस भेज दूंगा। मुझे भी ऐसा लगता है कि राष्ट्रीय शालाको किसी प्रकारका धक्का नहीं लगना चाहिए। तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा। प्रभुदाससे कहना कि पत्र लिखा करे।[3]

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्रकी महादेव देसाई द्वारा की गई प्रतिलिपि (एस० एन० ६३३२) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र: काका कालेलकरको", २४-१-१९१८।
२. फीनिक्स आश्रमके एक कार्यकर्ता; देखिये खण्ड ११, "डायरी: १९१२"।
३. इसके बाद महादेव देसाईने छगनलाल गांधीके नाम निम्नलिखित पंक्तियाँ जोड़ी थीं:
"बापूजी लिखाते हैं कि पोलकके खातेमें रु० ३,००० जमा करना; यही ठीक होगा। साथके कागज मावलंकरको देना।"

९२. पत्र : छगनलाल गांधीको

मोतीहारी
पौष सुदी १४ [जनवरी २५, १९१८]

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। चि० मथुरादासको सौंप देनेमें हेतु यह है कि वह उन्हें अपनी मरजीके मुताबिक प्रकाशित कराये। अंग्रेजी भाषणोंका अनुवाद अवश्य होना चाहिए। इस कामको वह कर सकता है, उसमें काफी योग्यता है, उसे यह काम पसन्द भी है। "अनुवाद करते-करते कदाचित् विशेष आत्मदर्शन कर पाऊँ" — यह लोभ भी उसके मनमें है। वह बहुत चरित्रवान् युवक है। देश-सेवा करनेका इच्छुक है। मेरे साथ लगा रहा है और उसने अपनी यह इच्छा बड़ी सुन्दर भावनासे प्रेरित होकर प्रकट की है। इस प्रकार अनेक कारणोंसे मेरे मनमें यह आया कि यह काम उसीको सौंपना ठीक होगा। प्रूफ इत्यादि पढ़नेके लिए उसके पास समय भी पर्याप्त है। किन्तु जबतक तुम उसकी सहायता नहीं करते तबतक तो वह पंखहीन पंछी-जैसा है। जब हम ये लेख उसके हवाले करेंगे तभी वह सामग्री इकट्ठी कर सकेगा। वह केवल नटेसन द्वारा प्रकाशित पुस्तकका अनुवाद कर लेनेसे सन्तुष्ट होनेवाला नहीं है। अगर तुम इसका अनुवाद करनेके कामसे मुक्त हो सको तो तुम्हारे सामने अन्य अनेक काम पड़े हैं। अब एक ही प्रश्न रह जाता है। अगर तुमने अखण्डानन्दजी आदिको वचन दे रखा है और वे तुम्हें उस बन्धनसे मुक्त न करें तो मथुरादासको निराश करना ही होगा। अगर वे इन्हें प्रकाशित करें तो भी प्रूफोंके बारेमें कुछ व्यवस्था तो करनी होगी।

मैंने तुम्हारा नोट पढ़ लिया है। तुम यदि उसे बढ़ाना चाहो तो उसमें अभी काफी बढ़ानेकी गुंजाइश है। 'इंडियन ओपिनियन' में मेरे अनेक लेख ऐसे हैं जो मुझे बहुमूल्य प्रतीत हुए हैं। उनमें से चुनाव किया जा सकता है। दक्षिण आफ्रिकामें मैंने जो अनेक प्रार्थनापत्र लिखे थे उनमें बहुत-सा इतिहास आ गया है। 'खुली चिट्ठी'[१] 'हरी पुस्तिका'[२] नामक दो चौपतियों, जिनमें से पहली सन् १८९४ में लिखी गई थी और दूसरी यहाँ, में अनेक सरकारी रिपोर्टोंका सारांश है। गिरमिट प्रथाके बारेमें मैंने १८९४ में जो आवेदन-पत्र[३] तैयार किया था उसमें गिरमिट प्रथाके सम्बन्धमें अनेक सरकारी खरीतोंका निचोड़ दिया हुआ है। इस तरह यदि तुम दक्षिण आफ्रिकावाला सन्दूक खोलोगे तो उसमें तुम्हें हर तरहकी बहुत-सी उपयोगी सामग्री मिलेगी। जो व्यक्ति इन

१. देखिए "खुली चिट्ठी", दिसम्बर १८९४, खण्ड १, पृष्ठ १४२-६६।

२. देखिए "दक्षिण आफ्रिकावासी ब्रिटिश भारतीयोंकी कष्ट-गाथा", १४-८-१८९६, खण्ड २, पृष्ठ १-५९।

३. शायद गांधीजीका अभिप्राय "प्रार्थनापत्र : लॉर्ड रिपनको", जुलाई १७, १८९४ से है; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ११७-१२८।

लेखों इत्यादिका संकलन करना चाहेगा उसे इस काममें कमसे-कम छः माह तो लगाने ही पड़ेंगे। और अगर 'धर्म नीति'[1] आदि पुस्तकें छापने बैठेंगे तो यह काम और भी लम्बा हो जायेगा। १८९०–९१में जो लेख[2] मैंने विलायतमें लिखे थे उन्हें भी शामिल किया जा सकता है। वे कहाँ होंगे यह मुझे याद नहीं है ऐसा स्मरण आ रहा है कि मणिलाल या हरिलालने उन्हें सँभालकर रख छोड़ा है।

बापूके आशीर्वाद

महादेव देसाई द्वारा लिखित तथा गांधीजीके हस्ताक्षर-युक्त मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ६३३४)की फोटो-नकलसे।

९३. पत्र: ग० वा० मावलंकरको

[मोतीहारी]
जनवरी २७, १९१८

भाईश्री मावलंकर,

सभा द्वारा तैयार किये गये खेड़ा सम्बन्धी प्रेस नोटके जवाबके मसविदेके बारेमें आपका पत्र मिला। जवाबका पहला भाग मुझे जितना अच्छा लगा, आखिरी उतना ही कमजोर। मैं उसे सुधारनेके झंझटमें नहीं पड़ता। खेड़ा जिलेके बाहरकी किसी संस्थाका जिलेसे कुछ सरोकार नहीं है, सरकारके इस खयालका बड़ा जोरदार जवाब दिया जा सकता है। सभामें खेड़ा जिलेसे कोई भी सदस्य न आया हो, तो भी सभाको [वहाँके और यहाँतक कि] गुजरातके किसी भी हिस्सेके सम्बन्धमें सरकारको लिखनेका अधिकार है। इतना ही नहीं बल्कि यह उसका कर्त्तव्य है। जाँच समितिके सदस्योंके नाम लेना जरूरी था। नये [जूनियर] और पुराने [सीनियर] अधिकारियोंमें जो भेद दिखाया गया है, यह अनुचित है। इससे हमने, अनजाने ही सही, यह मान लिया जान पड़ता है कि पुराने अधिकारी होते, तो वे बारीकीसे और उचित जाँच करते। हमारा दावा तो यह है कि सरकारी अधिकारी होनेके कारण ही वे अनुभवी और अपनी जिम्मेदारी समझनेवाले प्रजाजनोंकी अपेक्षा कम विश्वासपात्र हैं; क्योंकि वे [अधिकारी] अपने स्वार्थकी रक्षाके लिए ही लिये जाते हैं और उनकी आदत जनताकी बातको ठुकरानेकी होती है, जब कि जनताके नेताओंमें स्वार्थ नहीं होता वे तटस्थ होते हैं और जानते हैं कि उनकी भूलको दरगुजर नहीं किया जायेगा; इस कारण उनकी जाँच ज्यादा विश्वसनीय होती है। ये सारी बातें हमें अच्छी तरह बतानी चाहिए थीं। इस झगड़ेसे हमें [जनताको] शिक्षित करना चाहते हैं और यह दिखाना चाहते हैं कि जैसे

१. खण्ड ६ में "नीतिधर्म अथवा धर्मनीति" शीर्षकसे प्रकाशित।

२. गांधीजीके शुरू-शुरूमें लिखे गये ये लेख सन् १८९१ **वेजिटेरियन** और **वेजिटेरियन मेसेंजर**में प्रकाशित हुए थे। इनके लिए देखिए खण्ड १।

सरकार अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा के लिए उत्सुक है, वैसे ही हम भी अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिए उत्सुक हैं। सरकार अपनी प्रतिष्ठाको प्राय: अपनी सत्ताके जोरसे कायम रखती है; किन्तु हमें इसको केवल अपने न्यायपूर्ण कार्यसे कायम रखना चाहिए। जनताको इस तरहका विस्तृत अनुभव और निश्चित पथ-प्रदर्शन मिले, तो उससे उसे स्वराज्यकी बड़ी तालीम मिलेगी। मैंने इस हदतक यह आलोचना इसीलिए की है।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ यह है कि ऐसे समय किये हुए कामका मूल्य आसानीसे आँका जा सकता है। समितिको दूसरे सारे कामोंको छोड़कर भी तुरन्त अपनी बैठक करनी चाहिए। सार यह है कि समितिका कार्य स्थगित नहीं किया जा सकता। समितिमें ऐसे होशियार और जिम्मेदार लोग होने चाहिए, जो जब जरूरत पड़े, उपस्थित हो सकें। अगर हमारा मामला सच्चा हो, तो उससे हजारों गरीब लोगोंकी रक्षा हो सकती है। जैसे हम अपने निजी स्वार्थके लिए सब कुछ त्याग देना न्याय-संगत मानते हैं, वैसा ही आचरण हम इस सार्वजनिक स्वार्थकी खातिर करनेके लिए बाध्य हैं। यह हरएक सार्वजनिक कार्यकर्त्ताकी गुप्त प्रतिज्ञा होनी चाहिए। मेरा खयाल है कि हमारा जवाब बहुत देरसे गया माना जायेगा। अक्सर सरकार अपेक्षाकृत अधिक सावधान होनेके कारण ही सार्वजनिक आन्दोलनको दबा पाती है। न्याय 'सोनेवालेको नहीं, जागनेवालेको ही सहायता दे पाता है।' यह वाक्य अदालतमें दुहरानेके लिए ही नहीं है; यह हमारे हर व्यवहारमें लागू होता है।

आप सब बहुत अच्छा काम कर रहे हैं और आप अडिग रहे हैं; इसीलिए मैंने आपकी उक्त आलोचना की है। अगर मेरा यह कहना होता कि आप आलसी हैं, तो यह बात मैंने अपनी चुप्पीसे ही बता दी होती। ऐसा कहनेके लिए कालक्षेप करना मेरा तरीका ही नहीं है। आप अधिकाधिक सावधान बनें और तीस वर्ष पुरानी इस सभाका सम्मान बढ़े, इसी उद्देश्यसे उक्त प्रेमोद्गार प्रकट किये हैं। उन्हें प्रहार समझनेकी भूल न करें और खिन्न न हों।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

९४. पत्र : रेलवे बोर्डके सचिवको

मोतीहारी
जनवरी २९, १९१८

सेवाम
सचिव
रेलवे बोर्ड

[महोदय,]

आपका इस मासके दिनांक २२ का पत्र, संख्या ५५२–टी–१७ मिला। लम्बे उत्तरके लिए धन्यवाद। आशा है, पत्रके कुछ मुद्दोंके बारेमें बादकी किसी चिट्ठीमें लिख पाऊँगा।

फिलहाल मैं आपको अपने उस भाषणकी[1] एक प्रति भेज रहा हूँ, जो मैंने कलकत्तामें हालमें ही हुए समाज-सेवा सम्मेलनमें दिया था। उसमें मैंने रेलवे-सम्बन्धी शिकायतोंसे सम्बद्ध अनुच्छेदको चिह्नित कर दिया है। शायद आप मुझसे इस बातमें सहमत होंगे कि मैंने मुसाफिरोंके साथ काबुलियोंके जिस आचरणका उल्लेख किया है उसपर तुरन्त ध्यान देना आवश्यक है। मुझे विश्वास है कि यदि उनके लिए पृथक् स्थानका प्रबन्ध कर दिया जाये तो उससे साधारण मुसाफिर काफी हदतक कष्टोंसे बच सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ़ इंडिया : रेलवे, मार्च १९१८, ५५२–टी–१७/१–२४

९५. पत्र : कुमारी एडा वेस्टको

[पटना]
जनवरी ३१, १९१८

प्रिय देवी,

मणिलालका मामला दुःखदायक है। मैंने उसे धीरज बँधाते हुए एक पत्र लिखा है। उसके विवाहकी बात स्वीकार करना मेरे लिए कठिन है। और कुछ वर्ष वह अविवाहित जीवन बिता सके, तो फिर उसे अभ्यास हो जायेगा। मैंने उसे लिखा है कि वह अपनेको बिलकुल स्वतन्त्र माने और मेरी सलाहको एक मित्रकी सलाह ही समझे। अभी तुम सबकी अग्नि-परीक्षा हो रही है। भगवान् करे, तुम सब कोई आँच आये बिना इसमें उत्तीर्ण हो सको।

१. देखिए "भाषण : अखिल भारतीय समाज-सेवा सम्मेलनमें", ३१–१२–१९१७।

यहाँ सत्याग्रहके तीन संघर्ष बिलकुल सिरपर ही आ गये हैं।[1] कहना मुश्किल है कि इनमें से कौन-सा संघर्ष छिड़ जायेगा। किन्तु अभी तो मेरा सारा समय इसीमें जाता है और मुझे हर समय रेल-यात्रा करनी पड़ती है। ये बहुत थकानेवाली होती हैं, पर इनके बिना छुटकारा भी नहीं है।

सस्नेह,

तुम्हारा भाई

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

९६. पत्र : मणिलाल गांधीको

[पटना]
जनवरी ३१, १९१८

[चि० मणिलाल,]

मुझे देवीबहनने लिखा है कि तुमने सैमके समक्ष अपने अविवाहित रहनेपर असन्तोष प्रकट किया था। तुम अपने विचार मेरे सामने रखनेमें कोई अड़चन न समझना। तुम मेरे कैदी नहीं, मित्र हो। मैं तुम्हें अच्छी सलाह दूँगा। उसपर विचार करके तुम्हें जो सूझे, सो रास्ता लेना। मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे डरसे कोई पापकर्म न करो। मेरी कामना है कि तुम्हें मेरा या और किसीका भय न हो।

मेरे विचारके अनुसार तो तुम्हें विवाह नहीं करना चाहिए। इसीमें तुम्हारा श्रेय है। अगर यह स्थिति असह्य हो, तो तुम्हें जब वहाँसे छुट्टी मिल सके, तब यहाँ आकर विचार करना। यह स्पष्ट है कि वहाँ तो कुछ भी नहीं होगा। मैं मानता हूँ कि यदि तुम्हें विवाह करना ही हो, तो कन्या मिल जायेगी। मैं आशा करता हूँ कि तुम विवाहकी खातिर ही अपना वहाँका काम नहीं छोड़ोगे। 'इंडियन ओपिनियन' को व्यवस्थित करके ही तुम विवाहका विचार कर सकोगे। अपनी प्रसन्नता न गँवाना। स्वप्नोंमें मत भटकना। हम हजारों वस्तुओंकी इच्छा करते हैं। वे सभी नहीं मिल सकतीं, यह समझकर पूर्णतः शान्त रहना। जो कुछ करना है, सो शुद्ध और खुले रूपमें करना है, यह निश्चय रखना। फिर तो सब कुशल ही है।

मुहम्मद अलीके मामलेमें मुझे शायद बड़ी लड़ाई छेड़नी पड़े। अभी कोई फैसला नहीं हुआ है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. यहाँ पष्ट ही खेड़ा सत्याग्रह, अहमदाबादमें मिल-मजदूरों सम्बन्धी परिस्थिति और होमरूल आन्दोलनका उल्लेख है।

९७. पत्र : ग० वा० मावलंकरको

[पटना]
जनवरी ३१, १९१८

[भाईश्री मावलंकर,]

मैं आपके धर्मसंकटको भलीभाँति समझ सकता हूँ। जब दमयन्तीको नल-जैसे ही कई अन्य व्यक्ति दिखाई दिये तभी तो उसके सामने भारी संकट उपस्थित हुआ था। ऐसे समय की दृढ़ता ही दृढ़ता मानी जाती है। लेकिन यह आसान नहीं, इसलिए ऐसे समय भूलें हो जायें तो वे बहुधा क्षम्य होती हैं। मुझे एक लाख रुपये इकट्ठे करके *लगान चुकानेमें कुछ सार तो जरूर दिखता है, किन्तु ऐसा प्रयोग सरकारके सुधारके* लिए बिलकुल उपयोगी नहीं है। मुझे ऐसा नहीं लगता कि हम किसानोंकी तरफसे लगान चुकायें तो सरकार इससे तनिक भी दुखी होगी। किन्तु किसानोंके मवेशी बेचना लोहेके चने चबाने जैसा है। सत्याग्रहका उद्देश्य लोगोंको साहसी और स्वतन्त्र बनाना है, हमारी नाक रखना नहीं। डरके मारे या हमारा अविश्वास करके कायर बनकर लोग रुपया दें, तो वे कर देनेके योग्य माने जायेंगे। हमें अपनी साख रखनेके लिए और अधिक प्रयत्न करना चाहिए। यह सत्याग्रहका प्रशस्त मार्ग है। मेरे पास एक लाख रुपये हों, तो मैं घर-घर जाकर लोगोंसे कहूँ कि तुम चाहे अपने ढोर बिक जाने दो, परन्तु ऋण लेकर रुपया मत दो; चाहे बिना ब्याजके ही ऋण क्यों न मिलता हो। मैं नीलाम होनेपर एक लाख रुपयेमें लोगोंके ढोर ले लूं और जो संकटके समय अडिग रहें, उन्हें समय आनेपर वापस सौंप दूं। मैं लोगोंसे यह न कहूँ कि मैं उनके ढोर बचा लूंगा। यह ऐसा समय है कि यदि कार्य सांगोपांग सफल हो, तो सरकारको लगभग माफी माँगनी पड़ेगी।

मेरा यह सब लिखना समय बीतनेपर बुद्धिमानी दिखाने जैसा माना जायेगा, इसलिए उसका मूल्य कम है। आप समयपर जो उचित प्रतीत हो, वही करते रहें। मुझे आपके कार्यकी जाँच दूरसे करनेका अलभ्य लाभ मिलता है और आपको यह अनुभव मिलता है कि इस दुनियामें किसी भी मनुष्यके बिना काम चलाया जा सकता है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

९८. देवदास गांधीको लिखे पत्रका अंश

[बम्बई]
फरवरी २, १९१८

देवा,

जिस दिन तू मेरी गद्दी लेनेके लिए तैयार हो जायेगा, उस दिन तुझे रोकनेकी ताकत किसीमें नहीं होगी। मैं सिर्फ इतना ही चाहता हूँ कि तू मजबूत बन। यह मत समझना कि तुझमें योग्यता नहीं है; काम जैसे-जैसे सामने आयेंगे, वैसे-वैसे मार्ग सूझता जायेगा।

[बापूके आशीर्वाद]

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

९९. पत्र : प्रभुदास गांधीको[1]

[बम्बई]
फरवरी २, १९१८

[चि० प्रभुदास,]

मैं चाहता हूँ कि तुम यह समझ सको कि आश्रममें मैं न होऊँ तो भी वहाँ बहुत कुछ है। यदि मेरा शरीर वहाँ होनेसे ही आश्रममें जीवन दिखाई देता हो, तो यह स्थिति ठीक नहीं है; क्योंकि शरीर तो आखिर नष्ट होगा ही। यदि वहाँ आत्माकी उपस्थिति मालूम होती हो तो [ठीक है क्योंकि] वह वहाँ सदा बनी हुई है। हम जिसपर प्रेम रखते हैं, उसके शरीरके प्रति अपनी आसक्ति ज्यों-ज्यों छोड़ते हैं, त्यों-त्यों उसके प्रति हमारा प्रेम विशुद्ध और विस्तीर्ण होता है। यदि हम सब आश्रममें जैसा वातावरण उत्पन्न करनेका प्रयत्न करते हैं, अपनी भावना भी उसके अनुकूल बना सकें, तो आश्रम कभी सूना न लगे; इतना ही नहीं, उसमें सामाजिक भावना जल्दी पैदा हो।

यह पत्र अनायास तुम्हारी बुद्धिके बाहर लिखा गया है। जो न समझ सको, वह चि० छगनलालसे पूछकर समझ लेना। इसे दूसरोंको भी पढ़ने देना, क्योंकि यह पत्र

१. प्रभुदासने गांधीजीको लिखा था कि देवदास काकाके बिना आश्रम अच्छा नहीं लगता और बापू, आप न हों तो आश्रम सूना और जीवन-हीन लगता है। इसके उत्तरमें ही यह पत्र लिखा गया था।

ऐसा है, जिससे सभीका उपकार हो सकता है। इसे तुम सँभालकर रख लेना और वार-बार पढ़कर इसके एक-एक शब्दको अच्छी तरह समझ लेना।

वापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१००. पत्र: रांचीके एक सज्जनको

[वम्बई]

फरवरी २, १९१८

आश्रममें रहे विना भी जो मनुष्य आश्रमके नियमोंका पालन करे, वह आश्रमवासी है। और जो आश्रममें रहते हुए भी उनका जान-बूझकर उल्लंघन करे, वह आश्रमसे वाहरका है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१०१. श्रीमती जिनराजदासको लिखे पत्रका अंश

[वम्वई]

फरवरी २, १९१८

श्रीमती गांवी लगभग निरक्षर है। वह अंग्रेजीमें तो अपना नाम भी नहीं लिख सकती। क्या आपको अपने रजिस्टरकी शोभाके लिए ही नाम चाहिए?[1]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

१. यह सूचित किये जानेपर कि कस्तूरवाको अखिल भारतीय महिला संघकी सदस्या बना लिया गया है, गांधीजीने यह टिप्पणी की थी। देखिए "श्रीमती जिनराजदासको लिखे पत्रका अंश", १०-२-१९१८से पूर्व।

१०२. भाषण : खेड़ाकी स्थितिपर[1]

बम्बई
फरवरी ४, १९१८

मैं ज्यादा नहीं कहना चाहता। मुझे एक पत्र मिला है, जिसमें मुझसे कहा गया है कि मैं कलके उस शिष्टमण्डलके[2] बीच उपस्थित रहूँ जो परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयसे भेंट करने जा रहा है। मुझे विश्वास है कि मैं वास्तविक तथ्य समझा सकूँगा। फिर भी मुझे यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि गुजरात-सभाने जो विज्ञप्ति[3] जारी की है, उसका उत्तरदायित्व मुझपर है। इस विज्ञप्तिके जारी किये जानेके पूर्व ही मैं अहमदाबाद पहुँच गया था, जहाँ खेड़ा जिलेकी स्थितिपर विचार-विमर्श हो रहा था, और इसी विचार-विमर्शके दौरान यह निर्णय किया गया कि इस मामलेमें गुजरात सभाको भाग लेना चाहिए। मेरा खयाल है कि इस विज्ञप्तिको लेकर तिलका ताड़ बनाया गया है। जब विज्ञप्ति तैयार की जा रही थी, उस समय सभीको मालूम था कि वह क्या है। तब किसीने स्वप्नमें भी यह नहीं सोचा था कि सरकार इसका गलत अर्थ लगायेगी। सभाके पास लोगोंकी दुर्दशाके बारेमें काफी सामग्री थी। उसे मालूम हुआ कि सरकारी अधिकारी लगान एकत्र कर रहे हैं और लोग लगान देनेके लिए अपने मवेशियों तक को बेच रहे हैं। मामला इस नाजुक स्थिति तक पहुँच गया था, और सभाको इसकी जानकारी भी थी; इसलिए उसने, जो लोग इन कठिनाइयोंको झेल रहे थे, उन्हें सान्त्वना देनेके लिए एक विज्ञप्ति जारी करना उचित समझा। यह विज्ञप्ति उसी जानकारीका परिणाम थी, और मुझे पूरी आशा है कि जो शिष्टमण्डल गवर्नरसे भेंट करने जा रहा है उसकी बातचीतका परिणाम लोगोंकी सफलताके रूपमें ही प्रकट होगा।

यदि कमिश्नर हमसे नाराज न होते तथा जो शिष्टमण्डल उनसे भेंट करने गया था, वे उसके साथ नम्रतासे बातें करते और यदि उन्होंने बम्बई सरकारको गलत निर्देश न दिया होता तो ऐसा भयानक संकट उपस्थित न हुआ होता, और हमें आज सायंकाल यहाँपर एकत्र होनेका कष्ट न उठाना पड़ता। सभाने निवेदन किया था कि बातचीत समाप्त होनेतक बकाया वसूलीका काम रोक रखा जाये। किन्तु सरकारने यह उचित मार्ग नहीं अपनाया और एक रोष-भरी प्रेस-सूचना जारी कर दी। मेरा यह दृढ़ विश्वास था — और अब भी है — कि जनता तथा सरकार दोनोंके प्रतिनिधि मिल-जुलकर उपयुक्त कदम उठा सकते थे। किन्तु मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि

१. यह सार्वजनिक सभा मूलजी जेठा मार्केटमें हुई थी। इसमें मुख्यतः दूकानदारों और व्यापारियोंने भाग लिया था। जमनादास ठाकुरदासने सभाकी अध्यक्षता की थी।

२. इसमें गांधीजीके अतिरिक्त विठ्ठलभाई पटेल, दिनशा वाछा तथा गोकुलदास पारेख भी शामिल हुए थे। शिष्टमण्डलकी बातचीतकी कोई रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है।

३. विज्ञप्ति १० जनवरीको खेड़ा जिलेके किसानोंमें प्रचारित की गई थी। इसमें उन्हें लगान न देने की सलाह दी गई थी।

सरकारने गलती की है। शायद सरकारके निचले दर्जेके अफसर उससे कहेंगे कि विज्ञप्ति शुद्ध उद्देश्यसे नहीं, बल्कि किसी प्रच्छन्न उद्देश्यसे जारी की गई थी। यदि सरकार इस गलत विश्वाससे प्रभावित होती है तो मुझे आशा है कि जो लोग किसानोंका साथ देते रहे हैं वे अन्ततक उनका साथ देते रहेंगे और पीछे कदम नहीं हटायेंगे। कोई भी जिम्मेदार तथा ठीक विचार करनेवाला व्यक्ति उन्हें यही सलाह दे सकता था। जनताको भी वैसे ही अधिकार प्राप्त हैं, जैसे अधिकारियोंको और जन-सेवियोंको पूरा अधिकार है कि वे जनताको उसके अधिकारोंके बारेमें सलाह दें। जो लोग अपने अधिकारोंके लिए नहीं लड़ते वे गुलामों-जैसे हैं (तालियाँ), और ऐसे लोग स्वराज्यके योग्य नहीं हैं।[1] जब अधिकारी सोचते हैं कि वे जनतासे कोई भी चीज ले सकते हैं और उसके कामकाजमें हस्तक्षेप कर सकते हैं तो इससे एक कठिन स्थिति उत्पन्न हो जाती है। और यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाये तो मैं स्पष्ट शब्दोंमें कहूँगा कि जिन लोगोंने जनताको उचित सलाह दी है, वे अन्ततक उसका साथ दें।

मैं अभीतक किसी निष्कर्षपर नहीं पहुँचा हूँ। मेरा आन्तरिक विश्वास है कि जो लोग अपना उत्तरदायित्व समझते हैं वे न्याय प्राप्त करनेके लिए कष्ट उठानेमें संकोच नहीं करेंगे। (तालियाँ)। और मैं आशा करता हूँ कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होनेपर आप लोग अपने कदम पीछे हटाकर अपकीर्तिके भाजन नहीं बनेंगे। सत्याग्रहका पहला और अन्तिम सिद्धान्त यह है कि हम दूसरोंको कष्ट न पहुँचायें, बल्कि न्याय प्राप्त करनेके लिए स्वयं कष्ट उठायें। यदि हम ऐसा निश्चय करते हैं तो सरकारको डरनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि शुद्ध न्याय प्राप्त करना ही हमारा संकल्प है, और कुछ नहीं। उस न्यायको प्राप्त करनेके लिए हमें अधिकारियोंके साथ संघर्ष करना ही है और जो इस प्रकार संघर्ष नहीं करते वे गुलामके सिवा और कुछ नहीं हैं। ऐसे अवसरोंपर हम केवल दो हथियार रख सकते हैं — विद्रोह या सत्याग्रह, और मैं तो हमेशा दूसरे उपायसे काम लेनेकी ही प्रार्थना करूँगा। कष्ट सहना, न्यायके लिए लड़ना और अपनी माँगें पूरी कराना प्रत्येक व्यक्तिका जन्म-सिद्ध अधिकार है। इसी प्रकार, हमें कष्ट-सहनके द्वारा ही सरकारसे न्याय प्राप्त करना है। हमें वीर पुरुषोंकी तरह कष्ट सहना चाहिए। मुझे जो कहना है, वह यह कि गुजरातके लोग जिन मुसीबतोंसे होकर गुजर रहे हैं उन्हें दूर करनेके लिए हमें ठीक साधनका सहारा लेना है, और बहुत ही दृढ़ताके साथ। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि हम ब्रिटिश सरकारको सत्यसे अवगत करा दें तो अन्ततः वह यकीन कर सकती है। यदि हम अपने निश्चयपर दृढ़ रहे, तो विश्वास रखिए कि खेड़ाके लोगोंको अब और अधिक अन्याय नहीं सहना पड़ेगा।[2]

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ५-२-१९१८

१. गुजराती दैनिक **प्रजाबन्धु**के १० फरवरीके अंकमें छपी एक रिपोर्टके अनुसार गांधीजीने यह भी कहा था: "हमें सरकारके सामने अपनी माँग रखनी चाहिए, चाहे इसके परिणाम-स्वरूप हमें कष्ट ही क्यों न उठाने पड़ें। भारतमें चार विभिन्न धर्मोंके अनुयायी रहते हैं और हिन्दू, इस्लाम, जरथुस्तवाद तथा इसाइयत — इन चारों धर्मोंके सदस्योंको अनेक बार सत्याग्रह करनेकी आवश्यकता होगी।"

२. इस भाषणकी संक्षिप्त रिपोर्ट **सरदार वल्लभभाई पटेल और खेड़ा सत्याग्रह**में भी उपलब्ध है।

१०३. पत्र : बम्बईके गवर्नरको

बम्बई
फरवरी ५, १९१८

[महानुभाव,]

आशा है, आपकी सरकारके लिए मेरा सुझाव[1] मान लेना सम्भव होगा, और वह एक स्वतन्त्र जाँच-समितिकी नियुक्ति कर देगी। यदि इस प्रकारकी कोई समिति नियुक्त की जाये तो मेरी यह जोरदार सिफारिश है कि उसमें श्री पारेख और श्री पटेलको जरूर शामिल किया जाये। वे दोनों सज्जन इस आन्दोलनमें शुरूसे ही गहरी दिलचस्पी लेते रहे हैं, और उनके द्वारा अनुमोदित किसी भी निर्णयका विरोध कोई नहीं करेगा। समितिके अध्यक्षके रूपमें डॉ० हेरॉल्ड मैनका नाम सबको स्वीकार्य होगा। विकल्पके रूपमें श्री यूबैंकके नामपर भी विचार किया जा सकता है। उनके चुनावका भी लोग उतना ही स्वागत करेंगे। मैं आज साबरमती लौट रहा हूँ। वहाँ दो-तीन दिन ठहरूँगा। मेरी जरूरत पड़े, तो मुझे सूचित कीजियेगा।[2]

[आपका, आदि,]

[अंग्रेजीसे]

सरदार वल्लभभाई पटेल, खण्ड १

१. स्पष्ट ही तात्पर्य उसी दिन सुबह गवर्नरके साथ हुई शिष्टमण्डलकी मुलाकातमें दिये गये सुझावसे है।

२. गवर्नरके सचिवने इसके उत्तरमें गांधीजीको फरवरी ९ को इस प्रकार लिखा:

"न तो ५ तारीखको परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदय और आपके बीच हुई बातचीतसे और न अखबारोंमें प्रकाशित विवरणोंसे गवर्नर महोदयको ऐसा लगता है कि स्थानीय अधिकारियोंने सख्तीसे काम लिया है। इसलिए, उनको यह भरोसा नहीं है कि कोई स्वतन्त्र जाँच-आयोग नियुक्त करनेसे कोई लाभ होगा। आपकी ही तरह वे भी लोगोंके मनसे सन्देह-शंका दूर करनेको उत्सुक हैं; और उन्हें आशा है कि कलक्टर और कमिश्नरने जो कदम उठाये हैं — और जिसका विवरण आपको ५ तारीखको ही दे दिया गया था — उनके परिणाम-स्वरूप आप इस सम्बन्धमें संतुष्ट होंगे, तथा लोगोंके मनसे दुःशंकाएँ दूर करनेके लिए सभी सम्बन्धित व्यक्तियोंकी सहायता करेंगे।"

१०४. पत्र : उत्तरी क्षेत्रके कमिश्नरको

साबरमती
फरवरी ७, १९१८

एफ० जी० प्रैट,
अहमदाबाद

[महोदय,]

कपडवंजके मामलतदारके हस्ताक्षरोंसे जारी किये गये कुछ नोटिस[1] मैंने पढ़े हैं। उनमें से एकमें लिखा है कि यदि ११ जनवरीसे पहले लगान नहीं चुका दिया गया, तो जमीनें जब्त कर ली जायेंगी। जिन आसामियोंपर यह नोटिस जारी किया गया है, उनमें से कुछ मुझसे मिल चुके हैं। मुझे तो वे इज्जतदार आदमी मालूम होते हैं। उनकी आपत्ति सिद्धान्तपर आधारित है। उनमें से कुछकी जमीनें खास पट्टोंपर हैं। मुझे पूरा यकीन है कि सरकारका अन्तिम निर्णय चाहे जो हो, वह ऐसे कदम नहीं उठाना चाहेगी जिनका नतीजा अन्तमें कटुता फैलानेके अलावा और कुछ नहीं निकल सकता। मैंने इसी मामलतदार द्वारा जारी किया गया एक और नोटिस भी देखा है। उसमें बहुत ही प्रतिष्ठित जमींदारोंके लिए "डांडाई" शब्दका प्रयोग किया गया है। इस शब्दका अर्थ "दुरात्मा" के सिवा कुछ नहीं होता। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि नोटिसकी भाषा अशोभनीय है और अनावश्यक रूपसे दुःखद है।[2]

[आपका, आदि,]

[अंग्रेजीसे]
सरदार वल्लभभाई पटेल, खण्ड १

१. फरवरी ६ को गांधीजीके साबरमती आश्रम लौटनेपर उन्हें मामलतदारों और कलक्टर द्वारा जारी कि गये नोटिस और परिपत्रोंकी प्रतिलिपियाँ दिखाई गईं; देखिए "पत्र : उत्तरी क्षेत्रके कमिश्नरको", फरवरी १०, १९१८ के बाद।

२. कमिश्नरने १० फरवरीको इसका निम्नलिखित उत्तर दिया : "लगान अदा न करनेका दण्ड राजस्व विधान (लैंड रेविन्यू कोड) में साफ शब्दोंमें लिखा हुआ है। कानूनके खिलाफ न तो कुछ किया गया है और न कुछ किया ही जायेगा। इसलिए मेरी समझमें नहीं आता कि जो कार्रवाई कानूनकी रूसे की गई है, उसे आप खीझ पैदा करनेवाली और कटुता बढ़ानेवाली क्यों बताते हैं।"

१०५. भाषण : अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें[1]

फरवरी ८, १९१८

आप लोग अपनी तकलीफोंके बारेमें मिल-मालिकोंको एक पत्र लिखिये। दोनों पक्षोंके बीच कटुता पैदा नहीं होनी चाहिए। हम एकदम ५० या ६० फीसदी वृद्धिकी माँग नहीं कर सकते। हम उनसे दृढ़तापूर्वक निवेदन करेंगे; फिर भी यदि वे न मानें तो दोनों पक्षोंसे पाँच-पाँच व्यक्ति लेकर एक समिति बनायेंगे और हम उसका निर्णय स्वीकार करेंगे। इस पंच-समितिका निर्णय दोनों पक्षवालोंको अवश्य स्वीकार करना होगा। वे हमारी मुनासिब माँगोंपर विचार जरूर करेंगे। वे भी हमारी तरह ही भारतीय हैं इसलिए निराश होनेका कोई कारण नहीं है। आप लोग न्यायके मार्गका अनुसरण करें और कटुताके बिना काम निकालें। इससे आपका पक्ष और अधिक मजबूत बनेगा। अनसूयाबेन आप लोगोंके लिए ही पैदा हुई है। (जोरसे तालियाँ)। वेतनमें वृद्धि माँगनेके परिणामस्वरूप जितना धन प्राप्त हो उससे स्वच्छ रहनेकी आदत डालें। व्यसनोंसे दूर रहें और अपने बाल-बच्चोंको शिक्षित करें। अपने हकको निर्भयतापूर्वक अपने मालिकोंके समक्ष रखें। आप लोगोंके इस काममें मैं यथासम्भव सहायता करनेकी इच्छा रखता हूँ।

[गुजरातीसे]

गुजराती, १७–२–१९१८

१०६. श्रीमती जिनराजदासको लिखे पत्रका अंश[2]

[साबरमती
फरवरी १०, १९१८ से पूर्व]

कस्तूरबाईको अंग्रेजीमें हस्ताक्षर करना न आनेके बारेमें लिखे गये वाक्यकी शब्दावली ठीक नहीं। उससे पूरे विचारको अभिव्यक्ति नहीं मिलती। कस्तूरबाई 'शिक्षित'

१. खेड़ाके किसानोंकी समस्याके सिलसिलेमें फरवरी २ को गांधीजी बम्बई गये थे। वहाँ अहमदाबादके मिल-मालिक सेठ अम्बालाल साराभाईसे उनकी मुलाकात हुई। साराभाईने अपने मिलके मजदूरोंमें बोनसके सम्बन्धमें फैले हुए असन्तोषकी चर्चा की और उनसे इस मामलेको हाथमें लेकर बीच-बचाव करनेकी प्रार्थना की। गांधीजी अहमदाबाद गये; और वहाँ पहुँचकर मामलेकी पूरी जानकारी खुद हासिल की। प्लेगका बोनस एकाएक बन्द कर देनेके निर्णयसे मजदूरोंको बड़ी कठिनाईमें पड़ जानेका डर था। उन्होंने इस बोनसकी जगह वेतनका ५० फीसदी मँहगाईके भत्तेके रूपमें माँगा। कदाचित् मजदूरोंकी यह पहली सभा थी जिसमें गांधीजीने भाषण दिया था।

२. गांधीजीके २ फरवरीके पत्रके उत्तरमें श्रीमती जिनराजदासने उन्हें मीठा उलाहना भरा जवाब दिया था; यह उसीका प्रत्युत्तर है।

शब्दके प्रचलित अर्थमें शिक्षित नहीं है। गुजराती लिखना-पढ़ना भी उसे बहुत-थोड़ा आता है। कस्तूरबाई अंग्रेजीमें अपने दस्तखत नहीं कर सकती यह लिखनेका उद्देश्य अंग्रेजी शिक्षाको महत्त्व देनेवाले लोगोंको यह बताना था कि जिस संस्थाकी सभी सदस्याएँ अपनी-अपनी भाषा या अंग्रेजीकी पण्डिता हैं, उस संस्थाकी सदस्या बननेके लिए कस्तूरबाई बिलकुल अयोग्य हैं।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१०७. पत्र : हृदयनाथ कुंजरूको[1]

सत्याग्रहाश्रम
साबरमती
फरवरी १०, १९१८

[2]. . . इस समय मैं एक बड़ी खतरनाक परिस्थितिसे जूझ रहा हूँ और एक उससे भी ज्यादा खतरनाक परिस्थितिमें कूद पड़नेकी तैयारी कर रहा हूँ।[3] . . . अब आप समझ लेंगे कि मैं मेलेमें क्यों नहीं आया।[4] हिन्दू धर्मको उसके आसुरी और दिव्य दोनों स्वरूपोंमें देखनेका वहाँ जो अवसर मिल सकता है, मैं बहुत चाहता था कि उसका उपयोग करूँ। मैं जानता हूँ कि मुझपर आसुरी स्वरूपका कोई असर नहीं हो सकता। किन्तु मैं चाहता था कि उसके दिव्य स्वरूपका मुझपर वही प्रभाव पड़े जो हरद्वारमें पड़ा था।[5] साथ ही वहाँ आपसे मिलना भी हो जाता और भारत-सेवकोंको हर दूसरे महीने बीमार पड़नेकी कुटेव न डालनी चाहिए, इस बारेमें आपको थोड़ा उपदेश देनेका मौका भी मिलता। लेकिन शायद ऐसा बदा नहीं था।

आपका
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. पण्डित हृदयनाथ कुंजरू (जन्म १८८७–), १९३६ से भारत सेवक समाजके अध्यक्ष और राज्यसभाके सदस्य।

२ व ३. मूलमें कुछ अंश छोड़ दिये गये हैं।

४. उनको कुम्भ मेलेके अवसरपर आमंत्रित किया गया था।

५. गांधीजी १९१५ के कुम्भ मेलेके अपने अनुभवका उल्लेख कर रहे हैं। उन्होंने दिनभरमें पाँचसे अधिक खाद्य वस्तुएँ न खाने और रात हो जानेपर भोजन न करनेका व्रत वहीं लिया था। देखिए आत्मकथा, भाग ५, अध्याय ७।

१०८. पत्र : उत्तरी क्षेत्रके कमिश्नरको

साबरमती
[फरवरी १०, १९१८ के बाद]

[महोदय,]

साथमें कलक्टरके हस्ताक्षरसे जारी किये गये नोटिसकी[१] नकल भेज रहा हूँ। नोटिसके जिस अंशकी भाषाको में अशोभनीय और अनावश्यक रूपसे दु:खद मानता हूँ, उसपर निशान लगा दिया है। उस वाक्यसे सभाके मन्त्रियों और सभाकी सलाह माननेवालोंका भी अपमान होता है। मुझे पूरा यकीन है कि गुजराती भाषामें उन शब्दोंका जो अर्थ होता है, वैसा लिखनेका उनका इरादा नहीं रहा होगा। मामलतदारका एक बयान[२] भी साथमें भेज रहा हूँ। आप देखेंगे कि उसकी भाषा भी बहुत आपत्तिजनक है। जब्तीके नोटिसोंके बारेमें मुझे कहना चाहिए कि लगानकी एक छोटी-सी रकम अदा न कर पानेके कारण हजारों रुपयेकी जमीन जब्त कर लेना बहुत ही अनुचित और बड़ी सजा है, और उसे तो प्रतिशोधात्मक ही कहा जा सकता है।[३]

[अंग्रेजीसे]

सरदार वल्लभभाई पटेल, खण्ड १

१०९. पत्र : विनायक नरहर भावेको[४]

[साबरमती
अहमदाबाद
फरवरी १०, १९१८ के बाद]

[चि० विनोबा,]

समझमें नहीं आता, तुम्हारे लिए किस विशेषणका प्रयोग करूँ। तुम्हारा प्रेम और तुम्हारा चरित्र मुझे मुग्ध कर लेता है। तुम्हारी परीक्षा मुझे मोहमें डुबा देती है। मैं

१ व २. ये उपलब्ध नहीं है।

३. इस पत्रकी जो प्रतिक्रिया श्री प्रैटके मनपर हुई उसके विषयमें उन्होंने गांधीजीको १६ फरवरीके अपने पत्रमें लिखा : "विभिन्न बयानोंकी भाषाके बारेमें आपने बहुत कड़े शब्दोंका प्रयोग किया है। मैंने उन सब बयानोंको स्वयं ही ध्यानपूर्वक पढ़ा है, और मुझे विश्वास है कि आपकी शिकायतका कोई उचित आधार नहीं है।"

४. विनोबाने गांधीजीको एक पत्रमें लिखा था कि वे एक वर्षसे आश्रममें क्यों नहीं लौटे। इस पत्रको पढ़कर गांधीजीने कहा : 'गोरखने मछन्दरको हरा दिया। भीम है, भीम।' दूसरे दिन प्रातः उन्होंने विनोबाको यह पत्र लिखाया था।

तुम्हारी परीक्षा करनेमें असमर्थ हूँ। तुम्हारी अपने-आप की हुई परीक्षाको मैं स्वीकार करता हूँ और तुम्हारे प्रति पिताका पद ग्रहण करता हूँ। मालूम पड़ता है, मेरा लोभ तुमने लगभग पूरा कर दिया। मेरी मान्यता है कि सच्चा पिता अपनेसे अधिक चरित्र-वान् पुत्रको जन्म देता है। सच्चा पुत्र वह है, जो पिताकी कृतिमें वृद्धि करे। पिता सत्य-वादी, दृढ़ निश्चयी और दयावान् हो, तो पुत्र अपने भीतर इन गुणोंको और अधिक पैदा करे। मालूम होता है, तुमने ऐसा ही किया है। मुझे यह तो नहीं जान पड़ता कि ऐसा तुमने मेरे प्रयत्नसे किया है। इसलिए तुम मुझे जो पद दे रहे हो, उसे मैं तुम्हारे प्रेमकी भेंटके रूपमें स्वीकार करता हूँ। मैं इस पदका पात्र बननेका प्रयत्न करूँगा और जब मैं हिरण्यकशिपु साबित होऊँ, तब तुम भक्त प्रह्लादकी तरह मेरा सादर निरादर करना।

तुम्हारी यह बात सही है कि तुम बाहर रहकर आश्रमके नियमोंका बहुत अच्छी तरह पालन करते रहे हो। तुम्हारे आनेके विषयमें मुझे कोई शंका ही नहीं थी। तुम्हारे लिखे हुए सन्देश मुझे मामाने पढ़कर सुना दिये थे। ईश्वर तुम्हें दीर्घायु करे और मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा उपयोग भारतकी उन्नतिके लिए हो।

तुम्हारी खुराकमें हेरफेर करने लायक अभी तो कोई बात नजर नहीं आती। फिलहाल दूध नहीं छोड़ना; बल्कि जरूरत मालूम हो, तो उसकी मात्रा बढ़ा देना।

रेलवेके मामलेमें सत्याग्रहकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन इस बारेमें ज्ञानवान् प्रचारकोंकी जरूरत है। सम्भव है, खेड़ा जिलेके मामलेमें लड़ाई लड़नी पड़े। मैं तो अभी रमता राम हूँ। एक-दो दिनमें दिल्ली जाना होगा।

और बातें जब तुम आओगे, तब। सब तुमसे मिलनेको उत्सुक हैं।[1]

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. महादेव भाई लिखते हैं कि जब गांधीजी पत्र लिखा चुके तो बोले: "बहुत जबरदस्त आदमी है। मेरा खयाल रहा है कि मेरा महाराष्ट्रीयों और मद्रासियोंके साथ भारी ऋणानुबन्ध है। मद्रासी तो अब रहे नहीं, किन्तु किसी भी महाराष्ट्रीयने मुझे निराश नहीं किया है। उनमें विनोबा सबसे आगे बढ़ गया है।"

११०. पत्र : भगवानजी मेहताको

आश्रम
पौष बदी [फरवरी ११, १९१८]

भाईश्री भगवानजी,

आपका पत्र मिला। उससे जाहिर होता है कि कभी-कभी सहायता करनेके हेतुसे किये हुए कार्यका परिणाम उलटा होता है। 'गुजराती' में प्रकाशित लेखके बारेमें मुझे ऐसा ही लगा है। काठियावाड़का काम मैं अपने ही ढंगसे कर सकूँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३०२७) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : नारणदास गांधी

१११. पत्र : रलियातबेनको

[साबरमती]
फरवरी ११, १९१८

पूज्य बहन,

तुम्हें पत्र तो नहीं लिखता, किन्तु तुम्हारी मूर्ति मेरी आँखोंसे घड़ी-भर भी दूर नहीं रही। तुम मेरे पास नहीं हो, इसका जो घाव मुझे लगा है, वह कभी भर नहीं सकेगा। उसे तुम्हीं भर सकती हो। तुम मेरे पास रहोगी तो तुम्हारा मुँह देखकर मुझे माँकी कुछ-न-कुछ याद तो आयेगी ही; इसलिए भी तुमने मुझे दूर रख छोड़ा है। मैं तुम्हारे विरुद्ध यह शिकायत तो करता ही रहूँगा। तुम मुझे अभिमानपूर्वक यह कहनेका अवसर देती ही नहीं कि मेरी बहन भी मेरे काममें मेरी मदद कर रही है। मैं पत्र लिखूं, तो उसमें भी अपने मनका दु:ख बताने और जैसे ताने अभी मार रहा हूँ वैसे ताने मारनेके सिवा क्या कर सकता हूँ। मैं इसलिए भी पत्र लिखनेमें ढिलाई करता हूँ। मैं जानता हूँ कि आजकल महँगाई है। किन्तु मैं तुम्हें अधिक रुपया कहाँसे दूं? मुझे मित्रसे लेकर रुपये देने होते हैं। मैं किस मुँहसे रुपया माँगूं। वे भी कहेंगे : "तुम्हारी बहनको तो तुम्हारे साथ ही रहना चाहिए।" इसका जवाब मैं क्या दूं? दुनिया मुझे भ्रष्ट नहीं मानती, परन्तु तुम्हारे लिए तो मैं भ्रष्ट हूँ। ऐसी हालतमें मैं एक ही बात कह सकता हूँ। तुम जो दु:ख भोग रही हो, मैं उससे कम नहीं भोग रहा। इसलिए तुम्हारे दु:ख मुझे असह्य प्रतीत नहीं होते। तुम पिसाई-कुटाई करके पैसेकी कमी पूरी करती हो, इसमें मुझे जरा भी शर्म नहीं लगती। मेरी तो इतनी ही प्रार्थना है कि तुममें कुछ भी दयाभाव हो, तो तुम यहाँ आकर मेरे साथ रहो और मेरे काममें भाग लो। ऐसा करोगी तो अभी

तुम्हें जो ऐसा महसूस होता है कि तुम्हारे कोई भाई नहीं है, वैसा फिर न होगा। तुम्हें यहाँ एकके बजाय बहुत-से भाई दिखाई देंगे और तुम यहाँ बहुत-से बच्चोंकी माँ बनकर रहोगी, यही शुद्ध वैष्णव धर्म है। जबतक तुम्हें यह न जँचे, तबतक हमें वियोगका दुःख सहना ही पड़ेगा।

मोहनदासके प्रणाम

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

११२. पत्र : निर्मलाको

[साबरमती]
फरवरी ११, १९१८

चि० निर्मला[1],

यह पत्र रलियातबेनको पढ़वा देना। तुम्हें तो मैं क्या लिखूं? तुम्हारे लिए मुझे इतने अधिक काम दिखाई देते हैं कि मैं उनसे तुम्हारे समस्त जीवनको सौन्दर्यसे भर दूं और तुम्हारा वैधव्य विस्मृत करा दूं। कुछ स्त्रियाँ मुझे सहायता दे रही हैं। दुर्भाग्यसे तुम्हारी सहायता मुझे नहीं मिल पाती। जैसे मैं रलियातबेनको दोष देता हूँ, वैसे तुम्हें नहीं दे सकूँगा, क्योंकि तुम्हें तो बुजुर्गोंको खुश करना पड़ता है, पिताको और बहनको। किन्तु यदि तुम्हारी इच्छा मेरी सहायता करनेकी हो, तो तुम उनसे अपने लिए अनुमति ले सकती हो। इतना ही नहीं, बल्कि तुम रलियातबेनको भी यहाँ ला सकती हो; क्योंकि तुम्हारे बिना तो वह जियेगी ही नहीं। मैं यह मानता हूँ कि किसी-न-किसी दिन तो तुम मेरे पास जरूर आओगी। तुम इतना तो समझती होगी कि अगर गोकुलदास जीवित होता तो वह मुझसे एक क्षण भी दूर नहीं रह सकता था। मेरे साथ रहकर तुम गोकुलदासकी आत्माको भी शान्ति दे सकती हो।

बा बिहारमें है। वह अक्सर तुम्हारी याद करती है। मुझे अभी कुछ समय तक इधर ही रहना पड़ेगा।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. गांधीजीके भानजे गोकुलदासकी विधवा पत्नी।

११३. पत्र : एक सहयोगीको

[साबरमती]
माघ सुदी २ [फरवरी १२, १९१८]

भाई श्री

आपका पत्र मिला। आपके ऊपर शब्द-प्रहार करना बेकार मालूम होता है। कई बार मनुष्य अपने दोषोंका वर्णन उन्हें अपना गुण मानकर करता है। ऐसी ही दशा आपकी है। कहा जा सकता है कि चूँकि आपमें साधारण मनुष्योंसे कुछ अलग बात है, इसलिए आप सार्वजनिक जीवनमें भाग लेते हैं। परन्तु अपने कार्योंमें आप साधारण मनुष्योंसे कुछ अधिक कमजोरी दिखा रहे हैं। आपने अपनी पहली पत्नीकी मृत्युसे गहरी चोट लगनेका दावा किया। आपने बताया कि उसके अन्तिम वचनोंका आपके हृदयपर गहरा असर हुआ। किन्तु आप उस चोटको भूल गये और उन अन्तिम वचनोंका असर उड़ गया। तीव्र वेदनासे रोता हुआ मनुष्य एकाएक हँसने लगे, तो वह अभिनयकर्त्ता माना जायेगा या यों कहा जायगा कि वह पागल होकर हँसने लगा है। आप कल रो रहे थे, और आज हँसने लगे। आपके लिए कौन-सा विशेषण प्रयुक्त किया जाये? जिस मनुष्यकी इच्छाएँ उसके वशमें न रहें और जो जरा भी संयम न रख सके, वह क्या सार्वजनिक सेवा करनेके योग्य माना जायेगा? आपसे घटिया लोग सार्वजनिक प्रवृत्तियोंमें संलग्न देखे जाते हैं; उनसे तो मैं ठीक हूँ। इस तरहका जवाब देकर आप जितने गिरे हैं, अब उससे और अधिक न गिरें।

आपने जो कदम उठाया है, वह कदम हिन्दू-गार्हस्थ्य जीवनके सुधारमें बड़े महत्त्वका विषय है। विधवाओंके विवाहसे ज्यादा जरूरी यह है कि विधुर थोड़ी-सी तो मर्यादा रखें। आपने तो मूल सिद्धान्तोंको भी भंग किया है। यदि गुजरात सेवा-मंडल बने और मुझे[1] उसके साथ निकटका सम्बन्ध रखना पड़े, तो उसमें आपको लिया जाये या नहीं, यह तय करना मेरे लिए बड़े धर्म-संकटकी बात होगी। तब मैं आपका न्याय नहीं करूँगा; आपका न्याय तो भगवान् ही करेंगे। किन्तु अपने जीवनके साथियोंको चुननेका अधिकार मैं नहीं छोड़ूंगा।

आपकी पहली पत्नीके मरनेसे आपको कितनी चोट पहुँची, इसका अन्दाज आपने दुनियाको बता दिया। आपके कार्यसे मुझपर तो वज्रपात हुआ है। ईश्वर आपकी रक्षा करे और आपको सद्बुद्धि दे।

मोहनदास गांधी

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. मूलमें यहाँ 'आपको' है जो भूल है।

११४. पत्र : ए० एच० वेस्टको

[साबरमती]
फरवरी १३, १९१८

प्रिय वेस्ट,

मैं आशा करता हूँ कि मेरे सब पत्र तुम्हें मिल गये होंगे।[1] मुझे तुम्हारे दो पत्रोंकी पहुँचकी सूचना देनी बाकी है। सचमुच मुझे नहीं सूझता कि क्या लिखूँ। रिच और डीवियरके पत्र मैंने पढ़े हैं। अपने दृष्टिकोणके अनुसार वे सही हैं। मेरी रायसे तो अच्छे किसान बनकर तुम अपने आदर्शकी अधिक अच्छी सेवा कर सकोगे। मणिलालकी जोहानिसबर्गसे दी हुई सलाह मुझे पसन्द नहीं आई। उसे फीनिक्समें रहकर गुजराती विभाग[2] सँभालना चाहिए। किन्तु जैसा मैंने कहा है, अन्तिम निर्णय तुम्हारा होगा। तुम्हें जो अच्छा लगे, वही तुम्हें करना चाहिए। अपनी तरफसे तो मैं कहता हूँ कि सम्पत्ति जितनी मेरी है, उतनी ही तुम्हारी भी है। यही बात हमारे आदर्शकी है। फीनिक्सके सम्बन्धमें इतना कहकर यहाँके अपने कामके बारेमें कहूँगा। मैं पत्र कम लिखता हूँ — इससे यही जाहिर होता है कि यहाँ मैं कितना व्यस्त हूँ। मैं इतना काम करता हूँ कि सबको आश्चर्य होता है। किन्तु कोई भी काम मैं ढूँढ़ने नहीं गया। काम जैसे-जैसे आता गया, वैसे-वैसे मैंने हाथमें ले लिया। बिहार धारा-सभामें कानून बनानेका जो काम हो रहा है, उसपर निगाह रखनेके अतिरिक्त, मैंने वहाँ कुछ पाठशालाएँ भी खोली हैं और उनको चला रहा हूँ। उनकी व्यवस्था देखनी पड़ती है। शिक्षक आम तौरपर विवाहित हैं। पति और पत्नी दोनों काम करते हैं। हम गाँवके बच्चोंको पढ़ाते हैं; पुरुषोंको स्वास्थ्य और सफाई सिखाते हैं। देहातकी स्त्रियोंसे भी मिलते हैं और उन्हें पर्दा छोड़ देने और अपनी लड़कियोंको हमारी पाठशालामें भेजनेकी बात समझाते हैं। हम दवा मुफ्त देते हैं। रोजमर्राकी इन परिचित बीमारियोंका हम साधारण इलाज करते हैं। इसलिए यह काम तालीम न पाये हुए स्त्री-पुरुषोंको, अगर वे दूसरी तरहसे विश्वासपात्र हों, सौंपनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं दीखती। उदाहरणके लिए, श्रीमती गांधी एक पाठशालामें काम करती है और बड़े मजेसे दवाइयाँ भी देती है। अबतक हम शायद मलेरियाके तीन हजार रोगियोंको राहत पहुँचा चुके हैं। हम देहातके कुएँ और रास्ते साफ करते हैं और इसमें ग्रामवासियोंका सक्रिय सहयोग लेते हैं। अबतक हमने तीन पाठशालाएँ खोली हैं। उनमें लड़के और बारह वर्षसे नीचेकी लड़कियाँ मिलाकर २५० से ऊपर विद्यार्थी हैं। सारे शिक्षक स्वयंसेवक हैं।

१ देखिए खण्ड १३।

२. *इंडियन ओपिनियन*का

गुजरातमें भी काम हो रहा है। गोधरा और भड़ौंचके भाषणोंमें[1] मैंने जो कार्यक्रम बताया था उसके अनुसार ही यह काम चल रहा है। अभी तो सत्याग्रहका एक प्रसंग नजदीक दिखाई देता है। उससे निपट लेनेका प्रयत्न मैं कर रहा हूँ। गुजरातका काम विविध प्रकारका है। साथ ही अलीभाइयोंके छुटकारेके लिए आन्दोलन शुरू करनेका भी विचार कर रहा हूँ। इसके सिवा गोसेवा, सफाई, शिक्षाकी राष्ट्रीय पद्धति, हाथकी बुनाई और हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दीका प्रचार आदिका कार्यक्रम चला रहा हूँ। आश्रम और वहाँकी राष्ट्रीय पाठशाला तो चल ही रही है।

सौभाग्यसे इन सब कामोंमें मुझे अच्छे साथी मिल गये हैं; और इन्हींके सिलसिलेमें काफी घूमना पड़ता है।

आश्रम साबरमती नदीके किनारे सुन्दर स्थानपर स्थित है। हम रोज नदीमें नहाते हैं। सब लड़कोंको तैरना आ गया है। पाठशालाको सुयोग्य आचार्य[2] मिल गये हैं। वे गुजरात कॉलेजमें प्रोफेसर थे। आश्रमकी व्यवस्था मगनलालके हाथमें है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस आश्रम या पाठशालाका भविष्य कैसा सिद्ध होगा। अभी तो ये दोनों संस्थाएँ लोकप्रिय बनी हुई हैं।

इन सब कामोंमें अकसर वहाँके साथियोंका सहयोग पानेकी कामना होती है। किन्तु मैं जानता हूँ कि यह सम्भव नहीं। फिर भी इतना तो निश्चय समझना कि एक क्षण भी ऐसा नहीं जाता, जब तुममें से किसी-न-किसीका विचार मेरे मनमें न आता हो। तुम्हारे बहादुरीके कई कामोंका उल्लेख मैं यहाँ उचित दृष्टान्तोंके रूपमें करता रहता हूँ। मैं वहाँके अनुभवके आधारपर यहाँका अपना काम आगे बढ़ा रहा हूँ।

श्रीमती वेस्टसे कहना कि वे पल-भरके लिए भी यह न सोचें कि उन्हें या दादी माँको मैं भूल गया हूँ। मैं अपने दिये हुए वचन भी नहीं भूला हूँ। नये सम्बन्धों और नये परिचयोंके कारण मैं पुरानोंको भूलनेवाला नहीं हूँ।

यह पत्र प्रकाशनके लिए नहीं है। अपने कामके बारेमें मैं सार्वजनिक रूपसे कुछ नहीं कहना चाहता।

सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४२६) के एक अंशकी फोटो-नकलसे भी।

सौजन्य : ए० एच० वेस्ट

१. देखिए "भाषण : द्वितीय गुजरात शिक्षा-सम्मेलनमें," २०-१०-१९१७ और "भाषण : प्रथम गुजरात राजनीतिक परिषद्में", ३-११-१९१७।

२. सांकलचन्द शाह।

११५. पत्र : पार्वतीको

[मोतीहारी]
फरवरी १३, १९१८

चि० पार्वती[1],

तुम्हें यह पत्र मैंने गुजरातीमें लिखना शुरू किया था, क्योंकि लड़कों और लड़कियोंको मैं शायद ही कभी अंग्रेजीमें लिखता हूँ। किन्तु मैं जानता हूँ कि मुझे तुम्हें अंग्रेजीमें पत्र लिखना चाहिए। तुम कहोगी कि मैंने तुम्हें गुजराती और हिन्दी पढ़ानेकी व्यवस्था की होती, तो तुम मेरे गुजराती और हिन्दी पत्र समझ लेतीं। तुम्हें यह कहनेका हक है। मैं भी इतना कहूँगा कि यदि तुम मेरे साथ हिन्दुस्तान आई होतीं और मेरे साथ रही होतीं, तो तुम मेरी सच्ची लड़की बनतीं और हिन्दी तथा गुजराती सीखतीं।

सैमसे कहना कि मैं यह आशा रखता हूँ कि वह फीनिक्सकी खेतीको सफल बनाये। वहाँके अपने कामके बारेमें लिखना। राधा[2] और रुखी[3] तो बहुत बड़ी हो गई हैं। रुखी राधाके बराबर दीखती है। दोनोंने हिन्दीकी पढ़ाईमें अच्छी प्रगति की है।

तुम सबको प्यार।

तुम्हारा,
गांधी[4]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

११६. उत्तरी क्षेत्रके कमिश्नरको लिखे पत्रका अंश

[साबरमती
फरवरी १५, १९१८]

[महोदय,]

मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि सेंत-मेत एक आन्दोलन खड़ा कर देने या किसी निरर्थक आन्दोलनको प्रोत्साहन देनेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं सत्यकी खोजमें, असलियत क्या है इसे जाननेके लिए, खेड़ा जिलेमें जा रहा हूँ। जान पड़ता है, जबतक आपके स्थानीय अफसरोंकी रिपोर्ट गलत साबित नहीं हो जाती, तबतक आप

१. दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी गोविन्दस्वामीकी कन्या।

२ और ३. मगनलाल गांधीकी पुत्रियाँ।

४. मूल पत्रमें हस्ताक्षर तमिलमें किये गये हैं।

हमारे प्रार्थनापत्रोंपर जरा भी ध्यान न देंगे। इसलिए, यद्यपि जिलेके प्रतिष्ठित नेताओंने मुझे पूरा विश्वास दिलाया है, फिर भी स्वयं तथ्योंकी छान-बीन कर लेना मैं अपना फर्ज समझता हूँ। मेरी जाँचका परिणाम मालूम होने तक यदि आप लगानकी वसूली स्थगित कर सकें, तो लोगोंमें फैले हुए असन्तोषको कम करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। यदि आप कलक्टरको यह निर्देश भेजनेकी कृपा करें कि एक लोकसेवकके नाते मुझे वे यथासम्भव पूरी सहायता करें तो मुझे प्रसन्नता होगी। मेरी जाँचके दरम्यान अगर आप अपने किसी प्रतिनिधिको मेरे साथ भेजना चाहें तो मुझे कोई एतराज न होगा।[1]

[अंग्रेजीसे]

सरदार वल्लभभाई पटेल, खण्ड १

११७. पत्र : बड़ौदाके एक सज्जनको[2]

[साबरमती]
फरवरी १५, १९१८

भाईश्री

आपका पत्र मेरे लिए अत्यन्त दुःखद सिद्ध हुआ है। जो कुछ आपने लिखा है, वह सब जब आपने प्रतिज्ञाकी तब आपके ध्यानसे बाहर नहीं था। आपका सारा परिवार भूखों मरता तो भी आपका कर्त्तव्य अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना था। ऐसे ही मनुष्योंसे जातिका निर्माण होता है। दूसरोंकी तो मनुष्योंमें गिनती ही नहीं की जा सकती। किसीने आपपर जोर नहीं डाला था कि आप प्रतिज्ञा करें ही। विचारके लिए आपके पास पर्याप्त समय था। हमारी उन्नति तीव्र गतिसे नहीं होती, इसका कारण केवल हमारी जबरदस्त कमजोरी ही है। इस पत्रका उद्देश्य यह नहीं है कि आप अब प्रतिज्ञाका पालन करें। यदि आप आयेंगे, तो भी अब आपको स्वीकार नहीं किया जायेगा। अब आप कुटुम्ब-पालनके काममें लगें। जो पाप हो गया, उसका विचार करें और नम्र बनकर शान्त जीवन बितायें। आप फिर कभी पूर्व निश्चयके बिना प्रतिज्ञा न करें, यही आपका प्रायश्चित्त है।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. कमिश्नरने उसी दिन लिख भेजा : "आपकी जाँच समाप्त होने तक लगानकी वसूली स्थगित रखनेका मुझे तो कोई कारण दिखाई नहीं देता। मुझे विश्वास है कि यदि आप कहेंगे तो कलक्टर, श्री घोषाल निश्चय ही आपको सारी आवश्यक जानकारी और सहायता देंगे।"

२. उक्त सज्जनने आश्रमवासी होनेकी प्रतिज्ञा ली थी, बादमें लाचारी बताते हुए पत्र लिखा।

११८. पत्र : डाह्यालालको

[साबरमती]
फरवरी १५, १९१८

भाईश्री डाह्यालाल,

आपका कार्ड मिला। भाई अमृतलालकी मृत्युका समाचार पढ़कर मनमें बहुत विचार आते हैं। अभी-अभी भाई नवलरामने खबर दी है कि आपके साथियोंमें से कुछ और भी प्लेगके बीमारोंकी सेवा करते-करते चल बसे। अगर सब इस तरह सेवा करते-करते गये हों तो मुझे इसमें खेदका कोई कारण नहीं दिखाई देता, बल्कि यह तो हर्षका कारण है। हम सबके लिए ऐसी मृत्यु वांछनीय है। 'संग्राममें प्राप्त मृत्युसे अधिक इष्ट मृत्यु नहीं हो सकती', यह उक्ति इस सम्बन्धमें लागू होती है। शरीर तो जब जीर्ण हो जायेगा, तब नष्ट होगा ही। हम यह चाहते भी हैं कि वह नष्ट हो जाये। इसलिए हम मान लें कि भाई अमृतलाल, मोतीलाल और उनके साथियोंकी आत्माएँ नये और अधिक समर्थ शरीर धारण करके समय आनेपर भारतकी सेवा करेंगी।

भाई अमृतलालके परिवारको मेरी ओरसे सान्त्वना दें।

भाई मोतीलालकी पत्नीको, जहाँतक हो सके, जल्दी यहाँ भिजवानेका प्रयत्न करें। यह भी एक सेवा होगी।

मो० गांधीके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

११९. पत्र : आनन्दीबाईको

[साबरमती]
फरवरी १६, १९१८

आपकी भाभी चल बसीं, यह सुनकर बहुत दुःख हुआ। किन्तु आपको आत्माका ज्ञान है, यह मुझे मालूम है। इसलिए मुझे विश्वास है कि यह बात आसानीसे समझ जायेंगे कि असलमें जन्म और मरण ये दोनों स्थितियाँ एक ही जैसी हैं। फिर भी मृत्युके समय दुःखी होना मनुष्यका स्वभाव बन गया है। मैं आपके इस दुःखमें शरीक होना चाहता हूँ, इसलिए प्रार्थना करता हूँ कि आपको जितनी शान्ति मिल सकती हो मिले। आप जैसे लोगोंके लिए, जिन्होंने सेवा करनेका निश्चय और संकल्प किया

हो, उचित रूपमें शोक मनानेका एक ही मार्ग है, और वह यह है कि वे और भी अधिक सेवापरायण बनें।

आपका,
मोहनदास गांधी

[मराठीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१२०. पत्र : देवदास गांधीको

[साबरमती]
फरवरी १६, १९१८

चि० देवदास,

यहाँ एक दिनके लिए आया था; उसके बजाय महीनाभर होता आता है। आज दिल्ली जानेका विचार था, लेकिन अब खेड़ाके कामसे नडियाद जाना पड़ेगा। अगर यहाँसे चला जाऊँ, तो हजारों लोगोंका बड़ा नुकसान हो जाये। लोग दब जायें और बिलकुल हताश हो जायें। ऐसी स्थितिके कारण अभी तो रुक गया हूँ। उम्मीद तो है कि मैं यहाँसे दस दिनमें छूट सकूँगा। तुम्हारी याद हमेशा आती है। मैं जानता हूँ कि तुममें लगन है और तुम सब बातोंमें रस ले सकते हो। तुम यहाँ होते, तो सत्य-की महिमा और प्रभाव क्षण-क्षणमें देखते। तुम्हारे लिए मेरे पास यही विरासत है। मैं मानता हूँ कि वह अटूट है। जो पहचान ले, उसके लिए यह अमूल्य है। वह दूसरी कोई विरासत न माँगेगा और न चाहेगा। मैं यह समझता हूँ कि तुम इस विरासतको पहचान सके हो और इसके प्रेमी हो। आज मुझे सपना आया कि तुमने मुझे धोखा दिया है। तुमने पेटीमें से नोट चुराकर उन्हें भुना लिया और मौज-शौकमें खर्च कर दिया। मुझे पता लगा तो मैं घबराया और बहुत व्याकुल हुआ। इतनेमें नींद खुल गयी और मैंने देखा कि यह तो सपना है। मैंने ईश्वरका उपकार माना। मेरा सपना तुम्हारे प्रति मेरी आसक्तिका सूचक है। तुम तो यह आसक्ति चाहते हो। तुम्हें इसका कोई विशेष भय नहीं मानना चाहिए कि यह आसक्ति इस जन्ममें बिलकुल चली जायेगी। मैं सबके प्रति समभाव रखनेका भारी प्रयत्न कर रहा हूँ, किन्तु तुमसे अन्योंकी अपेक्षा अधिक प्राप्त करनेकी आशा तो रहती ही है।

चि० छोटालाल और चि० सुरेन्द्रको अलग पत्र नहीं लिख रहा हूँ। तुम इसे उन्हें पढ़वाना चाहो, तो पढ़वा सकते हो या तुम उन्हें इसमें के समाचार दे देना। यह पिता-पुत्रके पवित्र सम्बन्धको ध्यानमें रखकर लिखा गया है; इसलिए यह तुम्हारे लिए ही संग्रहणीय है। तुम इस कारण इसे उन्हें न पढ़वाओ, तो भी कोई हर्ज नहीं।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१२१. गोखले और उनका महामंत्र

[फरवरी १९, १९१८ के पूर्व]

गोखलेकी पुण्यतिथिके अवसरपर उस स्वर्गीय महात्माके भाषणोंका अनुवाद प्रकाशित करनेकी बात पहले-पहल मुझे ही सूझी थी इसलिए एक तरहसे यह ठीक ही है कि इस पहले खण्डकी प्रस्तावना मैं ही लिखूँ। हमने माना है कि गोखलेकी पुण्यतिथि हम हर साल मनाते रहेंगे। [मामूली रिवाजके अनुसार] हर बार भजन-कीर्तन करके और भाषण देकर सभा विसर्जित कर देनेसे अकसर समयका व्यय-मात्र होता है; उससे किसीका कोई लाभ नहीं होता। भाषणोंकी अपेक्षा कार्यका महत्त्व बढ़े और ऐसे आयोजनोंसे लोग प्रतिवर्ष कुछ ठोस लाभ उठा सकें, इस विचारसे गत वर्ष पुण्यतिथिके प्रबन्ध-कर्त्ताओंने इस अवसरपर मातृभाषामें कोई उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करनेका निश्चय किया। उसके साथ ही उन्होंने पुस्तकका चुनाव भी कर डाला; जैसा कि स्वाभाविक है उन्होंने इसके लिए स्वर्गीय महात्माके भाषणोंका संग्रह प्रकाशित करना तय किया।

हरएक यह चाहता था कि अनुवाद ऐसा आदर्श होना चाहिए कि गुजराती साहित्यमें उसका एक विशिष्ट स्थान हो और इस महापुरुषके पवित्र वचन मूलमें जैसे भव्य हैं हमारी भाषामें भी उनकी वह भव्यता सुरक्षित रहे, फिर चाहे इसके लिए कितना ही प्रयत्न क्यों न करना पड़े। यह काम ऐसा नहीं था कि पैसा देकर कराया जा सके; इसे तो कोई स्वयंसेवक ही कर सकता था। ऐसे स्वयंसेवक तो हमें मिल गये किन्तु यह तो भविष्य ही बतायेगा कि वह जैसा हम चाहते थे वैसा हुआ है या नहीं। यह प्रस्तावना जिस भागकी है उसके अनुवादक रा० रा० महादेव हरिभाई देसाई हैं। यहाँ उनका विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना ही कहना बस है कि वे गुजराती साहित्यके प्रेमी हैं, विषय उनके लिए अज्ञात नहीं था और स्वर्गीय महात्माके हजारों पुजारियोंमें वे भी एक हैं। अपना कार्य उन्होंने अत्यन्त उत्साह और प्रेमभावसे किया है इसलिए यह आशा की जा सकती है कि यह अनुवाद गुजराती साहित्यमें स्थान प्राप्त करेगा।

गत वर्षकी पुण्यतिथिके अवसरपर ज्यों ही बम्बईकी होमरूल लीगको यह खबर मिली कि पुस्तक प्रकाशित करनेका प्रस्ताव किया जानेवाला है त्यों ही उसके मन्त्रियोंने [इस कार्यके लिए] उदार सहायता देनेका तार किया और बादमें इसके लिए तीन हजार रुपयेकी बड़ी रकम भी मंजूर की। अतः व्यवस्थापक-मण्डलको द्रव्य इकट्ठा करनेकी कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ी और इस महँगाईके कालमें भी पुस्तककी छपाई, कागज, आवरण इत्यादिमें सुन्दरताका निर्वाह करनेकी उसकी इच्छा आसानीसे पूरी हो गई। इस उदारताके लिए होमरूल लीग हमारे धन्यवादकी पात्र है।

ऊपर जो-कुछ कहा गया है वह तो प्रस्तावनाकी प्रस्तावना हुई। असली प्रस्तावनाके रूपमें तो हमें इस स्वर्गीय महापुरुषके विषयमें कुछ लिखना चाहिए, किन्तु

शिष्य गुरुके विषयमें क्या लिखे ? कैसे लिखे ? शिष्यका गुरुके विषयमें कुछ लिखना एक तरहकी उद्धतता ही होगी। सच्चा शिष्य तो गुरुमें समा जाता है। इसलिए वह टीकाकार तो हो ही नहीं सकता। जो दोष देखती है, वह भक्ति ही नहीं है, और जो गुण-दोषका पृथक्करण नहीं कर सकता, ऐसे लेखककी स्तुतिको अगर लोग स्वीकार न करें, तो शिकायत नहीं की जा सकती। गुरुके बारेमें शिष्यकी टीका तो शिष्यका आचरण ही है। गोखले मेरे राजनीतिक गुरु थे, ऐसा मैंने कई बार कहा है। इसलिए उनके विषयमें कुछ लिखनेके लिए मैं अपनेको असमर्थ मानता हूँ। जो लिखूंगा वह मुझे न्यून ही लगेगा। मुझे लगता है कि गुरु-शिष्यका सम्बन्ध शुद्ध आध्यात्मिक सम्बन्ध है। उसका निर्माण गणित-शास्त्रकी पद्धतिपर नहीं होता। मानो अनायास हुआ हो, इस तरह क्षणमात्रमें यह सम्बन्ध बँधता है और एक बार बँधनेपर फिर कभी टूट नहीं सकता।

सन् १८९६ में हमारे बीच यह सम्बन्ध बँधा।[1] उस समय तो मुझे इस सम्बन्धका कुछ भी भान नहीं था। उनको भी नहीं था। इसी समय मुझे गुरुके गुरु[2], लोकमान्य तिलक, सर फीरोजशाह मेहता[3], न्यायमूर्ति बदरुद्दीन तैयबजी[4], डा० भाण्डारकर[5], और इसी तरह बंगाल तथा मद्रासके नेताओंको नमस्कार करनेका शुभ अवसर प्राप्त हुआ था। मैं उस समय बिलकुल नवयुवक था। सभीने मेरे ऊपर प्रेमकी वर्षा की थी। वे ऐसे सुखद प्रसंग थे जिन्हें मैं जीवनभर भूल नहीं सकता। लेकिन जो शीतलता मुझे गोखलेके सम्पर्कमें मिली, वह मैं दूसरोंके पास नहीं प्राप्त कर सका। गोखलेने मेरे ऊपर अधिक प्रेम उँडेला हो, ऐसा मुझे बिलकुल स्मरण नहीं है। किसने कितना प्रेम किया, यही बताना हो तो मुझे ऐसा स्मरण है कि डॉ० भाण्डारकरने मेरे प्रति जैसा अपूर्व प्रेमभाव प्रदर्शित किया वैसा किसी और ने नहीं किया। उन्होंने मुझसे कहा, "मैं आजकल सार्वजनिक प्रवृत्तियोंमें भाग नहीं लेता, लेकिन मैं तुम्हारी खातिर तुम्हारे प्रश्नसे सम्बन्धित सभामें[6] सभापतित्व करना स्वीकार करूँगा।" तो भी मुझे केवल गोखले ही प्रेमबन्धनमें बाँध सके। हमारे इस सम्बन्धने तुरन्त ही कोई आकार नहीं ग्रहण किया। सन् १९०२ में[7] जब मैं कलकत्तेकी कांग्रेसमें उपस्थित था, अपनी शिष्य-दशाका सम्पूर्ण ज्ञान मुझे उस समय हुआ। लगभग सभी वरिष्ठ नेताओंके दर्शनका लाभ मुझे इस बार फिर मिला। मैंने देखा कि गोखले मुझे भूले नहीं थे। इतना ही नहीं, उन्होंने मुझे आश्रय भी दिया। स्थूल परिणाम इसके अनुसार ही आये। मुझे वे अपने घर खींच ले गये। विषय-निर्धारिणी सभामें मुझे लगा कि मैं यहाँ व्यर्थ ही आया। प्रस्तावोंकी चर्चा चल रही थी, उस

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ९७।

२. न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे (१८४२–१९०१); एक यशस्वी न्यायाधीश, समाज-सुधारक और ग्रंथकार। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके एक संस्थापक। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२०

३. (१८४५–१९१५); भारतीय कांग्रेसके एक प्रमुख नेता। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९५

४. (१८४४–१९०६); न्यायाधीश, विधानसभाके सदस्य; १८८७ में मद्रास कांग्रेस-अधिवेशनके अध्यक्ष।

५. डॉ० रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर (१८३७–१९२५); प्राच्य विद्याविशारद और समाज-सुधारक।

६. देखिए "पूनामें भाषण", खण्ड २, पृष्ठ १४७–४८।

७. 'सन् १९०१ में' होना चाहिए।

समय अन्ततक मेरी यह कहनेकी हिम्मत न हुई कि दक्षिण आफ्रिकाके विषयमें एक प्रस्ताव मेरी जेबमें ही पड़ा हुआ है। रात तो मेरे लिए रुकनेवाली नहीं थी। नेता काम समाप्त कर डालनेके लिए अधीर हो रहे थे। ये लोग अभी उठ जायेंगे, इस डरसे मेरा जी काँप रहा था। गोखलेको भी याद दिलानेकी मेरी हिम्मत नहीं होती थी। इतनेमें वे बोल उठे, "गांधीके पास दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके विषयमें एक प्रस्ताव है, उसपर हमें विचार करना पड़ेगा"। मेरे आनन्दका पार नहीं रहा। कांग्रेस-का यह मेरा पहला अनुभव था, इसलिए कांग्रेसमें पास होनेवाले प्रस्तावोंकी कीमत मेरी नजरमें बहुत थी। इसके बादके भी अनेक स्मरणीय प्रसंग हैं और वे सब पवित्र हैं। परन्तु अभी तो जिसे मैंने उनका महामंत्र माना है, उसका वर्णन करके ही प्रस्तावना पूरी करना उचित मालूम होता है।

इस कठिन कलिकालमें शुद्ध धर्मवृत्ति विरली ही जगह देखनेमें आती है। ऋषियों, मुनियों, साधुओं आदिके नामसे जो लोग आज हमें भ्रमण करते हुए दिखाई देते हैं, उनमें यह वृत्ति शायद ही कभी दिखाई पड़ती हो। यह तो सभी देख सकते हैं कि धर्मके कोषकी चाबी उनके पास नहीं है। धर्म क्या है, इसे भक्त शिरोमणि कवि नरसिंह मेहताने एक ही सुन्दर वाक्यमें बहुत अच्छी तरह प्रकट किया है। वे कहते हैं:

'ज्यां लगी आतमा-तत्त्व चीन्यो नहीं,
त्यां लगी साधना सर्व जूठी।'[२]

यह अपने अनुभव-सागरमें से निकला हुआ उनका वचन है। इससे हमारी समझमें आ जाता है कि महातपस्वी या योगकी सारी क्रियाएँ जाननेवाले महायोगीमें भी हमेशा धर्मका वास नहीं होता। गोखलेने इस आत्म-तत्त्वको भली-भाँति पहचान लिया था, इस विषयमें मुझे जरा भी शंका नहीं है। उन्होंने धर्मका दिखावा कभी नहीं किया, पर उनका जीवन धर्ममय था। प्रत्येक युगमें मोक्षकी ओर ले जानेवाली कुछ प्रधान प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। जब-जब धर्मकी शिथिलता दिखाई देती है, तब-तब ऐसी ही किसी प्रधान प्रवृत्तिके जरिए धर्म-जागृति होती है। ऐसी प्रवृत्ति हमेशा तत्कालीन वातावरणके अनुरूप हुआ करती है। इस समय हम अपनी राजनीतिक स्थितिमें अपनी अवनत दशाका अनुभव करते हैं। अपूर्ण विचारके कारण हम ऐसा मान लेते हैं कि राजनीतिक स्थिति सुधरते ही हमारी उन्नति होगी। लेकिन यह धारणा अंशतः ही सही है। यह ठीक है कि जबतक राजनीतिक स्थिति नहीं सुधरती तबतक हमारी उन्नति नहीं हो सकती। लेकिन राजनीतिक स्थितिमें चाहे जिस तरहके साधनोंसे परिवर्तन हो, उन्नति ही होगी, ऐसी बात नहीं है। इस परिवर्तनको लानेवाले साधन यदि दूषित हों, तो परिवर्तनसे उन्नतिके बजाय अव-नति होनेकी ही अधिक सम्भावना है। राजनीतिक स्थितिमें शुद्ध साधनों द्वारा लाया हुआ परिवर्तन ही हमें उच्च मार्गकी ओर ले जा सकता है। यह गोखलेने अपने सार्वजनिक जीवनके आरम्भमें केवल समझ ही नहीं लिया था, बल्कि इस सिद्धान्तपर अमल भी

१. प्रस्ताव पेश करते हुए गांधीजीने जो भाषण दिया था उसके लिए देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २२९-२३२।
२. जहाँतक आत्म-तत्त्वको नहीं पहचाना, सारी साधना व्यर्थ है।

किया था। लोक-जागृति राजनीतिक प्रगति द्वारा ही हो सकती है, यह तो सबके ध्यानमें आ गया था, [किन्तु] गोखलेने अपने भारत सेवक समाज और जनताके समक्ष यह भव्य विचार पेश किया कि यदि इस प्रवृत्तिको धर्मका स्वरूप दिया जाये तो राजनीतिक प्रवृत्ति मोक्षका रास्ता दिखानेवाली भी होगी। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि हमारी राजनीतिक प्रवृत्तिमें जबतक धर्मवृत्तिका प्रवेश नहीं होता, तबतक वह शुष्क ही रहेगी।

'टाइम्स ऑफ इंडिया' के लेखकने गोखलेकी मृत्युपर लिखते हुए उनके कार्यकी इस विलक्षणताकी ओर ध्यान खींचा था और इस तरह राजनीतिक संन्यासी निर्माण करनेका उनका प्रयत्न सफल होगा या नहीं, इस विषयमें शंका प्रकट करके उनके द्वारा स्थापित भारत सेवक समाजको सावधान किया था। इस जमानेमें राजनीतिक संन्यासी ही संन्यासकी शोभा बढ़ा सकेंगे, दूसरे तो प्रायः भगवेको लजायेंगे ही। शुद्ध धर्म-मार्गपर चलनेवाला कोई भी भारतवासी राजनीतिक कार्योंमें भाग लिये बिना नहीं रह सकता। दूसरे शब्दोंमें कहें तो शुद्ध धर्ममार्गी लोकसेवाको अपनाये बिना रह ही नहीं सकता। और राजतन्त्रके जालमें हम सब इतन अधिक जकड़े हुए हैं कि उसमें पड़े बिना लोकसेवा सम्भव ही नहीं है। जो किसान पुराने समयमें राज्याधिकारी कौन है यह जाने बिना ही अपना सरल जीवन निर्भयतापूर्वक बिता सकते थे, उनकी भी अब वैसी निराली स्थिति नहीं रह गई है। ऐसी हालतमें उन्हें धर्माचरणके निर्णयमें राजनीतिक परिस्थितिका विचार करना ही होगा। इस बड़ी बातको यदि हमारे साधु, ऋषि, मुनि, मौलवी और पादरी स्वीकार करें, तो जगह-जगह भारत सेवक समाज खड़ा हो जाये और हिन्दुस्तानमें धर्मवृत्ति इतनी व्यापक बन जाये कि आजका अप्रिय और अरुचिकर मालूम होनेवाला राजतन्त्र शुद्ध हो जाये, हिन्दुस्तानमें किसी समय जो धार्मिक साम्राज्य फैला हुआ था उसकी पुनः स्थापना हो जाये, भारतमाताके बन्धन एक क्षणमें टूट जायें और एक प्राचीन द्रष्टाकी अमर वाणीमें वर्णित यह स्थिति उत्पन्न हो जाये — तब लोहेका उपयोग तलवार बनानेमें नहीं, हल बनानेमें होगा और सिंहके साथ बकरी मित्रभावसे विचरण करेगी।[1] ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेवाली प्रवृत्ति ही गोखलेका जीवन-मन्त्र थी। यही उनका सन्देश है और मैं मानता हूँ कि जो भी व्यक्ति उनके भाषण सरल मनसे पढ़ेगा, उसे यह मन्त्र उनके शब्द-शब्दमें गूँजता मालूम होगा।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]

गोपालकृष्ण गोखलेना व्याख्यानो, खण्ड १

१. उद्धरण बाइबिलका है।

१२२. भाषण: भगिनी समाज, बम्बईमें[1]

[फरवरी २०, १९१८]

भगिनी समाजके प्यारे भाइयो, और बहनो,

भगिनी समाजके इस वार्षिक सम्मेलनमें मुझे अध्यक्ष पद देनेके लिए मैं आप सब बहनोंका आभार मानता हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा तो यह है कि आप अपने कार्योंमें पुरुषोंकी सहायता अथवा सलाह तो भले ही लें, परन्तु अध्यक्षका पद तो किसी स्त्रीको ही देना उचित है। इस संस्थाका सदुद्देश्य स्त्री जातिकी उन्नति करना है। जैसे दूसरेकी तपस्या-से हम स्वर्ग नहीं जा सकते वैसे ही पुरुषोंके द्वारा स्त्री जातिकी उन्नति नहीं की जा सकती। यहाँ मेरे कहनेका आशय यह नहीं है कि पुरुष स्त्रियोंकी उन्नतिके इच्छुक नहीं हैं अथवा स्त्रियाँ पुरुषोंकी सहायतासे उन्नति न करें; मैं तो आपके सम्मुख यह सिद्धान्त प्रस्तुत करना चाहता हूँ कि कोई भी व्यक्ति या जाति अपनी शक्तिसे ही उन्नति कर सकती है। यह सिद्धान्त कोई नया सिद्धान्त नहीं है; किन्तु हम प्रायः इसे कार्यान्वित करनेमें चूक जाते हैं।

इस समय यह संस्था बहुत-कुछ भाई करसनदास चितलियाके उत्साहसे चल रही है। मैं उस समयको आया देखना चाहता हूँ कि जब आप बहिनोंमें से कोई भाई चितलियाका स्थान ग्रहण कर लेगी और जब वे इस संस्थासे हटकर अन्य कार्योंके लिए मुक्त हो सकेंगे। जिसने स्त्री-सेवाको ही धर्म मान लिया है वह तो इस दिशामें दूसरा कार्य भी ढूँढ लेगा। किन्तु इस संस्थाका सच्चा स्वरूप तो तभी प्रकट होगा जब यह संस्था अपने अधिकारियोंका चुनाव स्त्रीवर्गमें से ही करेगी और जब उसका कार्य जितना अच्छा इस समय है उससे भी अधिक अच्छा होगा। जैसा कि आप जानती हैं, मैं स्त्रियों और पुरुषों—दोनोंके निकट सम्पर्कमें रहता हूँ; और यह बात मेरी समझमें आ गयी है कि स्त्रियों-की सेवाके कार्यमें जबतक स्त्रियाँ न आयें तबतक मैं उस कार्यको नहीं चला सकता। इसीलिए मुझे जब-जब अवसर मिलता है तब-तब मैं पुकार-पुकारकर कहता हूँ कि जबतक भारतमें स्त्रियाँ तनिक भी दबी हुई रहेंगी, अथवा उन्हें पुरुषोंकी अपेक्षा कम अधिकार प्राप्त होंगे तबतक भारतका सच्चा उद्धार न होगा। इसलिए यदि यह संस्था इस प्रकारसे अपने उद्देश्यको पूरा कर सकेगी तो उससे भारतके गौरवमें वृद्धि होगी।

परन्तु हमें यह समझना आवश्यक है कि स्त्रियोंकी उन्नतिका अर्थ क्या है। उनकी उन्नतिका प्रश्न तभी उठता है जब उनकी अवनति हुई हो। अब यदि उनकी अवनति हुई है तो हमें यह सोचना चाहिए कि उस अवनतिका कारण क्या है और वह किस प्रकार दूर किया जा सकता है। हमारा प्रथम कर्त्तव्य यह है कि हम इन सब मुद्दोंपर

१. बम्बईकी महिला-कल्याण संस्था भगिनी-समाजका वार्षिक सम्मेलन बुधवारको सायं ४ बजे मोरारजी गोकुलदास भवनमें हुआ था। गांधीजीने इस समारोहकी अध्यक्षता की थी और छात्राओंको पुरस्कार वितरित करनेके बाद 'स्त्री-शिक्षा' पर यह भाषण दिया था।

भली-भाँति विचार कर लें। भारतमें सर्वत्र यात्रा करते हुए मैंने यह देखा है कि इस सम्बन्धमें जो आन्दोलन चल रहा है वह अनन्त आकाशमें एक छोटी-सी बदलीकी तरह बहुत-थोड़े लोगों तक ही सीमित है। करोड़ों लोगोंको इस आन्दोलनका कोई भान नहीं है। पचासी प्रतिशत लोग हमारी गतिविधियोंसे अलिप्त रहकर निर्दोष जीवन बिता रहे हैं। ये सभी स्त्री-पुरुष जीवनमें अपना-अपना भाग उचित रूपसे पूरा कर रहे हैं। दोनों वर्गोंमें शिक्षा अथवा कहें तो शिक्षाका अभाव समान है और दोनों एक-दूसरेकी सहायता कर रहे हैं। यदि इनके जीवनमें कोई अपूर्णता दिखाई देती है तो वह शेष पन्द्रह प्रतिशत लोगोंके जीवनकी अपूर्णताकी ही झलक है। मैं यह मानता हूँ कि यदि भगिनी समाजकी बहनें इन पचासी प्रतिशत लोगोंके जीवनका भली-भाँति अध्ययन करेंगी तो वे समाजके कार्यक्रमकी रूपरेखा बहुत अच्छी तरहसे बना सकेंगी।

मैं इस समय जो विचार कर सकूँगा वे बहुत-कुछ इन पन्द्रह प्रतिशत लोगोंपर ही लागू होंगे। उनमें भी जिन मामलोंमें स्त्री-पुरुष दोनों अवनत हैं उनका विचार करना यहाँ अप्रासंगिक होगा। इसलिए जिन मामलोंमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी अवनति विशेष हुई है, हमें उन्हींपर विचार करना है। कानून-निर्माणका कार्य प्रायः पुरुषोंके हाथोंमें रहा है और पुरुषोंने सदा विवेकका उपयोग नहीं किया दिखता। स्मृतिकारोंने स्त्रियोंके सम्बन्धमें जो-कुछ लिखा है उसका सर्वथा समर्थन नहीं किया जा सकता। स्मृतियोंके वचन ही बाल-विवाह और विधवाओंपर लगाये गये नियन्त्रण आदिके मूलमें हैं। उन्हें शूद्र वर्णके साथ रखनेसे हिन्दू समाजको कल्पनातीत आघात लगा है। आपको मेरे इन वचनोंमें और ईसाइयोंके द्वारा प्रायः किये जानेवाले आक्षेपोंमें भाषा-साम्य दिखाई देगा। किन्तु इसके अतिरिक्त हममें अन्य किसी बातमें साम्य नहीं है। ईसाई लेखकोंके आक्षेप हिन्दू धर्मका मूलोच्छेद करनेके उद्देश्यसे किये गये हैं। मैं अपने आपको बहुत ही पक्का हिन्दू मानता हूँ। मेरा आक्षेप इस हेतुसे किया गया है कि हिन्दू धर्मकी न्यूनता दूर हो जाये और उसे अपना वास्तविक भव्य स्थान प्राप्त हो जाये। ईसाई आलोचक हमारी स्मृतियोंकी अपूर्णता बताकर उनको सामान्य ग्रन्थ सिद्ध करना चाहते हैं। मैं यह बतानेका प्रयत्न करता हूँ कि स्मृतियोंकी अपूर्णताका कारण या तो उनमें प्रक्षिप्त श्लोकोंका मिलाया जाना है या हमारे अधःपतनके कालमें मान्यता प्राप्त स्मृतिकारों द्वारा अपने-अपने श्लोकोंका जोड़ा जाना है। इन श्लोकोंको निकालकर शेष स्मृतियोंकी अपूर्वता सिद्ध की जा सकती है। मिथ्याभिमान या अज्ञानसे स्मृतियोंमें और हिन्दू धर्मके अन्य सब ग्रन्थोंमें कोई भी दोष नहीं है, ऐसा मानकर और दूसरोंसे मनवाकर मैं हिन्दू धर्मका लँगड़ा बचाव कदापि नहीं करना चाहता। मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऐसा करनेसे हिन्दू धर्मकी उन्नति नहीं होती, बल्कि अवनति ही होती है। जिस धर्ममें सत्यको उत्कृष्ट स्थान दिया गया है उसमें असत्यका समर्थन कदापि नहीं हो सकता।

तब स्त्री जातिकी उन्नतिके लिए यह आवश्यक है कि हिन्दुओंके धर्मशास्त्रोंमें स्त्रियोंके सम्बन्धमें जो आक्षेप हैं उनके निवारणका महान् प्रयत्न किया जाये। किन्तु इस प्रयत्नको कौन कर सकता है और यह कैसे किया जा सकता है। मेरी अल्पमतिसे हमें इसके लिए मुख्यतः सीता, दमयन्ती और द्रौपदी-जैसी पवित्र, अत्यन्त दृढ़-संकल्प और संयमी नारियाँ उत्पन्न करनी होंगी। उस युगमें जिन हिन्दुओंने उनकी पूजा की थी वे आज इन

आधुनिक सती-साध्वियोंकी भी पूजा करेंगे। हिन्दू उनके वचनोंको शास्त्र-वचनोंके समान प्रमाण मानकर ग्रहण कर लेंगे और स्मृति आदि शास्त्रोंमें जो आक्षेप हैं उनसे लजायेंगे एवं उन्हें विस्मृत कर देंगे। हिन्दू धर्ममें ऐसे परिवर्तन सदा ही होते आये हैं और होते रहेंगे। इसीलिए तो यह धर्म अबतक जीवित है और भविष्यमें भी जीवित रहेगा। मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है कि यह संस्था शीघ्र ही ऐसी नारियोंको उत्पन्न करे।

जैसा ऊपर बताया, हम अपने देशकी नारियोंकी अवनतिके उन कारणोंपर विचार कर चुके हैं जिनको साधन बनाकर उनकी उन्नतिकी जा सकती है। इस ध्येयको साध सकनेवाली स्त्रियाँ तो इनी-गिनी ही हो सकेंगी। परन्तु अब हमें सोचना यह है कि सामान्य स्त्रियोंको क्या करना उचित है। प्रथम कार्यतो यह करना है कि यथासम्भव अधिकसे-अधिक स्त्रियोंको उनकी दुरवस्थाका ज्ञान कराया जाये। मैं उन लोगोंमें से नहीं हूँ जो यह मानते हैं कि यह कार्य सामान्य शिक्षाके बिना सम्पन्न नहीं हो सकता। यदि ऐसा माना जाये तो इस कार्यकी सिद्धिके लिए दीर्घ-काल चाहिए। मैं प्रतिक्षण यह अनुभव करता हूँ कि इतने समयकी कोई आवश्यकता नहीं है। उन्हें उनकी दुरवस्थाका ज्ञान अभी, सामान्य शिक्षाकी प्रतीक्षा किये बिना ही कराया जा सकता है। मैं अभी बिहारके एक जिलेसे आ रहा हूँ वहाँ मैं उच्च कुलोंकी बहुत-सी बहनोंसे मिला। वे सभी पर्दानशीन थीं। उन्होंने मेरे सम्मुख आकर जैसे बहन भाईसे पर्दा नहीं करती वैसे ही पर्दा हटा दिया। ये बहनें पढ़ी-लिखी नहीं थीं। उनसे मिलनेसे जरा पहले एक अंग्रेज बहन मुझसे मिलकर गई थी। यह बहन जब मैं कई भाइयोंके साथ बैठा था तब उनके बीच आकर ही बात करके चली गई। किन्तु हिन्दू बहनोंसे मिलनेके लिए मुझे अलग कमरेमें जाना पड़ा। मैंने उनसे विनोदमें कहा कि चलो, हम सब वहीं चलकर बैठें जहाँ सब पुरुष बैठे हैं। उन्होंने उत्साहपूर्वक कहा: "हम तो इसमें बहुत प्रसन्न हैं, किन्तु हमारी प्रथाके अनुसार हमें अनुमति दी जानी चाहिए। हमें यह पर्दा तनिक भी नहीं रुचता। इसे आप हटवा दें।" यह बात जितनी करुणाजनक है उतनी ही मेरे उक्त कथनकी समर्थक भी है। इन बहनोंको सामान्य शिक्षाके पूर्व ही अपनी स्थितिका भान हो गया था। इन बहनोंने मुझसे सहायता माँगी, यह तो उचित ही था। किन्तु मैं चाहता हूँ कि उनकी मुक्तिकी शक्ति स्वयं उनमें ही हो। और उन्होंने स्वीकार भी किया कि यह शक्ति उनमें है। मैं अपने मनमें यह आशा लेकर आया हूँ कि हमें इन बहनोंके पर्देसे मुक्त होनेकी खबर कुछ दिनोंमें ही मिल जायेगी। साधारणतः अपठित मानी जानेवाली ये बहनें चम्पारनमें अच्छा काम कर रही हैं। वे जिस स्वतन्त्रताका उपभोग कर रही हैं उसका ज्ञान वे अपनी इन अति ज्ञानहीन बहनोंको दे रही हैं। स्त्री पुरुषकी सहचारिणी है, उसकी मानसिक शक्ति पुरुषके समान ही है और उसे पुरुषकी छोटीसे-छोटी प्रवृत्तिमें भाग लेनेका अधिकार है। जितनी स्वतन्त्रता पुरुषको है, उतनी स्वतन्त्रता भोगनेका अधिकार उसे भी है और जैसे पुरुष अपने क्षेत्रमें सर्वोपरि है वैसे ही स्त्री अपने क्षेत्रमें सर्वोपरि है। यह स्थिति स्वाभाविक होनी चाहिए। यह लिखने-पढ़नेका परिणाम नहीं हो सकती। अज्ञान-रूप अन्धकूपमें पतित जड़ पुरुष भी रूढ़ प्रथाके कारण स्त्रीके ऊपर ऐसे अधिकारका उपभोग कर रहा है कि जो न तो उसे शोभा दे सकता है और न जिसे वह सामान्यतः भोग ही सकता है। स्त्रियोंकी इस दुरवस्थाके कारण हमारी बहुतसी प्रवृत्तियाँ बीचमें ही ठप हो

जाती हैं और हमारे बहुतसे कार्योंका पूरा परिणाम नहीं निकलता। हमारी स्थिति उस अदूरदर्शी व्यापारीकी स्थिति-जैसी है जो आधी पूँजीसे व्यापार करता है। यदि मेरा कहना ठीक हो तो इस संस्थाकी बहुत-सी बहनें, जिन्हें अपनी दशाका भान नहीं है उन बहनोंको अपनी दशाका भान करानेमें लग जायेंगी। इसका अर्थ यह हुआ कि वे जितना समय मिले उतना बम्बईके पिछड़े हुए वर्गोंमें जाकर उन्हें ज्ञान देनेमें लगायें। यदि आप पुरुष-वर्गकी धार्मिक, राजनीतिक और सांसारिक प्रवृत्तिमें भाग लेने लगी हैं, तो आप उन्हें उसका भी ज्ञान दें। यदि आपने बच्चोंके पालन-पोषणका समस्त ज्ञान प्राप्त किया है तो आप वह ज्ञान भी उन्हें दें। यदि आपने स्वच्छ वायु, स्वच्छ जल, शुद्ध और सात्विक भोजन एवं व्यायाम आदिके स्थूल और सूक्ष्म लाभ पढ़े हैं और उनका अनुभव प्राप्त किया है तो वह ज्ञान और अनुभव इन बहनोंको बतायें। इस प्रकार आप अपनी और उन सभीकी उन्नति करेंगी।

यद्यपि इस प्रकार पढ़े-लिखे बिना बहुतसे कार्य किये जा सकते हैं तो भी मेरा खयाल यह है कि सदा पढ़े-लिखे बिना काम नहीं चल सकता। पढ़ने-लिखनेसे बुद्धि विकसित और तीव्र होती है एवं हमारी परोपकार करनेकी क्षमता बहुत बढ़ जाती है। किन्तु मैंने पढ़ने-लिखनेकी कीमत कभी ऊँची नहीं आँकी। मैंने तो उसे केवल उचित स्थान देनेका प्रयत्न किया है। मैं समय-समयपर यह बताता रहा हूँ कि पुरुषोंका स्त्रियोंसे उनके स्वाभाविक मानवीय अधिकार छीन लेने अथवा उन्हें प्रदान न करनेका कारण, स्त्रियोंमें विद्याका अभाव नहीं होना चाहिए; किन्तु निश्चय ही इन स्वाभाविक अधिकारोंको कायम रखने, उनमें वृद्धि करने और उनको प्रचारित करनेके लिए विद्याकी आवश्यकता है। फिर विद्याके बिना लाखों लोगोंको तो शुद्ध आत्मज्ञान भी प्राप्त नहीं हो सकता। अनेक लेखोंमें ऐसा अखूट ज्ञानभण्डार भरा है जिससे हमें निर्दोष आनन्द प्राप्त हो सकता है; यह आनन्द भी विद्याके बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। विद्याके बिना मनुष्य पशुवत् है, इस कथनमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। बल्कि यह यथार्थ है। इसलिए पुरुषोंकी भाँति स्त्रियोंके लिए भी शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। मेरा खयाल यह नहीं है कि जैसे पुरुषोंको शिक्षा दी जाती है वैसे ही स्त्रियोंको दी जानी चाहिए। प्रथम तो जैसा मैंने कहीं-कहीं कहा है, हमारी सरकारी शिक्षा प्राय: भ्रमपूर्ण और हानिकर है और यह दोनों वर्गोंके लिए पूर्णत: त्याज्य है। यदि उसके दोष दूर भी कर दिये जायें तो भी मैं नहीं मानता कि वह स्त्रियोंके लिए सर्वथा उपयुक्त ही है। स्त्री और पुरुषका दर्जा समान है, एक ही नहीं है। दोनोंकी जोड़ी अपूर्व है, दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं और एक-दूसरेके यहाँतक सहायक हैं कि एकके अभावमें दूसरेका अस्तित्व सम्भव ही नहीं है। किन्तु यदि पुरुष अथवा स्त्री स्थान-भ्रष्ट हो जाये तो दोनों ही नष्ट हो जायेंगे यह सार ऊपर किये गये विवेचनसे ही निकलता है। इसलिए स्त्री-शिक्षाकी योजना तैयार करनेवाले लोगोंको यह बात सतत् स्मरण रखनी चाहिए। दम्पतीकी बाह्य प्रवृत्तिमें पुरुष प्रमुख होता है, इसलिए बाह्य प्रवृत्तिका विशेष ज्ञान उसके लिए आवश्यक है। आन्तरिक प्रवृत्तिमें स्त्री प्रमुख होती है, इसलिए गृह-व्यवस्था और बाल-बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षा आदि विषयोंका विशेष ज्ञान उसके लिए आवश्यक है। खयाल यह नहीं है कि किसीके लिए कोई

विशेष ज्ञान प्राप्त करनेका निषेध रहे। बल्कि यह कि शिक्षा-क्रम इन मुद्दोंको ध्यानमें रखकर तैयार न किया जायेगा तो दोनों ही वर्गोंको अपने-अपने क्षेत्रोंमें पूर्णता प्राप्त करनेका अवसर न मिलेगा।

मुझे इस सम्बन्धमें भी दो शब्द कहनेकी आवश्यकता है कि स्त्रियोंके लिए अंग्रेजी शिक्षा आवश्यक है या नहीं। मेरा अनुभव तो यह है कि हमारे सामान्य जीवन-क्रममें स्त्री अथवा पुरुष दोनोंमें से एकके लिए भी अंग्रेजीकी आवश्यकता नहीं है। आजीविका कमाने अथवा राजनीतिक प्रवृत्तिको चलानेके लिए ही पुरुषोंको अंग्रेजी भाषाके ज्ञानकी आवश्यकता हो सकती है। मैं यह नहीं मानता कि स्त्रियोंको नौकरियाँ ढूँढ़ने या व्यापार चलानेकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता है। इसलिए यदि कुछ स्त्रियोंको अंग्रेजी भाषाका ज्ञान प्राप्त करना हो तो वे उसे पुरुषोंके लिए स्थापित विद्यालयोंमें प्राप्त कर सकती हैं। स्त्रियोंके लिए स्थापित स्कूलोंमें अंग्रेजीका प्रवेश करना हमारी पराधीनताको लम्बा बनानेका कारण हो जायेगा। मैंने यह बात अनेक लोगोंके मुँहसे सुनी है और अनेक जगह पढ़ी है कि अंग्रेजी भाषामें निहित भारी ज्ञान-कोष पुरुषोंकी भाँति स्त्रियोंके लिए भी उपलब्ध होना चाहिए। मैं नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि हम इस सम्बन्धमें कुछ भूल कर रहे हैं। मैं यह तो कहता नहीं कि अंग्रेजी भाषाका ज्ञान-भण्डार पुरुषोंके लिए तो खोल दिया जाये किन्तु स्त्रियोंके लिए न खोला जाये। यदि किसीकी रुचि साहित्य पढ़नेकी है तो वह समस्त संसारका साहित्य पढ़े। उससे उसको रोकनेवाला कोई व्यक्ति संसारमें जन्मा नहीं है। किन्तु जहाँ समस्त लोक-समुदायकी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर शिक्षा-क्रम बनाया गया है, वहाँ ऊपर बताये गये साहित्य-प्रेमियोंके लिए कोई योजना नहीं बनाई जा सकती। ऐसे लोगोंके लिए उन्नति-कालमें यूरोपकी भाँति हमारी पृथक्-पृथक् संस्थाएँ होंगी। एक सुव्यवस्थित शिक्षा-क्रमके अन्तर्गत जब बहुतसे स्त्री-पुरुष शिक्षा लेने लग जायेंगे और अशिक्षित लोग अपवाद माने जायेंगे तब अन्य भाषाओंके साहित्यके रसका स्वाद चखानेवाले हमारी भाषामें ही दलके-दल निकल आयेंगे। यदि हम साहित्यका रस सदा अंग्रेजी भाषासे ही लेते रहेंगे तो हमारी भाषा सदा निष्प्राण बनी रहेगी अर्थात् हमारी जाति सदा निष्प्राण बनी रहेगी। यदि आप मुझे इस उपमाके लिए क्षमा कर दें तो मुझे कहना चाहिए कि पराई भाषामें से आनन्द प्राप्त करनेका स्वभाव ऐसा ही है जैसा किसी चोरका चुराये हुए मांसमें से आनन्द लेनेका स्वभाव। पोपने 'इलियड' में से जो आनन्द प्राप्त किया वह उसने अपनी जातिको अद्भुत अंग्रेजीमें दिया। फिट्जेराल्डने उमर खय्यामकी रुबाइयोंमें से जो आनन्द प्राप्त किया उसे ऐसी प्रभावशाली अंग्रेजीमें प्रस्तुत किया कि उनके काव्यको लाखों अंग्रेज 'बाइबिल' की भाँति सँजोकर रखते हैं। एडविन आर्नोल्डने 'भगवद्गीता' में से रसपान किया; किन्तु उन्होंने उस रसका पान करनेके लिए अंग्रेज लोगोंसे संस्कृत पढ़नेका आग्रह नहीं किया, बल्कि अंग्रेजी भाषामें अपनी आत्माको उँडेलकर संस्कृत अथवा पालीके साथ उपयुक्त अंग्रेजीमें उस रसको प्रस्तुत करके अंग्रेज लोगोंको उसका पान कराया। चूँकि हम बहुत पिछड़ गये हैं, इसलिए हममें ऐसी प्रवृत्ति बहुत अधिक होनी चाहिए। यह प्रवृत्ति तभी सम्भव होगी जब हम अपना शिक्षा-क्रम वैसा बना लेंगे जैसा मैंने ऊपर बताया है और उसपर दृढ़तापूर्वक क़ायम रहेंगे। यदि हम अंग्रेजीका झूठा मोह त्याग सकें और अपनी अथवा अपनी भाषाकी

शक्तिमें अपना अविश्वास छोड़ सकें तो यह कार्य कुछ कठिन नहीं है। मैं कहता हूँ कि हमारे देशके स्त्री-पुरुष अंग्रेजी भाषा पढ़नेके लिए कम समय दें। मेरे कहनेका हेतु यह नहीं है कि उनको कम आनन्द मिले; बल्कि यह है कि जिस आनन्दको अंग्रेजी पढ़नेवाले बहुत कष्ट सहकर प्राप्त करते हैं वह आनन्द हमें सुगमतासे प्राप्त हो सके। इस संसारमें अनेक अमूल्य रस भरे हुए हैं। सभी साहित्य संबंधी रत्न अंग्रेजी भाषामें ही नहीं हैं, अन्य भाषाओंमें इन रत्नोंकी बहुलता है। ये सभी हमारे देशके आम लोगोंके लिए उपलब्ध होने चाहिए। इसका मार्ग एक ही है और वह यह है कि हममें से कुछ लोग, जिनमें उचित सामर्थ्य हो, उन-उन भाषाओंको सीखकर उनके उन रत्नोंको हमारी भाषाके द्वारा हमें उपलब्ध करायें।

हमने यहाँ इतना विचार शिक्षा-प्रणालीके सम्बन्धमें किया। इससे बालिकाओंके विवाह होने बन्द हो गये और स्त्रियोंको उनके स्वाभाविक अधिकार मिल गये, यह माननेका कोई कारण नहीं है। इसलिए जो बालिकाएँ विवाहके पश्चात लुप्त हो जाती हैं उनके सम्बन्धमें कुछ कहूँ। वे अब अपनी शालाओंमें न आयेंगी। एक बार बाल-विवाहका पाप करनेके बाद उनकी माताएँ भी अपने पापका ज्ञान होनेपर उन बालिकाओंको शिक्षा दिलाने अथवा कोई अन्य आश्वासन देनेमें असमर्थ हो जाती हैं। जो पुरुष बालिकाके साथ विवाह करता है वह परोपकार भावनासे नहीं, बल्कि बहुत-कुछ विषयासक्तिके वशीभूत होकर करता है। इन बालिकाओंकी रक्षा कौन करे? इस प्रश्नमें स्त्रियोंके उद्धारका कार्य बहुत-कुछ आ जाता है। इसका उत्तर कठिन, किन्तु एक ही है। पुरुषके अतिरिक्त इनका सांसारिक रक्षक कोई अन्य नहीं है। बालिकासे विवाह करनेवाले पुरुषको, उसकी पत्नी ही समझा सके, यह लगभग असम्भव है। इसलिए यह अति कठिन सुधार-कार्य समझदार पुरुषको करना है। यदि मुझमें इतनी शक्ति हो तो मैं इन बालिका-वधुओंकी एक सूची बनाऊँ, उनके पतियोंके मित्रोंको खोजूँ और उनके मारफत एवं जो भी अन्य धर्मानुकूल और विनययुक्त कदम मुझे सूझें, उन्हें उठाकर ऐसे पतियोंको मैं यह कहलाऊँ: आपने अज्ञानवश एक बालिकासे विवाह करनेका पाप किया है। जबतक इस बालिकाकी अवस्था परिपक्व नहीं हो जाती और जबतक यह शिक्षा प्राप्त नहीं कर लेती, तबतक आप शुद्ध ब्रह्मचर्यका पालन करके इसे स्वयं शिक्षा देकर अथवा अन्य किसीकी मारफत शिक्षा दिलाकर संतान उत्पन्न करने और उसका पालन-पोषण करने योग्य नहीं बना लेते तबतक आप इस पापसे किसी भी प्रकार मुक्त न हो सकेंगे।

इस प्रकार भगिनी समाज निश्चय करे तो उसके सम्मुख बहुतसे कार्यक्षेत्र पड़े हैं जिनमें कार्य करनेसे सुन्दर फल उपलब्ध हो सकते हैं। उसका यह कार्यक्षेत्र इतना विस्तृत है कि यदि संकल्पपूर्वक कार्य किया जाये तो बड़ा आन्दोलन उसके सम्मुख कुछ भी न रहे एवं स्वराज्य शब्दका उच्चारण किये बिना ही उस दिशामें बहुत बड़ी सेवा हो जाये। जब छापेखाने नहीं थे और भाषणोंकी सुविधा भी कम थी, जब चौबीस घंटेमें एक हजार मीलके बजाय लोग केवल २४ मीलकी ही यात्रा कर सकते थे, तब अपने विचारोंके प्रचारका एक ही मुख्य साधन होता था। वह था हमारा कर्म; और उसका प्रभाव बहुत होता था। अब हम वायुके वेगसे दौड़ रहे हैं, भाषण दे रहे हैं और लेख लिख रहे हैं। उसके बावजूद हम अपने विचारोंपर अमल करवानेमें लगभग असमर्थ रहते हैं। हर ओरसे

निराशाकी ध्वनि सुनाई देती है। मुझे तो लगता है कि हम आज भी पहलेकी भाँति अपने कर्मसे लोगोंको इतना प्रभावित कर सकते हैं जितना अपने भाषणों और लेखोंसे कभी नहीं कर सकते। इस समाजसे मेरी प्रार्थना है कि वह ऐसे मौन कर्मको ही प्रधानता दे।

[गुजरातीसे]

महात्मा गांधीनी विचारसृष्टि

१२३. पत्र: जी० एस० अरुण्डेलको

[साबरमती]
फरवरी २१, १९१८

[प्रिय श्री अरुण्डेल,]

आपका पत्र मिला। अभी तो मैं एक-दो टेढ़े मामलोंके सिलसिलेमें व्यस्त हूँ। मुझे जब चाहूँ, तब विचार नहीं आते। किसी विषयपर लोगोंको कुछ देने लायक चीज लिख सकूँ, उससे पहले मुझे अपने मनको उस विषयमें रमाना पड़ता है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि आपका पत्र मैं ध्यानमें रखूँगा और कुछ-न-कुछ भेजनेका प्रयत्न करूँगा। लेकिन अधिक सम्भव है कि न भेज सकूँ। हाँ, जो काम मैंने हाथमें ले रखे हैं, वे सोचे हुए समयसे पहले पूरे हो जायें, तो अलग बात है।[1]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

१. महादेव देसाईने अपनी डायरीमें इस पत्रके सम्बन्धमें लिखा है: "यह पत्र अरुण्डेलके लिए लिखा गया था, जिन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा प्रसारक समिति [नेशनल एजूकेशन प्रमोशन सोसाइटी] के मन्त्रीकी हैसियतसे गांधीजीसे शिक्षा-सप्ताहके लिए एक लेख लिखनेका अनुरोध किया था। बादमें जब गांधीजीने देखा कि लेख भेजनेकी अन्तिम तिथि २० फरवरी थी, तो उन्होंने कहा: 'जान बची; ईश्वरको धन्यवाद'। फिर उन्होंने मुझसे कहा कि अरुण्डेलको लिख दूँ: "आपने जो तिथि निश्चित की है उससे पहले मैं लेख भेज ही नहीं सकता, क्योंकि आपका पत्र मुझे कल ही मिला।" लगभग इसी कालमें स्लाईको लिखे एक पत्रमें गांधीजीने लिखा है: "किसी भी चीजसे छुटकारा मिले तो सचमुच बड़ी राहत मिलती है।"

१२४. पत्र : फ्लॉरेंस ए० विंटरबॉटमको

[साबरमती]
फरवरी २१, १९१८

[प्रिय कुमारी विंटरबॉटम,]

मैंने तुम्हें हफ्तोंसे पत्र नहीं लिखा, पर इसका कारण तुम जानती ही हो। यहाँके अपने कामके बारेमें कुछ लिखनेसे पहले मेरा विचार तुम्हारे पूछे हुए एक महत्त्वपूर्ण प्रश्नका उत्तर देनेका है। प्रश्नसे मालूम होता है कि तुम इस देशमें मेरे कामका बहुत बारीकीसे निरीक्षण करती रही हो। लन्दनमें मैं कहता था कि जनताके प्रति सदय, निरंकुश शासन-प्रणाली ही सर्वोत्तम राज्यतन्त्र है। तुम यह बात याद दिलाकर मुझसे पूछती हो कि मैं जो 'होमरूल' आन्दोलनमें भाग ले रहा हूँ, उसका उपर्युक्त कथनके साथ मेल कैसे बैठता है? लन्दनमें मैंने जो कहा था, उसपर मैं अब भी कायम हूँ। किन्तु वर्तमान कालमें ऐसा राज्यतन्त्र असम्भव बन गया है। हिन्दुस्तानके लिए संसदीय पद्धतिके शासन-तन्त्रमें से गुजरनेके सिवा कोई उपाय नहीं, इस बातका निश्चित रूपसे अनुभव हो जानेके कारण मैं स्वाभाविक रूपमें ऐसे एक आन्दोलनका समर्थन कर रहा हूँ, जिसके द्वारा अच्छीसे-अच्छी संसदीय शासन-प्रणाली प्राप्त की जा सके और वर्तमान वर्णसंकर शासन-प्रणालीको — जो न संसदीय है और न सदय निरंकुशता — मिटाया जा सके। इतना ही नहीं मैं इस आन्दोलनमें उसी हदतक भाग लेता हूँ, जिस हदतक मैं अपने उन सिद्धान्तोंको, जिन्हें मेरी समझमें उपयोगी बननेके लिए हर तन्त्रको स्वीकार करना ही पड़ेगा, लोगोंसे स्वीकार करा सकूँ और उनपर अमल करा सकूँ। नटेसनने मेरे भाषणोंका एक संग्रह छापा है। मैंने उन्हें उसकी एक प्रति तुम्हारे पास भेजनेके लिए कहा है। उसमें यहाँके गुजरात राजनीतिक सम्मेलनके अध्यक्षकी हैसियतसे दिये गये मेरे भाषणका अंग्रेजी अनुवाद छपा है। मैं जो कहना चाहता हूँ, वह उसमें पूरी तरह बता दिया गया है।

मैंने यह सोचकर कि और मामलोंके बारेमें भी लिख सकूँगा, पत्र लिखनेमें एक सप्ताहकी देर की। किन्तु अब अधिक विलम्ब करना ठीक नहीं। और बातें लिखनेके लिए फिर मौका ढूँढूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई।

१२५. पत्र : गोरधनदास पटेलको

[साबरमती]
फरवरी २०, १९१८

प्रिय श्री गोरधनभाई,[१]

पूज्य अनसूयाबहन, भाई शंकरलाल बैंकर और मैं अभी-अभी जुलाहोंकी सभामें से आये हैं। जुलाहोंने कहा कि मिल-मालिक आठ आने बढ़ाकर उनसे कुछ लिखा लेना चाहते हैं। मैंने उन्हें सलाह दी है कि वे अपने सलाहकारकी सलाह लिये बिना किसी भी कागजपर हस्ताक्षर न करें और यह भी कहा है कि एक-दो दिनमें हम उन्हें यह सलाह देंगे कि *उन लोगोंको उचित वृद्धिके रूपमें क्या माँगना चाहिए; हम यह भी कहेंगे कि यदि* वे इस सलाहके अनुसार चलेंगे और सुझाया हुआ वेतन पसन्द कर लेंगे, तो उनका भला होगा। इस काममें मैं अपनी जिम्मेदारी कल मिल ग्रूपके सदस्योंको विनयपूर्वक बता चुका हूँ। मुझे लगता है कि पंच-फैसलेका सिद्धान्त बहुत गूढ़ है और मजदूरोंकी आस्था उसपर से उठ जाये, यह तनिक भी वांछनीय नहीं है।[२] इसलिए मैं अपने ऊपर अनायास आये हुए इस कर्त्तव्यको छोड़ नहीं सकता। भाई शंकरलाल बैंकर और भाई वल्लभभाई पटेल भी इस विचारसे सहमत हैं। मजदूरोंका काम-धन्धेके बिना अनिश्चित स्थितिमें रहना उनके लिए, आपके लिए और सबके लिए अवांछनीय है। बम्बईकी मिलोंमें दिये जानेवाले वेतनों-की दरें भाई बैंकर ले आये हैं। यहाँकी मिलें जो वेतन देती हैं, उनकी सूची आप मुझे तुरन्त भेज सकें तो आभारी होऊँगा। मैं चाहता हूँ कि यदि मिल ग्रूप हमारी रायसे किसी भी प्रकारसे बँधे बिना अलग-अलग विभागके मजदूरोंके बारेमें अपनी राय दे सके, तो दे। अगर हममें से कोई भी किसी बन्धनके बिना सलाह-मशविरेमें शामिल हो सके, तो उस हदतक हमारा प्रस्ताव अधिक ज्ञानपूर्वक प्रस्तुत किया गया माना जायेगा। मुझे मजदूरोंके प्रति उनके मजदूर होनेके कारण ही कोई खास पक्षपात नहीं है; मुझे तो न्यायके प्रति पक्षपात है और चूँकि वह अक्सर मजदूरोंके पक्षमें पाया जाता है, इसलिए आम तौर-पर यह खयाल पैदा हुआ है कि मेरा उनके प्रति पक्षपात है। मुझसे अहमदाबादके महान् उद्योगका अनिष्ट हो ही नहीं सकता। इसलिए मुझे आशा है कि आपकी संस्था इस कठिन काममें हमें पूरी मदद देगी।[३] मुझे आशा है कि इस पत्रका उत्तर आप तुरन्त

१. मन्त्री, अहमदाबाद मिल-मालिक संघ।

२. एक पंच-मण्डल १४ फरवरीको नियुक्त किया गया था। इसमें दोनों पक्षोंके प्रतिनिधि थे और सरपंचकी हैसियतसे कलक्टर थे। किन्तु कुछ मिलोंके मजदूरोंने गलतफहमीके कारण हड़ताल कर दी।

३. गांधीजीने अहमदाबाद और बम्बईकी मजदूरीकी दरोंका अध्ययन करनेके बाद यह निष्कर्ष निकाला कि वेतनोंमें ३५ प्रतिशत वृद्धिकी माँग उचित होगी। मिल-मालिक इस आधारपर निश्चित सम्मति देकर गांधीजीकी सहायता न कर सके, इसलिए स्थिति बिगड़ गई।

देंगे। मैं जल्दी इसलिए कर रहा हूँ कि मैंने, संभव हो तो, अपने इस सलाह-मशविरेका परिणाम, अधिकसे-अधिक बुधवार तक मजदूरोंको बता देनेके लिए कहा है।

मो० क० गांधी

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१२६. तार : ए० एच० वेस्टको[1]

[अहमदाबाद
फरवरी २४, १९१८ के आसपास][2]

आप अपनी योजनापर अमल कर सकते हैं। शुभ कामना।

वेस्टके टाइप किये हुए मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ७६०५) की फोटो-नकलसे।

१२७. पत्र : गो० कृ० देवधरको

नडियाद
फरवरी २६, १९१८

प्रिय देवधर[3],

आपके दोनों पत्र और रिपोर्ट मुझे मिल गये हैं। मेरा निश्चित विचार है कि आपने अनजानेमें संघर्षको नुकसान पहुँचाया है और अपने-आपको श्री प्रैटके हाथका खिलौना बन जाने दिया है। आपका यह कथन बिलकुल ही अपर्याप्त जानकारीपर आधारित है कि किसानोंने फसलका अनुमान कम लगाया है। अमृतलाल ठक्कर,[4] जिन्होंने तफसीलमें इस प्रश्नकी जाँच की है, ऐसा नहीं मानते कि साढ़े तीन आनेका

१. गांधीजीने १० दिसम्बर, १९१७ के पत्रमें वेस्टको आजीविकाके लिए खेतीका सहारा लेनेका सुझाव दिया था, जिसके उत्तरमें उन्होंने तार द्वारा सूचित किया कि खेती करना उनके लिए असम्भव है, किन्तु साथ ही उन्होंने छपाई सम्बन्धी कुछ काम करनेकी इच्छा बताते हुए गांधीजीसे मुद्रण-साधनोंकी सहायताकी याचना की थी। उसीके उत्तरमें गांधीजीने उपर्युक्त तार दिया था।

२. मार्च ३, १९१८ के अपने पत्रमें इस तारको उद्धृत करते हुए वेस्टने गांधीजीको सूचित किया था कि उन्हें यह एक सप्ताह पूर्व मिल गया था।

३. गोपाल कृष्ण देवधर (१८७१–१९३५); पूनामें महिला समाज सेवा संगठन, सेवा-सदन और भारत सेवक समाज [सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी] के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता।

४. (१८६९–१९५१); ठक्कर बापाके नामसे प्रसिद्ध; आपने अपना सारा जीवन हरिजन और आदिवासियोंके उत्थानमें लगा दिया था।

अनुमान किसी तरह कम है। आप जानते हैं कि सरकारी अन्दाजमें भी बादमें घटा-बढ़ी की गई है।

और यह कैसे कहा जा सकता है कि काफी ठोस रियायतें दी गई हैं; जब हम जानते हैं कि अभी तक एक भी रियायत नहीं दी गई? प्रैटने जब कहा कि रबीकी फसल पचीस फीसदीसे कम होगी, तो माफी दी जायेगी, तब वह हमें केवल बहला रहा था। क्या आप जानते हैं कि रबीकी फसलमें कपास, तम्बाकू, तुअर और अरंडा नहीं गिने जाते?

और आपको रिपोर्ट प्रकाशित करनेकी जरूरत ही क्या थी? जब इस संघर्षमें मैं पड़ा हुआ हूँ, तो रिपोर्ट प्रकाशित करनेके समयका निर्णय करनेका काम आपको मेरे ऊपर छोड़ देना चाहिए था।

अन्तमें आप यह क्यों समझ लेते हैं कि जितना अधिकारी मंजूर करें, उतना ही हमें मिल सकता है? आप यह क्यों नहीं मानते कि जितना पानेके हम अधिकारी हैं, उतना हमें मिलना ही चाहिए?

मेरे खयालसे आप जरूरतसे ज्यादा काम हाथमें ले लेते हैं और इससे न तो अपने साथ और न कामके साथ ही आप न्याय कर पाते हैं। आप बीमार हैं और जितना काम संभाल सकते हैं, उससे कहीं ज्यादा काम आपने ले रखा है। आपको हिम्मतके साथ कहना चाहिए था कि इस जाँचका काम मैं अपने सिर नहीं ले सकता।

मैं जानता हूँ कि आप मेरे पत्रका गलत अर्थ नहीं लगायेंगे। मैं आपको इतना स्नेह करता हूँ कि जान-बूझकर आपके प्रति अन्याय नहीं कर सकता। आपके प्रति अपना आदर, मैं इसी तरह प्रदर्शित कर सकता हूँ कि अपने हृदयके द्वार आपके सामने खोल दूँ और उसमें जो-कुछ है, उसे आपको देखने दूँ। कोई भी मित्र इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता। जो इससे कम करता है, वह उतना ही कम मित्र माना जायेगा।

आपको मेरी प्रार्थना सुननी चाहिए और अमृतलालको गुजरातके काममें लगा देना चाहिए। इस प्रकार वह 'सोसाइटी' की अधिक अच्छी सेवा कर सकेगा, क्योंकि गुजरात-के काममें उसकी प्रतिभा सबसे अधिक निखरेगी। धारासभाका काम ऐसा व्यक्ति ही कर सकता है, जिसमें बुद्धि हो। किन्तु अस्पृश्योंका काम तो जिसमें बुद्धिको रास्ता बताने-वाला हृदय हो, उसीसे हो सकता है। अमृतलाल इसी प्रकारके मनुष्य हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१२८. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

फरवरी २६, १९१८

पत्रिका — १[1]

तारीख २२ फरवरीसे यह तालाबन्दी [लॉक आऊट] शुरू है, और उसी दिनसे बुनाई विभागके कारीगरोंके पास कोई काम नहीं है। जब मिल-मालिकोंने महामारीके कारण दिये जानेवाले भत्तेको बन्द करनेकी सूचना निकाली और उसके सम्बन्धमें गलत फहमियाँ खड़ी हुईं, तो मालिकोंकी ओरसे यह कहा गया था कि मजदूरों और मालिकोंके आपसी झगड़ेका फैसला पंच द्वारा करा लिया जाये। यह मान लिया गया था कि मजदूर भी इससे सहमत ही होंगे। आखिर, तारीख १४–२–१९१८ के दिन मिल-मालिकोंने यह तय करनेके लिए कि महामारीके भत्तेके बदलेमें महँगाईका कितना भत्ता देना उचित होगा, पंच नियुक्त करनेका निश्चय किया। फलतः मजदूरोंकी ओरसे महात्मा गांधी, श्री शंकरलाल बैंकर और श्री वल्लभभाई पटेल, और मालिकोंकी ओरसे सेठ अम्बालाल साराभाई, सेठ जगाभाई दलपतभाई और सेठ चन्दुलाल पंच कायम किये गये और कलक्टर साहब इस पंच-समितिके सभापति बनाये गये। इसके बाद ही किन्हीं गलतफहमियोंकी वजहसे कुछ मिलोंमें मजदूरोंने हड़ताल कर दी। यह मजदूरोंकी भूल थी। मजदूर अपनी भूल सुधारनेको तैयार भी हुए। पर मालिकोंने सोचा कि जब मजदूरोंने पंचोंके फैसलेसे पहले ही हड़ताल करनेकी गलती की है, तो अब वे अपने पंच सम्बन्धी प्रस्तावको रद कर सकते हैं, और उन्होंने यह प्रस्ताव रद कर दिया। इसके साथ उन्होंने यह भी तय किया कि मजदूरोंको उनकी चढ़ी हुई तनख्वाह चुका दी जाये; और अगर २० प्रतिशत भत्तेसे उन्हें सन्तोष न हो, तो उनको रुखसत दे दी जाये। बुनकरोंको सन्तोष न हुआ इसलिए उन्होंने काम छोड़ दिया, और मालिकोंकी तालाबन्दी शुरू हुई। मजदूर पक्षके पंचोंने जब अपनी जिम्मेदारीका विचार किया, तो वे इस नतीजेपर पहुँचे कि उन्हें मजदूरोंको कुछ-न-कुछ सलाह तो देनी ही चाहिए और उनको यह भी बताना चाहिए कि वे उचित रूपसे कितना इजाफा माँग सकते हैं। अतः इस सम्बन्धमें उन्होंने चर्चा चलाई, मालिकों और मजदूरोंके हितका विचार किया, आस-पासकी परिस्थितिकी जाँच की, और

१. मिल-मालिकों और मिल-मजदूरोंकी इस लड़ाईमें मजदूरोंका समुचित मार्ग-दर्शन करनेके लिए जो अनेक उपाय किये गये उनमें से एक इन पत्रिकाओंको निकालना भी था। "उद्देश्य यह था कि संघर्षके सिद्धान्त और उसका रहस्य उनके दिलमें सदाके लिए अंकित हो जायें,[1] उन्हें सरल और उच्च कोटिका साहित्य मिलता रहे जिससे उनका मानसिक और बौद्धिक विकास हो और उन्नतिके इन साधनोंको वे अपने बाल-बच्चोंके लिए वपौतीके रूपमें छोड़ सकें।" पत्रिकाएँ अनसूयाबेन साराभाईके नामसे निकली थीं किन्तु जैसा महादेव देसाईने अपनी पुस्तक **एक धर्मयुद्ध**में कहा है उनके लेखक, गांधीजी थे। यह पत्रिका तालाबन्दीके पाँचवें दिन निकली थी। पत्रिकाएँ शामको आम सभामें पढ़ी जाती थीं।

यह तय किया कि ३५ फीसदी इजाफेकी माँग उचित है, और मजदूरोंको इतना इजाफा माँगनेकी सलाह देनी चाहिए। मजदूरोंको यह सलाह देनेसे पहले उन्होंने मालिकोंको अपने इस निर्णयकी सूचना दी और लिखा कि अगर उन्हें इसके विरोधमें कुछ कहना हो, तो उसपर विचार किया जायेगा। पर मालिकोंने इस सम्बन्धमें अपना कोई विचार प्रकट नहीं किया। मजदूरोंकी अपनी माँग ५० प्रतिशत की थी; उसे कम करके उन्होंने ३५ प्रतिशत माँगनेका निश्चय किया।

मजदूरोंकी प्रतिज्ञा

मजदूरोंने नीचे लिखा निश्चय किया है:

१. जुलाईके वेतनपर जबतक ३५ प्रतिशत इजाफा न मिलेगा, वे कामपर न जायेंगे।
२. तालाबन्दीके दिनोंमें किसी भी प्रकारका दंगा-फसाद न करेंगे, मारपीटसे बचेंगे, लूटपाटसे दूर रहेंगे, मालिकोंकी सम्पत्तिको नुकसान न पहुँचायेंगे, गाली-गलौचसे बचेंगे और शान्तिपूर्वक रहेंगे।

मजदूर अपनी इस प्रतिज्ञाको किसप्रकार पूर्ण कर सकते हैं, इसका विचार पत्रिकाके अगले अंकमें किया जायेगा। मजदूरोंको मेरी[1] सलाह है कि यदि उन्हें कुछ कहना हो तो वे किसी भी समय मेरे बंगलेपर आकर मुझसे कह सकते हैं।

[गुजरातीसे]
एक धर्मयुद्ध

१२९. पत्र: कलक्टरको[2]

नडियाद
फरवरी २६, १९१८

[प्रिय महोदय,]

मैंने स्वयं जो जाँच की उससे और मेरे साथी कार्यकर्त्ताओं द्वारा की गई जाँचसे[3] मुझे विश्वास हो गया है कि लगान-वसूली मुल्तवी रखना उचित है। फिर भी यदि हम सबके निष्कर्ष आपको स्वीकार न हों तो निवेदन है कि स्वतन्त्र वृत्तिवाले लोगोंके एक ऐसे निकाय द्वारा, जिसमें सरकार और जनता दोनोंके प्रतिनिधि शामिल हों, सारे मामलेकी जाँच करवा लेनेके लिए अब भी समय शेष है। देखता हूँ, कई हजार किसानोंने

१. अनसूयाबेन साराभाई।
२. खेड़ाके कलक्टर श्री चैटफील्ड, जो पंच-फैसलेके लिए अंतिम निर्णायक चुने गये थे।
३. फरवरी १६ को गांधीजी नड़ियाद पहुँचे। उसके बाद उन्होंने तथा उनके साथियोंने कई टोलियोंमें बँटकर बहुत सारे गांवोंमें फसलकी स्थितिकी जाँच करनेका काम शुरू किया। एक हफ्तेमें ६०० में से ४२५ गांवोंके बारेमें रिपोर्ट तैयार हो गई। गांधीजीने ३० गाँवोंमें जाँचका काम स्वयं किया था। उन्होंने जिला अधिकारियोंको जो पत्र लिखा, उसका आधार इसी जाँचके निष्कर्ष थे।

जबरदस्त दबाव डाले जानेके कारण लगानकी पहली किस्त चुका दी है, और कुछने तो एक ही साथ दोनों किस्तें चुका दी हैं। इसके लिए बहुतोंको अपने मवेशी आदि बेच देने पड़े। मैं साथमें ऐसे गाँवोंकी एक सूची[1] भेज रहा हूँ, जहाँ फसल चार आने या उससे कम हुई है। मुझे भरोसा है कि आप यह सब देखनेके बाद लगान-वसूली मुल्तवी करनेका हुक्म जारी कर देंगे।

[अंग्रेजीसे]

सरदार वल्लभभाई पटेल, खण्ड १

१३०. पत्र : खेड़ाकी स्थितिके सम्बन्धमें[2]

[नडियाद]
फरवरी २६, १९१८

[प्रिय मित्र,]

आपका गुजरात-सभाके सम्बन्धमें लिखा पत्र मैंने पढ़ा है। खेड़ा जिलेके किसानोंके लिए काम करना हम सबका फर्ज है। मैं तो मानता हूँ कि यदि सभा यह काम नहीं करती तो उसे गुजरात-सभा कहलानेका कोई हक नहीं है।

किसानोंको जो सलाह दी जाती है उसकी मुख्य जिम्मेदारी मेरे सिरपर है। किसानोंका कहना है कि फसल चार आनेसे कम हुई है। सरकार यह बात स्वीकार करती है कि जिस वर्ष फसल चार आनेसे कम हो, उस वर्ष किसानोंसे लगान वसूल न किया जाये। अगर सरकार किसानोंकी बात न माने तो उनके पास एक ही उपाय है कि वे सरकारको स्वयं लगान न देकर उसे अपना माल-असबाब बेच डालने दें। यदि किसान ऐसा नहीं करते तो यह बात झूठे ठहराये जानेके लिए पैसा देने-जैसी होगी।

लगान जमीनकी उत्पादन-क्षमताके अनुसार निर्धारित किया जाता है। तब स्पष्ट है कि यदि जमीनमें उपज कुछ भी नहीं हो तो लगान नहीं लिया जा सकता। सरकारने किस्तोंकी व्यवस्था की है; लेकिन यह कोई कृपाका कार्य नहीं, बल्कि निरी आवश्यकता है।

लेकिन मुझे तो संभावना ऐसी दिखाई देती है कि इस सम्बन्धमें आपके और सभाके बीच मतभेद बना रहेगा। मगर मतभेद बरदाश्त करना तो सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंके कामका एक हिस्सा है। जनताके सामने दोनों मत रखे जा सकते हैं, और फिर उनके बीच चुनाव करनेकी बात जनतापर रह जायेगी।

१. यह उपलब्ध नहीं है।

२. नाम-पता अनुपलब्ध है।

मुझे तो यह बात बिलकुल स्वयंसिद्ध-सी लगती है कि अन्यायके खिलाफ अपनी भावना प्रकट करनेके लिए नम्रतापूर्वक लगान देनेसे इनकार करने और सरकारको उसे जबरदस्ती वसूल करने देनेमें कुछ भी गैरकानूनी नहीं है।

आपका,
मोहनदास

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१३१. भाषण : अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें[1]

सावरमती
फरवरी २६, १९१८

आज तालाबंदीका पाँचवाँ रोज है। आपमें से कई मानते होंगे कि पाँच-पन्द्रह दिन दुःख सह लेनेसे सब कुछ ठीक हो जायेगा। मैं आपसे बार-बार कहता हूँ कि हम यह उम्मीद जरूर रखें कि हमारा काम कुछ ही दिनोंमें पूरा हो जायेगा, लेकिन इसके साथ ही हमारा यह दृढ़ निश्चय भी हो कि यदि हमारी आशा पूरी न होगी तो हम मर मिटना कबूल करेंगे, लेकिन कामपर हरगिज न जायेंगे। मजदूरोंके पास रुपये-पैसे नहीं हैं, लेकिन रुपये-पैसेसे भी अधिक कीमती धन उनके पास है, और वह है, उनके हाथ-पैर, उनकी हिम्मत, और उनकी आस्तिकता। ऐसा समय भी आ सकता है, जब आपको भूखों मरना पड़े। उस वक्तके लिए आपको यह विश्वास रखना चाहिए कि आप लोगोंको खिलाकर ही हम खायेंगे, आपको भूखों हरगिज न मरने देंगे।[2]

कई भाई कहते हैं कि हम ३५ प्रतिशतसे ज्यादा माँग सकते हैं। मैं तो कहता हूँ कि आप १०० प्रतिशत भी माँग सकते हैं। लेकिन यदि आप उतना माँगने लगें, तो वह अन्याय ही कहा जायेगा। मौजूदा हालतमें आपने जो-कुछ माँगा है, उसीमें सन्तोष रखिए। यदि आप इससे ज्यादा माँगेंगे, तो मुझे दुःख होगा। हमें किसीके भी सामने कोई गैरवाजिब माँग पेश नहीं करनी चाहिए। मेरी रायमें ३५ प्रतिशतकी माँग मुनासिब माँग है।[3]

[गुजरातीसे]
एक धर्मयुद्ध

१. हड़तालके दिनोंमें हड़ताली मिल-मजदूर प्रतिदिन शामको सावरमतीके किनारे, एक बबूलके झाड़के नीचे, इकट्ठे हो जाते थे और गांधीजी उनकी सभामें भाषण करते थे।

२. मजदूरोंके सलाहकारोंने ऐसी शपथ ली थी।

३. भाषणका शेषांश उपलब्ध नहीं है। गांधीजी मूक कार्यको ज्यादा महत्त्व देते थे इसलिए भाषणोंकी रिपोर्ट जानबूझकर समाचारपत्रोंको नहीं दी जाती थी। गांधीजीके इन भाषणों या प्रवचनोंके अंश महादेव देसाईने अपनी पुस्तक **एक धर्मयुद्ध**में दिये हैं। महादेव देसाईने अपनी डायरीमें लिखा है: उस बबूलके वृक्षके तले कितने ऐतिहासिक प्रसंग घटे इसका ज्ञान इन सभाओंमें उपस्थित लोगोंके अतिरिक्त शायद ही अन्य व्यक्तियोंको रहा हो।

१३२. प्रवचन : आश्रममें प्रातःकालीन प्रार्थनाके बाद[1]

फरवरी २७, १९१८

मैं कहता आया हूँ कि सत्याग्रह केवल सरकारके विरुद्ध ही नहीं किया जा सकता, वह किसी भी [अन्यायपूर्ण] स्थितिमें किसीके भी विरुद्ध किया जा सकता है। इसके उदाहरण हम आज देख रहे हैं। खेड़ामें सरकारके विरुद्ध सत्याग्रह चल रहा है, अहमदाबाद में धनिकोंके विरुद्ध सत्याग्रह चल रहा है और अस्पृश्योंके प्रश्नपर शास्त्रोंके विरुद्ध सत्याग्रह चल रहा है। मेरा यह खयाल है कि इन सब मामलोंमें जीत हमारी ही होगी। सत्य हमारे ही पक्षमें है। खेड़ामें सरकारने उद्धततासे काम लिया है। उसके विरुद्ध सत्याग्रह किये बिना काम नहीं चल सकता था। अगर उसमें हमारी जीत नहीं होगी, तो इसका कारण केवल हमारी ही अपूर्णता होगी, सत्याग्रहकी अपूर्णता नहीं। बिहारमें सत्याग्रहकी विजय हुई। उसका कारण यह था कि वहाँ मुझे कार्यकर्त्ता बहुत ही पवित्र मिल गये थे। यहाँ मैं देखता हूँ कि इतनी पवित्रता नहीं है। फिर भी मुझे, जितना मैं सोचता था, उससे अधिक मिल रहा है। अहमदाबादमें जो स्थिति हो गई है, वह भी अच्छी है। कल कलक्टरने मुझसे एक बात कही थी। उसे आप सबसे कहनेका जी हो रहा है। यह बात मैंने कहीं अन्यत्र नहीं कही है। मुझे इस बातको आश्रममें कहना ठीक लगता है। कलक्टरने यह बात कहने-भरके लिए नहीं कही, बल्कि ये उनके हृदयके सच्चे भाव थे। उन्होंने कहा 'मिल-मालिकों और मजदूरोंके बीच इतने स्नेहसे हुई लड़ाई मैं अपनी जिन्दगीमें पहले-पहल यहीं देख रहा हूँ।' मुझे भी ऐसा लगता है कि दोनों पक्षोंके बीच इतना अच्छा सम्बन्ध कभी नहीं देखा गया। तुम देखते हो कि अम्बालालभाई[2] इस लड़ाईमें विरोधी पक्षके हैं, फिर भी कल खाना खाने आये थे और मैंने जब फिर कहा कि कल आपको भोजन यहीं करना है, तब वे स्थिति समझ गये। वे समझ गये कि भोजनके लिए क्यों कह रहा हूँ। और उन्होंने तुरन्त ही यह बात मंजूर कर ली। इससे अधिक अच्छी बात और क्या हो सकती है? मेरा खयाल है कि हममें अवसरके अनुरूप दृढ़ता, पवित्रता और एकाग्रता होगी, तो हम हारेंगे नहीं। यह आन्दोलन जो चल रहा है, उससे मैं तुम सबको परिचित नहीं रख सकता; इसलिए अपरिचित रहनेमें ही तुम्हारा संयम है। इतना ही है कि इस स्थितिमें जरूरत पड़े तो हम काम करनेके लिए तैयार रहें। इसके लिए हमें अपने भीतर दृढ़ता और संयम ही पैदा करने हैं।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. गांधीजी आश्रममें प्रार्थनाके पश्चात् प्रायः प्रवचन किया करते थे।

२. अम्बालाल साराभाई।

१३३. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

फरवरी २७, १९१८

पत्रिका — २

कलके अंकमें हम देख चुके हैं कि मजदूरोंकी प्रतिज्ञा क्या है। अब हमें यह देखना है कि उस प्रतिज्ञाका पालन कैसे किया जाये। हम जानते हैं कि मालिकोंके पास करोड़ों रुपये हैं, और मजदूरोंके पास कुछ भी नहीं। हालाँकि मजदूरोंके पास पैसा नहीं है, तो भी उनके पास काम कर सकने लायक हाथ-पैर हैं। और, दुनियाका कोई हिस्सा ऐसा नहीं, जहाँ मजदूरोंके बिना काम चल सकता हो। इसलिए अगर मजदूर समझ ले, तो उसे सहज ही पता चल जाये कि सच्ची सत्ता तो उसीकी है। मजदूरके बिना पैसा असहाय बन जाता है। अगर मजदूर इस बातको समझ जाये, तो उसे यह विश्वास भी हो जाये कि विजय उसीकी होगी। लेकिन इस तरहकी सत्ता धारण करनेवाले मजदूरमें कुछ गुण होने चाहिए। अगर उसके पास ये गुण नहीं हैं, तो वह कुछ कर नहीं सकता। अब हम देखें कि ये गुण क्या हो सकते हैं:

१. मजदूरको सत्यवादी होना चाहिए। उसके लिए झूठ बोलनेका कोई कारण ही नहीं रहता। लेकिन अगर वह झूठ बोलता है, तो उसे मुँहमाँगी मजदूरी नहीं मिल सकती। सच बोलनेवाला हमेशा अपनी बातपर कायम रहता है, और जो अपनी बात-पर कायम रहता है, वह कभी हारता नहीं।

२. हरएकमें हिम्मत होनी चाहिए। 'मेरी नौकरी गई, अब मेरा क्या होगा इस तरहकी झूठी दहशतके कारण हममें से कइयोंको हमेशा गुलामी करनी पड़ती है।

३. हममें न्यायबुद्धि होनी चाहिए। अगर हम अपनी योग्यतासे अधिक माँगेंगे, तो हमें बहुत-थोड़े मालिक मिलेंगे, और शायद न भी मिलें। [लेकिन] हमने अपनी इस लड़ाईमें जिस इजाफेकी माँग की है, वह मुनासिब ही है। इसलिए हमें विश्वास रखना चाहिए कि देरमें या जल्दी ही हमें इन्साफ मिलेगा और जरूर मिलेगा।

४. मालिकोंपर हमें किसी तरहकी नाराजी न रखनी चाहिए, और न उनके लिए दिलमें दुश्मनीके कोई खयाल आने देना चाहिए। आखिर हमें नौकरी तो उन्हींके यहाँ करनी है। गलती हरएक आदमीसे होती है। हमारा अपना खयाल है कि माँगा हुआ इजाफा न देकर मिल-मालिक गलती कर रहे हैं। अगर हम आखिरतक सीधे-सच्चे रहें, तो मालिक अपनी भूल जरूर सुधार लेंगे। इस समय तो वे गुस्सेमें हैं। उनके दिलमें यह शक भी पैदा हो गया है कि अगर वे आज मजदूरोंकी माँग मंजूर कर लेंगे, तो फिर मजदूर उन्हें हमेशा परेशान किया करेंगे। इस शकको मिटानेके लिए हमें अपने बरतावसे मालिकोंको अधिकसे-अधिक विश्वास दिलाना चाहिए। इस सम्बन्धमें हमारा पहला काम तो यह होना चाहिए कि हम उनके प्रति वैर-भाव न रखें।

५. हरएक मजदूरको यह अच्छी तरह याद रखना चाहिए कि इस जंगी लड़ाईमें मुसीबतोंका सामना तो करना ही पड़ेगा। लेकिन जो मुसीबतें जानबूझ कर उठाई जाती

हैं, वे अन्तमें सुख देनेवाली होती हैं। यह दुःखकी बात है कि हमें पेटभर खानेको भी नहीं मिलता। फिर भी अपने अज्ञानके कारण हम इस दुःखको सहते हैं, और जैसे-तैसे जिन्दगीके दिन बिता देते हैं। इस दुःखको मिटानेके लिए हमने एक तरीका अख्तियार किया है : हम मालिकोंके सामने अपनी यह माँग पेश कर चुके हैं कि जो इजाफा हम चाहते हैं, उसके बिना हम अपना पेट भली-भाँति पाल नहीं सकते। अगर रोज-रोजकी इस भूखको मिटानेके लिए माँगा हुआ इजाफा हमें न मिले, तो हमें जानबूझ कर आज ही भूखके दुःखको सह लेना चाहिए। आखिर मालिक भी कबतक कठोर बने रहेंगे?

६. आखिरी बात यह है कि गरीबोंका रक्षक भगवान् है। हमें समझ लेना चाहिए कि तदबीर करना हमारा काम है, फल हमें अपनी तकदीरके अनुसार मिल ही जायेगा। यह समझकर हमें भगवानपर भरोसा रखना चाहिए और जबतक हमारी दरखास्त मंजूर नहीं होती, हमें शान्तिपूर्वक अपनी बातपर मजबूतीके साथ डटे रहना चाहिए।

जो मजदूर इस तरहका बरताव करेंगे, उन्हें अपनी प्रतिज्ञाके पालनमें कभी कठिनाई न आयेगी।

तालाबन्दीके दिनोंमें मजदूर अपना समय किस प्रकार बितायें, इसका विचार कलकी पत्रिकामें किया जायेगा।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१३४. पत्र : शुएब कुरैशीको

फरवरी २७, १९१८

प्रिय मित्र,

मुझे अपनेपर शर्म आ रही है। मैं वहाँ पहुँच जानेको अत्यन्त उत्सुक हूँ, किन्तु घटनाओंने मेरे खिलाफ जैसे साजिश कर रखी है। हड़ताल अभी जारी ही है और परिस्थिति इतनी नाजुक है कि उसे छोड़कर कहीं भी जानेकी हिम्मत नहीं कर सकता। खेड़ाके मामलेमें भी लाखों आदमियोंके हकका सवाल है, इसलिए मुझे उसपर पूरा ध्यान देना ही पड़ेगा। मैं जानता हूँ कि अली भाइयोंके मामलेमें ढिलाई करना भी खतरनाक होगा। इसलिए यहाँके कामसे जबतक मुक्त नहीं हो जाऊँ, तबतक तो मुझे यहीं रहना है। मेरी समझमें यहाँके कामको बीचमें छोड़ दूँ, यह आप भी हरगिज नहीं चाहेंगे। क्या आप मेरी तरफसे मौलाना साहबसे माफी माँग लेंगे? वहाँ जो-कुछ हो रहा हो, उसकी मुझे जानकारी देते रहिए।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

१३५. पत्र: रामदास गांधीको

फरवरी २७, १९१८

चि० रामदास,

आज मैं तुम्हारे बारेमें सोचता रहा हूँ। तुम्हारे पत्रोंमें मुझे निराशा दिखाई देती है। तुम्हें शिक्षाकी कमी महसूस होती है। तुम्हें ऐसा भी लगता है कि तुम ठीक ठिकानेपर नहीं हो। तुम मेरे सामने होते तो मैं तुम्हें अपनी गोदमें लेकर आश्वासन देता। तुम्हें सन्तोष नहीं दे पाता; अपनी इतनी कमी समझता हूँ। मेरे प्रेममें कहीं-न-कहीं कमी होनी चाहिए। मेरी सभी त्रुटियाँ अनजाने हुई होंगी, यह समझकर मुझे क्षमा करना। बच्चोंका माता-पितापर बड़ा हक है। वे माता-पिताके सम्मुख सदा विनीत अवस्थामें रहते हैं। माता-पिताकी भूल उन्हें बरबाद कर देती है। हमारे शास्त्रोंने माता-पिताकी परमेश्वरसे तुलना की है। ऐसी जिम्मेदारी उठा सकनेवाले माता-पिता दुनियामें विरले ही होते हैं। माता-पिताके अत्यन्त संसारी होनेके कारण विरासतमें उनकी सांसारिकता बच्चोंमें आ जाती है और इस प्रकार उत्तरोत्तर स्वार्थमय शरीर उत्पन्न होते रहते हैं। तुम अपनेको अयोग्य पुत्र क्यों मानते हो? क्या तुम यह समझ सकते हो कि तुम अयोग्य होगे, तो मैं भी अयोग्य ठहरूँगा? मैं अयोग्य ठहरना नहीं चाहता, इसलिए तुम अयोग्य कैसे बन सकते हो? तुम धन प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हुए भी उसके लोभसे सत्यको न छोड़ोगे। तुम विवाहकी इच्छा रखते हुए भी विवेकसे काम लोगे। अतः मैं तुम्हें योग्य पुत्र ही मानूंगा।

तुम मुझसे क्षमा न माँगो। मुझे तुमने असन्तोष नहीं दिया। मैं चाहता हूँ कि तुम अपने वहाँके प्रयोग पूरे करके मेरे पास आओ। तुम्हारे विवाहमें मैं भाग लूँगा। तुम्हें अध्ययन करना हो, तो मैं उसमें मदद दूँगा। तुम अपना शरीर लोहे-जैसा मजबूत बना लोगे, तो दूसरी चीजोंसे मैं निपट लूँगा। अभी तो हम सब बिखर गये हैं। तुम वहाँ, मणिलाल फीनिक्समें, देवा बधरवामें, बा भीतीहरवामें, हरिलाल कलकत्तेमें और मैं भटकनेमें। सम्भव है इस वियोगमें देश-सेवा होगी, इसीमें आत्माकी उन्नति होगी। कुछ भी हो, आगत कष्टोंको प्रसन्नचित्तसे भोगना ही चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१३६. भाषण : अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें

फरवरी २७, १९१८[1]

नेक सलाह देने और हिम्मतका सबक सिखानेवाले आपको कम मिलेंगे। पस्त-हिम्मत करनेवालोंकी कमी न रहेगी। इनमें से कई आपके मित्र भी हो सकते हैं। खुदाके नामपर जितना मिल जाये, उतना ले लेनेकी सलाह देनेवाले भी आपको बहुतेरे मिलेंगे। उनकी ऐसी सलाह यों सुननेमें बहुत मीठी हो सकती है, लेकिन दरअसल उससे कड़वी कोई सलाह नहीं हो सकती। हमें परमात्माको छोड़ और किसीके सामने अपनी दीनता नहीं दिखलानी है। यह कोई जरूरी नहीं कि गरीबीके कारण हम अपनेको दीन ही समझें। भगवान्‌ने हाथ-पैर तो हममें से हरएकको दिये हैं। उनका उपयोग करके ही हम स्वराज्यका आनन्द उठा सकेंगे। मालिकोंके साथ अच्छी तरह रह सकनेके लिए हमें दृढ़ बननेकी जरूरत है। आज जिस हालतमें हम पड़े हुए हैं, उसे देखते हुए हमें अपने मालिकोंसे यह कहना चाहिए कि हम उनका यह दबाव बरदाश्त नहीं कर सकते। आप मेरी सलाहपर चलें या किसी औरकी सलाहपर, इतना मैं आपसे कह सकता हूँ कि इस मामलेमें तो मेरी या दूसरे किसीकी सलाह और सहायताके बिना भी आप विजयी बन सकेंगे। यों, मेरी या दूसरे लाखों आदमियोंकी मदद पाकर भी आप जीत नहीं सकते, क्योंकि आपकी जीतका आधार आपके ही ऊपर है। आपकी ईमानदारी, ईश्वरमें आपकी आस्था और श्रद्धा, तथा आपकी हिम्मत ही आपको विजयी बना सकती है। हम तो सिर्फ आपकी सहायता कर सकते हैं; आपको टेका या सहारा दे सकते हैं; लेकिन खड़ा तो खुद आप ही को होना पड़ेगा। बिना लिखे और बिना बोले जो प्रतिज्ञा आपने की है, उसपर डटे रहिए और यकीन रखिए कि जीत आपकी ही है।

इस दिनकी पत्रिकाका मर्म समझाते हुए गांधीजीने कहा :

यदि आप पहलेसे ही हार मानकर बैठ जाते, तो मुझे या अनसूया बहनको आपके पास आनेकी कोई जरूरत न रह जाती। लेकिन आपने तो लड़ लेनेका निश्चय किया। और अब यह बात सारे हिन्दुस्तानमें फैल गई है। आगे चलकर दुनिया भी सुनेगी कि अहमदाबादके मजदूरोंने ईश्वरको साक्षी रखकर इस बातकी शपथ ली है कि जबतक उनकी अमुक माँग पूरी न होगी, वे कामपर नहीं लौटेंगे। भविष्यमें आपके बाल-बच्चे इस पेड़को देखकर कहेंगे कि इसीकी छायामें बैठकर हमारे माता-पिताओंने परमात्माकी साक्षीमें कठिन प्रतिज्ञाएँ की थीं। यदि आप उन प्रतिज्ञाओंका पालन न करेंगे, तो वे बच्चे आपके बारेमें क्या सोचेंगे? आपपर आपके बाल-बच्चोंकी आशाएँ निर्भर करती हैं। मैं आपमें से हरएकको चेताता और कहता हूँ कि खबरदार! किसीके बहकाने या फुसलानेमें आकर ली हुई टेक न छोड़ना; प्रतिज्ञासे मुँह न मोड़ना; उसपर दृढ़तापूर्वक अड़े रहना। आपको भूखों मरना

१. यह भाषण तालाबन्दीके छठे दिन दिया गया था।

पड़े तो भी आप साफ कह दीजिए कि परमेश्वरको साक्षी रखकर जो प्रतिज्ञा आपने की है, उससे आपको कोई डिगा नहीं सकता। आपकी वह टेक गांधीकी खातिर नहीं; खुदाकी खातिर है। आप इसपर यकीन रखिए, कायम रहिए, और लड़ लीजिये। हिन्दुस्तान देखेगा कि मजदूर मर-मिटनेको तैयार थे, कसम छोड़नेको नहीं। आप इन पत्रिकाओंको बरजबान कर लीजिये, और ली हुई अपनी प्रतिज्ञापर सोच-समझकर डटे रहिए। मगर इन्हें खाली रट लेनेसे भी कोई फायदा नहीं। यों तो तोता रटनके ढँगपर कइयोंको 'कुरान शरीफ' और 'गीता' जबानी याद होती है; तुलसीदासकी 'रामायण' भी कइयोंको कण्ठाग्र रहती है। लेकिन इतना ही काफी नहीं। इन्हें याद करके अगर आप इनपर अमल भी करेंगे, तो यकीन रखिये कि पैंतीसके पौने पैंतीस कोई आपको न दे सकेगा।[1]

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१३७. पत्र : रावजीभाई पटेलको

[फरवरी २७, १९१८ के बाद]

भाईश्री रावजीभाई,

भाई अम्बालालकी[2] मृत्यु हमें सिखाती है कि सेवाधर्मके पालनमें हम एक क्षणकी भी ढिलाई नहीं कर सकते। यमराज हमें चाहे जब बुला सकते हैं। और यदि हमें देश-सेवाके केवल हवाई किले ही बाँधना हो, उसके लिए सक्रिय प्रयत्न न करना हो तो बहुत सम्भव है कि हमें खाली हाथ ही चले जाना पड़े और हमारे सारे मनोरथ मिथ्या सिद्ध हों। भाई अम्बालाल अपने पीछे जिन लोगोंको छोड़ गये हैं उन्हें मेरी ओरसे आश्वासन देना और कहना कि भाई अम्बालालका सच्चा स्मरण तो इसीमें है कि हम उनके चारित्र्यका अनुकरण करें।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

जीवननां झरणां

१. इस भाषणका बाकी हिस्सा उपलब्ध नहीं है।

२. चरोतर शिक्षा समितिके सदस्य तथा उसके प्रथम मंत्री।

१३८. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

फरवरी २८, १९१८

पत्रिका – ३

मजदूरोंकी प्रतिज्ञाके बारेमें हम लिख चुके हैं और इस बातका विचार भी कर चुके हैं कि उस प्रतिज्ञाका किस प्रकार पालन किया जाये। अब आज हम यह देखें कि मजदूर तालाबन्दीके दिनोंमें अपना समय किस प्रकार बितायें। कहावत है कि बेकारके सिरपर शैतान सवार रहता है। इसलिए अहमदाबादमें दस हजार आदमियोंका बेकार रहना कभी अच्छा हो ही नहीं सकता। जो आदमी हमेशा दिनभर काममें जुटा रहता हो वह अचानक बेकार हो जाये तो उसे बहुत अटपटा मालूम होता है। हम जो-कुछ चाहते हैं, उसे पानेके लिए आजकी चर्चाका विषय बहुत ही महत्त्वका है। समयके सदुपयोगकी चर्चा करनेसे पहले यह बता देना जरूरी है कि बेकारीके इन दिनोंमें मजदूरोंको क्या-क्या नहीं करना चाहिए:

१. जुआ खेलनेमें समय न गँवाना चाहिए।

२. दिनमें सोकर समय न खोना चाहिए।

३. मिल-मालिककी और तालाबन्दीकी ही बातें करनेमें दिन नहीं काटने चाहिए।

४. कइयोंको चायकी दूकानोंमें जाकर बैठने, वहाँ फजूलकी गपशप लड़ाने और गैरजरूरी चीजें खाने-पीनेकी आदत पड़ जाती है। मजदूरोंको ऐसे स्थानोंपर बिलकुल नहीं जाना चाहिए।

५. जबतक तालाबन्दी जारी है, मजदूरोंको मिलोंमें न जाना चाहिए।

अब हम देखें कि हमें क्या करना चाहिए:

१. बहुतेरे मजदूरोंके घर और उनके आसपासकी जगह गन्दी पाई जाती है। कामके दिनोंमें आदमी इन बातोंकी ओर ध्यान नहीं दे सकता। अब चूँकि लाजिमी तौर-पर छुट्टी मनानेका मौका मिला है, मजदूर अपना कुछ समय अपने घर और आँगनकी सफाई करने तथा घरोंकी मरम्मत करनेमें बिता सकते हैं।

२. जो पढ़े-लिखे हैं, उन्हें पुस्तकें पढ़ने और अपना ज्ञान बढ़ानेमें समय बिताना चाहिए। वे अनपढ़ोंको पढ़ा भी सकते हैं। इस तरह मजदूर एक-दूसरेकी मदद करना सीख सकेंगे। जिन्हें पढ़नेका शौक है, उनको चाहिए कि वे दादाभाई पुस्तकालय और वाचनालयमें, अथवा ऐसी दूसरी संस्थाओंमें जहाँ मुफ्तमें पढ़नेको मिलता है, जायें और वहाँ अपना समय बितायें।

३. जिन्हें कौशल-साध्य दस्तकारियोंका ज्ञान है, यानी जो दर्जीका, बढ़ईका या नक्काशी वगैराका नफीस काम जानते हैं, वे खुद अपने लिए काम तलाश कर सकते हैं, और न मिलनेपर हमसे भी इसमें मदद ले सकते हैं।

४. जिस धन्धेसे आदमीकी अपनी जीविका चलती है, उसके सिवा भी किसी दूसरे धन्धेका थोड़ा-बहुत ज्ञान उसे प्राप्त कर लेना चाहिए। इसलिए मजदूर कुछ नये और आसान धन्धोंको सीखनेमें भी अपना समय बिता सकते हैं, और इस काममें भी वे हमसे मदद पा सकते हैं।

भारतमें एक धन्धा करनेवाला आदमी दूसरे धन्धेको अपनानेमें हलकेपनका अनुभव करता है, कुछ धन्धे यहाँ अपने-आपमें हलके माने जाते हैं। ये दोनों विचार गलत हैं। जिन धन्धोंकी आदमीको अपने जीवनके लिए जरूरत है, उन धन्धोंमें नीच-ऊँचका कोई भेद होता ही नहीं। इसी तरह अपने जाने हुए धन्धेके सिवा दूसरा धन्धा करनेमें भी शर्मकी कोई बात नहीं। हम मानते हैं कि कपड़ा बुनने, पत्थर फोड़ने, लकड़ी काटने या चीरने अथवा खेतोंमें मजदूरी वगैरा करनेके सभी धन्धे जरूरी हैं, और सम्मानके योग्य हैं। इसलिए आशा की जाती है कि मजदूर निकम्मे बैठकर वक्त गँवानेके बदले ऊपर लिखे अच्छे कामोंमें लगकर अपना समय बितायेंगे।

मजदूरोंके कर्त्तव्योंका विचार करनेके बाद अब यह बता देना भी जरूरी है कि मजदूर मुझसे क्या आशा रख सकते हैं। अगली पत्रिकामें हम इसीका विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१३९. पत्र : एफ० जी० प्रैटको

साबरमती

फरवरी २८, १९१८

प्रिय श्री प्रैट,

मुझसे कल[1] आपने साफ दिलसे बातें कीं, उससे मुझे यह पत्र लिखनेका प्रोत्साहन मिला है।

हिन्दुस्तान भरमें परिस्थिति इस प्रकार है। पुरानी व्यवस्थाके स्थानपर एक नई व्यवस्था आ रही है। नई व्यवस्थाकी स्थापना शान्तिमय मार्गसे हो सकती है या उससे पहले कुछ दुःखद अव्यवस्था भी हो सकती है। इन दोनोंमें से क्या होगा, इसका दारोमदार सम्राट्के बिलकुल चोटीके प्रतिनिधियोंकी अपेक्षा ज्यादातर 'सिविल सर्विस' के आप-जैसे अधिकारियोंपर ही है। आपकी इच्छा भला करनेकी है, पर आप प्रेमके अधिकारसे नहीं, बल्कि भयके जोरपर हुकूमत करना चाहते हैं। जनता तो यही समझती है कि सिविल सर्विसके कर्मचारियोंकी शक्ति ही ब्रिटिश संविधानकी शक्ति है। इस संविधानका सच्चा अर्थ आप पूर्ण रूपसे लोगोंको समझा नहीं पाये। इसमें शायद आपका कोई दोष न हो। लेकिन परिणाम यह है कि आपकी सजा देनेकी शक्तिका लोगोंको डर लगता है और भला करनेकी आपकी इच्छाको वे समझ नहीं पाते। जिनको 'होमरूल' वाले कहा जाता

१. स्पष्ट ही गांधीजी कमिश्नरसे २७ फरवरीको मिले थे, किन्तु इस मुलाकातका कोई विवरण उपलब्ध नहीं है।

है उनको आपकी सत्ता असह्य है। उनकी शक्ति दिन दूनी बढ़ती जा रही है। लोगोंको सिविल सर्विसकी हुकूमतका भयोत्पादक पहलू दिखानेमें उन्हें किसी तरहकी कठिनाई नहीं होती। लोग उन्हें अपना मुक्तिदाता समझकर उनका स्वागत करते हैं। मातृभूमिके प्रेम और अधिकारियोंके प्रति अपने अविश्वाससे प्रेरित होकर, वे जनतामें वैमनस्यके बीज बोते हैं। जिस तन्त्रके आप प्रतिनिधि हैं, वह इस चीजको अच्छी तरह जानता है और स्वाभाविक ही है कि इस अपमानपर उसे क्रोध आता है। इस प्रकार दोनोंके बीचका अन्तर बढ़ता जा रहा है। मैं यह माननेकी धृष्टता करता हूँ कि इस खाईको मैं पाट सकता हूँ और नई व्यवस्था आनेसे पहले होनेवाली दुःखद अव्यवस्थाको रोकनेमें सफल हो सकता हूँ। मैं चाहता हूँ कि अन्तमें परस्पर अविश्वास और जबरन लादी हुई हुकूमतके बजाय परस्पर विश्वास और प्रेमके शासनकी स्थापना हो। मैं यह चीज लोगोंको तभी बता सकता हूँ, जब उन्हें अन्यायको दूर करनेका अधिक अच्छा और ज्यादा कारगर उपाय बता सकूँ। यह तो स्पष्ट ही है कि भयके कारण उनका अन्यायपूर्ण आज्ञाओंके सामने सिर झुकाना और मनमें द्वेष-भाव बढ़ाते रहना बुरा है। वे गलत रास्ते जायें और हिंसाका आश्रय लें, यह उससे भी ज्यादा बुरा है। लोगोंके लिए अपनी नाराजगी दिखानेका गरिमापूर्ण, वास्तवमें राजभक्तिपूर्ण और उनकी भी उन्नति करनेवाला मार्ग यही है कि आपके जो हुक्म उन्हें अन्यायपूर्ण मालूम हों, उनको भंग करके वे अपनी असहमति जाहिर करें और इस आज्ञा-भंगकी जो सजा हो, उसे समझ-बूझकर सादर सहन कर लें। मेरा तो खयाल है कि हर प्रकारके अन्यायमें यही सलाह लोगोंको बिना किसी आशंकाके दी जा सकती है; और खासकर जब इससे पहले अन्याय दूर करनेके अन्य सभी उचित उपाय आजमाये जा चुके हों। मैं चाहता हूँ कि जो दृष्टिकोण मैंने पेश किया है, उसे आप समझ लें। मैंने आपको यह पत्र लिखनेकी जो धृष्टता की है, मैं जानता हूँ कि आप मुझे उसके लिए अवश्य क्षमा कर देंगे। अलबत्ता मैंने यह पत्र खेड़ाके सवालको अलग रखकर आपको लिखा है। बहुत सम्भव है कि मुझे कई ऐसे मामलोंमें जिनमें कोई मतभेद न हो आपके साथ मिलकर काम करनेका सौभाग्य प्राप्त हो। मैं समझता हूँ कि ज्यादा अच्छा यही रहेगा कि आप सभी चीजोंके बारेमें मेरे विचार जान लें।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१४०. भाषण : अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें

फरवरी २८, १९१८

पत्थर तोड़नेसे जो गरमी और ताकत आती है, वह कलम पकड़नेसे नहीं आ सकती।[1]

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१४१. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

मार्च १, १९१८

पत्रिका – ४

हमने यह तो देख लिया कि मजदूर अपनी प्रतिज्ञा किस तरह पालें और ताला-बन्दीके दिनोंमें अपना समय किस प्रकार बितायें। अब इस पत्रिकामें यह बताना है कि हम उनकी क्या मदद करेंगे। मजदूरोंको हमारी प्रतिज्ञा जाननेका अधिकार है और हमारा फर्ज है कि हम उन्हें अपनी प्रतिज्ञा बतायें।

पहले हम यह देख लें कि हमसे क्या नहीं हो सकेगा :

१. हम मजदूरोंको उनके किसी गलत काममें मदद नहीं पहुँचायेंगे।

२. अगर मजदूर कोई गलत काम करते हैं, उचितसे अधिक माँगते हैं, या किसी भी तरहका दंगा-फसाद करते हैं, तो हमारा फर्ज हो जाता है कि हम उन्हें छोड़ दें, और उनको मदद पहुँचाना बन्द कर दें।

३. हम मालिकोंकी बुराई कभी नहीं चाह सकते; हमारे हरएक कार्यमें उनके हितका विचार भी रहता ही है। मालिकोंके हितकी रक्षा करके हम मजदूरोंका हित साधेंगे।

अब हम क्या मजदूरोंके लिए करेंगे सो देखिए :

१. मजदूरोंने जैसा सुन्दर व्यवहार आजतक किया है, वैसा ही जबतक वे कायम रखेंगे, हम बराबर उनका साथ देंगे।

२. उन्हें ३५ फीसदीकी बढ़ोतरी दिलानेके लिए हम भरसक कोशिश करेंगे।

३. फिलहाल तो हम मालिकोंसे प्रार्थना ही कर रहे हैं। आम लोगोंकी सहानुभूति प्राप्त करने और लोकमतको जगानेकी कोशिश अभी हमने नहीं की है। लेकिन अवसर आनेपर हम सारे हिन्दुस्तानके सामने मजदूरोंकी स्थिति रखनेको तैयार हैं, और हमें आशा है कि हम आम जनताकी सहानुभूति अपनी ओर आकर्षित कर सकेंगे।

१. गांधीजीने यह वाक्य ता० २८ फरवरीके भाषणमें पत्रिका — ३ के अन्तिम अनुच्छेदका विवेचन करते हुए कहा था। भाषणका बाकी हिस्सा उपलब्ध नहीं है।

४. जबतक मजदूरोंको उनका अधिकार प्राप्त न हो जायेगा, हम चैन नहीं लेंगे।

५. मजदूरोंकी आर्थिक, नैतिक और शिक्षा-सम्बन्धी स्थितिको जाननेका प्रयत्न हम कर रहे हैं। हम उन्हें यह बतानेकी कोशिश करेंगे कि उनकी माली हालत कैसे सुधर सकती है ; हम उनके नैतिक स्तरको उठानेकी कोशिश करेंगे, अगर वे गन्दे रहते हैं, तो हम सफाईसे रह सकनेके उपाय ढूंढ़ेंगे और उन्हें समझायेंगे; और वे अपढ़ हैं, तो हम इस बातका प्रबन्ध करेंगे कि उनको ज्ञान मिले — हम उसके लिए प्रयत्न और परिश्रम करेंगे।

६. इस लड़ाईमें जिन्हें भूखों मरनेकी नौबत आयेगी, या काम न मिल सकनेके कारण बेकार रहना पड़ेगा, उनको खिलाकर हम खायेंगे और ओढ़ाकर हम ओढ़ेंगे।

७. बीमार मजदूरोंकी सार-सँभाल करेंगे; उनके लिए डॉक्टरों और वैद्योंकी मदद प्राप्त करेंगे।

हम अपनी जिम्मेदारीको समझकर इस काममें पड़े हैं। हम मजदूरोंकी माँगको बिलकुल उचित समझते हैं और मानते हैं कि उसे पूरी करनेसे मालिकोंका कोई नुकसान नहीं, बल्कि अन्तमें लाभ ही होगा। इसलिए हमने इस कामको अपने हाथमें लिया है।[1]

अगले अंकमें हम मालिकोंकी स्थितिका विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१४२. पत्र : सर ई० ए० गेटको

साबरमती
मार्च १, १९१८

सर ई० ए० गेट[2]
लेफ्टिनेंट-गवर्नर बिहार तथा उड़ीसा
पटना

पिछले महीनेकी १८ तारीखका आपका कृपा-पत्र यहाँके मेरे पतेपर भेज दिया गया था।[3] मैं एक-दो नाजुक-से सवालोंके सिलसिलेमें गुजरातमें घूम-फिर रहा था।

१. महादेव देसाई अपनी पुस्तकमें कहते हैं कि इस पत्रिकामें कही गई हरएक बातका अक्षरशः पूरा-पूरा पालन हुआ था। देखिए **एक धर्मयुद्ध**, पृष्ठ ३।

२. सर एडवर्ड अलबर्ट गेट; 'सिविल सर्विस' की अपनी सेवाके ३६ वर्षोंके दौरान विभिन्न पदोंपर और १९१५-२० के कालमें लेफ्टिनेंट-गवर्नर रहे।

३. सर एडवर्ड गेटने लिखा था :

"चम्पारन जाँच समितिकी सिफारिशोंको कार्यान्वित करनेके लिए कानून बनानेके सम्बन्धमें सर्वश्री नॉर्मन और हिल कहते हैं कि रैयतके साथ उनके कई मुकदमे चल रहे हैं जिनमें शरहबेशीकी वृद्धिको लेकर ही विवाद है। हमने मामलेके बारेमें श्री स्लाईकी राय माँगी थी। उनका कहना है कि समिति

इसीलिए उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ। सर फ्रैंक स्लाईका कहना बिलकुल ठीक है, कानूनकी शक्लमें विधेयकके आते ही मैं मुकदमे वापस करवानेकी कोशिश करूँगा। हमने जब इस मामलेपर चर्चा की थी, तब हमने समझौतेको वैध बनानेकी बात नहीं सोची थी। अब चूँकि सन् १३२५[1] के बाद कटौतीकी गुंजाइश रखते हुए बढ़ी हुई दरोंको वैध बनाया जा रहा है, इसलिए बागान-मालिकोंकी रक्षा पूरी तौरपर इसपर निर्भर नहीं करेगी कि रैयतपर मेरा कितना प्रभाव है। फिर भी मैं अदालतमें पहुँचनेसे पहले ही मुकदमे वापस करवानेके लिए हर तरहसे कोशिश करूँगा। पर हो सकता है कि रैयतके कुछ लोग अपनी बातपर अड़ जायें।

[अंग्रेजीसे]

सिलैक्ट डाक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मुवमेंट इन चम्पारन, १९१७–१८

१४३. पत्र: अम्बालाल साराभाईको

साबरमती

मार्च १, १९१८

भाईश्री,

आज सवेरे उठते ही मैं विचारमें पड़ गया कि हम कर क्या रहे हैं। मेरी प्रवृत्तिका परिणाम क्या होगा? आपकी प्रवृत्तिका परिणाम क्या होगा? मेरे खयालसे मेरी प्रवृत्ति सफल हो, तो आप मजदूरोंकी माँग स्वीकार कर लेंगे या अगर अन्त तक खींचेंगे तो मजदूर दूसरे धन्धोंमें लग जायेंगे। अगर मजदूर अपना निश्चय छोड़ देंगे और आपका निश्चित किया वेतन मंजूर कर लेंगे तो माना जायेगा कि मेरी प्रवृत्ति निष्फल हो गई। किन्तु उपर्युक्त परिणामोंसे जनताको आघात नहीं पहुँचेगा।

लेकिन आपकी प्रवृत्तिका परिणाम क्या होगा? आप सफल हो जायेंगे तो दबे हुए गरीब और भी अधिक दब जायेंगे, उनकी नामर्दी बढ़ जायेगी और यह भ्रम दृढ़ हो जायेगा कि रुपया सबको वशमें कर सकता है। अगर आपकी प्रवृत्तिके बावजूद मजदूरोंको वृद्धि मिल जायेगी तो आप इसे अपनी असफलता मानेंगे और दूसरे लोग भी

और बागान-मालिकोंके प्रतिनिधियोंने विचाराधीन मुकदमोंके बारेमें चर्चा की थी और तब आप रैयतकी ओरसे इस बातपर सहमत हो गये थे कि ऐसे मुकदमोंका निवटारा समझौतेकी शर्तोंके अनुसार किया जाना चाहिए अर्थात रैयतको शरहबेशीके वैध या अवैध होनेका प्रश्न उठाये बिना दर्ज किया हुआ पूरा लगान फसली १३२५ तक अदा करना चाहिए। श्री स्लाईका कहना है कि इस बातमें उनको आपका समर्थन मिलनेका पूरा भरोसा है और यदि यह ठीक है तो मेरा अनुरोध है कि आप कृपया समझौता पूरा करनेके लिए रैयतसे कहें। आपने ही उनकी ओरसे समझौता किया था।" (**सिलैक्ट डॉक्यूमेन्ट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेन्ट इन चम्पारन**, पृष्ठ ४९१)।

१. सम्राट् अकबर द्वारा चलाया हुआ फसली सम्वत्, ईसवी सन् १९१८ के बराबर।

आपको असफल समझेंगे। क्या आपकी पहली सफलता वांछनीय हो सकती है? क्या आप चाहेंगे कि धनका मद बढ़े? क्या आपकी यह इच्छा होगी कि मजदूर बिलकुल निःसत्व हो जायें? क्या आप मजदूरोंसे इतना द्वेष करेंगे कि उन्हें उनके हक मिलें या उसकी भी अपेक्षा उन्हें दो पैसे अधिक मिलें, तो उस स्थितिको आप सफलता न समझेंगे? क्या आप नहीं देखते कि आपकी असफलतामें ही आपकी सफलता है और आपकी सफलता आपके लिए भयंकर है? रावण सफल हुआ होता तो? क्या आप नहीं देखते कि आपकी सफलतासे सारे संसारको आघात पहुँचेगा? इस प्रवृत्तिमें दुराग्रह[1] है। मेरी प्रवृत्तिमें सफलता मिले तो उसे सभी सफलता मानेंगे; किन्तु मेरी निष्फलतासे भी किसीको आघात नहीं पहुँचेगा। इतना ही सिद्ध होगा कि मजदूर आगे बढ़नेके लिए तैयार नहीं थे। ऐसी प्रवृत्तिमें सत्याग्रह है। आप गहरा सोचिए। अपने अन्तरात्माकी सूक्ष्म वाणीको सुनिए और उसके अनुसार चलिए, यह मेरी माँग है। क्या आप यहीं भोजन करेंगे?

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१४४. भाषण : अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें

मार्च १, १९१८[2]

अबतक हमने मजदूरोंकी प्रतिज्ञा और मजदूरोंके कर्त्तव्योंकी चर्चा की है। अब हमें आपको यह लिखकर देना है कि हमारी प्रतिज्ञा क्या है और हम क्या-क्या करनेवाले हैं। आज हम आपको यह बतायेंगे कि आप हमसे क्या-क्या आशाएँ रखते हैं और परमात्माको साक्षी रखकर हम आपके लिए क्या-क्या करते हैं। इस प्रतिज्ञाके आधारपर आपका काम होगा कि जब-जब आपको हम गलती करते हुए, अथवा प्रतिज्ञाके पालनमें कमजोरी दिखाते हुए दिखें, तब-तब आप हमें इन वचनोंकी याद दिलायें और उलाहना दें।[3]

[गुजरातीसे]
एक धर्मयुद्ध

१. मिल-मालिकोंने इस अवसरपर दुराग्रह किया था। महादेव देसाईने तत्कालीन स्थितिका विश्लेषण इस प्रकार किया है:

"...ऐसा लगता था कि मिल-मालिकोंने मजदूरोंकी माँग मंजूर नहीं की, इसका कारण यह नहीं था कि वे वेतनमें ३५ प्रतिशत वृद्धि नहीं दे सकते थे; बल्कि यह उनका दुराग्रह था। उन्होंने यह अयुक्त रुख इस भयसे इख्तियार किया था कि यदि मजदूर एक बार सफल हो जायेंगे तो वे सदा तंग करते रहेंगे और मजदूरोंके सलाहकार स्थायी रूपसे जम जायेंगे।

२. यह भाषण पत्रिका — ४ के सिलसिलेमें दिया गया था।

३. पूरा भाषण उपलब्ध नहीं है।

१४५. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

मार्च २, १९१८

पत्रिका — ५

हम अपनी स्थितिका विचार कर चुके। मालिकोंकी स्थितिपर विचार करना कठिन है। मजदूरोंकी हलचलके दो नतीजे हो सकते हैं:

१. मजदूरोंको ३५ प्रतिशत इजाफा मिले।

२. मजदूरोंको इजाफा पाये विना ही कामपर जाना पड़े।

इजाफा मिलनेसे मजदूरोंका कल्याण होगा, और मालिकोंको यश मिलेगा। अगर मजदूरोंको इजाफा प्राप्त किये विना ही कामपर जाना पड़ा, तो वे शौर्यहीन और गुलाम बनकर मालिकोंकी शरण जायेंगे। अतएव इजाफा मिलनेसे दोनों दलोंको लाभ होगा। मजदूरोंके लिए उनकी हार बहुत नुकसानदेह होगी।

मालिकोंकी हलचलके भी दो नतीजे हो सकते हैं।

१. मालिक मजदूरोंको इजाफा दें।

२. मालिक मजदूरोंको इजाफा न दें।

अगर मालिक मजदूरोंको इजाफा देंगे, तो मजदूर सन्तुष्ट होंगे, उन्हें न्याय मिलेगा। मालिकोंको डर है कि मजदूरोंको मुँहमाँगा देनेसे वे सिरपर चढ़ जायेंगे। यह डर बेबुनियाद है। मुमकिन है कि मजदूर आज दब जायें, पर यह नामुमकिन नहीं कि वे मौका पाकर फिर सिर उठायें। यह भी मुमकिन है कि दबे हुए मजदूर मनमें दुश्मनी रखें। दुनियाका इतिहास बताता है कि जहाँ-जहाँ मजदूर दबाये गये हैं, वहाँ-वहाँ उन्होंने मौका पाकर मुखालिफत की है। मालिकोंका खयाल है कि मजदूरोंकी माँगको मंजूर कर लेनेसे उनपर उनके सलाहकारोंका प्रभाव बढ़ जायेगा। अगर सलाहकारोंका कहना सही है, और वे मेहनती हैं, तो मजदूर हारें या जीतें, वे अपने सलाहकारोंको न छोड़ेंगे; और इससे भी बढ़कर ध्यान देने लायक बात तो यह है कि सलाहकार भी मजदूरोंको कभी न छोड़ेंगे। जिन्होंने सेवा-धर्मको स्वीकार किया है, वे तो अपने उस धर्मको प्रतिपक्षियोंका विरोध होनेपर भी नहीं छोड़ेंगे। ज्यों-ज्यों वे निराश होंगे, त्यों-त्यों अधिक सेवा-परायण बनते जायेंगे। इसलिए मालिक कितनी ही कोशिश क्यों न करें, वे सलाहकारोंको मजदूरोंके सम्पर्कसे दूर नहीं रख सकेंगे। ऐसी हालतमें मजदूरोंको हराकर वे क्या पायेंगे? इसका यही एक उत्तर हो सकता है कि मजदूरोंके असन्तोषको छोड़ और-कुछ उनके पल्ले न पड़ेगा। दबे हुए मजदूरोंको मालिक हमेशा शककी निगाहसे देखेंगे।

मजदूरोंको माँगा हुआ इजाफा देकर मालिक उन्हें खुश कर सकेंगे। अगर मजदूर अपने फर्जमें चूकेंगे, तो मालिक हमेशा उनके सलाहकारोंकी मदद पा सकेंगे, और इस

समय दोनों दलोंका जो नुकसान हो रहा है, उसे रोक सकेंगे। अगर मजदूर सन्तुष्ट हुए, तो वे हमेशा मालिकोंका आभार मानेंगे, और दोनोंमें बराबर प्रेम बढ़ेगा। इस प्रकार मजदूरोंकी सफलतामें ही मालिकोंकी भी सफलता है, और मजदूरोंकी हारमें मालिकोंकी भी हार है। इस सीधे-सच्चे न्यायके बदले मालिकोंने पश्चिमी अथवा आजकलका राक्षसी न्याय अपनाया है।

यह न्याय कैसा है, इसका विचार हम अगले अंकमें करेंगे।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१४६. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

[मार्च ३, १९१८][1]

पत्रिका — ६

जिस न्यायमें सहानुभूति और दयाका भाव है, वह शुद्ध न्याय है। इसे हम हिन्दुस्तानवाले पूर्वी अथवा प्राचीन न्याय कहते हैं। जिसमें सहानुभूति या दयाका भाव नहीं रहता, उसे हम राक्षसी, पश्चिमी अथवा आजकलका न्याय कहते हैं। दया अथवा सहानुभूतिके कारण अकसर बेटा बापके लिए और बाप बेटेके लिए बहुत-कुछ त्याग करता है, जिससे अन्तमें दोनोंको लाभ ही होता है। त्याग करनेवाला त्यागमें एक प्रकारके शुद्ध अभिमानका अनुभव करता है, और इस तरह त्यागको वह अपनी कमजोरीकी नहीं, बल्कि ताकतकी निशानी समझता है। हिन्दुस्तानमें एक जमाना वह भी था, जब नौकर एक ही घरमें पीढ़ियों तक काम करते थे। जिस घरमें वे काम करते थे उसके कुटुम्बी समझे जाते थे और वैसा सम्मान पाते थे। वे अपने मालिकके दुःखसे दुःखी होते और मालिक उनके सुख-दुःखमें शरीक रहते थे। जब यह सब था, तब हिन्दुस्तानका सामाजिक जीवन बहुत सरल माना जाता था, और हजारों सालतक वह इसी तरीकेपर चलकर टिका रहा। आज भी इस भावनाका नाश नहीं हुआ है। जहाँ ऐसी व्यवस्था रहती है, वहाँ किसी तीसरे आदमीका या पंचका काम शायद ही कभी पड़ता है। मालिक और नौकर अपने आपसी झगड़ोंका फैसला आपसमें मिलकर कर लेते हैं। एक-दूसरेकी जरूरतको देखकर तनख्वाहें घटाने या बढ़ानेकी कोई बात इसमें थी ही नहीं। नौकरोंकी कमी देखकर न तो नौकर ज्यादा तनख्वाह माँगते थे, और न नौकरोंकी बहुलता देखकर मालिक उसे घटाते थे। इस पद्धतिमें पारस्परिक सद्भाव, औचित्य, शालीनता और प्रेमकी प्रधानता थी, और यह धर्म अव्यावहारिक नहीं माना जाता था, बल्कि आमतौरपर सबके ऊपर इसकी सत्ता चलती थी। हमारे पास इस बातके ऐतिहासिक प्रमाण

१. पत्रिकाकी क्रमसंख्या ५ और ८को महादेव देसाईने क्रमशः २ और ५ मार्चकी कहा है; तदनुसार संख्या ६ और ७की पत्रिकाएँ ३ और ४ मार्चको प्रकाशित हुई होंगी।

मौजूद हैं कि इस शुद्ध न्यायके अनुसार चलनेवाली हमारी प्रजाने अनेक भगीरथ कार्य करके दिखाये हैं। यह हुआ पूर्वका अथवा प्राचीन न्याय।[1]

पश्चिममें आजकल ठीक इससे उलटा हो रहा है। कोई यह न सोचे कि वहाँके सब लोगोंको यह आजकलका न्याय पसन्द है। पश्चिममें ऐसे बहुतेरे साधु पुरुष पड़े हैं, जो प्राचीन नीतिको अपनाकर निर्दोष जीवन बिताते हैं। फिर भी पश्चिमके जीवनकी मुख्य हलचलोंमें आजकल दया-मायाको कोई स्थान नहीं है। अगर मालिक अपना सुभीता देखकर वेतनकी नीति ठहराता है, तो वह उचित मानी जाती है। नौकरकी जरूरतोंका विचार करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं मानी जाती। इसी तरह मजदूर भी अपनी इच्छाके अनुसार मालिकके धन्धेकी हालतका विचार किये बिना तनख्वाह माँग सकता है, और वह न्यायोचित माना जाता है। वहाँ न्याय यह है कि सब अपनी-अपनी फिकर कर लें; दूसरा कोई किसीकी फिकर करनेको बँधा हुआ नहीं है। इसी नीतिके अनुसार यूरोपमें आजकल यह लड़ाई चल रही है। दुश्मनको किसी भी तरह परास्त करनेमें मर्यादाके पालनकी कोई जरूरत नहीं समझी जाती। पुराने जमानेमें भी ऐसी लड़ाइयाँ तो हुई होंगी। लेकिन उसमें प्रजा शरीक नहीं होती थी। इष्ट है कि हम हिन्दुस्तानमें इस अघोरी न्यायको न अपनायें। जिस दिन अपने बलको समझकर, मालिकोंका विचार किये बिना, मजदूर अपनी माँग पेश करेंगे, उस दिन माना जायेगा कि उन्होंने आधुनिक राक्षसी न्यायको अपनाया है। मालिक मजदूरोंकी माँगोंपर ध्यान न देकर यही कर रहे हैं — उन्होंने अनजाने उसी राक्षसी-न्यायको अपनाया है। मजदूरोंके मुकाबिलेमें मालिकोंका संगठन चींटियोंके खिलाफ हाथियोंका दल खड़ा करनेके समान है। अगर मालिक धर्मका विचार करें, तो उन्हें मजदूरोंका विरोध करते हुए काँपना चाहिए। हमारी जानमें पहले हिन्दुस्तानमें लोगोंने ज्ञानपूर्वक इस तरहका न्याय कभी नहीं अपनाया कि मजदूरोंके भूखों मरनेको मालिक अपने लाभका अवसर समझें। न्याय वही हो सकता है, जिससे किसीका कभी कोई नुकसान न हो। हमें दृढ़ आशा है कि गौरवशाली गुजरातकी इस राजधानीके श्रावक अथवा वैष्णवधर्मी मालिक मजदूरोंको झुकानेमें या हठपूर्वक उन्हें कम पगार देनेमें कभी अपनी जीत न समझेंगे। हमें विश्वास है कि पश्चिमका यह बवण्डर जितनी तेजीसे उठा है, उतनी ही तेजीसे बैठ भी जायेगा। वह बैठे या न बैठे, हम अपने मजदूरोंको आज पश्चिमकी इस प्रवृत्तिका पाठ पढ़ाना नहीं चाहते। हम तो अपने देशका पुराना न्याय, जैसा हमने उसे जाना और समझा है, पालना चाहते हैं और उनसे पलवाना चाहते हैं, और ऐसा करके उनके अधिकारोंको सिद्ध करनेमें उनकी मदद करना चाहते हैं।

इस पश्चिमी न्यायके कुछ बुरे नतीजोंके उदाहरणोंपर हम अगली पत्रिकामें विचार करेंगे।[2]

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१. न्यायके विषयमें गांधीजीकी इस व्याख्याके सम्बन्धमें महादेव देसाई **एक धर्मयुद्ध**की प्रस्तावनामें लिखते हैं: "कई बरस पहले गांधीजीने **इंडियन ओपिनियन**में रस्किनकी **अन्टु दिस लास्ट** पुस्तकके आधारपर **सर्वोदय** नामक एक लेख प्रकाशित किया था। ये विचार अब समयके साथ अधिक दृढ़ बन चुके थे, इसलिए इन पत्रिकाओंमें ज्यादा सरल, सीधी और जोरदार भाषामें प्रकट किये गये हैं।"

२. यह और इसके बादकी पत्रिकाएँ मिल-मालिकों और मजदूर दोनोंके लिये थीं।

१४७. पत्र : मगनलाल गांधीको

अहमदाबाद
माघ बदी ५ [मार्च ३, १९१८]

चि० मगनलाल,

सन्तोक और रामदास कल यहाँ आ गये। कल राजकोटके लिए रवाना होंगे।

पूज्य खुशालभाई और नारणदासकी राय कृष्णा और परसोत्तमको भेजनेके पक्षमें नहीं है। इसलिए उन्हें भेजनेका विचार छोड़ दिया है। मुझे उनका ख़याल ठीक लगा। अगर परसोत्तमको राजकोट भेजते हैं तो उसे मोरबी भी भेजना पड़ेगा। यदि कृष्णा आज राजकोट जाता है तो दूसरोंको दूसरी जगह भेजना चाहिए। अतः मुझे लगा कि सब बुजुर्ग लोगोंकी राय यदि ऐसी है तो तुम्हारी इच्छा होनेपर भी न भेजना ही . . .[१]

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७३३) से।

१४८. एक पत्रका अंश[२]

मार्च ३, १९१८

भाईश्री,

. . . जीनेके लिए हम इतने अधिक व्यग्र रहते हैं कि मृत्युके अवसर और उसमें भी प्रियजनोंकी मृत्युके अवसर सदा भय उत्पन्न करते हैं। मुझे तो बहुत बार यही खयाल आया है कि ऐसे अवसर हमारी सच्ची परीक्षाके अवसर होते हैं। जिसे आत्माका तनिक भी भान हो, वह मृत्युका स्वरूप समझता है। वह वृथा शोक क्यों करे? ये विचार नये नहीं हैं; पर संकटके समय कोई उनका स्मरण कराये, तो उनसे सान्त्वना मिलती है। यह सान्त्वना आपको मिले, इसी उद्देश्यसे यह पत्र लिखा गया है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. बाकी अंश उपलब्ध नहीं है।
२. पानेवालेका नाम अज्ञात है।

१४९. मणिलाल गांधीको लिखे पत्रका अंश

मार्च ३, १९१८

* * *

बिना समझे लोग मेरी पूजा करें, यह तो केवल परेशानीकी बात है। मैं जैसा हूँ, वैसा ही लोग मुझे जानें और फिर भी मेरा आदर करें, तो मैं उनका उपयोग लोक-सेवामें कर सकता हूँ। मैं अपने धार्मिक विश्वासोंको दबाकर किसी भी प्रकारका सम्मान नहीं लेना चाहता। सदाचरण करते हुए मेरा सर्वथा तिरस्कार हो, तो उसका भी मैं स्वागत करूँगा। . . .[1]

हम हजारों वस्तुओंकी इच्छा करते हैं, परन्तु उन सबको प्राप्त नहीं कर सकते। यह समझकर हमें अपना मन पूर्णतः शान्त रखना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१५०. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

मार्च ४, १९१८

पत्रिका — ७

दक्षिण आफ्रिका एक महान् अंग्रेजी उपनिवेश है। गोरे लोग वहाँ चार सौ सालसे बसे हुए हैं। उन्हें स्वराज्यका अधिकार प्राप्त है। वहाँकी रेलवेमें बहुतेरे गोरे मजदूर काम करते हैं। इन मजदूरोंके साथ वेतनके सम्बन्धमें कुछ अन्याय हो रहा था। इसपर मजदूरोंने केवल अपना वेतन [बढ़वाने]का विचार करनेके बजाय समूची राज्यसत्ता हथियानेका विचार किया। यह अन्याय था, राक्षसी न्याय था। इसके परिणामस्वरूप सरकार और मजदूरोंके बीच कटुता बढ़ी और दक्षिण आफ्रिकामें चारों ओर भयका वातावरण फैल गया। उन दिनों वहाँ कोई भी अपनेको सुरक्षित न समझता था। आखिर दिन-दहाड़े दोनों दलोंके बीच मार-काट मची और कई निर्दोष मनुष्य मारे गये। सारा प्रदेश फौजी सिपाहियोंसे घिर गया। दोनों दलोंका काफी नुकसान हुआ। दोनोंका इरादा एक-दूसरेको हरानेका था। शुद्ध न्यायकी किसीको परवाह न थी। दोनों एक-दूसरेकी चर्चा बढ़ा-चढ़ा कर करते थे। आपसी सद्भावकी चिन्ता किसीको न थी।

१. यहाँ मूलमें कुछ अंश छूटा हुआ है।

जब यह सब हो रहा था, तभी हमारे मजदूर वहाँ शुद्ध न्यायका पालन कर रहे थे। जब गोरोंकी यह रेल-हड़ताल हुई उस समय २०,००० भारतीय मजदूरोंकी हड़ताल[1] चल रही थी। हम वहाँकी सरकारसे शुद्ध न्यायके लिए लड़ रहे थे। हमारे मजदूरोंका हथियार सत्याग्रह था। उन्हें सरकारसे कोई दुश्मनी न थी, वे सरकारका बुरा नहीं चाहते थे, न सरकारको पदसे हटानेका कोई लोभ उनके सामने था। गोरे मजदूर उनकी इस हड़तालसे लाभ उठाना चाहते थे। पर हमारे मजदूरोंने साफ इनकार कर दिया। उन्होंने कहा : "हमारी लड़ाई सत्याग्रहकी लड़ाई है। हम सरकारको परेशान करनेके लिए नहीं लड़ रहे हैं। इसलिए जबतक आप लड़ते हैं, हम अपनी लड़ाई मुलतवी रखेंगे।" यों कहकर हमारे मजदूरोंने हड़ताल तोड़ दी।[1] इसे हम शुद्ध न्याय कह सकते हैं। आखिर हमारे मजदूरोंकी जीत हुई, और उससे सरकारका भी नाम हुआ; क्योंकि हमारी माँगोंको मंजूर करनेमें न्याय था। हमारे मजदूरोंने हमदर्दीसे काम लिया; विरोधीके संकटका लाभ नहीं उठाया। लड़ाईके अन्तमें सरकार और प्रजाके बीच शत्रुता बढ़नेके बदले मित्रता बढ़ी, प्रेम बढ़ा और हमारे मानकी वृद्धि हुई। इस प्रकार शुद्ध न्यायके साथ लड़ी जानेवाली लड़ाई दोनों पक्षोंके लिए लाभप्रद साबित होती है।

यदि हम इसी प्रकार न्यायपूर्वक अपनी लड़ाईका संचालन करेंगे, मालिकोंसे शत्रुता नहीं रखेंगे और सदा सचाईपर कायम रहेंगे, तो न सिर्फ हम जीतेंगे, बल्कि मालिकों और मजदूरोंके बीच प्रेमकी वृद्धि होगी।

ऊपरके उदाहरणसे जो दूसरी चीज हमें मिलती है, वह यह है कि सत्याग्रहके लिए दोनों पक्षोंका सत्याग्रही होना जरूरी नहीं है। यदि एक पक्ष भी सत्याग्रही बना रहे, तो अन्तमें विजय सत्याग्रहकी ही होती है। जो शुरूमें मनमें कटुता रखकर लड़ता है, उसकी कटुता भी, जब इस कटुताको प्रतिपक्षीमें कटुता नहीं मिलती, खत्म हो जाती है। जब आदमी हवामें अपनी ताकत आजमाना चाहता है, तो उसका हाथ उतर जाता है। इसी तरह कटुताका जहर तभी बढ़ता है, जब सामनेसे भी उसे जहर मिलता है।

अतएव अब हम इस बातको भली-भाँति समझ सकते हैं कि अगर हम मजबूतीसे लड़ेंगे और हिम्मत न हारेंगे, तो अन्तमें जीत हमारी ही होगी।

अगली पत्रिकामें हम कुछ सत्याग्रहियोंके दृष्टान्तोंका विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३२६-२७

१५१. भाषण : अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें

मार्च ४, १९१८[1]

दक्षिण आफ्रिकामें यूरोपीय मजदूरोंकी हड़तालके कारण जिस समय आफ्रिकी सरकार संकटमें पड़ी हुई थी हमारे मजदूरोंने उस समय उसके संकटसे लाभ नहीं उठाया, बल्कि उस समय अपनी लड़ाई बन्द करके सरकारकी सहायता की और दुनियामें नाम कमाया; उसी प्रकार यदि मिल-मालिकोंपर कोई आकस्मिक संकट आ पड़े, तो हमें उससे लाभ उठानेका या मालिकोंको परेशान करनेका खयाल छोड़कर उनकी मददके लिए दौड़ पड़ना चाहिए।[2]

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१५२. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

मार्च ५, १९१८

पत्रिका — ८

इस अंकमें हम संसार-प्रसिद्ध सत्याग्रहियोंका वर्णन नहीं करेंगे, बल्कि यह बतानेकी कोशिश करेंगे कि हमारे-आपके जैसे आदमी भी कितना दुःख उठानेमें समर्थ हुए हैं। यह हमारे लिए अधिक लाभदायक होगा, और हमें अधिक दृढ़ बना सकेगा। हजरत इमाम हसन और हुसैन बड़े वीर-वीर सत्याग्रही थे। हम उनके नामकी पूजा करते हैं, लेकिन उनके स्मरणसे सत्याग्रही नहीं बन पाते। हम सोचते हैं कि उनकी ताकतका हमारी ताकतसे क्या मुकाबला? ऐसा ही स्मरण करने योग्य नाम भक्त प्रह्लादका है। लेकिन हम यह सोचकर रह जाते हैं कि उनकी-सी भक्ति, वैसी दृढ़ता, वह सत्य और शौर्य हम कहाँसे लायें? फलतः हम जैसे थे, वैसे ही बने रहते हैं। इसलिए आज हम यह देखें कि हमारे-आपके जैसे आदमियोंने क्या किया। हरबतसिंह[3] ऐसा ही एक सत्याग्रही था। वह ७५ वर्षका एक बूढ़ा आदमी था। वह सात रुपये माहवारपर पाँच सालकी गिरमिटपर दक्षिण आफ्रिकाके खेतोंमें मजदूरी करने पहुँचा था। पत्रिकाके पिछले अंकमें २०,००० भारतीयोंकी जिस हड़तालका जिक्र आया है, उसमें हरबतसिंह भी शरीक हुआ था। कुछ हड़तालियोंको जेलकी सजा हुई थी; इनमें बूढ़ा हरबतसिंह भी था। उसके साथियोंने उसे समझाया। कहा : "बाबा, दुःखके इस समुद्रमें पड़ना तुम्हारा काम नहीं है। तुम जेलके

१. यह भाषण तालाबन्दीके ग्यारहवें दिन दिया गया था।

२. भाषणका बाकी हिस्सा उपलब्ध नहीं है।

३. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३१४-१६

लायक नहीं हो। अगर तुम इस लड़ाईमें शामिल न भी हुए, तो कोई तुम्हारी तरफ अँगुली नहीं उठा सकेगा।" जवाबमें हरबर्तसिहने कहा: "जब आप सब अपने सम्मानके लिए इतना दुःख उठा रहे हैं, तब अकेला मैं ही बाहर रहकर क्या करूँ? मैं इस जेलखानेमें मर भी जाऊँ, तो क्या बुरा है?" और सचमुच हरबर्तसिह उसी जेलखानेमें मरा और अमर हो गया। वह जेलके बाहर मरता तो कोई उसका नाम भी न लेता। चूँकि वह जेलके अन्दर मरा, इसलिए देशवासियोंने जेलवालोंसे उसकी लाश माँगी और सैकड़ों हिन्दुस्तानी उसकी लाशके पीछे श्मशान गये।

हरबर्तसिहकी तरह ही ट्रान्सवालके व्यापारी अहमद मुहम्मद काछलियाका नाम भी स्मरणीय है। ईश्वरकी दयासे वे अभी जीवित हैं; और हिन्दुस्तानियोंको संगठित रखकर उनकी प्रतिष्ठाको बनाये हुए हैं। वे दक्षिण आफ्रिकामें रहते हैं। जिस लड़ाईमें हरबत-सिहने अपने प्राण दिये, उसीमें सेठ अहमद मुहम्मद काछलिया कई बार जेल गये। अपना सारा व्यापार उन्होंने नष्ट होने दिया। आजकल वे गरीबीसे रहते हैं, फिर भी वहाँ सब कोई उनका मान करते हैं। अनेक संकट सहकर भी वे अपनी टेकपर डटे रहे हैं।

जिस प्रकार एक बूढ़ा मजदूर और अधेड़ उम्रके एक प्रसिद्ध व्यापारी अपनी टेकके लिए जूझे और अनेक कष्टोंमें से गुजरे, उसी प्रकार सत्रह वर्षकी एक नौजवान कुमारिकाने भी सब संकट सहे। उसका नाम वलिअम्मा[1] था। वह भी इस लड़ाईमें कौमकी टेककी खातिर जेल गई थी। जेल जाते समय वह बीमार थी। उसे बुखार आता था। जेलमें बुखार बढ़ गया। जेलरने उससे जेल छोड़ देनेको कहा। वलिअम्माने जेल छोड़नेसे इनकार किया और दृढ़तासे जेलकी मीयाद पूरी की। जेलसे रिहा होनेके चौथे या पाँचवें दिन वह मर गई।

इन तीनोंका सत्याग्रह शुद्ध सत्याग्रह था। तीनोंने दुःख सहे, तीनों जेल गये और अन्त तक अपनी टेकपर कायम रहे। हमारे सामने तो ऐसा कोई संकट नहीं है। हमें अपनी प्रतिज्ञाको निबाहनेके लिए अधिकसे-अधिक जो सहन करना है, वह इतना ही है कि हम अपने मौज-शौकको कुछ कम करें और अबतक जो तनख्वाह हमें मिलती थी उसके बिना जैसे-तैसे अपना काम चलायें। यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। जो काम इस जमानेमें हमारे ही भाई-बहिन कर सके हैं, वैसा ही कुछ करना हमारे लिए कठिन न होना चाहिए।

इसका कुछ अधिक विचार हम अगले अंकमें करेंगे।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ ४१।

२. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ४७७–७९।

१५३. भाषण : अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें

मार्च ५, १९१८[1]

ये तीनों[2] जेल गये और सरकारसे लड़े; किन्तु इन्हें न तो तनख्वाह लेनी थी, न भत्ता। इन तीनोंको कर भी नहीं देना पड़ता था। काछलिया बड़े व्यापारी थे। उन्हें कर नहीं देना पड़ता था। हरवतसिंह करका कानून बननेसे पहले आये थे, इसलिए करके बोझसे वे भी वरी थे। वलिअम्मा जिस जगह रहती थी, वहाँ करका यह कानून उस वक्त तक जारी नहीं हुआ था। फिर भी टेककी खातिर ये लोग सबके साथ लड़ाईमें शामिल हुए थे। आपकी लड़ाई तो स्वार्थकी है। इसलिए आपका इसपर डटे रहना अधिक आसान है। मैं चाहता हूँ कि यह विचार आपको बल दे और मजबूत बनाये।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१५४. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

मार्च ६, १९१८

पत्रिका — ९

कल हम तीन सत्याग्रहियोंके दृष्टान्तोंपर विचार कर चुके हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि उस लड़ाईमें सिर्फ तीन ही सत्याग्रही थे। २०,००० आदमी एक साथ बेकार हो गये थे, और उनकी वह बेकारी दस-बारह दिनमें दूर नहीं हो गई थी। यह लड़ाई पूरे सात साल तक चली, और इतने समय तक सैंकड़ों आदमियोंने डाँवाडोल स्थितिमें रहकर अपनी टेक निभाई। करीब तीन महीने तक २०,००० मजदूर बिना घरबार, बिना वेतनके रहे। कइयोंने अपने पासकी थोड़ी या बहुत-सारी सम्पत्ति बेच डाली। उन्होंने अपनी झोंपड़ियाँ खाली कर दीं, ओढ़ने-बिछानेका सामान, चारपाई और चौपाये वगैरा बेच डाले और कूचपर निकल पड़े। उनमें से सैंकड़ोंने कई दिन तक बीस-बीस मीलकी मंजिलें तय कीं और सिर्फ डेढ़ पाव आटेकी रोटी और ढाई तोले चीनीपर अपने दिन गुजारे। उनमें हिन्दू भी थे, और मुसलमान भी थे। बम्बईकी जुम्मा मसजिदके मुअज्जिनके फरजंद भी उनमें शामिल थे। उनका नाम इमाम साहिब अब्दुल कादिर बावजीर है।[3] जिन्होंने कभी मुसीबतका मुँह तक नहीं देखा था, उन्होंने जेलकी मुसीबतें सहीं, और जेलके अन्दर रास्तोंकी सफाई करने, पत्थर तोड़ने वगैराकी मजदूरी की, और महीनों तक बहुत ही सादी

१. यह प्रवचन पत्रिका — ८ के संदर्भमें ही था और उसी दिन दिया गया था।

२. काछलिया, हरबतसिंह और वलिअम्मा।

३. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ १६९

और नीरस खुराकपर रहे। आज उनके पास अपनी कहनेको एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। सूरत जिलेके दादामियाँ काज़ी भी ऐसे ही लोगोंमें थे। सत्रह साल से कम उम्रके नारायण स्वामी[1] और नागप्पन[2] नामक दो मद्रासी बालकोंने इसी लड़ाईमें अपने प्राण होमे। उन्होंने धूप सहन की, लेकिन पीछे न हटे।

हमें याद रखना चाहिए कि जिन स्त्रियोंने कभी मजदूरी नहीं की थी, वे इस लड़ाईमें फेरीवाली बनकर घूमीं और जेलमें उन्होंने धोबिनका काम किया।

इन उदाहरणोंका विचार करते हुए ऐसा कौन मजदूर हममें होगा, जो अपनी टेकको निबाहनेके लिए मामूली तकलीफें उठानेको तैयार न हो?

हम देखते हैं कि मालिकोंने जो पर्चे निकाले हैं, उनमें गुस्सेमें आकर कुछ ऐसी बातें लिखी हैं, जो अशोभनीय हैं; कुछ बातोंको जानमें या अनजानमें बढ़ाकर लिखा है, और कुछको तोड़-मरोड़कर लिखा गया है। हम गुस्सेका जवाब गुस्सेसे तो दे ही नहीं सकते। उनमें दी गई गलत बातोंको सुधारना भी ठीक नहीं मालूम होता। उनके सम्बन्धमें सिर्फ यह कहना ही काफी होगा कि न तो हम उनमें दी गई बातोंके चक्करमें पड़ें, और न झल्लायें। मजदूरोंके सलाहकारोंके खिलाफ जो शिकायतें की गई हैं, वे अगर सच होंगी, तो यहाँ उनका जवाब देनेसे वे झूठ साबित न हो सकेंगी। हम जानते हैं कि वे अनुचित हैं। यहाँ जवाब देकर उनको अनुचित सिद्ध करनेकी अपेक्षा हम यह ठीक समझते हैं कि हमारा भावी व्यवहार इसको सिद्ध करे।

अगली पत्रिकामें इस सवालपर कुछ-और विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१५५. पत्र : मिली ग्रॅहम पोलकको

साबरमती
मार्च ६, १९१८

प्रिय मिली[3],

मैं यहाँ खेड़ा-संघर्ष और एक बड़ी हड़ताल चला रहा हूँ। इस प्रकार अब मेरा सत्याग्रह जीवनके सभी क्षेत्रोंमें खुलकर खेलने लगा है। इन दो संघर्षोंके कारण मैं अहमदाबादमें रुका पड़ा हूँ। इनसे सम्बन्धित कुछ कागजात मैं हेनरीको सीधे भेज रहा हूँ। उनके जीवनकी प्रगतिको मैं ध्यानसे देखता रहा हूँ। प्रगतिकी दिशामें हेनरी चाहे जितने बढ़ें, मुझे आश्चर्य नहीं होगा। अगर वे थोड़े भी ढीले पड़े तो मुझे अफसोस जरूर होगा। सर विलियम वेडरबर्नके[4] उठ जानेसे उन्हें कमी तो महसूस होगी, किन्तु वे अपने समयसे

१ व २. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ४३६, ४३८, ४६६, ४७८।

३. एच० एस० एल० पोलककी पत्नी।

४. बम्बई सिविल सर्विसके सदस्य, अवकाश प्राप्त करनेपर संसद-सदस्य; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिके अध्यक्ष, १८९३; कांग्रेसके अध्यक्ष १९१०।

पहले इस दुनियासे विदा नहीं हुए। तुम अम्बालालभाईको पत्र लिखती हो? हड़तालके सबसे जबरदस्त विरोधी वे ही हैं।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१५६. पत्र : जी० के० देवधरको[1]

[अहमदाबाद]
बुधवार, मार्च ६, १९१८

[प्रियश्री देवधर,]

आप जरूर यहाँ आयें। हम अच्छी तरह चर्चा करेंगे और फिर जरूरी हुआ तो यह मान लेंगे कि हमारे बीच मतभेद है। मैं प्रैट और घोषाल दोनोंके निकट सम्पर्कमें आया हूँ और मेरा खयाल है कि मैं दोनोंको समझता हूँ। मेरा खयाल है कि आप हमें आधा सहयोग ही देंगे तो भी हमें उतनेसे सन्तोष करना पड़ेगा। जो आदमी अपने जीवनमें आधे समय बीमार रहे, वह आधा ही उपयोगी होता है। ठीक है या नहीं? तन्दुरुस्ती अच्छी बना लेनेके लिए एक चीज जरूरी है। किन्तु आप वह करते कहाँ हैं।

अत्यन्त हार्दिकतासे,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१. देवधरने गांधीजीके २६ फरवरी, १९१८ के पत्रके उत्तरमें अपने बारेमें गांधीजी द्वारा कही गई बातोंको स्वीकार नहीं किया था और अपने स्वास्थ्यके बारेमें शिकायत की थी। गांधीजीने यह उसीके उत्तरमें लिखा था।

१५७. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

मार्च ६, १९१८

वह[1] तुम्हें उलाहनेके रूपमें नहीं लिखा गया था। यदि विनोदमें उलाहना भी आ गया हो तो वह भाई महादेवका ही था। उसमें मेरा तो कोई हाथ नहीं है। तुम्हारे कामसे मुझे सन्तोष ही हुआ है। असन्तोष तो नजर ही नहीं आया। तुमसे तो अभी मुझे बहुत-सा काम लेना है।

[गुजरातीसे]

बापूनी प्रसादी

१५८. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

मार्च ७, १९१८[2]

पत्रिका — १०

अपनी इस स्थितिमें ऊपरके सवालका विचार करना बहुत जरूरी है। तालाबन्दीको अभी करीब पन्द्रह दिन हुए हैं; इतनेमें ही कुछ लोग कहने लगे हैं कि उनके पास खानेको नहीं है, कुछ कहते हैं कि वे मकानका किराया भी नहीं चुका सकते। बहुतेरे मजदूरोंके घरोंकी हालत बहुत खराब पाई गई है। उनमें हवा और उजालेका अभाव रहता है। घर पुराने हो गये हैं। आसपास बहुत गन्दगी है। मजदूर साफ कपड़े तक नहीं पहन पाते। कुछ तो धोबीका खर्च न उठा सकनेके कारण गन्दे कपड़े पहनते हैं, और कुछ कहते हैं कि वे साबुनका खर्च बरदाश्त नहीं कर सकते। मजदूरोंके बालक मारे-मारे फिरते हैं। उन्हें अनपढ़ रहना पड़ता है। और कुछ मजदूर तो अपने सुकुमार बालकोंको भी कमाईके कामोंमें लगा देते हैं। यह घोर कंगाली सचमुच शोकजनक है। अकेले ३५ प्रतिशतकी बढ़ोतरी इसका कोई इलाज नहीं। अगर दूसरे उपाय न किये जायें तो सम्भव है कि तनख्वाह दुगनी हो जानेपर भी, कंगाली जैसीकी-तैसी बनी रहे। इस गरीबीके अनेक कारण हैं। आज हम उनमें से कुछका विचार करेंगे। मजदूरोंको पूछनेसे पता चलता है कि जब उनका हाथ तंग होता है, वे फी रुपया एक आनेसे लेकर चार आने तक का ब्याज हर महीने देते हैं। यह एक थर्रा देनेवाली बात है। जो आदमी एक बार भी इस तरहका ब्याज देना कबूल करता है, उसका इसके चंगुलसे छूटना बहुत मुश्किल है। कैसे, सो देखिए। सोलह रुपयोंपर फी रुपया एक आनेके हिसाबसे ब्याजके सोलह आने हुए। इतना ब्याज देनेवाला मूलधनके बराबर ब्याज एक वर्ष और चार महीनेमें दे चुकता है। यह ७५ प्रतिशत ब्याज हुआ। बारहसे सोलह प्रतिशत ब्याज देना भी मुश्किल

१. सम्भवतः वह पत्र जो गांधीजीने उन्हें १४ जनवरीको लिखा था। देखिए पृष्ठ १३५।

२. देखिए पत्रिका — ९ का अन्तिम वाक्य।

माना जाता है, तब ७५ प्रतिशत देनेवाला कैसे टिक सकता है? फिर रुपयेपर चार आनेका ब्याज देनेवालेकी तो बात ही क्या? ऐसे आदमीको सोलह रुपयेपर महीनेमें चार रुपये देने पड़ते हैं, और चार महीनोंमें तो मूलधनके ही बराबर रकम दे देनी पड़ती है। यह ३०० प्रतिशत ब्याज हुआ। ऐसे लोग हमेशा कर्जमें डूबे रहते हैं; वे उससे कभी उबर नहीं सकते। ब्याजका यह भार पैगम्बर मुहम्मद साहबने बुरी तरह महसूस किया था, यही वजह है कि कुरान-शरीफमें हमें सूदके बारेमें सख्त आयतें पढ़नेको मिलती हैं। मालूम होता है कि उन्हीं कारणोंसे हिन्दू शास्त्रोंमें 'दामदुप्पट'[1] के नियमको स्थान मिला होगा। अगर इस लड़ाईके सिलसिलेमें हिन्दू और मुसलमान सभी मजदूर इतनी ऊँची दरका ब्याज न देनेकी प्रतिज्ञा कर लें, तो उनके सिरका बहुत बड़ा बोझ उतर जाये। बारह फीसदीसे ज्यादा ब्याजपर रकम किसीको नहीं लेनी चाहिए। कोई पूछेगा कि बात तो ठीक है, लेकिन जो रकम ब्याजपर ली जा चुकी है, वह कैसे लौटाई जाये? वह तो अब जीवनके साथ जुड़ी हुई चीज है। इसका सबसे अच्छा इलाज तो यही है कि मजदूरोंके बीच ऐसी समितियाँ खड़ी की जायें, जिनसे उन्हें आपसमें पैसेकी भी मदद मिल सके। कुछ मजदूरोंकी स्थिति ऐसी भी है कि वे चाहें तो ब्याजके बोझ तले दबे हुए अपने भाइयोंको उससे छुड़ा सकते हैं। बाहरवाले इसमें ज्यादा दखल नहीं दे सकते। जिसे हमपर पूरा विश्वास है, वही हमारी मदद कर सकता है। कैसे भी क्यों न हो, एक बार साहसके साथ मजदूरोंको इस महादुःखसे छूटना चाहिए। ब्याजकी ये भारी-भारी दरें गरीबीका एक बहुत बड़ा कारण है। दूसरे कारण शायद इतने बड़े न हों। उनका विचार आगे करेंगे।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१५९. पत्र : मनसुखलाल मेहताको

मार्च ७, १९१८

श्री मनसुखलाल,

तुम्हारी आलोचनासे मुझे दुःख नहीं होता। काठियावाड़का प्रश्न मुझे तुच्छ नहीं लगता। वह मुझे तो इतना बड़ा लगता है कि अभी वह मेरी शक्तिके बाहर है। मैंने उसपर विचार न किया हो, ऐसी बात भी नहीं है। मैंने इस प्रश्नको विचारपूर्वक ही छोड़ा है। इसमें मेरी कमजोरी हो सकती है। ऐसा हो, तो मुझे बल देना चाहिए। लेकिन तुम्हारे बल देनेसे वह मुझमें आ जायेगा, ऐसा नहीं है। जो भीतरकी आग चाहिए, सो नहीं है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

1. ब्याज मूलधनके दुगनेसे कभी ज्यादा न हो — यह नियम।

१६०. पत्र : प्राणजीवन मेहताको

मार्च ७, १९१८

भाई प्राणजीवन,

खेड़ा जिलेमें परिणाम तो चाहे जो आये, पर अधिकारी-वर्ग और प्रजा-वर्गको भारी शिक्षण मिल रहा है। लोगोंमें असीम जाग्रति हुई है। करबन्दीकी बात कहना पहले राजद्रोह माना जाता था, लेकिन अब लोग निडर होकर उसकी चर्चा करने लगे हैं। शिक्षित-वर्गके जो लोग स्वयंसेवक बने हैं, उन्हें अलभ्य लाभ हुआ है। जिन्होंने कभी गाँव नहीं देखा था, उन्हें लगभग ६०० गाँव देखनेका अवसर मिला। अभी खेड़ा जिलेमें काम पूरा नहीं हुआ। इसी तरह मजदूरों और मालिकोंका मामला चल रहा है। भारतमें जीवनके हरएक विभागमें मेरा प्रवेश हो रहा है। दस हजार मजदूर शान्तिसे रहे और उनमें एक रुपया भी खर्च नहीं करना पड़ा, यह कोई साधारण बात नहीं है; फिर भी यह सही है। लोग समझ गये हैं कि आत्मबलके बराबर दूसरा कोई बल नहीं। दोनों जगह इन दो वाक्योंपर जीत निर्भर है: "तुम हमारे बल-बूतेपर नहीं, बल्कि अपने ही बल-बूतेपर जीतोगे" और "ज्ञानपूर्वक दुःख उठाये बिना नहीं जीतोगे।"

* * *

तुम्हारा व्यवसायमें[1] ज्यादा समय देना अच्छा है या बुरा, यह केवल हेतुपर निर्भर है। जीवनका कोई बीमा नहीं है। अच्छा काम करनेके लिए रुपया कमायें, परन्तु कमाते-कमाते ही मर जायें तो पछतावा रह जाता है। किन्तु पैसा बढ़ाना ही ध्येय हो और पैसेकी वृद्धि करनेमें ही अच्छेपनकी कल्पना की हो या व्यापारिक उन्नतिके उद्देश्यसे व्यापारको अधिक फैलाना ही कर्त्तव्य मान लिया हो, तो व्यापार बढ़ाना ही एकमात्र मार्ग है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. डॉ० मेहताका विचार जहाजी व्यवसायमें लगनेका था।

१६१. पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

साबरमती
मार्च ८, १९१८

प्रिय हेनरी,

मैं तुमको पत्र लिखनेमें अधिकसे-अधिक तत्पर रहा हूँ। इसलिए मेरी समझमें तो मेरे पत्र कहीं और पहुँच गये होंगे। पहला पत्र मिलनेके तुरन्त बाद मुझे तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। मैंने मिलीको लिखकर तुम्हारे पहले पत्रका उत्तर दे दिया है।

तुम अब 'इंडिया'का सम्पादन कर रहे हो। आशा है कि तुम मुझे उसकी प्रतियाँ नियमित रूपसे भेजते रहोगे। मैंने 'ह्विटर्स जरनल' पढ़ लिया है। मलेरियाने मेरा पीछा छोड़ दिया है और अब मैं बहुत अच्छा हूँ।

हसन इमाम तुमको कुछ भी नहीं भेज रहे हैं; मैं उनसे इस बारेमें बात करूँगा।

मैं श्री देसाईसे[1] कह रहा हूँ कि वे तुमको मेरी गतिविधियोंके बारेमें सूचित करते रहें। उन्होंने मेरे कामके लिए अपनेको समर्पित कर दिया है। वे एक बड़े सुयोग्य सहायक हैं, और उनकी महात्त्वाकांक्षा तुम्हारे स्थानकी पूर्ति करना है। है तो टेढ़ी खीर, लेकिन वे पूरा प्रयत्न कर रहे हैं।

सस्नेह,

तुम्हारा,
भाई

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ३७९०) की फोटो-नकलसे।

१६२. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती
महा कृष्ण १३ [मार्च १०, १९१८]

भाई जमनालालजी[2],

आपका खतका उत्तर देनेमें देरी हुई है। मैं यहाँ दो बड़े कार्यमें गीरफ्तार हो गया हुं। मुझे क्षमा कीजीएगा। पुस्तकालयके लीये मेरा नाम रखना उचित हो तो वैसा कीजीये।

मोहनदास गांधीका वन्देमातरम्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल हिन्दी पत्र (जी० एन० २८३६) की फोटो-नकलसे।

१. महादेव देसाई।

२. जमनालाल बजाज (१८८९-१९४२); प्रसिद्ध गांधीवादी उद्योगपति जिन्होंने गांधीजीकी रचनात्मक योजनाओंमें भरपूर सहयोग दिया था। गांधीजीके निकटतम साथियों और सलाहकारोंमें से एक।

१६३. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

मार्च ११, १९१८

पत्रिका — ११

ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, मजदूरोंको गुमराह करनेवाली पत्रिकाएँ भी निकलती जाती हैं। यह भी सुना गया है कि मंगलवारको तालाबन्दी खत्म होगी, और जो मजदूर कामपर जायेंगे, उन्हें ले लिया जायेगा। इसके साथ यह भी सुननेमें आया है कि पाँच या पाँचसे अधिक मजदूरोंको अपने साथ लानेवाले मजदूरोंको कुछ इनाम भी दिया जायेगा। इन दोनों हलचलोंके खिलाफ हमें कुछ करना नहीं है। दूसरे आदमियोंको काम देकर मजदूरोंको फिरसे मिलमें बुलानेका अधिकार मालिकोंको है। लेकिन मजदूरोंका फर्ज क्या है? मजदूरोंने कहा है कि २० प्रतिशत इजाफा उनके लिए काफी नहीं है। उन्होंने मालिकोंको इसकी सूचना भी दी है। ३५ प्रतिशतसे कम इजाफा न लेनेकी प्रतिज्ञा भी वे कर चुके हैं। ऐसी हालतमें कोई मजदूर अपनी टेक, अपना नाम और अपनी मर्दानगीको छोड़े बिना तबतक वापस कामपर नहीं जा सकता, जबतक उसे ३५ प्रतिशत इजाफा न मिले। लेकिन मुमकिन है कि हरएक मजदूरकी यह टेक न हो। प्रत्येक मजदूरने ऐसी प्रतिज्ञा न भी की हो। कुछ मजदूर गुजरातके बाहरके भी हैं। मुमकिन है कि वे हमारी शामकी सभामें न आते हों। अगर वे भी २० प्रतिशत इजाफा लेकर कामपर जाते हैं, तो हम इसे बुरा मानेंगे। किन्तु हमारा फर्ज सिर्फ इतना ही है कि हम ऐसे अज्ञानी मजदूरोंका पता लगाकर उन्हें सच्ची हालत समझा दें। हममें से हरएकको याद रखना चाहिए कि हमारी ओरसे इन लोगोंपर भी किसी प्रकारका दबाव नहीं पड़ना चाहिए।

मंगलवारको यानी कल[1] सुबह ७॥ बजे हम अपने रोजके मुकामपर मिलेंगे। मालिकोंकी ओरसे मिलें चलानेकी जो लालच दी जा रही है, उसमें फँसनेसे बचनेका अच्छेसे-अच्छा रास्ता यही है कि हरएक मजदूर रोज सुबह ७॥ बजे सभाके मुकामपर खुद हाजिर रहे, और जो लोग अबतक सभामें नहीं आये हैं, ऐसे अज्ञात और परदेशी मजदूरोंका पता लगाकर उन्हें सभामें आनेको कहे और सभामें लाये। लालचके इन दिनोंमें सबके दिलमें तरह-तरहके विचार उठेंगे। कामकाजी आदमीके लिए बेकार रहना बहुत दुःखदायक होता है। ऐसे सब लोगोंको सभामें आनेसे कुछ धैर्य मिलेगा। जिन्हें अपनी शक्तिका ज्ञान है, उनके लिए बेकारीका कोई सवाल नहीं रहता। दरअसल मजदूर इतना अधिक स्वतन्त्र है कि अगर उसे अपनी दशाका ठीक-ठीक भान हो जाये, तो नौकरीके जानेसे वह जरा भी न घबराये। धनवानके धनका अन्त हो सकता है, वह चुराया जा सकता है, बुरे कामोंमें खर्च होनेपर देखते-देखते नष्ट हो सकता है, और कभी अन्दाजकी भूलके कारण धनवामको अपना दिवाला भी निकालना पड़ता है। लेकिन

१. अर्थात् १२ मार्चको।

मजदूरका धन अखूट है, उसे कोई चुरा नहीं सकता, और उसपर मनचाहा ब्याज हमेशा मिला करता है। उसके हाथ-पैर, मजदूरी करनेकी उसकी शक्ति, उसकी एक अखूट पूँजी है। मेहनतपर जो मेहनताना उसे मिलता है, वही उसका ब्याज है। एक सीधा नियम है कि अधिक शक्तिका उपयोग करनेवाला मजदूर आसानीसे अधिक ब्याज कमा सकता है। हाँ; जो आलसी है, उसे जरूर भूखों मरना पड़ता है। उसे निराशा सहनी पड़ सकती है। उद्योगीको एक क्षणकी भी चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं रहता। मंगलवारको सुबह सब ठीक समयपर सभामें आइये। सभामें आनेसे आपको अपनी इस स्वतंत्रताकी कुछ अधिक प्रतीति हो सकेगी।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१६४. पत्र : जीवनलाल देसाईको[1]

[अहमदाबाद
मार्च १२, १९१८ से पहले]

प्रिय मित्र,

मुझे समझाने-बुझानेकी आपको जरूरत ही क्यों पड़ी?[2] आपको ऐसा सन्देह भी क्यों हुआ कि आप जो कहें उसे यदि मैं वास्तवमें कर सकता हूँ तो भी नहीं करूँगा। किसी दुराग्रहपर अड़कर तो मैं अपना काम नहीं कर सकता। संसारके और लोग मुझे गलत समझ सकते हैं, परन्तु आप तो नहीं। मेरे हृदयमें अत्यधिक सहानुभूति है। मेरे लिए यह तालाबन्दी कोई छोटी-मोटी चीज नहीं। मुझसे जितना-कुछ बन सकता है, मैं कर रहा हूँ। मेरी एक ही इच्छा यह है कि इसका शीघ्रसे-शीघ्र कोई हल निकल आये — इसीके लिए मैं प्रयत्नशील हूँ। पर मेरे मिल-मालिक मित्र गत्यावरोधको और लम्बा खींच रहे हैं। मुझको समझाने-बुझानेसे कोई लाभ नहीं — ऐसा मानकर आप मिल-मालिकोंको समझाने-बुझानेकी कोशिश क्यों नहीं करते? मजदूरोंके अपमानित होनेसे किसको खुशी होगी? आप इस बातसे निश्चिन्त रहें। शिक्षित और धनिक-वर्गोंमें कोई कटुता नहीं रह जायेगी। धनिकोंसे लड़ाई ठाननेका हमारा कोई मंशा नहीं।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१. बैरिस्टर तथा अहमदाबादके सार्वजनिक कार्यकर्ता।

२. परिस्थितिके एक बड़े संकटापन्न दौरमें, जबकि मिल-मजदूर अपने संघर्षके कष्टोंको काफी अधिक महसूस करने लगे थे, कुछ लोग धीरज हाथसे खोकर ऐसी सलाहें भी देने लगे थे कि मजदूरोंको समझा-बुझाकर वेतनमें १५ या २० प्रतिशत वृद्धि स्वीकार करने और समझौता कर लेनेपर राजी करना चाहिए। यह पत्र, और इसके बादका पत्र १२ मार्चको तालाबन्दी समाप्त होनेसे पहले लिखे गये थे।

१६५. पत्र : मंगलदास पारेखको[1]

[अहमदाबाद
मार्च १२, १९१८ के पूर्व]

कई मित्र मेरे पास आये और उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि मजदूरों और मिल-मालिकोंके बीच झगड़ा समाप्त करानेके लिए मुझे कुछ-न-कुछ करना चाहिए। यदि मेरे वशमें होता तो मैं अपनी जानकी बाजी लगाकर भी झगड़ा बन्द करा देता। परन्तु वह सम्भव नहीं। उसे बन्द कराना तो मालिकोंके हाथमें है। मजदूरोंने ३५ प्रतिशत वृद्धिकी माँग की है, केवल इसीलिए उतना न देना एक प्रतिष्ठाका प्रश्न क्यों बना लिया जाये? यह बात बिलकुल तय क्यों मान ली जाती है कि मैं जो भी चाहूँ उसे स्वीकार करनेके लिए मजदूरोंको राजी कर सकता हूँ? मेरा दावा है कि मैंने जो तरीके अपनाये हैं उनके कारण ही मजदूर मेरी बात मानते हैं। क्या अब मैं दूसरे ऐसे तरीके अपनाऊँ कि जो उनको अपनी प्रतिज्ञा भंग करनेपर विवश कर दें? यदि मैं ऐसा करूँगा तो वे मेरा सिर धड़से अलग क्यों न कर देंगे? मैंने सुना है कि मिलोंके मालिक मुझपर दोषारोपण करते हैं। मुझे उसकी चिन्ता नहीं। एक दिन आयेगा जब वे खुद ही स्वीकार करेंगे कि मैं गलतीपर नहीं था। मैं किसीके भी प्रति हृदयमें कटुता नहीं रखूंगा, इसलिए उनके और मेरे बीच किसी भी प्रकारकी कटुता की गुंजाइश नहीं। कटुताके भावको भी जब-तब उकसाते रहना पड़ता है, परन्तु मैं वैसा नहीं करूँगा। पर आप इसमें हाथ क्यों नहीं बँटाते? इस इतने बड़े संघर्षको अलगसे केवल खड़े-खड़े देखना आपको शोभा नहीं देता।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१६६. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

[मार्च १२, १९१८][2]

पत्रिका — १२

आजसे नया अध्याय शुरू होता है। मालिकोंने तालाबन्दी खत्म करनेका निश्चय किया है और जो २० प्रतिशत इजाफा लेकर कामपर जानेको तैयार हैं, उन्हें लेनेकी इच्छा प्रकट की है। इसलिए आजसे मालिकोंके तालाबन्दीकी जगह मजदूरोंकी हड़ताल शुरू होती है। मालिकोंके इस निश्चयकी आम सूचना आप सबने देखी है। उसमें वे

१. अहमदाबादके उद्योगपति; आपने अहमदाबादमें आश्रमकी स्थापनाके समय गांधीजीकी आर्थिक सहायता की थी।

२. इस दिन तालाबन्दी समाप्त कर दी गई थी।

लिखते हैं कि बहुतसे मजदूर कामपर आनेको तैयार हैं। मगर तालाबन्दीके कारण वे कामपर नहीं आ सके थे। मजदूरोंकी रोज-रोज होनेवाली सभाओं और उनकी प्रतिज्ञाके साथ मालिकोंको मिली हुई यह खबर मेल नहीं खाती। या तो मालिकोंके पास पहुँची हुई खबर सच है, या यह सच है कि मजदूर रोज-रोज सभाओंमें हाजिर होते हैं, और वे अपनी प्रतिज्ञासे बँधे हुए हैं। प्रतिज्ञा करनेसे पहले मजदूरोंने आगा-पीछा सब सोच लिया है, अतएव अब उन्हें कितना ही लालच क्यों न दिया जाये, और कैसी ही मुसीबतें क्यों न उठानी पड़ें, जबतक ३५ प्रतिशत इजाफा नहीं मिलता, वे कामपर नहीं लौट सकते। इसमें उनका ईमान है। अगर वचनको लाखोंके धनके साथ तोला जाये तो उसमें वचनका पलड़ा ही भारी रहेगा। हमें विश्वास है कि मजदूर इस बातको कभी नहीं भूलेंगे। अपने वचनपर डटे रहनेके सिवा मजदूरोंके लिए उन्नतिका दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। और, हम तो मानते हैं कि अगर मिल-मालिक समझें तो उनकी उन्नति भी मजदूरोंके प्रतिज्ञा-पालनमें ही है। जो अपनी टेकको निबाह नहीं सकते, उन लोगोंसे काम लेकर आखिर मालिक भी कोई फायदा नहीं उठा सकेंगे। धार्मिक वृत्तिवाला मनुष्य दूसरेकी प्रतिज्ञाको तुड़वानेमें कभी रस नहीं लेता; कभी हाथ नहीं बँटाता। लेकिन आज मालिकोंके फर्जका विचार करनेकी फुरसत हमें नहीं है। वे अपना फर्ज समझते हैं। हम तो उनसे विनती ही कर सकते हैं; लेकिन मजदूरोंको इस समय अपना फर्ज पूरी तरह समझ लेनेकी जरूरत है। यह समय फिर लौटकर नहीं आयेगा।

अब हम देखें कि मजदूर अपनी प्रतिज्ञा भंग करके क्या पा सकेंगे। आजकल हिन्दुस्तानमें ईमानदार आदमीको होशियारीके साथ काम करनेपर बीस-पच्चीस रुपये कहीं भी मिल सकते हैं। अतएव मजदूरोंकी बड़ीसे-बड़ी हानि तो यही हो सकती है कि मालिक हमेशाके लिए उन्हें छोड़ दें, और उनको कहीं दूसरी जगह नौकरी करनी पड़े। समझदार मजदूरको जान लेना चाहिए कि कुछ दिनोंकी कोशिशसे वह कहीं भी नौकरी पा सकेगा। लेकिन हम मानते हैं कि मालिक इस आखिरी हदतक जाना नहीं चाहते हैं। अगर मजदूर अपनी टेकपर डटे रहेंगे, तो कठोरसे-कठोर दिल भी एक दिन पिघलेगा।

मुमकिन है कि गैर-गुजराती मजदूरोंको (उत्तर भारतसे और दक्षिण भारत यानी मद्राससे आये हुए मजदूरोंको) इस लड़ाईका पूरा खयाल न हो। हम अपने सार्वजनिक कामोंमें हिन्दू, मुसलमान, गुजराती, मद्रासी, पंजाबी वगैराका कोई भेद नहीं रखते, न रखना चाहते हैं। हम सब एक ही हैं, अथवा एक होना चाहते हैं। इसलिए गुजरातके बाहरसे आये हुए इन मजदूरोंको हमें हमदर्दीसे इस लड़ाईका मर्म समझाना चाहिए, और उनको यह बता देना चाहिए कि हमारे साथ रहनेमें उनका और सबका हित है।

[गुजरातीसे].

एक धर्मयुद्ध

१६७. अम्बालाल साराभाईको लिखे पत्रका सारांश[1]

[साबरमती]
मार्च १२, १९१८

आपका पत्र मुझे मिल गया और मैंने उसे पढ़कर फाड़ दिया। मैंने यह चाहा ही नहीं कि मजदूरोंपर दबाव डाला जाये। मजदूरोंपर दबाव डालनेवाले लोगोंके सम्बन्धमें आप अधिक निश्चित विवरण लिखेंगे, तो मैं जरूर कुछ बन्दोबस्त करूँगा। मजदूर कामपर जाते हैं या नहीं, इस बारेमें मैं उदासीन हूँ। किसी भी आदमीको मिलमें जाते हुए जबरन न रोकनेकी हिदायत मैं देता रहा हूँ। मैं यह कदापि नहीं चाहता कि किसी मजदूरको उसकी इच्छाके विरुद्ध मिलमें न जाने दिया जाये। कोई मजदूर मिलमें जानेकी इच्छा प्रकट करे तो मैं उसे खुद मिलमें छोड़ आनेके लिए तैयार हूँ। मजदूर कामपर जाते हैं या नहीं जाते, इस बारेमें मैं बिलकुल उदासीन हूँ।

आपने मुझे जैसा काम सौंप रखा है, उसे देखते हुए मैं आपके साथ रहनेका आनन्द कैसे ले सकता हूँ? आपके बच्चोंसे मिलनेकी मेरी बहुत इच्छा है, परन्तु अभी तो यह भी कैसे सम्भव है? यह सब तो भविष्यकी बात है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१६८. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

मार्च १३, १९१८[2]

पत्रिका — १३

ऐसी अफवाह हमारे सुननेमें आई है कि बहुतेरे मजदूर कामपर जानेको तैयार हैं, लेकिन दूसरे मजदूर उन्हें जोर-जुल्मके साथ, मार-पीटकी धमकी देकर रोके हुए हैं। हरएक मजदूरको हमारी यह प्रतिज्ञा याद रखनी चाहिए कि अगर मजदूर दूसरोंको दबाकर या धमकाकर कामपर जानेसे रोकेंगे, तो हम उनकी मदद न कर सकेंगे। इस लड़ाईमें जीत उसीकी होगी, जो अपनी टेकपर अड़ा रहेगा। टेक किसीसे जबरदस्ती नहीं पलवाई जा सकती। यह चीज ही ऐसी है कि जबर्दस्ती हो ही नहीं सकती। अपनी टेकपर कायम

१. महादेवभाईने डायरीमें लिखा है: गांधीजी नहीं चाहते थे कि किसी भी रूपमें इस पत्रकी कोई नकल रखी जाये, किन्तु स्मृतिसे इसका सारांश तैयार करके रखनेपर उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी।
२. यह पत्रिका तालाबन्दी समाप्त होनेके दूसरे दिन निकाली गई थी।

रहकर ही हम आगे बढ़ना चाहते हैं। जो आदमी मारे डरके कोई काम न करे, वह किस बलपर आगे बढ़ सकता है? उसके पास तो कुछ रहता ही नहीं। अतएव हर मजदूरको यह याद रखना चाहिए कि वह किसी भी दूसरे मजदूरपर किसी प्रकारका दबाव न डाले। अगर दबावसे काम लिया गया, तो सम्भव है कि सारी लड़ाई कमजोर पड़ जाये और एकदम बैठ जाये। मजदूरोंकी लड़ाईका सारा दारोमदार उनकी माँगपर और उनके कार्यकी न्यायोचिततापर है। अगर माँग अनुचित है, तो मजदूर जीत नहीं सकते। और अगर वह उचित है किन्तु उसको पानेके लिए अन्यायसे काम लिया जाये, झूठ बोला जाये, दंगा-फसाद किया जाये, दूसरोंको दबाया जाये, आलस्य किया जाये, और फिर इनसे होनेवाले दुःख उठाने पड़ें, तो उस हालतमें भी वे हार जायेंगे। किसीको न दबाना और अपने गुजारेके लिए आवश्यक मजदूरी करना ये इस लड़ाईकी बहुत जरूरी शर्तें हैं।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१६९. भाषण : अहमदाबादकी सभामें[1]

मार्च १३, १९१८

मैं श्रीमती एनी बेसेंटका पूरा-पूरा परिचय देनेमें असमर्थ हूँ। मेरा तो यह खयाल है कि कोई भी व्यक्ति उनका परिचय नहीं दे सकता। मैं उन्हें तीस वर्षोंसे जानता हूँ परन्तु इतने वर्षोंसे वे मुझे जानती हों — सो नहीं कहा जा सकता। मैं अपने बाल्य-कालसे ही उनके कार्योंका अवलोकन करता आया हूँ। होमरूल शब्द भारतवर्षमें चारों ओर फैल गया है और बड़े-छोटे सभी प्रकारके गाँवोंमें भी उसका प्रवेश हो चुका है — यह सब करामात इन्हीं बहनकी है। मैंने अनेक बार कहा है कि मेरे तथा उनके बीच मतभेद रहे हैं और वे रहेंगे। आज भी बहुतसे मतभेद हैं। यदि होमरूल आन्दोलनकी बाग-डोर मेरे हाथमें होती तो मैं उसे कुछ भिन्न ढंगसे संचालित करता। किन्तु मुझसे उनकी पूजा किये बिना, उन्हें सम्मानित किये बिना — उनके गुणोंकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। कारण यह है कि उन्होंने अपनी आत्मा भारतको अर्पित कर दी है। वे भारतके लिए ही जीती हैं और यही उनकी महत्त्वाकांक्षा है। उनसे सैकड़ों गलतियाँ हों तो भी हम उनकी इज्जत करेंगे। मैं समझता हूँ कि अहमदाबादने इतना बड़ा उपकार करनेवाली बहनको सम्मानित करके स्वयं अपना अपूर्व मान किया है। आज जो व्याख्यान दिया जानेवाला है उसके विषयको देखते हुए कहा जा सकता है कि उपस्थित श्रोता उसके अनुरूप नहीं हैं। श्रीमती बेसेंटने अभी-अभी मुझसे कहा है कि इस श्रोता-समाजके

१. सभाका आयोजन श्रीमती एनी बेसेंटका भाषण सुननेके लिए हुआ था; वे "राष्ट्रीय शिक्षा" पर बोलनेवाली थीं। सभाकी अध्यक्षता गांधीजीने की थी।

सामने स्वराज्यपर भाषण देना तो ठीक होगा परन्तु राष्ट्रीय शिक्षापर बोलना बेकार-सा है। इस सभामें जितने शिक्षित व्यक्ति होने चाहिए थे उतने मौजूद नहीं हैं। फिर भी वे आपके सामने बोलेंगी। मैं जो आपके सामने गुजरातीमें बोल रहा हूँ, उनकी अनुमतिसे बोल रहा हूँ। मुझे आपके समक्ष अपने विचार गुजरातीमें ही व्यक्त करने चाहिए। उनके भाषणका भावार्थ गुजरातीमें बादमें सुना दिया जायेगा। उन्होंने वर्तमान वातावरणमें जो आन्दोलन खड़ा किया है उससे अनेक लाभ हुए हैं। भारत उनकी संगठन-शक्ति और उनकी भाषण कला और उनके कार्योंसे लाभान्वित हुआ है। उन्हें सम्मानित करनेका सबसे पहला कदम शान्तिपूर्वक उनका भाषण सुनना है।

[गुजरातीसे]

प्रजाबन्धु, १७-३-१९१८

१७०. भाषण : अहमदाबादकी सभामें[1]

मार्च १३, १९१८

भाषणके प्रारम्भमें गांधीजीने सभामें उपस्थित लोगोंसे शान्त रहनेको कहा और सभाओंमें समयपर आनेका महत्त्व समझाया। उन्होंने यह भी कहा कि अब बादमें आनेवाले लोगोंको फाटकके बाहर ही खड़े रहना पड़ेगा।

आजके भाषणका विषय हमारे ही हितसे सम्बन्धित है और वह स्वराज्यके बारेमें है। धन, सम्मान और शक्ति ये सब वस्तुएँ स्वराज्यमें ही निहित हैं। इस महिलाके भाषणकी एक बात हमें और वैसे ही सरकारको भी हृदयंगम कर लेनी चाहिए और वह बात यह है कि भारतमें या तो स्वराज्य होना चाहिए या भूख-हड़ताल होनी चाहिए। यह बात सब लोगोंको समझ लेनी है। भारत फिलहाल सत्ताके अभावमें दिन-प्रतिदिन निर्धन होता जा रहा है और गरीबी इस अवस्था तक पहुँच गई है कि जिसके कारण हजारों व्यक्तियोंको अकरणीय कार्य करने पड़े हैं। भूख हड़तालका अर्थ यह है कि चार दिनोंसे भूखा व्यक्ति क्या नहीं कर सकता? श्रीमती बेसेंट आज इसी बातको स्पष्ट करनेके लिए भाषण देनेवाली हैं। यदि श्रीमती बेसेंटके कुछ आलोचकोंको सफलता मिलती है तो उसका कारण केवल यही है कि वे कर्मठ हैं और अपने कार्यमें लीन रहती हैं। उसमें उन्होंने अपना तन, मन और धन न्योछावर कर दिया है। वे जो-कुछ कहना चाहती थीं उसे वे हमारे सामने रख चुकी हैं परन्तु उनके सुझाये मार्गपर चलकर हम अपने लक्ष्यकी प्राप्ति नहीं कर सकते; हमारा बेड़ा तो अपने ही मार्गपर चलनेसे पार हो सकता है। आज अहमदाबादने उनका जो सम्मान किया है वह यदि सच्चे हृदयसे स्फुरित हुआ है तो आप लोग ईश्वरसे यह प्रार्थना करें कि उसने जो शक्ति उन्हें दी है

१. शामको गांधीजीकी अध्यक्षतामें एक और सभा हुई थी जिसमें श्रीमती बेसेंटने "वर्तमान राजनीतिक स्थितिमें हमारा कर्तव्य" विषयपर भाषण दिया था।

वही हमें भी दे। इसी भावसे आप उनका व्याख्यान शान्तिपूर्वक सुनियेगा। जो अंग्रेजी नहीं समझते वे लोग कल सुबह इस भाषणका अनुवाद पढ़ सकते हैं।

सभाकी कार्रवाई समाप्त करते हुए श्री गांधीने कहा कि श्रीमती बेसेंटके भाषणका गुजरातीमें अनुवाद किया जाना चाहिए और उस अनुवादकी प्रतियाँ लोगोंमें वितरित की जानी चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि यह भाषण ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। तत्पश्चात् गांधीजीने उन लोगोंके नाम पढ़ सुनाये जिन्होंने श्रीमती बेसेंटको पैसोंकी थैलियाँ भेंट की थीं और उन्हें धन्यवाद दिया। अन्तमें उन्होंने सबको श्रीमती बेसेंटके भाषणपर मनन करनेकी सलाह दी।

[गुजरातीसे]

प्रजाबन्धु, १७–३–१९१८

१७१. भाषण: अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें

[मार्च १५, १९१८ से पूर्व][1]

आप यन्त्रोंको "निरे ढाँचे"[2] कहकर उनका मजाक उड़ाते हैं, यह उचित नहीं है। बेचारे यन्त्रोंने आपका कोई नुकसान नहीं किया है। अभी कल आप उन्हींकी मददसे अपनी रोजी कमाते थे। इसीलिए अपने कवियोंसे मैं निवेदन करूँगा कि वे कड़वी बातें न कहें; मालिकोंपर किसी तरहके आक्षेप न करें। यह कहनेमें कोई सार नहीं कि हमारी वजहसे मालिक मोटरोंमें सैर करते हैं। ऐसी बातोंसे हमारी कीमत घटती है। मैं तो यह कहता हूँ कि सम्राट् जॉर्ज भी हमारे प्रतापसे अपना राज्य चलाते हैं। लेकिन इन बातोंसे हमारी कोई कीमत नहीं रहती। यह कहकर कि अमुक आदमी बुरा है, हम अच्छे नहीं बन जाते। बुरेकी बुराईको देखनेवाला ऊपर बैठा हुआ है। वह उसे सजा देता है। हम न्याय करनेवाले होते कौन हैं? हम तो सिर्फ यही कहें कि मिल-मालिक हमें ३५ प्रतिशत भत्ता नहीं देते, यह उनकी भूल है।[3]

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१. स्पष्ट है कि यह भाषण उपवासके पूर्व दिया गया था।

२. एक मजदूर-कविने मिलोंकी हँसी करते हुए सभामें एक व्यंग्य-कविता पढ़ी थी।

३. भाषणका शेष हिस्सा उपलब्ध नहीं है।

१७२. मिल-मजदूरोंके हितैषियोंको उत्तर[1]

[मार्च १५, १९१८से पूर्व][2]

अगर मजदूर इस आशासे सत्याग्रहमें शामिल हुए हों कि आप पैसे-टकेसे मदद करके सत्याग्रह करायेंगे, अथवा अपनी आर्थिक मददसे उनको इस लड़ाईमें टिकाये रखेंगे, तो फिर सत्याग्रहका अर्थ ही क्या हुआ? उसका महत्त्व क्या रहा? सत्याग्रहकी खूबी तो इसीमें है कि सत्याग्रही सब तरहके दुःखोंको राजी-खुशी सहन करें। वे जितना अधिक दुःख सहते हैं, उतनी ही अधिक उनकी परीक्षा होती है।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१७३. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

मार्च १५, १९१८[3]

पत्रिका — १४

जैसे धनवान्‌का हथियार धन है, वैसे ही मजदूरी मजदूरका हथियार है। अगर धनवान् अपने धनका उपयोग न करे, तो भूखों मरे। इसी तरह मजदूर अपने धन — मजदूरी — को काममें न लाये, वह मजदूरी न करे, तो उसे भूखों मरना पड़े। जो मजदूरी नहीं करता, वह मजदूर कैसा? जो मजदूर मजदूरी करनेमें शरमाता है, उसे खानेका कोई अधिकार ही नहीं। इसलिए अगर मजदूर इस महान् लड़ाईमें अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना चाहते हैं, तो उन्हें मजदूरी करना सीख लेना होगा। चन्दा इकट्ठा करके और बेकार रहकर जो लोग चन्देके पैसेसे अपना पेट भरते हैं, उन्हें जीतनेका कोई हक नहीं। मजदूर यह लड़ाई अपनी टेकके लिए लड़ रहे हैं। कहना होगा कि जो बिना काम किये खाना चाहते हैं, वे नहीं जानते कि टेक क्या चीज है। जो हयादार हैं, और जिन्हें अपनी इज्जत प्यारी है, वे ही टेक निबाहते हैं। जो सार्वजनिक चन्दोंकी रकमसे बिना हाथ-पैर हिलाये जीना चाहते हैं, उन्हें हयादार कौन कहेगा? इसलिए हमारा फर्ज है कि हम किसी-न-किसी तरहकी मजदूरी करके अपना गुजारा करें। मजदूरका मजदूरीसे जी चुराना ऐसा है, जैसा शक्करका मिठास छोड़ देना।

१. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंके हितैषियोंको दिया गया यह उत्तर किसी पत्रका अंश है या जबानी बातचीतका यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

२. जाहिर है कि यह उत्तर गांधीजीने मजदूरोंके पक्षमें अपना उपवास शुरू करनेसे पहले दिया होगा।

३. यह पत्रिका गांधीजीने जिस दिन उपवास आरम्भ किया उस दिन प्रकाशित हुई थी।

यह लड़ाई सिर्फ ३५ प्रतिशत बढ़ोतरी पानेके लिए नहीं है, बल्कि यह साबित करनेके लिए है कि मजदूर अपने हकके लिए मुसीबतें उठानेको तैयार हैं। यह लड़ाई अपनी टेककी रक्षाके लिए है। हम अपनी तरक्कीके खयालसे, यानी अच्छे बननेके लिए, इसे चला रहे हैं। अगर हम सार्वजनिक धनका दुरुपयोग करते हैं, तो अच्छे बननेके बदले बिगड़ते हैं। अतएव हम किसी भी तरह सोचें, नतीजा यही निकलेगा कि हमें मजदूरी करके ही अपना पोषण करना है। शीरींके खातिर फरहादने पत्थर तोड़े थे। मजदूरोंकी शीरीं उनकी टेक है, उसके लिए वे पत्थर क्यों न फोड़ें? सत्यके लिए हरिश्चन्द्र बिके। अगर मजदूरी करनेमें दुःख है तो क्या अपने सत्यके लिए मजदूर उतना दुःख न सहेंगे? टेककी खातिर हजरत इमाम हसन और हुसैनने बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाईं। हम अपनी टेक निबाहनेके लिए क्यों न मरनेको तैयार रहें? हमें घर बैठे पैसे मिलें, और उनपर हम लड़ें, तो यह कहना ही गलत होगा कि हम लड़े।

इसलिए हमें उम्मीद है कि हरएक मजदूर अपनी टेककी रक्षाके लिए मजदूरी करके अपना पेट पालेगा और दृढ़ रहेगा। अगर यह लड़ाई देर तक चली, तो उसका कारण हमारी कमजोरी ही होगी। जबतक मिल-मालिकोंको यह खयाल रहेगा कि मजदूर दूसरी मजदूरी नहीं करेंगे और आखिर हार जायेंगे, तबतक वे पसीजेंगे भी नहीं और विरोध करते रहेंगे। जबतक उन्हें यह विश्वास न हो जायेगा कि मजदूर अपनी टेक कभी छोड़ेंगे ही नहीं, तबतक उन्हें दया नहीं आयेगी और वे अपने मुनाफेसे हाथ धोकर भी विरोधी बने रहेंगे। जिस दिन उन्हें विश्वास हो जायेगा कि मजदूर अपनी टेक किसी भी दशामें नहीं छोड़ेंगे, उस दिन वे जरूर पसीजेंगे और तब वे मजदूरोंका स्वागत करेंगे। आज तो उनका यह खयाल है कि मजदूर दूसरी मजदूरी करेंगे ही नहीं, और आज या कल घुटने टेक देंगे। अगर मजदूर अपने गुजारेके लिए दूसरोंके पैसेका सहारा लेंगे, तो मालिक सोच लेंगे कि यह पैसा तो किसी-न-किसी दिन खत्म होने ही वाला है। इसलिए वे मजदूरोंको न्याय न देंगे। जिन मजदूरोंके पास खाने-पीनेका साधन नहीं है, वे अगर मजदूरी करने लग जायेंगे, तो मालिक भी समझ लेंगे कि जल्दीसे ३५ प्रतिशत इजाफा न दिया, तो वे मजदूरोंको हाथसे खो बैठेंगे। इस तरह लड़ाईको बढ़ाने या घटानेवाले हम ही हैं। इस समय ज्यादा दुःख सहकर हम जल्दी छुटकारा पा सकते हैं। अगर दुःख नहीं सहेंगे, तो लड़ाई जरूर आगे बढ़ेगी। हमें आशा है कि इन सब बातोंको सोचकर जो आज कच्चे पड़ गये हैं, वे झट पक्के बन जायेंगे।

खास सूचना

कुछ मजदूरोंका यह खयाल हो गया है कि जो कमजोर पड़ गये हैं, उनको शहजोर बननेके लिए समझाया नहीं जा सकता। यह खयाल बिलकुल अनुचित है। जो किसी भी कारणसे कच्चे पड़ गये हैं, उनको विनयपूर्वक समझाना हममें से हरएकका काम है। जो लड़ाईसे वाकिफ नहीं हैं, उन्हें समझाना भी हमारा काम है। हमारा कहना तो यह है कि हमें किसीको धमकाकर, झूठ बोलकर, मारकर या दूसरा कोई दबाव डालकर रोकना नहीं है। जो समझानेपर भी न समझें और कामपर जाना चाहें, वे

भले जायें। हमें उससे बिलकुल निडर रहना है। जबतक एक भी आदमी बाहर रहेगा, हम कभी उसका साथ नहीं छोड़ेंगे।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१७४. भाषण : अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें

[मार्च १५, १९१८][१]

आप लोगोंको पता चला होगा कि आज़ सुबहकी सभामें क्या-क्या हुआ। कइयोंको बड़ा सदमा पहुँचा; कई रो पड़े। मैं नहीं समझता कि सुबह जो-कुछ हुआ, वह गलत हुआ या शरमाने जैसा हुआ। जुगलदासकी चालवालोंने जो टीका की,[२] उससे मुझे गुस्सा नहीं आया, उलटे उससे तो मुझे अथवा जिन्हें हिन्दुस्तानकी कुछ सेवा करनी है उनको, बहुत-कुछ समझ लेना है। मैं मानता हूँ कि अगर हमारी तपस्या, यानी समझकर दुःख सहनेकी शक्ति, सच्ची है, तो वह कभी निष्फल नहीं हो सकती — उसके सुफल फलकर ही रहेंगे। मैंने आपको एक ही सलाह दी। आपने उसके अनुसार प्रतिज्ञा ली। इस युगमें प्रतिज्ञाका मूल्य, टेककी कीमत, नष्ट हो गई है। लोग जब चाहते हैं और जिस तरह चाहते हैं, ली हुई प्रतिज्ञा तोड़ देते हैं, और इस तरह प्रतिज्ञाका पानी उतार देनेसे मुझे दुःख होता है। साधारण आदमीको बाँधनेके लिए प्रतिज्ञासे बढ़कर दूसरी कोई डोर नहीं। परमात्माको अपना साक्षी बनाकर जब हम किसी कामको करनेके लिए तैयार होते हैं, तो वही हमारी प्रतिज्ञा हो जाती है। जो उन्नत हैं, वे बिना प्रतिज्ञाके भी अपना काम चला सकते हैं। लेकिन हमारे समान अवनत या पिछड़े हुए लोग वैसा नहीं कर सकते। हम लोगोंके लिए, जो जीवनमें हजारों बार गिरते हैं, इस तरहकी प्रतिज्ञाओंके बिना ऊपर चढ़ना असम्भव है। आप मंजूर करेंगे कि अगर हमने प्रतिज्ञा न ली होती और रात-दिन उसका रटन न किया होता, तो हममें से बहुतेरे कभीके फिसल चुके होते। आप लोगोंने ही मुझसे कहा है कि इससे पहले इतनी शान्तिसे चलनेवाली कोई हड़ताल आपने नहीं देखी। फिसलने या हारनेका कारण पेटकी आग है। मेरी सलाह है कि आप लोगोंको पेटकी इस आँचको सहकर भी अपनी टेकपर कायम रहना चाहिए। इसके साथ ही मेरी और मेरे साथ काम करनेवाले भाई-बहनोंकी भी यह प्रतिज्ञा है कि किसी भी दशामें हम आपको भूखों न मरने देंगे। अगर हम अपने सामने आपको भूखों मरने दें, तो आपका फिसलना — पीछे हटना — स्वाभाविक है। इस तरहकी दुहरी सलाहके साथ एक तीसरी चीज़ और रह जाती है। वह यह कि हम आपको भूखों न मारें, बल्कि आपसे भीख मँगवायें। अगर हम ऐसा करते हैं, तो भगवान्के सामने गुनहगार ठहरते

१. जिस दिन उपवास शुरू हुआ उस दिन शामको यह भाषण दिया गया था।

२. एक दिन पूर्व जब छगनलाल गांधी इस चालमें रहनेवाले मजदूरोंसे सुबहकी सभामें आनेका अनुरोध करनेके लिए वहाँ गये थे तब उन लोगोंने ताना मारते हुए कहा था : "गांधीजी और अनसूया-बेनका क्या? उन्हें तो मोटरमें आना और मोटरमें जाना और बढ़िया-बढ़िया खाना-पीना। लेकिन हम तो मर रहे हैं। निरे सभाओंमें उपस्थित होनेसे पेट थोड़े ही भर सकता है।"

हैं, चोर साबित होते हैं। लेकिन यह मैं आपको किस तरह समझाऊँ कि आप मजदूरी करके अपना पेट भरिये। मैं मजदूरी कर सकता हूँ, मैंने मजदूरी की है। आज भी करना चाहता हूँ, पर मुझे मौका नहीं मिलता। मुझे अभी बहुत-कुछ करना है, इसलिए सिर्फ कसरतके तौरपर थोड़ी मजदूरी कर लेता हूँ। अगर आप मुझसे यह कहें कि हमने तो करघेकी मजदूरीकी है; दूसरी मजदूरी हम नहीं कर सकते, तो क्या यह कहना आपको शोभेगा? हिन्दुस्तानमें इस तरहका वहम घुस गया है। उसूलन यह ठीक है कि एक आदमीको एक ही काम करना चाहिए, लेकिन जब इसका उपयोग बचावके तौरपर किया जाता है, तो बात बिगड़ जाती है। मैंने इस मसलेपर बहुत सोचा है। जब मुझपर दो एक सीधे हमले हुए, तो मैंने सोचा कि अगर मुझे आप लोगोंसे आपका अपना धर्म पलवाना हो, प्रतिज्ञा और मजदूरीकी कीमत आपको समझानी हो, तो मुझे आपके सामने इसका कोई जीता-जागता सबूत पेश करना चाहिए। आपके साथ हम लोग कोई खिलवाड़ नहीं कर रहे हैं; कोई नाटक नहीं दिखा रहे हैं। जो बातें हम आपसे कहते हैं, उन्हें हम स्वयं भी पालनेको तैयार हैं, यह मैं आपको कैसे समझाऊँ? मैं कोई परमात्मा या खुदा नहीं हूँ कि किसी दूसरे तरीकेसे सब आपको दिखा दूँ। मैं तो आपके सामने कुछ ऐसा कर दिखाना चाहता हूँ, जिससे आप भी समझ जायें कि इस आदमीके साथ तो साफ बात करनी होगी, नाटक-चेटकसे काम नहीं चलेगा। दूसरा कोई लालच या धमकी देकर भी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करवाया जा सकता। लालच तो केवल प्रेमका ही दिया जा सकता है। जिसे अपना धर्म प्यारा है, टेक प्यारी है, देश प्यारा है वही अपनी टेकपर कायम रह सकता है, इसे आप समझ सकते हैं।

मुझे इस तरहकी प्रतिज्ञाएँ लेनेकी आदत है, लेकिन इस डरसे कि कहीं लोग उनकी झूठी नकल न करें, मैं प्रतिज्ञा करना ही छोड़ देता हूँ। किन्तु मुझे तो करोड़ों मजदूरोंके सम्पर्कमें आना है। अतएव उसके लिए मुझे अपनी आत्माके साथ खुलासा कर लेनेकी जरूरत रहती है। मैं आपको यह दिखाना चाहता था कि आप लोगोंके साथ मुझे खिलवाड़ नहीं करना है।

मैंने आपको अपने कार्य द्वारा यह दिखानेकी कोशिश की है कि प्रतिज्ञाका जो मूल्य मैं आँकता हूँ, वही आप भी आँके। आपने एक काम कर दिखाया है। आपके दिलमें यह खयाल आ सकता था: "हमें आपकी प्रतिज्ञासे क्या मतलब? हम टिक नहीं सकते। हम तो कामपर जायेंगे।" लेकिन आपने यह नहीं सोचा। आपने हमारी सेवाको पसन्द किया। और मैंने आपकी बहुत कीमत आँकी। आपके साथ मरना मुझे सुन्दर लगा; आपके साथ-साथ तरना भी मुझे सुन्दर मालूम हुआ।[1]

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१. भाषणका बाकी हिस्सा उपलब्ध नहीं है। गांधीजीके उपवाससे सभी लोग चिन्तित हो उठे थे। मिल-मालिकोंने उनसे उपवास छोड़ देनेके लिए बहुत आग्रह किया और वे उनकी खातिर ३५ प्रतिशत भी देनेको तैयार हो गये। गांधीजीने इस बातसे इनकार करते हुए कहा, "मुझपर दया करके नहीं, बल्कि मजदूरोंकी प्रतिज्ञाका आदर करके उनके साथ न्याय करनेके लिए उन्हें ३५ प्रतिशत दीजिये।"

१७५. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

[मार्च १६, १९१८][1]

पत्रिका — १५

गांधीजीकी प्रतिज्ञाका हेतु और अर्थ समझ लेना जरूरी है। याद रखने योग्य पहली बात यह है कि उन्होंने मालिकोंपर असर डालनेके लिए अपना व्रत शुरू नहीं किया। अगर इस हेतुसे व्रत लिया जाये, तो उससे हमारी लड़ाईको धक्का पहुँचेगा और हमारी वदनामी होगी। मालिकोंसे हम इन्साफ चाहते हैं, महज दया नहीं चाहते। जितनी दया चाहते हैं, वह मजदूरोंको मिले तो अच्छा। हम यह मानें कि मजदूरोंपर दया करना मालिकोंका फर्ज है। लेकिन गांधीजीपर दया करके वे मजदूरोंको ३५ प्रतिशत इजाफा दें, और मजदूर उसे लें, तो उसमें हमारी ही हँसी होगी। मजदूर ऐसा इजाफा स्वीकार नहीं कर सकते। अगर गांधीजी मालिकोंके अथवा सर्वसाधारणके साथके अपने सम्बन्धका ऐसा उपयोग करें, तो कहा जायेगा कि उन्होंने अपनी स्थितिका दुरुपयोग किया है। इससे गांधीजीकी प्रतिष्ठा घटेगी। गांधीजी उपवासका मजदूरोंकी तनख्वाहके साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है? ५० आदमी मालिकोंके घर जाकर अनशन करें, किन्तु यदि मजदूरोंको ३५ प्रतिशत इजाफा पानेका हक न हो, तो मालिक उनकी माँग कैसे स्वीकार कर सकते हैं? अगर इस तरह हक हासिल करनेका रिवाज चल पड़े, तो जन-समाजका काम चलना करीब-करीब असम्भव हो जाये। गांधीजीके इस उपवासपर मिल-मालिक न तो ध्यान दे सकते हैं, न उन्हें ध्यान देना चाहिए। साथ ही यह भी नहीं हो सकता कि गांधीजीके ऐसे कार्यका प्रभाव मालिकोंपर बिलकुल ही न पड़े।

जिस हदतक यह प्रभाव पड़ेगा, उसका उतना ही दुःख हमें होगा। किन्तु यदि गांधीजीके उपवाससे दूसरे महत्वपूर्ण परिणाम निकलते हों, तो हम उनका त्याग न करें।

जिस हेतुकी सिद्धिके लिए उपवास शुरू किया गया है, उसपर भी थोड़ा विचार कर लें। गांधीजीने महसूस किया कि मजदूरोंके मनमें प्रतिज्ञाका महत्त्व कम होने लगा है। अपनी कल्पित भूखके डरसे उनमें से कुछ प्रतिज्ञा तोड़नेको तैयार हो गये थे। दस हजार आदमियोंका अपनी प्रतिज्ञासे मुँह मोड़ना एक असह्य-सी बात है। प्रतिज्ञाका पालन न करनेसे आदमी कमजोर पड़ता है, और अन्तमें अपनी मनुष्यतासे हाथ धो बैठता है। इसलिए आज प्रतिज्ञा-पालनके काममें लोगोंकी भरसक मदद करना, यह हम सबका धर्म बन गया है। गांधीजीने सोचा कि अगर वे उपवास करेंगे, तो यह साबित हो सकेगा कि वे स्वयं प्रतिज्ञाको कितना महत्व देते हैं। फिर मजदूर भूखों मरनेकी बात कर रहे थे। गांधीजीका कथन है कि भूखों मरकर भी प्रतिज्ञा पालनी चाहिए। इसका पालन उन्हें तो सचमुच करना ही चाहिए। और यह तभी सच हो सकता है, जब वे खुद भूखों

१. यह पत्रिका उपवासके दूसरे दिन निकली होगी। उसके अगले दिन, यानी ता० १७को पत्रिका श्री शंकरलाल बैंकरने निकाली थी। ता० १८ के सुबह समझौता हो गया था।

मरनेको तैयार हों। मजदूर कहने लगे कि वे मजदूरी नहीं करेंगे, फिर भी उन्हें पैसेकी मददकी जरूरत तो है। गांधीजीको यह चीज बहुत भयावनी मालूम हुई। मजदूरोंके ऐसे व्यवहारसे देशमें जो अव्यवस्था उत्पन्न होगी, उसका कोई पार ही न रहेगा। मजदूरी करनेमें जो कष्ट है, उसे सह लेनेकी बात लोगोंको पुरअसर ढंगसे समझानेका गांधीजीके पास एक ही तरीका था। वह यह कि वे खुद कष्ट उठायें। वे खुद मजदूरी तो करते थे, लेकिन उतना काफी न था। उपवासको उन्होंने कई दृष्टियोंसे अर्थ-साधक समझा और शुरू किया। अब यह उपवास तभी छूट सकता है, जब या तो मजदूरोंको ३५ प्रतिशत इजाफा मिल जाये, या वे अपनी प्रतिज्ञासे टल जायें। नतीजा वही हुआ, जो सोचा था। जो लोग प्रतिज्ञा लेनेके वक्त हाजिर थे, उन्होंने वह देखा भी। मजदूर जागे, उन्होंने मजदूरी करना शुरू किया, उनका धर्म और उनका ईमान बचा।

मजदूर अब यह समझ चुके हैं कि अगर वे अपनी प्रतिज्ञापर कायम रहेंगे, तो उन्हें इन्साफ मिलेगा। गांधीजीकी प्रतिज्ञासे उनका बल बढ़ा है, लेकिन जूझना तो उन्हें अपनी ही ताकतपर है। मजदूरोंका उद्धार मजदूरोंके हाथमें है।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१७६. पत्र: बम्बईके गवर्नरको

[मार्च १७, १९१८ से पूर्व]

[महानुभाव,]

आशा है, मैंने और मेरे मित्रोंने जाँच-पड़ताल करके जो तथ्य प्राप्त किये हैं, उनके आधारपर तथा महामारी, प्लेग और निर्वाह-व्ययकी वृद्धिसे उत्पन्न कष्टोंको ध्यानमें रखते हुए या तो लगानकी वसूली मुलतवी कर दी जायेगी, या मेरे मूल सुझावके अनुसार किसी स्वतन्त्र निकाय द्वारा सारे मामलेकी जाँच करवाई जायेगी। लेकिन, यदि मेरे इस अन्तिम निवेदनकी उपेक्षा कर दी जाती है और जायदादें छीनी, बेची अथवा जब्त की जाती हैं तो मुझे काश्तकारोंको खुलेआम लगान न अदा करनेकी सलाह देनेको विवश हो जाना पड़ेगा।[1]

खेड़ा जिलेमें सर्वप्रथम प्रवेश करते समय मैंने आपको आश्वासन दिया था कि कोई भी उग्र मार्ग अपनानेसे पूर्व मैं आपको सूचना दे दूँगा। मुझे आशा है कि इस पत्रमें

१. अफसरोंने जोर-जबरदस्ती करके किसानोंसे यह कहलवा *लिया था* कि लगान चुकानेकी दृष्टिसे फसल काफी हुई है। गांधीजीने इस जोर-जबरदस्तीका विरोध किया। कमिश्नर प्रैटने गांधीजी तथा उनके सहयोगियोंकी बातसे असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि किसानोंके लिए सही रास्ता यही है कि वे बकाया रकम चुका दें। इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए गांधीजीने गवर्नरको पत्र लिखा था।

निवेदित विभिन्न तथ्योंपर आप ध्यान देंगे। यदि आप मुझसे मिलना चाहें तो मैं तुरन्त आ जाऊँगा।[1]

[आपका,
मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]
सरदार वल्लभभाई पटेल, खण्ड १

१७७. प्रवचन : आश्रममें प्रार्थनाके बाद

मार्च १७, १९१८

मैंने अभी जो कदम[2] उठाया है, वह बहुत भयंकर है। किन्तु उसके पीछे एक बड़ा विचार है। यह भयंकर इसलिए है कि इसे सुनकर भारतमें जितने लोग मुझे जानते हैं, उन सभीको बहुत दुःख होगा, वे अत्यन्त शोक प्रकट करेंगे। लेकिन इसके साथ ही मुझे अब उन लोगोंको एक सुन्दर तत्त्व समझानेका अवसर भी मिला है। उस अवसरको मुझे न चूकना चाहिए। इस विचारसे मैंने यह कदम उठाया है। आप सबको उसका उद्देश्य समझानेके लिए मैं दो दिनसे बहुत अधीर रहा हूँ, किन्तु ऐसा शान्तिका समय मिल ही नहीं रहा था। यदि मैं प्रातःकाल और संध्याकालकी प्रार्थनाके समय आश्रममें न रह सकूँ तो यह मुझे बहुत खलता है। और इसके अतिरिक्त कल तो संगीतशास्त्री आये थे; इसलिए उनका मधुर स्वर सुननेका सुख तो मैं हरगिज नहीं छोड़ सकता था। मैंने बहुत-से मोह छोड़ दिये हैं, किन्तु अभी कई मोह मुझमें बचे हुए हैं। आजकल तो, संगीतके बारेमें जितना मोह था, उतना संगीत मुझे आश्रममें उपलब्ध है। इसलिए कल अनसूयाबहनका वहाँ रहनेका बहुत आग्रह होनेपर भी मैं यहाँ आ ही गया। ऐसे मौकेपर यहाँके संगीतसे मुझे बड़ी शान्ति मिलती है। आप लोगोंके सामने अपनी आत्मा उँडेलनेके लिए यही ठीक अवसर है। किसी अन्य समयमें जब आप अपने कर्त्तव्य-कर्ममें लगे हुए हों, तब उसे छुड़वाकर आपको यहाँ इकट्ठा करना भी ठीक नहीं।

मुझे अपने देश भारतकी प्राचीन संस्कृतिमें से एक ऐसा तत्त्व मिला है, जिसे यदि यहाँ बैठे हुए हम थोड़ेसे लोग ही जान लें, तो भी समस्त जगत्के साम्राज्यका उपभोग कर सकते हैं। किन्तु उस तत्त्वको बतानेसे पहले मुझे एक बात कहनी है। इस समय भारतमें एक ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिनके पीछे लाखों लोग पागल हैं, जिनके लिए देशके लाखों लोग अपने प्राण देनेको तैयार हो जायेंगे। वे व्यक्ति हैं तिलक महाराज। मुझे कई बार ऐसा

१. उत्तरमें १७ मार्चको गवर्नरने इस प्रकार लिखा : "खेड़ा जिलेमें जो-कुछ हो रहा है, उससे सरकारने अपने-आपको पूरी तरह अवगत रखा है, और उसे पूरा सन्तोष है कि कलक्टर तथा राजस्व विभागके अधिकारियोंने नियम-कानूनकी सख्त पाबन्दी रखते हुए जो-कुछ किया है, उसमें किसानोंके हितोंका बराबर ध्यान रखा है।"

२. अभिप्राय मिल-मजदूरोंकी हड़तालके सम्बन्धमें अपने उपवासके निर्णयसे है।

लगता है कि तिलक महाराजके पास यह बड़ी पूँजी है। यह उनका महाधन है। उन्होंने 'गीता-रहस्य'[1] ग्रन्थ लिखा है। किन्तु मुझे ऐसा लगता ही रहता है कि उन्होंने भारतकी प्राचीन भावनाको, भारतकी आत्माको नहीं पहचाना और इसीलिए इस समय देशकी यह दशा बनी हुई है। उनके मनकी गहराईमें यही बात है कि हम यूरोपीयोंके जैसे बन जायें। आजकल यूरोपकी जैसी शोभा हो रही है — अर्थात् जिनके मनमें यूरोपीय विचार घुस गये हैं, उन्हें यूरोप जितना शोभायमान लगता है — वैसा ही भारतको शोभायमान करना उनका उद्देश्य है। उन्होंने छः वर्ष तक कारावासका कष्ट सहन किया, यूरोपके ढंगकी बहादुरी दिखानेके लिए और इस विचारसे कि जो लोग इस समय हमें सता रहे हैं, वे यह देख लें कि हम जेलमें दस-बीस वर्ष कैसे रह सकते हैं। साइबेरियाकी जेलोंमें रूसके बहुतसे बड़े-बड़े लोग उम्र-भर सड़े, परन्तु वे कोई आत्म-ज्ञानके कारण जेलमें नहीं गये थे। इस तरह जीवन गँवा देना अपना परम धन बेकार गँवा देने जैसा है। तिलक महाराजने कारावासका यह कष्ट आध्यात्मिक दृष्टिसे भोगा होता, तो आज हालत दूसरी ही होती और उनकी जेल-यात्राके परिणाम दूसरे ही होते। मैं उन्हें यही बात समझाना चाहता हूँ। बहुत बार अत्यन्त विनयपूर्वक जितना मुझसे कहा जा सकता है उतना मैंने उनसे कहा है। हां, मैंने उन्हें यह बात स्पष्ट नहीं कही या लिखी। मैंने उन्हें जो-कुछ लिखा है, उसमें मेरा कहना गौण तो जरूर रह जाता है। किन्तु तिलक महाराजकी निरीक्षण-शक्ति इतनी जबरदस्त है कि वे समझ जाते हैं। फिर भी यह बात ऐसी है कि कहकर या लिखकर नहीं समझाई जा सकती। उसका अनुभव करानेके लिए मुझे उन्हें प्रत्यक्ष उदाहरण देना चाहिए। परोक्ष रूपमें मैंने उन्हें कई बार कहा है, परन्तु प्रत्यक्ष दृष्टान्त देनेका अवसर मुझे मिले तो उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिए और यह ऐसा ही अवसर है।

ऐसे ही दूसरे व्यक्ति हैं मदनमोहन मालवीय। भारतके नेताओंमें अर्थात् राजनैतिक पुरुषोंमें और जिन्हें हम जानते हैं, उनमें वे इस समय पवित्रतम पुरुष हैं। अदृश्य पवित्र पुरुष तो बहुत होंगे। किन्तु इतने पवित्र होते हुए भी और धर्मका ज्ञान रखते हुए भी उन्होंने भारतकी भव्य आत्माको अच्छी तरह नहीं पहचाना, ऐसा मुझे लगता है। यह मैंने बहुत कह दिया। मालवीयजी यह सुनकर मुझपर क्रोध कर सकते हैं कि 'यह बहुत अभिमानी मनुष्य है।' किन्तु बात बिलकुल सच्ची है, इसलिए इसे कहते हुए मुझे जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती। मैंने उनसे बहुत बार कहा है। उनके साथ मेरा बहुत ही प्रेमपूर्ण सम्बन्ध है, इसलिए मैंने उनसे बहुत झगड़ा भी किया है। फिर भी मेरे सारे तर्कके अन्तमें उन्होंने यही कहा है कि यह सारी बात सही है, पर वे उसे मान नहीं सकते। उन्हें भी प्रत्यक्ष उदाहरण देनेका यह अवसर मुझे मिला है। मैं इस समय इन दोनोंको बता सकता हूँ कि भारतकी आत्मा क्या है।

बीस दिनसे मैं दस हजार मजदूरोंसे मिलता-जुलता रहा हूँ। उन्होंने मेरे सामने खुदा या ईश्वरको बीचमें रखकर प्रतिज्ञा ली है और प्रतिज्ञा लेते समय उन्होंने बहुत उत्साह दिखाया। वे लोग कैसे भी हों, परन्तु यह तो मानते ही हैं कि खुदा या ईश्वर है।

१. मांडले जेलमें लिखित।

उनकी धारणा यह थी कि उन्होंने बीस दिन प्रतिज्ञाका पालन किया, इसलिए भगवान् उनकी मदद जरूर करेगा। किन्तु भगवान्ने इतने अर्सेमें मदद नहीं की और उनकी ज्यादा परीक्षा ली, इसलिए उनकी आस्था कमजोर पड़ गई। उन्हें यह महसूस हुआ; 'हमने इतने दिनोंतक इस एक व्यक्तिके कहनेपर भरोसा रखकर दुःख उठाया, परन्तु हमें कुछ न मिला। हमने इसका कहना न माना होता और दंगे-फसाद किये होते, तो हमें पैंतीस फीसदी तो क्या, उससे भी ज्यादा थोड़े ही समयमें मिल जाता।' यह उनके मनका विश्लेषण है। मैं इस स्थितिको कदापि सहन नहीं कर सकता। मेरे सामने ली हुई प्रतिज्ञा इस तरह आसानीसे तोड़ दी जाये और ईश्वरके प्रति श्रद्धा कम हो जाये, यह तो धर्मका लोप हुआ ही कहा जायेगा। और इस तरह जिस काममें मैं शामिल होऊँ, उसमें धर्मका लोप होता देखूँ, तो मैं भी जी ही नहीं सकता। मुझे मजदूरोंको यह समझाना चाहिए कि प्रतिज्ञा लेनेका क्या अर्थ है। इसके लिए मैं क्या कर सकता हूँ, यह भी मुझे उन्हें बताना चाहिए। यदि मैं उन्हें यह न बताऊँ, तो मैं कायर कहलाऊँगा। यदि कोई व्यक्ति एक व्यों [व्याम] कूद सकनेका दावा करे और एक बित्ता भी न कूद सके तो यह उसकी कायरता ही होगी। तब मैंने इन दस हजार लोगोंको पतनसे बचानेके लिए यह कदम उठाया। इसीलिए मैंने यह प्रतिज्ञा ली और उसका बिजलीका-सा असर हुआ। मैंने यह सोचा ही नहीं था। वहाँ हजारों आदमी थे। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। उन्हें अपनी आत्माका भान हुआ, उनमें चैतन्य आया और उन्हें अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेका बल मिला। मुझे तुरन्त यह विश्वास हो गया कि भारतसे धर्मका लोप नहीं हुआ है। यहाँके लोग आत्माको पहचान सकते हैं। यह बात तिलक महाराज तथा मालवीयजीकी समझमें आ जाये, तो भारतमें जबरदस्त काम किया जा सकता है।

मैं इस समय आनन्द-विभोर हो रहा हूँ। इससे पहले जब मैंने ऐसी प्रतिज्ञा ली थी, तब मेरे मनमें ऐसी शान्ति नहीं थी। शरीरकी जरूरतें भी मुझे महसूस होती थीं। इस बार मुझे शरीरकी जरूरतें मालूम ही नहीं होतीं। मेरे मनमें पूरी शान्ति है। ऐसा जीमें आता है कि अपनी आत्मा आप लोगोंके सामने उँडेल दूँ। लेकिन मैं आनन्दसे विह्वल भी हो गया हूँ।

मेरी प्रतिज्ञा मजदूरोंसे उनका प्रण पलवानेके लिए है, लोगोंको प्रतिज्ञाका मूल्य समझानेके लिए है। देशमें लोग चाहे जब प्रतिज्ञा लें और चाहे जब उसे तोड़ें, यह देशकी हीन अवस्थाका सूचक है। फिर यदि दस हजार मजदूर अपनी प्रतिज्ञा तोड़ देते तो इससे देशकी अधोगति ही हो जाती। मजदूरोंका सवाल तो फिर कभी उठाया ही नहीं जा सकता। जहाँ-तहाँ यह उदाहरण दिया जाता कि दस हजार मजदूरोंने बीस दिन तक भारी दुःख उठाया था और गांधी जैसा व्यक्ति उनका नेता था, फिर भी वे न जीते। इसलिए मुझे यह सोचना पड़ा कि मजदूर अपनी बातपर किस तरह दृढ़ रह सकते हैं और इस कार्यको मैं अपने-आपको कष्ट दिये बिना कैसे कर सकता हूँ? प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिए ऐसे कष्ट भी उठाने पड़ते हैं, यह उदाहरण उनके सामने रखना जरूरी मालूम हुआ। बस मैंने यह प्रतिज्ञा ली। मैं समझता हूँ कि मेरी प्रतिज्ञा दोषयुक्त है। यह सम्भव है कि इस प्रतिज्ञाके कारण मिल-मालिक मुझपर दया करके मजदूरोंको ३५

प्रतिशत वृद्धि दे दें। मेरी इच्छा तो यही है कि यदि उन्हें न्याययुक्त मालूम हो, तो ही वे ३५ प्रतिशत वृद्धि दें, दयाभावसे कुछ भी न दें। फिर भी उसका स्वाभाविक परिणाम वही होगा और उस हदतक यह प्रतिज्ञा मेरे लिए लज्जाजनक ही है। किन्तु मैंने दो बातोंका विचार किया: अपनी लज्जाका और मजदूरोंकी प्रतिज्ञाका। पलड़ा दूसरी तरफ झुका और मैंने मजदूरोंके लिए लज्जाका भार उठा लेनेका निश्चय किया। सार्वजनिक कार्य करनेमें इस तरहकी लज्जाका भार उठानेके लिए भी मनुष्यको तैयार रहना चाहिए। इस प्रकार मेरी प्रतिज्ञा मिल-मालिकोंके लिए धमकीके रूपमें है ही नहीं और मैं तो यही चाहता हूँ कि मिल-मालिक साफ तौरपर इस बातको समझें और यदि मजदूरोंकी माँग न्यायपूर्ण प्रतीत हो, तो ही उनको ३५ प्रतिशत वृद्धि दें। मजदूरोंसे मेरी यह प्रार्थना है कि वे मिल-मालिकोंके पास जाकर उनसे यही बात कहें।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१७८. अम्बालाल साराभाईको लिखे पत्रका अंश

साबरमती

[मार्च १७, १९१८]

मुझे जिमानकी इच्छाके बदले आप अपनी न्यायवृत्तिका अधिक खयाल रखियेगा। मेरा उपवास मेरे लिए तो अतिशय आनन्ददायक है। अतएव मित्रोंके उससे दुःखी होनेकी कोई वजह मैं नहीं देखता। मजदूरोंको जो न्यायपूर्वक मिलेगा, वही अच्छी तरह हजम होगा — अधिक निभेगा। सामान्य मनुष्योंको तो साफ बात ज्यादा अच्छी लगती है। ३५ प्रतिशत, २० प्रतिशत और पंच — यह सारी 'मूर्खता, अपने धर्म या गर्व' की रक्षाके लिए हम कर सकते हैं, सह सकते हैं। मजदूर इसे प्रपंच मानेंगे, क्योंकि वे सरल हैं। इसलिए मुझे अधिक अच्छा तो तब मालूम होगा, जब दूसरा कोई बेहतर रास्ता मिले। 'आप ऊपरकी शर्तें मंजूर कराना चाहेंगे, तो मैं उन्हें भी मंजूर करूँगा, पर जल्दबाजी न होने दूँगा।' पंच मिलकर तुरन्त ही फैसला कर डालें और उन्हीं दरोंका हम ऐलान करें, यानी पहले दिन ३५, दूसरे दिन २० और तीसरे दिन पंच-फैसलेके मुताबिक। इसमें भी मूर्खता तो है, लेकिन स्पष्टता भी है। तीसरे दिनके आँकड़ेका ऐलान आज ही करना होगा।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१७९. भाषण : अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें

[मार्च १७, १९१८]

मिल-मालिकोंने आकर मुझसे कहा : "आपकी खातिर हम ३५ प्रतिशत दे देंगे।" लेकिन उनका मेरी खातिर ३५ प्रतिशत देना मुझे तलवारकी धारकी तरह खटकता है। मैं इस चीजको जानता था, फिर भी मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सका, क्योंकि मैंने दूसरी तरफ यह सोचा कि १०,००० आदमियोंका अपनी प्रतिज्ञासे मुँह मोड़ना एक ईश्वरीय प्रकोप ही होगा। मेरे लिए तो यह बहुत ही शरमकी बात है कि मेरी खातिर आपको ३५ प्रतिशत मिले।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१८०. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती

माघ कृष्ण [मार्च १८, १९१८[1] से पूर्व]

सुज्ञ भाई श्री जमनालालजी

आपका पत्र मीला है। मेरा नागपुर आनेका मौकुफ रहा है। इस वखत तो यहांका कार्य मेरी सब क्षण ले लेता है। मजदूरोंकी हड़ताल चल रही है और खेडामें कीसानोंपर सरकारका जुल्म चल रहा है। दोनों कार्य भारी हैं।

आपका

मोहनदास गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल हिन्दी पत्र (जी० एन० २८३९) की फोटो-नकलसे।

१. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल इस दिन समाप्त हुई थी।

१८१. भाषण : आश्रम-सदस्योंके सम्मुख[1]

मार्च १८, १९१८

समझौता बहुत करके आज दस बजेसे पहले हो जायेगा। इस समझौतेपर मैं प्रमाद-रहित स्थितिमें विचार कर रहा हूँ। यह ऐसा समझौता है कि जिसे मैं कभी स्वीकार न करता। किन्तु इसमें मेरी प्रतिज्ञाका दोष है। मेरी प्रतिज्ञामें बहुत-से दोष थे। इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें गुण कम और दोष अधिक थे; बल्कि यह है कि जैसे वह अनेक गुणोंसे युक्त थी, वैसे ही बहुतसे दोषोंसे युक्त भी थी। मजदूरोंके सम्बन्धमें वह महान् गुणोंसे युक्त थी और तदनुसार उसके परिणाम भी सुन्दर हुए हैं। मालिकोंके सम्बन्धमें वह दोष-युक्त थी और उस हदतक मुझे झुकना पड़ा है। मालिकोंपर मेरे उपवासका दबाव पड़ा है। मैं इससे कितना ही इनकार करूँ, तो भी यह लोगोंको महसूस हुए बिना नहीं रह सकता और दुनिया मेरी बात मानेगी भी नहीं। "मालिक मेरी इस अनिष्ट दशाके कारण स्वतन्त्र नहीं रहे और जब कोई मनुष्य दब रहा हो, तब उससे कुछ लिखवा लेना, उससे कोई शर्त मंजूर करा लेना या उससे कुछ ले लेना न्याय-विरुद्ध है। सत्याग्रही कभी ऐसा नहीं कर सकता और इसीलिए मुझे इस मामलेमें झुकना पड़ा है। लज्जासे दबा हुआ मनुष्य आखिर क्या कर सकता है?" मैं थोड़ी-थोड़ी माँग करता गया। उसमें से उन्होंने खुशीसे जितनी स्वीकार की, उतनी ही मुझे लेनी पड़ी। मैं पूरी माँग रखता तो वे पूरी स्वीकार कर लेते। किन्तु उन्हें ऐसी स्थितिमें डालकर उनसे मैं उस सबको ले ही नहीं सकता था। यदि मैं लेता तो वह मेरे लिए उपवास तोड़कर नरकका भोजन करनेके बराबर होता। और अमृतका भोजन भी यथासमय ही करनेवाला मैं नरकका भोजन कैसे कर सकता था?

मेरा यह खयाल है कि हमारे शास्त्रोंमें कुछ वचन महान् अनुभवके परिणामस्वरूप लिखे गये हैं। थोरो कहता है कि जहाँ अन्याय प्रवर्तित हो वहाँ शुद्ध मनुष्य धनवान् हो ही नहीं सकता और जहाँ न्याय प्रवर्तित हो, वहाँ उसे किसी चीजकी तंगी नहीं हो सकती। हमारे शास्त्रोंमें इससे भी अधिक कहा गया है। वे कहते हैं कि जहाँ अन्याय प्रवर्तित हो वहाँ शुद्ध मनुष्य जीवित ही नहीं रह सकता। इसीलिए हममें से कुछ लोग किसी प्रवृत्तिमें नहीं पड़ते। इसका कारण यह नहीं है कि वे प्रवृत्तिसे ऊब जाते हैं, बल्कि यह है कि वे कोई प्रवृत्ति चला ही नहीं सकते। उन्हें दुनियामें इतना अधिक दम्भ दिखाई देता है कि वे उसमें रह ही नहीं सकते। बहुत-से पाखंडियोंमें एक शुद्ध मनुष्य हो, तो उसे उन पाखंडियोंको छोड़ देना चाहिए या खुद अशुद्ध बन जाना चाहिए। दुनियाके कुछ शुद्ध मनुष्य हिमालय या विन्ध्याचलमें चले जाते हैं और अपने शरीरोंको सुखा देते हैं। कुछ लोगोंको यह शरीर मिथ्या लगता है। जो आत्माकी अमरता और सर्वव्यापकतामें विश्वास रखते हैं, वे अपने शरीरोंको वहीं त्याग देते हैं और केवल मोक्षको

१. यह समझौतेके दिन प्रातःकाल दिया गया था।

प्राप्त करते हैं। कुछ वहाँसे वापस भी आ जाते हैं; किन्तु इतने शुद्ध होकर कि बादमें दुनियाके दम्भमें रहकर भी वे अपने निश्चित विचारोंपर चल सकते हैं। ऐसे ज्ञानियोंके साथ जब मैं अपनी इस स्थितिकी तुलना करता हूँ, तब मैं अपने-आपको इतना पामर अनुभव करता हूँ कि कुछ न पूछो। फिर भी मुझे अपनी शक्तिका अन्दाज न हो, ऐसी बात नहीं है। लेकिन बाहर उसका अन्दाज जितना लगाया जाना चाहिए, उससे बहुत अधिक लगाया जाता है। मुझे दिन-प्रतिदिन दुनियामें इतना अधिक दम्भ दिखाई दे रहा है कि कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि मैं यहाँ जी ही नहीं सकता। मैंने फीनिक्समें कई बार कहा है कि किसी दिन मैं तुम सबके बीच न दिखाई दूँ, तो कोई आश्चर्य न करना। मुझे किसी दिन ऐसी तीव्र अनुभूति हो गई तो मैं ऐसी जगह चला जाऊँगा, जहाँ मुझे कोई न पा सकेगा। उस समय तुम घबराना मत, बल्कि मैं तुम्हारे पास ही हूँ, यह समझकर अपने हाथमें लिये कामको करते चले जाना।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१८२. भाषण : अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें

[मार्च १८, १९१८][1]

जो समझौता मैं आपके सामने पेश करनेवाला हूँ, उसमें सिवा इसके कि मजदूरोंकी टेक रह-भर जाती है, और कोई बात नहीं है। मैंने मालिकोंको अपनी शक्ति-भर समझाया; हमेशाके लिए ३५ प्रतिशत देनेको कहा। परन्तु यह बात उन्हें बहुत भारी मालूम हुई। अब मैं आपसे एक बात कह दूँ। वह यह कि हमारी माँग एकतरफा थी। लड़ाईसे पहले हमने मालिकोंका पक्ष जाननेकी माँग पेश की थी, परन्तु तब उन्होंने उसे माना नहीं था। अब वे इस प्रस्तावको मंजूर करते हैं कि मामला पंचको सौंप दिया जाये। मैं भी कहता हूँ कि यह झगड़ा पंचके सामने जरूर जाये। पंचसे[2] मैं ३५ प्रतिशत ले सकूँगा। अगर पंच कुछ कम देनेका निर्णय देंगे, तो मैं मान लूँगा कि हमने माँगनेमें ही भूल की थी। मालिकोंने मुझसे कहा कि जैसी हमारी प्रतिज्ञा है, वैसी उनकी भी प्रतिज्ञा है। मैंने उन्हें कहा कि ऐसी प्रतिज्ञा करनेका उन्हें अधिकार नहीं। लेकिन उनका आग्रह रहा कि उनकी प्रतिज्ञा भी सच है। मैंने दोनोंकी प्रतिज्ञापर विचार किया। मेरे उपवास मार्गमें बाधक बने। मैं उनसे यह तो नहीं कह सकता था कि मुँहमाँगा दोगे, तभी मैं उपवास तोडूँगा; यह तो वीरताकी बात न होती। इसलिए मैंने मान लिया कि फिलहाल तो दोनों पक्षोंकी प्रतिज्ञाएँ रहें, और बादमें पंच जो फैसला दे दें, सो सही।

१. समझौता १८ तारीखको सवेरे हुआ। उसी दिन ११ बजेके करीब गांधीजीने मजदूरोंको उसकी सूचना दी। इस सभामें कमिश्नर और अहमदाबादके प्रमुख नागरिकोंने भाग लिया था।

२. दोनों पक्षोंने प्रो० आनन्दशंकर ध्रुवको पंच बनाना स्वीकार किया।

इसलिए थोड़ेमें हमारे समझौतेका सार यह है कि पहले दिन हमें अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ३५ प्रतिशत ज्यादा मिले, दूसरे दिन मालिकोंकी प्रतिज्ञाके अनुसार २० प्रतिशत मिले। और तीसरे दिनसे पंचका फैसला होने तक २७॥ प्रतिशत मिले। बादमें पंच ३५ प्रतिशतका फैसला दें, तो मालिक ७॥ प्रतिशत हमें और दें और २७॥ से कमका फैसला दें तो उतनी रकम हम मालिकोंको लौटा दें।

आपके लिए मैं जो-कुछ लाया हूँ, वह हमारी प्रतिज्ञाके शब्दोंकी पूर्तिके लिए काफी होगा, आत्माके लिए नहीं। आत्मावाले अभी हम नहीं हैं, इसलिए शब्दके पालनसे ही हमें सन्तोष करना होगा।

हम आपसमें मिलकर विचार-विमर्श करते रहे हैं; अब हमसे बिना मिले आप कोई प्रतिज्ञा न कर बैठना। जिसे अनुभव नहीं, जिसने कुछ किया-धरा नहीं, वह प्रतिज्ञाका भी अधिकारी नहीं। बीस वर्षोंके अनुभवके बाद मैं इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि प्रतिज्ञा लेनेका मुझे अधिकार है। मैंने देखा है कि आप अभी प्रतिज्ञा लेनेके लायक नहीं हुए हैं। अतएव अपने बुजुर्गोंसे पूछे बिना प्रतिज्ञा न लेना। प्रतिज्ञा लेनी ही पड़े, तो हमसे आकर मिलना। जब ऐसा समय आयेगा, तो विश्वास रखिए कि आजकी तरह तब भी हम आपके लिए मरनेको तैयार रहेंगे। लेकिन याद रखिए कि जो प्रतिज्ञा आप हमारे सामने लेंगे, उसीके लिए हम आपकी मदद कर सकेंगे। भूलसे की जानेवाली प्रतिज्ञा तोड़ी भी जा सकती है। आपको तो अभी यह भी सीखना है कि प्रतिज्ञा कब और किस तरह लेनी चाहिए।[1]

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१८३. भाषण : अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी सभामें[2]

[मार्च १८, १९१८]

मुझे लगता है कि जैसे-जैसे दिन बीतते जायेंगे, वैसे-वैसे अहमदाबाद तो ठीक, सारा हिन्दुस्तान इन २२ दिनोंकी लड़ाईके लिए गर्वका अनुभव करेगा, और हिन्दुस्तानवाले यह मानेंगे कि जहाँ इस तरहकी लड़ाई चल सकती है, वहाँ आशाकी बहुत-कुछ गुंजाइश है। इस लड़ाईमें वैर-भावको कोई स्थान नहीं रहा है। मैंने ऐसी लड़ाईका अभीतक अनुभव नहीं किया था। वैसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे कई लड़ाइयोंका अनुभव मुझे है, लेकिन उनमें से एक भी ऐसी नहीं याद पड़ती कि जिसमें दुश्मनी या कड़वाहट इतनी कम रही हो। आशा है, जैसी शान्ति आपने लड़ाईके दिनोंमें रखी थी, वैसी आप हमेशा बनाये रखेंगे।

१. भाषणका बाकी हिस्सा उपलब्ध नहीं है।

२. जिस दिन समझौता हुआ उस दिन शामको अम्बालाल साराभाईके घरके अहातेमें एक सभा हुई थी; मिल-मालिकोंने मजदूरोंको मिठाई बाँटी थी; समझौतेके स्वागतमें अम्बालाल साराभाईके भाषणके बाद सभाको सम्बोधित करते हुए गांधीजीने उपर्युक्त उद्गार प्रकट किये थे।

मैं आपकी [मजदूरोंकी] ओरसे मालिकोंसे क्षमा माँगता हूँ। मैंने उन्हें बहुत दुःख दिया है। मेरी प्रतिज्ञा तो आपके लिए थी; लेकिन दुनियामें हमेशा हर चीजके दो पहलू रहते आये हैं; इसी कारण मेरी प्रतिज्ञाका प्रभाव मालिकोंपर भी पड़ा है। मैं नम्रतासे उनसे क्षमा चाहता हूँ। मैं जितना मजदूरोंका सेवक हूँ, उतना ही आपका [मालिकोंका] सेवक भी हूँ। मेरी प्रार्थना केवल यही है कि आप मेरी सेवाओंका ठीक-ठीक उपयोग कीजिएगा।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१८४. तार: एनी बेसेंटको

[मार्च १८, १९१८]

ईश्वरको धन्यवाद। सब निबट गया। सम्मानप्रद समझौता हो गया। निर्माणका कठिन कार्य अब आरम्भ। हम सभी आपके कृपा-भावके कृतज्ञ।[1]

गांधी

[अंग्रेजीसे]

न्यू इंडिया, १९-३-१९१८

१८५. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल

मार्च १९, १९१८

पत्रिका — १७

दोनोंकी जीत

पिछली पत्रिकाओंमें हम देख चुके हैं कि सत्याग्रहमें हमेशा दोनों पक्षोंकी जीत होती है। जो सत्यके लिए लड़ा और जिसने सत्यको प्राप्त किया, वह तो जीता ही लेकिन जिसने सत्यका विरोध किया और अन्तमें सत्यको पहचाना और उसे स्वीकार किया वह भी जीता ही माना जाता है। इस विचारके अनुसार चूँकि मजदूरोंकी प्रतिज्ञा रही है, इसलिए विजय दोनों पक्षोंकी हुई है। मालिकोंने भी प्रतिज्ञा की थी कि वे २० प्रतिशतसे ज्यादा नहीं देंगे; हमने उनकी इस प्रतिज्ञाका भी मान रखा है। मतलब यह कि दोनोंकी लाज रही है। अब यह देखें कि समझौता क्या हुआ है:

१. मजदूर कल, यानी तारीख २० को कामपर जायें। ता० २० के दिन उन्हें ३५ प्रतिशत इजाफा मिले, और ता० २१ को २० प्रतिशत।

१. आशय 'धर्मयुद्ध' में जीतसे है। इस तारको एनी बेसेंटने इस टिप्पणीके साथ प्रकाशित किया: "बतलाना मुश्किल है कि इस समाचारसे कितनी राहत मिली। हम उनके ही शब्दोंमें केवल इतना कह सकते हैं: 'ईश्वरको धन्यवाद'।"

२. ता० २२ से आगे, ३५ प्रतिशत तक, पंच जितना प्रतिशत तय करें, उसके अनुसार इजाफा दिया जाये।

३. गुजरात्के विद्वत् शिरोमणि, साधुपुरुष, गुजरात कॉलेजके अध्यापक और वाइस प्रिंसिपल श्री आनन्दशंकर ध्रुव, एम० ए०, एल एल० बी० पंच नियुक्त किये जायें।

४. पंच महोदयका फैसला तीन महीनेके अन्दर प्रकट हो जाये। इस बीच मजदूरों को २७॥ प्रतिशत इजाफा दिया जाये। यानी आधी रकम मजदूर छोड़ें और आधी मालिक छोड़ें।

५. पंच-फैसलेके अनुसार २७॥ प्रतिशतपर घट-बढ़ लेनी-देनी मानी जाये। यानी अगर पंच २७॥ प्रतिशतसे ज्यादाका फैसला दें, तो मालिक उतना इजाफा मजदूरोंको और दें; और अगर २७॥ से कमका फैसला दें, तो मजदूर उतनी रकम मालिकोंको वापस लौटा दें।

इसमें दो बड़ी चीजें हासिल हुई हैं। एक तो मजदूरोंकी प्रतिज्ञाकी रक्षा हो गई, दूसरे यह तय हुआ कि दोनों पक्षोंके बीच किसी महत्त्वके प्रश्नपर झगड़ा खड़ा हो, तो उसका निर्णय हड़ताल द्वारा न करके पंच द्वारा किया जाये। समझौतेमें यह शर्त तो नहीं है कि आगे दोनों पक्ष अपने आपसी झगड़ोंका फैसला पंचकी मारफत ही करायेंगे; लेकिन चूँकि समझौतेमें पंचको मान्य रखा गया है, इसलिए माना जा सकता है कि ऐसे मौकोंपर आगे भी पंचकी नियुक्ति होगी। कोई यह न माने कि मामूली-मामूली बातोंके लिए पंच मुकर्रर किये जायेंगे। मालिकों और मजदूरोंके बीच खड़े होनेवाले मतभेदोंको मिटानेके लिए हमेशा किसी तीसरे पक्षको बीचमें पड़ना पड़े, यह दोनोंके लिए शर्मनाक है। मालिक तो इसे बरदाश्त कर ही नहीं सकते। वे इस शर्तपर अपना धन्धा कभी न चलायेंगे। दुनिया सदासे लक्ष्मीका सम्मान करती आई है और लक्ष्मी सदा सम्मान पायेगी। अतएव अगर मजदूर जरा-जरासी बातोंके लिए मालिकोंको हैरान करेंगे, तो मालिकोंसे उनका कोई सम्बन्ध न रह सकेगा। हम मानते हैं कि मजदूर ऐसा कभी करेंगे ही नहीं। हम यह कह देना जरूरी समझते हैं कि मजदूर कभी बिना सोचे हड़ताल न करें। अगर वे हमसे बिना पूछे हड़ताल करेंगे, तो हम उनकी मदद न कर सकेंगे। पूछा गया है कि एक दिन ३५ प्रतिशत लेकर बैठ जानेमें प्रतिज्ञाका पालन क्या हुआ? यह तो बालकोंको बहलाने-फुसलाने जैसी बात हुई। कुछ समझौतोंमें ऐसा हुआ है। लेकिन इसमें ऐसा नहीं हुआ। हमने जानबूझकर, समयका विचार करके, एक ही दिनके ३५ प्रतिशत मंजूर किये हैं। हम ३५ प्रतिशत लिये बिना कामपर नहीं जायेंगे, इसके दो अर्थ होते हैं। एक तो यह कि हम हमेशा ३५ प्रतिशत इजाफा चाहेंगे, उससे कम कभी मंजूर नहीं करेंगे; दूसरा यह कि हम ३५ प्रतिशत लेकर कामपर जायेंगे, फिर वह एक दिनके लिए भी मिले, तो काफी है। जिसने निश्चय किया हो कि हमेशाके लिए ३५ प्रतिशत माँगनेमें शुद्ध न्याय है, और उतना पानेके लिए जिसके अन्दर अनन्त शौर्य हो, वह तो तभी अपनी प्रतिज्ञा सफल हुई समझेगा, जब उसे ३५ प्रतिशत हमेशाके लिए मिलेंगे। लेकिन हमारा निश्चय ऐसा नहीं था। हम पंचसे न्याय करानेको हमेशा तैयार थे। ३५ प्रतिशतका निश्चय हमने एकतरफा विचार करके किया था। ३५ प्रतिशतकी सलाह देनेसे पहले हम मालिकोंका पक्ष उन्हींके मुँहसे सुन लेना चाहते थे। दुर्भाग्यसे वैसा न हो सका। इसलिए हमने जितना

हो सका उतना उनके पक्षका विचार करके ३५ प्रतिशतकी सलाह दी। लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि हमारे द्वारा निश्चित ३५ प्रतिशत इजाफेकी माँग सही ही है। हमने ऐसा कभी कहा भी नहीं। अगर मालिक हमें हमारी भूल बतायें, तो जरूर ही हम कम इजाफा लेनेकी सलाह दें। यानी अगर पंचको कम इजाफा देना ठीक मालूम पड़े और उतना हम मंजूर कर लें, तो उससे हमारी टेकको जरा भी आँच नहीं आती। हमने पंचके उसूलको हमेशासे माना है। हमें आशा है कि ३५ प्रतिशत ठहरानेमें हमने कोई भूल नहीं की है। इसलिए हमारा खयाल है कि उतना मिलेगा। लेकिन अगर हमें अपनी भूल मालूम हो जाये, तो हम खुशीसे कम ले लेंगे।

तीन महीनेकी मुद्दत खास तौरपर हमारी ओरसे ही माँगी गई है। मालिक तो पन्द्रह दिनकी मुद्दत मंजूर करनेको तैयार थे। लेकिन हमें अपनी माँगको सही साबित करनेके लिए बम्बईमें थोड़ी जाँच-पड़ताल करनेकी जरूरत है। पंच महोदयको यहाँकी स्थिति समझाने और मजदूरोंके रहन-सहन की जानकारी करानेकी भी जरूरत है। जबतक वे इन सब बातोंको न समझ लें, उन्हें परिस्थितिका पूरा खयाल नहीं आ सकता। इस तरहका सच्चा और पक्का काम कुछ ही दिनोंमें पूरा नहीं हो सकता। फिर भी जहाँ-तक हो सकेगा काम जल्दी ही पूरा किया जायेगा।

कुछ भाइयोंने तालाबन्दीके दिनोंकी तनख्वाह लेनेकी इच्छा जाहिर की है। हमें कहना चाहिए कि हम यह तनख्वाह नहीं माँग सकते। हमने २० प्रतिशत लेनेसे इनकार किया इसीलिए तो तालाबन्दी या हड़तालमें से किसी एककी जरूरत खड़ी हुई। हमने २५ दिन तक जो तकलीफ उठाई, वह हमारे लिए कर्त्तव्य-रूप थी और उसमें हमारा स्वार्थ था। इस दुःखकी कीमत हमने प्राप्त कर ली है। यह समझौता ही वह कीमत है। अब हम तालाबन्दीके दिनोंकी तनख्वाह कैसे माँग सकते हैं? उन दिनोंकी तनख्वाह माँगनेका मतलब यह होगा कि हम मालिकोंके पैसेसे लड़ाई लड़ें। मजदूरोंके लिए यह एक शरमानेवाला विचार है। लड़वैये अपनी ताकतपर ही लड़ सकते हैं। दूसरे, मालिकोंने मजदूरोंको तनख्वाह चुका दी थी। अब तो यह भी कहा जा सकता है कि मजदूर नये सिरेसे नौकरी शुरू करते हैं। इन सब बातोंका विचार करते हुए मजदूरोंको तालाबन्दीके समयकी तनख्वाह लेनेका खयाल छोड़ देना चाहिए।

मजदूरोंको तनख्वाह २० दिन बाद मिलेगी। इस बीच मजदूर क्या करें? बहुतोंकी जेबें बिलकुल खाली होंगी। जिन्हें तनख्वाह मिलनेके दिनसे पहले मददकी जरूरत हो, उन्हें चाहिए कि वे मालिकोंसे नम्रतासे विनती करें; हमें विश्वास है कि मालिक उनकी इस प्रार्थनापर कुछ सहूलियत कर देंगे।

मजदूरोंको याद रहे कि अबसे आगेकी उनकी हालतका आधार उनके कामपर रहेगा। यदि वे सच्ची नीयतके साथ, नम्रता और उत्साहसे नौकरी करेंगे, तो मालिकोंकी मेहरबानी पा सकेंगे और उनसे बहुत-कुछ मदद ले सकेंगे। यह सोचना कि सब-कुछ हमारे मारफत ही मिल सकेगा, गलत होगा। संकटके अवसरपर मजदूरोंकी सेवा करनेके लिए हम तैयार हैं। लेकिन जहाँतक हो सके, मालिकोंको माँ-बाप समझकर उन्हींसे सब-कुछ लेनेमें मजदूरोंका हित है।

अब शान्तिकी आवश्यकता है। छोटी-मोटी तकलीफें सहन कर लेनी हैं।

अगर आप इजाजत देंगे, तो आपमें से जिन्हें कुछ बुरी आदतें पड़ी हुई हैं, उनकी उन आदतोंको सुधारनेमें कुछ मदद करनेका हमारा इरादा है। हम आपको और आपके बालकोंको तालीम देनेकी भी उम्मीद रखते हैं। हम चाहते हैं कि आपकी नैतिकता बढ़े, आपकी और आपके बच्चोंकी तन्दुरुस्ती बढ़े और आपकी माली हालत सुधरे। अगर आप इजाजत देंगे, तो हम इसके लिए आवश्यक काम शुरू करेंगे।

मजदूरोंकी बड़ीसे-बड़ी जीत तो यह है कि भगवानने — खुदाने — उनकी टेक या लाज रख ली है। जिसका ईमान रह गया, उसका सब-कुछ रह गया। ईमान जाये और दुनियाका राज भी मिले, तो वह धूलके बराबर है।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

१८६. पत्र: एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ताको

मार्च १९, १९१८

भाईश्री,

आपका पत्र मिला। अगर आपको मेरे हाथों न्याय मिला ही नहीं, तो आप मेरा त्याग क्यों नहीं करते? आपसे मैंने जो बात कही, वह सलाहके रूपमें ही कही थी। मैंने आपसे कहा था कि मैंने जो-कुछ कहा उसपर आप तभी चलें जब आप उसे मानें। आपने मेरी सलाह पसन्द की, इसीलिए सार्वजनिक कार्य छोड़नेका निश्चय किया। अब आपको मेरी सलाहमें कठोरताके सिवा और कुछ न दिखाई देता हो, तो आप मेरी सलाहको उठाकर ताकमें रख सकते हैं। अब मेरी सलाह है कि आप जैसे काम कर रहे थे उसी तरह फिर करें; यह मैं रोषमें नहीं लिख रहा हूँ, बल्कि ठीक समझकर लिख रहा हूँ। आपमें पहले कही हुई बातको याद रखनेकी शक्ति नहीं है, इसलिए मुझे लगता है कि अभी तो आपको केवल अपना स्वतन्त्र मार्ग ही ग्रहण करना चाहिए। इसीसे आपकी उन्नति होगी। आप मेरी सलाहको भी आज्ञा मानें और यह समझें कि उससे जरा भी इधर-उधर नहीं हुआ जा सकता, तो आपकी अधोगति होगी। मेरे खयालसे आपके लिए ठीक मार्ग होमरूलकी अपनी प्रवृत्तिमें गिरफ्तार होना ही है और आप उसीको ग्रहण करें। आप यह निश्चित समझें कि यदि आप सम्मेलनमें और ऐसे ही अन्य कार्योंमें पूरी तरह संलग्न हो जायेंगे तो मैं तनिक भी रोष नहीं करूँगा। आप जब मेरी सलाह और मेरी आज्ञाके बीचका भेद जान लें, तब मेरी सलाह भी लेते रहें। मैंने यह पत्र केवल आपके चित्तको शान्ति देनेके लिए लिखा है, दुःखी करनेके लिए नहीं।

मोहनदास गांधी

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१८७. भाषण : अहमदाबादकी सभामें[1]

मार्च २१, १९१८

श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजका परिचय मैं इससे पहले आपको दे चुका हूँ। उन्हें हम निःसन्देह ऋषि कह सकते हैं, क्योंकि उनमें एक पवित्र ऋषिके सब गुण मौजूद हैं। वे अभी हालमें फीजीसे लौटे हैं। वहाँ वे हमारे ही कामके सिलसिलेमें गये हुए थे। वे वहाँके होटलमें नहीं ठहरे और न वे किसी धनाढ्य व्यक्तिके यहाँ ही रहे। वे मजदूरोंके घरोंमें उन्हींके बीच रहे और मजदूरोंके रहन-सहनका अध्ययन किया। इस वक्त खेड़ा जिलेके किसानोंका आन्दोलन चल रहा है। अब मैं अपने व्यक्तिगत विश्वासके बलपर कह सकता हूँ कि इस जिलेके कितने ही तालुकोंमें चार आनेसे कम फसल हुई है। दूसरी ओर मैं बड़ी जल्दी दिल्ली जाना चाहता हूँ और वहाँ जाना आवश्यक भी है। मैं यह भी नहीं चाहता कि खेड़ा जिलेके काममें ढील पड़े। आप लोगोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि फिलहाल वहाँका काम श्री एन्ड्रयूजने अपने जिम्मे ले लिया है। वे आज माननीय गवर्नर महोदयसे मिलनेके लिए बम्बई जा रहे हैं। वे मेरी ओर से उनके समक्ष खेड़ा जिलेके सम्बन्धमें कुछ तथ्य प्रस्तुत करेंगे और मेरा निवेदन भी कह सुनायेंगे। यदि इसका कुछ [अच्छा] परिणाम निकला, तो ठीक; अन्यथा वे उसी रविवारको नडियाद लौट जायेंगे। आप देखेंगे कि इस प्रकार उन्होंने हमारे कार्यमें भी अपना सहयोग देना शुरू कर दिया है।[2]

मुझे यह देखकर खुशी हुई कि श्री एन्ड्रयूजने अपना भाषण हिन्दीमें दिया। परन्तु उनके हिन्दीमें बोलनेका कारण मैं नहीं था। वे अंग्रेजीमें भी बहुत अच्छा बोलते हैं। कैम्ब्रिजके 'डोन'की अंग्रेजीके सम्बन्धमें तो कहा ही क्या जा सकता है? यदि उन्हें विद्यार्थियोंकी सभामें मिल्टन या शेक्सपीयरपर व्याख्यान देना होता तो उनका अंग्रेजीमें बोलना ठीक होता। श्री एन्ड्रयूज जब पहले-पहल फीजी[3] गये थे तब उनके साथ श्री पियर्सन भी थे, परन्तु दूसरी मर्तबा वे वहाँ अकेले ही गये। इस बातका ध्यान रखनेके लिए कि फीजीमें गिरमिट-प्रथाके स्थानपर कहीं और कोई हानिकर प्रथा दाखिल न हो जाये, मैंने ही उन्हें वहाँ जानेकी सलाह दी थी। श्री एन्ड्रयूजने जिन अस्पतालोंका उल्लेख किया है उन्हें वास्तवमें अस्पताल नहीं अत्याचारके केन्द्र कहा जाना चाहिए। क्योंकि उनमें भारतीय स्त्रियोंकी दशा बहुत ही शोचनीय है। उस स्थानपर श्री एन्ड्रयूजने जब सरकारसे जनाने अस्पताल खोले जानेके लिए कहा तब उसने उत्तरमें यह सूचित किया कि यह काम बागान-मालिकोंका है और बागान-मालिकोंने यह कहा कि

१. गांधीजीने सभाके अध्यक्षकी हैसियतसे श्री एन्ड्रयूजका परिचय देते हुए ये शब्द कहे थे। श्री एन्ड्रयूजने फीजीके गिरमिटिया भारतीयोंके विषयमें भाषण दिया था।

२. एन्ड्रयूजके भाषणके पश्चात् गांधीजीने निम्नलिखित विचार व्यक्त किये थे।

३. यह बात सन् १९१५ की है।

गिरमिट-प्रथाके समाप्त हो जानेपर [वहाँकी] सरकार सब काम संभाल लेगी। स्कूलोंमें वालकोंको शुरूसे ही ईसाई धर्मकी शिक्षा दी जाती है। यह बात हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियोंके बच्चोंके हितमें नहीं है। इसके अतिरिक्त यह तालीम अंग्रेजीके माध्यम-से दी जाती है; उससे हमारे देशके लोगोंको कोई फायदा नहीं होता। नेटालमें भी ऐसी ही स्थिति है। नेटालमें भारतीय शिक्षक नहीं मिलते और फीजीमें भी वैसा ही है। हम उसमें इस तरह सहायता कर सकते हैं; यदि कुछ शिक्षक जो थोड़ी आमदनीसे ही सन्तुष्ट हो सकें, वहाँ जायें तो वे मदद कर सकते हैं। अन्य लोग एक पैसेसे लेकर दो लाख रुपये तक देकर इस उद्देश्यमें सहायक हो सकते हैं। आस्ट्रेलियाकी जिस महिलाने अपने फीजी जानेकी स्वीकृति दी है उसका खर्चा फिलहाल श्री एन्ड्रचूज देंगे। श्री एन्ड्रचूजको इम्पीरियल सिटीजनशिप संघसे कुछ सहायता मिलेगी परन्तु सहायताकी और भी जरूरत है। इस प्रकार श्री एन्ड्रचूजने जो कार्य किये हैं उनका मैं मूल्यांकन नहीं कर सकता। वे एकान्तप्रेमी हैं और दूसरोंकी सेवा करना ही उनका महामन्त्र है। मैंने उन्हें जानबूझकर ऋषि कहा है। उनके जैसे परोपकारी व्यक्तिका हम जितना उपकार मानें उतना ही कम है।

[गुजरातीसे]

प्रजाबन्धु, २४–३–१९१८

१८८. पत्र : उत्तरी क्षेत्रके कमिश्नरको

[मार्च २२, १९१८ से पूर्व]

[महोदय,]

सत्याग्रहके प्रतिज्ञापत्र प्रकाशित करने और सार्वजनिक सभाएँ करनेसे पहले मैं आपसे एक अन्तिम प्रार्थना करना चाहता हूँ। वह यह कि कृपया इस आशयकी घोषणा कर दीजिये कि दूसरी किस्तकी वसूली सारे जिलेमें मुलतवी रखी जायेगी; साथ ही उसमें इस बातपर भी आग्रह रखिए कि जिनके पास जमीन खास पट्टेपर है, वे पूरा बकाया लगान चुका दें। इसका लोगोंपर अच्छा असर होगा, और मेरा खयाल है कि वर्तमान परिस्थितियोंमें इसे मेहरबानीसे दी गई एक राहत माना जायेगा।[1]

[अंग्रेजीसे]

सरदार वल्लभभाई पटेल, खण्ड १

१. गांधीजीके पत्रके उत्तरमें बम्बईके गवर्नरने १७ मार्चको रूखा पत्र भेजा था। उसके बाद गांधीजीने यह पत्र भेजा। आपसकी बातचीत या लिखापढ़ी द्वारा समझौता करानेका यह गांधीजीका अंतिम प्रयास था किन्तु कमिश्नरने गांधीजीकी प्रार्थना नामंजूर कर दी, और उन्हें लिखा कि जितनी राहत ठीक समझी गई, दी जा चुकी है, अब मैं कलक्टरको आदेश भेज रहा हूँ कि वह लगानकी बकाया रकम वसूल करे।

१८९. भाषण : नडियादमें[1]

मार्च २२, १९१८

जिस अवसरपर हम आज यहाँ इकट्ठे हुए हैं वह इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसकी याद हमारी स्मृतिमें सदा बनी रहेगी। कुछ महीनेसे इस जिलेमें सरकारसे लगान मुलतवी करवानेका आन्दोलन किया जा रहा है। इस साल फसल रुपयेमें चार आनेसे भी कम हुई है, इसलिए कानूनके मुताबिक लगान मुलतवी किया जाना चाहिए।

गुजरात-सभाके प्रस्तावके अनुसार मैंने जिलेके कई गाँवोंमें घूमकर जाँच की। मेरे साथियोंने भी जाँच की। जो गवाहियाँ दी गई हैं उनसे सिद्ध होता है कि तमाम जिलेमें फसल रुपयेमें चार आनेसे ज्यादा नहीं हुई है। सरकार कहती है कि उसने भी जाँच की है; किन्तु वह किसानोंको जरूरी राहत देनेके लिए तैयार नहीं है। उसने लगान वसूल करनेका निश्चय किया है। वह कहती है कि लोग लगान न देंगे तो वह सख्त कार्रवाई करके वसूल करेगी। लगानकी वसूलीके और वसूली न होनेपर जमीनें जब्त करनेके नोटिस निकाल दिये गये हैं। तलाटियोंके जुल्मकी शिकायतें भी आ रही हैं। जो तलाटी और मुखिया इस सभामें आये हों उनसे मुझे इतना ही कहना है कि वे सरकारके प्रति वफादार रहें; किन्तु वफादारी जुल्म करनेमें नहीं है। उन्हें सरकारी आज्ञाके अनुसार लगान वसूल करना चाहिए; किन्तु सरकार ऐसा तो नहीं कह सकती कि वे लोगोंको मारें पीटें। ऐसा जुल्म करनेका हुक्म कानूनके मुताबिक हरगिज नहीं दिया जा सकता। यदि ऐसा कोई हुक्म दिया भी गया हो तो तलाटी उसे माननेके लिए बँधे नहीं हैं। जो ऐसा कृत्य करता है वह देशद्रोही, राजद्रोही और ईश्वरद्रोही है। वे निष्ठापूर्वक अपने ऊपरी अधिकारियोंका हुक्म अवश्य बजायें; किन्तु उन्हें लोगोंको हैरान करनेका कोई अधिकार नहीं है।

यदि उन्हें यह विश्वास हो जाये कि फसल रुपयेमें चार आनेसे कम हुई है तो वे हिम्मत के साथ अपने ऊँचे अफसरोंसे यह बात कह दें। मैं उन्हें यह सलाह दो कारणोंसे दे रहा हूँ। सरकारका तरीका यह रहा है कि वह अपनी बातको ही सच बताती है। लॉर्ड विलिंग्डनसे मेरी बातचीत हुई थी। इसमें उन्होंने मेरे सम्मुख अपनी यह राय प्रकट की कि भारतके लोग अपने सच्चे विचार प्रकट नहीं करते। उनमें अपने मनकी बात कहनेकी हिम्मत नहीं होती। वे अपने विरोधीको प्रसन्न करनेके लिए कुछ भी कह देते हैं; उनमें नैतिक साहस नहीं होता।[2]

१. गांधीजीने लगभग ५,००० लोगोंकी सभामें खेड़ाकी स्थितिके सम्बन्धमें भाषण दिया था। खेड़ा सत्याग्रहका आरम्भ इसी सभासे किया गया था और उसका संचालन गांधीजीने अनाथाश्रम, नडियादमें रहकर किया था। गांधीजीके भाषणका यह विवरण बम्बई सरकारकी १९१८ की गुप्त रिपोर्टों [बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९१८] में प्राप्त विवरणसे मिला लिया गया है।

२. यह अतिरिक्त अनुच्छेद 'बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स' से अनूदित है।

इस स्थितिमें लोगोंको क्या करना चाहिए? जिनकी फसल रुपयेमें चार आनेसे कम हुई हो उन्हें नम्रतापूर्वक सरकारसे यह कह देना चाहिए: "हम इस अन्यायको सहन नहीं कर सकते। फसल मारी गई है; फिर भी हम लगान दे दें और झूठे बनें यह नहीं हो सकता। यदि सरकारको जुल्म करके लगान वसूल करना हो तो भले ही करे।" आप लोगोंको यह सलाह देनेके लिए ही यह सभा बुलाई गई है।

यह जिला बहुत सुन्दर है। लोगोंके पास पैसा है। यह हरा-भरा भी खूब है। बिहारके अतिरिक्त पेड़ पौधोंसे भरा-पूरा ऐसा सुन्दर उपवन मैंने अन्यत्र नहीं देखा।

जहाँ बिहारको प्रकृतिने सुन्दर बनाया है, यह जिला स्वयं अपने किसानोंकी लगन और निजी मेहनतसे सुन्दर बना है। इस जिलेमें ही ऐसे निपुण और उद्योगी किसान हैं कि उन्होंने प्रदेशको ऐसे सुन्दर उपवनका रूप दे दिया है। इसपर हम गर्व कर सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि फसल न हुई तो भी लोगोंको लगान देना चाहिए। जिलेका ऐसा उद्योगी वर्ग [गरीबीमें] दबता जा रहा है। ऐसा समय आ गया है जब लोग खेती छोड़कर मजदूरी करने लगे हैं। इस प्रकार खेती छोड़कर मजदूरी करना बड़ी दुःख-जनक स्थिति है। जिस देशके किसानोंको ऐसा करना पड़ता है उस देशका अधःपतन ही समझना चाहिए।

असलमें जो फसल होती है उसीमें से लगान दिया जाना चाहिए। सरकार फसल खराब होनेपर भी दबावसे लगान वसूल करे यह असह्य है। किन्तु इस देशमें यह नियम ही बन गया है कि सरकारका मत हमेशा ठीक होना ही चाहिए। लोग चाहे जितने सचाईपर हों तो भी सरकार अपनी मनमानी करती है — यह स्थिति असह्य है। यदि बात न्यायकी है तब तो यह ठीक है कि वह दूसरोंसे स्वीकार कराई जाये किन्तु यदि वह अन्यायपूर्ण है तब तो वह बदली ही जानी चाहिए। किसानों और जाँच करनेवालोंकी गवाहीसे पता चलता है कि फसल हुई ही नहीं; फिर भी सरकार कहती है कि फसल अच्छी हुई है। इस स्थितिमें लोगोंको सरकारसे यह कहनेका अधिकार है कि उनके भी आँखें हैं, कान हैं और उन्हें भी बुद्धि मिली है और वे अधिकारियोंके अन्यायके सामने कदापि न झुकेंगे। यह बात माननें योग्य नहीं है कि लोग एक वर्षका लगान मुलतवी करवाने और इस प्रकार एक वर्षका व्याज बचानेके लिए झूठ बोलेंगे। अधिकारी जो यह कहते हैं कि हजारों लोग झूठ बोलते हैं, यह असह्य है। इसलिए हमें यह सिद्ध कर देना चाहिए कि न्याय-दृष्टिसे हमारा आग्रह उचित है। ऐसी स्थितिमें मेरी सलाह यह है कि यदि सरकार हमारी माँग मंजूर न करे तो हमें सरकारसे कह देना चाहिए कि हम लगान नहीं देंगे और इसके लिए जो-कुछ कष्ट सहने पड़ेंगे उन्हें सहनेके लिए तैयार हैं।

जिन-जिन जातियोंका उत्थान हुआ है उन्हें पहले कष्ट सहने पड़े हैं। यदि लोगोंको अपनी जमीनें छोड़नी पड़ें तो उन्हें छोड़कर उनको कष्ट-सहनके लिए तैयार हो जाना चाहिये। कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि यह तो विद्रोह या राजद्रोह कहा जायेगा। किन्तु इसमें ऐसी कोई भी बात नहीं है। इसमें हमें कष्ट तो सहना है; किन्तु द्रोह कुछ नहीं है। फसल न होनेपर भी डरकर लगान दे दें, यह तो कायरता है। हम मनुष्य हैं, पशु नहीं हैं। सत्यकी खातिर दृढ़तापूर्वक साफ 'न' कहनेका नाम ही सत्याग्रह है।

हम लोग आज यहाँ सत्याग्रहकी नींव रखकर उसपर मण्डप रचनेकी आशा लेकर इकट्ठे हुए हैं। हमें सरकारको लगान नहीं देना है, वल्कि उससे जूझना है। और जूझनेमें हमारे ऊपर जो भी कष्ट आयें उन्हें सहनेके लिए तैयार रहना है। इसमें हमारे ऊपर जो भी कष्ट आनेकी संभावना है उनपर विचार कर लेना उचित है:

१. सरकार हमारा सामान वेचकर लगान वसूल कर सकती है।
२. चौथाई जुर्माना देना पड़ सकता है।
३. इनामकी जमीनोंको जब्त किया जा सकता है, और
४. लोग उद्दण्डता करते हैं, ऐसा कहकर सरकार उन्हें जेल भेज सकती है।

"उद्दण्डता" शब्द सरकारका है और वह मुझे वहुत अखरता है। जो सच्ची वात कहे उसे उद्दण्ड कैसे कहा जा सकता है? वह उद्दण्ड नहीं वल्कि वीर है। सम्पन्न आसामी सुविधा होनेपर भी गरीबकी रक्षाकी खातिर लगान न दे; यह उद्दण्डता नहीं, वल्कि वीरता है। ऐसा करते हुए उसे गाँव भी छोड़ना पड़े तो वह छोड़ देगा और जो उसके लिए तैयार है वही इस व्रतको ले भी सकता है।

सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा लेना वहुत कठिन है; किन्तु उसे पूरा करना उससे भी अधिक कठिन है। लोग प्रतिज्ञा लेकर उसे तोड़ें और ईश्वरसे विमुख हों यह मुझे असह्य लगता है। आप जव मुझे धोखा देंगे या झूठी प्रतिज्ञा करेंगे तव मुझे अत्यन्त दुःख होगा और उस दुःखके आवेशमें मुझे कड़ा कदम भी उठाना पड़ सकता है। मैं उपवास कर सकता हूँ। मुझे उपवाससे दुःख न होगा। कोई मुझे धोखा दे, उसके दुःखसे मुझ उपवासका दुःख कम लगता है। सत्याग्रहमें प्रतिज्ञाका मूल्य सबसे अधिक होता है, और उसका पालन अन्त तक करना चाहिए। ईश्वरके नामपर ली गई प्रतिज्ञा कदापि भंग नहीं की जा सकती। और यदि मेरी आत्माहुतिसे हजारों लोगोंकी प्रतिज्ञाका पालन होता हो तो यह देह भले ही जाये। जिसे लड़ना है उसे दृढ़ निश्चय करना चाहिए। यदि कोई यह कहता है कि "यथासम्भव तो डटा रहूँगा; किन्तु जव वहुत-ज्यादा जुल्म किया जायेगा तव कह नहीं सकता", तो मुझे इससे दुःख नहीं होता। प्रतिज्ञा भंग करके मुझे आघात पहुँचानेकी अपेक्षा यदि कोई रातमें आकर मेरी गर्दन काट दे तो मैं उसे क्षमा कर दूँगा। जो मेरी गर्दन काटेगा उसे क्षमा करनेके लिए मैं ईश्वरसे प्रार्थना करूँगा। किन्तु जो प्रतिज्ञा भंग करके मुझे आघात पहुँचायेगा उसे मैं कदापि क्षमा न करूँगा।

इसलिए मैं आप सब भाइयोंसे विनयपूर्वक कहता हूँ कि आप इस सम्बन्धमें जो भी निर्णय करें उसे अत्यन्त सावधान होकर करें। जो लोग अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहेंगे, वे ही उठेंगे। इस प्रकार आप ऊपर उठेंगे तो सरकार आपका आदर करेगी और यह समझेगी कि ये लोग अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेवाले हैं, उसको भंग करनेवाले नहीं। प्रतिज्ञा भंग करनेवाले न तो देशके कामके होते हैं, न सरकारके कामके और न ईश्वरके कामके।

इस कारण मैं आप लोगोंकी सम्मति लेना और आपसे पूछना चाहता हूँ कि आप लड़नेके लिए तैयार हैं या नहीं। मैं प्रतिज्ञापत्र तैयार करूँगा। जिन भाइयोंकी

इच्छा इस प्रतिज्ञाको लेनेकी हो वे आश्रममें आकर उसपर हस्ताक्षर करें। मेरी एक ही प्रार्थना है कि आप कष्ट सहें और अपनी प्रतिज्ञाका पालन करें किन्तु लगान अदा न करें। और इस प्रकार सरकारके सम्मुख यह सिद्ध कर दें कि आप कष्ट सहनेके लिए तैयार हैं। सरकार सब लोगोंके ऊपर तो जोर-जुल्म नहीं कर सकेगी।[1]

जिन लोगोंके पास इनामी जमीनें हैं उन्हें मेरी सलाह है कि वे लगान दे दें। श्री एन्ड्रयूजने, जो गवर्नरसे भेंट करने गये हैं, तार दिया है कि मैं दिल्ली जाऊँ और उनसे मिलूँ। श्री एन्ड्रयूज और वल्लभभाई पटेल यहाँ काम करते रहेंगे। मैं श्री मुहम्मद अली और शौकत अलीके कार्यके सम्बन्धमें दिल्ली जा रहा हूँ।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

१९०. प्रतिज्ञा[2]

[नडियाद
मार्च २२, १९१८]

हमारे गाँवमें फसल चार आनेसे भी कम हुई है इसलिए हमने सरकारसे आगामी वर्ष तक के लिए लगान वसूली स्थगित करनेका अनुरोध किया था। लेकिन सरकारने हमारी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। इसलिए हम — हस्ताक्षरकर्त्ता — संकल्पपूर्वक घोषित करते हैं कि हम इस सालका लगान — पूरा या अधूरा, कुछ भी अदा नहीं करेंगे; हम उसकी वसूलीके लिए सरकारको, वह जो भी ठीक समझे, कानूनी कार्रवाई करने देंगे और हम लगानकी गैर-अदायगीके सभी परिणाम खुशीसे भोगेंगे। अगर वे हमारी जमीनें जब्त करें तो हम अपनी जमीन जब्त हो जाने देंगे, परन्तु हम अपनी ओरसे अदायगी करके और इस तरह झूठे होकर अपना आत्मसम्मान नहीं खोयेंगे। यदि सरकार उदारतापूर्वक बाकी सारे गाँवोंमें बकाया लगानकी वसूली स्थगित करनेका निर्णय करेगी तो हम लोगोंमें से जो लोग अदा करनेकी स्थितिमें होंगे पूरा या बकाया लगान अदा कर देंगे। हममें से जिन लोगोंके पास पैसा है और जो अदा कर सकते हैं, वे भी इसलिए अदायगी नहीं कर रहे हैं कि यदि हम अदा कर देंगे तो गरीब किसान डरकर लगानकी अदायगीके लिए या तो अपनी जमीन-जायदाद बेचेंगे या कहींसे उधार लेंगे और इस तरह कष्टमें पड़ जायेंगे।

हमारा विश्वास है कि इस कष्टकी परिस्थितिसे गरीबोंका बचाव करना पैसे-वालोंका कर्त्तव्य है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२–६–१९१८

१. इसके बादका अनुच्छेद 'बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स' से अनूदित है।

२. नडियादकी सभामें गांधीजीका भाषण समाप्त होनेपर लगभग २०० व्यक्तियोंने इस प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर किये थे; देखिए पिछला शीर्षक। बादके कुछ दिनोंमें और लोगोंने भी यही प्रतिज्ञा की थी।

१९१. पत्र : वाइसरायके निजी सचिवको

सेंट स्टीफेंस कॉलेज
दिल्ली
मार्च २५, १९१८

सेवामें
महामहिम वाइसरायके निजी सचिव
[महोदय,]

मैं बयान नहीं कर सकता कि अली भाइयोंके इस मामलेको लेकर मुझे कितनी दिमागी परेशानी रही है, परन्तु आज सुबह आपसे बातचीत करके मुझे बड़ी राहत और शान्ति मिली। यह देखकर कितनी खुशी हुई कि आपको मेरी बात समझनेमें थोड़ी भी देर नहीं लगी। यदि किसी औरकी जानकारीके बिना ही उनकी रिहाईका आदेश भेज दिया जाये तो वह सरकारका एक बड़ा प्रशंसनीय कार्य माना जायेगा। इस ढंगसे उनकी रिहाई हो जानेसे उन तमाम उत्तेजनापूर्ण प्रदर्शनोंसे भी बचा जा सकता है जो अन्य किसी प्रकारसे उनकी रिहाई होनेपर उनके स्वागतमें आयोजित किये ही जायेंगे।

उनकी रिहाई होनी चाहिए। उसके कुछ कारण ये हैं:

(क) उनको इसलिए नजरबन्द रखा जा रहा है कि वे सरकारके खिलाफ कुछ न कर सकें, यह उद्देश्य तो अपने-आपमें विफल हो जाता है क्योंकि वे अपनी मरजीके मुआफिक लोगोंसे पत्र-व्यवहार तो करते ही हैं और सन्देश भी भेजते हैं।

(ख) उनकी नजरबन्दीसे दिन-दिन उनका प्रभाव बढ़ता ही है।

(ग) उनकी नजरबन्दीसे उनके मित्रोंके दिलमें कटुता बढ़ती है और आम मुसलमानोंका असन्तोष और गहरा होता जाता है, जिसमें हिन्दू भी कुछ हदतक उनके साथ हैं।

(घ) हजारों मुसलमानोंपर मौलाना अब्दुल बारी साहबका काफी-अधिक असर है। धर्म सम्बन्धी चीजोंमें वे मुसलमानोंके सलाहकार हैं और सरकार अली भाइयोंको रिहा करके, मौलानाको अपने पक्षमें कर सकती है।

(ङ) जहाँतक मेरी जानकारी है, दोनों भाइयोंकी इच्छा-शक्ति दृढ़ है, उनका खानदान बड़ा ऊँचा है और वे सुसंस्कृत तथा ज्ञान-सम्पन्न हैं। शिक्षित मुसलमानोंपर उनका बड़ा असर है और वे स्वयं काफी खुले दिमागके और सीधी बात कहनेवाले लोग हैं। उनको नजरबन्द करना एक भारी गलती थी। सरकारको तो सदा ही ऐसे व्यक्तियोंको अपने पक्षमें रखनेकी जरूरत है। और मेरी विनम्र रायमें तो उनको नजरबन्द रखनेसे कोई फायदा नहीं हो सकता।

एक महान् सरकारको तो यही शोभा देगा कि उनकी रिहाईके लिए चीख-पुकार और आन्दोलन फिर शुरू हो, इससे पहले ही उनको रिहा कर दिया जाये।

यदि मेरी उपस्थिति आवश्यक समझी जाये, तो मैं महामहिमसे कभी भी मिलनेके लिए तैयार रहूँगा।

कृपया इस पत्रका उत्तर दीजिए। मैं २९ से ३१ तारीख तक हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी अध्यक्षताके सिलसिलेमें इन्दौरमें रहूँगा, उसके बाद अहमदाबादमें।

[आपका,
मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया: होम, पॉलिटिकल (क): जून १९१८, सं० ३५९–६०

१९२. खेड़ाकी परिस्थितिके बारेमें परिपत्र[1]

हिन्दू अनाथ आश्रम
नडियाद
फाल्गुन सुदी १५, मार्च २७, १९१८

खेड़ा जिलेकी रैयतका कर्त्तव्य

चूँकि खेड़ा जिलेमें फसल बहुत कम हुई है, अर्थात् अधिकांश गाँवोंमें चौथाईसे भी कम रह गई है, इसलिए सरकारी नियमके अनुसार इस वर्ष लगान-वसूली मुलतवी कर देनी चाहिए। इसके लिए रैयतकी ओरसे सरकारके पास बार-बार प्रार्थनाएँ भेजी गई हैं। जनताकी ओरसे 'गुजरात-सभा,' माननीय सर्वश्री जी० के० पारेख और भारत सेवक समाज [सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी] के वी० जे० पटेल और सर्वश्री देवधर, अमृतलाल ठक्कर और जोशीने फसलोंके बारेमें जाँच-पड़ताल की है और सभी इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि खरीफकी फसल तो लगभग सारी खराब हो चुकी है। मैंने भी कई जिम्मेदार और सम्माननीय सहायकोंकी मददसे लगभग ४०० गाँवोंकी फसलोंके बारेमें काफी ब्यौरेवार पड़ताल करके देखा है कि लगभग उन सभी गाँवोंमें फसल रुपयेमें चार आने-भरसे भी कम रह गई है। मैंने यह भी पाया कि रैयतके बहुतसे लोगोंके

१. मूल परिपत्र गुजरातीमें था। गुजरातीने इसे अपने ३१-३-१९१८ के अंकमें प्रकाशित किया था। 'बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स' में खेड़ाके जिला मजिस्ट्रेटका जो नोट छापा गया था, उसके अनुसार २७ मार्चको दिल्लीसे नडियाद लौटनेके बादसे गांधीजी कई परिपत्र जारी करनेमें व्यस्त रहे। पहला परिपत्र जिले-भरमें दीवारोंपर लगाया गया था। उसकी प्रति अब अप्राप्य है। उसमें किसानोंसे कहा गया था कि वे सरकारकी दमनकारी कार्रवाईके बारेमें गांधीजीसे लिखा-पढ़ी करें। यह परिपत्र भी जारी किये गये उन अनेक परिपत्रोंमें से एक है।

पास पैसा नहीं है और अन्नकी बहुत-सी खत्तियाँ बिलकुल रीती पड़ी हैं, और यह भी कि इस जिलेमें कई किसान अपने खानेके लिए यहाँ पैदा होनेवाले अन्नके स्थानपर बाहरसे बड़े पैमानेपर मकई मँगाकर काम चला रहे हैं। मैंने यहाँतक देखा है कि जहाँ लोगोंने लगान अदा कर भी दिया है, वह तलाटी इत्यादिके भयसे ही किया है। कई स्थानों-पर जनताने अपने पेड़ इत्यादि बेचकर लगान भरा है। मैंने यह भी पाया है कि जनता बहुत ही अधिक बढ़ी हुई कीमतोंके बोझसे कराह रही है। इतना ही नहीं लोग प्लेग फैलनेके डरसे झोंपड़ियोंमें अत्यधिक चिन्तित रहते हैं।[1] कलक्टर और कमिश्नरको ये सभी तथ्य बतला दिये गये हैं; उन्होंने कुछ रियायतें भी दी हैं। पर लोगोंकी आवश्यक-ताओंको देखते हुए वे नगण्य-सी हैं। ऐसी परिस्थितिमें जनताको केवल एक ही सलाह दी जा सकती है, वह यह कि अपनी सचाई सिद्ध करनेके लिए उनको लगान तो अदा नहीं करना चाहिए। पर यदि सरकार उनकी सम्पत्ति बेचकर लगान वसूल करना चाहे तो उसे करने देना चाहिए। भयके कारण लगान अदा करके अपनेको झूठा साबित करनेसे कहीं अच्छा है कि लगान अदा न करके अपना सर्वस्व होम होने दिया जाये। जो भी हो, जनताको मेरी तो यही पक्की सलाह है कि उसे लगान अदा नहीं करना चाहिए और उसके फलस्वरूप होनेवाले सभी कष्ट और जुल्म उसे बर्दाश्त करने चाहिए। सर-कारको लोकमतके आगे सिर झुकाना पड़ेगा, लेकिन यह तभी होगा जब अपने आचरणसे जनता सरकारको अपनी रायका सम्मान करना सिखायेगी। कई प्रमुख सज्जन इस संघ-र्षमें जनताकी सहायता करनेके लिए तैयार हैं, और यदि किसीको घरसे बेदखल किया गया है तो उसके रहने और खानेका प्रबन्ध भी किया गया है। लगानकी अदायगी न करनेका साहस जिन लोगोंमें है, उनके हस्ताक्षरोंके लिए प्रतिज्ञा-पत्र जारी किये जा चुके हैं। आशा है कि वे सभी किसान उनपर हस्ताक्षर करेंगे जिन्होंने अभी लगान अदा नहीं किया है। मेरी यही सलाह है कि हस्ताक्षर करनेसे पहले ही भलीभाँति विचार कर लेना चाहिए, परन्तु यह याद रखना चाहिए कि एक बार हस्ताक्षर कर देनेके बाद फिर पैर पीछे नहीं हटाना है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स

१. गुजराती द्वारा प्रकाशित विवरणमें यह वाक्य नहीं है।

१९३. पत्र : अखबारोंको[1]

नडियाद
मार्च २७, १९१८

सम्पादक
'लीडर'
इलाहाबाद

महोदय,

मैं समझता हूँ कि मुझे अपने हालके उपवासके सम्बन्धमें जनताके सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करनी चाहिए। कुछ मित्र मेरे इस कार्यको मूर्खतापूर्ण समझते हैं, कुछ इसमें नामर्दी देखते हैं, और दूसरे कई इसे उससे भी खराब समझते हैं। लेकिन मैं यह मानता हूँ कि अगर मैंने यह कदम न उठाया होता, तो मैं अपने सिरजनहारके प्रति और मैंने जिसका संकल्प किया है उस उद्देश्यके प्रति सच्चा सिद्ध नहीं होता।

कोई एक महीने पहले मैं बम्बई गया था। वहाँ मुझसे कहा गया था कि अहमदाबादके मिल-मजदूरोंने धमकी दी थी कि यदि महामारीके दिनों उनको मिलनेवाला बोनस बन्द किया गया तो वे हड़ताल और हिंसाका मार्ग अपनायेंगे। मुझे मध्यस्थ बननेको कहा गया और मैंने मंजूर कर लिया। पिछले अगस्त महीनेसे मजदूरोंको महामारीके कारण ७० फीसदी तक बोनस मिल रहा था। इस बोनसको बन्द करनेकी कोशिशके कारण मजदूरोंमें भारी असन्तोष फैला। मिल-मालिकोंने महामारीके कारण दिये जानेवाले बोनसके बदले और बढ़ी हुई मँहगाईके कारणसे उनकी मजदूरीमें २० फीसदी इजाफा कर देनेकी बात बहुत देरसे कही। परन्तु मजदूरोंको इससे सन्तोष न हुआ। सारा सवाल पंचके सुपुर्द किया गया और अहमदाबादके कलक्टर मि० चैटफील्ड सरपंच नियुक्त किये गये। इसपर भी कुछ मिलोंमें मजदूरोंने हड़ताल कर दी। मालिकोंने सोचा कि मजदूरोंने यह सब बिना किसी उचित कारणके किया है, इसलिए उन्होंने पंच-प्रस्ताव वापस ले लिया और तालेबन्दीका ऐलान कर दिया। उन्होंने यह भी तय कर लिया कि जिस २० फीसदी इजाफेका ऐलान उन्होंने किया है, जबतक मजदूर उसको मंजूर करनेके लिए हारकर विवश नहीं हो जाते, तबतक तालेबन्दी जारी रखी जाये। मजदूरोंकी ओरसे भाई शंकरलाल बैंकर, भाई वल्लभभाई पटेल और मैं पंच नियुक्त किये गये थे। हमने देखा कि अगर हम तुरन्त और मजबूतीके साथ कोई कदम नहीं उठायेंगे तो मजदूर दबा दिये जायेंगे। इसलिए हमने इजाफेके सिलसिलेमें जाँच शुरू की। हमने मिल-मालिकोंकी सहायता पानेकी कोशिश की, किन्तु उन्होंने हमें कोई सहायता न दी। उनका मंशा यही था कि मिल-मालिकोंका एक ऐसा संयुक्त संगठन तैयार कर लिया जाये जो

१. स्पष्ट ही यह पत्र लगभग सभी समाचारपत्रोंको भेजा गया था। इसे मद्रासके हिन्दू और इलाहाबादके लीडरने प्रकाशित किया था।

मजदूरोंके संगठनसे मोर्चा ले सके। अतएव एक दृष्टिसे हमारी जाँच-पड़ताल एकतरफा थी। फिर भी हमने मालिकोंके पक्षको ध्यानमें रखनेका यत्न किया। हम इस निश्चय-पर पहुँचे कि ३५ प्रतिशतका इजाफा उचित माना जा सकता है। मजदूरोंको अपना आँकड़ा बतानेसे पहले हमने अपनी जाँचका परिणाम मिल-मालिकोंको बतलाया और उनसे यह भी कहा कि अगर वे उसमें कोई भूल सुझायेंगे, तो हम उसे सुधार लेनेको तैयार हैं। लेकिन उन्होंने हमारे साथ किसी प्रकारका समझौता करना पसन्द ही न किया। उन्होंने अपने जवाबमें यह बताया कि बम्बईके मालिकों और सरकारकी तरफसे जो दर दी जाती है, वह हमारे द्वारा ठहराई हुई दरसे बहुत कम है। मैंने महसूस किया कि उनके जवाबका यह हिस्सा अनावश्यक था। अतएव एक विराट् सभामें[1] मैंने ऐलान किया कि मिल-मजदूर ३५ फीसदी इजाफा मंजूर करेंगे और यहाँ यह ध्यानमें रखने योग्य है कि मजदूरोंको महामारीके कारण उनकी मजदूरीपर ७० फीसदी इजाफा मिलता था और उन्होंने अपना यह इरादा जाहिर किया था कि बढ़ती हुई मँहगाईके आधार-पर वे ५० प्रतिशतसे कम इजाफा मंजूर नहीं करेंगे। परन्तु उनसे कहा गया कि वे अपने ५० प्रतिशत और मिल-मालिकोंके २० प्रतिशतके बीचकी इस दरको मंजूर करें। (बिलकुल संयोगकी बात है कि हमने जो दर निश्चित की वह दोनोंके बीचकी थी।) थोड़ी बुदबुदा-हटके बाद सभाने ३५ प्रतिशतका इजाफा लेना स्वीकार किया, इसके साथ ही यह भी मान लिया गया था कि जिस क्षण मिल-मालिक पंचकी मारफत फैसला कराना स्वीकार कर लें, उसी क्षण मजदूर भी वैसा ही करें। इसके बाद यानी पिछली २६ फरवरीके बादसे रोज हजारों आदमी गाँवके कोटके बाहर एक पेड़की छाया तले इकट्ठे होते थे। उनमें से कई तो बड़ी दूरसे पैदल चलकर आते थे, और सच्चे दिलसे परमात्माको साक्षी रखकर ३५ प्रतिशतसे एक पाई भी कम न लेनेका अपना निश्चय मजबूत करते थे। उन्हें पैसेकी कोई मदद नहीं दी गई थी। अब यह तो हर कोई समझ सकता है कि ऐसी हालतमें उनमें से कईको भूखे रहना पड़ता था और जबतक वे बेकार थे, उन्हें कोई कर्ज भी न देता था। दूसरी तरफ, उनके सहायकोंकी हैसियतसे हमने यह निश्चय किया कि अगर उनमें से काम करने योग्य लोग कड़ी मेहनत-मजदूरी करके अपना गुजारा करनेको तैयार न हों, और हम चन्दा इकट्ठा करके उसका उपयोग उनके भरण-पोषणमें करें, तो उससे हम उनको नुकसान ही पहुँचायेंगे। जिन लोगोंने साँचोंपर काम किया था, उनको रेत या ईंटकी टोकरियोंको ढोनेकी बात समझाना बहुत कठिन था। वे यह काम करते तो थे, लेकिन बड़ी नाराजीके साथ। मिल-मालिकोंने भी अपने दिल कठोर बना लिये थे। उन्होंने भी २० प्रतिशतसे ज्यादा न देनेका निश्चय कर लिया था, और मजदूरोंको फुसलाकर उनसे घुटने टिकवानेके लिए अपने आदमी लगा रखे थे। तालेबन्दीके शुरूमें ही हमने काम न करनेवालोंकी मदद न कर सकनेका ऐलान कर दिया था, लेकिन इसके साथ हमने उन्हें यह विश्वास भी दिलाया था कि उन्हें खिलाकर और पहनाकर ही हम खायेंगे और पहनेंगे। इस तरह २२ दिन बीत गये। भूखकी तकलीफका और मिल-मालिकोंके जासूसोंका असर काम करने लगा। शैतान उनको बहकाने लगा, उनसे

१. देखिए "अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी हड़ताल", फरवरी २६, १९१८।

कहने लगा कि इस संसारमें ईश्वर नामकी ऐसी कोई चीज नहीं जो उनकी मदद करे, और ये व्रत वगैरह तो कमजोरोंकी कमजोरीको छिपानेके लिए अख्तियार की गई तरकीबें हैं। मैं हमेशा देखता था कि लोग पाँचसे लेकर दस हजार तक की तादादमें रोज उत्साह और उमंगके साथ इकट्ठे होते थे। उनके चेहरोंसे उनकी दृढ़ता टपकती थी। लेकिन इसके बदले एक दिन मैंने सिर्फ दो हजार आदमियोंको एकत्र देखा, जिनके चेहरोंपर निराशा छाई हुई थी। इसी अर्सेमें हमने यह भी सुना कि किसी एक चालमें रहनेवाले मिल-मजदूरोंने सभामें आनेसे इनकार किया है, और वे बीस प्रतिशतका इजाफा मंजूर करके कामपर जानेकी तैयारीमें हैं। उन्होंने हमें ताने भी दिये (और मैं समझता हूँ कि उनका कहना वाजिब था) कि हमारे पास मोटरें हैं, खाने-पीनेका पूरा प्रबन्ध है, इसलिए सभामें हाजिर रहने और मौतके मुकाबलेमें भी दृढ़ रहनेकी सलाह देना हमारे लिए बड़ा आसान है। ऐसी दशामें मुझे क्या करना चाहिए? मुझे उनकी आपत्ति उचित मालूम हुई। ईश्वरपर मुझे उतना ही विश्वास है, जितना इस बातपर कि मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। और मैं मानता हूँ कि किसी भी दशामें वचनका पालन करना आवश्यक है। मैं जानता था कि हमारे सामने खड़े हुए लोग परमात्मासे डरते हैं, परन्तु तालेबन्दी और हड़तालके कई दिनों तक चलनेके कारण उनपर असह्य बोझ आ पड़ा है। मैं हिन्दुस्तानमें बहुत घूमा हूँ। अपनी इन यात्राओंमें मैंने सैकड़ों आदमी ऐसे भी देखें हैं, जो पलमें प्रतिज्ञा करते हैं और पलमें उसे तोड़ते हैं। मैं यह भी जानता था कि हममें जो लोग सबसे अच्छे माने जाते हैं, ईश्वर और आत्मबलके सम्बन्धमें उनकी श्रद्धा भी ढीली और अस्पष्ट ही होती है। मैंने देखा कि मेरे लिए यह एक पवित्र अवसर है। मुझे अपनी श्रद्धा कसौटीपर कसी हुई प्रतीत हुई। फलतः मैं बिना किसी संकोचके उठ खड़ा हुआ और मैंने कहा कि जो प्रतिज्ञा शपथपूर्वक ली गई है, मिल-मजदूरों द्वारा उसका भंग होना मेरे लिए असह्य है। इसलिए मैंने प्रतिज्ञा की कि जब-तक मजदूरोंको ३५ प्रतिशत इजाफा नहीं मिलेगा अथवा जबतक वे हारकर घुटने नहीं टेक देंगे, तबतक मैं अन्न नहीं खाऊँगा। इस समय तक सभामें पिछली सभाओंका-सा उत्साह न था, उदासी थी। लेकिन अब उसमें जैसे जादूसे एकाएक उत्साह आ गया। एक-एक आदमीके गालपर टप-टप आँसू टपकने लगे, और वे एकके बाद एक उठकर यह ऐलान करने लगे कि जबतक उनकी माँग मंजूर नहीं होती, वे कभी भी मिलमें काम करने नहीं जायेंगे, और जो लोग इस सभामें हाजिर नहीं हैं, उनसे मिलकर उन्हें भी अपने पक्षमें ले आयेंगे। सत्य और प्रेमके प्रभावको प्रत्यक्ष देखनेका यह एक अमूल्य अवसर था। हरएक यह महसूस करने लगा कि परमेश्वरकी पालक शक्ति जितनी प्राचीन कालमें हमारे आसपास रहती थी, उतनी ही आज भी है। इस प्रतिज्ञाका कोई पछतावा मुझे नहीं। बल्कि मैं तो श्रद्धापूर्वक यह मानता हूँ कि अगर मैंने इससे कुछ कम किया होता तो मैंने अपने-आपको लोगोंके उस विश्वासके अयोग्य सिद्ध किया होता जो उन्होंने मुझको दिया था। प्रतिज्ञा करनेसे पहले भी मैं जानता था कि उसमें कुछ बड़ी त्रुटियाँ रह गई हैं। मिल-मालिकोंके निश्चयपर किसी प्रकारका असर डालनेके लिए इस प्रकार-की प्रतिज्ञा करना तो उनके साथ एक कायरतापूर्ण अन्याय करना है। मैं जानता था

कि उनमें से कुछकी मित्रताका सौभाग्य मुझे प्राप्त है, लेकिन अपने इस कामसे अब मैं इस योग्य भी नहीं रह गया हूँ। मैं यह भी समझता था कि मेरे इस कार्यके कारण गलतफहमी बढ़नेका डर है। मेरे लिए यह सम्भव न था कि मैं उनके निर्णयपर अपने उपवासके प्रभावको पड़नेसे रोकूँ। दूसरे, उनके परिचयके कारण मेरी जिम्मेदारी इतनी बढ़ गई थी कि मैं उसे उठानेमें असमर्थ था। आम तौरपर इस तरहकी लड़ाई-में मजदूरोंके लिए जो राहत मैं उचित रूपसे हासिल कर सकता था, उसीके लिए यहाँ मैं असमर्थ हो उठा। मैं जानता था कि मिल-मालिकोंसे मैं कमसे-कम ले सकूँगा, और मजदूरों द्वारा की गई प्रतिज्ञाके तत्त्वोंकी सिद्धिके बदले उसके स्थूल अर्थकी सिद्धिसे ही मुझे सन्तोष करना पड़ेगा, और हुआ भी वही। मैंने तराजूके एक पलड़ेमें अपनी प्रतिज्ञाके दोष रखे, और दूसरेमें गुण। मानव-प्राणीके बिलकुल निर्दोष कर्म तो विरले ही हो सकते हैं। मैं जानता था कि मेरा काम तो खास तौरपर दोषभरा है। मैंने देखा कि हमारी आनेवाली सन्तान हमारे बारेमें यह कहे कि दस हजार आदमियोंने बीस-बीस दिनतक ईश्वरको साक्षी रखकर जो प्रतिज्ञा की थी, वह अचानक तोड़ डाली, इसकी अपेक्षा मिल-मालिकोंकी स्वतन्त्रताको और उनकी स्थितिको अनुचित रीतिसे विषम बनानेमें मेरी जो बदनामी होगी, वह ज्यादा अच्छी है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जबतक लोग फौलादकी तरह मजबूत नहीं बनते, और जबतक दुनिया उनकी टेकको 'मीड' और 'फारसी' जातियोंके कानूनकी तरह अटूट और अचल नहीं समझती, तबतक वे एक राष्ट्र नहीं बन सकते। मित्रोंकी राय चाहे जो बनी हो, तथापि इस समय तो मैं यही मानता हूँ कि आगे भी कभी ऐसा मौका आया, तो जैसा कि इस पत्रमें कहा गया है, मैं इसी ढंगसे काम करनेमें हिचकूँगा नहीं।

इस पत्रको समाप्त करनेसे पहले मैं दो व्यक्तियोंके नामोंका उल्लेख करना चाहता हूँ। हिन्दुस्तान उनपर गर्व कर सकता है। श्री अम्बालाल साराभाई मिल-मालिकोंके प्रतिनिधि थे। वे एक सुयोग्य सज्जन, बड़े सुशिक्षित और सजग व्यक्ति हैं। साथ ही वे दृढ़ निश्चयी भी हैं। उनकी बहन अनसूयाबेन मिल-मजदूरोंकी प्रतिनिधि थीं। उनका हृदय कुन्दनकी तरह निर्मल है और गरीबोंके लिए उनके दिलमें बहुत दया है। मिल-मजदूर उन्हें पूजते हैं, और उनकी बातको कानूनका-सा मान देते हैं। ऐसी किसी लड़ाईके बारेमें मैं नहीं जानता, जिसमें कटुता नाम-मात्रकी ही हो, और दोनों पक्षोंके बीच इतना सौजन्य रहा हो। इस मधुर परिणामका श्रेय मुख्यतः उस सम्बन्धको है जो श्री अम्बालाल साराभाई और अनसूयाबेनने इस संघर्षके साथ बनाये रखा था।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

लीडर, ३-४-१९१८

१९४. पत्र : जे० बी० कृपलानीको[1]

नडियाद
मार्च २७, १९१८

प्रिय मित्र,

मैं तुम्हें इससे पहले पत्र नहीं लिख सका, इसके लिए क्षमा करना। आशा है गिरधारीने मेरा सन्देश तुम तक पहुँचा दिया होगा। मैं तुमको ऐसा पत्र लिखना चाहता था कि जिसे पढ़कर तुमको शान्ति और आनन्द मिले। इसीलिए देर हुई। अब भी ऐसा पत्र लिख सकूँगा या नहीं, इसके बारेमें शंका है। लेकिन अब मैं तुमको लिखनेमें ज्यादा देर नहीं कर सकता। तुम्हारे पत्रमें व्यक्त की गई मार्मिक वेदना तो मेरे सामने स्पष्ट है[2]; किन्तु मृत्यु हमारे प्रियसे प्रियजनोंको एकाएक छीन ले, जैसा तुम्हारे भाईके मामलेमें हुआ है, तो इससे हमें पंगु क्यों बन जाना चाहिए? क्या मृत्यु केवल एक परिवर्तन और विस्मरण-मात्र नहीं है? वह एकाएक आ जाये, तो क्या उसके स्वरूपमें कोई फर्क पड़ जाता है? तुमको तो एक दुर्लभ अवसर मिला है। तुम्हारी श्रद्धा और तुम्हारे तत्त्वज्ञानकी परीक्षा हो रही है। तुम प्रामाणिक मार्गसे कुटुम्बके दो आदमियोंका भरण-पोषण करो, तो इसमें भी सच्ची राष्ट्र-सेवा है। कुटुम्बका भरण-पोषण करनेवाले सभी लोग अगर तथाकथित राष्ट्र-सेवक बन जायें, तो राष्ट्रका क्या होगा? यही तुम्हारी परीक्षाका समय है। और मैं जानता हूँ कि उसमें तुम कच्चे साबित नहीं होगे। तुम्हारे तमाम मित्रोंकी परीक्षाका भी यही समय है। तुम क्या करना चाहते हो, सो बता दो। अगर आ सको, तो मुझसे मिल जाओ। तुम्हारी योजनाओंपर हम चर्चा कर लेंगे। यह तो तुम जानते ही हो कि मुझसे जो मदद हो सकती है, वह मैं करनेको तैयार हूँ।

हार्दिक स्नेह और सहानुभूति,

सदा तुम्हारा,
बापूजी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई।

१. जीवतराम बी० कृपलानी (१८८८–); शिक्षाविद्, राजनीतिज्ञ और १९४६ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

२. गांधीजीने यह पत्र श्री कृपलानीके उस पत्रके उत्तरमें लिखा था जिसमें उन्होंने अपने भाई और भाभीकी मृत्यु की सूचना देते हुए शंका प्रकट की थी कि अब शायद उन्हें समाज-सेवाका काम छोड़ देना पड़े।

१९५. वक्तव्य : खेड़ाकी परिस्थितिके बारेमें समाचारपत्रोंको

नडियाद
मार्च २८, १९१८

सभी मानते हैं कि खेड़ा जिलेमें इस वर्ष १९१७–१८ की फसल काफी खराब हो गई है। मालगुजारी-कानूनके मुताबिक चार आनेसे कम फसल रह जानेपर किसानोंको हक हो जाता है कि उस सालकी लगान-वसूली मुलतवी कर दी जाये। और अगर फसल छः आनेसे कम हुई हो तो आधे लगानकी वसूली मुलतवी कर दी जाये। जहाँतक मुझे जानकारी है, सरकारने लगानकी वसूली लगभग ६०० गाँवोंमें से केवल एक गाँवमें पूरी और १०३ से कुछ अधिक गाँवोंमें आधी मुलतवी करनेकी कृपा की है। रैयतका कहना है कि वास्तविक स्थितिको देखते हुए यह बहुत कम है। सरकार कहती है कि ज्यादातर गाँवोंमें फसल छः आनेसे ऊपर रही है। इसलिए अब सवाल सिर्फ यह रह जाता है कि फसल चार आने-भर हुई है या छः आने-भर या उससे भी ज्यादा। सबसे पहली चीज तो यह कि सरकारने जो निर्धारण किया है, वह वास्तवमें गाँवोंके मुखियोंकी मददसे तलातियोंने किया है। उनके दिये हुए आँकड़ोंकी जाँच कराना कभी जरूरी नहीं माना जाता, क्योंकि फसल खराब होनेपर ही सरकारके निर्धारणके बारेमें कोई शंका उठानेका सवाल उठता है। तलाती लोगोंका पूरा वर्ग ही चापलूस, बेईमान और अत्याचारी होता है, और जो जी-हुजूरी करते हैं, गाँवके मुखिया भी विशेषकर वे ही चुने जाते हैं। तलातियोंका बस एक ही उद्देश्य होता है — जितनी जल्दी हो सके पूरा लगान वसूल किया जाये। हमें कभी-कभी ऐसे मेहनती तलातियोंके किस्से पढ़नेको मिलते हैं जिनको पूरी वसूली करनेके उपहार-स्वरूप पगड़ियाँ भेंट की गई हैं। मैंने तलातियोंके वर्गके लिए जिन विशेषणोंका प्रयोग किया है उनको निरपवादरूपमें उनपर लागू करनेका मेरा कोई मंशा नहीं। मैं तो एक तथ्य-भर सामने रख रहा हूँ। वे तलाती पैदा तो नहीं होते, बनते ही हैं और लगान-वसूल करनेवालोंको अपने अन्दर एक हृदयहीनता पैदा करनी ही पड़ती है, उसके बिना वे अपने प्रभुओंको खुश रखने लायक काम नहीं कर सकते। संसार-भरमें यही देखनेमें आता है। लगान-वसूलीका काम आजकल मुख्यतः तलाती ही करते हैं। उनके बारेमें रैयत द्वारा कही जानेवाली बातोंका ब्यौरा पेश करना मुमकिन नहीं। तलातियोंके बारेमें इतना सब लिखनेका मेरा प्रयोजन यही दिखलाना है कि सरकारके फसल कूतनेका आधार दोषपूर्ण है और वह शायद जान-बूझकर रैयतके खिलाफ कूती जाती है। तलातियोंके निर्धारणके खिलाफ रैयतके गरीब-अमीर सभी लोगों द्वारा दिये गये सबूत मौजूद हैं; इनमें से कुछ बड़े-बड़े ओहदोंपर हैं, कुछके पास काफी दौलत भी है और उन्हें गलत बात कहनेपर अपनी प्रतिष्ठा-हानिका भय है। बढ़ा-चढ़ाकर बात कहनेमें इन्हें कुछ मिलना नहीं है, सिवाय तलातियों और शायद उच्च अधिकारियोंके क्रोधके। मैं यहाँ स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इस आन्दोलनका मंशा सरकार या व्यक्तिगत रूपसे किसी अधिकारीको बदनाम करनेका नहीं है।

आन्दोलनका मंशा जन-जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले मामलोंमें जनता द्वारा अपनी बात सुनाये जानेके अधिकारपर आग्रह करना है।

जनता जानती है कि माननीय श्री जी० के० पारेख और श्री वी० जे० पटेलने गुजरात-सभाके आमन्त्रणपर और उसकी सहायतासे, भारत सेवक समाजके सर्वश्री देवघर, जोशी और ठक्करके साथ इस सम्बन्धमें जाँच-पड़ताल की थी। उनकी जाँच-पड़ताल प्रारम्भिक और संक्षिप्त ही हो सकती थी और इसीलिए वह कुछ ही गाँवोंतक सीमित थी। लेकिन उनकी जाँचके परिणामसे सिद्ध हो गया कि अधिकांश गाँवोंमें फसल चार आनेसे कम हुई थी। चूँकि उनकी जाँच काफी विस्तृत नहीं थी, इसलिए उसके बारेमें शंकाएँ की जा सकती थीं और की भी गईं। इसलिए मैंने लगभग २० सुयोग्य, अनुभवी, निष्पक्ष और प्रभावशाली तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियोंकी सहायता लेकर पूरी तरह जाँच करना प्रारम्भ किया। मैं स्वयं ५० से अधिक गाँवोंमें जाकर जितना हो सकता था, ज्यादासे-ज्यादा लोगोंसे मिला और मैंने उन गाँवोंमें जाकर उनके खेत देखे। गाँववालों से हर तरहकी पूछताछ करनेके बाद मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा कि उनकी फसल चार आने से कम रह गई है। मैंने देखा कि मेरे पास आनेवाले लोगोंमें से कुछ ऐसे भी थे जो बढ़ा-चढ़ाकर कही गई बातों और वक्तव्योंमें काट-छाँट करनेके लिए तैयार थे। वे जानते थ कि सत्यसे डिगनेकी उनको क्या-कुछ कीमत चुकानी पड़ेगी। रबीकी फसल और खेतोंमें खड़ी खरीफकी फसलके बारेमें किसानों द्वारा दिये गये बयानोंकी सचाई मैंने अपनी आँखोंसे देखी। मेरे सहयोगियोंने भी ऐसे ही तरीके अपनाये थे। इस तरह लगभग ४०० गाँववालोंसे पूछताछ की गई और केवल कुछको छोड़कर अन्य सभी जगह हमने फसल चार आनेसे कम ही पाई; और केवल तीन जगह हमें छः आनेसे अधिक फसल मिली। खरीफकी फसलके बारेमें हमने यह तरीका अपनाया था कि अलग-अलग प्रत्येक गाँवकी कुल उपज-का अन्दाज करके फिर देखा जाये कि उन गाँवोंमें सामान्यतया हरसाल कितनी फसल होती रही है। किसानोंके बयानोंको सही मान लेनेपर, जाँचका यही तरीका सोलहों आने खरा बैठता है; किसी भी दूसरे तरीकेको अवैज्ञानिक करार दिया जाना चाहिए और उसे छोड़ दिया जाना चाहिए। मैं पहले ही बतला चुका हूँ कि अपनी जाँचके तरीकेमें मैंने अतिशयोक्तिकी गुंजाइश नहीं रहने दी थी। खेतोंमें खड़ी रबीकी फसल की जाँच तो हमने अपनी आँखोंसे फसल देखकर की थी और ऊपर बतलाये गये तरीकेसे उसका मिलान कर लिया था। सरकारतो अपने निर्धारणका आधार आँखसे देखकर लगाये गये अनुमानको ही बनाती है, इसलिए उसमें अटकलकी बड़ी गुंजाइश रह जाती है। इतना ही नहीं उसपर कुछ बुनियादी किस्मकी आपत्तियाँ की जा सकती हैं, जो मैंने जिला कलक्टरको लिखे अपने पत्रमें गिनाई हैं। मैंने उनसे अनुरोध किया था कि वे वड़थल गाँवको कसौटी बनायें। वड़थल जिलेका एक प्रसिद्ध और सामान्यतया खाता-पीता गाँव है, उसके पाससे रेलवे लाइन गुजरती है और वह एक व्यापारिक केन्द्रके समीप स्थित है। मेरा सुझाव था कि यदि उस गाँवकी फसल चार आनेसे कम निकले, जो कि मैं समझता हूँ कि निकलेगी, तो अन्य अपेक्षाकृत प्रतिकूल स्थितिवाले गाँवों-में वह चार आनेसे अधिक हो ही नहीं सकती। अनुरोधके साथ मैंने एक सुझाव भी दिया था कि जाँचके समय मुझे उपस्थित रहनेकी इजाजत दी जाये। उन्होंने जाँच तो की पर

मेरा सुझाव नहीं माना, इसलिए उनकी जाँच एकतरफा रही। कलक्टरने उस गाँवकी फसलके बारेमें एक बड़ी ब्यौरेवार रिपोर्ट तैयार की है, जिसका मैंने अपनी समझसे बड़ी सफलताके साथ खण्डन कर दिया है। मैं समझता हूँ कि सरकारका अनुमान शुरूमें बारह आनेका था, लेकिन कलक्टरने कमसे-कम अनुमान सात आनेका किया है। कलक्टरने फसलका अनुमान लगानेके लिए जो गलत तरीके अपनाये हैं और जिनकी ओर मैंने उनका ध्यान आकर्षित किया है, यदि उनकी ओर ध्यान दिया जाये तो उनके अपने हिसाबसे भी अनुमान छः आनेसे कम बैठेगा और किसानोंके अनुसार वह चार आनेसे कम बैठेगा। कलक्टरकी रिपोर्ट और मेरा उसका जवाब—दोनों ही इतने प्राविधिक हैं कि जनता उनको समझ नहीं पायेगी। परन्तु मैंने सुझाव दिया है कि चूँकि सरकार और किसान दोनों ही अपनी-अपनी बातको सही मानते हैं, इसलिए यदि सरकार लोकमतकी जरा भी परवाह करती है तो उसे जाँच करनेके लिए एक ऐसी निष्पक्ष समिति नियुक्त करनी चाहिए जिसमें किसानोंके प्रतिनिधि भी शामिल हों; या फिर सरकारको जनताकी बात मान लेनी चाहिए। सरकारने दोनों ही सुझाव ठुकरा दिये हैं और वह लगान-वसूलीके लिए अत्याचारपूर्ण तरीके अपनानेका आग्रह करती है। यहाँ मैं इसका भी उल्लेख कर दूँ कि इस बीच वे अत्याचारपूर्ण तरीके पूरी तौरपर तो कभी बन्द नहीं किये गये और कहीं-कहीं रैयतने सिर्फ दबावके कारण लगान अदा भी कर दिया। तलाटी उनके मवेशी हाँक ले जाते थे और निर्धारित लगानकी अदायगीके बाद ही मवेशी लौटाये गये हैं। एक जगह तो मैंने एक बड़ी दर्दनाक घटना देखी। एक किसानकी एक दुधारू भैंस उससे छीन ली गई थी, और मेरे उस गाँवमें संयोगवश पहुँचनेपर ही वह वापस की गई। वह भैंस ही उस किसानकी सबसे बड़ी सम्पत्ति थी और उसीसे उसकी रोजकी रोटी चलती थी। ऐसे बीसियों मामले हो चुके हैं। और यदि जनताकी सही आवाज उठाई नहीं जाती तो निःसन्देह ऐसे और भी मामले होते रहेंगे। प्रार्थनाके जरिए कष्ट-निवारण करानेके सभी उपाय विफल हो चुके हैं। कलक्टर, कमिश्नर और यहाँतक कि परमश्रेष्ठ तक से इस सम्बन्धमें भेंट की जा चुकी है। इसके बारेमें अन्तिम सुझाव यह दिया गया था, कि हालाँकि अधिकांश गाँवोंको हक है कि उनमें पूरे लगानकी वसूली मुलतवी कर दी जाये; फिर भी सिवाय उन गाँवोंके जहाँ सभी मानते हैं कि फसल छः आनेसे ऊपर हुई है, जिले-भरमें आधे लगानकी वसूली मुलतवी कर दी जाये—इस कृपापूर्ण रियायतके साथ ही यह घोषणा की जा सकती है कि सरकार आशा करती है कि जिन लोगोंके पास गुंजाइश हो वे खुद ही बकाया लगान अदा कर देंगे; हम कार्यकर्ता लोग ऐसे किसानोंको अदायगी करनेके लिए समझायेंगे। इससे केवल बहुत ही गरीब किसानोंको संरक्षण मिलेगा। मैं पूरे विश्वासके साथ कह सकता हूँ कि इस सुझावको स्वीकार कर लेनेपर सरकारको बल मिलेगा और उसकी साख भी बढ़ जायेगी। लोकमतको ठुकरानेसे असन्तोष ही बढ़ेगा। खेड़ाके भयभीत किसानों-जैसे लोगोंमें अन्दर ही अन्दर असन्तोष सुलगता रहेगा, और इस तरह उनको पस्त कर देगा। वर्तमान आन्दोलनका उद्देश्य ऐसी गलत स्थितिको बचानेकी कोशिश करना ही है, क्योंकि वह सरकार और जनता दोनोंके लिए बड़ी अपमानपूर्ण स्थिति होगी। सरकार अपनी स्थिति और तथाकथित प्रतिष्ठाको जमानेके लिए क्या करना सोच रही है? उसके पास राजस्व-संहिता है जिसमें उसे बड़ी

व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं और जिनके अनुसार रैयतको राजस्व-अधिकारियोंके फैसलोंके खिलाफ कोई अपील करनेका अधिकार भी नहीं है। जिस तरहके मामले दर-पेश हैं, जिनमें रैयत सिद्धान्तको लेकर चल रही है और अधिकारी लोग प्रतिष्ठाके सवालपर डटे हुए हैं; उनमें इन शक्तियोंका प्रयोग करना न्यायकी भावनाका दुरुपयोग करना होगा, औचित्यकी हर सीमासे इनकार करना होगा। संहितामें प्रदान की गई शक्तियाँ ये हैं:

१. तुरत-फुरत फैसला करनेका अधिकार।
२. लगानके एक-चौथाईके बराबर जुर्माना वसूल करनेका अधिकार।
३. रैयतवारी ही नहीं, इनामी या सनदिया जमीनकी भी जब्तीका अधिकार; और किसीको हवालातमें रखनेका अधिकार।

इन उपायोंका एक-एक करके या सभीका एक-साथ प्रयोग किया जा सकता है और जनताको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि अन्तिमको छोड़कर बाकी दोनों शक्तियोंको लागू करनेका नोटिस सरकार जारी कर चुकी है। इस प्रकार यदि किसीके पास हजारों रुपयेके मूल्यकी दो सौ एकड़ मौरूसी भूमि हो, जिसपर वह थोड़ा लगान अदा करता हो और यदि वह सिद्धान्तकी खातिर निर्धारित लगान अपनी ओरसे अदा करनेसे इनकार करे और उसके लिए विनम्रतासे लेकिन जोरदार विरोध प्रदर्शित करते हुए कानून द्वारा विहित दण्डको भोगनेके लिए तैयार हो तो अधिकारी उसकी सारी जमीन जब्त कर सकता है। कानूनका पालन करते हुए यदि व्यवस्थित ढंगसे अवज्ञा की जाये, तो उसका पुरस्कार यह तो नहीं ही दिया जाना चाहिए कि सारी जमीन जब्त कर ली जाये। यह तो बदला लेना हुआ। ऐसी परिस्थितिमें यदि ठीक ढंगसे काम किया जाय तो उसके फलस्वरूप चतुर्दिक प्रगति होगी और सरकारकी किसान-प्रजामें साहस पैदा होगा, वह सरकारसे दुराव-छिपाव नहीं करेगी और उसमें अपनी इच्छा-शक्ति भी होगी।

खेड़ाके किसान जिस बातको उचित और न्यायपूर्ण समझते हैं, उसके लिए उन्होंने संघर्ष छेड़नेका साहस किया है, और मैं इस न्यायपूर्ण संघर्षमें उनकी सहायता करनेके लिए समाचारपत्रों और जनताको आमंत्रित करता हूँ। जनताको यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि खेड़ामें इस बार जैसी भयंकर प्लेग फैली है वैसी पहले कभी नहीं फैली थी और उसने जनसंख्याका दशांश नष्ट कर दिया है। लोग अपने-अपने घर छोड़कर बाहर खास तौरपर खड़ी की गई फूसकी झोंपड़ियोंमें बसर कर रहे हैं, जिससे उनका खर्च भी काफी बढ़ गया है। कुछ गाँवोंमें तो मरनेवालोंकी संख्या भी काफी अधिक है। [अनाजकी] कीमतें चढ़ी हैं; लेकिन फसल खराब हो जानेके कारण वे उसका फायदा नहीं उठा सकते; और उसका सारा नुकसान तो उन्हें भुगतना ही पड़ता है। खेड़ाकी जनताको आपके पैसेकी इतनी आवश्यकता नहीं जितनी कि एक दृढ़, सर्वसम्मत और दो-टूक लोकमतकी है।[1]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १-४-१९१८

१. यह वक्तव्य ३-४-१९१८ के **यंग इंडिया**में भी प्रकाशित हुआ था।

१९६. भाषण : हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें[1]

[इन्दौर
मार्च २९, १९१८]

युवराज, सभापति, भाइयो और बहनो,

हमारे पूजनीय और स्वार्थत्यागी नेता पण्डित मदनमोहन मालवीय नहीं आ सके। मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि जहाँतक बने सम्मेलनमें उपस्थित रहियेगा। उन्होंने वचन दिया था कि वे जरूर आयेंगे। पण्डितजी सम्मेलनमें तो उपस्थित नहीं हुए, पर उन्होंने एक पत्र भेज दिया है। मैं उम्मीद करता था कि यदि पंडितजी नहीं आयेंगे, तो उनका पत्र अवश्य आयेगा, और उसे मैं आप लोगोंके सामने उपस्थित कर सकूँगा। यह पत्र मुझे आज मिला है। मैंने स्वागतकारिणी सभाको हिन्दीके विषयमें विद्वानोंसे दो प्रश्नोंपर सम्मति लेनेके लिए कहा था, उन्हींका उत्तर पंडितजीने अपने पत्रमें दिया है।[2]

[मालवीयजीका पत्र पढ़कर गांधीजीने इस प्रकार कहा :]

भाइयो और बहनो,

मैं दिलगीर हूँ कि जो व्याख्यान सम्मेलनमें देनेका मेरा इरादा था, वह आपके सामने नहीं रख सका हूँ। मैं बड़ी झंझटोंमें पड़ा हूँ। मेरी इस समय बड़ी दुर्दशा है। इससे मैं काम नहीं कर सका। पर मैंने वादा किया था कि मैं आऊँगा, और आ गया; किन्तु जो चीज सामने रखनेका इरादा था, नहीं रख सका।

यह भाषाका विषय बड़ा भारी और बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यदि सब नेता सब काम छोड़कर केवल इसी विषयपर लगे रहें, तो बस है। यदि हम लोग भाषाके प्रश्नको गौण समझें या इधरसे मन हटा लेंगे, तो इस समय लोगोंमें जो प्रवृत्ति चल रही है, लोगोंके हृदयोंमें जो भाव उत्पन्न हो रहा है, वह निष्फल हो जायेगा।

भाषा माताके समान है। मातापर हमारा जो प्रेम होना चाहिए, वह हम लोगोंमें नहीं है। वास्तवमें मुझे तो ऐसे सम्मेलनोंसे प्रेम नहीं है। तीन दिनका जलसा होगा। तीन दिन कह-सुनकर हमें [आगे] जो करना चाहिए, उसे हम भूल जायेंगे। सभापतिके भाषणमें तेज नहीं है, जिस वस्तुकी आवश्यकता है, वह वस्तु उसमें नहीं है। इससे बड़ी कंगालीकी मैं कल्पना नहीं कर सकता। हमपर और हमारी प्रजाके ऊपर एक बड़ा आक्षेप यह है कि हमारी भाषामें तेज नहीं है। जिनमें विज्ञान नहीं है, उनमें तेज नहीं है। जब हममें तेज आयेगा, तभी हमारी प्रजामें और हमारी भाषामें तेज आयेगा। विदेशी भाषा द्वारा आप जो स्वातन्त्र्य चाहते हैं, वह नहीं मिल सकता; क्योंकि उसमें हम योग्य

१. यह भाषण गांधीजीने १९१८में इन्दौरके टाउन हॉलमें हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलनके आठवें अधिवेशनके समय सभापति-पदसे दिया था।

२. गांधीजीने यहां पण्डित मालवीयका पत्र पढ़कर सुनाया, जिसमें उन्होंने अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त किया था कि हिंदी ही भारत की आन्तर्प्रान्तीय भाषा है।

नहीं हैं। प्रसन्नताकी बात है कि इन्दौरमें सब कार्य हिन्दीमें होता है। पर क्षमा कीजियेगा, प्रधान मन्त्री साहबका जो पत्र आया है, वह अंग्रेजीमें है। इन्दौरकी प्रजा यह बात नहीं जानती होगी, पर मैं उसे बतलाता हूँ कि यहाँ अदालतोंमें प्रजाकी अर्जियाँ हिन्दीमें ली जाती हैं, पर न्यायाधीशोंके फैसले और वकील-बैरिस्टरोंकी बहस अंग्रेजीमें होती है। मैं पूछता हूँ कि इन्दौरमें ऐसा क्यों होता है? हाँ, मैं यह मानता हूँ कि अंग्रेजी राज्यमें यह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता; यह ठीक है; पर देशी राज्योंमें तो सफल होना ही चाहिए। शिक्षित-वर्ग, जैसा कि माननीय पंडितजीने अपने पत्रमें दिखाया है, अंग्रेजीके मोहमें फँस गया है और अपनी राष्ट्रीय मातृभाषासे उसे असन्तोष हो गया है। पहली माता [अंग्रेजी] से हमें जो दूध मिल रहा है, उसमें जहर और पानी मिला हुआ है, और दूसरी माता [मातृभाषा] से शुद्ध दूध मिल सकता है। बिना इस शुद्ध दूधके मिले हमारी उन्नति होना असम्भव है। पर जो अन्धा है, वह देख नहीं सकता; गुलाम यह नहीं जानता कि अपनी बेड़ियाँ किस तरह तोड़े। पचास वर्षोंसे हम अंग्रेजीके मोहमें फँसे हैं। हमारी प्रजा अज्ञानमें डूबी रही है। सम्मेलनको इस ओर विशेष रूपसे खयाल रखना चाहिए। हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्षमें राजकीय सभाओंमें, कांग्रेसमें प्रान्तीय भाषाओंमें और अन्य सभा-समाज और सम्मेलनोंमें अंग्रेजीका एक भी शब्द सुनाई न पड़े। हम अंग्रेजीका व्यवहार बिलकुल त्याग दें। अंग्रेजी सर्वव्यापक भाषा है, पर यदि अंग्रेज सर्वव्यापक न रहेंगे, तो अंग्रेजी भी सर्वव्यापक न रहेगी। हमें अब अपनी मातृभाषाकी और उपेक्षा करके उसकी हत्या नहीं करनी चाहिए। जैसे अंग्रेज अपनी मादरी जबान अंग्रेजीमें ही बोलते और सर्वथा उसे ही व्यवहारमें लाते ह, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिन्दीको भारतकी राष्ट्रभाषा बननेका गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिए। अब मैं अपना लिखा हुआ भाषण पढ़ता हूँ।

श्रीमान् सभापति महाशय, प्यारे प्रतिनिधिगण, बहनो और भाइयो,

आपने मुझे इस सम्मेलनका सभापतित्व देकर कृतार्थ किया है। हिन्दी साहित्यकी दृष्टिसे मेरी योग्यता इस स्थानके लिए कुछ भी नहीं है, यह मैं खूब जानता हूँ। मेरा हिन्दी भाषाका असीम प्रेम ही मुझे यह स्थान दिलानेका कारण हो सकता है। मैं उम्मीद करता हूँ कि प्रेमकी परीक्षामें मैं हमेशा उत्तीर्ण होऊँगा।

साहित्यका प्रदेश भाषाकी भूमि जाननेपर ही निश्चित हो सकता है। यदि हिन्दी भाषाकी भूमि सिर्फ उत्तर प्रान्तकी होगी, तो साहित्यका प्रदेश संकुचित रहेगा। यदि हिन्दी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी, तो साहित्यका विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसे भाषक वैसी भाषा। भाषा-सागरमें स्नान करनेके लिए पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तरसे पुनीत महात्मा आयेंगे, तो सागरका महत्त्व स्नान करनेवालोंके अनुरूप होना चाहिए। इसलिए साहित्यकी दृष्टिसे भी हिन्दी भाषाका स्थान विचारणीय है।

हिन्दी भाषाकी व्याख्याका थोड़ा-सा खयाल करना आवश्यक है। मैं कई बार व्याख्या कर चुका हूँ कि हिन्दी भाषा वह भाषा है, जिसको उत्तरमें हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं, और जो नागरी अथवा फारसी लिपिमें लिखी जाती है। यह हिन्दी एकदम संस्कृतमयी नहीं है, न वह एकदम् फारसी शब्दोंसे लदी हुई है। देहाती बोलीमें जो

माधुर्य मैं देखता हूँ, वह न लखनऊके मुसलमान भाइयोंकी बोलीमें और न प्रयागके पंडितों की बोलीमें पाया जाता है। भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जनसमूह सहजमें समझ ले। देहाती बोली सब समझते हैं। भाषाका मूल करोड़ों मनुष्यरूपी हिमालयमें मिलेगा, और उसमें ही रहेगा। हिमालयमें से निकली हुई गंगाजी अनन्त कालतक वहती रहेगी। ऐसा ही देहाती हिन्दीका गौरव रहेगा। और जैसे छोटी-सी पहाड़ीसे निकला हुआ झरना सूख जाता है, वैसे ही संस्कृतमयी तथा फारसीमयी हिन्दीकी दशा होगी।

हिन्दू-मुसलमानोंके बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। ऐसी ही कृत्रिमता हिन्दी व उर्दू भाषाके भेदमें है। हिन्दुओंकी बोलीसे फारसी शब्दोंका सर्वथा त्याग और मुसलमानोंकी बोलीसे संस्कृतका सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनोंका स्वाभाविक संगम गंगा-जमुनाके संगम-सा शोभित और अचल रहेगा। मुझे उम्मीद है कि हम हिन्दी-उर्दूके झगड़ेमें पड़कर अपना बल क्षीण नहीं करेंगे। लिपिकी कुछ तकलीफ जरूर है। मुसलमान भाई अरबी लिपिमें ही लिखेंगे, हिन्दू बहुत करके नागरी लिपिमें लिखेंगे। राष्ट्रमें दोनोंको स्थान मिलना चाहिए। अमलदारोंको दोनों लिपियोंका ज्ञान अवश्य होना चाहिए। इसमें कुछ कठिनाई नहीं है। अन्तमें जिस लिपिमें ज्यादा सरलता होगी, उसकी विजय होगी। भारतवर्षमें परस्पर व्यवहारके लिए एक भाषा होनी चाहिए, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। यदि हम हिन्दी-उर्दूका झगड़ा भूल जायें, तो हम जानते हैं कि मुसलमान भाइयोंकी तो उर्दू ही राष्ट्रीय भाषा है। इस बातसे यह सहजमें ही सिद्ध हो जाता है कि हिन्दी या उर्दू मुगलोंके जमानेसे राष्ट्रीय भाषा बनती जाती थी।

आज भी हिन्दीसे स्पर्धा करनेवाली दूसरी कोई भाषा नहीं है। हिन्दी-उर्दूका झगड़ा छोड़नेसे राष्ट्रीय भाषाका सवाल सरल हो जाता है। हिन्दुओंको फारसी शब्द थोड़े-बहुत जानने पड़ेंगे। इस्लामी भाइयोंको संस्कृत शब्दोंका ज्ञान सम्पादन करना पड़ेगा। ऐसे लेन-देनसे इस्लामी भाषाका बल बढ़ जायेगा, और हिन्दू-मुसलमानोंकी एकताका एक बड़ा साधन हमारे हाथमें आ जायेगा। अंग्रेजी भाषाका मोह दूर करनेके लिए इतना अधिक परिश्रम करना पड़ेगा कि हमें लाजिम है कि हम हिन्दी-उर्दूका झगड़ा न उठावें। लिपिकी तकरार भी हमको नहीं करनी चाहिए।

अंग्रेजी भाषा राष्ट्रीय भाषा क्यों नहीं हो सकती, अंग्रेजी भाषाका बोझ प्रजाके ऊपर रखनेसे क्या हानि होती है, हमारी शिक्षाका माध्यम आजतक अंग्रेजी होनेसे प्रजा कैसे कुचल दी गई है, हमारी जातीय भाषा क्यों कंगाल हो रही है, इन सब बातोंपर मैं अपनी राय भागलपुर और भड़ौंचके व्याख्यानोंमें दे चुका हूँ, इसीलिए यहाँ मैं फिर नहीं देना चाहता। इन दोनों व्याख्यानोंमें से भाषा-सम्बन्धी भाग मैं इस व्याख्यानके परिशिष्टमें रख दूँगा। हकीकतमें, इस बातमें सन्देह नहीं हो सकता कि हमारे कविवर सर रवीन्द्रनाथ टैगोर, विदुषी एनी बेसेंट, लोकमान्य तिलक और अन्यान्य प्रतिष्ठित और आप्त व्यक्तियोंका मन्तव्य इस विषयमें ऐसा ही है। कार्यकी सिद्धिमें कठिनाइयाँ तो होंगी ही, किन्तु उसका उपाय करना इस सभापर निर्भर है। लोकमान्य तिलक महाराजने अपना अभिप्राय कार्य करके बता दिया है। उन्होंने 'केसरी' और 'मराठा' में हिन्दी विभाग शुरू कर दिया है। भारतरत्न पंडित मदनमोहन मालवीयजीका अभिप्राय भी

हिन्दुस्तानमें अज्ञात नहीं है। तो भी हमें मालूम है कि हमारे कई विद्वान् नेताओंका अभिप्राय है कि कुछ वर्षोंतक तो एक अंग्रेजी ही राष्ट्रीय भाषा रहेगी। इन नेताओंसे हम विनयपूर्वक कहेंगे कि अंग्रेजीके इस मोहसे प्रजा पीड़ित हो रही है। अंग्रेजी शिक्षा पानेवालोंके ज्ञानका लाभ प्रजाको बहुत-ही कम मिलता है, और अंग्रेजी शिक्षित-वर्ग और आम लोगोंके बीच बड़ा दरियाव आ पड़ा है।

कहना आवश्यक नहीं कि मैं अंग्रेजी भाषासे द्वेष नहीं करता हूँ। अंग्रेजी साहित्य-भंडारसे मैंने भी बहुत रत्नोंका उपयोग किया है। अंग्रेजी भाषाकी मारफत हमें विज्ञान आदिका खूब ज्ञान लेना है। अंग्रेजीका ज्ञान भारतवासियोंके लिए बहुत आवश्यक है। लेकिन इस भाषाको उसका उचित स्थान देना एक बात है, उसकी जड़ पूजा करना दूसरी बात है।

हिन्दी-उर्दू राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए, इस बातको सिर्फ स्वीकार करनेसे हमारा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता है। तो फिर किस प्रकार हम सिद्धि पा सकेंगे? जिन विद्वानोंने इस मण्डपको सुशोभित किया है, वे भी अपनी वक्तृतासे हमको इस विषयमें जरूर कुछ सुनायेंगे। मैं सिर्फ भाषा-प्रचारके बारेमें कुछ कहूँगा। भाषा-प्रचारके लिए 'हिन्दी-शिक्षक' होना चाहिए। हिन्दी-बंगाली सीखनेवालोंके लिए एक छोटी-सी पुस्तक मैंने देखी है। वैसी मराठीमें भी है। अन्य भाषा-भाषियोंके लिए ऐसी किताबें देखनेमें नहीं आई हैं। यह काम करना जैसा सरल है, वैसा ही आवश्यक है। मुझे उम्मीद है कि यह सम्मेलन इस कार्यको शीघ्रतासे अपने हाथमें लेगा। ऐसी पुस्तकें विद्वान् और अनुभवी लेखकोंके द्वारा लिखवानी चाहिए।

सबसे कष्टदायी मामला द्राविड़ भाषाओंके लिए है। वहाँ तो कुछ प्रयत्न ही नहीं हुआ। हिन्दी भाषा सिखानेवाले शिक्षकोंको तैयार करना चाहिए। ऐसे शिक्षकोंकी बड़ी ही कमी है। ऐसे एक शिक्षक प्रयागसे आपके लोकप्रिय मन्त्री भाई पुरुषोत्तमदासजी टण्डनके द्वारा मुझे मिले हैं।

हिन्दी भाषाका एक भी सम्पूर्ण व्याकरण मेरे देखनेमें नहीं आया। जो हैं सो अंग्रेजीमें विलायती पादरियोंके बनाये हुए हैं। ऐसा एक व्याकरण डॉ० केलॉगका रचा हुआ है। हिन्दुस्तानकी अन्यान्य भाषाओंका मुकाबला करनेवाला व्याकरण हमारी भाषामें होना चाहिए। हिन्दी-प्रेमी विद्वानोंसे मेरी नम्र विनती है कि वे इस त्रुटिको दूर करें। हमारी राष्ट्रीय सभाओंमें हिन्दी भाषाका ही इस्तेमाल होना आवश्यक है। कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओं और प्रतिनिधियों द्वारा यह प्रयत्न होना चाहिए। मेरा अभिप्राय है कि यह सभा ऐसी प्रार्थना आगामी कांग्रेसमें उसके कर्मचारियोंके सम्मुख उपस्थित करे।

हमारी कानूनी सभाओंमें भी राष्ट्रीय भाषा द्वारा कार्य चलना चाहिए। जबतक ऐसा नहीं होता, तबतक प्रजाको राजनीतिक कार्योंमें ठीक तालीम नहीं मिलती है। हमारे हिन्दी अखबार इस कार्यको थोड़ा-सा करते तो हैं, लेकिन प्रजाको तालीम अनुवादसे नहीं मिल सकती है। हमारी अदालतोंमें जरूर राष्ट्रीय भाषा और प्रान्तीय भाषाका प्रचार होना चाहिए। न्यायाधीशोंकी मारफत जो तालीम हमको सहज ही मिल सकती है, उस तालीमसे आज प्रजा वंचित रहती है।

भाषाकी जैसी सेवा हमारे राजा-महाराजा लोग कर सकते हैं, वैसी अंग्रेज सरकार नहीं कर सकती। महाराजा होल्करकी कौंसिलमें, कचहरीमें और हरएक काममें हिन्दीका और प्रान्तीय बोलीका ही प्रयोग होना चाहिए। उनके उत्तेजनसे भाषा और बहुत ही बढ़ सकती है। इस राज्यकी पाठशालाओंमें शुरूसे आखिर तक सब तालीम मादरी जबान-में देनेका प्रयोग होना चाहिए। हमारे राजा-महाराजाओंसे भाषाकी बड़ी-भारी सेवा हो सकती है। मैं उम्मीद रखता हूँ कि होल्कर महाराज और उनके अधिकारी-वर्ग इस महान् कार्यको उत्साहसे उठा लेंगे।[1]

ऐसे सम्मेलनसे हमारा सब कार्य सफल होगा, ऐसी समझ भ्रम ही है। जब हम प्रतिदिन इसी कार्यकी धुनमें लगे रहेंगे, तभी इस कार्यकी सिद्धि हो सकेगी। सैकड़ों स्वार्थत्यागी विद्वान् जब इस कार्यको अपनायेंगे तभी सिद्धि सम्भव है।

मुझे खेद तो यह है कि जिन प्रान्तोंकी मातृभाषा हिन्दी है, वहाँ भी उस भाषाकी उन्नति करनेका उत्साह नहीं दिखाई देता है। उन प्रान्तोंमें हमारे शिक्षित-वर्ग आपसमें पत्र-व्यवहार और बातचीत अंग्रेजीमें करते हैं। एक भाई लिखते हैं कि हमारे अखबार चलानेवाले अपना व्यवहार अंग्रेजीकी मारफत करते हैं। अपने हिसाब-किताब वे अंग्रेजीमें ही रखते हैं। फ्रांसमें रहनेवाले अंग्रेज अपना सब व्यवहार अंग्रेजीमें रखते हैं। हम अपने देशमें अपने महत् कार्य विदेशी भाषामें करते हैं। मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जबतक हम हिन्दी भाषाको राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओंको उनका योग्य स्थान नहीं देते, तबतक स्वराज्यकी सब बातें निरर्थक हैं। इस सम्मेलन द्वारा भारतवर्षके इस बड़े प्रश्नका निराकरण हो जाये, ऐसी मेरी आशा है और प्रभुके प्रति प्रार्थना है।

राष्ट्रभाषा-हिन्दुस्तानी

१९७. प्राचीन सभ्यता

इन्दौर
मार्च ३०, १९१८[2]

३० मार्च, १९१८को इन्दौरमें व्याख्यान-मालाकी ओरसे दत्त मन्दिरके विशाल मैदानमें महात्मा गांधीका एक महत्त्वपूर्ण भाषण हुआ था। संसारमें आजकल जो परि-वर्तन हो रहा है उसकी ओर लक्ष्य करके आपने कहा :

हमारे मनमें ये विचार आते हैं कि यूरोपमें जैसा परिवर्तन होगा, हिन्दुस्तानमें भी वैसा ही होगा। जब कोई बड़ा परिवर्तन होता है उस समय जो लोग यह समझ लेते हैं कि किस प्रकार उस परिवर्तनके लिए तैयारी करनी चाहिए, वे जीतते हैं; जो लोग

१. २-४-१९१८के **बॉम्बे क्रॉनिकल**के एक समाचारके अनुसार, गांधीजीने हिन्दी-प्रचारार्थ दस हजार रुपयेके दानके लिये महाराजा होल्करको धन्यवाद दिया।

२. यात्रा-क्रमके अनुसार तिथि निर्धारित की गई है।

यह विचार नहीं करते वे नष्ट हो जाते हैं। गति ही प्रगति है और उसीमें हमारी उन्नति है। हम यों समझते हैं कि हमारे लिए यूरोप-खण्डसे जो बड़े-बड़े शोध हुए हैं उनसे हम उन्नति कर लेंगे; पर यह केवल भ्रम है। हम ऐसे मुल्कके रहनेवाले हैं जो अभी तक अपनी सभ्यतापर निर्भर रह सका है। यूरोपकी कई सभ्यताएँ नष्ट हो गईं, पर हमारा यह भारतवर्ष अबतक अपनी सभ्यताका साक्षी होकर बना है। सब विद्वान् साक्षी देते हैं कि भारतवर्षकी जो सभ्यता हजारों वर्षके पहले थी वही अब भी है। पर अब हमें सन्देह होने लगा है कि हमारा विश्वास हमारी सभ्यतापर नहीं है। हम रोज उठकर संध्या-वन्दन आदि करते हैं, अपने पूर्वजोंके बनाये हुए श्लोकोंका पाठ करते हैं, पर हम उनका रहस्य नहीं जानते। हमारी श्रद्धा दूसरी ओर झुकती चली जा रही है।

जबतक संसार चलता रहेगा तबतक पांडवों और कौरवोंका युद्ध भी चलता रहेगा। प्रायः सब धर्म-ग्रंथोंमें लिखा है कि शैतान और देवताओंका युद्ध हमेशा चलता रहेगा। प्रश्न यह है कि हम अपनी तैयारी किस तरह करें। मैं आप लोगोंसे यह कहने आया हूँ कि आप अपनी सभ्यतापर विश्वास करें और उसपर दृढ़ रहें। ऐसा करनेसे हिन्दुस्तान सारे संसारपर विजय पा लेगा। (हर्षध्वनि)

हमारे नेता कहते हैं कि पश्चिमके साथ युद्ध करनेके लिए पश्चिमकी रीति ग्रहण करनी होगी। पर स्पष्ट समझिए, इससे हिन्दुस्तानकी सभ्यता नष्ट हो जायेगी। जिस हिन्दुस्तानको आप नहीं पहचानते हैं वह हिन्दुस्तान आपकी आधुनिक प्रवृत्तिसे विरत है। मैंने सफर करके हिन्दुस्तानकी प्रवृत्तिको जाना है और मुझे मालूम हुआ है कि अपनी प्राचीन सभ्यतापर अब भी उसका विश्वास बना हुआ है। जिस स्वराज्यकी ध्वनि हम सुन रहे हैं और उसके लिए जिस ढंगसे काम किया जा रहा है उससे स्वराज्य नहीं मिलेगा। कांग्रेस-लीगकी स्कीम तथा इससे भी बढ़िया कोई स्कीम हमें स्वराज्य नहीं दिला सकती। स्वराज्य तो हमें अपने जीवनसे मिलेगा। वह माँगनेसे नहीं मिल सकता। हम यूरोपकी नकल करके किसी तरह लाभ नहीं उठा सकते।

यूरोपकी सभ्यता आसुरी है, यह हम देख रहे हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आधुनिक दारुण युद्ध है। यह इतना भीषण है कि महाभारतका युद्ध इसके सामने कोई चीज नहीं। हमें इससे सावधान होना चाहिए और याद रखना चाहए कि हमारे ऋषियोंने हमें अचल और अखंडित तत्त्व दे रखे हैं कि हमारी सारी प्रवृत्ति दैवी होनी चाहिए, और उसका मूल धर्ममें होना चाहिए। हमें उसीका पालन करना चाहिए। जबतक कि हम धर्मका पालन नहीं करेंगे, कितनी भी बड़ी-बड़ी स्कीमें हम बना डालें — मॉण्टेग्यु साहब हमें यह कह दें कि हम तुम्हें आज ही पूर्ण स्वराज्य देते हैं — तो भी हम कभी सफल मनोरथ नहीं हो सकते; हम ऐसे स्वराज्यको बरदाश्त नहीं कर सकते। हमें तो चाहिए कि हमारे ऋषि-मुनियोंने हमारे लिए जो वारसा [वसीयत] रख छोड़ा है उसकी हम सिद्धि करें।

हम सब कोई संसारमें देख सकते ह कि जैसी तपश्चर्या भारतमें हुई थी, वैसी संसारमें कहीं नहीं हुई। अगर हम हिन्दुस्तानके लिए साम्राज्य भी चाहते हैं तो उसे अन्य उपायोंसे नहीं, पर संयमसे ले सकते हैं। निश्चय समझ रखिए कि अगर हमारा जीवन संयममय हो जायेगा तो हम जो चाहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।

सत्य और अहिंसा ही हमारे ध्येय हैं। 'अहिंसा परमो धर्मः' से भारी शोध दुनिया-में दूसरा नहीं है। जबतक हम संसारके व्यवहारोंमें रहते हैं—जबतक हमारी आत्मा-का व्यवहार शरीरके साथ रहता है, तबतक कुछ-न-कुछ हिंसा हमसे होती ही रहती है; पर जिस हिंसाको हम छोड़ सकते हैं हमें उसे छोड़ देना चाहिए। जिस धर्ममें जितनी ही कम हिंसा है, समझना चाहिए कि उस धर्ममें उतना ही ज्यादा सत्य है। हम अगर भारतका उद्धार कर सकते हैं तो सत्य और अहिंसासे ही कर सकते हैं। बम्बईके गवर्नर लॉर्ड विलिंग्डनने एक समय कहा था कि जब मैं हिन्दुस्तानी लोगोंसे मिलता हूँ तब मुझे बड़ी निराशा होती है; वे अपने दिलकी बात नहीं करते, पर मेरे दिलकी बात करते हैं; इससे मैं असली हालत नहीं जान सकता। बहुत-से लोगोंकी यह आदत होती है कि वे हृदयके भावोंको छिपाकर बड़े आदमीके रुखपर बात करते हैं। पर वे इससे अपनी आत्माको कितना धोखा देते हैं, सत्यका भारी घात करते हैं, यह समझते नहीं। जैसी तुम्हारे दिलमें हो वैसी ही बात करो। विवेकके विरुद्ध जाना धृष्टता है। चाहे राज्यका मिनिस्टर हो, चाहे उससे भी बड़ा आदमी हो, सत्य और अपने दिलकी बात कहनेमें रत्तीभर संकोच मत करो। हरएकके साथ सत्य और अहिंसाका बरताव करो।

प्रेम एक ऐसी जड़ी-बूटी है कि कट्टर दुश्मनको भी मित्र बना देती है और यह बूटी अहिंसासे प्रकट होती है। सुषुप्त अवस्थामें जिस चीजका नाम अहिंसा है, जाग्रता-वस्थामें उसीका नाम प्रेम है। प्रेमसे द्वेष नष्ट हो जाता है। क्या मुसलमान, क्या अंग्रेज, सभीके साथ हमें प्रेम करना चाहिए। यह बात अवश्य है कि हम गोरक्षा करें; पर मुसल-मानोंके साथ लड़ाई कर हम ऐसा नहीं कर सकते। मुसलमानोंको मारनेसे हम गौका बचाव नहीं कर सकते। हमें प्रेम ही से काम करना चाहिए और इसीसे हमें कामयाबी होगी। जबतक हमारी अचल श्रद्धा सत्य, प्रेम और अहिंसापर नहीं रहेगी तबतक हम उन्नति नहीं कर सकते। इन बातोंको छोड़कर अगर हम यूरोपकी सभ्यताका अनुकरण करेंगे तो हमारा नाश हो जायेगा। मैं सूर्यनारायणसे प्रार्थना करता हूँ कि भारत अपनी सभ्यता न छोड़े। आप निर्भय हो जाइए। जबतक आपको तरह-तरहके भय लगे रहेंगे, तबतक आप कभी उन्नति नहीं कर सकते; कभी आप विजय नहीं पा सकते। कृपा कर प्राचीन सभ्यताको मत भूल जाइए। सत्य और प्रेमको हरगिज न छोड़िए। शत्रु और मित्रके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार कीजिए। अगर हिन्दीको राष्ट्र-भाषा बनाना है तो सत्य और अहिंसाके तत्त्वोंसे आप उसे शीघ्र वैसा बना सकते हैं।

महात्मा गांधी

१९८. पत्र : अखबारोंको[1]

इन्दौर
मार्च ३१, १९१८

हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन समाप्त होने जा रहा है। सम्मेलनने अपने कुछ प्रस्तावोंको अमलमें लानेके लिए माननीय रायबहादुर विशनदत्त शुक्ल, रायबहादुर सरयूप्रसाद, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, बाबू गौरीशंकर प्रसाद, पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी और मुझे लेकर एक विशेष समितिके रूपमें हमारी नियुक्ति की है। तमिल और तेलगु-भाषी छ: ऐसे होनहार, सच्चरित्र तरुणोंके नाम दे जो तमिल और तेलगु-भाषी जनतामें हिन्दीका प्रचार करना ही अपने जीवनका ध्येय बनानेकी दृष्टिसे हिन्दी सीखना शुरू करें। प्रस्तावके अनुसार इनको इलाहाबाद या बनारसमें रखकर हिन्दी सिखाई जायेगी। समिति उनके रहने-खाने और साथ ही शिक्षा ग्रहण करनेका खर्च उठायेगी। अनुमान है कि उनको पाठ्यक्रम पूरा करनेमें अधिकसे-अधिक एक वर्ष लगेगा और हिन्दीमें कुछ थोड़ी योग्यता हासिल करते ही उनको उच्चादर्शपूर्ण कार्य — अर्थात् यथास्थिति तमिल या तेलगु-भाषी जनताको हिन्दी पढ़ानेका कार्य — सौंप दिया जायेगा, और उसके एवजमें उनको निर्वाहके लिए उचित वेतन दिया जायेगा। समिति कमसे-कम तीन वर्षतक उनको सेवाकी गारंटी देती है और प्रार्थियोंसे आशा करती है कि वे पूरी ईमानदारी और योग्यताके साथ निर्दिष्ट अवधि तक उक्त सेवा करनेका करार समितिके साथ करेंगे। समितिको आशा है कि इन तरुणोंकी सेवाकी अवधि अनिश्चित काल तक बढ़ती रहेगी और वे अपनी तथा देशकी सेवामें रत रहेंगे। समितिकी इच्छा है कि इन तरुणोंको अच्छा वेतन दिया जाये और उनसे पूरी-पूरी निष्ठा तथा सचाईकी उम्मीद की जाये। मुझे भरोसा है कि आप सम्मेलनकी इस बातसे सहमत होंगे कि केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो विभिन्न प्रान्तोंके परस्पर काम-काजके लिए प्रयुक्त की जा सकती है, उसका रूप चाहे संस्कृत-तत्समताका हो या उर्दूका। सारे भारतके मुसलमान और मद्रास प्रेसीडेंसीके अतिरिक्त अन्य प्रदेशोंके हिन्दू तो अब भी उसका प्रयोग कर रहे हैं। मैं अंग्रेजीके माध्यमसे पढ़े शिक्षित भारतीयोंकी बात नहीं करता। उन्होंने तो आपसी बोलचालकी भाषा अंग्रेजी ही बना ली है और ऐसा करके, मेरी विनम्र रायमें देशको काफी हानि पहुँचाई है। यदि हमें स्वराज्यका आदर्श पूरा करना है, तो हमें एक ऐसी भाषाकी जरूरत पड़ेगी ही, जिसे देशकी विशाल जनता आसानीसे समझ और सीख सके। ऐसी भाषा तो सदासे हिन्दी या उर्दू ही रही है और मेरा व्यक्तिगत अनुभव तो यही है कि वह अभी भी बनी हुई है। मुझे मद्रास प्रान्तकी जनताकी देशभक्ति, आत्मत्याग और बुद्धिमत्तापर काफी भरोसा है; मैं जानता हूँ कि जो भी लोग राष्ट्रकी सेवा करना चाहेंगे या अन्य प्रान्तोंके साथ सम्पर्क रखना चाहेंगे,

१. गांधीजीने हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी कार्रवाई समाप्त होते ही यह पत्र प्रकाशनके लिए समाचार-पत्रोंको दे दिया था।

उनको त्याग करना ही पड़ेगा, यदि हिन्दी सीखनेको त्याग ही माना जाये। वैसे मेरा तो खयाल है कि अपने करोड़ों देशवासियोंके साथ हिलने-मिलने योग्य बना देनेवाली एक भाषा सीखना तो अपना एक अहोभाग्य माना जाना चाहिए। यह प्रस्ताव अस्थायी तौरपर एक प्रबन्ध करनेके लिए ही है। वैसे तो देशमें एक बड़ा प्रबल आन्दोलन खड़ा होना चाहिए जो हिन्दीको द्वितीय भाषाके रूपमें पब्लिक स्कूलोंमें लागू करानेपर शिक्षा-अधिकारियोंको विवश कर दे। परन्तु सम्मेलनने महसूस किया कि मद्रास प्रान्तमें हिन्दीका प्रचार तुरन्त ही आरम्भ किया जाना चाहिए। इसीलिए उपर्युक्त प्रस्ताव रखा गया है। मुझे आशा है कि आप इसे अपने पाठकों तक पहुँचा देंगे। साथमें मैं यह भी बतला दूं कि समिति हिन्दी सीखनेके इच्छुक लोगोंको निःशुल्क हिन्दी पढ़ानेके लिए तमिल और आन्ध्र जिलोंमें हिन्दी-अध्यापक भेजनेकी बात सोच रही है। आशा है उन कक्षाओंका लाभ अनेक लोग उठायेंगे। उल्लिखित प्रशिक्षणके लिए आवेदनपत्र देनेके इच्छुक तरुणोंको अप्रैल मासकी अन्तिम तिथिसे पहले अपने प्रार्थनापत्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबादकी मारफत मेरे नाम भेजने चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज ऑफ महात्मा गांधी

१९९. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

नडियाद

अप्रैल १, १९१८[1]

खेड़ाकी परिस्थितिके बारे में मेरा वक्तव्य[2] शायद आपने पढ़ा होगा। यह संघर्ष लोगोंके जोशको कुचल डालनेके अधिकारियोंके प्रयत्नके विरुद्ध है। ऐसी परिस्थितिमें मैं मानता हूँ कि किसानोंकी मदद करना हमारा स्पष्ट कर्तव्य है। युद्ध चल रहा है, इस कारण ऐसे जुल्मोंपर पर्दा नहीं डाला जा सकता। मुझे मालूम हुआ है कि लोगोंके प्रति सहानुभूति दिखानेके लिए बम्बईमें एक सार्वजनिक सभा होनेवाली है। हो सके तो आप इस सभामें जाइये और बोलिये भी।[3]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१. श्री शास्त्रीके उत्तरमें इस तिथिका उल्लेख है।

२. देखिए "वक्तव्य : खेड़ाकी परिस्थितिके बारेमें समाचारपत्रोंको", २८-३-१९१८।

३. श्री शास्त्रीने इसका उत्तर इस प्रकार दिया : "नडियादसे आपका दिनांक अप्रैल १ का पत्र मुझे मिल गया है। कहनेकी जरूरत नहीं कि इस प्रकार आपने मुझे जो सम्मान दिया है मैं उसका महत्त्व समझता हूँ। जो लोग अनुभव और स्थानीय परिस्थितिकी जानकारीके कारण इस विषयमें अपना मत देनेके लिए मुझसे अधिक योग्य हैं मैं नहीं चाहता कि उनके बारेमें अपना कोई मत दूँ। तथापि आप

२००. भाषण : कठानामें

अप्रैल १, १९१८

सरकार कहती है कि उसे लगान वसूल करना ही है, मैं कहता हूँ कि "हमारी जमीनोंमें से ले लो, हमारी मिल्कियतको जब्त कर लो या हमें हिरासतमें ले लो; किन्तु हम अपने हाथसे लगानका रुपया न देंगे और झूठे न बनेंगे।" इस लड़ाईमें न्यायकी जीत होनी ही चाहिए। जबतक मैं जीवित हूँ, तबतक मैं आपके लिए लड़ूंगा। अभी तो जमीनें जब्त होनेकी कोई बात नहीं है। आभूषण, भैंसें और जंगम सम्पत्तिकी बात है। इसमें कोई बड़ी हानि नहीं है। सरकार जब्त करके दस रुपयेकी जगह हजार रुपयेकी जमीनें ले लेगी तो उसे ईश्वर भी सहन न करेगा।

बहनोंको सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा:

आपने अपने पतियोंसे विवाह किया है, उनके आभूषणों या पशुओंसे नहीं। अपने पतियोंको उनकी प्रतिज्ञाके पालनमें सहायता देना आपका धर्म है।

[गुजरातीसे]
खेड़ा सत्याग्रह

यह पसन्द नहीं करेंगे कि मैं अपने मतके अतिरिक्त अन्य किसीके मतके अनुसार काम करूँ, विशेषकर महत्त्वपूर्ण मामलोंमें। साफ बात तो यह है कि यह मान लेनेपर भी कि हक रैयतके पक्षमें है, खेड़ाकी परिस्थितिमें सत्याग्रह छेड़नेके औचित्यके बारेमें मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। अलबत्ता मैं सरकारके अत्याचारको भी ठीक नहीं मानता। मैं कल सर इब्राहीम रहमतुल्ला और सर जेम्स डुबोलेसे मिला था। मैंने तो यथाशक्ति उन दोनोंसे यही आग्रह किया था कि तत्काल मैत्रीपूर्ण नीति अपनाई जानी चाहिए। मुझे तो यह सोचकर दुःख होता है कि मैं आपके आह्वानपर तुरन्त ही निस्संकोच होकर आपके साथ खड़ा नहीं हो पा रहा हूँ, पर साथ ही मैं जानता हूँ कि आप मुझसे इस परिस्थितिमें कोई ऐसा काम करनेकी अपेक्षा नहीं करेंगे जिसका समर्थन मेरा हृदय नहीं करता।" गांधीजी द्वारा इसके उत्तरके लिए देखिए "पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको", ५-४-१९१८

२०१. पत्र : कठानाके निवासियोंको

[अप्रैल १, १९१८के बाद]

[प्यारे भाइयो,]

आपके मालके नीलाम होनेकी खबर मिली। ऐसा नुकसान आपको असहनीय जान पड़ेगा, इसे मैं अच्छी तरह समझता हूँ। लेकिन मुझे लगता है कि हम इसी तरह आगे बढ़ सकेंगे। मेरी इच्छा है, आप लोग नुकसानसे होनेवाले दुःखको धैर्यके साथ आनन्द-पूर्वक सहन करें। यदि सरकारने चौथाई[1] लागू कर दी है तो उसके लिए हम लड़ेंगे और मुझे उम्मीद है कि हम उसे वापस ले सकेंगे। माल नीलाम होने देनेमें आप सबने जो बहादुरी दिखाई है उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। आपने जो त्याग किया है वह अवश्य फल लायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। मैं आशा करता हूँ कि सब भाई अपने वचनका पालन करेंगे। सत्यकी इस लड़ाईमें विजयी होकर पार उतरनेके लिए भगवान् आपको दैवी शक्ति और धीरज दें।

[आपका,]

[गुजरातीसे]
खेड़ा सत्याग्रह

२०२. भाषण : लिम्बासीमें

अप्रैल २, १९१८

हम इस संघर्षको 'सत्याग्रहकी लड़ाई'का नाम देते हैं। हमने सत्यको अपना हथियार बनाया है, इसलिए यदि आप असत्य बोलेंगे और मुझे धोखा देंगे तो आप गिरेंगे और देश-भरमें यह कहा जायेगा कि हमारी लड़ाई कायरोंकी लड़ाई थी। अब जिन्होंने सरकारी लगान पूरा न दिया हो वे अपने हाथ ऊँचे करें।[2] अब जिन्होंने पूरा लगान दे दिया हो वे अपने हाथ ऊँचे करें।[3] इससे सिद्ध होता है कि अधिकांश किसानोंने लगान नहीं दिया है। सचमुच यह प्रसन्नताकी बात है। यदि इतने लोग अपनी बात-पर जमे रहें तो हमारी जीत होगी। हमें जीतका अर्थ समझना चाहिए। हम किसलिए लड़ाई लड़ रहे हैं? हम यह लड़ाई इसलिए लड़ रहे हैं कि सरकार लगान मुलतवी कर दे। नियम ऐसा है कि चार आनेसे कम फसल हो तो सारा लगान और चार आने

१. लगान न भरनेवालोंपर किया जानेवाला जुर्माना जो कि लगानका एक चौथाई होता था।
२. इसपर कोई २०० लोगोंने हाथ उठाये।
३. इसपर केवल तीन लोगोंके हाथ उठे।

और छः आनेके बीच फसल हो तो आधा लगान मुलतवी किया जाना चाहिए। कितने ही लोगोंकी फसल चार आनेसे कम हुई है, फिर भी उनमें से कुछ लोग अपना लगान आधा दे चुके हैं। बाकी लगान नहीं देना है, यही हमारी लड़ाईका उद्देश्य है। सरकारका कहना है कि बहुत जगह फसल छः आनेसे अधिक हुई है। इसपर हमने न्यायकी दृष्टिसे सरकारसे पंच नियुक्त करनेका निवेदन किया; किन्तु उसने हमारे निवेदनको अस्वीकार कर दिया। किन्तु यहाँ प्रश्न केवल लगानका ही नहीं है। मुझे तो यह देखकर दुःख होता है कि सरकार सदा अपनी बात सच्ची बताती है और लोगोंकी सदा झूठी। यह गुलामीकी हालत है। हम अब उसे सहन न करेंगे; हरगिज सहन करना नहीं चाहते। आपकी इच्छा यही होनी चाहिए। आपको स्वतन्त्रताका सुख प्राप्त कराना इस लड़ाईका उद्देश्य है। यह संघर्ष प्रजा-हठ और राज-हठके बीच है। हमारा हठ सच्चा है, इसीलिए हम उसे सत्याग्रह कहते हैं। यदि सरकार इस लड़ाईमें हमारी समस्त सम्पत्तिको कुर्क कर ले और हम फिर भी लगान न दें तो जीत हमारी ही होगी। स्त्रियाँ भी अपने पतियोंको यही सलाह दें। यदि हमारी फसल कम हो और सरकार उसे अधिक बताये तो हमें अपनी सच्ची बातपर कायम रहना चाहिए। यदि दूसरोंसे डरकर कोई ऐसा काम करे जो उसे नहीं करना चाहिए तो उसकी आत्मा पतित हो जाती है। यदि वह डरसे अकर्त्तव्य न करे तो यह उसका पौरुष और वीरत्व होगा। हम गुलाम नहीं हैं, बल्कि स्वतन्त्र हैं। सरकार कहती है कि यदि वह लोगोंको एक बार सिर उठाने देगी तो वे अपना सिर सदा ऊँचा ही रखेंगे। किन्तु लोगोंके पास अपना सिर व्यर्थ ऊँचा उठानेका समय नहीं है। उनका बहुत-सा समय अपनी रोटी कमानेमें ही चला जाता है। हम तो स्वयं कष्ट उठाकर लड़ रहे हैं। यदि कोई करोड़पति आपका लगान स्वयं दे देनेका प्रस्ताव करे तो आप उसे माननेसे साफ इनकार कर दें। ऐसी सहायतासे हम गिरेंगे। लोगोंको अपने बल-बूतेपर ही लड़ना चाहिए। उन्हें दुःखमें सुख मानना चाहिए। मेरी सहायता तो इतनी ही होगी कि मैं आपके दुःखमें भागी रहूँगा। मैं आपको अपने अनुभव और परामर्शका लाभ दूँगा। इसके अलावा मैं और कोई सहायता नहीं दे सकता। लड़ाई तो आपको ही लड़नी है। यदि आपको सुख और शांति न मिले तो हम भी आपके दुःख-सुखके भागी होंगे। आपके चारों ओर आग धधक रही हो तो हम कैसे सुखी हो सकते हैं। आप कदाचित् इन नोटिसोंसे घबरायें और फसल जब्त होनेके भयसे काँप उठें; किन्तु यदि आप इनका सामना शांतिपूर्वक और मुसकराते चेहरेसे करेंगे तो सरकार दूसरी बार ऐसा न कर सकेगी। सरकार आपको भयभीत करनेके लिए यह सब कर रही है। हमारे धर्मशास्त्रोंमें सत्यकी खातिर कष्ट सहनेके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

यदि लिम्बासीके किसान सत्यके निमित्त बरबाद हो जायेंगे तो हम कहेंगे कि राजा नलकी कहानी सच्ची है। यह भी कहा जायेगा कि लिम्बासीमें आज सैकड़ों राजा नल हैं। खलिहानोंको जब्त हो जाने दें और जमीनोंको भी। जिस दिन हम अपनी जमीनें जब्त हो जानेपर प्रसन्न होकर ढोल बजाते हुए गाँवसे बाहर निकलेंगे, वह दिन सोनेका दिन होगा, क्योंकि उसी दिन यह सिद्ध होगा कि हमारी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। जो लोग बरबाद होंगे उन्हें हम भूखों न मरने देंगे। यदि आपको लंघन करना पड़ेगा तो आपके

साथ में और मेरे समान और सैकड़ों व्यक्ति लंघन करेंगे। यदि आप कष्ट सहन करेंगे तो सुख आपके पीछे दौड़ता हुआ आयेगा। यह प्रकृतिका नियम है।

जहाँ तलाटी, मुखिया और चौकीदारका आतंक है वहाँ तहसीलदारका कहना ही क्या है? एवं कलक्टरकी ओर तो देखा भी कैसे जा सकता है? आपके मनमें यह झूठा भ्रम पैठ गया है। अधिकारियोंसे डरना चाहिए ऐसा कानूनमें कहीं नहीं है। हम डरेंगे नहीं तो कानूनके अन्तर्गत भी हमें दण्ड नहीं दिया जा सकता। हमें तो ईश्वरसे ही डरना चाहिए।

जिन लोगोंके ऊपर अत्याचार किये जा रहे हैं उन्हें घबराना नहीं चाहिए। सरकारसे जूझनेका यह नया ही अवसर है। यह सत्यकी लड़ाई है। भाई इन्दुलाल[1] और भाई हरिप्रसाद[2] इस ताल्लुकेमें ही रहेंगे। आप उन्हें अपने कष्टोंकी जानकारी देते रहें। हम अन्य ताल्लुकोंमें भी ऐसा ही प्रबन्ध करेंगे। हम नित्यप्रति एक हस्तलिखित पत्रिका निकालेंगे, उसमें दैनिक स्थिति बताते रहेंगे। इससे आपको विश्वास हो जायेगा कि हम एक भी क्षण आलस्यमें नष्ट न करके आपकी लड़ाईमें ही खर्च करते हैं। इसी शुक्रवारको, यहाँकी स्थितिके सम्बन्धमें एक सभा बम्बईमें की जायेगी।[3] धीरे-धीरे समस्त भारत जग जायेगा। इसका श्रेय आपको ही मिलेगा। खेड़ा जिलेने समस्त देशको मार्ग दिखाया है। इससे समस्त देशका कल्याण होगा। जब किसान यह कहेंगे कि 'हम मर्द हैं, बहादुर हैं, और सत्यकी खातिर त्याग करनेके लिए तैयार हैं', तब मैं कहूँगा कि वे मनुष्य नहीं है, बल्कि देवता हैं। मैं आपकी जीतकी कामना करता हूँ।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२०३. भाषण : करमसदमें

अप्रैल ४, १९१८

कुछ दिन पहले जब हम नडियादमें इकट्ठे हुए थे और हमने सत्याग्रहका निश्चय किया था तब मैंने कहा था कि मैं मुहम्मद अली और शौकत अलीके कार्यके सम्बन्धमें दिल्ली जा रहा हूँ। ऐसा लगता है कि मानो मैं अलीबन्धुओंके मामलेमें गहरी दिलचस्पी नहीं ले रहा हूँ; किन्तु उनके कार्यमें मैं कितना रत हूँ, यह मैं ही जानता हूँ। आज यहाँ जो मेहमान मौजूद हैं उनमें भाई शुएब[4] भी उसी कोटिके व्यक्ति हैं जैसे कि अली-बन्धु। मैंने मुस्लिम लीगकी सभामें कहा था कि मैं भारतमें जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहाँ-वहाँ जो मुसलमान खुदा-परस्त और सत्य-भक्त होते हैं उनसे प्रेमपूर्वक भेंट करता हूँ।

१. इन्दुलाल याज्ञिक; एक सक्रिय राजनैतिक कार्यकर्ता; गांधीजीने इन्हींसे **नवजीवन** लेकर उसे साप्ताहिकका रूप दिया था।

२. डॉ० हरिप्रसाद; जिन्होंने खेड़ा सत्याग्रहमें कार्य किया था।

३. यह सभा बादमें स्थगित कर दी गई थी, देखिए अगला शीर्षक।

४. सभामें बाबू राजेन्द्रप्रसाद, न्यू इराके सम्पादक श्री शुएब कुरैशी और अन्य कई लोग उपस्थित थे।

भाई मुहम्मद अली और शौकत अली ऐसे ही मुसलमान हैं। इन दोनों भाइयोंका परिचय प्राप्त करनेके सिलसिलेमें मेरी भेंट श्री शुएवसे हो गई। वे यहाँ मेरे अनुरोधपर आये हैं। वे विद्वान् और सत्यके समर्थक हैं। उन्होंने कष्ट-सहनमें कोई कसर नहीं रखी है।

दूसरे भाइयोंका परिचय किन शब्दोंमें दूं? मेरे भाई गुजर गये हैं; किन्तु जिनको देखकर मुझे अपने भाइयोंका अभाव विस्मृत हो जाता है वे भाई राजेन्द्रबाबू यहाँ आये हुए हैं। इनसे मुझे इतना प्रेम मिला है कि मैं उन्हें कदापि भूल नहीं सकता। भाई बदरीनाथ वर्मा भी राजा जनककी भूमि बिहारके वासी हैं। बहन आनन्दीबाई मेरी बेटीका अभाव पूरा कर रही हैं। वे विधवा हैं। वे अब भी पढ़ रही हैं। चम्पारनमें जब स्त्रियोंकी आवश्यकता हुई थी तब डॉ० देवने इन्हें मुझे सौंपा था। आज हम इन सब लोगोंकी उपस्थितिमें यहाँ सत्याग्रह-संग्रामकी बात करेंगे।

बम्बई तो धनाढ्योंकी नगरी है। उसे सत्याग्रहका मर्म समझाना कठिन काम है और इससे भी कठिन काम है बम्बई सरकारको समझाना, क्योंकि वह तो जहाँ-तहाँ कानूनी धाराएँ लागू करती रहती है। फिर भी अभी हालकी बातचीतके फलस्वरूप एक समिति नियुक्त की गई है। वह सरकारसे मिलेगी। बम्बईमें सार्वजनिक सभा बुलानेकी बात फिलहाल मुलतवी कर दी गई है। आप लोगोंको छोड़कर बम्बई जानेकी इच्छा नहीं होती। मैं आपको छोड़कर कहीं जा ही नहीं सकता। यह लड़ाई बम्बईके लोगोंकी सहायतासे नहीं जीतनी है। यदि खेड़ाके किसान सरकारके डरसे एकके बाद एक गिरते जायें तो बम्बईके लोगोंकी सहायता क्या काम देगी? आप सरकारको छाती ठोककर कहें कि आपकी यह लड़ाई सत्यकी लड़ाई है और इसमें आप कष्ट सहनेके लिए तैयार हैं।

यह अच्छा ही हुआ कि मैं अपने साथ अपने इन मेहमानोंको यहाँ ले आया। यह वल्लभभाईकी जन्मभूमि है। वल्लभभाई यद्यपि अभी भट्टीमें हैं, और उन्हें अभी भली-भाँति तपना है फिर भी मुझे विश्वास है कि हमें अन्तमें कुन्दन ही मिलेगा। आप इन्हें प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद देकर विदा करें। आपने उन्हें लड्डुओंकी दावत दी, यह उचित ही है; किन्तु उसके बाद दक्षिणा भी तो देनी चाहिए। और उनकी दक्षिणा यही हो सकती है कि आपको सरकार चाहे उस तालाबमें डुबा दे अथवा आगमें झोंक दे; किन्तु आप उसे लगानकी एक पाई भी न दें।

इस सभामें बड़ौदा राज्यके किसान भाई भी आये हैं, यह बहुत अच्छी बात है। सत्याग्रहमें हमारी जमीन चली जायेगी तब, मैं उनसे ऐसी अपेक्षा करता हूँ कि वे अपनी जमीनें हमें दे देंगे। यदि हम यह कहते हों कि फसल चार आनेसे कम हुई है तो सरकार एक पाई भी ले जाये, इसे हम कैसे सहन करेंगे? इस संघर्षमें एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व दूसरा भी है। और वह यह है कि सरकारकी बात रहे या रैयतकी। अधिकारियोंकी झूठी जिदसे लड़नेमें लोगोंकी सरकारके प्रति वफादारी है। हमें मनुष्यता प्राप्त करनी है। जब हम जाग्रत हुए हैं तब हमें सावधान होकर चलना चाहिए। देशमें उथल-पुथल हो रही है। विदेशोंमें रक्तकी नदियाँ बह रही हैं। यूरोपमें अंग्रेजोंने अपनी वीरता प्रमाणित कर दी है। हम इन वीरोंके सहभागी होना चाहते हैं। हम वीरोंके साथ वीर बनेंगे तो ही शोभा पायेंगे। यदि हम वीर न बनेंगे तो उन्हें भी नामर्द बना देंगे।

यदि हम दीन बन जायेंगे तो उनको भी दीन कर देंगे। हम देशमें जाग्रति उत्पन्न करने और लोगोंको सत्याग्रहका पाठ पढ़ानेके लिए यह लड़ाई लड़ रहे हैं।

लड़ाईमें शस्त्र लेनेसे वीरता नहीं आती। शस्त्र हों; किन्तु हृदयमें कायरता हो तो शस्त्र व्यर्थ हैं। वीरता निर्भयतासे तलवारका प्रहार सहकर भी अविचलित बने रहनेमें है। इस वीरताके तत्त्व पुरुषों, स्त्रियों और बालकों सभीमें हो सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि खेड़ाके किसानोंमें ऐसा शौर्य हो। हमारा शस्त्र सत्यपर आग्रह करना है। खेड़ाके किसान अपना सर्वस्व गँवा दें; किन्तु लगान न दें। मुझे विश्वास है कि करमसदके किसान कभी पीछे न हटेंगे। हमें दुःख सहन करना है। हमें अपनी सम्पत्तिकी आहुति देनी है। यह विचार अवश्य आता है कि खानेके लिए मिलेगा या नहीं; किन्तु जिसने दाँत दिये हैं वह खानेके लिए भी देगा।[1]

यह संघर्ष सर्वस्वकी बलि देनेका है। फिर भी जो बुरी नीयतसे हमारी जमीनों-पर हाथ डालेंगे वे उसे पचा न सकेंगे। यदि सरकार ऐसा करेगी तो हम विद्रोही बन जायेंगे। यदि वह सौ रुपयेका लगान वसूल करनेके लिए दस हजार रुपयेकी जमीनको नीलाम करेगी तो उस जमीनको जो भी लेगा पचा न सकेगा। इस सरकारका आधार लूट-पाट नहीं, न्याय है। आप विश्वास रखें कि जिस दिन मुझे यह पता चल जायेगा कि इस राज्यका आधार लूट-पाट है, उसी दिन उसके प्रति मेरी वफादारी चली जायेगी। हमारी जमीनें चली जायेंगी तब हम क्या करेंगे, यह भय क्यों करना चाहिए? ऐसा कोई नहीं है जो हमारी जमीनोंको पचा सके।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२०४. पत्र: के० नटराजनको

[अप्रैल ५, १९१८ से पूर्व]

भाईश्री नटराजन,[2]

यह देखकर मुझे दुःख होता है कि कई बार आप जल्दीमें निर्णय कर लेते हैं और दूसरे पक्षकी बात सुननेका धीरज नहीं दिखाते। आप राष्ट्रकी सेवा तो करना ही चाहते हैं, किन्तु मेरा नम्र विचार है कि आपकी इस आदतके कारण राष्ट्र-सेवा करनेकी आप-की शक्तिपर उलटा असर पड़ता है। इस खेड़ा-प्रकरणको ही लीजिए। आप मुझसे भिन्न मत रखें, इसका मैं बुरा नहीं मानता; बल्कि मैं तो इस बातके लिए आपका आदर करता हूँ कि आप अपने विश्वासोंको व्यक्त कर देते हैं, यद्यपि अपने मित्रोंके मनके विरुद्ध उनपर डटे रहनेमें आपको कष्ट भी हो सकता है। मेरी शिकायत इस बातके खिलाफ है कि आप जल्दबाजीमें फैसला कर लेते हैं। आप खेड़ाकी लड़ाईकी भीतरी बातें नहीं

१. इसके बाद गांधीजीसे कुछ प्रश्न पूछे गये जिनमें से एकका उत्तर अगले अनुच्छेदमें दिया गया है।
२. कामाक्षी नटराजन; **इंडियन सोशल रिफॉर्मर**के सम्पादक।

जानते, और न उनका अध्ययन करनेके लिए आपके पास समय है। गोधरामें एक सम्मेलन[१] हुआ था; और उसी सम्मेलनमें आम जनताने पहली बार सक्रिय भाग लिया। सम्मेलनके अन्तमें कुछ लोगोंने नेताओंपर ताना कसते हुए कहा था, "ऐसे सम्मेलनोंका आयोजन करने और उनमें हमें बुलानेसे क्या लाभ? खेड़ा जिलेमें आज स्पष्ट रूपसे फसलके लगभग मारे जानेकी समस्या उपस्थित है, और किसानोंको यह अधिकार है कि लगानकी वसूली मुलतवी कर दी जाये। आप लोग इस मामलेमें क्या कर रहे हैं?" सुननेवालोंमें से कुछ लोगोंने इस तानेको उचित समझकर स्वीकार कर लिया और वचन दिया कि वे इस सम्बन्धमें कार्रवाई करेंगे। इसीके परिणामस्वरूप लगानको मुलतवी रखनेके लिए हजारों आदमियोंके दस्तखतसे प्रार्थनापत्र[२] भेजा गया। वसूली मुलतवी रखनेके लिए यह अर्जी ही काफी थी। इससे सरकारको केवल ब्याजका नुकसान होता, किन्तु उसके बदलेमें वह लोगोंका सद्भाव प्राप्त कर सकती थी। लेकिन अधिकारियोंने अनिश्चित और गलत रास्ता अपनाया। उन्होंने फसलका अन्दाजा लगानेके लिए आनावारी पत्रक मँगाने शुरू किये। इन पत्रकोंके बारेमें मैं कह सकता हूँ कि निष्पक्ष और बारीकीसे जाँच करने पर वे खरे नहीं उतर सकते। राहत प्राप्त करनेके जितने रास्ते हो सकते थे, किसानोंने उन सबको आजमा लिया है। हरबार उनके सामने ये गलत कागजात रख दिये जाते थे। ऐसी हालतमें वे लोग क्या करते? अपने ढोर-डंगर, पेड़-पौधे और दूसरी सम्पत्ति बेचकर चुपचाप लगान चुका देते? मैं तो कहूँगा कि मेरी ही तरह आप भी व्यक्तिशः मौकेपर उपस्थित हों और किसानोंको वैसा करनेकी सलाह देकर देख लें। किसानोंके पास अनाज-वनाज तो है नहीं। ऐसी स्थितिमें उनसे लगान वसूल करनेके लिए कैसे-कैसे उपाय काममें लाये जाते हैं, यह आपको जानना चाहिए। मेरी नजरोंके सामने किसानोंको पौरुषहीन बनाया जाता और मैं चुपचाप देखता रहता, यह मुझसे नहीं हो सकता था। आपसे भी नहीं हो सकता। मेरे विचारसे किसी भी जातिके लिए ऐसा कहना बिलकुल वैध, न्यायसंगत और उचित है कि "आप हमारी अर्जियोंको नामंजूर करते हैं, इसलिए यदि अब हमें लगान अदा करना है, तो हम कर्ज लेकर या अपनी सम्पत्ति बेचकर ही अदा कर सकते हैं।" आप जरा आकर देखिए तो कि किसान लोग यह लड़ाई किस प्रकार पूरे उल्लासके साथ लड़ रहे हैं, किस प्रकार वे हर तरहकी क्षति उठानेके लिए अपना दिल कड़ा कर रहे हैं, और किस प्रकार बड़े-बूढ़े तथा स्त्रियाँ भी प्रदर्शनमें भाग ले रही हैं। कमसे-कम आपको तो यह देखना ही चाहिए कि इस स्वेच्छया कष्ट-सहनसे राष्ट्रका गौरव बढ़ेगा, जब कि अबतक यही कष्ट अनिच्छापूर्वक सहते रहनेसे उसका पतन ही हुआ है। यह तो रोटीकी लड़ाई है। राहत देनेकी प्रार्थना करनेवाली हजार सभाएँ आयोजित करनेका भी क्या फायदा है, यदि वे ऐसे अवसरपर, जब कि एक संवैधानिक आन्दोलन चलाया जा रहा है, लोगोंको यही सलाह दें कि अपने पेड़-पौधे, ढोर-डंगर, गहना-गाँठा बेचकर भी लगान अवश्य चुका दो? यह तो रोटी माँगनेपर पत्थर देने-जैसी बात हुई।

१. देखिए "भाषण: समाज-सम्मेलनमें", ५-११-१९१७।

२. यह प्रार्थनापत्र सर्वप्रथम १५ नवम्बर, १९१७ को कठलालके किसानोंने पेश किया था। बादमें १८,००० किसानोंके हस्ताक्षरोंसे इसी प्रकारके और भी प्रार्थनापत्र सरकारको भेजे गये थे।

मेरी कामना है कि यह पत्र आपकी अन्तरात्माका स्पर्श करे, आपकी शोध-वृत्तिको उत्तेजित करे और आपको खेड़ा आकर लड़ाईको अपनी आँखों देखनेकी प्रेरणा दे। और तब यदि आप अपनी रिपोर्ट देना चाहेंगे तो मैं उसके लिए न केवल सहर्ष तैयार रहूँगा, बल्कि आपको वैसा करनेके लिए आमन्त्रित करूँगा, चाहे वह रिपोर्ट हमारे उद्देश्यके लिए कितनी भी हानिकर क्यों न हो। उस दशामें मुझे यह जाननेका सन्तोष तो रहेगा कि आपने कमसे-कम प्रश्नका भली-भाँति अध्ययन किया है। इतना कर देना अपने-आपके प्रति, एक मित्रके प्रति और अपने राष्ट्रके प्रति आपका फर्ज है। यदि आप इस उद्देश्यके लिए इतना समय भी — और इतना समय दिये बिना तो काम ही नहीं चल सकता — देनेको तैयार न हों तो आपको खेड़ाके मामलेमें कोई मत रखनेका अधिकार नहीं है।

आशा है, आपको इस प्रकार लिखकर मैंने जो धृष्टता की है, उसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। मैंने आपसे कई बार कहा है कि अपने काममें आपका सहयोग और सहायता प्राप्त करनेके लिए मैं बराबर प्रयत्नशील रहता हूँ। फिर भी, यदि आप पूरा विचार करनेके बाद मुझे यह मदद न दे सकें, तो मुझे कोई शिकायत न होगी। आपको "सत्याग्रह" शब्दके पीछे भटक नहीं जाना चाहिए। आपके सामने एक ठोस मामला मौजूद है, और उसके सम्बन्धमें उसीके गुण-दोषके आधारपर मत स्थिर कीजिये।[1]

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१. इस पत्रके सम्बन्धमें महादेवभाई अपनी डायरीमें कहते हैं : "बापूसे कहा गया कि इससे नटराजनको बहुत दुःख होगा। बापूने पत्रको फिर पढ़ा। दो वाक्य अपूर्ण रह गये थे। बापूने इसके लिए मुझे फटकारते हुए कहा : 'मेरा तो खयाल है कि कमसे-कम तुम ऐसी बातोंकी ओर मेरा ध्यान अवश्य दिलाओगे। लेकिन तुमने ऐसा किया क्यों नहीं?' मैंने जवाब दिया : 'मैंने इसे वल्लभभाई और बैंकरको दिखाया था।" बापूने कहा : "यह तो बिल्कुल ठीक है। वे कहेंगे कि मैं लिखना नहीं जानता। लेकिन इसमें दलील तो है ही। मैंने यह पत्र उनकी बुद्धिको झकझोरनेके लिए लिखा है, उनके मनको कष्ट पहुँचानेके लिए नहीं। यह पत्र पूछता है, भैया! तुम्हारी बुद्धि काम क्यों नहीं करती?'"

२०५. पत्र: वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

अप्रैल ५, १९१८

[प्रिय श्री शास्त्रियर,]

आपके पत्रके[1] लिए आभारी हूँ। अपने हरएक कामके लिए आपकी सम्मति प्राप्त करनेकी मुझे कितनी ही उत्सुकता हो, फिर भी आपकी यह दलील मैं स्वीकार करता हूँ कि आपकी अन्तरात्मापर किसी भी तरहका दवाव नहीं पड़ना चाहिए। मैं जानता हूँ कि खेड़ाका सवाल दिनोंदिन जैसे आगे बढ़ता जायेगा, आप उसके साथ सम्पर्क बनाये ही रहेंगे।

[हृदयसे आपका,]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखत डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

२०६. भाषण: वड़थलमें

अप्रैल ५, १९१८

इस संघर्षमें वड़थल गाँवके लोगोंने आरम्भसे ही मुख्य हिस्सा लिया है। मैं यहाँ एक-एक खेतपर गया हूँ और मुझे विश्वास हो गया है कि इस गाँवमें फसल औसतन चार आनेसे कम हुई है। यहाँ कलक्टर फिर जाँच करने आया था। मैंने उसे लिखा कि मैंने स्वयं जाँचकी है और इस वातका इतमीनान कर लिया है कि फसल चार आनेसे कम हुई है; किन्तु उन्होंने मेरी वात स्वीकार नहीं की।

मैंने आप लोगोंको बताया ही है कि हमारी यह लड़ाई स्वयं कष्ट-सहनकी लड़ाई है। आपको जितना कष्ट सहना पड़ रहा है, सत्याग्रहकी लड़ाईमें उसकी अपेक्षा मैंने और लोगोंको ज्यादा कष्ट सहते देखा है। मुझे तो आपको कड़वे घूँट पिलाने हैं। बड़थलमें जिस दिन सरकार आपकी भैंसें नीलाम करे, आपकी चीजें नीलाम करे और आपकी सम्पत्ति जब्त करे उस दिनको आप खुशीका दिन समझें। यदि किसी बड़थलवासी-को कैदकी सजा हुई तो कैदखाना पवित्र हो जायेगा। स्त्रियोंको तो उनके पति जिस दिन जेल जायें उस दिन अवश्य ही दावत करनी चाहिए।

जब्तीके नोटिस आये हैं। ये धमकियोंके रूपमें हैं। उनके बावजूद जमीनोंके मालिक तो हम ही हैं। जमीन चाहे जितनी कीमती हो; किन्तु इस कारण हम अपने कर्त्तव्यके

१. देखिए "पत्र: वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको", १-४-१९१८ की पादटिप्पणी-३।

पालनसे तनिक भी झिझकें नहीं। यदि इस लड़ाईमें आपका सर्वस्व चला जायेगा तो इससे आपको किसीको भी भूखों नहीं मरना पड़ेगा। हम भीख माँगेंगे, किन्तु आपकी जरूरत पूरी करेंगे। आप अपनी प्रतिज्ञाकी खातिर दुःख सहें।

यदि मैं भैंसोंका पैसा दूँ तो इससे यही निष्कर्ष निकाला जायेगा कि मैंने और आप सभीने लोगोंको धोखा दिया है। आपको पैसेकी मदद मिले और तब आप सत्याग्रह की लड़ाई लड़ें, यह अनुचित होगा। सरकार जोर-जुल्म करे तो आपके साथ खड़ा हुआ जा सकता है, आपको हिम्मत बँधाई जा सकती है और नैतिक सहायता दी जा सकती है। मुझे आपके भीतर पैठी हुई पस्तहिम्मती निकाल देनी है। मैं भारतके प्राचीन गौरवको वापस ले आना चाहता हूँ।

यदि प्राचीन कालमें सीता हुई थी तो इस कालमें भी होनी चाहिए, ऐसा मेरा विश्वास है। भारतमें एक युगमें रामचन्द्र-जैसे युग-पुरुष हुए हैं; ऐसे पुरुष इस युगमें भी होने चाहिए। हमारे पूर्वजोंकी यह विरासत हममें भी आनी चाहिए। आपने हरिश्चन्द्र और ध्रुवकी कथाएँ सुनी ही हैं। जैसा हरिश्चन्द्रने किया हम बिलकुल वैसा नहीं कर सकते; किन्तु उसका एक अंश तो कर ही सकते हैं। बहिनें भी इस प्रतिज्ञाकी महिमाको समझें। यदि बहिनें अपने टेककी पक्की न हों तो उनके बच्चे भी साहसहीन होंगे। जिस ईश्वरने हमें उत्पन्न किया है वही हमें न्याय देगा। यदि हम इस लड़ाईमें टिके रहेंगे तो भविष्यमें स्वराज्य भी ले सकेंगे। वड़थलके किसानोंकी रक्षा करनेके लिए मुझे एक बार मरना भी पड़े तो मैं प्रसन्नतापूर्वक मरनेके लिए तैयार हूँ।

अब लगानकी वसूलीमें आपकी भैंसें बेची जा रही हैं, इससे मैं अपरिचित नहीं हूँ। भैंसें बेचकर लगान भरनेकी अन्य अनेक घटनायें भी हुई हैं। ऐसा संकट आपके ऊपर हर साल न आये, इसलिए आप इस बार सरकारको अपनी भैंसें बेच लेने दें। सरकार इस बार भले ही ऐसा कर ले; किन्तु आप विश्वास रखिये अगले सालसे वह भैंसें कदापि न बेच सकेगी और दूसरे जुल्म भी न कर सकेगी।

आत्म-सम्मानकी भावना तो पशुओं और पक्षियों तक में होती है, फिर आप तो मनुष्य कहे जाते हैं। इसलिए आप अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेमें न चूकें। प्रतिज्ञा लेनेसे पूर्व आपको सब स्थिति भली-भाँति समझा दी गई थी। यद्यपि हमारी इस लड़ाईमें हमें धनिकोंकी सहायता प्राप्त है; किन्तु उनकी सहायता लेकर लड़ना ऐसा ही है जैसे सूजनसे किसीका मोटा-ताजा दिखाई देना। आप ईश्वरमें श्रद्धा रखें; न्याय और सत्यके पथपर चलते हुए आपकी रक्षा वही करेगा। न्याय अथवा दया उसके सिवा किसी दूसरेसे नहीं मिल सकती।

अब जो लोग आपके साथ काम कर रहे हैं, आप उनकी स्थितिपर विचार करें। चौबीस घंटोंमें एक क्षणके लिए भी मैं खेड़ा-सत्याग्रहकी बात नहीं भुला सकता। डॉ० हरिप्रसाद देसाईने तो खेड़ाको अपना घर ही बना लिया है। अहमदाबादमें उनके पास सार्वजनिक कामकी कमी नहीं है। उस सबको छोड़कर वे यहाँ आकर इस काममें लग गये हैं और आपके साथ रह रहे हैं। आप देखते ही हैं कि श्री वल्लभभाई और श्री केशवप्रसाद अभी महुवासे चले आ रहे हैं।

दो भाई चम्पारनके हैं। वे राजा जनकके देशसे आप लोगोंके दर्शन करनेके लिए आये हैं। मुझे आशा है कि आप इन सब बातोंको भूल नहीं जायेंगे और वदयलकी लाज न खोयेंगे।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२०७. पत्र : एक युवकको

नडियाद

फाल्गुन वदी १० [अप्रैल ६, १९१८]

भाईश्री,

आपके सम्बन्धमें भाई पोलकका तार मिला है और उस सम्बन्धमें उत्तर भी आ गया है। मैंने . . .[१] के साथ काफी देरतक बातचीत की है। उन्होंने आपको सब-कुछ लिखा होगा। आप थोड़ा धैर्य रखें तो अच्छा हो। वे आपको अवश्य मुक्त करेंगे; वे इसका वचन देते हैं। इतना ही पर्याप्त होना चाहिए? अभीसे बात जाहिर करनेमें नुकसान है। ऐसा भाई . . .[२] कहते हैं।

और हाँ, एक बात और है। आपकी तबीयत बिल्कुल ठीक हो जानेकी हम अवश्य उम्मीद रखते हैं। और यदि ऐसा हो तो सब लोगोंकी इच्छा है कि आप विवाह करनेमें आनाकानी न करें। ऐसा कहनेवालोंमें मैं सबसे पहले हूँ। आपके सम्बन्धमें मुझे केवल इतना ही कहना है कि आप और . . .[३] विवाह न करेंगे तो यह केवल स्वास्थ्यके कारण ही होगा, दूसरा कोई कारण नहीं हो सकता। इसमें पिताजीको शान्ति मिलेगी और . . .।[४] का जीवन सुखमय होगा। आप निश्चिन्त होकर अपने स्वास्थ्यको सुधारें। आप यदि तनिक भी अस्वस्थ होंगे तो कोई आपसे [विवाहके लिए] आग्रह नहीं करेगा। मेरी ख्वाहिश यह है कि आप अपने शुभचिन्तकोंकी खातिर प्रसन्नतापूर्वक [विवाहकी] स्वीकृति दें, परन्तु अपने स्वास्थ्यको बिगाड़कर नहीं।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१, २, ३ व ४. मूलमें यहाँ कुछ शब्द छोड दिये गये हैं।

२०८. भाषण : खेड़ामें

अप्रैल ६, १९१८

सत्यके लिए प्राण उत्सर्ग कर देना अच्छा है। लेकिन आर्थिक हानिके भयसे पशुओं-के समान दुःख भोगनेसे अधिक बुरी दूसरी बात कुछ नहीं है। बहनें सत्यकी इस लड़ाईमें अपने पतियोंका साथ दें और इस प्रकार उन्हें अपनी टेक दृढ़तापूर्वक निभानेमें सहायता देकर अपने धर्मका पालन करें।

[गुजरातीसे]

खेड़ासत्याग्रह

२०९. भाषण : उत्तरसंडामें[1]

अप्रैल ६, १९१८

मुझे आशा थी कि इस सभामें बहनें भी आयेंगी। इस कार्यमें जितनी जरूरत पुरुषोंकी है उतनी ही बहनोंकी भी है। यदि हमारी लड़ाईमें बहनें सम्मिलित हो जायें और हमारे कष्टोंमें साथ दें तो हम बहुत-अच्छा काम कर सकते हैं।

मैं देखता हूँ कि लोगोंका उत्साह बढ़ता जाता है। यह लड़ाई लोगोंकी है और यदि वे समझ जायें तो सरकार जबतक चाहे लड़ती रहे, हम हारेंगे नहीं। लोगोंकी हिम्मत देखनेका वक्त तो आखिर अब आया है। हमारा माल-असबाब जब्त किया जाता है और हमारी भैंसें ले जाई जाती हैं। जैसे सोना आगमें तपकर शुद्ध होता है उसी तरह ऐसे कष्टोंसे हमारी कसौटी होती है। इस लड़ाईमें आप हिम्मत, दृढ़ता और धीरता सीखते हैं।

इस कस्बेमें सरकारने यथासम्भव कड़ी कार्रवाई की है। किन्तु हमें संसारको दिखा देना है कि हममें तेज है, कष्ट सहनेकी शक्ति है और हम अपनी प्रतिज्ञासे कभी पीछे पाँव न हटायेंगे। उत्तरसंडा पाटीदारोंसे भरा है और यदि इस लड़ाईमें हमारी जीत होनी है तो वह आपकी जातिके ही बलपर होगी। आपने वैभव देखा है, अच्छे दिन देखे हैं और बुरे दिन भी देखे हैं। मैं चाहता हूँ कि इस लड़ाईमें आप वीरतापूर्वक उत्तीर्ण हों। आपने इस लड़ाईमें भाग लिया है यह आपकी कुलीनताका, आत्मसम्मानकी भावना का सूचक है।

कुछ लोग शायद आपको शस्त्रबल आजमानेकी सलाह दें। किन्तु आपको याद रखना चाहिए कि जो लाठी चलाता है वह लाठीका प्रहार रोक भी सकता है। मैं चाहता

१. गांधीजी उत्तरसंडामें कस्तूरबा, वल्लभभाई पटेल, महादेव देसाई, शंकरलाल बैंकर और अनसूया-बेनके साथ गये थे। सभामें लगभग दो हजार किसान आये थे।

हूँ कि आप अपनी शक्तिका अच्छा और सच्चा उपयोग करें। खेड़ामें एक "सत्याग्रही सेना" का जन्म हो और वह भारतके सम्मानकी रक्षाके लिए सदा लड़नेके लिए तैयार रहे, यह अत्यन्त वांछनीय है। आपके कस्बेसे, जहाँ बहुतसे बलवान और वीर लोग रहते हैं, देशको बहुत-सी आशाएँ रखनेका अधिकार है।

खेड़ा जिलेके लोगोंमें जो अद्भुत शक्ति है उसका मुझे इन दिनों अच्छा अनुभव हो रहा है। यदि इस लड़ाईमें ली गई धर्म-प्रतिज्ञाका पालन सभी भाई करें तो इसमें सन्देह नहीं कि हमें चौबीस घंटेमें स्वराज्य मिल सकता है।

इसलिए आप सबसे मेरी एक ही प्रार्थना है कि सरकार आपके बर्तन-भांड़े बेचे, आपकी चारपाइयाँ बेचे और आपके ढोर-डंगर बेचे तो उसे बेचने दें; परन्तु आप डरें नहीं; डिगें नहीं। आपसे मैं यही वचन-दान चाहता हूँ। मैं इस वचनका भूखा हूँ। आप मुझे यह दान देकर सन्तुष्ट कर सकते हैं। इस प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिए आपको प्रेमभावकी पूँजी लेकर जूझना है। आपकी शक्तिको परखकर ही मैंने आपको सत्याग्रह-की लड़ाईमें उतारा है। आप प्रसन्नतापूर्वक शुद्ध हृदयसे और मुसकराते हुए मुझे यह वचन देकर निर्भय करें।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२१०. भाषण : नवागाँवमें[1]

अप्रैल ७, १९१८

हम लोग यहाँ तोरणासे सीधे चले आ रहे हैं। जैसे नवागाँव और दसकोसी [ताल्लुके] के दूसरे गाँवोंके किसान डटे हुए हैं वैसे ही तोरणाके किसान मजबूतीसे सामना कर रहे हैं। मुझे विश्वास है कि ऐसा भारी हमला होनेपर भी तोरणाका पतन नहीं होगा। आप सत्यकी नींवपर खड़ी की गई इस लड़ाईको चालू रखें। आप अपने कार्यमें बहनोंको भी साथ रखें। उनका साहस और धैर्य हमारे काम आयेगा। बहनें कहें कि भैंसोंका जाना तो बरदाश्त नहीं होता और हम इस नुकसानके डरसे हार जायें तो हमारे लिए खड़े होनेकी जगह न रहेगी। यदि वे हमें हिम्मत देती रहें तो हम इस लड़ाईमें जीत जायेंगे। स्वराज्यकी ओर पहला पग है धर्मपूर्वक ली गई टेकको पूरा करना। इस शक्तिको प्राप्त करनेमें ही स्वराज्य है। अपने अधिकारोंको जानना और उनकी रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। इस लड़ाईका मूल उद्देश्य यह है कि सरकार लोकमतका सम्मान करके हमारे अधिकारोंको स्वीकार करे।

हमें इस लड़ाईमें सामान्य शिष्टताकी मर्यादाओंका उल्लंघन नहीं करना चाहिए। ऐसी शिकायतें आई हैं कि हममें से कुछ लोगोंने अधिकारियोंको तंग किया है। असत्य और

१. गांवोंमें दौरा करते समय गांधीजी यहाँ भी अपनी मण्डलीके साथ गये थे। उनका भाषण सुननेके लिए ३,००० से अधिक किसान आये थे।

अविवेकका आचरण करना एवं उद्धत होकर दूसरोंको तंग करना हमें शोभा नहीं देता। ये तो अनुशासनहीनताके सूचक हैं। इस लड़ाईमें हमें सम्मानपूर्वक और शिष्टतापूर्वक व्यवहार करना सीखना है। सत्याग्रहकी लड़ाईमें सत्य और शिष्टताके गुण स्पष्ट दिखने चाहिए।

इस लड़ाईमें सत्य, साहस और उत्साह आवश्यक है। फिर उत्साहके बिना तो हमारे पैर एक क्षण भी नहीं जम सकते। यदि हम इन गुणोंको शिष्टतासे ढँक दें तो वे छलकेंगे नहीं। हमारी प्रतिज्ञा कुछ महीनोंके लिए नहीं, अनन्त कालके लिए है। जबतक सरकार हमारी माँगें पूरी नहीं कर देती तबतक हमें एक इंच भी पीछे नहीं हटना है, भले ही इसके लिए हमें अपना सर्वस्व गँवा देना पड़े। आपको मुझमें या किसी अन्य व्यक्तिमें नहीं, वल्कि अपने आपमें अविचल श्रद्धा रखनी चाहिए। यह लड़ाई केवल लगान मुलतवी करानेके लिए नहीं लड़ी जा रही है; बल्कि इसके पीछे जो टेक है उसे पूरा करनेके लिए लड़ी जा रही है। इस लड़ाईका उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि किसकी बात ठीक है — हमारी या सरकारकी। सरकार तबतक नहीं टिक सकती जबतक जनता उसका साथ नहीं देती। अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेसे आपको जितना सन्तोष मिलेगा उतना अपनी जमीनसे कभी नहीं मिलेगा। भाट और चारण आपके पौरुषके गीत गायेंगे। उन्हें सुनकर आपकी सन्तानमें भी वीरताका संचार होगा। आप अपनी सन्तानको प्रतिज्ञा-पालनके लिए धर्मबुद्धिकी विरासत दे जायेंगे; और वह अमूल्य होगी। आपने जो प्रतिज्ञा ली है उसका पालन करनेके लिए आप वीरोंकी भाँति जूझें। भारतको स्वराज्य दिलानेका सच्चा मूलमन्त्र इसीमें निहित है।

सत्यकी खातिर कष्ट-सहन करके आप अपना नाम अमर कर जायें, यही आपका सच्चा धर्म है। इसीमें आपकी और समस्त देशकी प्रतिष्ठा है।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२११. पत्र : एस्थर फैरिंगको

ट्रेनसे

अप्रैल ८, १९१८

प्रिय एस्थर,

लगता है कि तुम्हारे साथ पत्र-व्यवहार करनेमें मैं बहुत निर्दय और लापरवाह बन गया हूँ। तुम्हें एक-आध पंक्ति लिख दूँ, इससे मुझे सन्तोष नहीं होगा। मेरी इच्छा तो तुम्हें एक लम्बा स्नेह-पत्र लिखनेकी थी; किन्तु ऐसा पत्र लिखने लायक शान्ति मुझे नहीं मिल पाई और अब ज्यादा विलम्ब करनेकी मेरी हिम्मत नहीं।

मैं नहीं जानता कि अपनी गतिविधियोंका, जिनमें से एक भी मैंने खुद मोल नहीं ली, क्या वर्णन करूँ। वे मेरे सिरपर ऐसी एकाएक आ पड़ी हैं कि उन्हें टाला नहीं जा सकता। सब तरफसे घिरा हुआ सिपाही कर ही क्या सकता है? क्या एक

ही हमलेका सामना करनेमें अपनी सारी शक्ति लगा दे; किन्तु जब उसके साथ ही दूसरे हमले हो रहे हों, तो यह कैसे हो सकता है कि वह उनकी उपेक्षा करके अपने विनाशको निमन्त्रण दे? यह तो स्पष्ट है कि सुरक्षा यथाशक्ति सभी हमलोंका सामना करनेमें ही है। मेरी स्थिति लगभग ऐसी ही है। चारों तरफसे आफतमें पड़े हुए लोग मुझे पुकार रहे हैं। जब मैं उपाय जानता हूँ, तब मदद देनेसे कैसे इनकार कर सकता हूँ?

अहमदावादकी हड़तालसे मुझे जीवनके कीमतीसे-कीमती सबक मिले। तालेबन्दीके दिनों प्रेमकी शक्तिका जो चमत्कारक प्रदर्शन हुआ, वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। ज्यों ही मैंने उपवास की घोषणा की, त्यों ही मेरे सामने बैठे हुए विशाल जन-समुदाय-को ईश्वरके अस्तित्वका भान हुआ। तुम्हारा तार सबसे अधिक भावनापूर्ण और सबसे अधिक सच्चा था। ये चार दिन मेरे लिए शान्ति, ईश्वरीय कृपा और आध्यात्मिक उन्नतिके थे। इन दिनों खानेकी मुझे जरा भी इच्छा नहीं हुई।

मैंने अखबारोंको[1] जो पत्र भेजा है, उससे तुम खेड़ाका प्रकरण तो समझ ही गई होगी। अपने उपवासके बारेमें भी मैंने एक पत्र लिखा[2] था। ये पत्र तुमने न देखे हों, तो मुझे बताना।

तुम्हारी तबीयत अच्छी होगी। जिगरकी शिकायतोंमें उपवाससे बढ़कर कोई दवा नहीं है।

मुझे अहमदाबादके, बल्कि साबरमतीके पतेसे लिखना।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

२१२. पत्र: दुर्गा देसाईको

[बोरसद]
अप्रैल ८, १९१८

चि. दुर्गा,[3]

तुम मुझे भूल गई हो, तो भले ही भूल जाओ, मैं तो तुम्हें नहीं भूला। आनन्दी-बहनने[4] तुम्हारे समाचार दे दिये हैं। मेरा खयाल था, तुम भाई महादेवसे इससे भी अधिक अरसे तक जुदा रही हो। मैंने उनसे कह दिया है कि वे वहाँ जब चाहें तब जा सकते

१. देखिए "वक्तव्य: खेड़ाकी परिस्थितिके बारेमें अखबारोंको", २८-३-१९१८।
२. देखिए "पत्र: अखबारोंको", २७-३-१९१८।
३. महादेव देसाईकी पत्नी, जिन्होंने १ फरवरीसे भीतीहरवा-चम्पारनकी शालामें पढ़ाना शुरू किया। उन्होंने छः मासके लिए काम करना स्वीकार किया था।
४. चम्पारनमें काम करनेवाली एक अध्यापिका।

हैं। किन्तु यदि तुम चाहो तो मैं उन्हें वहाँ तुरन्त भेजनेके लिए तैयार हूँ। अलबत्ता भाई महादेवको यहाँ जबरदस्त अनुभव मिल रहे हैं। उनका लाभ तुम्हें भी मिलेगा। तुम इससे सन्तोष करके वियोगके दुःखका शमन कर सको, तो भाई महादेव यहाँ रुके रहें। मगर उसमें एक खतरा यह है कि अगर मैं इससे भी बड़ी लड़ाईमें जुट जाऊँ, तो फिर तुम चाहो, तो भी वे वहाँ नहीं आ सकेंगे। इसलिए उनके लिए तुमसे मिल आनेका ठीक समय यही होगा। यदि तुम वहाँ ऊब गई हो, तो यहाँ आ सकती हो। किन्तु तुम नड़ियाद में रह सकोगी, इसमें मुझे कुछ शक है। जो-कुछ तुम्हें वहाँ मिल रहा है, वह यहाँ हर्गिज नहीं मिलेगा। फिर भी जिसमें तुम प्रसन्न रहो, मैं वही करना चाहता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

२१३. पत्र : हरिभाई देसाईको[1]

[बोरसद]
अप्रैल ८, १९१९

आदरणीय भाई,

आपको पत्र लिखनेका विचार बहुत दिनसे कर रहा था; किन्तु अवकाश ही नहीं मिलता था; बात कुछ ध्यानसे भी उतर गयी थी। आशा है, आप मुझे इसके लिए क्षमा करेंगे।

मैं यह कहनेकी इजाजत चाहता हूँ कि भाई महादेवको मुझे सौंपनेमें आपने भूल नहीं की है। उनके जीवनके विकासके लिए यह अनुभव जरूरी था। पैसा ही हमेशा सब सुख नहीं देता। भाई महादेवकी ऐसी प्रकृति नहीं है कि उन्हें पैसा सुख दे सके। मुझे लगता है कि जैसी वृत्ति भाई महादेवकी है, वैसी ही चि० दुर्गाकी भी हो जायेगी। उसे अमूल्य अनुभव मिल रहे हैं।

मुझे तो दोनोंके मिलनेसे लाभ ही हुआ है। भाई महादेवने मुझे बहुत-सी झंझटोंसे मुक्त कर दिया है। मैं उनके जैसे चरित्रवान्, विद्वान् और प्रेमी सहायककी खोज कर रहा था। भाई महादेवने मेरी खोज सफल कर दी है। मुझे सपनेमें भी खयाल न था कि चि० दुर्गाका इतना अधिक सदुपयोग कर सकूँगा। ईश्वरकी गति न्यारी है।

मैं चाहता हूँ और आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस दम्पतीकी चिन्ता न करें और उसे पूर्ण आशीर्वाद दें।

आपका,
मोहनदास गांधी

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. महादेव देसाईके पिता।

२१४. सन्देश: राष्ट्रीय शिक्षाके सम्बन्धमें[1]

अप्रैल ८, १९१८

यदि जनताको समझाया जा सके कि सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा क्या है, और उसके प्रति रुचि जाग्रत की जा सके, तो सरकारी स्कूलोंमें कोई झाँकेगा भी नहीं और जबतक सरकारी संस्थाओंमें दी जानेवाली शिक्षाका ढंग बुनियादी तौरपर बदलकर, उसमें राष्ट्रीय आदर्शोंका समावेश नहीं किया जाता तबतक लोग उसे नहीं अपनायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन रिव्यू, अप्रैल १९१८

२१५. भाषण: बोरसदमें[2]

अप्रैल ८, १९१८

श्री गांधीने कहा कि सरकार लोगोंको डरा-धमका कर नहीं, उनकी मरजीसे ही लगान (राजस्व) ले सकती है। उन्होंने बहुत स्पष्ट कहा कि ब्रिटिश शासनमें अंधेर नहीं हो सकता।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ११-४-१९१८

२१६. पत्र: एन० एम० जोशीको[3]

[नड़ियाद]
अप्रैल ९, १९१८

प्रिय मित्र,

मैंने अभी-अभी सुना कि आप मित्रोंसे यह कहते हैं कि फसलके अनुमान सम्बन्धी आपकी जाँच और मेरी जाँचका परिणाम एक ही है, मेरे इस कथनका विरोध आपने मेरे लिहाजके कारण नहीं किया। साथ ही आपका यह खयाल है कि मैंने लोगोंको नाहक

१. राष्ट्रीय शिक्षा-सप्ताहके उद्घाटनके अवसरपर गोखले हॉल, मद्रासमें एनी बेसेंट द्वारा पढ़कर सुनाया गया संदेश।

२. गांधीजी अपने दलके साथ गाँव पहुँचे थे। उन्होंने लगभग ४,००० किसानोंकी एक सभामें भाषण दिया था।

३. नारायण मल्हार जोशी; भारतमें मजदूर आन्दोलनका सूत्रपात करनेवाले; भारत सेवक समाजके प्रमुख कार्यकर्ता।

दुःखमें डाल रखा है। मैंने जो-कुछ सुना है, वह अगर सच हो, तो मुझे बड़ा दुःख है। जो सही मालूम हो, उसे कहनेका आपको पूरा हक है और एक मित्रके प्रति आपका यह फर्ज भी है और मैं अपने-आपको आपका मित्र मानता हूँ। सार्वजनिक जीवनमें तो ऐसे सैकड़ों मौके आ सकते हैं, जब मित्रोंमें मतभेद अनिवार्य हो जाता है, फिर भी वे मित्र ही बने रहते हैं। इसलिए कृपया मुझे बताइये कि वहाँ समितिके सामने आप क्या कहते हैं; और यह भी कि मेरे सारे कार्यके बारेमें आपकी क्या राय है? मैं जानता हूँ कि यदि आपकी राय प्रतिकूल हो [और] मैं उससे सहमत न होऊँ, तो भी आप कोई खयाल नहीं करेंगे। इतना विश्वास रखिए ही कि आपकी रायको मैं उचित महत्त्व दूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२१७. सन्देश : हिन्दी कक्षाको[1]

[नडियाद]
अप्रैल १०, १९१८

मैं कामना करता हूँ आपके प्रयासको पूर्ण सफलता प्राप्त हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अन्य कई क्षेत्रोंकी तरह, हिन्दीको एक सामान्य माध्यम बनाने और इस प्रकार अंग्रेजीके प्रयोगमें लगनेवाली मानसिक शक्तिकी हानिसे देशको बचानेके क्षेत्रमें भी दक्षिण ही हमारी रहनुमाई करेगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९१८ तथा महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. यह सन्देश डॉ० नायकके एक तारके उत्तरमें भेजा गया था। तार इस प्रकार था : "आपके आशीर्वादसे हिन्दी कक्षा ११ तारीखको माननीय कामतकी अध्यक्षतामें एक सार्वजनिक सभामें शुरू हो रही है। 'हिन्दी शिक्षण प्रसारक मण्डल' का उद्घाटन दूसरे दिन न्यू पूना कॉलेज, पूनाकी इमारतमें माननीय बी० एस० कामतकी अध्यक्षतामें आयोजित एक समारोहमें किया गया था।

२१८. पत्र : जे० एल० मैफीको[1]

नड़ियाद
अप्रैल १०, १९१८

[प्रिय श्री मैफी,]

आपने अली भाइयोंके सम्बन्धमें उत्तर देनेका वचन दिया था। मैं रोज-रोज उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

आपको शायद मालूम होगा कि खेड़ाकी फसलोंके सिलसिलेमें स्थानीय अधिकारियोंके साथ स्थानीय तौरपर मेरा झगड़ा चल रहा है। मुझे आशा है कि जनताकी आवाजको उचित महत्त्व दिया जायेगा और उसकी रायकी कद्र की जायेगी।

लेकिन मुझे परेशानी तो असलमें अली भाइयोंके मामलेको लेकर हो रही है। लगता है कि मैं जब भी साम्राज्यके एक सम्माननीय नागरिककी हैसियतसे युद्धमें हाथ बँटानेकी कोशिश करता हूँ, तभी देशके प्रशासकोंको चिन्ता होने लगती है। ज्यादा अच्छा होता कि मैं मेसोपोटैमिया या फ्रांसमें होता। मैं अपनी सेवाएँ देनेके लिए दो बार लिख चुका हूँ। पर उनको स्वीकार नहीं किया गया। मुझे इससे बड़ी शर्म लगती है कि मैं भारत आनेके बादके कालमें युद्धके कामका, आमतौर पर जिसे युद्धका काम कहा जाता है, अपना कोई अनुभव पेश नहीं कर सकता।

बल्कि ऐसा लगता है मानो इसके ठीक विपरीत मैंने सरकारके लिए असुविधाजनक परिस्थितियाँ पैदा की हैं और फलस्वरूप हो सकता है, मुझे किसी ऐसे आन्दोलनमें भाग लेना पड़े जो फैलनेपर सरकारकी गम्भीर चिन्ताका कारण बन जाये। मैं लॉर्ड चैम्सफोर्डका बहुत अधिक आदर करता हूँ और उनकी चिन्ता और बढ़ानेकी बात नहीं सोच सकता, फिर भी मैं अली भाइयोंके सिलसिलेमें अपने स्पष्ट कर्त्तव्यसे भी मुँह नहीं मोड़ सकता। उनकी नजरबन्दीसे मुसलमानोंमें कटुता पैदा हो गई है। मैं एक हिन्दूके नाते महसूस करता हूँ कि मैं अपने-आपको उनसे अलग नहीं रख सकता। यदि मैं सरकार द्वारा उनके विरुद्ध की गई कार्रवाईको जनताके सामने औचित्यपूर्ण नहीं ठहरा सकता, तो मुझे उनकी रिहाई करानेमें मदद करनी ही चाहिए। इसलिए यदि सरकारके पास उन भाइयोंके खिलाफ वास्तवमें कोई सबूत है तो उसे पेश करके वातावरण शान्त किया जाना चाहिए। परन्तु यदि सरकारके पास पेश करने लायक कोई सबूत नहीं है तो मैं आग्रह करता हूँ कि अली भाइयोंको रिहा कर दिया जाये।

यदि लॉर्ड चैम्सफोर्डकी राय इसके विपरीत हो, तो सरकारको एक आन्दोलनका सामना करना और फलस्वरूप उसके नेताओंको जेलमें बन्द करना पड़ेगा। परन्तु मैं अपनी पूरी शक्तिके साथ अनुरोध करता हूँ कि उनको रिहा किया जाये। लोकमतका सम्मान

१. यह वास्तवमें १४ अप्रैलको एक अलग टिप्पणीके साथ भेजा गया था। देखिए "पत्र : जे० एल० मैफीको", १४-४-१९१८।

करनेसे सरकारकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी ही और जहाँतक राज्यके लिए खतरा उत्पन्न होनेकी बात है, यदि उनकी रिहाईका मतलब कोई विश्वासघात सिद्ध हुआ तो राज्यकी रक्षाके लिए मैं अपना जीवनतक होम करनेके लिए तैयार रहूँगा।

[हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया : होम : पॉलिटिकल — ए : जून १९१८, संख्या ३५९।

२१९. पत्र : हनुमन्तरावको

[नडियाद]
अप्रैल १०, १९१८

प्रिय भाई हनुमन्तराव,

हिन्दीके मामलेमें अगर श्री शास्त्रियर मेरे विचारसे सहमत हों, तो मैं चाहूँगा कि मेरी अपीलके[1] जवाबमें तुम अपना नाम हिन्दीके विद्यार्थीके रूपमें दे दो और मेरी तरफसे दो और तेलगु भाइयोंको भी तुम्हीं चुन लो। मुझे तीन तमिल भाई तो मिल गये हैं।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२२०. पत्र : एच० एस० एल० पोलकको

[नडियाद]
अप्रैल १०, १९१८

प्रिय हेनरी,

मैं तुम्हें नियमित रूपसे नहीं लिख सका। मेरे पास लिखनेका समय भी नहीं और शक्ति भी नहीं। मैं इस समय इतने नये-नये रचनात्मक काम हाथमें ले रहा हूँ कि दिन पूरा होनेपर थककर चूर हो जाता हूँ और दूसरा कुछ भी काम करनेकी शक्ति नहीं रह जाती। लिखना, भाषण देना और बातें करना भी मेरे लिए कष्टदायक है। मैं केवल चिन्तन करना चाहता हूँ। सत्याग्रह संघर्षका क्रम, शुरूसे अन्ततक एक

१. देखिए "पत्र: अखबारोंको", ३१-३-१९१८।

अत्यन्त कष्टसाध्य प्रयास रहता है जिसकी पीड़ा जैसे-तैसे ही सहन कर पाता हूँ। मेरे खयालसे प्रसूतिकी पीड़ा कुछ ऐसी ही होती होगी।

मैं भाई देसाईसे कह रहा हूँ कि तुम्हें ब्यौरेवार पत्र लिख दें।

[हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

२२१. पत्र: हरिहर शर्माको[1]

[नडियाद]
अप्रैल १०, १९१८

भाईश्री अन्ना,

तुम्हारे पत्रको पाकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ। यह जानकर बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ कि मैं तुम्हारे चित्तसे कभी दूर नहीं होता। तुम, गोमतीबेन और तुम्हारी पसन्दका कोई तीसरा व्यक्ति — बस और क्या चाहिए? शेष बातोंके बारेमें महादेव तुम्हें लिखेंगे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

२२२. भाषण: अकलाचामें

अप्रैल १०, १९१८

यहाँ कुछ लड़कोंके पास झंडे हैं। मैं देखता हूँ कि इनमें एक झंडा वह भी है जिसे अहमदाबादमें मिल-मजदूरोंने फहराया था और जिसमें "एक टेक" शब्द लिखे हैं। इस झंडेको फहरानेका अधिकार तो उन्हींको है जिनके हृदयोंमें "एक टेक" शब्द अंकित हो गये हैं।

इस समय खेड़ा जिले पर समस्त भारतकी दृष्टि जमी हुई है। यदि इस लड़ाईमें खेड़ा जिला हार गया तो यह समझना चाहिए कि भारतके लोग फिर बहुत समयतक उठ न सकेंगे। कार्य आरम्भ करनेसे पूर्व विचार करनेमें बुद्धिमानी है। किन्तु यदि बादमें

१. गंगानाथ विद्यालय, बड़ौदाके अध्यापक। वे १९१५ से आश्रममें रहने लगे थे।

उसे छोड़ दें तो कायरोंकी उपाधि मिलेगी। जिस देशके लोग कायर हो जाते हैं वह देश निष्प्राण हो जाता है। खेड़ामें जो लड़ाई चल रही है वह लगान मुलतवी करानेके लिए आरम्भ की गई है; किन्तु उसका मर्म बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। सरकार जो-कुछ कहे वह सत्य है और लोग जो-कुछ कहें वह असत्य है, यह सिद्धान्त कैसे सहन किया जा सकता है? सरकार कहती है कि सत्ताका सम्मान किया ही जाना चाहिए। सत्ता अंधी है, अन्यायी है। जो सरकार उस सत्ताका सम्मान करनेकी बात कहती है वह टिक नहीं सकती। हमें बचपनसे ही बताया गया है कि अंग्रेजोंका राज्य न्यायका राज्य है। न्याय उसका आदर्श है। मुझे लगता है कि इस आदर्शके स्थानपर अब मनमानी चल रही है। इसलिए मैं कहता हूँ कि हमें इस सरकारके विरुद्ध विद्रोह करना चाहिए। मैं खेड़ा जिलेमें आया, और जब मैंने फसलके सम्बन्धमें जाँच की तब आप लोगोंने मेरे और मेरे साथियोंके सम्मुख यह सिद्ध कर दिया कि खेड़ा जिलेमें फसल चार आनेसे कम हुई है। यदि यह बात सच है तो हमारी माँग पूरी करना सरकारका कर्त्तव्य है। और हमारी माँग भी क्या है? केवल यही कि एक सालके लिए लगान मुलतवी कर दिया जाये। और यह कि यदि सरकार लगान मुलतवी करनेकी घोषणा कर देगी तो हममें से जो लोग अधिक साधन सम्पन्न हैं, वे अपना लगान देनेके लिए तैयार हैं।

हमारी ऐसी उचित माँगको भी सरकार स्वीकार न करे तो फिर लोगोंका कर्त्तव्य क्या है? शास्त्रोंमें कहा गया है कि राजा भूल करे तो लोग उसे बतायें। सत्ता अंधी होती है और उसे आसानीसे अपनी भूल नहीं दिखाई देती। इस मामलेमें सरकार असत्य आचरण और लोगोंके प्रति अन्याय कर रही है, जब कि हम लोग सच्ची बात कह रहे हैं और न्याय माँग रहे हैं। सत्यकी सदा जीत ही होती है। आपको यह विश्वास हो जाना चाहिए कि यदि सत्यकी खातिर दृढ़तापूर्वक अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते रहेंगे तो ऐसी कोई सरकार नहीं है जो प्रजाको नाहक बरबाद कर दे।[1] मैं सुनता हूँ लोग कहते हैं कि वे दुःखमें डूबे हुए हैं। किन्तु यदि हम ज्ञानपूर्वक कष्ट सहें तो हमारा उद्धार ही हो जाये, मैं यहाँ यही कहनेके लिए आया हूँ। मैंने खेड़ा जिलेके लोगोंपर विश्वास किया है। कुछ लोगोंने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी है। उस हदतक हमारा दायित्व बढ़ गया है। यात्रामें दो-तीन गाड़ियाँ होती हैं। यदि उनमें से एकाध गाड़ी टूट जाये तो बाकी गाड़ियोंको अधिक भार ढोना पड़ता है। मेरी इच्छा है कि आप इस लड़ाईसे खेड़ाकी कीर्ति उज्ज्वल करें। इस इच्छाको पूरा करना आपके हाथोंमें है। कमिश्नर साहबने लोगोंको परसों नडियादमें बुलाया है। जिन्होंने सरकारी लगान दे दिया है यह बुलावा उनके लिए नहीं; किन्तु जिन्होंने लगान नहीं दिया है विशेष रूपसे उनके लिए है। वे उनसे बातें करना चाहते हैं। इसलिए जिन्होंने लगान न दिया हो उन्हें वहाँ अवश्य जाना चाहिए। और आपने जो प्रतिज्ञा ली है उसके सम्बन्धमें आपको जो-कुछ कहना हो वह निर्भय होकर कहें। कमिश्नर साहब कहेंगे कि गांधी आपको गुमराह कर रहा है और उसने आपको अच्छी

१. १८-४-१९१८ को प्रकाशित बॉम्बे क्रॉनिकलकी रिपोर्टमें ये शब्द अधिक हैं: "इससे हम संसारकी दृष्टिमें ऊँचे उठ जायेंगे। हमारे मनमें उसके प्रति कोई दुर्भाव नहीं है, प्रत्युत बहुत अधिक सद्भाव है।"

सलाह नहीं दी है। कदाचित् वे यह भी कहेंगे कि वह आदमी तो अच्छा है; किन्तु इस मामलेमें उसने भूल की है। किन्तु मैंने आपसे ही आँकड़े इकट्ठे किये हैं, और उनसे सिद्ध होता है कि फसल चार आने आई है। यह अन्दाज ठीक था इसलिए आपको श्री प्रैटके सम्मुख उसके पक्षमें अपनी गवाही देनी चाहिए। किसीको भी उनसे डरना नहीं चाहिए। हमारा उद्धार सत्यपर आरूढ़ रहनेमें है। हम स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए लड़ रहे हैं।[1] मैं बहनोंसे कहता हूँ कि "आप भी अपने पतियोंसे कहें कि उनपर चाहे जितना कष्ट आये, परन्तु वे सरकारको लगान न दें।" यदि हम अपनी प्रतिज्ञापर कायम रहेंगे और अपनी टेकका पालन करेंगे तो स्वतन्त्रता हमारे पीछे-पीछे अवश्य चली आयेगी। इसलिए आप अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिए जितने उपाय कर सकें, अवश्य करें। जिन लोगोंने लगान दे दिया है उनको मेरी सलाह है कि वे लगान न देनेवाले लोगोंको अपनी बातपर टिके रहनेमें मदद दें।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२२३. भाषण: सींहुजमें

अप्रैल १०, १९१८

आज मुझे आपसे जो बातें कहनी हैं उनको आरम्भ करनेसे पहले मैं पूछता हूँ कि आपमें से कितने भाइयोंने सरकारी लगान नहीं दिया है।[2] यहाँ आकर मैंने सुना कि इस लड़ाईमें सरकारकी सख्तीसे बहनें डर गई हैं और इस कारण पिछले तीन-चार दिनमें बहुतसे लोगोंने अपना लगान दे दिया है। आपमें से जिन लोगोंने भयके कारण लगान अदा कर दिया है उनके लिए मुझे खेद है और जिन्होंने प्रतिज्ञा लेनेपर भी लगान अदा किया है उनके लिए तो और भी अधिक खेद है। प्रतिज्ञा न करना बुद्धिमानी है; किन्तु एकबार प्रतिज्ञा ले ली जाये तो उसका पालन अवश्य किया जाना चाहिए। कुछ लोग कहेंगे कि यह लड़ाई एक वर्षके लिए लगान मुलतवी करानेके उद्देश्यसे लड़ी जा रही है। हाँ, यह बात सच है; किन्तु वस्तुतः इसके पीछे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुद्दा है, और हम उसीके लिए लड़ रहे हैं। हमें बिलकुल निर्भय होना चाहिए। भय, हम पुरुष हों या स्त्री, हमें शोभा नहीं देता। भय तो पशु करते हैं। परसों मैंने यह उदाहरण दिया था कि जब सड़कपर कोई मोटर निकलती है तो [गाड़ीमें जुता] बैल उसे देखकर डर जाता है। उसकी भयभीत आँखोंको देखकर मुझे दया आती है। मोटर पास आते देखकर वह थर-थर काँप उठता है और कई बार तो गाड़ी उलट जानेका भय होता है। बैलका भय अकारण है। हमारी दशा भी बैल ही जैसी है। मनुष्यके लिए यह उपमा

१. बॉम्बे क्रॉनिकलमें प्रकाशित रिपोर्टके अनुसार गांधीजीने यहाँ यह भी कहा: "स्वतन्त्रता, निर्भयता और सत्य ऐसे गुण हैं जो हमें अभी प्राप्त करने हैं। वे हमारी आत्मामें प्रसुप्त हैं। यदि हम उन्हें अपने भीतर जाग्रत नहीं कर सकते तो हम मनुष्य नहीं, पशु हैं। हमें मनुष्य बनना है।"

२. सभामें मौजूद बहुतसे लोगोंने हाथ उठाये।

बहुत कठोर है; किन्तु है बिलकुल वास्तविक। हम अकारण भय क्यों करें? तलाटी या अन्य अधिकारी किसीको मारते नहीं हैं; मार भी नहीं सकते। चौकीदार भी पूछकर चले जाते हैं। उन्हें तो यह सोचकर डर लगता है कि अब जनताका जमाना आ गया है। एक ओर तो ये लोग डरते हैं और दूसरी ओर हम लोग डरते हैं। इसका कारण क्या है? यदि सरकार हमारे पशुओंको ले जाये, तो ले जाये। यदि वह हमारे जेवर ले तो उसे दे दें, किन्तु हमें एक चीज नहीं देनी है और वह है आत्म-सम्मान। जो व्यक्ति आत्म-सम्मानकी रक्षा नहीं कर सकता, कहना चाहिए कि उसकी आस्था धर्ममें नहीं है। जिसे ईश्वरका भय है उसे किसी अन्यका भय नहीं होता। जिस ईश्वरकी कल्पना हमने सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञके रूपमें की है वह समस्त संसारका रक्षण और कल्याण करता है। सत्य और धर्मकी इस लड़ाईमें जो इतने सारे लोग प्रतिज्ञा ले चुके हैं उन्हें धोखा देकर आप कैसे गिर जायेंगे? यह कैसे सम्भव है? जो भाई डर गये हैं उनमें साहस और देशप्रेम हो तो वे खड़े होकर कहें कि जो भाई अपनी प्रतिज्ञापर जमे हैं उन्हें हम आश्वासन देते हैं। उनके खेत या उनके पशु चले जायेंगे तो हम उन्हें हिस्सा देंगे। कुछ बहनोंने कहा है कि यदि मैं दो दिन पहले आया होता तो वे लोग लगानका पैसा न देते। मैं इन बहनोंसे यह कहूँगा, आप अपने पतियोंसे सत्यकी टेक रखनेके निमित्त यह कहें कि वे अपनी सम्पत्तिका उपयोग अपने समाजके हितार्थ करें। मैंने परसों वासद और बोरसदमें कहा था कि जो व्यक्ति स्वयं गिर गया है उसका मन कहता है कि दूसरोंको भी गिरायें और वह अपनी दुर्बलता स्वीकार करनेके बजाय इसको ढकनेमें लग जाता है। यदि किसीके मनमें ऐसी बात हो तो वह उसे निकाल दे और प्रतिज्ञा लेनेवाले सत्याग्रहियोंको हिम्मत बँधाये। यह हमारा धर्म है। यदि आप मात्र इतना कर्त्तव्य निभायेंगे तो प्रतिज्ञा लेनेवाले लोग अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़तापूर्वक कायम रहेंगे। हमें देशको इस प्रकार गढ़कर तैयार करना है। हमें सत्य और न्यायको भूली हुई सरकारको सच्चा मार्ग दिखाना है। यही इस लड़ाईका उद्देश्य है। दस रुपये लगानकी वसूलीके लिए दस हजार रुपयेकी जमीन जब्त कर लेना सरासर अन्याय ही है। यदि सरकार ऐसा घोर अन्याय करके ऐसा अनिष्टकारी कदम उठायेगी तो मैं स्वयं इस सरकारके विरुद्ध विद्रोह करूँगा और आपको भी विद्रोह करनेकी सलाह दूँगा। यदि सरकार दस-पाँच रुपयेके लिए ऐसा करे तो यह मेरी समझमें नहीं आता। आजकल सरकार धमकियोंसे शासन चलाती है, भयसे राज्य चलता है। यह खयाल गलत है। हमें इस भयसे पस्त नहीं होना चाहिए। हमें प्रकृतिकी न्यायवृत्तिपर विश्वास है, इसलिए आप निश्चिन्त रहें। यदि सरकार भैंसे कुर्क कर ले तो भी आप उसका विरोध न करें। इसी प्रकार आप अपने हाथसे उसे कुछ दें भी नहीं। हम आजतक उसे लगान देते आये हैं, उससे डरते आये हैं और अपने मन-ही-मन कुढ़ते आये हैं। फलस्वरूप हम पतित हो गये हैं। खेड़ामें सोनेकी फसल होती है और उसमें वीर लोग बसते हैं। संवत् १९५६के अकालके[1] बावजूद उन्होंने अपनी जमीनको दिन-रात मेहनत करके हरा-भरा बना दिया

१. सन् १९०० के लगभग देशव्यापी अकाल पड़ा था, जिसे लोग छप्पनके अकालके नामसे अभी तक याद करते हैं।

है। ऐसे लोगोंकी जमीनोंमें से और चेहरोंसे चमक कैसे चली गई? इसका कारण यही है कि लोग सरकारसे डरने लगे हैं। यह लड़ाई लोगोंको इस भयसे मुक्त करनेके लिए ही है। खेड़ा जिलेमें यह सत्याग्रहकी लड़ाई सफल होगी तो उसका प्रभाव भारतमें अन्यत्र पड़ेगा। हमारा उद्धार हमारे अपने हाथमें ही है। हम अपने कष्टोंका निवारण अपने पुरुषार्थसे ही कर सकेंगे।

इस लड़ाईमें हम एक अन्य महान् मन्त्र सीखेंगे और वह यह है कि हमें हथियार-से नहीं लड़ना है, बन्दूक या भाला नहीं उठाना है; बल्कि सत्यसे लड़ना है। जिसके पास सत्य-रूपी हथियार है उसे किसी दूसरे हथियारकी जरूरत नहीं है। यदि हम भय त्यागकर सत्यसे लड़ेंगे तो हमें महान् सिद्धि मिलेगी।

मैं सुनता हूँ कि सरकारके विरुद्ध लड़ी जानेवाली सत्याग्रहकी इस लड़ाईमें कुछ असत्य चलता है। किसानोंसे हाकिम पूछता है कि आप लगानका पैसा क्यों नहीं देते तो वे फसल चार आनेसे कम है, यह कहनेके बजाय भयके कारण दूसरे ही बहाने बनाते हैं। तहसीलदार या कलक्टर आते हैं तो उनके सामने हमें अशिष्टता न दिखानी चाहिए। वे अधिकारपूर्वक कोई चीज बेगारमें माँगें तो हम उन्हें न दें। वे हमें कोई चीज देनेका हुक्म दे ही नहीं सकते। किन्तु हमें उनका आदर-सत्कार करना तो न भूलना चाहिए। हम उन्हें कोई जरूरी चीज मुफ्त न दें किन्तु पूरा दाम लेकर दे दें। हमें विनयका त्याग न करना चाहिए। कल मुझे एक शिकायत यह मिली थी कि लोग दाम देनेपर भी चीजें नहीं देते? सत्याग्रहकी लड़ाईमें ऐसा कैसे किया जा सकता है? इससे मुझे दुःख हुआ। जो जुल्मसे अपना बचाव करना चाहता है वह दूसरेपर जुल्म कैसे कर सकता है? तीसरी बात। कमिश्नर परसों तीन बजे नडियादमें तहसीलदारकी कचहरीमें आपसे कुछ कहना चाहते हैं। मेरी सलाह है कि आप सब वहाँ जायें। वे आपसे यह भी कहेंगे कि मैं आपको गलत रास्तेपर ले जा रहा हूँ। मैं आपको गलत रास्तेपर ले जा रहा हूँ या सही रास्तेपर, इसका निर्णय मैं नहीं कर सकता; मैं तो आपको मुझे जो सच लगता है वही कहता हूँ। यदि आपको यह सत्य लगता हो तो आप एक स्वरसे कहें कि गांधीकी सलाह माननेसे हमारी प्रतिष्ठा बढ़ती है। और हम अपने अधिकारोंकी रक्षा कर सके हैं। ऐसा कहनेसे श्री प्रैट नाराज न होंगे। वे समझते हैं कि लोगोंको कष्ट हो तो उन्हें शिकायत करनेका अधिकार है। कष्ट सहकर कष्टोंसे मुक्त होनेका नाम सत्याग्रह है। आप सब निर्भय होकर कमिश्नरसे यह कहें: "हमें अपनी जमीनें, अपने ढोर-डंगर, या अपने गहने अपनी प्रतिज्ञा, प्रतिष्ठा या अपने धर्मसे अधिक प्यारे नहीं हैं। हमने आपसे प्रार्थना की और बार-बार कहा कि फसल चार आनेसे कम हुई है। सरकारी कानून कहता है कि फसल चार आनेसे कम हो तो लगान मुलतवी कर दिया जाना चाहिए। आपने तलाटीकी बात मानी, और हमारी नहीं मानी। अब इस बातको मनवानेका हमारे पास एक ही मार्ग है और वह यह है कि हम अपने हाथसे लगान न दें।" आप सभी सभामें जायें, कमिश्नर जो कुछ कहें उसे ध्यानसे सुनें और यदि वे बोलनेकी अनुमति दें तो बोलें। उसके बाद आप हिन्दू अनाथाश्रममें आ जायें। वहाँ हम विचार करेंगे। कोई भी मनुष्य डरे, यह सरकारकी इच्छा नहीं है। अब हमने स्वराज्यका झंडा फहरा दिया है। हमें स्वराज्य अपने हाथोंसे लेना है।

यदि हम केवल निर्भय बनेंगे तो हमें स्वराज्य अवश्य मिलेगा। कुछ भी हो जाये, आप सरकारी लगान न दें। बहनें अपने पतियोंको हिम्मत बँधायें।[1] किसीको कुछ पूछना हो तो वह भले ही पूछे और अपनी शंकाका समाधान करा ले। यह मामला ऐसा है कि सभीको समझकर और सचेत होकर चलना चाहिए।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२२४. भाषण : वड़ोदके सत्याग्रहियोंके सम्मुख[2]

अप्रैल ११, १९१८

ज्यों-ज्यों दिन जाते हैं, हमारी कसौटी कड़ी होती जाती है। मैं आज कमिश्नरसे मिलकर अहमदाबादसे चला ही आ रहा हूँ। उनसे एक घंटे तक बातें होती रहीं। उन्होंने नडियादमें की जानेवाली सार्वजनिक सभाका जिक्र किया। मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि किसान सभामें अवश्य आयेंगे। मुझे आशा है कि जिन किसानोंने लगान नहीं दिया है वे सभी सभामें जायेंगे और कमिश्नरकी सलाहको सुनेंगे। कमिश्नर शायद कहेंगे कि फसल मारी जाये तो भी सरकारको लगान देना लोगोंका कर्त्तव्य है। सम्भव है, उनका कहना ठीक हो। मैं तो आपसे इतना ही कहूँगा कि आपने प्रतिज्ञा ली है और आपको उसका पालन अन्ततक करना चाहिए। आप उन्हें अथसे इतितक सब इतिहास कह सुनायें। यदि आपको अपनी प्रतिज्ञाका अभिमान होगा तो आप उनके सम्मुख दृढ़तापूर्वक अपना पक्ष रखेंगे। आपने प्रतिज्ञा क्यों ली है, समझकर ली है या बिना समझे और उससे आप क्या लाभ उठाना चाहते हैं, आप उन्हें ये सब बातें स्पष्ट रूपसे बता दीजिएगा।

यह लड़ाई इस साल हमें लगान न देना पड़े, इसी उद्देश्यसे नहीं लड़ी जा रही है। मैं यह बात हर जगह कहता आया हूँ। इस संघर्षसे हमें सरकारको यह बता देना है कि सरकारको जनताका सम्मान करना ही चाहिए। जनताका विरोध करके कोई राजा राज्य नहीं कर सकता। इस सत्यको सिद्ध कर दिखाना मैंने अपने जीवनका मुख्य कार्य माना है। हमारे लोग निस्तेज हो गये हैं। उनका धन निचोड़ लिया गया है। वे निष्प्रभ हो गये हैं।[3] मुझे एक उपमा बार-बार याद आती है। जैसे बैलके सम्मुख मोटर

१. १८-४-१९१८ के बाम्बे क्रॉनिकलमें गांधीजीका यह वाक्य उद्धृत किया गया है : "आप अपने पोतियों, पुत्रों और भाइयोंको हिम्मत बँधायें, जैसा कि पुराने जमानेकी स्त्रियाँ किया करती थीं, और उन्हें अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रखें।"

२. यह सभा आनन्द ताल्लुकेके वडोद गाँवकी धर्मशालामें हुई थी और इसमें आसपासके गाँवोंके लोग बहुत-बड़ी संख्यामें आये थे।

३. बॉम्बे क्रॉनिकल, १६-४-१९१८ और न्यू इन्डिया, १७-४-१९१८ में छपी रिपोर्टोंके अनुसार गांधीजीने यहाँ कहा : "देशके लोग निर्वीर्य हो गये हैं और उनके सम्मुख एकमात्र मार्ग यह रह गया है कि वे उस घोर संकटमें जबतक हैं तबतक अपने आधारको दृढ़तापूर्वक पकड़े रहें।"

है, वैसे लोगोंके सम्मुख सरकार है, फिर चाहे वह ब्रिटिश सरकार हो या देशी राजा। मोटर पाससे निकलती है तो बैलकी आँखोंमें डर छा जाता है और वह एकदम घबरा जाता है। इसी प्रकार लोग भी सरकारकी सत्ताके सामने काँपते हैं यह मुझसे देखा नहीं जाता। आप सरकारसे कह सकते हैं कि वह आपको अपने कानूनके मुताबिक राहत दे। यदि आप उससे इतना काम करा लेंगे तो इस अधःपतनकी अवस्थामें से निकल जायेंगे और आपमें कुछ चैतन्य आ जायेगा।

हम नित्य प्रातःकाल अनेक महान् पुरुषों और सती-साध्वी नारियोंका नाम लेते हैं। हम सीता, राम, नल, दमयन्ती, प्रह्लाद और अन्य सत्पुरुषोंके नाम जपते हैं। किस लिए? उद्देश्य यह है कि हमें उनके जीवनसे स्फूर्ति मिले। हमारे धर्म-ग्रन्थोंमें कहा गया है कि जो मनुष्य होनेपर भी पशुवत् जीवन बिताता है वह दूसरे जन्ममें पशु-योनिमें जाता है। आप कलक्टरके पास गये और कमिश्नरके पास गये। आप बम्बई सरकारके पास भी गये और जब आपको कहीं भी सफलता न मिली तो आप थककर बैठ गये। यदि ऐसा ही हो तो मुझे कहना चाहिए कि इस प्रकार बैठ जाना तो पशुकी स्थिति है। हम किसीको मारकर या स्वयं अपने प्राण देकर सुखी हो सकते हैं। इनमें से पहला उपाय पशुओंका है और दूसरा मनुष्योंका। पशुओंकी आत्मा सदा सुप्त रहती है; मनुष्यकी सदा जाग्रत। जबतक हमारी आत्माका विकास नहीं होता, जबतक वह जाग्रत नहीं होती, तबतक हमारा उद्धार न होगा।[1] मैं आपको एक पौराणिक गाथा सुनाऊँ। एक ऋषि थे। उनकी भृकुटीसे अग्नि झरती थी जिससे समस्त दुःख नष्ट हो जाते थे। इस शास्त्र वचनका अर्थ यही है कि यदि आत्मा जाग्रत हो जाये तो उससे सरकारके सारे अन्याय दूर हो जायें। इस तथ्यको मैं आपको स्पष्ट बताना चाहता हूँ। यदि हमें दुःखमें से सुख प्राप्त करना है तो हमें दुःख सहन करने चाहिए और सत्यके लिए मर-मिटना चाहिए। जो सत्यकी महिमा जानता है और जिसे उसका अन्तर्ज्ञान हो गया है वह सदा सुखी है। चाहे मेरा सर्वस्व चला जाये; किन्तु मुझसे मेरे आत्मिक आनन्दको कोई नहीं छीन सकता। मेरी इच्छा है कि यह आनन्द आप सभीको प्राप्त हो। हम लोगोंमें धार्मिक जाग्रतिकी आवश्यकता है। हमें सत्य बोलना और सत्यपर आचरण करना सीखना चाहिए। चौकीदार नित्य आये और जब्तीका हुक्म लाये तो भी कोई परवाह नहीं। मैं आपको आपकी प्रतिज्ञाकी मान-रक्षाके विचारसे कहता हूँ कि आप चाहे अपना सर्वस्व लुटा दें और चाहे फकीर हो जायें किन्तु आप अपनी प्रतिज्ञासे न डिगें। मनुष्यका धर्म यही है। मैं बहनोंको विश्वास दिलाता हूँ कि हम भूखे नहीं मरेंगे। जो कुछ आज चला जायेगा, वह कल फिर आ जायेगा; किन्तु यदि हमारी बात चली जायेगी तो फिर वापस न आयेगी। हमें अपनी प्रतिष्ठा, प्रतिज्ञा, सम्मान और मनुष्यत्वकी रक्षा करनी है। हमें लोगोंके लिए यही विरासत छोड़नी है। मेरी कामना है कि ईश्वर आपको शक्ति दे और आप भारतमें अपने नामको उज्ज्वल करें। जिन भाइयोंने प्रतिज्ञा ली है,

१. बॉम्बे क्रॉनिकल और न्यू इंडियाकी खबरोंमें यह भी कहा गया है: "हम पशुबलको दबाकर और उसके स्थानमें आत्मबलको रखकर ही नित्य आत्मिक चेतना प्राप्त कर सकते हैं और उसीके फलस्वरूप हमारा परित्राण संभव है।"

वे मुझे आश्वस्त करें। आप मुझे यह कहें कि ब्रह्मांड खंड-खंड हो जाये और सूर्य उदित न हो, फिर भी आपने जो प्रतिज्ञा ली है, उसे आप न छोड़ेंगे।[1]

आप लोग [कमिश्नरसे] कहें : "आप चाहे हमारा सिर काट डालें, परन्तु हम लगान न देंगे। हम सरकारके अन्यायके आगे कदापि न झुकेंगे। किन्तु यदि आप दया करके लगान माफ कर देंगे और गरीबोंको दुःखी न होने देंगे तो हममें से जो भी लगानका रुपया दे सकेंगे, दे देंगे।"

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२२५. पत्र : पैट्रिक गेडिसको[2]

नडियाद

अप्रैल १२, १९१८

प्रिय प्रोफेसर गेडिस,[3]

आपके अत्यन्त स्नेह-भरे पत्रके लिए सचमुच आभारी हूँ।

हम लोग पश्चिमकी जो ओछी नकल कर रहे हैं, उसपर आपको जितना दुःख होता है, मुझे भी उससे कुछ कम नहीं होता। मैं आपकी दुनियासे बहुत-कुछ लेना चाहता

१. इसके बादके अनुच्छेदमें गांधीजीने किसानोंके इस प्रश्नका उत्तर दिया है कि वे कमिश्नरकी सभामें क्या कहें?

२. यह श्री गेडिसके पत्रके उत्तरमें लिखा गया था। उनके पत्रके मुख्य मुद्दे महादेवभाईकी डायरीमें अंकित हैं। तदनुसार उन्होंने कुछ ऐसी बातें लिखी थीं: (१) सम्मेलन सचमुच पूर्णतः अंग्रेजी ढंगका हुआ। उसमें योग्य व्यक्तियोंने, उचित स्वरमें उचित प्रतीतिके साथ प्रसंगानुकूल भाषण किये। (२) यहाँ अबतक किसी भी बड़े सम्मेलनमें इस बातपर विचार नहीं किया गया है कि अंग्रेजोंसे क्या चीजें सीखी जा सकती हैं। वहाँ तो एवन नदीके किनारे 'स्ट्रैटफर्ड'में शेक्सपीयरके नाटकोंका अभिनय किया जाता है। आपकी नाट्यशालाएँ इस सम्बन्धमें निष्क्रिय हैं। उनमें तुलसीदासका नामतक नहीं लिया जाता। (३) आप पश्चिमके उदाहरणसे कुछ क्यों नहीं सीखते, उनके तौर-तरीके क्यों नहीं अपनाते? वेल्समें हर साल एक भारी जलसा होता है। गत जलसेसे पहलेवाले जलसेमें मैं उपस्थित था। वहाँ मैंने लॉयड जॉर्जको प्रचण्ड ओजके साथ, आग उगलते हुए सुना। इसका कारण यह था कि वे अपनी मातृभाषामें बोल रहे थे। उन्होंने कहा, यहाँ हम गानेके लिए आये हैं। (४) उनका पण्डाल समूह-गानके लिए विभिन्न स्वरोंवाले लोगोंकी मण्डलियोंमें विभक्त था। (५) आप आयरिश लोगोंसे भी कुछ सीख सकते हैं, जो अवकाश-कालीन सम्मेलनोंका आयोजन करके अपनी भाषाको पुनः प्रतिष्ठित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। (६) प्रोवेंसका ही उदाहरण लीजिए, जहाँके लोग अपने लोक-कवि मिस्ट्राल्की पूजा करते हैं। स्वीडनवालोंने वृद्ध मिस्ट्राल्को नोबेल पुरस्कार दिया। उस रकमसे प्रोवेंसवालोंने बड़े कामका एक संग्रहालय खोल दिया। (७) डेनमार्कके एक बिशप और एक गृहस्थने लोगोंको व्यावहारिक शिक्षा देना अपना जीवनोद्देश्य बना लिया था। (८) आपको भी अपनी सभाओंके लिए मध्ययुगीन मण्डपोंको छोड़कर प्रेक्षागारोंकी व्यवस्था करनी चाहिए। (९) हिन्दी और उर्दूको एक करनेके आन्दोलनका समर्थन कीजिए। यह बहुत-कुछ सैक्सन और फ्रांसीसी शब्द-भण्डारोंको एक करनेके प्रयत्न-जैसा है।

३. उन दिनों वे बॉम्बे स्कूल ऑफ़ इकनॉमिक्सके निदेशक थे।

हूँ, किन्तु आँख मूँदकर नहीं। इन्दौरके जैसे जलसेमें मैं इसलिए भाग लेता हूँ कि लोगोंके हृदयतक पहुँचकर उसपर असर डाल सकूँ और जहाँतक बन पड़े, उन्हें भौतिकतावादसे विमुख कर सकूँ। देशी भाषाओंके प्रश्नमें एक पक्ष भौतिक है और दूसरा धार्मिक। मैं लोगोंके सामने धार्मिक पक्ष रखनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। सम्मेलनकी[1] सफलताकी माप यही होगी कि मैं अपने श्रोताओंमें धार्मिक पक्षके लिए कितनी अभिरुचि जगा पाता हूँ।

पिछले साल मैंने कांग्रेसके लिए पण्डालकी झंझट समाप्त कर देनेका प्रयत्न किया था और सुझाया था कि सभा बिलकुल सवेरे ही खुले मैदानमें हो। यही हिन्दुस्तानी तरीका है, और सबसे अच्छा भी। मेरी तो समझमें प्रेक्षागारकी व्यवस्था करना सुधार नहीं होगा मेरा आदर्श यह है कि पेड़के नीचे खड़े होकर लोगोंके सामने बोला जाये। यदि हजारों-लाखों लोगों तक आवाज न पहुँच सके, तो कोई परवाह नहीं। वे सुनने नहीं, देखने आते हैं, और हम जितनी कल्पना कर सकते हैं, उससे वे बहुत अधिक देख जाते हैं। प्रेक्षागार-व्यवस्थाका मतलब है स्थानको सीमित कर देना। खूबी तो इसमें है कि वहाँ असंख्य लोग आयें और फिर भी सारा काम बिलकुल व्यवस्थित ढंगसे होता रहे। पुराने जमानेके वार्षिक मेले ऐसे ही होते थे। यदि आजकल नये सामाजिक और राजनैतिक जीवनमें आप धर्मकी प्रतिष्ठा कर दीजिए, तो आप देखेंगे कि आपके सामने एक ऐसा सर्वांगपूर्ण और कार्यक्षम संगठन प्रस्तुत है, जिसपर आप बखूबी निर्भर कर सकते हैं।

लेकिन, आपको यह सब लिखनेका क्या फायदा? हम दोनों ही अपने-अपने ढंगसे सर्वथा व्यस्त हैं। हम पाश्चात्य सभ्यताके ज्वरसे ग्रस्त हैं। जो शाश्वत है, उसके लिए तो हमारे पास समय ही नहीं है। हमारे सम्बन्धमें अधिकसे-अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि हम शाश्वतकी अभीप्सा करते हैं, भले ही हमारे कार्य, हम जो-कुछ कहते हैं, उसे झूठा सिद्ध कर दें।

मैं आपके पत्रको जुगाकर रखूँगा। क्या मैं इसका सार्वजनिक उपयोग कर सकता हूँ? और कृपया यह बताना न भूलें कि सस्ते होते हुए भी टिकाऊ मकान कैसे बनाये जा सकते हैं। ठेठ बुनियादसे छत तक की सारी तफसील चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

१. तात्पर्य इन्दौरमें आयोजित २९-३१ मार्चके हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे है, जिसकी अध्यक्षता गांधीजीने की थी।

२२६. पत्र : देवदास गांधीको

[नडियाद]
अप्रैल १२, १९१८

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं तुम्हें एक पत्र लिख चुका हूँ; वह मिल गया होगा। तुमने अपनी तन्दुरुस्तीका हाल नहीं लिखा। तुम बहनकी सेवा कर रहे हो, यह तो मुझे बहुत ही अच्छा लगता है। हम शास्त्रोंमें पढ़ते हैं कि शिष्य गुरुकी सेवा करने निकल पड़ते थे। यह विचार वहाँ जितनी मधुर भाषामें व्यक्त किया गया है, तुम्हारा वाक्य भी उतना ही मनोहर और स्वाभाविक है। यह सेवा तुम्हें कितने ऊँचे स्थानपर ले जायेगी, इसका अन्दाज मैं तो नहीं लगा सकता।

मैंने ३५ फीसदी वृद्धि एक दिनसे ज्यादाके लिए भी नहीं ली, इसका रहस्य समझना आसान है। मुझसे यह मामला अधिक नहीं खींचा जा सकता था। मालिकोंने मजदूरोंकी दृढ़तासे नहीं, बल्कि मेरे उपवासके कारण यह वृद्धि दी है, ऐसा वे अभी मानते हैं। अगर मैं इससे ज्यादा माँगता, तो वह मेरा अत्याचार माना जाता। जब मैं अधिक माँगनेकी स्थितिमें था, तब मैंने कमसे-कम लिया, यह मेरी सरलता, नम्रता और विवेक-बुद्धिका सूचक है। मैंने उपवास न किया होता, तो मजदूर हार ही जाते। वे उपवाससे ही अपनी प्रतिज्ञापर टिके रहे। ऐसी टेकके लिए कमसे-कम माँग ही उचित हो सकती है। ऐसी टेकके शब्दोंका ही पालन हो सकता है, सो हुआ। और मेरे उपवासमें जो दोष थे, वे मेरी कमसे-कम माँगसे हलके, बहुत हलके, हो गये। उपवासका रहस्य एस्थर बहनने खूब समझा। उसने तारसे बाइबिलका एक वाक्य भेजा था। उसका अर्थ यह है: "मनुष्य अपने मित्रोंके लिए अपने प्राण देनेसे अधिक प्रेम नहीं दिखा सकता।"[१] इस उपवासको मैं अपना अबतक का सबसे बड़ा कार्य मानता हूँ। इस उपवासके समय मुझे जो शान्ति मिली, वह अलौकिक थी।

मुझे अहमदाबादके कार्यमें जो आनन्द मिलता था, वह यहाँ नहीं मिल सकता। मन उद्विग्न रहा करता है और विचार उठते रहते हैं। ज्यादातर तो यही लगता है है कि लोगोंने इसका मर्म ठीक समझा है। कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि उन्होंने मर्म ठीक नहीं समझा और इससे मन दुःखी हो जाता है। काम तो अच्छा ही हो रहा है; किन्तु अब मन थक गया है। मैं मुहम्मद अलीकी लड़ाईके बोझसे दबा जा रहा हूँ। यह मुझे हाथमें लेनी ही पड़ेगी। ईश्वर इसके लिए मुझे शक्ति देगा, यह समझकर बैठा हूँ और इसलिए भीतर-ही-भीतर शान्ति भी अनुभव करता हूँ। बा मेरे साथ ही है।

१. सेंट जॉन, १५।

छोटालालसे[1] कहना कि उसकी कलम फिर थक गई मालूम होती है। मुझे बुना-ईकी अधिक तफसील भेजना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

२२७. पत्र : शिवदास और पोपटलालको

नडियाद

चैत्र सुदी १ [अप्रैल १२, १९१८]

भाईश्री शिवदास[2],

तुम्हारा पत्र और पोस्टकार्ड, दोनों मिल गये हैं। तुम्हें दस रुपये भेज देनेके लिए उन्हें लिख दिया है। यदि इतनेसे काम न चले तो मुझे लिखना। अपनी दैनंदिनी लिखा करो। क्या प्लेग वहाँ अबतक फैला है?

भाई पोपटलाल[3],

तुम्हारी पंक्तियाँ पढ़ीं; तुम परसे मेरा विश्वास उठा नहीं है। वहाँ क्या कर रहे हो? आँखका क्या हाल है सो लिखना। फिर वहाँ जो काम तुम्हारे करने योग्य होगा सो सौंपूंगा।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

[पुनश्च]

भाई मोतीलालका कुटुम्ब जितनी जल्दी आ जाये उतना अच्छा।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८५७) से।

१. साबरमती आश्रमके एक सदस्य जो चम्पारनमें बरहरवाकी शालासे सम्बद्ध थे। वे बुनाई सिखाते एवं हिन्दी पढ़ाते थे।

२. शिवदास चतुर्भुज परीख, जो बादमें स्वामी शिवानन्द के नामसे जाने जाते थे; काठियावाड़ के सार्वजनिक कार्यकर्ता।

३. सौराष्ट्रके रचनात्मक कार्यकर्ता।

२२८. पत्र : बलवन्तराय ठाकोरको

[नडियाद]
अप्रैल १२, १९१८

भाईश्री वलवन्तरायजी,[1]

आपका पत्र मिला। उससे मेरे प्रति आपकी प्रीति प्रकट होती है। इसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। भाई नटराजनने[2] जल्दीमें राय वनाई है, यह मैंने उन्हें वता दिया है। आपकी दलीलोंका खण्डन करनेके वजाय मैं आपको यह समझा दूँ कि मैं 'सत्याग्रह' किसे कहता हूँ। यद्यपि मैं 'निष्क्रिय प्रतिरोध' [पैसिव रेजिस्टेंस] शब्दोंको काममें लेता हूँ, किन्तु वे मेरे आशयके सूचक नहीं हैं। आप अंग्रेजी ढंगके निष्क्रिय प्रतिरोधको भूल जाइए। जिस नियमके अनुसार हम कुटुम्बमें वरतते हैं, उसी नियमको मैं राजनैतिक मामलोंमें लागू करता हूँ। मैं भारतमें देखता हूँ कि लोग भयसे अभिभूत होकर वरतते हैं, भयसे सच नहीं वोलते, सरकारको धोखा देते हैं और स्वयंको धोखा देते हैं। पुलिसका छोटे-से-छोटा कर्मचारी एक वड़े धनीकी लाज लूट सकता है। मेरे खयालसे इस स्थितिसे मुक्त होना सभी नेताओंका धर्म है। अधिकारी जनताकी बात नहीं मानते। वे जो कुछ करते हैं उसीको ईश्वरीय आदेश समझते हैं और यह मानते हैं कि उसका विरोध हरगिज नहीं किया जा सकता। इस मान्यतासे उन्हें मुक्त करनेमें उनकी सेवा है और इसलिए राज्यकी सेवा है। इसीलिए मैं जहाँ-जहाँ लोगोंको भयसे अन्यायके अधीन होता देखता हूँ, वहाँ-वहाँ उन्हें सलाह देता हूँ कि वलात् लादे हुए दुःखोंसे मुक्तिका उपाय ज्ञानपूर्वक दुःख सहना है। यही सत्याग्रह है। दुःखोंसे मुक्तिके लिए दुःख देना दुराग्रह और पशुवल है। वैलको जव दुःख होता है, तव वह लात मारता है। मनुष्यको जव दुःख हो, तव उसे आत्मवलसे दुःखका निवारण करते हुए दुःख सहना चाहिए।

खेड़ा जिलेके लोगोंपर ऐसा महान् संकट इसी वार नहीं आया है। उन्होंने पहले भी वहुत कष्ट सहे हैं। सामान्य स्त्रियाँ भी मेरी पत्नीसे इस तरहकी वातें करती हैं। इस वार लोगोंने लगानका कष्ट वताया। अगर वे लगान अदा करेंगे तो अपनी इच्छासे नहीं; वल्कि डरसे करेंगे। इसके लिए वहुतोंको अपने मवेशी वेचने और कीमती पेड़ काटने पड़ेंगे। यह दुःख हम कैसे देख सकते हैं? मैंने यह अपनी आँखोंसे देखा है। इसके निवारणका उपाय क्या है? अर्जियाँ दूँ? अर्जियाँ तो दे चुका। नटराजन कहते हैं : वाइसरायके पास जाओ, इंग्लैंड जाओ। इससे लोगोंको क्या राहत मिलेगी? तवतक तो पेड़ कट चुकेंगे और रुपया दिया जा चुकेगा। उसके वाद पुकार करनेसे क्या लाभ? समझनेकी वात है कि यह लड़ाई कानून वदलवानेके निमित्त नहीं है; वल्कि कानूनके

१. प्रो० वलवन्तराय कल्याणराय ठाकोर, गांधीजीके सहपाठी, गुजराती भाषा तथा साहित्यके विद्वान् और लेखक।

२. यहाँ कामाक्षी नटराजनका उल्लेख है, देखिए "पत्र : के० नटराजनको", ५-४-१९१८ से पूर्व।

अमलके विरुद्ध है। अपराधीको फाँसीपर चढ़ा दिया जाये, उसके बाद अपील करनेका क्या प्रयोजन? इस तरह तो कितने ही निर्दोष मनुष्य फाँसीपर चढ़ गये हैं, और ऐसा हमारी उदासीनतासे हुआ है। हमारे पास दो ही उपाय थे। जो लोग लगान वसूल करने आयें, उन्हें डंडा मारकर दूर हटा दें या उनसे विनयपूर्वक कहें कि 'हमें लगान नहीं देना है।' फिर भी वे लगान तो ले ही जायेंगे, तब मैंने क्या बचाव किया — ऐसा सवाल तो आपके मनमें नहीं उठता? उठे, तो शुरूमें ही मैंने उसका उत्तर दे दिया है।

इस लड़ाईमें अनायास लोगोंको धर्म, नीति, एकता, सत्य और अहिंसाकी तालीम मिलती है और सरकारको लोकमतके आदरकी। इसमें द्वेषभावकी गुंजाइश ही नहीं। सरकारको दबाकर न्याय नहीं करवाना है; उसकी न्याय-वृत्ति जाग्रत करके न्याय करवाना है। इसका परिणाम अच्छा होगा। इससे अन्तमें आत्माका विकास ही होगा। यदि लोग कमजोर होनेके कारण हार जायेंगे तो भी क्या होगा? किया हुआ तप नष्ट होता ही नहीं। लोग गिरेंगे तो भी चढ़नेके लिए ही।

'नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥'

यदि अब भी कोई गुत्थी रह जाये, तो फिर पूछें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

२२९. भाषण: नडियादमें

अप्रैल १२, १९१८

जो भाई यहाँ आये हैं उन्होंने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। जो-कुछ कहना था, कमिश्नरसे वे वह सब कुछ साहसके साथ कह आये। मेरे विचारसे यह हमारी जीत है। इस लड़ाईका उद्देश्य लोगोंमें अधिकारियोंको बराबरीका मानकर मित्रभावसे अपनी बात उनसे कह सकनेकी हिम्मत पैदा करना है। सरकारसे अपनी माँग मनवाना इस लड़ाईका हेतु है। कमिश्नरने मित्रभाव और मिठाससे बातें कीं, इसीको आप अपनी जीत समझें। दुःख सहकर भी न्याय और सत्यपर कायम रहना, जीतकी महत्ता इसीमें है। सरकार जमीनें जब्त कर लेगी, यह बात कमिश्नरने मुझसे कही थी, यद्यपि कही बहुत शिष्टतासे थी। मैंने भी उन्हें उतनी ही शिष्टतासे और मिठाससे उत्तर दिया कि वे जमीनें भले ही ले लें; किन्तु वे पचाई नहीं जा सकेंगी।

जब सरकार और लोगोंमें मतभेद हो जाये तब पंचका सिद्धान्त स्वीकार किया जाना चाहिए। हमारी लड़ाई इस सिद्धान्तको स्वीकार करवानेके लिए ही लड़ी जा रही है। धर्मकी दृष्टिसे देखें तो पंचके बिना काम नहीं चल सकता। सरकार और लोगोंका

सम्बन्ध बाप और बेटे जैसा है, गुलाम और मालिक जैसा नहीं। बापके अन्यायका विरोध करना बेटेका धर्म है। जिन लोगोंने प्रतिज्ञा ली है, उनको मेरी सलाह है कि वे उसका पालन अन्त तक करें। आपकी जब्त की हुई जमीनें आपको जबतक वापस न मिल जायेंगी मैं तबतक लड़ता रहूँगा। जबतक मेरे शरीरमें प्राण हैं मैं तबतक लड़ना बन्द नहीं करूँगा। हाँ, इस लड़ाईमें आपको शामिल रहना चाहिए। यदि आप जमीनोंकी जब्ती बरदाश्त कर लेंगे तो मैं आपके साथ ही हूँ। हरिश्चन्द्रने बहुत कष्ट सहे, वे नीचके घर बिके और उनका सर्वस्व चला गया; किन्तु वे सत्यपर कायम रहे। मुझे आशा है कि आप सभी हरिश्चन्द्र निकलेंगे। और यह मेरा अटल विश्वास है कि धर्मकी साधनाका उपाय धर्माचरण करना है, भजन गाना और कीर्तन करना-भर नहीं। हमें आत्मज्ञान अर्थात् आत्मशक्तिका ज्ञान प्राप्त करना है।

श्री प्रैटने मुझे संन्यासी बताया है। उनकी बात सच भी है और झूठ भी। मैं संन्यासी होनेका दावा नहीं करता। जैसे आप भूलोंसे भरे मनुष्य हैं वैसा ही मैं भी हूँ। अन्तर केवल इतना है कि मेरी संन्यासी होनेकी आकांक्षा है और मैं उस दिशामें प्रयत्नवान हूँ। सत्याग्रहसे राजनैतिक प्रश्नोंका निर्णय कराया जा सकता है, ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता है। आपकी लड़ाईसे श्री प्रैटका रुख बदला है, यह आत्मशक्तिका ही प्रभाव है।

लड़ाईमें अपनी जमीनोंको गँवा देना कोई बहुत-बड़ी बात तो है नहीं। जमीनें गँवानेके लिए संन्यासी होनेकी नहीं, गृहस्थ होनेकी आवश्यकता है। जो लोग यूरोपमें रक्तकी नदियाँ बहा रहे हैं वे संन्यासी नहीं हैं, गृहस्थ हैं। श्री लॉयड जॉर्जने अपना तन, मन और धन [देशके लिए] अर्पित कर दिया है, क्या वे संन्यासी हैं? इंग्लैंड जो लड़ाई लड़ रहा है वह क्या जमीनके लिए लड़ रहा है? नहीं, कदापि नहीं। उसको ऐसा लगा कि जर्मनीकी क्यों चले। जर्मनी भी अपनी प्रतिष्ठाके लिए लड़ रहा है। वह अपनी बात रखना चाहता है। हमें कुछ दूसरे लोगोंने यह आश्वासन दिया है कि हमें भूखों मरने नहीं दिया जायेगा। यूरोपके लोगोंको तो अपने बाहुबलका ही आश्वासन है। वे अपने बेटोंको पट-पट मरता देखकर भी आँसू नहीं बहाते। आप इस लड़ाईमें अपनी जमीनें सम्मान-सहित वापस ले सकेंगे। यदि आप जमीनें गँवाकर त्याग करेंगे तो आपका नाम खेड़ा जिलेमें ही नहीं, समस्त भारतमें होगा।

अन्तमें आपसे इतना ही कहना है कि आपने ईश्वरको साक्षी रखकर ज्ञानपूर्वक और सोच-समझकर जो प्रतिज्ञा ली है, उसे आप चाहे जो हो, अवश्य पालें और मुझ-पर नहीं, ईश्वरपर भरोसा करें।

जमीनें चली भी जायेंगी तो भी क्या हुआ? इससे हम अपनी कीर्ति और प्रतिष्ठा तो बढ़ा सकेंगे। सरकार भी हम जैसे वीर लोगोंपर राज्य करनेमें गौरव अनुभव करेगी।

मैंने एकबार श्री प्रैटसे कहा था कि वे भय और दमनके बलपर राज्य चला रहे हैं। इसके बजाय लोगोंके प्रति प्रेम और आदरसे राज्य चलायें तो जबतक सूर्य और चन्द्र हैं तबतक वह कायम रहेगा। मैंने आपसे बार-बार कहा है और अब भी

जोर देकर कहता हूँ कि चाहे जितना दुःख उठाकर भी प्रतिज्ञाका पालन करेंगे तो आपकी विजय होगी — अवश्य होगी।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२३०. पत्र : जे० एल० मैफीको

नडियाद

अप्रैल १४, १९१८

आप स्वयं देखेंगे कि उपर्युक्त पत्रका[1] मसविदा ११ तारीखको तैयार किया गया था। इतने दिनों तक मैं उसे रोके रहा। परन्तु मैं महसूस करता हूँ कि अपने विचार स्पष्ट रूपमें आदरके साथ पेश करके ही मैं राज्यकी अधिकसे-अधिक सेवा कर सकता हूँ। पिछले चार दिनोंके दौरान संघर्षने गम्भीरतर रूप धारण कर लिया है। इस तथ्यने पत्र भेजनेके मेरे संकल्पको और भी दृढ़ बना दिया है। मैं पूरी विनम्रताके साथ लॉर्ड चैम्सफोर्डसे अनुरोध करता हूँ कि [अली] भाइयोंको छोड़ ही न दिया जाये बल्कि उनको और श्री तिलकको भी, परिषद्में शामिल कर लिया जाये। वे राज्यके शत्रु कतई नहीं हैं। उनकी सहायता लिये बिना आप भारतको सन्तुष्ट नहीं रख सकते।

[हृदयसे आपका,]

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया : होम : पॉलिटिकल — ए : जून १९१८, संख्या ३६०

२३१. पत्र : 'बॉम्बे क्रॉनिकल' को[2]

नडियाद

अप्रैल १५, १९१८

सम्पादक,

'बॉम्बे क्रॉनिकल'

महोदय,

खेड़ाके किसानोंके[3] समक्ष दिये गये कमिश्नरके गुजराती भाषणका सारांश प्रकाशित हो चुका है, इसलिए खेड़ाके किसानों और कार्यकर्त्ताओं दोनोंके प्रति न्याय करनेके लिए आवश्यक हो गया है कि भाषणका उत्तर दिया जाये।

१. उल्लेख १० अप्रैलके पत्रका है, जिसे इस टिप्पणीके साथ भेजा गया था।

२. लगता है कि यह पत्र प्रकाशनके लिए सभी समाचारपत्रोंको भेजा गया था। यह **यंग इंडिया**, १७-४-१९१८ में भी प्रकाशित हुआ था।

३. गांधीजीकी सहायतासे १२ अप्रैलको अहमदाबादमें बुलाई गई एक सभामें जिलेके लगभग २,००० प्रमुख किसान एकत्रित हुए थे। कलक्टर और अन्य माल अधिकारी भी उसमें उपस्थित थे। गांधीजीने पहले

L.14/22

As at Sabarmati (4) enclosing Manilal's

17th April

My dear West,

I am writing this at a little village where I have arrived with Mrs Gandhi & others to preach passive resistance. Here is the cutting. The fight is great but it taxes me to the utmost.

I will not discuss your latest letter. I simply want to say do what you like. Phoenix & all its means are just as much letter. I knew you would keep calm and take a perfectly philosophic view of the whole thing. I shall keenly watch the progress of your new & bold experiment.

Please give my love to Granny & Mrs West. I wonder how Sam has taken to all this. Please ask him to write to me.

With love yours
MKGandhi

पत्र : ए० एच० वेस्टको, अप्रैल १७, १९१८

मेरे पास भाषणकी शब्दशः रिपोर्ट मौजूद है। सारांशकी अपेक्षा इस भाषणसे सरकारी नीति ज्यादा स्पष्ट रूपसे मालूम होती है। कमिश्नर साहबका यह कहना है कि लगान मुल्तवी करनेके सम्बन्धमें माल अधिकारियोंका निर्णय ही अन्तिम है। अधिकारी लोग रैयतकी शिकायतें सुन सकते हैं; परन्तु उनके निर्णयके अन्तिम होनेके सम्बन्धमें कोई प्रश्न नहीं उठ सकता। सारा संघर्ष इसीको लेकर है। रैयतकी ओरसे कहा जाता है कि जब सरकारके स्थानीय अधिकारियों और रैयतके बीच प्रशासनिक आदेशोंके पालनके बारेमें बहुत बड़ा मतभेद हो तो मतभेदके मुद्दोंका फैसला किसी निष्पक्ष जाँच-समितिको सौंप देना चाहिए। ब्रिटिश संविधानकी सारी शक्ति इसीमें निहित है। कमिश्नरने सिद्धान्तके आधारपर इस बातको माननेसे इनकार कर दिया और इस प्रकार यह संकट उत्पन्न हो गया है। उन्होंने इस बातको बहुत तूल दिया और पहलेसे ही लॉर्ड विलिंग्डनसे इस आशयका एक पत्र मँगवाकर अपनी स्थिति दृढ़ बना ली कि स्वयं वे (लॉर्ड विलिंग्डन) भी कमिश्नरके निर्णयमें हस्तक्षेप न करेंगे। अपने पक्षके समर्थनके लिए वे वर्तमान युद्धकी आड़ लेते हैं और रैयतसे तथा मुझसे कहते हैं कि साम्राज्यके इस संकटके समय तुम लोग यह संकल्प त्याग दो। लेकिन मैं कह सकता हूँ कि कमिश्नर साहबके व्यवहारसे तो जर्मन-संकटसे भी अधिक गम्भीर संकट उपस्थित हो जाता है; मैं साम्राज्यको उसके इस भीतरी संकटसे बचानेका प्रयत्न करके साम्राज्यकी सेवा ही कर रहा हूँ। यह बात कुछ झूठ नहीं है कि भारतवर्ष अपनी एक बहुत लम्बी निद्रासे जाग रहा है। अपने अधिकारों और कर्त्तव्योंको समझनेके लिए रैयतका पढ़ा-लिखा होना आवश्यक नहीं। रैयत जिस समय अपनी अजेय शक्ति समझ लेती है उस समय कोई भी सरकार, चाहे वह कितनी ही बलवती क्यों न हो, उसकी इच्छाके विरुद्ध नहीं ठहर सकती। खेड़ाकी रैयत भारतवर्षमें साम्राज्यकी एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण समस्या हल कर रही है। खेड़ाके लोग दिखा देंगे कि लोगोंकी इच्छाके बिना उनपर शासन करना असम्भव है। 'सिविल-सर्विस' जब एकबार इस बातको समझ लेगी तब वह ऐसे सच्चे सिविल-सर्वेंट भेजेगी जो प्रजाके अधिकारोंके पूरे रक्षक हों। इस समय सिविल-सर्विसका शासन भयका शासन है। खेड़ाकी रैयत प्रेमके शासनके लिए लड़ रही है। यह संकट कमिश्नरने ही पैदा किया है। जिस समय उन्होंने देखा था कि लोगोंका उनसे मत-भेद है उसी समय उनका कर्त्तव्य था कि वे लोगोंको सन्तुष्ट कर देते; और इस समय भी उनका यही कर्त्तव्य है। यदि कमिश्नर साहब जनताकी बात मान लेंगे और उनको रिआयतें देंगे तो भारतके राजस्वको कोई भारी खतरा पैदा नहीं हो जायेगा। उसी तरह जिस प्रकार कानपुर-मसजिदवाले मामलेमें जनताकी माँग स्वीकार करके उसका एक कोना फिरसे बनवा देनेपर साम्राज्यके लिए कोई खतरा पैदा नहीं हुआ था; या जनताकी इच्छाके अनुसार सरकार द्वारा श्रीमती मेब्रिकको माफी दे देनेपर न्याय और प्रशासनको कोई खतरा पैदा नहीं हुआ था। यदि मैंने चटपट लोगोंको यह सम्मति न दी होती कि यदि कमिश्नर तुम

वल्लभभाई पटेलसे उसमें जानेके लिए कहा था, लेकिन बादमें कमिश्नरके भाषणके कारण उत्पन्न गलतफहमी दूर करनेके लिए उन्होंने सभामें स्वयं भाषण करना आवश्यक समझा। उनके भाषणके लिये देखिए परिशिष्ट १३।

लोगोंकी प्रार्थना सुननेसे इनकार करते हैं तो तुम लोग भी लगान न देनेके अपने निश्चय पर दृढ़ रहो, तो प्रजाका असन्तोष इस प्रकार खुले और स्वस्थ रूपमें प्रकट न होता; वह भीतर ही भीतर सुलगता रहता। अन्तमें कटुता पैदा होती। जो पुत्र अपने पिताके विरुद्ध मन-ही-मन कुढ़ता नहीं रहता, वल्कि स्पष्ट रूपसे और पूरी नम्रतापूर्वक पिताको वतला देता है कि आपकी आज्ञाका पालन में क्यों सचाईके साथ नहीं कर सकता, वही सुपुत्र है। मैं सरकार और जनताके सम्बन्धोंपर भी यही नियम लागू करता हूँ। कभी ऐसा कोई समय नहीं होता जब कि मनुष्यको अपना अन्तःकरण ताकपर रख देना पड़े। बल्कि किस तरह बुद्धिमान् पिता सहजमें और विशेषतः ऐसे अवसरपर जब कि परिवारपर वाहरके किसी प्रकारके संकटकी सम्भावना हो, जल्दीसे अपने पुत्रकी वात मान लेता है और उसे रुष्ट या असन्तुष्ट नहीं करता उसी प्रकार समझदार सरकार भी अपनी प्रजाको नाराज नहीं करेगी, वल्कि चटपट उसकी वात मान लेगी। युद्धके कारण अफसरोंको इस वातकी खुली छूट नहीं मिल सकती कि वे रैयतको अपनी ऐसी आज्ञाओंके पालनके लिए भी विवश करें जो उसकी समझमें अनुचित और अन्यायपूर्ण हों।

लगानकी वाकी रकम केवल चार लाख रुपये है। लेकिन इतनी ही रकमके लिए कमिश्नरने यह धमकी दी है कि रैयतकी तीन करोड़ रुपयेसे अधिक मूल्यकी अथवा डेढ़ लाख एकड़ जमीन जब्त कर ली जायेगी और जिनकी जमीन जब्त होगी उन्हें अथवा उनके बीवी-बच्चोंको फिर कभी खेड़ामें कोई जमीन लेने ही न दी जायेगी। कमिश्नरकी इस धमकीने रैयतका निश्चय और भी दृढ़ बना दिया है। कमिश्नर खेतिहरोंको एक ही साँसमें गुमराह भी कहते हैं और दुराग्रही भी। उनके ये शब्द कितने गम्भीर हैं:

> यह मत समझो कि हमारे मामलतदार और हमारे तलाटी लोग तुम्हारी चल-सम्पत्तिको जब्त और कुर्क करके निर्धारित लगान वसूल करेंगे। हम इतनी झंझटमें नहीं पड़ेंगे। हमारे अफसरानका वक्त कीमती है। तुम्हारे नकद रुपया भरनेसे ही हमारा खजाना भर सकता है। इसे धमकी मत मानो। इतनी वात समझ लो कि माता-पिता कभी भी बच्चोंको धमकी नहीं देते। वे केवल सलाह देते हैं। लेकिन अगर तुम वकाया अदा नहीं करोगे तो तुम्हारी जमीन जब्त कर ली जायेगी। बहुत-से लोग कहते हैं कि ऐसा नहीं होगा। पर मैं कहता हूँ कि ऐसा होगा। मुझे प्रतिज्ञा करनेकी जरूरत नहीं। मैं जो कह रहा हूँ उसे करके दिखा दूँगा। जो लोग लगान नहीं भरेंगे, उनकी जमीन जब्त कर ली जायेगी। अवज्ञा करनेवालोंको भविष्यमें भी कोई जमीन नहीं मिलेगी। सरकार उनके नाम रैयतके रेकार्डमें नहीं देखना चाहती। उनमें से जिनके नाम निकल जायेंगे वे हमेशाके लिए निकाल दिये जायेंगे।

कमिश्नर साहवकी इस प्रतिहिंसा एवं आतंकपूर्ण भावनाके विरुद्ध जीवन-पर्यन्त संघर्ष करना प्रत्येक राजनिष्ठ नागरिकका पवित्र कर्त्तव्य है। कमिश्नर साहबने यह कहकर कि हड़तालियोंने जानबूझकर अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी थी, अहमदाबादके हड़तालियों और मेरे साथ भारी ज्यादती की है। जिस सभामें समझौता हुआ था उसमें वे स्वयं उपस्थित थे। उनका अपना यह खयाल तो हो सकता था कि हड़तालियोंने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी थी।

(हालाँकि सभाम उनके भाषणसे इससे उलटी ही ध्वनि निकलती थी) परन्तु इसका तो कोई प्रमाण नहीं कि हड़तालियोंने जान-बूझकर प्रतिज्ञा तोड़ी थी। इसके ठीक विपरीत, उन्होंने अपनी माँगके अनुसार पहले दिन वेतन मिलनेपर काम शुरू करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी, और वेतनका प्रश्न अन्तिम निर्णयके लिए पंच-फैसलेको सौंप दिया गया था। हड़तालियोंने ही पंच-फैसलेका सुझाव रखा था जिसे मिल-मालिकोंने ठुकरा दिया था।

संघर्षका मुद्दा ही असलमें वेतनमें ३५ प्रतिशत वृद्धि या पंच-फैसले द्वारा निर्धारित वृद्धि कराना था। उनकी यह माँग मंजूर हो चुकी थी। इसलिए मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि ऐसी दशामें हड़तालियोंको और मुझे इस तरहका ताना देना नैतिक नहीं है।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १७-४-१९१८

२३२. पत्र : नायकाके निवासियोंको

अप्रैल १६, १९१८

[भाइयो,]

आपमें से २५ लोगोंकी जमीनें जब्त हो जानेका समाचार मैंने अभी-अभी सुना है। अगर ऐसा हुआ हो, तो मैं आपकी बारी पहले आनेपर आपको बधाई देता हूँ। मैं मानता हूँ कि जो जमीनें जब्त हुई हैं, वे कागजोंमें ही जब्त रहेंगी। फिर भी, आपने तो इन सभी दु:खोंको सहनेकी प्रतिज्ञा ली है; इसलिए मुझे आपको दिलासा देनेकी जरूरत नहीं रह जाती। आपको तो मैं बधाई ही देता हूँ।[1]

[आपका,]

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. इसका अनुवाद २३-४-१९१८ के **न्यू इंडिया**में भी छपा था।

२३३. भाषण : ओडमें

अप्रैल १६, १९१८

हमने किसी व्यक्तिकी याद की और यदि वह अचानक आ गया तो हम कहा करते हैं, भाई तुम सौ बरस जियोगे। यहाँ भी ऐसा ही हुआ है। हमने श्री वल्लभभाईको जिस क्षण याद किया उसी क्षण वे यहाँ आ पहुँचे। मैं आपसे गत सप्ताह मिलनेकी आशा करता था। किन्तु मैं बम्बई चला गया था और अहमदाबादमें श्री प्रैटसे मिलनेके लिए रुक गया, इसलिए आ नहीं सका। बम्बईमें जो बड़े हाकिम मिले उनसे मेरी बातचीत हुई। मैं आपको इस बातचीतका हाल बताऊँ इससे पहले आपके बारेमें नडियादमें जो कुछ सुना उसे बता दूँ। लोगोंने मुझसे यह कहा कि ओडके लोग बड़े उत्साही हैं; किन्तु उन्होंने अभीतक अपने उत्साह और बलका उपयोग अपने हितार्थ नहीं किया है; बल्कि पारस्परिक कलहमें किया है। फलस्वरूप खेड़ाकी भूमि जो उपजाऊ और सुन्दर है और जिसे आपके बाप-दादोंने स्वर्ण-भूमि बना दिया था, आपसकी दुराग्रहपूर्ण लड़ाईसे बरबाद हो गई।[1] जबतक यह स्थिति कायम है तबतक हम किसी तरहकी लड़ाई नहीं जीत सकते। आपने तो प्रतिज्ञा ली है कि आप अन्ततक जूझेंगे और न्याय प्राप्त करेंगे। मैं निश्चित रूपसे कहता हूँ कि हम पिछला वैर-भाव भुलाकर संगठित होकर रहेंगे तो हमारी जीत होगी।

श्री प्रैट, श्री कारमाइकेल और [सर जेम्स] डुबालेने अपने सिर हिला-हिलाकर हमारी लड़ाईका भारी विरोध किया है। बातचीतमें भी उन्होंने कहा, 'आप खेड़ाके लोगोंको नहीं जानते। हम नहीं मानते कि इस लड़ाईसे वहाँके लोग आगे बढ़ेंगे, उन्नति करेंगे और नीतिवान् बनेंगे। इससे तो वे लोग उद्धत ही होंगे।' माल-विभागके बड़े अधिकारियोंकी आपके सम्बन्धमें क्या राय है, यह मैं आपको बता रहा हूँ। आपने जो लड़ाई आरम्भ की है उसमें आपको आंशिक ही नहीं, पूर्ण सत्यका पालन करना चाहिए। प्रह्लादसे जब यह पूछा गया कि तुम्हारे भगवान् कहाँ हैं; तब उन्होंने उत्तर दिया "मेरे भगवान् जलमें हैं, थलमें हैं, आकाशमें और पातालमें भी हैं। मुझे भगवान् दसों दिशाओंमें दिखाई देते हैं।" उसी प्रकार यदि हम दसों दिशाओंमें सत्यके दर्शन करें तभी हम इस लड़ाईको सत्याग्रहकी लड़ाई कह सकते हैं। हम सार्वजनिक कार्यमें एक तरहका और निजी व्यवहारमें दूसरी तरहका आचरण नहीं कर सकते। जैसे भगवान् सर्वव्यापक है वैसे ही सत्य भी सर्वव्यापक है। हम यह नहीं कह सकते कि भगवान् अमुक स्थानमें नहीं है। इसी प्रकार हम यह भी नहीं कह सकते कि सत्य अमुक स्थानमें है और अमुक स्थानमें नहीं है।

१. तारीख २० अप्रैल, १९१८ के बॉम्बे क्रॉनिकल में छपी खबरके अनुसार गांधीजीने कहा: "बरसोंसे आप लोग अपनी शक्ति और निडरताका उपयोग पारस्परिक कलहमें करते रहे हैं। एक बार उठें और संगठित हों एवं सशक्त तत्त्वोंका उपयोग सरकारके भयसे लड़नेमें करें, जो आप सबका संयुक्त शत्रु है।"

आप एक गाँवके, एक जातिके और एक धन्धेके लोग हैं, इसीलिए आपको [अपनी-अपनी भूलपर] एक दूसरेसे क्षमा माँगना और संगठित रहना सीखना चाहिए। जो यह कहता है कि सत्याग्रह केवल सरकारके विरुद्ध ही किया जा सकता है, वह सत्याग्रहका अर्थ नहीं समझता। हम सरकारसे धमकी और उद्दंडताके सहारे नहीं लड़ना चाहते; बल्कि प्रसन्नतापूर्वक कष्ट सहकर लड़ना चाहते हैं। जो लोग कष्टोंके निवारणार्थ ज्ञानपूर्वक और सोच-समझकर कष्ट सहते हैं उन्हें कष्टोंसे सदा मुक्ति मिलती है। आपके लिए भी इस लड़ाईको जीतनेका यही मार्ग है। नायकामें पच्चीस किसानोंको जमीनोंकी जब्तीके नोटिस दिये गये और उनकी जमीनें जब्त कर ली गईं। मैंने उन बहादुर भाइयोंको बधाईकी चिट्ठी[1] लिखी। मैंने लिखा कि यह जब्ती तो केवल सरकारी कागजोंमें ही रहेगी। फिर भी आपका प्रण है कि आप जमीनें जब्त हो जानेपर भी विचलित नहीं होंगे और अपनी प्रतिज्ञा निबाहेंगे। सत्याग्रही भाइयोंको सान्त्वना देनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। उन्हें तो बधाई ही देनी होती है। यह उनके लिए आनन्द और धन्यवादका अवसर होता है। इसीलिए मैंने आपको सान्त्वना नहीं दी है, धन्यवाद ही दिया है। मैं आपको भी कहता हूँ कि आप जब्तीके हुक्मका प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करें। मुझे तो स्वप्नमें भी यह नहीं लगता कि सरकार हमारी जमीनोंको जब्त कर सकती है। अंग्रेजी राज्यमें यह असम्भव है। यदि यह सम्भव हो जाये तो मेरे लिए अंग्रेजी हुकूमतके विरुद्ध विद्रोह करनेके अतिरिक्त कोई मार्ग ही नहीं रहता। अर्थात् जमीनें जब्त नहीं की जा सकतीं। आपने प्रतिज्ञा लेकर अपराध नहीं किया है; बल्कि उससे सरकारके प्रति वफादारी दिखाई है। फसल चार आनेसे कम हुई है, इसलिए हमने सरकारसे कानूनके अनुसार सरकारी लगानकी वसूलयाबी बन्द करनेकी प्रार्थना की, उसे आवेदन दिये, सभाएँ करके न्याय की माँग की और धारासभाके हमारे प्रतिनिधियोंने समस्त वैध उपायोंको आजमाया। फिर भी सरकारने लोगोंकी बातपर ध्यान नहीं दिया। तब जिन लोगोंमें बहादुरी है, मर्दानगी है और वफादारी है उन्हें ऐसे अवसरपर क्या करना चाहिए? राजा और प्रजाका सम्बन्ध ऐसा होना चाहिए कि जब राजा और प्रजाके बीच मतभेद खड़े हों तब राजा प्रजाके मुकाबले झुक जाये।

हमारी माँग यह नहीं है कि हमारी बात ठीक मानकर सरकार प्रजाके मुकाबले झुक जाये। हमने तो यही कहा है कि यदि हमने जो-कुछ कहा है वह सत्य सिद्ध हो तो हमें न्याय मिलना चाहिए। हमने पंचकी नियुक्ति की माँग की, उसे भी सरकारने स्वीकार नहीं किया। श्री प्रैटकी मान्यता यह है कि इस सम्बन्धमें लोग न कुछ कह सकते हैं और न कुछ माँग सकते हैं। हम पिछले पचास वर्षसे इस नीतिसे पीड़ित हैं। हम भयसे भिखारी बन गये हैं। हमारे पास इतना भी रुपया नहीं रहा है कि हम अपने घरोंकी सार-सँभाल कर सकें। पैदावार घटती जा रही है। जबतक हममें इतना डरपोकपन है तबतक भगवान् हमपर कृपा-दृष्टि भी कैसे कर सकते हैं? जहाँ राजा और प्रजाके सम्बन्ध सत्यकी नींवपर आधारित होते हैं वहाँ वर्षा भी समयपर होती है। राजा और प्रजा दोनोंमें अपनी-अपनी बातको लेकर वैर बँध गया है। सरकार कहती है कि

१. देखिए पिछला शीर्षक।

उसका कहना सत्य है और प्रजा कहती है कि उसका कहना सत्य है। हम सत्य कहते हैं; सत्य कहनेपर भी हमें राहत नहीं मिलती। राजा और प्रजामें मतभेद हो तो राजा क्या करे; यह बात इस लड़ाईसे तय हो जायेगी। सारे देशके लोगोंकी आँखें आपपर लगी हैं। आप हिम्मत करके डटे रहें; नामर्दी न दिखायें। कार्य आरम्भ न करना बुद्धिमानी है; किन्तु आरम्भ कर दें तो उसे मृत्यु-पर्यन्त न छोड़ना वीरताकी निशानी है।

मुझसे कहा जाता है कि मैं पाटीदारों और गुजरातके लोगोंसे सावधान रहूँ; किन्तु मैं तो सभीको अपने जैसा ही देखता हूँ। सबमें एक ही आत्मा होती है और सबमें शक्ति भी एक ही होती है। हम ज्यों-ज्यों इसके विकासका प्रयत्न करते हैं, यह त्यों-त्यों विकसित होती है। यह मेरा अनुभव है इससे आपका लाभ होगा और आपको राहत मिलेगी। इसीलिए मुझे आशा है कि आप अपनी प्रतिज्ञापर अवश्य कायम रहेंगे। पाटीदार साहसी हैं और क्षत्रिय हैं। वे समझते हैं कि अपनी जमीनोंके मालिक वे खुद हैं। इसलिए उन्हें इसका अभिमान होना स्वाभाविक है। वे अपनी टेक न छोड़ेंगे। वे धर्म न त्यागेंगे; बल्कि अन्ततक लड़ते हुए लोगोंकी बातको सरकारसे मनवायेंगे। ऐसा होगा तो स्वराज्य अपने हाथमें ही है। स्वराज्य अपने अधिकार और कर्त्तव्य समझ लेनेसे मिलेगा। श्री मॉण्टेग्यु प्रत्यक्षतः चाहे इंग्लैंडसे आकर हमें बड़े-बड़े अधिकार दे दें; किन्तु यदि हमें अपने अधिकारों और कर्त्तव्योंका ज्ञान न होगा तो उनसे हमें कोई भी लाभ न होगा। इस बातको समझनेके लिए हमें शिक्षण और प्रशिक्षणकी आवश्यकता है। मेरा खयाल है कि इस सम्बन्धमें आपमें प्राथमिक ज्ञान और समझ है; मेरा विश्वास है कि उसी प्रकार आपने इस लड़ाईके सम्बन्धमें जो प्रतिज्ञा ली है वह विचारपूर्वक ली है। आप इस प्रतिज्ञाका पालन सोच-समझकर करें। इस लड़ाईमें द्वेष-भावके लिए स्थान नहीं है। इसमें तलवार या किसी और हथियारका कार्य भी नहीं है। सत्यके मार्गपर चलना ही अपना हथियार है और साहस एवं श्रद्धा हमारे शस्त्र हैं। सत्याग्रहकी लड़ाईमें हारकी गुंजाइश तो है ही नहीं। यदि हम अपनी जमीनको आत्म-सम्मानसे अधिक प्यारी मानेंगे तो निश्चय ही हारेंगे। मुझे विश्वास है और मैं आशा करता हूँ कि मैंने खेड़ाके लोगों-पर भरोसा किया है, वह झूठा सिद्ध नहीं होगा। मेरी प्रार्थना है कि सरकारके विरुद्ध जूझकर आप खेड़ाका नाम उज्ज्वल करें।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२३४. "अन्त्यज स्तोत्र" की प्रस्तावना

नडियाद

चैत्र सुदी ७, १९७४ [अप्रैल १७, १९१८]

हम लोगों द्वारा अन्त्यजोंके प्रति किया जानेवाला व्यवहार हिन्दू धर्मके अत्याचारोंका ज्वलन्त उदाहरण है। हमारा यह व्यवहार कितना पतित और लज्जास्पद है इसका भाई अमृतलाल पढ़ियारने अपने 'अन्त्यज स्तोत्र' में बहुत सजीव वर्णन किया है। उसमें कविकी अतिशयोक्ति अवश्य है, परन्तु बहुत कम। भाई पढ़ियारने ऐसा मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है कि उसे पढ़कर पाठकको रोमांच हुए बिना नहीं रह सकता। इस स्तोत्रमें उनका क्रोध और उनकी वेदना साफ नजर आती है। यह स्तोत्र लाखों नर-नारियोंको पढ़कर सुनाया जाना चाहिए, ठीक उसी प्रकार जैसे मुहल्ले-मुहल्लेमें स्त्री-पुरुष भागवत आदि ग्रंथोंको सुनते हैं।

जबतक हम अस्पृश्यताके इस दोपसे मुक्त नहीं हो जाते, तबतक हम स्वराज्य भोगने योग्य हैं या नहीं यह एक बड़ा सवाल बना रहेगा। गुलामोंके मालिकोंको अगर स्वराज्य भोगने योग्य कहा जा सकता है तो हम भी हो सकते हैं। यह बात याद रखनी चाहिए कि हम खुद इस समय पराधीन अवस्थामें हैं; उससे मुक्त होनेकी इच्छा रखनेवालेको तो यह चाहिए कि वह अपने दोषोंपर गहराईसे विचार करे। गिरे हुए लोगोंके रजकणके समान छोटे-छोटे दोप हिमालयकी भाँति बड़े मालूम होते हैं। अन्त्यजोंके प्रति हम लोगोंके व्यवहारका भी यही हाल है। और फिर बात ऐसी है कि यह दोष है ही हिमालय-जैसा। इसी कारण वह हमारी उन्नतिमें बाधक बन रहा है। गोधरामें जो अन्त्यज परिषद् हुई थी उसके बाद अस्पृश्यताके बारेमें जो वादविवाद चल पड़ा है उसे मैंने ध्यानसे और विनयपूर्वक समझनेकी कोशिश की है। उसमें मैंने अस्पृश्यताको बनाये रखनेके पक्षमें एक भी जोरदार दलील नहीं पाई। जहाँ शास्त्रके ऊपर आक्रमण किया जा रहा हो वहाँ शास्त्रकी बातें सामने रखकर बचाव करना, यह तो अन्धेके द्वारा न देखी जा सकनेवाली चीजके अस्तित्वसे इनकार करनेके समान है। यदि हम अपने व्यवहारका बचाव न्यायके आधारपर नहीं कर सकते तो शास्त्रोंका सहारा लेना व्यर्थ है। शास्त्र बुद्धिसे और नीतिसे परे नहीं हो सकते। यदि बुद्धि और नीतिका त्याग कर दिया जाये तो किसी भी पाखण्डका धर्मके नामपर बचाव किया जा सकता है।

इस घोर पापसे मुक्त होनेके लिए हमें ऐसा कठोर और सतत् प्रयत्न करना पड़ेगा जैसा कि श्री पढ़ियार कहते हैं, इस प्रकारके प्रयत्नमें ही हमारी उन्नति निहित है। अगर हम यह प्रयत्न पुराने तरीकेसे करेंगे तो धर्म-संग्रहके साथ-साथ अपने उद्देश्यमें सफलता भी प्राप्त कर सकेंगे। और यदि हम पाश्चात्य ढंगसे करेंगे तो हमारे तथा अन्त्यजोंके बीच एक दरार पड़ जायेगी।

जब हमारे बड़े-बूढ़े इस संसारसे विदा हो लेंगे तभी अन्त्यजोंका उद्धार होगा, यह कहना कायरता है। हमारा पुरुषार्थ तो इसमें है कि हम अपने बड़े-बूढ़ोंके हृदयोंमें दया

और शुद्ध धर्मकी भावना जाग्रत करें। और यही हमारा कर्त्तव्य भी है। यदि हम जैसा कहें वैसा हिम्मतसे कर दिखायें तो कार्य शीघ्र सिद्ध होगा। शत्रुको मारकर राज्य भोगनेकी इच्छा तुच्छ इच्छा है। हमारा धर्म यह है कि हम उन्हें अपने मतका बनाकर मित्र बना लें। भाई पढ़ियारको कायरतासे छुटकारा पाना चाहिए।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]

अन्त्यज स्तोत्र

२३५. सन्देश: सत्याग्रही किसानोंको[1]

नडियाद

अप्रैल १७, १९१८

आप लोगोंने श्री प्रैटका भाषण शान्तिपूर्वक, ध्यानसे सुना, यह बहुत अच्छा किया। सत्याग्रहियोंको यही शोभा देता है। संयोगवश हमें सरकारकी लगान सम्बन्धी आज्ञाका अनादर करना पड़ा है, परन्तु सरकारी अफसरोंका उचित सम्मान करना हम न भूलें। हम भय और गुलामीसे मुक्त होना चाहते हैं, परन्तु विनयको नहीं छोड़ना चाहते। उद्धत तो हम हो ही नहीं सकते। सत्याग्रहमें विनय तो सदा रहती ही है।

कमिश्नर साहबने किसानोंके अधिकार और कर्त्तव्य बताये। उनकी दोनों सलाहें ठीक हैं। परन्तु वे यह बताना भूल गये कि मनुष्यमात्रका भी एक सच्चा अधिकार और कर्त्तव्य होता है। वह कर्त्तव्य यह है कि कोई भी व्यक्ति कोई काम डरके मारे न करे; इसलिए यदि कोई उसे डर दिखाकर कोई काम कराना चाहे, तो उसका अधिकार है कि वह उस बातका विरोध करे। इस अधिकारके आधारपर खेड़ाके लोग इस समय सरकारकी आज्ञाका सविनय उल्लंघन कर रहे हैं। हम मानते हैं कि इस साल फसल रुपयेमें चार आनेसे कम हुई है, इसलिए लगानकी वसूली मुलतवी की जानी चाहिए। इसलिए जो लगान मुलतवी किया जाना चाहिए, उसे अगर हम जमा करायेंगे, तो सिर्फ इसी डरसे करायेंगे कि सरकार हमारी जंगम सम्पत्ति बेच डालेगी या हमारी जमीनें जब्त कर लेगी। अगर हम इस डरसे दबकर रह गये तो पौरुषहीन हो जायेंगे। लगभग अस्सी फीसदी किसानोंने इस डरसे लगान अदा कर दिया है। इसलिए बीस फीसदीके हाथमें सौ फीसदीकी लाज रह गई है। जिसने अपना पौरुष खो दिया है, वह सच्ची वफादारी भी नहीं दिखा सकता। पशुओं और मनुष्योंके बीचका भेद पौरुषमें ही निहित है। हमारी यह लड़ाई पौरुष दिखानेकी लड़ाई है।

1. गांधीजीने अपने १५ अप्रैलके अखबारोंको भेजे गये पत्रमें कमिश्नर प्रैटके भाषणपर विचार किया है। इस लेखमें उन्होंने प्रश्नका पर्याप्त विवेचन किया है। महादेव देसाईके कथनानुसार उन्होंने इसे अपने १२ अप्रैलके नडियादके भाषणमें कही गई मुख्य बातोंका स्पष्टीकरण करनेके लिए पुस्तिकाके रूपमें निकाला था।

माल-विभागकी या दूसरी सरकारी आज्ञा लोगोंके आवेदन देनेपर भी न बदली जाये तो उन्हें उस आज्ञाको चुपचाप शिरोधार्य कर ही लेना चाहिए, ऐसी ब्रिटिश संविधानकी भावना नहीं है। यह राजनीति नहीं है। जिस आज्ञाको लोग ज्ञानपूर्वक अन्यायपूर्ण या अत्याचारपूर्ण मानें, उसका विरोध करना उनका जन्मसिद्ध अधिकार और कर्त्तव्य है। जो कानून कुटुम्बपर लागू होता है, वही राजा-प्रजाके बीच भी लागू होता है और जहाँ इस कानूनका भंग होता है, वहाँ राजा और प्रजामें संघर्ष होता है। प्रजा गुप्त रूपसे बेवफाई करती है। राजा अविश्वासी और शंकाशील हो जाता है। सरकारकी आज्ञाका विरोध करते समय एक बात अवश्य याद रखी जानी चाहिए। हम यह पूरी तरह नहीं कह सकते कि सरकारकी आज्ञा अनुचित है। हम उसे अनुचित मानें, तो भी सम्भव है, असलमें वह उचित हो। इसलिए निजी व्यवहारकी तरह राजा-प्रजाके बीचके मतभेदोंका निपटारा भी पंच द्वारा ही कराया जाना चाहिए। पुराने जमानेके राजा ऐसा ही करते थे और अंग्रेज सरकार भी सदा ऐसा ही करती है। ऐसे पंचको वह 'कमीशन' या 'कमेटी' का नाम देती है। राज्यका सम्मान कायम रखनेके लिए इस पंचका निर्णय अदालतोंके जरिए अमलमें नहीं लाया जाता, बल्कि राज्यकी न्याय-परायणतापर निर्भर माना जाता है। फिर भी अन्तिम परिणाम तो जैसा साधारण पंचके निर्णयका होता है, वैसा ही इसके निर्णयका भी होता है। लोकमतका आदर किये बिना हुकूमत चलाना असम्भव है। परन्तु अगर राजा कमेटी या कमीशन भी मुकर्रर न करे, तो प्रजा क्या करे? जिस राष्ट्रमें पशु-बलकी प्रधानता होती है, उसमें मारकाट होती है और प्रजा शस्त्रोंका उपयोग करके न्याय-प्राप्तिके लिए लड़ती है। मेरा अपना तो यह अनुभव है कि यह पद्धति बेकार है। मैं यह भी मानता हूँ कि सभी धर्म-शास्त्रोंमें मारकाट द्वारा न्याय प्राप्त करनेकी पद्धतिकी निन्दा की गई है और इस पद्धतिको हम पारिवारिक व्यवहारमें कभी लागू नहीं करते। सीधा रास्ता यह है कि सरकारी आज्ञाका अनादर करनेमें हमें जो दुःख उठाना पड़े, उसे हम धीरजसे और रोष किये बिना उठायें। इससे बहुतसे मतलब पूरे हो जाते हैं। 'अगर हम झूठे साबित हों, तो जो दुःख हमने उठाया, वह उचित माना जायेगा और अगर सच्चे हों, तो विरोधी पक्ष यानी सरकारी दलमें ममता उत्पन्न हुए बिना रह नहीं सकती।' नतीजा यह होगा कि सरकारके सम्मुख अन्तमें न्याय करनेके सिवा, कोई चारा ही न रह जायेगा। यह तथ्य शास्त्रसे प्रमाणित है। शास्त्रोंमें सत्यकी सदा जय ही मानी गई है और इसकी सत्यता हम समय-समयपर अनुभव करते हैं। इस प्रकार खेड़ाके लोग सत्यके लिए, अर्थात् धर्मके लिए दुःख उठानेके लिए निकल पड़े हैं।

कहीं हम कमजोर न हो जायें, इसलिए हमने अपनेको प्रतिज्ञासे बाँध लिया है। इस प्रकारकी प्रतिज्ञा लिये बिना कोई राष्ट्र उन्नति नहीं करता। 'प्रतिज्ञाका अर्थ है, अटल निश्चय। जो मनुष्य निश्चय नहीं कर सकता, वह बिना पतवारकी नावकी तरह इधर-उधर टकराकर नष्ट हो जाता है।' कमिश्नर साहब कहते हैं कि यह प्रतिज्ञा अनुचित है और बिना सोचे-विचारे ली गई है। प्रतिज्ञा अनुचित नहीं है, यह हम पहले देख चुके हैं; क्योंकि हम जिस आज्ञाको अनुचित मानते हैं, हमें उसका विरोध करनेका अधिकार है। यह प्रतिज्ञा बिना विचारे नहीं ली गई, इस बातको हरएक प्रतिज्ञा

लेनेवाला व्यक्ति जानता है। सूर्यकी गति बदली जा सकती है, परन्तु यह विचारपूर्वक ली गई उचित प्रतिज्ञा हरगिज नहीं बदली जा सकती।

मुझे दुःख है कि श्री प्रैटने अहमदाबादकी मिल-मजदूरोंकी हड़तालके बारेमें अपने भाषणमें सचाईके विरुद्ध बात कही है। इसमें उन्होंने विनय, न्याय-मर्यादा और मित्रताका भंग किया है। मैं आशा करता हूँ कि उन्होंने यह दोष अनजानमें किया है। यदि इस दुनियामें किसीने अपनी प्रतिज्ञाका पालन किया है, तो अहमदाबादके मिल-मजदूरोंने ही किया है। उन्होंने सदा यही कहा था कि पंच जो वेतन तय कर देंगे, उतना वेतन लेना वे मंजूर कर लेंगे। हड़तालके दिनोंमें मालिकोंने इस तत्त्वको अस्वीकार किया। इसीलिए मजदूरोंने पैंतीस फीसदी वृद्धिकी माँग की। उसके बाद भी उन्होंने पंच-निर्णय मान लेनेकी बातको अस्वीकार नहीं किया था। उन्होंने पहले दिन-की पैंतीस फीसदी वेतन-वृद्धि ले ली और प्रतिज्ञा पूरी की। बादमें उसके लिए पंच मुकर्रर किये गये और मजदूरोंने मंजूर किया कि पंच जो वेतन तय कर देंगे, उसे वे ले लेंगे। यह तय हुआ कि इस बीच मालिकोंकी प्रस्तावित बीस प्रतिशत और मजदूरोंकी माँगी हुई पैंतीस प्रतिशतकी औसत वेतन-वृद्धि ले ली जाये और पंच-निर्णयके बाद उस निर्णयके अनुसार लेना-देना ठीक कर दिया जाये। इस प्रकार प्रतिज्ञाकी भावना कायम रखी गई। और कुछ भी हुआ हो परन्तु श्री प्रैट जैसा कहते हैं, मजदूरोंने जानबूझकर प्रतिज्ञा कदापि नहीं तोड़ी। प्रैट साहबको यदि यह मानना ही हो कि मजदूरोंने प्रतिज्ञा तोड़ी, तो वे इसे मान सकते हैं। इसके लिए वे स्वतन्त्र हैं। परन्तु मान्यता तो मजदूरोंकी ही ठीक है। इस तथ्यको श्री प्रैट उलटे रूपमें पेश करते हैं। जब समझौतेकी शर्तें मजदूरोंको समझाई गईं, तब श्री प्रैट मौजूद थे। प्रतिज्ञाका पालन किस तरह किया गया, यह समझाया गया और मजदूरोंने समझौतेका स्वागत भी किया। इन सब बातोंके प्रैट महोदय साक्षी थे। उन्होंने इस समझौतेके बारेमें यह भाषण दिया था:

> आप लोगोंके बीच समझौता हो रहा है, इससे मुझे बहुत प्रसन्नता है। मुझे पूरा विश्वास है कि जबतक आप श्री गांधीकी सलाह लेंगे और उनका कहना मानेंगे, तबतक आपका सुधार होगा और आपको न्याय मिलेगा। आपको याद रखना चाहिए कि आपके लिए श्री गांधी और उनके सहायक स्त्री-पुरुषोंने बहुत परिश्रम किया है, कष्ट सहे हैं और आपके प्रति प्रेम दिखाया है।

इतनेपर भी वे प्रतिज्ञा-भंगकी बात करते हैं। उनकी यह बात मेरी तुच्छ बुद्धि समझ नहीं पाती।

कमिश्नर साहबने तो बहुत धमकियाँ दी हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि वे इन धमकियोंको सच साबित करेंगे। इसके लिए वे प्रतिज्ञा करनेवालोंकी सारी जमीन जब्त करेंगे और उनके वारिसोंको भी खेड़ा जिलेमें जमीनके मालिक बननेके अधिकारसे वंचित कर देंगे।

उनका यह कथन भयंकर, क्रूरतापूर्ण और कठोर है। मेरी समझमें तीव्रतम रोषके वशीभूत होकर वे ऐसा कह रहे हैं। जब कमिश्नर साहबका रोष शान्त होगा, तब ऐसे घोर कथनके लिए उन्हें पश्चात्ताप होगा। सरकार और जनताके बीचके सम्बन्धोंको

उन्होंने 'माता-पिता और बच्चों' के बीचके सम्बन्धों-जैसा माना है। किसी माता-पिताने अपने लड़केको सविनय विरोध करनेपर पद-भ्रष्ट किया हो, ऐसा उदाहरण सारी दुनिया-के इतिहासमें नहीं पाया जाता। खेड़ाके लोगोंकी प्रतिज्ञाका भूलभरा होना असम्भव नहीं है। परन्तु इस प्रतिज्ञामें अविनय, उद्धतता या उदण्डताका लेशमात्र भी नहीं है। ऐसी धार्मिक भावनासे उन्नतिके लिए ली गई प्रतिज्ञाका उपर्युक्त घोर दण्ड दिया जाये, यह मुझे असम्भव लगता है। भारत ऐसे दण्डको सहन नहीं कर सकता और ब्रिटिश अधिकारी कभी उसका समर्थन नहीं कर सकते। ब्रिटिश जनताको ऐसी सजासे अवश्य ही दुःख होगा। अगर ऐसा घोर अन्याय ब्रिटिश राज्यमें हो तो ऐसे राज्यमें मैं विद्रोहीकी हैसियतसे ही रह सकता हूँ। परन्तु ब्रिटिश शासन-नीतिमें कमिश्नर साहबकी अपेक्षा मेरा विश्वास अधिक है। अब भी मैंने जो बात आपसे पहले कही थी उसे फिर दुहराता हूँ कि शुद्ध भावसे किये गये कामके लिए तुम्हें अपनी जमीन खोनी पड़े, मैं इसे असम्भव मानता हूँ। फिर भी हमारी तैयारी जमीन खोनेकी भी होनी चाहिए। हम एक ओर अपनी प्रतिज्ञा और दूसरी ओर अपना सर्वस्व रखें। उस समस्त स्थावर और जंगम सम्पत्तिकी कीमत प्रतिज्ञाके मुकाबलेमें कुछ भी नहीं है। आपकी प्रतिज्ञाके पालनकी विरासत लाखों रुपयेकी जायदादसे कहीं ज्यादा कीमती है। उसमें समस्त भारतको ऊँचा उठानेका रास्ता छिपा है। मुझे विश्वास है कि आप इस रास्तेको कभी नहीं छोड़ेंगे। ईश्वर इस प्रतिज्ञाके पालन करनेका आपको बल दे; यही मेरी कामना है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

२३६. स्वयंसेवकोंको निर्देश

सत्याग्रह शिविर
नडियाद
अप्रैल १७, १९१८

१. स्वयंसेवकोंको याद रखना चाहिए कि चूंकि यह लड़ाई सत्याग्रहकी लड़ाई है, इसलिए उसमें सदा सत्यका प्रयोग ही करना चाहिए।

२. सत्याग्रहमें द्वेषके लिए स्थान नहीं है; इसलिए चौकीदारसे लेकर गवर्नर तक किसी भी कर्मचारी या अधिकारीके लिए कठोर शब्दोंका व्यवहार न किया जाये और यदि कोई करे तो उसे रोकना स्वयंसेवकोंका धर्म है।

३. सत्याग्रहमें उद्धतता नहीं होती। इसलिए जो हमें शत्रु मानते हों उनके साथ भी पूर्ण नम्रताका बरताव करना सीखना चाहिए। उद्धततासे इस लड़ाईको हानि पहुँचती है और वह लम्बी होती है। प्रत्येक स्वयंसेवकको इस सम्बन्धमें भलीभाँति विचार कर लेना चाहिए और लोगोंको अधिकसे-अधिक उदाहरण दे-देकर बताना चाहिए कि हमें विनयसे कैसे लाभ होता है और उद्धततासे कैसे हानि होती है।

४. स्वयंसेवकोंको यह ध्यानमें रखना चाहिए कि यह धर्मयुद्ध है। युद्ध न करनेसे धर्मको हानि पहुँचती थी; इसीलिए हमने यह आरम्भ किया है। अतः धर्म-पालनके निमित्त जिन-जिन नियमोंका पालन करना आवश्यक है उन समस्त नियमोंका पालन किया जाना चाहिए।

५. हम उस शासनका विरोध कर रहे हैं; जो सत्ताके मदसे अन्धा हो गया है; किन्तु हम दूसरी किसी सत्ताका विरोध नहीं कर रहे हैं। यह बात याद रखना जरूरी है। इसलिए अन्य कार्योंमें अधिकारियोंकी सहायता करना हमारा कर्त्तव्य है।

६. पारिवारिक कलहमें हम जिस न्याय-सिद्धान्तको लागू करते हैं, यहाँ हमें उसीकी आजमाइश करनी है। सरकार और लोगोंके मिलनेसे एक महान् कुटुम्ब बनता है, यह मानकर हमें अपने व्यवहारको उचित रूप देना चाहिए।

७. जिनके विचार हमारे विचारोंसे नहीं मिलते उनका न तो बहिष्कार किया जाना चाहिए और न तिरस्कार। किन्तु हमें उनको आदर-भावसे जीतनेका संकल्प करना चाहिए।

८. हमें चालाकीसे एक भी काम नहीं करना है। हमें सदा स्पष्टता और सरलता-का ही व्यवहार करना चाहिए।

९. स्वयंसेवकोंको गाँवोंमें रहते हुए लोगोंसे अपना काम कमसे-कम लेना चाहिए। जहाँ पैदल जा सकें वहाँ सवारीका उपयोग न किया जाये। भोजन अत्यन्त सादा रखनेका आग्रह किया जाये। पूड़ी-पकवानोंका उपयोग करनेसे इनकार करनेमें सेवाकी शोभा होती है।

१०. स्वयंसेवक गाँवोंमें घूमते हुए लोगोंकी आर्थिक दशा, शिक्षा-सम्बन्धी कमी और अन्य बातोंका अवलोकन करें और अपने खाली वक्तमें उन कमियोंकी पूर्तिका प्रयत्न करें।

११. गाँवोंमें बच्चोंको पढ़ानेका अवसर प्राप्त किया जा सके तो उसको प्राप्त किया जाये।

१२. गाँवोंमें स्वास्थ्यके नियमोंका भंग होता हो तो उसकी ओर लोगोंका ध्यान खींचा जाये।

१३. यदि लोग एक-दूसरेसे झगड़ा-फसाद करते हों तो उससे उनको मुक्त करनेका प्रयत्न किया जाये।

१४. लोगोंको फुरसतके वक्त सत्याग्रह-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़कर सुनाई जायें। प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र और अन्य पुरुषोंके आख्यान पढ़कर सुनायें जायें। पाश्चात्य देशोंके और इस्लामके ग्रन्थोंमें शुद्ध सत्याग्रहके उदाहरण मिलते हैं; उन सबसे लोगोंको परिचित कराया जाये।

१५. सत्याग्रहमें किसी भी अवसरपर और किन्हीं भी स्थितियोंमें शस्त्र-प्रयोग-का अवकाश नहीं होता। इस लड़ाईमें ऊँचीसे-ऊँची अहिंसाका पालन किया जाना है यह बात कभी भुलानी न चाहिए। ज्ञानपूर्वक दुःख उठाकर दुःखोंका निवारण कराना ही सत्याग्रह है। इसमें किसीको दुःख देनेकी बात आती ही नहीं। सत्याग्रहमें सदा जीत

ही होती है, हार कभी नहीं होती यह बात स्वयं समझकर लोगोंको समझानी चाहिए।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
खेड़ा सत्याग्रह

२३७. पत्र : ए० एच० वेस्टको

नडियाद
अप्रैल १७, [१९१८]

प्रिय वेस्ट,

मैं यह पत्र एक छोटे-से गाँवसे लिख रहा हूँ। यहाँ मैं श्रीमती गांधी तथा अन्य लोगोंके साथ सत्याग्रहका प्रचार करने आया हूँ। साथमें यह कतरन[1] है। संघर्ष महान् है, किया जाने लायक है, किन्तु इससे मेरा भार अत्यधिक बढ़ गया है।

मैं तुम्हारे पिछले पत्रकी ज्यादा विस्तारसे चर्चा नहीं करूँगा, केवल इतना ही कहूँगा कि "तुम जो चाहो, करो। फीनिक्स और उसके सारे अर्थ-उद्देश्य जितने मेरे हैं, उतने ही तुम्हारे भी हैं। तुम मौकेपर मौजूद हो। अतः तुम्हें जो सबसे अच्छा लगे, अवश्य करो। मैं तो केवल सलाह ही दे सकता हूँ।" तुम ठीक कहते हो, अवश्य ही देशी भाषा-विषयक मेरे विचारोंका असर मेरे 'इंडियन ओपिनियन' सम्बन्धी दृष्टिकोणपर पड़ा होगा। निःसन्देह मैं चाहता हूँ कि यह अंग्रेजीमें निकले, किन्तु मुझे लगता है कि यदि यह अंग्रेजीमें न निकल सके तो इसे गुजरातीमें तो अवश्य ही निकालना चाहिए। शायद तुम यह चाहते होगे कि मैं इसका उलटा कहूँ तो अच्छा हो। मेरे लिए इतना जान लेना काफी है कि तुम मौकेपर मौजूद हो। तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह और विश्वास अक्षुण्ण बना हुआ है। जॉवर्ट पार्कमें तथा अन्यत्र भी हमारे बीच जो हार्दिकतापूर्ण बातें हुई थीं, उनमें से और भी बहुत सारी बातें याद आ रही हैं। उस समय भी यह सवाल उठा था कि 'इंडियन ओपिनियन' को कमसे-कम अंग्रेजीमें तो अवश्य ही प्रकाशित किया जाये। जब मणिलालके पत्रके साथ नत्थी हुआ तुम्हारा पत्र मिला तब मैं जरा भी उत्तेजित नहीं हुआ। मैं जानता था कि तुम शान्त रहोगे और सारी स्थितिको निर्लिप्त भावसे ग्रहण करोगे। मैं तुम्हारे नये तथा साहसिक प्रयोगोंकी पूर्तिको रुचिके साथ देखता रहूँगा। दादीमाँ और श्रीमती वेस्टको मेरा स्नेह कहना। पता नहीं, सैमपर इन सब चीजोंका क्या असर पड़ा है। उसे पत्र लिखनेको कहना।

सस्नेह,

आपका,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४२९) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : ए० एच० वेस्ट।

१. उपलब्ध नहीं है।

२३८. भाषण : दंतेलीमें

अप्रैल १७, १९१८

हम सरकारसे न्याय प्राप्त करनेके लिए यह लड़ाई लड़ रहे हैं। यहाँ आते समय मैंने लोगोंको हलोंमें या गाड़ियोंमें जुते हुए बैलोंको हाँकनेके लिए पिरानीका[1] प्रयोग करते देखा। पशुओंके प्रति यह क्रूरता अक्षम्य है। हम गायोंके रक्षक होनेका दावा करते हैं। गोरक्षाके निमित्त हम मुसलमानोंसे बड़े-बड़े दंगे कर डालते हैं। फिर भी हम बैलोंको आर लगी पिरानीसे मारनेमें नहीं हिचकिचाते। ऐसे पापोंके कारण ही हमें दुःख सहने पड़ते हैं। मुझे आशा है कि आर लगी पिरानीका प्रयोग बन्द कर दिया जायेगा। मैं जब पेटलाद स्टेशनसे बैलगाड़ीमें बैठकर आ रहा था और बैलोंको आरसे कष्ट पाते हुए देखकर मेरे मनमें यह विचार आया कि यदि मैं जूते पहननेमें कोई पाप मानता हूँ तो उससे अधिक पाप जूते पहनकर बैलगाड़ीमें बैठनेमें है। मैं आज यहाँ दयाकी बात करनेके लिए नहीं आया हूँ, बल्कि न्यायकी बात करनेके लिए आया हूँ। मेरी मान्यता ऐसी है कि जब हम अपने लिए न्याय माँगते हैं तो हमें दूसरोंको भी न्याय देना चाहिए; इसीलिए मैंने यहाँ इतनी बातें कही हैं। सरकारी लगान देना कोई बहुत मुश्किल बात नहीं है। हम किसीसे उधार लेकर, या भैंसें या जमीन बेचकर लगान दे सकते हैं। तब हम लगान न देकर चीजें जब्त होने देनेमें या जमीनें जब्त होने देनेकी उपाधि क्यों मोल लें? ऐसा कुछ बुद्धिमान लोग हमें कहते हैं। मैं इसका उत्तर कई जगह दे चुका हूँ। यह प्रश्न लगान देनेका नहीं बल्कि सिद्धान्तका है। हम सरकारके भयसे लगान देते हैं, हम इस भयको ही निकालना चाहते हैं। कमिश्नरने सभामें जो-कुछ कहा उसका तात्पर्य इतना ही था कि लोग सरकारका विरोध नहीं कर सकते। इसके विपरीत मैं आपके मनमें यह तत्त्व बिठाना चाहता हूँ कि सरकारकी अन्यायपूर्ण आज्ञाका विरोध करना अराजभक्ति नहीं है, बल्कि शुद्ध राजभक्ति है। सरकारकी आज्ञाको अविरोध चुपचाप मान लेना कमजोरीकी निशानी है, निरी भीरुता है। हमारे पारिवारिक व्यवहारमें, माँ-बाप अन्याय करें तो बेटे और बेटीको उसका विरोध करनेका अधिकार है। जो नियम परिवारपर लागू होता है, उसीको हम सरकार और लोगोंके बीचके सम्बन्धोंपर लागू करना चाहते हैं। हम सरकारका विरोध करके उसे मारना नहीं चाहते, उससे अनुचित रूपसे कोई चीज नहीं लेना चाहते। हमें तो कष्ट सहकर न्याय प्राप्त करना है। हम अबतक भय और कायरतापूर्वक कष्ट सहते थे; अब हमें वही कष्ट ज्ञानपूर्वक सहना है। सरकारको हमारी परीक्षा करनेका अधिकार है। आप सब भाई और बहन सरकारके साथ खेल खेल रहे हैं; किन्तु सरकार जब जमीनें जब्त करेगी तब आपमें से कितने टिकेंगे, यह देखना है। सरकार सभी बड़े कदम उठायेगी, यदि फिर भी आप नहीं गिरेंगे तो वह यह देखकर सहज ही झुक जायेगी ...।[2] जब लोग सरकारसे एक स्वरमें कहेंगे कि वे उसकी अन्यायपूर्ण आज्ञा कभी न मानेंगे

१. बाँसका डंडा जिसमें नुकीली लोहेकी अनी या आर लगी होती है।

२. यहाँ मूलमें कुछ छूटा हुआ है।

तो वह अवश्य ही झुकेगी, ऐसा सदासे होता आया है। हमें अपनी सरकारके प्रति वफादार रहना चाहिए। यह हमारा कर्त्तव्य है। ऐसे वफादार लोगोंको अंग्रेज सरकारसे न्याय प्राप्त करनेमें क्या कठिनाई हो सकती है? इसलिए मैं आप सबसे कहता हूँ कि आप सब अन्त तक पक्के रहें और हिम्मत न हारें।

यह वांछनीय है कि आप लोग सत्याग्रहका मर्म भलीभाँति समझ लें। आजसे चार दिन पूर्व मैं बम्बईमें श्री कारमाइकैलसे मिला था। ये बम्बई सरकारके माल-विभागके प्रधान अधिकारी हैं। उन्होंने बातचीतमें मुझसे पूछा कि इस लड़ाईसे अन्तमें लोगोंकी नैतिकतामें वृद्धि होगी या कमी होगी, वे सत्ताके प्रति विनयशील होंगे या उद्धत। मैंने उनसे कहा कि उनकी नैतिकता और राजभक्तिमें कमी होनेकी कोई आशंका नहीं है। सत्याग्रहकी लड़ाईमें नैतिकता और शिष्टता अवश्य ही बढ़ती है। यदि सत्याग्रहसे हमारी अधोगति हो तो उसे सत्याग्रह नहीं कहना चाहिए, बल्कि दुराग्रह कहना चाहिए। हमारी फसल ज्यादातर स्थानोंमें चार आनेसे भी कम हुई है और कुछ गाँवोंमें छ: आनेसे कम हुई है। इसलिए लगानके कानूनके मुताबिक आधा लगान मुल्तवी किया जाना चाहिए। हमारी यही माँग है और वह उचित है, इसीलिए हमने सरकारसे यह प्रार्थना की है। सरकारने फसलके बारेमें हमारा यह अन्दाज ठीक नहीं माना। हमने उससे जाँच करनेके लिए जाँच समितिकी नियुक्तिकी माँग की। हमने सरकारको आश्वासन दिया कि यदि अधिकारियोंका अन्दाज ठीक सिद्ध हो तो वे उसे स्वीकार कर लेंगे। किन्तु सरकारने फिर भी जाँच-समिति नियुक्त नहीं की। इन स्थितियोंमें हम सरकारी लगान नहीं देंगे। यदि हम इस लड़ाईके द्वारा सरकारसे अपनी माँगें न मनवा सकें तो हम फिर कभी उसके सामने अपना सिर ऊँचा न उठा सकेंगे। मैं देखता हूँ कि आपके दुमंजिले मकान टूट-फूट रहे हैं। इसका कारण यह है कि आपके पास इनकी मरम्मत-के लायक पैसा नहीं है। मैं इससे यह कल्पना कर सकता हूँ कि लोग कंगाल हो गये हैं। दुष्काल तो हमारे भाग्यमें ही लिखे हैं। अन्न और कपड़ेकी महँगाई बेहद है। रोग इतने बढ़ गये हैं कि लोग लड़ाई न होनेपर भी अकालही कालके ग्रास हो रहे हैं। इस स्थितिमें मैंने खेड़ा जिलेके लोगोंको, जो आत्म-सम्मानका मूल्य जानते हैं, अन्याय और अत्याचारके कष्ट सहन करके न्याय प्राप्त करनेकी सलाह दी है। हम उद्धत होकर नहीं, वीर बनकर यह न्याय प्राप्त कर सकते हैं। हमारी लड़ाई ऐसी सीधी है कि उससे हमारा नीतिबल बढ़ेगा ही। इसलिए मैं आपसे आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि आप सत्यका त्याग कदापि न करें। जिसे सत्यकी झलक मिल गई है, वह अपने प्रत्येक कदममें सत्य और नीति-पर ही चलेगा। आप अपने-अपने जीवनमें शिष्टता और सत्यका समावेश करें। आप इस महान् संकटके समय एक होकर सरकारसे जूझें। आप लोगोंके लिए उन्नति करनेका यह उत्तम अवसर है।

मैं समस्त भाइयोंसे आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि आप सब दृढ़ रहें। मैं बहनोंसे कहता हूँ कि आप अपने पतियों, भाइयों और पुत्रोंको हिम्मत बँधायें।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२३९. भाषण : चिखोदरामें

अप्रैल १७, १९१८

पिछले सप्ताह में आप लोगोंसे मिलनेकी आशा करता था; किन्तु मैं कमिश्नरसे मिलने अहमदाबाद चला गया और फिर उनके बड़े अधिकारी श्री कारमाइकेलसे मिलनेके लिए बम्बई जाना पड़ा। इसलिए मैं अपनी आशाके अनुसार जल्दी नहीं आ सका। चिखोदरा और आसपासके दूसरे गाँवोंमें, जिनमें दयानन्द सरस्वतीका शासन चलता है, मैं और वल्लभभाई आप लोगोंको प्रोत्साहन देने नहीं, बल्कि आप लोगोंसे प्रोत्साहन पानेके लिए यहाँ आये हैं; दूसरे शब्दोंमें कहूँ तो आप लोगोंमें अग्नि प्रज्वलित करनेके लिए नहीं, बल्कि दिव्य प्रकाश पानेके लिए आये हैं। मुझे विश्वास है कि आप इस लड़ाईमें अन्त तक टिके रहकर मेरी इस मान्यताको सत्य सिद्ध करेंगे।

भारतमें भूतकालमें जितने महान् आध्यात्मिक गुरु उत्पन्न हुए हैं, उनमें दयानन्द सरस्वतीका भी स्थान है। मुझे आशा है कि ऐसे महान् सद्गुरुका अनुयायी होनेसे इस गाँवमें और आसपासके अन्य गाँवोंमें वेदोंका शुद्ध पाठ गूंज रहा होगा और लोगोंका आचरण वेदानुकूल होगा।

इसके अतिरिक्त मुझे आशा है कि इस गाँवमें और आसपासके गाँवोंमें यमों और नियमोंका पालन किया जाता होगा और उसके साथ शुद्ध स्वदेशी व्रत भी पाला जाता होगा। मुझे यह जानकर बहुत दुःख हुआ है कि चिखोदरा गाँवके लोग अपने गाँवका बुना हुआ कपड़ा नहीं पहनते, मिलोंका कपड़ा पहनते हैं। मैं आपमें से बहुतोंके कपड़े देखकर चकित होता हूँ। मैं देखता हूँ कि उनकी पोशाक मिलोंके कपड़ेसे बनी है; फिर चाहे वे मिलें देशी हों या विदेशी। मिलोंके बने कपड़ेमें पचहत्तर फीसदी विदेशी है, ऐसा मैं मानता हूँ। जिन मशीनोंसे यह कपड़ा बुना जाता है वे विदेशी हैं, और इसका पूरा लाभ दूसरे देशोंके मजदूरोंको मिलता है। जो लोग मिलोंका कपड़ा पहनते हैं उन्हें इतना सन्तोष हो सकता है कि इसको बनानेकी मजदूरी तो हमारे मिलके मजदूरोंके पास जाती है। किन्तु ये मजदूर अपनी खेती-बारी छोड़कर मिलोंमें काम करने आये हैं, इस बातको कम लोग ही सोचते हैं। इसलिए मेरी सलाह है कि इस गाँवमें और इसके आसपासके अन्य गाँवोंमें, जहाँ दयानन्द सरस्वतीका शासन चलता है, रहनेवाले लोग अपने गाँवमें बना कपड़ा पहनकर अपरिग्रह और अहिंसाके व्रतोंका पालन करें; स्वदेशी व्रतके पालनमें इन दोनों व्रतोंका पालन आ जाता है। स्वदेशी व्रतके पालनमें सत्याग्रहका मूलमन्त्र निहित है। उसका संक्षिप्त दिग्दर्शन करानेके बाद मैं प्रस्तुत विषयपर आता हूँ।

सरकारके अन्यायके विरुद्ध सत्याग्रहका आश्रय लेनेमें सत्य और अहिंसाका पालन करना बहुत जरूरी है। सरकार कानून है कि जहाँ फसल छः आनेसे कम हुई हो

वहाँ सरकारको आधा लगान मुलतवी करना ही चाहिए। सरकार इस कानूनपर अमल करनेसे इनकार करती है और ऐसी कड़ी बात कहती है: "इससे आपको कोई लाभ न होगा; बल्कि आपकी हानि ही होगी। लोग मालगुजारी कानूनके सम्बन्धम कुछ नहीं कह सकते।" सरकारका दावा है कि हम इस मामलेको न्यायालय या उच्च न्यायालयमें नहीं ले जा सकते। लोग कायदेके मुताबिक कलक्टरको प्रार्थनापत्र दें, यदि वह न माने तो कमिश्नरसे अपील करें और यदि कमिश्नर भी न माने तो वे गवर्नरके पास तक जा सकते हैं। किन्तु इस मामलेमें तो कमिश्नरने लोगोंको धमकियाँ देनेमें कोई कसर बाकी नहीं रखी है। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने गवर्नरका यह पत्र भी मँगा लिया है कि वे स्वयं जो-कुछ करेंगे उसको गवर्नर ज्योंका-त्यों कायम रखेंगे। वे इस हद तक आगे जा चुके हैं। मैंने किसी हाकिमके हाथमें इतना निरंकुश अधिकार नहीं देखा है और न सुना है। हमारे राजा कई बार अन्याय करके लोगोंका सर्वस्व अपहृत कर लेते थे; किन्तु अंग्रेजोंके राज्यमें ऐसा किया जा सकता है, मुझे इसपर विश्वास नहीं होता। हमने कानूनकी मर्यादामें रहते हुए लगान न देनेका निश्चय किया है; इसमें सरकारके प्रति कोई अराजभक्ति नहीं है। हम तो कानूनको सादर मान्य करते हैं और चाहते हैं कि सरकारी हाकिम भी उस कानूनको मानें। मैं आपको सलाह देता हूँ कि तीस लाख तो क्या तीस करोड़की भी जमीन हो तो भी हमें उसे जब्त हो जाने देना चाहिए। हमारी यह लड़ाई सत्याग्रहकी लड़ाई है; इसलिए हमें इसे शुद्ध आत्मबलसे लड़ना चाहिए। इसका सार यही है कि हमारे ऊपर जो दु:ख आयें उनको हम सहन कर लें। इसमें पूरा अहिंसा-धर्म आ जाता है, और इसी कारण हमारा यह युद्ध धर्मयुद्ध है। हम शासकोंको आतंकित करके नहीं, बल्कि उनकी न्याय-भावनाको जाग्रत करके जीतना चाहते हैं। ऐसा करनेसे हम राजद्रोही या अधर्मी नहीं ठहरते। हमारी लड़ाईकी नींव सत्यपर रखी गई है और हम दया, धर्म और नीतिके आधारपर सरकारसे न्यायकी आकांक्षा करते हैं। इस प्रकार हमारा कार्य पूर्णतः शुद्ध है। मुझे चिखोदराके भाइयों और बहनोंपर विश्वास है कि वे सभी सत्याग्रहका सच्चा अर्थ समझकर उसे ग्रहण करेंगे। दु:खोंके निवारणकी रामबाण औषध सत्याग्रहके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। यदि आप इसका उपयोग करेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि हमारे वर्तमान दु:खों और अन्य सभी दु:खोंके निवारणका सच्चा उपाय एक ही है। आपने जो लड़ाई आरम्भ की है उसमें आप अन्ततक टिके रहें। यदि आप ऐसा न करेंगे तो यही कहा जायेगा कि आपने धर्मका त्याग किया है। साथ ही भारतपर उसका प्रभाव बहुत बुरा होगा। इस लड़ाईसे हम खेड़ा जिलेकी सरकारको यह सूत्र समझायेंगे कि वह लोकमतकी अवहेलना करके शासन नहीं चला सकती। इस लड़ाईका सच्चा मर्म यही है। और इसे सार्थक करना आपके हाथमें है। आपने सत्यकी खातिर प्रतिज्ञा ली है। आप यदि रामायण पढ़ेंगे तो समझेंगे कि प्रतिज्ञाका मूल्य बहुत-बड़ा है। अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहनेवालेको मोक्ष मिल सकता है। चाहे जितने संकट आयें, आकाश-पाताल एक हो जाये; किन्तु आप अपनी प्रतिज्ञापर आरूढ़ रहें। मैं बहनोंसे इतना ही कहता हूँ कि चाहे आपके घरका सब साज-सामान चला जाये, आपके पशु चले जायें और जमीन चली

जाये तो भी आप निराश न हों और प्रतिज्ञाके पालनमें पुरुषोंका साथ दें। ईश्वर आपको इस प्रतिज्ञाके पालनकी सुबुद्धि दे।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२४०. भाषण: रासमें[1]

अप्रैल १८, १९१८

मैं और वल्लभभाई पिछले सप्ताह यहाँ आनेवाले थे; किन्तु मुझे बम्बई और अहमदाबाद जाना पड़ा अतः आ नहीं सके। इसके लिए आपसे क्षमा-प्रार्थी हूँ।

आजकी सख्त धूपको देखते हुए मैंने सहज ही पूछ लिया कि सभाकी जगह कितनी दूर है। मुझे बताया गया कि पास ही है; अतः मैंने पैदल चलकर ही आनेका निश्चय किया। किन्तु उन युवकोंने ऐसी व्यवस्था की कि मुझे धूप न लगे। निश्चय ही, यह मेरे प्रति आप भाइयोंके प्रेमका सूचक है। उनके इस सद्व्यवहारसे यह भी सार निकलता है कि मैंने आपको जो सलाह दी है वह आप सबको अच्छी लगी है। परन्तु आप जानते हैं कि मेरी इस सलाहसे न तो आप सुखकी नींद सो सकेंगे और न मैं ही। उसी प्रकार मेरे साथी कार्यकर्त्ता भी आरामसे नहीं बैठ सकते। इसके कारण उन्हें दुःख उठाना है, रातोंमें जागरण करना है और गाँव-गाँव भटकना है। यदि आपकी भैंसें कुर्क की जायें तो उन्हें आप कुर्क हो जाने दें, यदि आपके गहने जाते हों तो जाने दें और जमीनें जब्त की जाती हों तो उन्हें जब्त हो जाने दें। मेरी सलाह अच्छी है, इसीलिए आप उसे मानते हैं और इसी कारण आप मेरे ऊपर इतनी स्नेह-वर्षा करते हैं। मुझे इससे अपने मनमें बड़ी प्रसन्नता होती है। किन्तु इनके साथ-साथ मेरे ऊपर कितना दायित्व आता है और वह लड़ाई जमनेके साथ-साथ कितना बढ़ता जाता है, मुझे इसकी पूरी कल्पना है। यह प्रश्न अत्यन्त जटिल और गम्भीर है। किन्तु फिर भी मुझे अपने अन्तरकी गहराईमें भी ऐसा नहीं लगता कि मुझे यह आन्दोलन वापस ले लेना चाहिए। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं और इस लड़ाईका सच्चा रूप निखरता आता है, त्यों-त्यों मुझे लगता है कि यदि मैंने खेड़ा जिलेके लोगोंको यह सलाह न दी होती तो मैं जनताके प्रति नमकहराम माना जाता और मैं गुजरातमें शान्तिपूर्वक बैठकर समाज और देशकी शुद्ध भावसे जो सेवा कर रहा हूँ, उसमें कोई त्रुटि है, ऐसा मुझे निरन्तर लगता रहता। इस अवसर पर मैंने आप सब बहनों और भाइयोंको जो सलाह दी है उससे आपका नैतिक स्तर ऊँचा होगा और उनकी उन्नति भी होगी एवं देश-भरमें खेड़ाके लोगोंका डंका बज जायेगा।

१. गांधीजी और उनके साथी बोरसद ताल्लुकेके रास गाँवमें गये थे। वहाँ जो सभा हुई उसमें आसपासके गाँवोंके किसान बड़ी संख्यामें आये थे।

यदि दूसरी दृष्टिसे देखें तो सरकारकी वर्तमान नीति ऐसी है कि यह न लोगोंकी बात पूछती है और न उनके मतका आदर ही करती है। धारासभाओं, नगरपालिकाओं और अन्य सार्वजनिक संस्थाओंमें उसके व्यवहारका हमारा अनुभव यही है। क्योंकि उनके पीछे लोकमतका बल तो होता नहीं।[1] हम जब सिपाही जैसे छोटे कर्मचारीको देखकर डर जाते हैं और चौकीदार आता दिखाई दे तो तुरन्त भाग जाते हैं तब बड़े हाकिमोंसे तो आँखें मिला ही कैसे सकते हैं। हम उनके सम्मुख एक शब्द भी नहीं बोल सकते। यह स्थिति पशुओंसे भी हीन है। पशु भी मारनेपर अड़ जाता है और हमारी इच्छाके वश नहीं होता। उनकी तुलनामें हमारी स्थिति कैसी है, इसपर विचार तो करें। इसलिए यदि हम अपनी मनुष्यता सिद्ध करना चाहते हैं तो हमें भय त्याग देना चाहिए। यदि हम ऐसा करेंगे तो इस लड़ाईमें विजयी होंगे। किसानोंने नडियादकी सभामें श्री प्रैटको साहसपूर्वक उत्तर दिया। इसी प्रकार गवर्नरको भी हम अपनी स्थिति बता सकें, इतना साहस हममें आना चाहिए। हमें उद्धततासे नहीं लड़ना है; हमें तो अपना आत्मबल खर्च करके लड़ना है, दु:ख सहन करके जीतना है। यह एक सनातन दिव्य नियम है। हमारे धर्मशास्त्रोंमें बताया गया है कि सुख भोगनेके लिए दु:ख भोगने ही पड़ते हैं, तपस्या करनी ही पड़ती है। राजा दशरथको राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न जैसे पुत्र प्राप्त करनेके लिए तपस्या करनी पड़ी थी। राजा नलने भी सत्य और आत्मसम्मानकी खातिर तपस्या की और असंख्य कष्ट सहे। इसी कारण हम प्रातःस्मरणीय पुण्यात्मा पुरुषोंका नाम जपते हैं। ये देवकथाएँ हमें अपने पूर्वजोंसे मिली हैं . . .।[2] हम दु:ख सहन करके सत्य और अहिंसाके मार्गसे अपने दु:खोंकी निवृत्तिका प्रयत्न कर रहे हैं . . .[3] अब खेड़ा जिलेके लोगोंने संसारके सम्मुख इस सिद्धान्तके प्रतिपादनका बीड़ा उठाया है . . .।[4] हमारी फसलें चार आनेसे कम हुई हैं। इसलिए मालगुजारी कानूनके अनुसार सरकारको इस साल लगान मुलतवी कर देना चाहिए। श्री प्रैटका कहना है कि हमारे आँकड़े गलत हैं और वे लगान वसूल करना चाहते हैं। हम कहते हैं कि हमारी बात सौ फीसदी ठीक है और सरकारके आँकड़े गलत हैं। इसलिए सरकारको लगान मुलतवी करना चाहिए। इस प्रकार इस लड़ाईमें एक साधारण-सा स्वार्थ [अवश्य] निहित है। किन्तु इसमें इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण एक यह मुद्दा समाविष्ट है कि सरकारको लोकमतका आदर करना सीखना चाहिए। इस लड़ाईसे लगान माफ होगा और प्रजाबलका मान भी होगा; यह कोई साधारण बात नहीं है। अतः हमें दु:ख सहन करके अपनी टेक रखनी चाहिए। हमने बिना विचारे प्रतिज्ञा नहीं ली है। पूर्णतः विचार करनेके बाद ही हमें यह बीड़ा उठाना चाहिए। जो प्रतिज्ञा शुद्ध हेतुसे लोकसंग्रहके निमित्त ली जाती है, वह चाहे सूर्य पूर्वके बजाय पश्चिममें उदित हो तब भी टूट नहीं सकती है। मेरी प्रार्थना है

१. तारीख २२-४-१९१८ के बॉम्बे क्रॉनिकल और २४-४-१९१८ के न्यू इंडियामें छपे विवरणोंमें ऐसी ही बात कही गई है। उनमें यह वाक्य भी है: "और इनके साथ मतभेदकी गुंजाइश नहीं है।"

२, ३ व ४. मूलमें ये स्थान रिक्त हैं।

कि आप इस प्रतिज्ञापर कायम रहें। यह मेरी विनम्र सलाह है। इस प्रतिज्ञासे आत्म-शुद्धि होगी और समस्त दुःखोंका निवारण हो जायेगा।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२४१. पत्र : तमिल भाइयोंको[1]

[नडियाद]
अप्रैल १९, १९१८

[प्रिय मित्रो,]

इतनी अधिक संख्यामें आप लोगोंके हस्ताक्षरोंके साथ पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। जहाँतक हो सकेगा, जल्दी ही मैं आपके लिए शिक्षक भेजूंगा। मैं किसी ऐसे व्यक्तिकी तलाशमें हूँ, जो अपने हिन्दी-प्रेमसे प्रेरित होकर आपको हिन्दी सिखानेके लिए स्वेच्छासे आगे आये। इस महान् राष्ट्रीय प्रयत्नकी सफलता इसीपर निर्भर है कि खुद मद्रास प्रान्तमें लोग कितना काम करते हैं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि तमिल भाई-बहन अवसरके अनुरूप ही शौर्य दिखायेंगे। हम हिन्दी भाषाको हिन्दुस्तानके एकसे दूसरे सिरेतक परस्पर व्यवहारकी आम भाषा बना दें, तो फिर राष्ट्र-सेवा करनेकी हमारी शक्ति कोई भी सीमा स्वीकार नहीं करेगी।

[आपका,]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२४२. भाषण : कासरमें[2]

अप्रैल २०, १९१८

मैं यहाँ अधिक कहना नहीं चाहता। गाँवकी स्थिति कैसी है इस सम्बन्धमें मैंने जानकारी ले ली है। जहाँ गाँवके लोगोंमें समता और दृढ़ता होती है, वहाँ परिणाम तो अच्छा होता ही है। आपको चौथाईका नोटिस दिया गया है। आपकी भैंसें कुर्क कर ली गई हैं। आपके गहने भी जब्त कर लिये गये हैं। आपने यहाँतक तो सहन कर लिया। अब जमीनोंकी जब्तीका प्रश्न आया है। आप यह बात निश्चित रूपसे

१. हिन्दी सीखनेके इच्छुक २३ वकीलों और स्नातकोंने गांधीजीसे एक अध्यापक भेजनेका अनुरोध किया था। यह पत्र उसीके उत्तरमें लिखा गया था

२. गांधीजी २० अप्रैलको कस्तूरबा, मनु सूबेदार, वल्लभभाई पटेल और अन्य लोगोंके साथ आनन्द ताल्लुकेमें कासर, अजरपुरा और समरखा गये थे और किसानोंकी सभाओंमें बोले थे

ध्यानमें रखें कि हमारी प्रतिष्ठा हमारी टेकपर निर्भर है और हमारी टेकपर हमारी जमीन निर्भर है। हमारी टेक जमीनपर निर्भर नहीं है। यदि आप सब सरकारसे जूझनेके लिए तैयार हों तो हम निश्चय ही सरकारको आपकी यह जमीन पचने न देंगे। नायकामें एक सौ अठत्तर बीघे जमीन जब्त की गई है, परन्तु केवल कागजपर लिख लेने-मात्रसे जमीन जब्त हो गई, यह मैं नहीं मानता। सरकार जमीनोंके आसपास दीवार तो बना नहीं लेगी जिसमें हम घुस नहीं सकेंगे। और इस सत्याग्रहकी लड़ाईमें सरकार ऐसा कुछ नहीं कर सकती। इसलिए आप मजबूतीसे जमे रहें। इससे आपकी और भारतकी गौरव-वृद्धि होगी। यदि आप हार मान बैठेंगे तो उससे देशके किसानोंको निराशा होगी। आप एक बात और याद रखें। जिन भाइयोंने सत्याग्रह अपनाया है वे दूसरोंपर जुल्म नहीं कर सकते। यह सनातन सत्य है और सूर्यकी किरणोंकी तरह व्यापक है। जैसे हम सरकारसे यह कहते हैं कि वह हममें सत्ताकी आर नहीं चुभा सकती; उसी प्रकार आप गाँवकी सभी जातियोंसे शुद्ध न्यायका व्यवहार करें।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२४३. भाषण: अजरपुरामें

अप्रैल २०, १९१८

मैं इस गाँवमें एक बार पहले आ चुका हूँ। किन्तु आपके आग्रहके कारण हम सब यहाँ फिर आये हैं। यहाँके अध्यापकोंने लोगोंकी तहसीलदारसे हुई सुन्दर बातचीतका विवरण भेजा था और कुछ स्पष्टीकरण माँगा था। हम यहाँ इस कारणसे ही आये हैं।

सबसे पहले मैं आपसे तहसीलदार द्वारा दिये गये तर्कके सम्बन्धमें दो शब्द कहूँगा। उन्होंने कहा कि जब आपके बाप-दादोंने सरकारसे ज़मीन ली थी तब उन्होंने जो करार किया था आपको उसका पालन करना चाहिए। अब हमारे बाप-दादोंने सरकारसे क्या करार किया होगा, उसपर विचार करें।

तहसीलदारने जिस करारकी बात कही है वह हमारे बाप-दादोंने नहीं किया। सरकार अपने अनुकूल कानून बनाती है और हम अनुकूल न होनेपर भी उनको मंजूर करते हैं। उदाहरणार्थ लगानके कानूनको हम अनुकूल न होनेपर भी मानते हैं। पुराना नियम क्या था? पुराना नियम तो यह था कि सरकारको चौथाई दी जाती थी अर्थात् अपने खेतोंमें उपज हो तो सरकार चौथा भाग ले जाये और उपज न हुई हो तो कुछ भी न ले। यह है हमारी पुरानी पद्धति। वर्तमान सरकार मानती है कि उसने जो-जो नियम बनाये हैं वे लोगोंके लिए हितकर हैं। इस सरकारने अनाजका भाग लेनेके बजाय जमीनका लगान नकद रुपएके रूपमें लेना आरम्भ किया। मैं नहीं मानता कि सरकारके इस नियमसे लोगोंका हित हुआ है। जमीनके लगानके कानूनका एक कायदा यह है कि

फसल चार आनेसे कम हुई हो तो लगान मुलतवी कर दिया जाये; किन्तु अधिकारी कहते हैं कि लगान मुलतवी करना सरकारकी मेहरबानी पर निर्भर है और सरकार चाहे तो ही यह मेहरबानी कर सकती है। यह स्पष्ट अन्याय है। राजसत्ता एक ही तरहसे चल सकती है और वह है लोकमतका सम्मान करके।

हमारी लड़ाई केवल लगान मुलतवी करानेके लिए नहीं है। ऐसी राहतके लिए की गई लड़ाई तो तुच्छ होती। परन्तु इस लड़ाईके पीछे जो महत्त्वपूर्ण मुद्दा है, हम उसके लिए लड़ रहे हैं। और यह मुद्दा है प्रजासत्ताक राज्यका। इससे प्रजासत्ताक राज्यका पुनरुद्धार होगा। लोग अब जाग्रत हो गये हैं और अपने अधिकारोंको समझने लग गये हैं। इन अधिकारोंको भलीभाँति समझना ही स्वराज्य है। इस लड़ाईके मूलमें जो तत्त्व हैं उन्हें सींचकर उगाना चाहिए ताकि इस वड़की शीतल छायाकी भाँति भावी सन्तानोंको उनके मधुर फल मिलें। यह लड़ाई इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिए है। सरकार चाहे तो हमपर हँस सकती है; किन्तु आपको समझ लेना चाहिए कि यह लड़ाई थोड़ेसे पैसोंकी लड़ाई नहीं है, वल्कि इससे भावी प्रजासत्ताक राज्यतन्त्रकी इमारतकी नींव पड़ेगी।

यदि लोग कायर होकर अपने अधिकारोंको छोड़ देंगे तो वे पतित हो जायेंगे। भारतीय लोगोंके प्रति सहानुभूति रखनेवाले उनके प्रेमी मित्र सर विलियम वेडरबर्न जबतक जीवित रहे, यह कहते रहे कि भारतमें ज्यों-ज्यों ग्राम-पंचायतें नष्ट होती गईं, त्यों-त्यों लोगोंके हाथसे स्वराज्यकी कुंजी निकलती गई। ग्राम-पंचायतोंका उद्धार पुस्तकें लिखनेसे न होगा। यदि गाँवोंके लोग यह समझ जायें कि वे अपने-अपने गाँवोंकी व्यवस्था कैसे कर सकते हैं तभी यह कहा जा सकेगा कि स्वराज्यकी सच्ची कुंजी मिल गई।

सत्याग्रहकी लड़ाई व्यापक है। हमारा जीवन सत्यपर टिका हुआ है। यदि जब्ती आये और कोई चीज न हो तो आप कह दें कि आपके पास कुछ नहीं है। यदि आपके यहाँ माल रखा हो और आपको देना न हो तो साफ कह दें कि आपके पास माल है; किन्तु आप उसे देना नहीं चाहते।

यदि आप सरकारी अधिकारियोंको खाने-पीनेका सामान न देना चाहते हों तो आप उन्हें तुरन्त ना कह दें। परन्तु आप उन्हें यह तो कह नहीं सकते कि हमारे पास अन्न न होनेके कारण हम खाने-पीनेकी सामग्री नहीं दे सकते। सत्याग्रहीको समस्त अवसरों पर सत्य ही बोलना चाहिए। सत्याग्रहके सिद्धान्तोंको पूरी तरह समझकर सत्यानुकूल और नीतिमय आचरण करना चाहिए। सत्य ही भगवान् है। आपके गहने या आपकी जमीन भले ही चली जाये; परन्तु आपका धर्म नहीं जाना चाहिए। मेरी प्रार्थना है कि ईश्वर आपको अपनी प्रतिज्ञाके पालनकी शक्ति दे। इस प्रकार धर्मकी पुनः स्थापनामें स्वराज्यकी कुंजी निहित है।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२४४. भाषण : पालेजमें[1]

अप्रैल २२, १९१८

हमारी दैनिक जीवनचर्यामें दो कमजोरियाँ दिखाई देती हैं। एक, हमारे काम ऊपरी होते हैं और दूसरे, हम जो भी काम करते हैं समझकर नहीं करते। जैसे कोई अभिनेता नाटकमें अपने कंठस्थ किये गये अभिनयको दुहराता है वैसे ही हम भी कार्य करते हैं। फलतः उनका अपेक्षित परिणाम नहीं होता। जैसे हरिश्चन्द्र पात्रके अभिनेतामें सत्यकी सम्पूर्ण व्याप्ति नहीं होती; हमारे समाजका व्यवहार भी इसी प्रकार चल रहा है। यहाँ इन कन्याओंने वन्देमातरम् गीत गाकर यही सिद्ध किया है। हमें अपना कार्य अधूरे मनसे करनेकी आदत हो गई है; किन्तु हम जबतक अपना कार्य पूरे मनसे न करेंगे तबतक हमें सफलता न मिलेगी।

हमारे पूर्वजोंको इसका खयाल था, इसलिए वे मन्त्रोंके शुद्ध उच्चारणपर विशेष ध्यान देते थे। यदि उसमें कोई अशुद्धि हो जाती तो वे उसे पाप मानते थे। आपने वन्देमातरम् जैसा गौरवशाली गीत कन्याओंसे गवाया। हम इस गीतका गौरव, उसकी ध्वनि और लय नहीं जानते। इसी प्रकार इस लड़ाईमें हम अपना काम अधूरा ही करते हैं, ऐसा मुझे लगता है। किन्तु यदि हमारा काम अधूरा होगा और हमने उसे उचित प्रकारसे समझा न होगा तो इन कन्याओंके गीतकी तरह हमारी लड़ाई निष्फल रहेगी। मैं ऐसी कटु आलोचना इसलिए करता हूँ कि अपनी इस लड़ाईमें आप सभी लोग सावधान रहें।

दूसरी कहनेकी बात यह है कि हमें इस लड़ाईको भलीभाँति समझकर चलाना चाहिए। श्री प्रैटने एक बार मुझसे यह बात पूछी थी कि जो काम मैं कर रहा हूँ क्या उसे लोग भलीभाँति समझते हैं। यदि लोग मेरे कार्यको न समझेंगे. तो उसका परिणाम बुरा हुए बिना न रहेगा। हमें इस पवित्र लड़ाईमें अपना काम कच्चा न रखना चाहिए। हम तो छोटे-छोटे कर्मचारियोंसे भी डरते हैं। ऐसा न होना चाहिए। मैं बार-बार कहता हूँ कि बड़े अधिकारियोंसे मिलना हो तब भी उसमें हमारे लिए चिन्ता करनेकी क्या बात है। केवल इतना ही ध्यानमें रखना चाहिए कि बातचीतमें, हमारी भाषामें मिठास हो। यदि मतभेद भी हो तो उसे भी अच्छे शब्दोंमें प्रकट किया जाये। यदि हम इन दोषोंको अपनी लड़ाईमें से निकाल सकेंगे तो हमारी हार अवश्य ही नहीं होगी। हमें सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारी इस लड़ाईमें बिना विचारे कोई भी कार्य न किया जाये। 'साँचको आँच नहीं होती', यह आपको पग-पगपर स्मरण रखना चाहिए।

श्री वल्लभभाईने मुझे यह खबर दी है कि तहसीलदारने इस गाँवमें चार दिन पड़ाव डाला था; किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। किसान पूरी तरह मजबूत रहे।

१. यह भाषण बोरसद ताल्लुकेके पालेज गाँवमें गांधीजी और उनके साथियोंके जानेके अवसरपर दिया गया था। सभामें एक हजारसे अधिक किसानोंने भाग लिया था।

आपने इतना साहस दिखाया है; इसलिए मुझे आपसे कुछ कहना नहीं रहता। मैंने अभी-अभी आपसे कहा था कि मैं दिल्ली जानेवाला हूँ। मैं तो इस जिलेमें से निकलूँ ही नहीं, किन्तु इस लड़ाईके सम्बन्धमें ही मुझे दिल्ली जाना है। वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषदकी बैठक होनेवाली है। इसमें इस बातपर विचार किया जायेगा कि यूरोपमें जो महायुद्ध चल रहा है, उसमें हम किस प्रकार सहायता दे सकते हैं। परिषद्में कदाचित् इस बातपर चर्चा की जायेगी कि सैनिक भर्ती अनिवार्य रहे या न रहे। यह सलाह भी दी जायेगी कि सरकारके साथ झगड़ा बन्द कर दिया जाये। किन्तु यह झगड़ा हमने अपनी ओरसे तो खड़ा नहीं किया है; यह तो हमारे गले पड़ गया है। मैं जिस बातको यहाँ कह रहा हूँ उसी बातको वहाँ भी कहूँगा। यह लड़ाई हमने अपनी ओरसे नहीं छेड़ी है; हमें लाचार होकर छेड़नी पड़ी है। मैं वाइसरायको यह बात कब कह सकता हूँ? जब आप मजबूत रहें और सच्चे सत्याग्रही बनें तभी।

हम हारेंगे तो नहीं। जमीनें जब्त होना असम्भव है, क्योंकि हमने अपराध तनिक भी नहीं किया है। जो मनुष्य सचाईके रास्तेपर चल रहा है उसे कौन रोक सकता है? यदि आपकी जमीनें जब्त भी कर ली जायें तो भी आप डरें नहीं, डिगें नहीं। हमने संकल्प कर लिया है कि हम इन जमीनोंको वापस लेंगे। आपको तो भारतकी लाज रखनी है। अब यह लड़ाई हमारे सम्मान और हमारी टेककी लड़ाई बन गई है। यह खेड़ा जिलेके वीर लोगोंकी जमीनों और प्रतिष्ठाको वापस लेनेके लिए लड़ी जा रही है। इस कारण हमें अपनी जीवनचर्या शुद्ध कर लेनी चाहिए। हमें अपने आपसी झगड़ोंको खत्म कर देना चाहिए और विदेशी सरकारके अत्याचारका सामना करनेके लिए तैयार हो जाना चाहिए। हमें अपनी भीतरी और बाहरी व्यथाओंकी चिकित्सा सत्याग्रहकी रामबाण औषधसे करनी चाहिए।

बहनो, मैं आपसे यह कहता हूँ कि आप मर्दोंको हिम्मत दें और प्राण जायें तो जायें किन्तु प्रतिज्ञा न जाये, सदा इस मन्त्रको याद रखें।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२४५. भाषण : सुणावमें

अप्रैल २२, १९१८

मैंने पालेज और सुणाव गाँवोंमें एक भेद देखा है; मेरे मनमें उसके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी इच्छा हो रही है। मैंने जब पालेजमें प्रवेश किया तब वहाँ बैंड नहीं था; परन्तु उसके स्थानमें झाँझ और पखावज थीं। झाँझ और पखावजकी झंकार सुनकर मुझे अपने बचपनके दिनोंकी याद आ गई। मुझे उनमें जो भक्तिकी भावना, मधुरता और कला दिखाई दी, वह बैंडमें नहीं दिखाई देती। बैंड विदेशी वस्तु है; झाँझ और पखावज देशी हैं। बैंड नकल है, नव्य है; झाँझ और पखावज पुरातन। बैंडकी ध्वनि अंग्रेज लोगोंको चाहे अच्छी लगे; किन्तु मुझे तो वह अच्छी नहीं लगती। हमारे पूर्वजोंने ऐसे वाद्य खोजे हैं जो हमारे देशके लिए उपयुक्त हैं और हमारे लिए भी वे ही उपयुक्त हैं।

हमारे यहाँ धार्मिक कृत्योंमें वादन और गायनको स्थान दिया गया है। हमारे देशी वाद्यके स्वरमें पतितोंको भी उठानेकी शक्ति है, बैंडमें वह शक्ति नहीं है। तब हमें झाँझ और पखावज जैसे सादे, सुन्दर और मीठे वाद्योंका त्याग क्यों करना चाहिए?

बैंड और झाँझ-पखावजमें जितना भेद है उतना ही भेद हमारी वर्तमान और प्राचीन जीवन-पद्धतियोंमें है। यदि हमारी लड़ाई बैंड जैसी होगी तो वह टूट जायेगी। जैसे झाँझ-पखावजमें जुदा-जुदा तत्त्व हैं वैसे ही हमारी यह लड़ाई भी सुन्दर रहस्योंसे परिपूर्ण है।

यदि आप इन रहस्योंको ठीक-ठीक समझ लेंगे तो इनमें से अद्‌भुत परिणाम निकाल सकेंगे।

आपका इतना उत्साह देखनेके बावजूद मुझे यह भय है कि इस लड़ाईमें नाटक जैसा अभिनय हो रहा है। हम कहते हैं कि जमीन जब्त हो जाये तो कोई चिन्ता नहीं, किन्तु मुझे लगता है कि हमारे मनकी गहराईमें भय है। यदि यह बात ठीक है तो हम हारेंगे और उसका हानिकर प्रभाव समस्त देशपर होगा। इसलिए चाहता हूँ कि हम इस लड़ाईको सत्य और धर्मके आधारपर अपनी प्राचीन संस्कृतिके अनुरूप अडिग होकर लड़ें।

यह कहा जाता है कि गुजरात सो रहा है। कुछ लोग मुझसे पूछते हैं कि गुजरात इस तरह ऊँघ क्यों रहा है? किन्तु गुजरात कुम्भकर्णी निद्रा ले रहा है, यह आरोप मुझे अनुचित लगता है। ठीक मध्याह्न कालमें आप इतने भाई और बहन यहाँ इकट्ठे हुए हैं इसे देखकर यह कैसे कहा जा सकता है कि गुजरात सो रहा है? फिर भी, हमारी निद्रा निश्चय ही उड़ गई है या हम अभीतक यह जागरणका अभिनय ही कर रहे हैं, मैं आपसे यह प्रश्न पूछना चाहता हूँ। इसका उत्तर आपके अन्तरमें से एक ही निकलना चाहिए कि अब यह अभिनय नहीं है, बल्कि आप सच्चे मनसे इस लड़ाईमें सम्मिलित हो गये हैं। हमारी यह लड़ाई सत्यकी लड़ाई है, इसमें असत्य नहीं रह सकता। जब आप सरकारपर यह छाप डाल सकेंगे तब सरकार हमारी हो जायेगी। किन्तु यदि आप चालाकी अथवा दम्भ कर रहे होंगे तो सरकार नहीं झुकेगी। उदाहरणार्थ भावनगरके कुछ भाइयोंने उतावलीमें हड़ताल कर दी थी। उनको हड़तालका संचालन करना नहीं आया। उनमें कष्ट-सहनकी शक्ति नहीं थी। उन्होंने महाराजासे माफी माँग ली। मजदूरी कम मिलती है, यह तो सर्वविदित है किन्तु हड़ताल करनेपर भी उनकी मजदूरी नहीं बढ़ी। उन्होंने माफी माँगी। इस बातसे मेरे हृदयको आघात लगता है। यह समझमें नहीं आता कि उन्होंने माफी क्यों माँगी। कहा जा सकता है कि महाजनने भी बीचमें पड़कर इन लोगोंकी लाज बिगाड़ी। मैं चाहता हूँ कि हमारे यहाँ ऐसा अवसर न आये। हमने तो शुद्ध सचाईसे [राहतकी] प्रार्थना की है। क्योंकि फसल चार आनेसे कम हुई है। हमने सोच-विचारकर ही यह कहा है कि हमें सरकारी लगान नहीं देना है। यह हमने जाग्रत अवस्थामें ही कहा है। हम माफी कदापि न माँगेंगे। सरकार हमारी जमीनें ले ले, हमें जेलमें डाल दे, — ये समस्त कष्ट एक पलड़ेमें रखे जायें और सत्य, टेक और आत्म-सम्मान दूसरे पलड़ेमें रखे जायें तो कौन-सा पलड़ा झुकेगा? हमारा संकल्प है कि हम आत्म-सम्मानको नहीं त्यागेंगे, प्रतिज्ञा-भंग नहीं करेंगे। हमारी प्रतिज्ञाका

हेतु क्या है अपना अधिकार सिद्ध करना। दो सेनाएँ लड़ती हैं तो अन्तमें कभी उनमें से एक दूसरीको हर्जाना देती है। जो हर्जाना देती है वह पराजित मानी जाती है। हमारी सरकारसे प्रार्थना है कि वह इस तथ्यको स्वीकार कर ले। पंचकी वाणी परमेश्वरकी वाणी है। लोकमत सर्वोपरि होता है। यह वाणी परमेश्वरकी है, यह बात हम जब सरकारसे स्वीकार करा लें तब हमारी विजय मानी जायेगी। किन्तु विजय कौन प्राप्त कर सकता है? अधिकारियोंसे डरनेका कोई कारण नहीं है। उनसे किसी तरहका दुराव किये बिना बात करनी चाहिए। जैसे स्त्रियों और पुरुषोंके बीचका झूठा दुराव दूर करनेकी आवश्यकता है वैसे ही सरकार और लोगोंके बीचका दुराव दूर किया जाना चाहिए।

यह स्थिति पशुबलसे नहीं आ सकती; बल्कि आत्मबल या प्रेमबलसे आ सकती है। जो आत्मबलको पूजता है उसकी जीत होती है। हमारी लड़ाईमें पशुबलके लिए स्थान नहीं है। हमें तो आत्मबलसे जीतना है। सच्चा वीर वही है जो अपना सिर सदा अपनी हथेलीपर लिये रहता है। यह सच्चा क्षत्रियत्व है। और इसीको प्रकट करना हमारी लड़ाईका उद्देश्य है। यदि भारत इस बातको समझ ले कि तलवारकी कतई जरूरत नहीं है, तो अंग्रेज ही नहीं, समस्त संसार हमारे सामने झुकेगा। हमारे सामनेका अर्थ है सत्यके सामने। इसमें कोई गर्वोक्ति नहीं है। जहाँ सत्य होता है वहाँ हार नहीं हो सकती। यह बात विशेषत: ध्यानमें रखी जानी चाहिए कि हम अपनी ओरसे इस संघर्षमें कोई कसर न रखें। इसके लिए हमें अपने आपसी झगड़े खत्म कर देने चाहिए। यह लड़ाई न्यायोचित है, किन्तु यह मुख्यत: श्री प्रैटके कारण छिड़ी है। सरकारसे लोकमतका आदर करवाना इसका मुख्य उद्देश्य है। दिल्लीमें वाइसराय दरबार कर रहे हैं। इसमें वे हमारे देशके नेताओंसे कहेंगे कि वे अपने आपसी झगड़े खत्म कर दें। मैं उनसे उत्तरमें यह कहूँगा कि इस लड़ाईको खेड़ाके लोग नहीं लड़ रहे हैं, बल्कि कमिश्नर लड़ रहे हैं। हम तो अपनी रक्षा करनेके लिए लड़ रहे हैं। हमने तो अपना बचाव-भर किया है। हमने हमला नहीं किया है। किन्तु यदि इस बीच आप हार मान बैठें तो मेरी क्या स्थिति होगी? इस कारण आपको मजबूत रहना चाहिए और नुकसान हो तो बरदाश्त कर लेना चाहिए। तभी यह सिद्ध हो सकता है कि दोष लोगोंका नहीं है बल्कि कमिश्नरका है।

मैं आपको विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि आपकी जमीनोंको सरकार जब्त नहीं कर सकती। सरकारी दफ्तर [कागजात] में भले ही उनकी जब्ती की कार्रवाई कर ली जाये; किन्तु जबतक कागजपर हमारे हस्ताक्षर न हों तबतक वे जब्त नहीं होंगी। अबतक तो जिम्मेदारी मेरी और वल्लभभाईकी है; किन्तु जब मैं दिल्ली चला जाऊँगा तो वह अकेले वल्लभभाईपर आ पड़ेगी। आप भी इसमें हिस्सा बँटायें। यदि आप, जब मैं यहाँ रहूँ, तभी निर्भय रहें तो यह सत्याग्रह आपका नहीं, मेरा है। सत्याग्रह तो वस्तुत: खेड़ा जिलेका है। न वह मेरा या वल्लभभाईका है; न अनसूयाबहनका है। मैं तो आपको केवल मार्ग ही दिखा सकता हूँ। उस मार्गपर चलना आपका काम है। जीत खेड़ा जिलेके लोगोंपर निर्भर है। यदि आप मजबूत बने रहेंगे और सत्यपर कायम रहेंगे तो आप अवश्य ही जीतेंगे। केवल प्रतिज्ञा लेनेसे ही, आपका यश समस्त देशमें

फैल गया है। आप इस प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिए उसपर हिम्मतसे डटे रहें और सत्य एवं शिष्टतापर कायम रहें। इसके साथ-साथ आप अपने आत्म-सम्मानकी रक्षा भी करें। यह आपका धर्म है। जमीनकी अपेक्षा धर्म अधिक महत्त्वपूर्ण है। जिसने धर्मकी रक्षा की है वह कभी हारेगा नहीं। वह कभी भूखा भी न मरेगा। मैं आपको यह सलाह देता हूँ और यह मेरी पहली और अन्तिम सलाह है कि आप अपनी प्रतिज्ञाको कदापि न तोड़ें। आपसे मेरी यही प्रार्थना है।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२४६. पत्र : कमिश्नरको[1]

नडियाद

[अप्रैल २३, १९१८ से पूर्व]

[महोदय,]

सत्याग्रहमें मेरा अटल विश्वास है। मैं अपने सब अस्त्र — यहाँतक कि अपना सब-कुछ — त्याग देनेको सहर्ष तैयार हूँ; परन्तु अपने सिद्धान्त नहीं त्याग सकता।

[आपका,

मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]

सरदार वल्लभभाई पटेल, खण्ड १

२४७. पत्र : कस्तूरबा गांधीको

[बम्बई जाते समय गाड़ीमें]

अप्रैल २३, १९१८

प्रिय कस्तूर,

तुम्हें मगनलालको माँका सुख देना है। उसने अपने माँ-बाप छोड़ दिये हैं और मेरे कामको अपना लिया है। मेरे कामका उत्तराधिकार लेनेके लिए अभी तो वही तैयार है। उसे शक्ति कौन दे? उसके दुःखमें तुम रोओ, उसे प्रेमसे खिलाओ-पिलाओ और बहुविध चिन्ताओंसे मुक्त रखो, यह तुम्हारा काम है। भूपतरायके घरमें जो क्लेश है, उसे तुम मिटाओ। मैं चाहता हूँ कि तुम ऐसे काम करती रहो। इसमें सच्ची विद्वत्ता

१. गांधीजीने श्री प्रैटसे भेंटके लिए समय माँगते हुए उन्हें एक पत्र लिखा था, जिसके उत्तरमें उन्हें प्रैटका यह पत्र मिला: "यदि आप अपने सभी शस्त्र त्याग दें और मुझसे बातचीत करनेको आयें तो मेरा दरवाजा आपके लिए खुला हुआ है, लेकिन मेरे हाथ कानूनी तथा प्रशासनिक नियमोंसे बँधे हुए हैं।"

है, बड़प्पन है। बिना किनारीकी सफेद साड़ी पहननेमें तनिक भी न हिचकना। मैं जल्दी आनेकी कोशिश करूँगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

२४८. पत्र : मगनलाल गांधीको

[बम्बई जाते समय गाड़ीमें]
अप्रैल २३, १९१८

चि० मगनलाल,

बाने कहा है कि तुम्हारे और सन्तोकके बीच कुछ कहा-सुनी चल रही है और तुम्हारा मुख उदास था। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे साथ ऐसा कुछ हरगिज न हो। सन्तोकको धीरजसे आगे बढ़ाओ। अधीरता प्रेमके अभावकी सूचक है। इतना काफी है कि हम किसीको उसके बुरे कामोंमें मदद न दें। तुम्हारी चिन्ता तुमको जला रही है, आगे नहीं बढ़ने देती। इस स्थितिसे अब तो तुम्हें मुक्त हो ही जाना चाहिए।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।। २/१४

[गीताके] इस श्लोकपर विचार करो और उसका तत्त्व अपनी अन्तरात्मामें उतारो। यह श्लोक बहुत ही शक्तिशाली है। मुझे तो इससे बहुत-सी चिन्ताओंमें शान्ति मिली है। भूपतरायके गृह-कलहके शमनमें सन्तोकका उपयोग करो। यह कलह दूर किया जा सकता है और अवश्य किया जाना चाहिए।

[बापूके आशीर्वाद]

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५९८३) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

२४९. अपील: बम्बईकी जनतासे[1]

अप्रैल २३, १९१८

आजकी सभाके प्रमुख महोदयने आपको बताया कि खेड़ाके लोगोंने सरकारसे न्याय प्राप्त करनेके लिए क्या-क्या कदम उठाये हैं। मैं इसमें कुछ और जोड़ना चाहता हूँ। इस लड़ाईको किसी दूसरेने खड़ा नहीं किया है। इसके लिए खेड़ाके लोगोंको किसीने नहीं उभाड़ा। इसका मूल हेतु राजनैतिक नहीं है, जैसा कुछ लोगोंका आरोप है; इसके पीछे होमरूल या वकील और बैरिस्टर भी नहीं हैं। मैं इस बातकी साक्षी देनेके लिए यहाँ खड़ा हूँ कि इसको हल-जोता किसानोंने ही आरम्भ किया है। गोधराके राजनीतिक सम्मेलनके बाद खेड़ा जिलेमें कुछ किसानोंने अनावृष्टिके कारण सरकारसे राहत देनेकी प्रार्थना करनेका विचार किया। उन्होंने मुझे पत्र लिखा कि उन्हें कानूनके मुताबिक सरकारसे राहत लेने-का हक है; क्या मैं इसमें उनकी सहायता करूँगा। इससे आप देख सकते हैं कि इस संघर्ष का मूल कारण कोई बाहरी आन्दोलन नहीं है। किन्तु यह सच है कि बाहरकी सहायतासे यह संघर्ष चमका है। हमारे अध्यक्ष और माननीय गोकुलदास भाईका[2] पूरा समर्थन प्राप्त कर लेनेपर लोगोंको अपनी जीतका विश्वास हो गया। गुजरात-सभाके कुछ प्रतिष्ठित सभासदोंने भी इस सम्बन्धमें जाँच की और अपनी दिलजमई की कि फसल दरअसल मारी गई है, और इस कारण राहत दी जानी चाहिए। लोगोंको राहत देनेका औचित्य सिद्ध करनेके लिए उनकी गवाही काफी थी फिर भी, अधिकारियोंको विश्वास करानेके प्रयत्नमें कोई कमी नहीं की गई। मैं इसकी सचाईके सम्बन्धमें साक्षी देता हूँ।

जिसे वास्तविक कष्ट नहीं है वह सत्याग्रहकी लड़ाई नहीं लड़ सकता। इस लड़ाईमें सैनिकोंकी लड़ाईकी अपेक्षा अधिक वीरताकी आवश्यकता होती है। सैनिकके हाथमें तो हथियार होता है; उसका आग्रह शत्रुपर प्रहार करनेमें होता है। इसके विपरीत सत्याग्रही स्वयं कष्ट सहकर लड़ता है। कोई कमजोर और आशाहीन आदमी ऐसा नहीं कर सकता। उसमें कष्ट-सहनकी क्षमता नहीं होती। सत्याग्रही ज्यों-ज्यों दुःख आते हैं त्यों-त्यों शुद्ध होता जाता है। जैसे सोना अग्निमें तपकर अधिक शुद्ध होता है वैसे ही सत्याग्रही भी कष्ट सहकर शुद्ध होता है। उसकी भी यही कसौटी है। सत्यका आग्रह ही सत्याग्रहका शस्त्र है। सच्चा सत्याग्रही वही होता है जो मनमें से भय निकालकर सत्यपर आरूढ़ होकर लड़ता है।

१. यह भाषण गांधीजीने बम्बईके नागरिकोंकी एक सावजनिक सभामें दिया था जो उनको शान्ताराम चाल कांदेवाडीमें खेड़ा जिलेकी स्थितिसे परिचित कराने और वहाँके सत्याग्रह संघर्षसे सहानुभूति प्रकट करनेके लिए की गई थी। सभाकी अध्यक्षता विट्ठलभाई ज० पटेलने की। कार्रवाई प्रायः गुजराती और मराठीमें हुई थी जिसका विवरण २४-४-१९१८ के **बॉम्बे क्रॉनिकल**में छपा था।

२. माननीय गोकुलदास पारेख।

इस लड़ाईमें अकेले पुरुष ही नहीं, स्त्रियाँ भी सम्मिलित होती हैं। गाँवोंकी सभाओंमें एक अनोखा दृश्य दिखाई देता है। स्त्रियाँ कहती हैं: सरकार चाहे हमारी भैंसें ले जाये, चाहे हमारे गहने ले जाये और चाहे हमारी जमीनोंको जब्त कर ले; किन्तु हमारे मर्दोंने जो प्रतिज्ञा ली है उसका पालन किया ही जाना चाहिए। यह लड़ाई महान् है, व्यापक है। इसका यश-सौरभ सर्वत्र फैल रहा है। खेड़ाके लोगों [की वीरता] का वर्णन करना मेरी शक्तिसे परे है। सरकार उनकी सहायतासे अपने वर्तमान संकटका निवारण कर सकती है। पाटीदार क्षत्रिय होनेका दावा करते हैं।

सरकारकी विज्ञप्तिमें खेड़ा जिलेको समृद्ध बताया गया है और एक प्रकारसे यह सत्य है। यहाँ 'बड़े बर्तनकी खुरचन भी बहुत होती है' कहावत लागू होती है। मैं जब उनके पुराने मकानात देखता हूँ तो मुझे उनके पुराने गौरवकी याद आती है। उन्होंने अपने धैर्य, निष्ठा और अध्यवसायसे खेड़ा जिलेकी भूमिको सुन्दर बाग बना दिया है। किन्तु उनके घरोंको देखकर मेरी आँखोंमें आँसू आ जाते हैं। वे कहते हैं कि उनके पास पैसा नहीं है; अन्यथा उनके खेत इससे भी अधिक सुहावने होते।

सरकार ऐसे वीर लोगोंको ऐसे दैवी संकटके समयमें भी, जो राहत देनी चाहिए सो देना नहीं चाहती। ऐसे कष्ट खेड़ा जिलेके लोगोंपर अनेक बार आये हैं। उनकी वर्तमान निस्तेजताका यही कारण है। इस सभामें आये हुए भाई और बहन खेड़ा जिलेमें जाकर किसानोंकी कोठी-कुठलोंको देखें और उनके खेतोंकी उपजकी जाँच करें। उन्हें उनके पास कुछ भी न मिलेगा। इस अवस्थामें वे क्या करें? आप इससे कल्पना कर सकते हैं कि उनकी अवस्था कितनी दुःखद है। उन्होंने कहा: "हमारी हालत ऐसी है।" इस सालका लगान अगले साल देनेसे वे एक सालके ब्याजसे बच जायेंगे। किन्तु इस लड़ाईमें प्रश्न ब्याजसे बचनेका नहीं है। उनका ब्याज तो बम्बईका एक व्यापारी ही दे सकता था। किन्तु उससे उनके दुःखोंका अन्त नहीं हो सकता था। इसीसे तो सरकार मान बैठती है कि वे हर साल ब्याजपर रुपया लेकर लगान दे सकते हैं।

मैं इस लड़ाईसे यह सिद्धान्त स्थिर करना चाहता हूँ कि सरकार लोगोंसे पूछे बिना लगान लेनेका निर्णय नहीं कर सकती। लगानका कानून बुरा है, ऐसा कहकर तो हम दुःख दूर नहीं कर सकते। दुःखसे मुक्त होनेका एकमात्र उपाय तो यह है कि ज्ञानपूर्वक दुःख सहन करके सदाके लिए दुःखसे पिंड छुड़ा लिया जाये। कमिश्नर श्री प्रैट इस सम्बन्धमें खुल्लम-खुल्ला कहते हैं कि "यदि मैं इस बार लगान मुलतवी कर दूँ तो समस्त देश समझ जायेगा कि ऐसे मामलेमें भी लोग हस्तक्षेप कर सकते हैं।"

कष्ट सहन करना सीखनेके लिए यह अवसर अच्छा है। ऐसा अवसर बार-बार नहीं आ सकता। इस समय लोगोंने उचित मर्यादाकी रक्षा की है। खेड़ाके लोगोंने धर्मका स्वरूप बता दिया है। उनका कहना है कि वे स्वयं कष्ट सहकर अपने कष्टोंका अन्त करेंगे।...'

मैंने खेड़ा और चम्पारनके अनुभवसे यही सीखा है कि यदि नेता लोगोंमें जायें, उनके साथ रहें और खायें-पियें तो इससे दो वर्षमें ही बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया जा सकता है। आप इस लड़ाईका सूक्ष्म अध्ययन करें, आप खेड़ा जिलेके लोगोंको पहिचानें। उनके प्रति

सद्भाव दिखाएँ और अपनी शुभ वाणीसे उनकी जितनी सहायता कर सकें, करें। हम अविनयपूर्वक नहीं, बल्कि सरकारके हृदयमें सत्यको जाग्रत करके न्याय माँगते हैं। जबतक न्याय न मिलेगा तबतक ये लोग जूझते रहेंगे।[1]

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२५०. पत्र : सर क्लॉड हिलको

सेंट स्टीफेन्स कॉलेज
दिल्ली
अप्रैल २६, १९१८

प्रिय सर क्लॉड हिल,

इस घटनापूर्ण सम्मेलन[2] द्वारा नियुक्त की जानेवाली समितियोंमें से किसीमें भी शामिल होने या मुख्य प्रस्ताव[3] पर बोलनेका सम्मान स्वीकार करनेसे मुझे इनकार करना पड़ा, इसका मुझे कम दुःख नहीं हुआ।

मेरा खयाल है कि सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न नेताओंको इस सम्मेलनसे अलग रखा गया है, इसलिए वह ज्यादातर असफल ही रहेगा। श्री तिलक, श्रीमती बेसेंट और अली भाइयोंकी अनुपस्थितिसे सम्मेलनमें दरअसल कोई वजन नहीं रह गया है।[4] मुझे स्वीकार करना चाहिए कि आजकी बैठकमें हम लोग जो उपस्थित थे, उनमें से किसीका भी असर आम जनतापर उन नेताओंके बराबर नहीं है। उनको सम्मेलनमें बुलानेसे इनकार करनेका अर्थ यही निकलता है कि जिन लोगोंके हाथमें सरकारकी बागडोर है, उन लोगोंकी इच्छा अबतक अख्तियार किये गये रुखमें सचमुच कोई परिवर्तन करनेकी

१. जब गांधीजी अपना भाषण समाप्त कर चुके तो लोकमान्य तिलकने खेड़ा जिलेके किसानोंके प्रति सहानुभूतिका प्रस्ताव पेश किया और यह माँग रखी कि सरकार या तो एक वर्षके लिए लगान मुल्तवी कर दे या उनके कष्टोंकी जाँचके लिए एक निष्पक्ष जाँच-समिति नियुक्त करे। इसके बाद श्री बी० जी० हॉर्निमैनने एक प्रस्ताव रखा जिसमें कमिश्नर श्री प्रैटके १२ अप्रैलके भाषणमें अपनाये गये रुखकी निन्दा की गई।

२. यह सम्मेलन लॉर्ड चैम्सफोर्डने बुलाया था।

३. प्रस्ताव इस प्रकार था: "यह सम्मेलन महामहिम वाइसरायको यह अधिकार देता है और उनसे अनुरोध करता है कि वे परमविभव सम्राट् तक उनके शालीनतापूर्ण सन्देशके प्रत्युत्तरमें भारतका कर्तव्य और निष्ठापूर्ण संकल्प पहुँचायें और साम्राज्यकी इस महान् संकटकी घड़ीमें अपने कर्तव्य-पथपर चलते रहनेके भारतके संकल्पसे उनको आश्वस्त करें।"

४. तिलकको आमन्त्रित नहीं किया गया था, लेकिन गांधीजीने २६ अप्रैल और फिर २७ अप्रैलको वाइसरायसे मुलाकात करनेके बाद तिलकको सम्मेलनमें आनेके लिए तार दिया था। तिलकने इस आधार-पर कि सरकारने उनके विरुद्ध निष्कासनका आदेश रद नहीं किया है, आनेसे इनकार कर दिया था। एनी बेसेंटको भी आमन्त्रित नहीं किया था और अली भाई तो जेलमें थे ही।

नहीं है; और नीतिमें कोई सच्चा परिवर्तन किये बिना आप जो भी रिआयतें देंगे, उनमें न तो कोई शोभा रहेगी और न बल। आम जनतामें उनके प्रति सच्ची वफादारी पैदा नहीं हो सकेगी। सम्मेलनका उद्देश्य, अगर मैंने सही तौरपर समझा है तो, यही है कि आप आम जनताको प्रभावित करना चाहते हैं। भारतीय नेताओंके सामने सवाल यह है कि हिन्दुस्तानके लोगोंमें अंग्रेजों जैसी वफादारी किस तरह पैदा की जाये। मैं नम्रतापूर्वक कहता हूँ कि जबतक आप आम जनताके विश्वस्त नेताओंपर विश्वास रखनेको तैयार नहीं और विश्वासका जो अर्थ होता है, वह सब करनेको तैयार नहीं, तबतक वफादारी पैदा करना असम्भव है। अली भाइयोंके बारेमें मैं बता दूं कि लोगोंके सामने उनके अपराधका कोई सबूत नहीं है। दुश्मनके साथ पत्र-व्यवहार करनेके इलजामसे उन्होंने जोरदार शब्दोंमें इनकार किया है। वर्तमान परिस्थितिके विषयमें जो मत अली भाइयोंका है, वही अधिकांश मुसलमानोंका है।

मैं महसूस करता हूँ कि दूसरे कारणोंसे भी मैं सम्मेलनमें कोई कारामद नहीं रहूँगा। विलायतकी डाकमें आये हुए अखबार मैंने अभी-अभी पढ़े हैं। उनमें गुप्त संधियोंके बारेमें चर्चा है। प्रकाशित बातें पढ़कर बहुत दुःख होता है। अखबारोंमें बताई गई संधियाँ यदि सचमुच हुई हों, तो मैं नहीं जानता कि अब मैं कैसे कह सकता हूँ कि मित्र-राज्योंका पक्ष बिलकुल न्यायपूर्ण है। मैं नहीं कह सकता कि इन समाचारोंका भारतके मुसलमानों पर क्या असर होगा। भारत-सरकारके लिए साम्राज्यकी सर्वोत्तम सेवा करनेका मार्ग यही है कि वह साम्राज्यीय सरकारको यह सलाह देनेकी हिम्मत करे कि इन सन्धियोंसे उसने अपने-आपको जिस बुरी और अनीतिपूर्ण स्थितिमें डाला है, उसमें से वह बाहर निकल आये। अगर यह साबित हो जाये कि अखबारोंमें प्रकाशित समाचार बिलकुल गलत हैं, तो मेरे बराबर आनन्द अन्य किसीको नहीं होगा।[1]

जबतक स्थानीय अधिकारी अपना काम-काज उसी तरह करते रहेंगे जिस तरह वे खेड़ामें कर रहे हैं, तबतक हिन्दुस्तानमें भीतरी शान्ति नहीं रहेगी। मुझे विश्वास है कि वाइसराय यह तो हरगिज नहीं चाहते कि लोग अन्याय और जुल्मका कोई विरोध ही न

१. गांधीजीकी इन उक्तियोंका कारण क्या था, इस बातपर **चार्ल्स फ्रीअर एन्ड्रयूज़** नामक पुस्तकमें कुछ प्रकाश डाला गया है। गांधीजीने एन्ड्रयूजको लिखा था कि मेरे युद्ध-सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए जाते समय रास्तेमें मेरे साथ हो जाओ। "वहाँ जाते हुए गाड़ीमें एन्ड्रयूजने अंग्रेजी **न्यू स्टेट्समैन**में कुछ कपटपूर्ण गुप्त संधियोंका हाल पढ़ा। इन संधियोंका रहस्योद्घाटन रूसके परराष्ट्र विभागने किया था। इनमें जो देश शामिल थे, उनमें एक ग्रेट ब्रिटेन भी था, हालाँकि उसने सार्वजनिक रूपसे यह घोषणा की थी कि इस स्वातन्त्र्य-संग्राममें उसकी कोई दिलचस्पी नहीं है। एन्ड्रयूजने अखबारको गांधीजीके आगे पटकते हुए कहा, 'जब ये देश ऐसी दुरंगी चाल चल रहे हैं तब आप युद्ध-सम्मेलनमें कैसे हिस्सा ले सकते हैं?'" यह भी एक कारण था जिसके चलते गांधीजीने प्रारम्भमें सम्मेलनमें भाग लेनेसे इनकार कर दिया था। किन्तु लॉर्ड चैम्सफोर्डने एक मुलाकातके दौरान इस समाचारका खण्डन करते हुए कहा कि यह तो कुछ स्वार्थी हलकोंकी बात जान पड़ती है। उन्होंने कहा कि मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि ग्रेट ब्रिटेन कोई ऐसी संधि करेगा जिसके अनुसार उसे कुस्तुनतुनियाको रूसके हाथों सौंप देना पड़े। इसी स्पष्टीकरणके आधारपर गांधीजीने आखिरकार सम्मेलनमें भाग लेना स्वीकार किया।

करें। मैं आशा रखता हूँ कि खेड़ामें लूट मचाकर लगान वसूल करनेका जो इरादा बाँधा गया है, वह एकदम रोक दिया जायेगा और खेड़ाके लोगोंकी न्यायपूर्ण माँगें मंजूर कर ली जायेंगी।

अनिवार्य फौजी भरती शुरू करनेके विरुद्ध भी सरकारको मैं अच्छी तरह चेता देना चाहता हूँ। मुझे आशा है कि हिन्दुस्तानकी भूमिपर यह चीज कभी सफल नहीं होगी। किन्तु जबतक स्वेच्छापूर्वक भरती करनेके सारे प्रयत्न ईमानदारीके साथ न कर लिये जायें और वे असफल न हो जायें, तबतक तो अनिवार्य सैनिक भरती हरगिज शुरू न की जानी चाहिए। अबतक जबरदस्ती फौजी भरती करनेकी जो बातें सुनी गई हैं, उन्हें दबा रखनेमें नेताओंने बहुत ही संयमसे काम लिया है, यह तो आप भी स्वीकार करेंगे। लेकिन मेरा खयाल है कि अब पानी खतरेके निशान तक पहुँच चुका है।

अन्तमें मैं बता दूँ कि 'होमरूल' के विचार आम जनतामें इतनी गहराई और व्यापकतासे घर कर चुके हैं कि निकट भविष्यमें 'होमरूल' मिल जानेके बहुत ही ठोस प्रमाण यदि नहीं जुटाये जायेंगे, तो लोगोंका सच्चा सहयोग नहीं मिल सकेगा।

अब आप समझ जायेंगे और शायद इसकी कद्र भी कर सकेंगे कि मैं समितियोंमें रहनेसे क्यों इनकार करता हूँ और बोलनेमें क्यों आनाकानी करता हूँ। मैं सम्मेलनमें भाग न लेकर ही सरकारके प्रति अपना सद्भाव सबसे अच्छे ढंगसे प्रकट कर सकता हूँ।

मेरी प्रार्थना है कि यह पत्र आप जल्दीसे-जल्दी वाइसरायके सामने पेश कर दें।

[हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२५१. पत्र : जे० एल० मैफीको

सेंट स्टीफेंस कॉलेज
दिल्ली
अप्रैल २७, १९१८

प्रिय श्री मैफी,

आपका तार और इसी १९ तारीखका छोटा-सा पत्र, दोनों यथासमय मिल गये। तदर्थ धन्यवाद।

इधर स्थितिमें जो परिवर्तन हुए हैं, उनके कारण [अली] बन्धुओंकी रिहाई और भी जरूरी हो गई है। काफी संकोच-विकोच और गहरे सोच-विचारके बाद मैं इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि सम्मेलनमें भाग लेकर मैं उस उद्देश्यकी सेवा नहीं कर सकता, जिसके लिए सम्मेलन बुलाया जा रहा है। इसके कारण मैंने सर क्लॉड हिलको

लिखे पत्रमें[1] बता दिये हैं। उस पत्रकी प्रति साथमें भेज रहा हूँ। पता नहीं, परमश्रेष्ठ अब भी मुझसे [अली] बन्धुओंके सम्बन्धमें मिलना पसन्द करेंगे या नहीं। २९ तारीख तक मैं दिल्लीमें हूँ, लेकिन कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यदि जरूरी हुआ तो मैं ज्यादा दिन भी ठहर सकता हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया: होम, वार (डिपॉज़िट): अक्तूबर १९१८, संख्या २६

२५२. पत्र: जे० एल० मैफीको

सेंट स्टीफेन्स कॉलेज
दिल्ली
अप्रैल २७, १९१८

प्रिय श्री मैफी,

मैंने भय और कम्पनके साथ एक फर्जकी खातिर सम्मेलनमें भाग लेनेका निश्चय किया है। वाइसरायके साथ मुलाकात[2] करनेके बाद और फिर आपसे मिलनेके बाद मुझे लगता है कि मैं कुछ और नहीं कर सकता।[3]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया: होम, वार (डिपॉज़िट): अक्तूबर १९१८, संख्या २६

१. पिछला शीर्षक।

२. यह मुलाकात २७ अप्रैलको हुई थी।

३. दूसरे दिन गांधीजीको मैफीका निम्नलिखित सन्देश मिला था: "न तो वाइसरायको और न मुझे ही आपके 'भय और कम्पन' पर विश्वास हुआ। वाइसरायको यह सुनकर वास्तवमें बड़ी प्रसन्नता हुई है कि आप सम्मेलनमें भाग लेंगे। मैंने सर क्लॉड हिलको सूचित कर दिया है कि आप जनशक्ति (मैन पावर कमेटी)की ११ बजे दोपहरकी बैठकमें भाग लेंगे।"

२५३. पत्र : जे० एल० मैफीको

दिल्ली
अप्रैल २८, १९१८

प्रिय श्री मैफी,

बड़ी कृपा हो, अगर आज कान्फ्रेन्समें मुझे वाइसरायसे उर्दूमें बोलनेकी अनुमति दिला दें। मैं इसका एक अनुवाद भेजना चाहता हूँ, लेकिन सोचता था कि यदि मैं उतने ही शब्द कहूँ जितने इस प्रस्तावके[1] समर्थनके लिए आवश्यक हों तो मेरा बोलना अधिक प्रभावपूर्ण हो सकेगा। मेरे निवेदनका उत्तर आप शायद श्री एण्ड्रयूज़की मारफत भेजेंगे।

यह भी बतायेंगे कि आप दिल्लीमें कब तक हैं।[2]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया: होम, वार (डिपॉज़िट): अक्तूबर १९१८, संख्या २६

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. दूसरे दिन गांधीजीको मैफीका निम्नलिखित उत्तर मिला: "अब देखता हूँ, सवेरे ज्यादा काम होनेसे उतावलीमें मैं आपके पत्रका आखिरी हिस्सा नहीं पढ़ पाया और फलत: केवल पहले प्रश्न यानी आपके भाषणवाली बातका ही जवाब भेज दिया। और उसके सम्बन्धमें अगर कुछ कहनेकी इजाजत दें तो कहूँगा कि आपकी उपस्थितिसे तथा आपने जो सीधे-सादे शब्द कहे और जिस प्रकारसे कहे उससे वाइसराय काफी प्रभावित हुए। आपको आगे निश्चित कार्यकी गुंजाइश दिखाई देती है, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। यह सब बहुत आवश्यक है और आपको बादमें इसके लिए पश्चाताप नहीं होगा। अधिकार-प्राप्तिके लिए संघर्षका उद्धत हो जाना अधिकारोंको पानेका सदा सर्वोत्तम तरीका नहीं हुआ करता। यदि आपको हममें विश्वास है तो हमारे लिए लड़िये और धीरज न खोइए। हम आज रातको प्रस्थान कर रहे हैं, लेकिन कभी कोई योग्य सेवा हो तो अवश्य सूचित करें।"

२५४. भाषण : युद्ध-सम्मेलनमें[1]

दिल्ली
अप्रैल २८, १९१८

इस प्रस्तावके समर्थकोंमें अपना नाम पाकर मैं अपनेको गौरवान्वित अनुभव करता हूँ। इसका अर्थ मैं पूरी तरह समझता हूँ और हृदय खोलकर इसका समर्थन करता हूँ।[2]

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रति (जी० एन० २२२५) की फोटो-नकलसे।

२५५. पत्र : जे० एल० मैफीको

दिल्ली
अप्रैल २९, १९१८

प्रिय श्री मैफी,

कामका भारी बोझ होनेपर भी आपने मेरा पत्र फिरसे पढ़ा और मुझे जवाब देनेका वक्त निकाला[3], यह आपकी कृपा है।

वाइसरायने जो कृपा-भाव प्रकट किया है, उसके लिए मेरा धन्यवाद उनतक पहुँचाइए।

आपके लिए मैं दो पत्र[4] पूरे कर रहा हूँ। वे आपको शिमलामें मिलेंगे। आपके यहाँसे रवाना होनेसे पहले मैं शायद ही उन्हें तैयार कर सकूँगा। उनमें से एक पत्रमें कुछ

१. ये पंक्तियाँ "पत्र: जी० ए० नटेसनको", १२-५-१९१८ से उद्धृत की गई हैं।

२. गांधीजीने जन-शक्ति समिति (मैन-पावर कमेटी) में दिये गये अपने भाषणका आत्मकथामें इस प्रकार उल्लेख किया है: "तो मैं सम्मेलनमें शामिल हुआ। वाइसराय भरतीसे सम्बन्धित प्रस्तावपर मेरा समर्थन प्राप्त करनेके लिए अत्यन्त उत्सुक थे। मैंने हिन्दी-हिन्दुस्तानीमें बोलनेकी अनुमति माँगी। वाइसरायने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली, किन्तु सलाह दी कि मैं अंग्रेजीमें भी बोलूँ। मुझे कोई भाषण नहीं देना था। मैं इस आशयका केवल एक वाक्य बोला "अपने उत्तरदायित्वको पूरी तरह समझते हुए मैं प्रस्तावका समर्थन करता हूँ।"

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४ के अनुसार इससे पूर्व गांधीजीको वाइसरायसे यह सन्देश मिला था: "कृपया अपने सारे मित्रोंको आश्वस्त कर दें कि मैं जो-कुछ कर सकता था, वह कर चुका हूँ ...। जो योजना पेश की गई है वह ठीक कांग्रेस-लीग योजना-जैसी तो नहीं होगी, किन्तु काफी हदतक उसके समान ही होगी। अतः मुझे आशा है, कल किसी प्रकारकी सौदेबाजी या मोलतोल नहीं होगा। सारा संसार बड़ी उत्सुकतासे इस बातकी प्रतीक्षा कर रहा है कि कल क्या होता है। ..."

३. देखिए "पत्र: जे० एल० मैफीको", अप्रैल २८, १९१८की पादटिप्पणी २।

४. देखिए अगले दो शीर्षक।

निश्चित सुझाव दिये गये हैं कि आप मेरी सेवाओंका किस रूपमें उपयोग कर सकते हैं और दूसरे पत्रमें मैंने मौजूदा परिस्थितिके सम्बन्धमें अपने विचार पूरी तरह प्रकट किये हैं।

आप पर से मेरा विश्वास जल्दी नहीं हिल सकता। अधिकारोंके बारेमें आपने जो-कुछ लिखा है, उससे मैं पूरी तरह सहमत हूँ। लम्बा पत्र लिखकर आपका समय लेना मुझे ठीक नहीं लगता।

जब कभी आपको लिखता हूँ, हमेशा यही लगता है जैसे मैं कोई पाप कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया : होम, वार, पॉलिटिकल : अक्तूबर १९१८, संख्या २७

२५६. पत्र : वाइसरायको

दिल्ली
अप्रैल २९, १९१८[1]

महोदय,

जैसा कि आप जानते हैं, सावधानीसे विचार करनेके बाद २६ अप्रैलके पत्रमें[2] निर्दिष्ट कारणोंसे मैंने अपना कर्त्तव्य समझकर आपको यह सूचित किया था कि मैं युद्ध-सम्मेलनमें उपस्थित न हो सकूँगा। पर आपने मुलाकातका अवसर देनेकी कृपा की; और उसके बाद मैंने उसमें भाग लेनेके लिए अपना मन तैयार कर लिया। यदि अन्य किसी कारणसे नहीं, तो आपके प्रति मेरे आदरभावके खयालसे ही सही।

शामिल न होनेके कारणोंमें सबसे प्रबल कारण यह था कि लोकमान्य तिलक, श्रीमती बेसेंट और अली भाइयोंको इस सम्मेलनमें आमन्त्रित नहीं किया गया था। इन्हें मैं सबसे बड़े और समर्थ लोकनेता मानता हूँ। मेरा तो अब भी यही खयाल है कि उन्हें आमन्त्रित न करके सरकारने गम्भीर भूल की है। मेरा सादर सुझाव है कि अब जो प्रान्तीय सम्मेलन होनेवाले हैं, उनमें इन नेताओंको आमन्त्रित करके और उनसे यह कहकर कि वे अपने परामर्शका लाभ देकर सरकारकी सहायता करें, वह अपनी भूल सुधार सकती है। मेरी विनम्र राय है कि कोई भी सरकार विशाल जनताका प्रतिनिधित्व करनेवाले इतने बड़े-बड़े नेताओंकी उपेक्षा नहीं कर सकती, भले ही उनके साथ सरकारका कितना ही

१. इसका मसविदा हालाँकि सम्मेलन समाप्त होनेके तुरन्त बाद ही, इसी तिथिको तैयार कर लिया गया था, लेकिन लगता है कि यह शिमलामें वाइसरायके पास दूसरे दिन निजी सचिवके नाम एक सह-पत्रके साथ भेजा गया था; देखिए "पत्र : जे० एल० मैफीको", अप्रैल ३०, १९१८।

२. देखिए "पत्र : सर क्लॉड हिलको", २६-४-१९१८।

गहरा मतभेद क्यों न हो। साथ ही मैं कह सकता हूँ और इसका मुझे हर्ष है कि सम्मेलनकी समितियोंमें सभी दलोंको अपने विचार स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त करने दिये गये थे। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैंने सोच-समझकर अपने विचार न तो उस समितिमें प्रकट किये जिसमें मुझे रखा गया था और न सम्मेलनमें। मुझे लगा कि उद्देश्योंकी अधिकसे-अधिक अच्छी सेवा उसमें पेश हुए प्रस्तावोंका समर्थन मात्र करना ही होगा। वह समर्थन मैंने मनमें जरा भी गाँठ न रखकर किया है। इसी पत्रसे संलग्न अलग पत्रमें[1] कुछ सुझाव दे रहा हूँ। इनको सरकारके स्वीकार करते ही, मैं अपने शब्दोंको अमली जामा पहनाने लगूँगा। मैं मानता हूँ कि हम निकट भविष्यमें जिस साम्राज्यके वैसे ही हिस्सेदार बननेकी आकांक्षा रखते हैं जैसे कि समुद्र-पारके अन्य 'डोमीनियन' हैं, उस साम्राज्यकी संकटकी घड़ीमें हमें बिना किसी मीन-मेखके पूरी तौरपर उसका समर्थन करना चाहिए और हमने यही निर्णय भी किया है। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि इस समर्थनके पीछे हमारी यही आशा है कि इसके फलस्वरूप हम अपनी मंजिल तक और उसी तरह जल्द पहुँच जायेंगे, जिस तरह कर्त्तव्य-पालनके साथ ही हमें तत्सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार लोगोंको यह माननेका हक है कि जिन सुधारोंके जल्द ही होनेकी आशा आपके भाषण में दिलाई गई है, उनमें कांग्रेस और मुस्लिम लीगकी योजनाके मुख्य सिद्धान्तका समावेश होगा। मैं निश्चित रूपसे मानता हूँ कि इस विश्वासके कारण ही सम्मेलनके अधिकांश सदस्य सरकारको पूरे दिलसे सहयोग देनेमें समर्थ हुए हैं।

मैं अपने देशबन्धुओंको समझा सकूँ, तो जबतक युद्ध जारी है, तबतक कांग्रेसके सारे प्रस्ताव उससे एक ओर रखवा दूँ और 'होमरूल' या 'उत्तरदायी शासन' शब्दोंका उच्चारण तक न करने दूँ और साम्राज्यके इस संकटके समय मैं सभी समर्थ भारतीयोंको उसकी रक्षार्थ चुपचाप कुरबान हो जानेको प्रेरित करूँ। मैं जानता हूँ कि इतना करने पर हम साम्राज्यके सबसे बड़े और आदरणीय साथी बन जाते हैं और जातीय भेदभाव तो नष्ट हो ही जायेगा। किन्तु हिन्दुस्तानके लगभग पूरे शिक्षित-वर्गने इससे कम कारगर उपाय काममें लेना तय किया है और अब यह कहना भी सम्भव नहीं रह गया है कि शिक्षित-वर्गका आम जनतापर कोई असर नहीं है। मैं जबसे दक्षिण आफ्रिकासे भारत आया हूँ, तभीसे जनताके गहरे सम्पर्कमें आता रहा हूँ और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि 'होमरूल' की आकांक्षा जनताके दिलोंमें घर कर गई है। कांग्रेसके पिछले अधिवेशनमें मैं उपस्थित था और उस प्रस्तावको तैयार करनेमें मैंने भी भाग लिया था, जिसमें कहा गया है कि पार्लियामेंट कानून द्वारा जो समय निश्चित करे, उतने समयके भीतर हिन्दुस्तानको पूरी तरह जिम्मेदार हुकूमत दे देनी चाहिए। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह बड़ा साहस-साध्य कदम है। पर उसके साथ मुझे यह भी साफ महसूस होता है कि भारतीय जनता तबतक संतुष्ट नहीं हो सकती जबतक उसे इस बातका स्पष्ट झलक न मिल जाये कि 'होमरूल' आ रहा है और बहुत जल्द आ रहा है। हिन्दुस्तानमें ऐसे बहुत हैं, जो यह मानते हैं कि 'होमरूल' लेनेके लिए जितना भी त्याग किया जाये, थोड़ा है। इसीके साथ वे इतने जाग्रत भी हैं कि जिस साम्राज्यमें वे अपना अन्तिम उद्दिष्ट स्थान प्राप्त करनेकी आशा रखते

१. देखिए अगला शीर्षक।

हूँ, उसके लिए बड़ीसे-बड़ी कुरबानी करनेको उन्हें तैयार रहना चाहिए। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि साम्राज्यपर घिरे हुए खतरेसे उसे मुक्त करनेके लिए हम बिना कुछ कहे-सुने पूरी तरह जुट जायें, तभी हम अपने ध्येय तक जल्दीसे-जल्दी पहुँच सकेंगे। यह सीधा-सादा सत्य स्वीकार न करना राष्ट्रके लिए आत्महत्या करने जैसा होगा। हमें समझना चाहिए कि यदि साम्राज्यको बचानेमें हम अच्छी तरह भाग लेंगे, तो इसीसे हमको 'होमरूल' मिल जायेगा।

इसलिए यह तो मैं स्पष्ट देख सकता हूँ कि साम्राज्यकी रक्षाके लिए जितने भी सैनिक दिये जा सकें, हमें देने चाहिए। पर आर्थिक सहायताके बारेमें मैं ऐसा नहीं कह सकता। मैं लोगोंकी हालत जानता हूँ और इसलिए कह सकता हूँ कि हिन्दुस्तान शाही खजानेको अपनी शक्तिसे कहीं अधिक धन दे चुका है। मुझे निश्चय है कि यह कहते हुए मैं अपने देशबन्धुओंके बड़े बहुमतकी राय ही व्यक्त कर रहा हूँ।

मेरे लिए और मेरा खयाल है कि अन्य बहुतसे लोगोंके लिए सम्मेलनका यही अर्थ है कि हमने एक सर्व-सामान्य उद्देश्यके लिए अपना जीवन अर्पित करनेकी दिशामें एक निश्चित कदम उठाया है। किन्तु हमारी स्थिति विषम है। आज हम साम्राज्यके बराबरके हिस्सेदार नहीं हैं। हमारे बलिदानोंका आधार बेहतर भविष्यकी आशा है। वह आशा कैसी है, यह अगर मैं साफ-साफ असन्दिग्ध भाषामें न बताऊँ तो आपके और अपने देशके प्रति बेवफाई करूँगा। मैं आज सौदा नहीं करना चाहता। लेकिन वह आपको जानना तो चाहिए ही। यदि यह आशा पूरी न हुई, तो साम्राज्य-सम्बन्धी हमारा आज तक का विश्वास एक भ्रम ही सिद्ध होगा।

एक और बात भी मुझे कह देनी चाहिए। आपने हमसे घरेलू झगड़े भूल जानेको कहा है। इसका अर्थ अगर यह हो कि अधिकारियोंके जुल्म और दुष्कृत्य हमें चुपचाप सहन कर लेने चाहिए, तो यह हमारे लिए असम्भव है। मैं हर संगठित अत्याचारका सारी शक्ति लगाकर प्रतिकार करूँगा। इसलिए आपकी अपील तो अधिकारियोंसे होनी चाहिए कि वे किसी भी मनुष्यको न सतायें, लोगोंसे सलाह-मशविरा करके काम करें और लोकमतका इतना आदर करें, जितना आजतक नहीं किया गया है। चम्पारनमें सदियोंसे होनेवाले जुलमका विरोध करके मैंने ब्रिटिश न्यायकी सर्वोच्चता साबित कर दी है। खेड़ाकी जो प्रजा सरकारको गालियाँ देती थी, वह आज समझ गई है कि जब जनतामें अपने सत्यके लिए कष्ट सहनेकी शक्ति आ जाती है, तब सच्ची सत्ता सरकारकी नहीं, बल्कि जनताकी चलती है। इसीलिए आज उसमें कटुता कम हो गई है। वह कहने लगी है कि जो सरकार अन्यायके विरुद्ध व्यवस्थित एवं सम्मानपूर्ण अवज्ञाको सहन करती है, वह लोकमतकी सर्वथा उपेक्षा करनेवाली नहीं हो सकती। इसलिए मेरा यह विश्वास है कि चम्पारन और खेड़ामें मैंने जो काम किया है, यह इस युद्धमें मेरी सीधी, स्पष्ट और खास सहायता है। इस तरहका अपना काम बन्द करनेके लिए अगर आप कहें तो गोया आप मुझसे मेरी साँस बन्द करनेके लिए कहेंगे। अगर मैं शुद्ध शरीरबलके बजाय आत्मबल यानी प्रेमबलको लोकप्रिय बनानेमें सफल हो जाऊँ, तो मैं जानता हूँ कि हिन्दुस्तानको ऐसा बना सकूँगा, जो सारी दुनियाकी नजर कड़ी हो जानेपर भी उससे लोहा ले सकता है। इसलिए कष्ट सहन करनेके इस सनातन

नियमको मैं अपने जीवनमें गूँथनेके लिए हमेशा अपनी आत्माको कसा करूँगा और इस नियमको स्वीकार करनेके लिए दूसरोंको निमन्त्रित करता रहूँगा। दूसरी किसी हलचलमें मैं यदि भाग लेता हूँ तो उसका उद्देश्य भी इसी सनातन नियमकी अद्वितीय श्रेष्ठता साबित करना ही है।

अन्तमें मैं आपसे ब्रिटिश मंत्रिमंडलको मुस्लिम राज्योंके बारेमें निश्चित आश्वासन देनेकी बात सुझानेकी प्रार्थना करता हूँ। आप जानते ही हैं कि हर मुसलमान इस विषयमें चिन्तातुर है। मैं एक हिन्दूके नाते उनकी आकांक्षाके प्रति उदासीन नहीं रह सकता। उनके दुःख हमारे होने ही चाहिए। इन मुस्लिम राज्योंके हकोंकी रक्षा करने, अपने धर्मस्थानों सम्बन्धी उनकी भावनाओंका आदर करने और हिन्दुस्तानकी 'होमरूल' सम्बन्धी माँगको समय रहते स्वीकार करनेमें ही साम्राज्यकी सुरक्षा है।

यह मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि मैं अंग्रेज जातिसे प्रेम करता हूँ और [साम्राज्यके प्रति] जो वफादारी अंग्रेजोंमें हो सकती है, वही वफादारी हरएक हिन्दुस्तानीमें जगाना चाहता हूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया: होम, वार (डिपॉजिट): अक्तूबर १९१८, संख्या २६

२५७. पत्र: जे० एल० मैफीको

नडियाद
अप्रैल ३०, १९१८

प्रिय श्री मैफी,

मैंने कलके[१] सम्मेलनमें जो घोषणा की है उसके अनुसार मैं सादर निवेदन करना चाहता हूँ कि मैं अपनी सेवाएँ अधिकारियोंको अर्पित करता हूँ, और वे जिस तरह भी उनका उपयोग करना चाहें, कर सकते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि मैं व्यक्तिशः किसीको भी — चाहे वह शत्रु हो या मित्र — न तो चोट पहुँचाऊँगा और न किसीकी हत्या करूँगा।

किन्तु यदि मैं बता दूँ कि मेरे विचारसे मेरी सेवाओंका सर्वोत्तम उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है, तो अच्छा होगा।

सर्वप्रथम तो मेरे कार्यको प्रभावकारी बनानेके लिए यह आवश्यक है कि मुझे छिंदवाड़ा जाकर अली भाइयोंसे मिलनेकी अनुमति दी जाये। मैं उनसे परामर्श करके सम्मेलनके उद्देश्योंके सम्बन्धमें उनके विचार जानना चाहूँगा। मुझे इसमें कोई सन्देह

१. २८ अप्रैल; जान पड़ता है पत्र २९ अप्रैलको लिखा गया था।

नहीं है कि वे सहयोगका अनुमोदन करेंगे। यदि सरकार, मैंने प्रारम्भमें जो प्रार्थनाकी थी, उसे स्वीकार करे, तब तो वह अली भाइयोंको — युद्धकी दृष्टिसे उठाये गये कदमके रूपमें ही सही — रिहा करके तुरन्त हिन्दू-मुसलमान, दोनोंको तुष्ट कर दे सकती है। यह कार्रवाई सम्मेलनके उद्देश्योंके लिए बहुत सहायक सिद्ध होगी। लेकिन फिलहाल तो मैं उनसे मिलनेकी अनुमति पाकर ही सन्तुष्ट हो जाऊँगा। मेरा कहना केवल यह है कि उनको रिहा करना युद्धकी दृष्टिसे अपेक्षाकृत अधिक प्रभावकारी कार्य होगा। अलबत्ता, व्यक्तिशः तो मैं उनकी रिहाईका आग्रह करनेका अधिकार सुरक्षित रखूँगा ही।

दूसरी बात यह है कि मैं खेड़ाके झगड़ेके बारेमें राहत चाहता हूँ। यदि राहत दे दी गई तो अभी मैं जिस कार्यमें व्यस्त हूँ, उससे मुझे फुरसत मिल जायेगी। अन्यथा इस कार्यसे बिलकुल अलग होना मेरे लिए मुश्किल होगा। लेकिन अगर मुझे उससे फुरसत मिल गई तो मैं युद्धके उद्देश्योंके लिए अपने खेड़ा जिलेके साथी कार्यकर्त्ताओंकी भी मदद ले सकूँगा, और उस जिलेमें मेरे लिए रंगरूट भरती करना भी सम्भव हो सकता है। वहाँकी समस्या तो बिलकुल आसान है। मैंने यह सुझाव दिया है कि इस सालके लिए लगान — जिसकी बकाया रकम अब शायद चार लाखसे कम रह गई है — मुलतवी कर दिया जाये, लेकिन इस उपबन्धके साथ कि जो लोग लगान अदा कर सकते हैं, वे अपने ईमानके अनुरोधपर उसे स्वेच्छापूर्वक अदा कर दें। यह तो मैंने पहले ही कह दिया है कि मैं पूरा प्रयत्न करूँगा कि समर्थ किसान अपना लगान चुका दें। यदि यह प्रस्ताव अस्वीकार्य हो तो मैंने अधिकारियों तथा किसानोंके बीचके मतभेदोंकी जाँच करनेके लिए एक निष्पक्ष जाँच-समिति नियुक्त करनेका भी सुझाव दिया है। मेरा निवेदन है कि इस मामलेमें भी युद्ध-स्तरीय उपायके रूपमें ही कार्रवाई की जाये। समिति नियुक्त कर देनेसे राहतके नजीर समझे जानेका भय जाता रहेगा।

कृपया यह समझ लें कि मेरा प्रस्ताव दोनोंमें से किसी भी मामलेमें राहतकी शर्त पर आधारित नहीं है। मैं केवल एक समान उद्देश्यके हितकी दृष्टिसे उक्त दो मामलोंमें राहतकी माँग करता हूँ।

जहाँतक मेरे कार्यकी बात है, मैं फिलहाल तो यह चाहूँगा कि देशका दौरा करके लोगोंको अपनी सेवाएँ प्रदान करनेकी वांछनीयता बताऊँ तथा यह जानकारी प्राप्त करूँ कि सफलताकी क्या सम्भावनाएँ हैं। और यदि मुझे यह काम करना है तो जिन क्षेत्रोंमें विशेषज्ञोंके विचारमें काम किया जाना चाहिए उनके बारेमें मैं विस्तृत जानकारी चाहूँगा तथा कामके स्वरूपके सम्बन्धमें भी कुछ निर्देशोंकी अपेक्षा रखूँगा। इनके अलावा, उनकी समझमें मेरे लिए यदि कोई और जानकारी रखनी आवश्यक हो तो उसे भी प्राप्त करना चाहूँगा।

यदि यह वांछनीय हो कि मैं इस सिलसिलेमें व्यक्तिगत रूपसे किसी अधिकारीसे मुलाकात करूँ या आपसे ही मिलूँ तो मैं शिमला आनेको तैयार हूँ। आप ४ मईके बाद मुझे जब भी बुलाना चाहेंगे, मैं तुरन्त आ जाऊँगा। मेरा पता नडियाद होगा।

मैं समझता हूँ, मुझे अपने पिछले कार्योंके बारेमें आपको कुछ बता ही देना चाहिए। मैं बोअर युद्धमें १,१०० व्यक्तियोंके भारतीय डोली-वाहक दलका मुखिया था और कॉलेजों,

स्पिऑनकॉप, वॉलक्रॉजके[1] युद्धोंमें व्यक्तिशः उपस्थित था। जनरल बुलरके खरीतोंमें[2] मेरा विशेष उल्लेख किया गया था। १९०६ के जूलू विद्रोहमें भी मैं इसी तरहके ९० भारतीयोंके एक दलका मुखिया था,[3] और उस समयकी नेटाल सरकारने मुझे विशेष रूपसे धन्यवाद दिया था। और अन्तमें मैंने वर्तमान युद्धके प्रारम्भ होते ही लन्दनमें करीब १०० छात्रोंका एक डोली-वाहक दल खड़ा किया था, और मुझे १९१५ में केवल इसलिए भारत लौट जाना पड़ा कि मैं प्लूरिसीके भयानक आक्रमणसे पीड़ित था। यह बीमारी मुझे आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करते समय हो गई थी।[4] पुनः स्वस्थ होनेपर मैंने लॉर्ड हार्डिंगको अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कीं। किन्तु उस समय यह अनुभव किया गया कि मुझे मेसोपोटामिया या फ्रांस नहीं भेजा जाना चाहिए, बल्कि भारतमें ही रहना चाहिए। यहाँ मैं इस बातकी चर्चा नहीं करता कि अपना यह प्रस्ताव मैं प्रान्तीय अधिकारियोंके सामने भी बार-बार रख चुका हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया: होम, वार (डिपॉज़िट): अक्तूबर १९१८, संख्या २६

२५८. पत्र: जे० एल० मैफीको

नडियाद
अप्रैल ३०, १९१८

प्रिय श्री मैफी,

मैं चाहता हूँ कि कृपया वाइसरायको मेरा पत्र आप पढ़कर सुना दें और मुझे नडियादके पतेपर तार दें कि उस पत्रको प्रकाशित करनेमें क्या उनको कोई आपत्ति है?[5] उसका उद्देश्य बुराईकी शक्तियोंका प्रतिकार करना है। मेरी स्थितिका स्पष्टीकरण चाहनेवालोंने मुझपर प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी है। लोग कुछ साफ नहीं समझ पा रहे हैं। अफवाह जितनी शरारत कर सकती है, कर रही है। मैं उसका असर दूर करना चाहता हूँ। मुझमें जो उतावली दिखती है, उसके लिए आप मुझे क्षमा करें।

दूसरे सह-पत्रमें[6] मेरी सेवाएँ देनेकी बात है। आप उसका जो उपयोग चाहें कर

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १४७, १५९-६०।
२. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २३३।
३. भारतीय डोली-वाहक दल, देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ३७८-७९।
४. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ५२७-३३ और ५४९-५०।
५. मैफीने २ मईको गांधीजीको तार दिया था: "पत्रके प्रकाशनके सम्बन्धमें आप अपने विवेकके अनुसार निर्णय कर सकते हैं। प्रकाशनके लिए अनुमतिकी प्राप्तिका उल्लेख न किया जाये।"
६. देखिए पिछला शीर्षक।

लीजिए। मेरी बड़ी इच्छा है कि ऐसा कुछ करूँ जिसे लॉर्ड चैम्सफोर्ड युद्ध-सम्बन्धी वास्तविक कार्य मानें। मैं सोचता हूँ कि आप मुझे अपना मुख्य भरती-अफसर बना दें, तो मैं आपपर भरती होनेवालोंकी वर्षा कर दूँ। मेरी इस धृष्टताके लिए क्षमा कीजिए।

कल वाइसराय बहुत थके हुए थे। तब भी वे भाषणोंको बड़े ध्यानसे सुन रहे थ, और यह देखकर मैं उनके प्रति गहरी सहानुभूतिका अनुभव कर रहा था। उनपर और उनके वफादार निष्ठावान् सचिव, आपपर ईश्वरकी कृपा रहे; वह आप दोनोंकी रक्षा करे। मेरा खयाल है कि आप उनके लिए सचिवसे कुछ अधिक ही हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

पुनश्च —— सेंट स्टीफेन्स कॉलेजके रेवरेंड श्री आयरलैंडने इस पत्रको आप तक पहुँचाना स्वीकार करनेकी कृपा की है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया : होम, वार (डिपॉज़िट): अक्तूबर १९१८, संख्या २६

२५९. पत्र : सर विलियम विन्सेंटको

[नडियाद]
अप्रैल ३०, १९१८

प्रिय सर विलियम विन्सेंट,

रविवारको मैंने आपको परेशान किया। किन्तु मैं आपके उसी उद्देश्यको आगे बढ़ानेके लिए आपके पास आया था, जिसमें आप अपने-आपको खपा रहे हैं। मुझे आपसे इतना ही कहना था कि अली भाइयोंके छुटकारेसे फौजी भरतीके काममें बड़ी तेजी आ जायेगी। अगर मैं ऐसा न मानता होता, तो यह आशा रखना कि आप अपने समयमें से मुझे एक भी मिनट दें, मेरे लिए पापपूर्ण होता।

आपने मुझसे पूछा था कि क्या मैंने सरकारको एक भी रंगरूट भरती करके दिया? मैं कहना चाहता हूँ कि यह सवाल उचित नहीं था। ऐसा भी हो सकता है कि कोई व्यक्ति एक भी रंगरूट न लाये पर साम्राज्यकी सच्ची सेवा करता रहे।

मैं आशा रखता हूँ कि आप इस पत्रसे नाराज नहीं होंगे, किन्तु जिस मुलाकातको आपने जल्दीमें गलत समझ लिया, उसकी ईमानदाराना सफाईके तौरपर आप इसे स्वीकार करेंगे।

[हृदयसे आपका,]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

२६०. पत्र : रवीन्द्रनाथ ठाकुरको[1]

दिल्ली
अप्रैल ३०, [१९१८]

प्रिय गुरुदेव,

मैं चाहता था कि श्री एन्ड्रयूजको और थोड़े समय अपने साथ रखता, फिर भी मुझे संदेह नहीं कि उन्हें आज रातको कलकत्तेके लिए रवाना हो जाना चाहिए। मैं जानता हूँ कि आजकल आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। और आप चाहते हैं कि ऐसे समय आपके पास एन्ड्रयूज मौजूद रहें; इससे आपको शान्ति मिलेगी। आपको जबतक जरूरत हो, उन्हें अपने पास ही रखिये। हम इस समय देशमें एक महान् परिवर्तनके द्वारपर खड़े हैं। मैं चाहता हूँ कि देशके नवजन्मकी इस घटनाके मौकेपर सारी शुद्ध शक्तियाँ सशरीर देशमें ही मौजूद रहें। इसलिए आपको देशमें ही किसी जगह आराम मिल सकता हो, तो मैं आपसे और श्री एन्ड्रयूजसे प्रार्थना करूँगा कि अभी आप देशमें ही रहिये और समय-समय पर एन्ड्रयूजको मेरे पास भेजते रहियेगा। कभी-कभी उनका मार्गदर्शन मेरे लिए बड़ा कामका साबित होता है।

श्री अम्बालालने मुझसे आपको यह कहनेके लिए कहा है कि उन्हें आपको और आपके अन्य साथियोंको अपने माथेरानवाले बँगलेमें अपने आदरणीय अतिथियोंके रूपमें ठहरानेमें बहुत खुशी होगी। वहाँ प्रवासका मौसम जूनके मध्य तक रहता है। श्री अम्बालाल, यदि आपकी वैसी इच्छा हो तो, ऊटीमें भी आपके निवासका प्रबन्ध करनेके लिए तैयार हैं। मेरा खयाल है कि ज्यादा अच्छा यह होगा कि फिलहाल आप माथेरान आकर रहें और गरमीका बाकी मौसम ऊटीमें बितानेके सवालपर उसके बाद निर्णय करें।

मुझे आशा और विश्वास है कि आप अपनी मौजूदा मानसिक श्रान्तिसे शीघ्र ही मुक्त होकर पुनः पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २२९१)

१. गांधीजीने यह सुनकर कि दोनों विदेश-यात्रापर जानेवाले हैं, यह पत्र एन्ड्रयूजके हाथों रवीन्द्रनाथ ठाकुरके पास भेजा था।

२६१. पत्र : मगनलाल गांधीको

नडियाद

[अप्रैल-मई, १९१८]

चि० मगनलाल,

लीमडीका पत्र अच्छा है। मेरी सलाह है कि तुम स्वयं लीमडी जाओ और वहाँ काम सिखानेके बाद किसी दूसरेको रखनेकी जरूरत जान पड़े तो रखो। मुझे निश्चय हो गया है कि तुम्हें अब बाहर निकलना ही चाहिए। अगर लीमडीसे तुम दो-एक दिनके लिए आश्रम हो आना चाहो तो वैसा भी कर सकते हो। यदि अन्तमें मामाको लीमडी भेजना आवश्यक लगा तो उन्हें वहाँ भेज दिया जायेगा। एक महीनेमें सब-कुछ नहीं सिखाया जा सकता यह बात तुम वहाँ जाकर ही बता सकोगे या समझा सकोगे। मैं [तुम्हें] शिवलालको अधिक वेतन देकर भी बुलानेकी सलाह देता हूँ। तुम जब लीमडी जाओ तब वढवानमें उसके पितासे बातचीत करके उनका मन शान्त कर सकते हो। उन्हें समझाना कि आश्रम सबको बावाजी बनानेके लिए नहीं है। आश्रममें रहकर जो लोग धनोपार्जन कर रहे हैं उनके नाम आदि देना। शिवलालके आनेसे तुम वहाँसे पूर्णतया मुक्त हो सकोगे। मेरी इच्छा तो यह है कि चाहे जितनी कठिनाई क्यों न उठानी पड़े तुम्हें लीमडी जाना ही चाहिए। लीमडी यदि तुम बा को साथ ले जाओ, तो अच्छा हो। वह तुम्हें खाना खिलायेगी और वहाँ की स्त्रियोंमें थोड़ा-बहुत काम भी करेगी। सन्तोकसे तो अभी नहीं ही आया जा सकता। वह तो फिलहाल हिसाब रखेगी और लड़कियोंकी देखभाल करेगी। अनसूयाबहनको अगर चर्खा अभीतक न भेजा हो तो भेज देना। हम आश्रममें चर्खा चलाना शुरू कर दें तो अच्छा हो। यह तुम्हारे बीजापुरसे लौट आनेके [और वहाँकी सब व्यवस्था देख आनेके] पश्चात् ही सम्भव हो सकता है। क्या आदरणीय खुशालभाईका स्वास्थ्य ऐसा है कि वे हमारे किसी काममें हाथ बँटा सकें? उनकी मनोवृत्ति इस ओर है? देव भाभीको भी [हमारे काममें योग देनेके लिए] प्रेरित करना।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७२९) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

२६२. पत्र : हरिलाल गांधीको

[गाड़ीमें]
मई १, १९१८

[चि० हरिलाल,]

तुम्हारा पत्र मुझे दिल्लीमें मिला था। तुम्हें क्या लिखूं? सब लोग अपने-अपने स्वभावके अनुसार कार्य करते हैं। स्वभावको जीतनेमें ही पुरुषार्थ है, यही धर्म है। यदि तुम यह पुरुषार्थ करो, तो तुम्हारे दोष भुला दिये जायेंगे। तुम कहते हो कि तुमने चोरी की ही नहीं; इसलिए मैं तो मान लूंगा। परन्तु दुनिया नहीं मानेगी। दुनियाके ताने सह लेना और आइन्दा सावधान रहना। दुनियाकी राय बदलना। तुम्हारी दुनिया तुम्हारा मालिक है। अदालतमें तुम्हारा न्याय हो, तो उससे डरना मत। मेरी मानो तो वकील न करना। उन्हींके वकीलको सब बातें समझा देना।

तुम्हारे हाथमें हीरा था, लेकिन अपनी स्वभावगत विचारहीनता और अधीरतासे तुम उसे खो बैठे। तुम बच्चे नहीं हो। तुमने संसारका रस कम नहीं चखा है। अगर जी भर गया हो, तो पीछे लौट आना। हिम्मत न हारना। तुम सच्चे हो, तो सत्य परसे विश्वास न छोड़ना। सत्य ही परमेश्वर है। गुण जड़ नहीं, चेतन हैं। तुम्हारा जीवन विचारहीन और असंयत रहा है। मैं चाहता हूँ कि अब तुम उसे विचारमय और संयममय बनाओ।

दिल्लीमें मेरे हाथों सहज ही एक बड़ा भारी काम[1] हो गया। उसका कुछ वर्णन तुम अखबारोंमें पढ़ोगे। मेरे पास लिखनेका समय नहीं है। फुरसत निकालकर भाई महादेव तुम्हें लिखेंगे। वह सब उन्होंने देखा है। उन्होंने तुम्हारी कमी तो पूरी कर दी, किन्तु यह ममता अभीतक दिलसे नहीं जा रही है कि उनके स्थानपर तुम होते, तो कितना अच्छा होता। अगर मेरे दूसरे लड़के न होते, तो सूखकर मर जाता। लेकिन जो हो गये हैं, उन्हें हटाये बिना तुम्हें जिस समय ज्ञानपूर्वक पुत्र बनना हो, तुम्हारा स्थान बना ही हुआ है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. स्पष्टतः यह उल्लेख उनके युद्ध-सम्मेलनमें भाग लेनेका है।

२६३. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको लिखे पत्रका अंश

[बम्बई
मई ३, १९१८]

आपकी 'ना' का मेरे मनमें सच्चा मूल्य था। सबकी 'हाँ' की कोई कीमत न थी।[१]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

२६४. भाषण : अछूत परिषद्में[२]

बीजापुर
मई ५, १९१८

गांधीजीसे एक प्रस्ताव पेश करनेको कहा गया जिसमें कांग्रेस-लीग योजनाका समर्थन किया गया था और यह सिफारिश की गयी थी कि सरकार अछूतोंका भी स्थान स्वीकार करे। प्रस्ताव पेश करनेसे पहले सभाकी ओर दृष्टिपात करते हुए उन्होंने दो बार पूछा :

इस सभामें अछूत कितने हैं?

एक भी नहीं है, यह जानकर उन्होंने हिन्दीमें कहा :

तो बारह-बारह बजे तक हम यहाँ क्या करते हैं? जैसे तोता 'नारायण', 'नारायण' रटता है, वैसी ही स्थिति हमारी है। मैं भाई शिन्देसे[३] कहता हूँ कि वे ऐसी परिषदें करना छोड़ दें और किसी ठोस काममें ही लगे रहें। अस्पृश्यताके पापसे मुक्ति हृदय-शुद्धिसे ही मिल सकती है। हमारा काम हार्दिक भावनासे ही हो सकता है, कृत्रिमतासे नहीं। हम अस्पृश्यता-निवारणके लिए बहुत प्रस्ताव पास करते हैं, किन्तु उनका कोई परिणाम नहीं होता। प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास न हो सके, इसलिए एक सज्जनने कहा कि यह परिषद् अव्यावहारिक है। मैं भी कहता हूँ कि यह परिषद् अव्यावहारिक है।

१. श्री शास्त्रीने बम्बईकी एक सभामें खेड़ा सत्याग्रहसे सम्बन्धित प्रस्ताव पेश करनेके विरुद्ध एक आपत्ति उठाई थी, वह यह कि प्रस्ताव पेश करनेके लिए अपेक्षित सात दिनकी सूचना नहीं दी गई थी। गांधीजी प्रस्ताव वापस लेनेके लिए सहमत हो गये। श्री शास्त्रीके अतिरिक्त, अन्य सभी प्रस्ताव वापस लेनेके विरुद्ध थे, लेकिन शास्त्रीने खेद प्रकट किया कि वे उससे सहमत नहीं हो सकते। प्रस्ताव वापस ले लिया गया था।

२. यह द्वितीय दलित वर्ग मिशन सम्मेलन था। इसकी अध्यक्षता बी० एस० कामतने की थी।

३. वी० आर० शिन्दे।

जब मैंने कांग्रेस-लीग योजनाकी मंजूरीका प्रस्ताव पढ़कर सुनाया, तब मेरी यह धारणा थी कि उसका समर्थन कोई अछूत करेगा। किन्तु यहाँ अछूत तो कोई है ही नहीं। तब इस प्रस्तावको पास करनेसे क्या फायदा? इस प्रस्तावका मॉण्टेग्यु पर क्या असर होगा? मैं इस प्रस्तावको पेश नहीं कर सकता। हमें यहाँ इस प्रस्तावको पास करनेका तनिक भी अधिकार नहीं है, इसलिए हम यहाँ यह प्रस्ताव नहीं रख सकते। हम अपनी कृत्रिमता छोड़कर सरल बन जायें, यही काफी है। हम वर्णाश्रम धर्मका पालन नहीं करते। ब्राह्मणोंने ब्राह्मणका धर्म छोड़ दिया है, क्षत्रियने क्षत्रियका धर्म त्याग दिया है, वैश्योंने वैश्य-धर्मको तिलांजलि दे दी है; और जो चीज हमारे धर्ममें नहीं है, उसे हम पकड़े हुए हैं। हम स्वराज्यके योग्य नहीं हैं।

जो स्वराज्य माँगते हैं, वे अछूतोंके लिए क्या करेंगे, यह सवाल हमसे लॉर्ड सिडनहम जैसे भाई जरूर पूछेंगे और उसका उत्तर देते समय हमें शर्मिन्दा होना पड़ेगा। जो स्वराज्य माँग रहा हो, उसे दूसरोंको स्वराज्य देना चाहिए। जो न्याय माँगता है, उसे न्याय देना चाहिए, यह कानूनका सूत्र है। मैं आप सबसे कहता हूँ कि आप इस खेलको छोड़कर इस मध्यरात्रिमें सच्चे हृदयसे प्रार्थना कर लीजिए, जिससे हमारे पाप और हमारी कठोरता नष्ट हो जाये।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

२६५. खेड़ा-संकटपर सरकारी प्रेस-विज्ञप्तिका उत्तर[1]

[अहमदाबाद]
मई ६, १९१८

खेड़ा-संकटपर जारी की गई सरकारी प्रेस-विज्ञप्ति,[2] उसमें जो-कुछ नहीं कहा गया है उस दृष्टिसे भी और जो-कुछ कहा गया उस दृष्टिसे भी, अत्यन्त दोषपूर्ण है। सर्वश्री पारेख और पटेल द्वारा की गयी जाँचसे सम्बन्धित अनुच्छेदके विषयमें मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयसे मुलाकातके समय कमिश्नरने उनके वक्तव्योंकी सचाईमें सन्देह प्रकट किया। इसपर मैंने तुरन्त एक जाँच-समितिकी नियुक्तिका सुझाव पेश कर दिया। सचमुच, सरकारके लिए इससे उचित और कोई चीज हो ही नहीं सकती थी। यदि उसने ऐसा कर दिया होता तो काश्तकारोंको उनके दुधारू पशुओं और गहना-गाँठीसे वंचित करने तथा उनपर कुर्की-जब्तीके आदेश जारी करने-जैसी अशोभन कानूनी कारंवाइयोंकी नौबत न आती। किन्तु, जैसा कि प्रेस-विज्ञप्तिमें कहा गया है, इसके बदले उसने एक "बहुत ही अनुभवी" कलक्टर नियुक्त कर दिया। बेचारा कलक्टर कर ही क्या सकता था? आज तो अच्छेसे-अच्छे अधिकारियोंको भी एक दूषित

१. इस वक्तव्यका सारांश *न्यू इंडिया*के ६ मईके अंकमें प्रकाशित हो चुका था।

२. यह विज्ञप्ति २५ अप्रैलको जारी की गई थी।

व्यवस्थाके अधीन काम करना पड़ता है। उन्हें एक ऐसे राजकीय सेवा-विभागकी परम्पराओंका निर्वाह करना पड़ता है, जिसने अपनी प्रतिष्ठाको अपना दीन और ईमान बना लिया है, जो अपने-आपको भूल करनेकी सम्भावनासे लगभग परे मानता है, और जो शायद ही कभी अपनी भूल स्वीकार करता हो।

जहाँतक श्री देवधर और उनके साथी कार्यकर्त्ताओं द्वारा की गई जाँचकी बात है, प्रेस-विज्ञप्ति पढ़नेसे पाठकोंके मनपर यही छाप पड़ती है कि कमिश्नरने उनके सुझावोंपर ध्यान दिया है। किन्तु, सचाई यह है कि मुलाकातके दौरान, मेरे सामने ही, उन्होंने उनके द्वारा पेश की गई रिपोर्टकी सचाईमें सन्देह प्रकट किया था, और स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि वे जो राहत दे रहे हैं, वह रिपोर्टके कारण नहीं; क्योंकि रिपोर्टके विषयमें सार-रूपमें उनका कहना यह था कि जहाँतक उसमें नई बातें कही गई हैं, वे सत्य नहीं है और जहाँतक उसमें सच्ची बातें कही गई हैं, वे नई नहीं है।

मातर ताल्लुकेकी विपत्तिका पूरा हाल बताकर मैं लोगोंको उबाना नहीं चाहता। इस ताल्लुकेके कुछ गाँवोंमें, जहाँ सिंचाई-नहरोंका भी प्रकोप हुआ है, लोगोंको दुहरी शिकायत है: (१) अतिवृष्टिके कारण फसलोंका आम तौरपर खराब होना, और (२) नहरोंमें बाढ़ आ जानेसे फसलोंकी पूरी बरबादी। दूसरे मामलेमें तो वे पूरी छूटके हकदार हैं। किन्तु, जहाँतक मुझे मालूम है, ऐसे बहुत-से मामलोंमें यह छूट नहीं दी गई है।

यह कहना सही नहीं है कि भारत सेवक समाज [सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी] ने ठसरा ताल्लुकेमें जाँचका काम इसलिए बन्द कर दिया कि वहाँ जाँचके लिए कोई मामला ही नहीं था। सचाई यह है कि उसने यह काम अनावश्यक समझा, क्योंकि मैंने लगभग प्रत्येक गाँवमें फसलोंकी जाँच करना तय कर लिया था। यही बात उसकी रिपोर्टमें भी कही गई है।

प्रेस-विज्ञप्तिमें मेरे जाँचके तरीकेको 'अव्यवहार्य' कहकर न्याय नहीं किया गया है। मैं अपने इस मतपर अब भी दृढ़ हूँ कि यदि काश्तकारोंकी बातोंपर भरोसा किया जा सकता है तो मेरे तरीकेसे जाँच करने पर जो भी निष्कर्ष निकलेंगे, सर्वथा विश्वसनीय ही होंगे। अपनी फसलोंकी उपजके बारेमें स्वयं काश्तकारसे अधिक जानकारी और किसे हो सकती है? मैं यह माननेको तैयार नहीं हूँ कि लाखों व्यक्ति मिल-जुलकर झूठ बोलनेके लिए साजिश करेंगे, जब कि उन्हें उससे किसी बड़े लाभकी आशा भी न हो और कष्ट उठाना निश्चित हो। और यह तो असम्भव ही है कि हजारों लोग दस फसलोंकी भी — वास्तविक और अनुमानित — उपजके बारेमें आँकड़ोंको इस प्रकार रट रखें जिससे प्रत्येक मामलेमें कुल उपजके योगको देखनेपर यह परिणाम निकले कि फसल चार आनेसे कम हुई। मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि मेरा तरीका ही ऐसा है, जिसमें धोखा-धड़ीकी कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। इसके अतिरिक्त मैंने खरीफ और रबी दोनों फसलोंकी सरकारी 'आनावारी' को चुनौती दी थी। और जब मैंने ऐसा किया था, तब रबीकी फसल खेतोंमें ही खड़ी थी। अतः मैंने यह सुझाव दिया था कि अधिकारीगण इन फसलोंको अपने सामने कटवाकर उनकी उपजकी जाँच करके सही आनावारी मालूम कर सकते हैं। यह सुझाव मैंने विशेष रूपसे वड़थलके बारेमें दिया था। मेरा कहना यह

था कि यदि इन रबी फसलोंके बारेमें काश्तकारोंकी आनावारी सही और सरकारी आनावारी गलत पाई जाती है तो यह निष्कर्ष अनुचित न होगा कि खरीफकी फसलोंके बारेमें भी काश्तकारोंका अनुमान सही है। मगर मेरा सुझाव स्वीकार नहीं किया गया। इतना और बता दूं कि मैंने यह अनुरोध भी किया था कि जब कलक्टर साहब वड़थल जायें उस समय मुझे भी वहाँ उपस्थित रहनेकी अनुमति दी जाये। बात यह थी कि वड़थलको कसौटीके गाँवके रूपमें चुना गया था। किन्तु मेरा यह अनुरोध भी अस्वीकार कर दिया गया।

यह विज्ञप्ति इस मानेमें भ्रामक है कि इसमें कहा गया है, मैंने जो आनावारी निकाली, उसमें रबीकी फसलों या रुईकी फसलका विचार नहीं किया। वास्तवमें मैंने हिसाब करते हुए इन फसलोंका विचार भी किया है। मैंने सिर्फ सरकारी पद्धतिके युक्तियुक्त होनेमें शंका की है। कारण स्पष्ट है। यदि एक हजारकी आबादीमें से केवल दो सौ लोग ही रबीकी फसलें उपजाते हैं तो उनके आधारपर रबीकी फसलें न उपजानेके कारण जिन शेष आठ सौ लोगोंकी फसलें चार आने या चार आनेसे कम पैदावार दिखाती हैं उनकी आनावारी बढ़ा देना उनके प्रति घोर अन्याय होगा।

लिम्वासीकी फसलोंपर लिखे गये अनुच्छेदमें तो इतनी ज्यादा गलतबयानियाँ हैं कि उन्हें देखकर मैं हैरतमें पड़ गया हूँ। अव्वल तो जब सरकारी जाँच की जा रही थी उस समय मैं वहाँ मौजूद नहीं था, और दूसरे जिस गेहूँकी कीमत १३,४४५ रुपये आँकी गयी है, उसमें पड़ौसके दो गाँवोंका गेहूँ भी शामिल था। लिहाजा जिन फसलोंकी कीमत १३,४४५ रुपये आँकी गई उनपर तीन जमाबन्दियोंकी अदायगी करनी थी। और फिर अठारह सौकी आबादीमें १३,४४५ रुपयेकी बिसात ही क्या है? मैं यह माननेके लिए तैयार हूँ कि लिम्वासीके लोगोंको चावलकी फसलसे भी उतनी ही रकम प्राप्त हुई। किन्तु यदि एक व्यक्तिके भोजनपर प्रतिवर्ष ४० रुपयेका खर्च माना जाये तो लिम्बासीके लोगोंको केवल भोजनके लिए ही हर साल ७२,००० रुपये चाहिए। और जनसाधारणके लिए यह जानना शायद एक दिलचस्प बात होगी कि सरकारी आनावारीके अनुसार केवल लिम्वासीमें पैदा हुए गेहूँकी कीमत ८३,०२१ रुपये होनी चाहिए। यह आँकड़े मुझे कलक्टर साहबके सौजन्यसे प्राप्त हुए हैं। प्रेस-विज्ञप्ति तैयार करनेमें बरती गई लापरवाहीका अन्दाजा देनेके लिए मैं यह भी बता दूं कि, यदि लिम्बासीके लोगोंका विश्वास किया जाये तो, जाँचके समय गेहूँकी सारी फसल खलिहानमें ही पड़ी हुई थी। उनके कथनानुसार उसमें से एक तिहाई दूसरे गाँवोंकी थी। तब लिम्बासीका गेहूँ ९,००० रुपयेसे भी कमका ही होगा। सरकारी आनावारी दस आने है। इस प्रकार वास्तविक उपजके हिसाबसे लिम्वासीके गेहूँकी आनावारी सरकारी दस आनेके मुकाबले सिर्फ एक आना थी। इसके अतिरिक्त बीजके लिए भी प्रति बीघा एक मन गेहूँकी जरूरत होती है, और लिम्बासीके काश्तकारोंको १९६५ बीघे गेहूँके खेतोंपर सिर्फ ३,००० मन (तीन रुपये प्रति मनके हिसाबसे ९,००० रुपयेका) गेहूँ हुआ; अर्थात् गेहूँकी पैदावार बीजसे थोड़ी ही ज्यादा हुई। और अन्तमें, जब लगानकी वसूलीके लिए फसलको खलिहानोंसे हटानेपर रोक लगी हुई थी तभी मैंने कलक्टरके सामने यह सुझाव रखा था कि मैं स्वयं लिम्बासी जाकर अपनी उपस्थितिमें गेहूँको तुलवा लूँ ताकि किसानोंकी

बातोंके सही या गलत होनेका कोई झगड़ा ही रह जाये। किन्तु, कलक्टरने मेरा सुझाव अस्वीकार कर दिया। इसलिए मेरा विचार है कि काश्तकारोंके आँकड़ोंको सही माना जाये।

अब सिर्फ यह दिखानेके लिए कि प्रस-विज्ञप्ति कितनी ज्यादा भ्रामक है, मैं बता दूँ कि गुजरात-सभाने सत्याग्रह करनेकी सलाह देते हुए कोई प्रस्ताव पास नहीं किया। सभाने किसी जिम्मेदारीसे बचनेके लिए ऐसा किया हो, सो बात नहीं। किन्तु, मैंने स्वयं अनुभव किया कि सत्याग्रहके सम्बन्धमें किसी ऐसी सभामें प्रस्ताव नहीं पास करना चाहिए कि जिसका सारा कारोबार बहुमतके शासनके सिद्धान्तपर ही चलता हो। इसलिए गुजरात-सभाके प्रस्तावमें प्रत्येक व्यक्तिको अपने मनका मार्ग अपनानेके लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया गया। हाँ, यह सच है कि सभाके अधिकांश सक्रिय सदस्य खेड़ाकी लड़ाईमें जुटे हुए हैं।

मैं इस आक्षेपको बिलकुल अस्वीकार करता हूँ कि मैंने लगान देनेके इच्छुक लोगोंको वैसा करनेसे मना किया। प्रेस-विज्ञप्तिमें विभिन्न ताल्लुकोंसे की गई वसूलीकी रकमोंको दिखाते हुए जो आँकड़े दिये गये हैं, उनसे यदि कोई बात सिद्ध होती है तो यह कि कानूनकी मार उनपर बहुत गहरी पड़ी है और चौकीदारों तथा पटवारियोंका भय उनके लिए बहुत ज्यादा साबित हुआ है। कानूनकी कार्रवाईके अधीन कुर्की और नीलामीके बाद जब सरकार हिसाब बेबाक दिखाती है और किसी तरफ कोई बकाया नहीं बताती, तब क्या वह यही कहेगी कि राहत देने अथवा जाँच करनेके लिए कोई मामला ही नहीं था?

मैं मानता हूँ कि लगान मुलतवी करनेकी कोई कानूनी बाध्यता नहीं है। यदि वह मुलतवी किया जाता है तो एक कृपाके कार्यके रूपमें, और अधिकारपूर्वक कोई उसका दावा नहीं कर सकता। लेकिन तब यह राहत अधिकारियोंकी सनकपर भी आधारित नहीं है। उसका नियमन करनेके लिए समुचित रूपसे निर्धारित नियम हैं; और फिर सरकार यह दावा भी नहीं करती कि यदि फसलें चार आनेसे कम होतीं तो भी वह माफी नहीं देती। सारे मामलेमें एकमात्र मुद्दा रहा है आनावारी-सम्बन्धी मतभेद। यदि यह सच है कि राहत देनेमें सरकार अन्य परिस्थितियोंका — उदाहरणार्थ, प्रेस-विज्ञप्तिके ही शब्दोंमें, "सामान्य आर्थिक स्थिति" का — भी ध्यान रखती है तो महामारी तथा महँगाईके कारण इस वर्ष लगान मुलतवी कर देना और भी आवश्यक है। कलक्टरने मुझसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि वे इस अन्तिम बातका कोई खयाल नहीं कर सकते। वे केवल नियमोंके अधीन वसूली मुलतवी कर सकते हैं, और नियमोंमें तो केवल फसलके आधारपर वसूली मुलतवी करनेकी बात कही गई है।

मेरा खयाल है, अब मैंने एक जाँच-समितिकी आवश्यकता सिद्ध करनेके लिए काफी कुछ बता दिया है, और मेरी नम्र सम्मतिमें यदि एक भी ऐसा काश्तकार पाया जाता है, जिसके नाम बकाया निकले — और वह इसलिए कि उसके पास कुर्कीके लिए कुछ रह नहीं गया है और उसकी जमीन बेचनेमें स्वयं सरकारको भी संकोच हो सकता है — तो एक सिद्धान्तके रूपमें, ऐसी जाँचका प्रबन्ध करवा देना योग्य कार्य होगा। लोगोंने पटवारियों द्वारा दिये गये आँकड़ोंके सही होनेमें सन्देह प्रकट किया है। कई मामलोंमें

तो स्वयं कुछ पटवारी ही आगे आकर यह दिखानेको तैयार हैं कि अधिकारियोंने उनसे उनके द्वारा निकाली गई आनावारी बढ़ानेको कहा। लेकिन, यदि अब जाँचको अनावश्यक समझा जाता है तो[1] सरकार वसूली मुलतवी क्यों नहीं कर देती — विशेषकर अब जब स्पष्टतया बहुत थोड़े लोगोंसे वसूली करना शेष है? और उससे भी बड़ा कारण तो यह है कि यदि वसूली मुलतवी कर दी जाये तो सम्पन्न काश्तकार लगान चुका देनेको तैयार हैं।

स्पष्ट है, कमिश्नरने सिद्धान्तके जिस सवालकी हिमायत की है, सरकार अब उससे पीछे हट गई है।

वाइसरायने आपसी मतभेद भूल जानेका अनुरोध किया है। क्या यह अनुरोध सिर्फ काश्तकारों तक ही सीमित है, या कि अधिकारीगण भी लोगोंकी इच्छाका आदर करके तोपका वातावरण उत्पन्न करेंगे, खासकर जब लोगोंकी यह माँग तनिक भी अनैतिक अथवा अनुचित नहीं है?

यदि कष्टका मतलब भुखमरी है, तो मैं स्वीकार करता हूँ कि खेड़ाके लोग भूखों नहीं मर रहे हैं। लेकिन यदि लगान अदा करनेके लिए या खाद्यान्न खरीदनेके लिए अपना माल-असबाब बेचना कष्टकी निशानी है तो इस जिलेके लोगोंको काफी कष्ट है। मैं यह दिखानेको तैयार हूँ कि सैकड़ों लोगोंने या तो कर्ज लेकर या अपने मवेशी, वृक्ष अथवा अन्य बहुमूल्य सामान बेचकर अपना लगान चुकाया है। फिर भी, प्रेस-विज्ञप्तिमें जो सबसे गम्भीर चूक है वह यह कि जिस तरह प्रतिशोधकी भावनासे प्रेरित होकर लगानकी वसूली की जा रही है, उसका उसमें कोई उल्लेख नहीं है। काश्तकारोंको उनके तथाकथित दुराग्रहके कारण[2] एक सबक सिखाया जा रहा है। चार लाख रुपयेकी वसूलीके लिए उनपर तीन करोड़ रुपयेकी जमीनसे हाथ धो बैठनेका खतरा आन पड़ा है। बहुत-से मामलोंमें लगानके चौथाई हिस्से जितनी रकम जुर्मानेके रूपमें वसूल की गई है। क्या ऊपरकी इस कहानीमें इस शंकाके लिए कोई आधार नहीं है कि अधिकारीगण गलत भी हो सकते हैं?

[अंग्रेजीसे]

न्यू इंडिया, ९–५–१९१८

१. सरकारी विज्ञप्तिमें कहा गया था: "श्री गांधी तथा अन्य लोग निष्पक्ष जांचके लिए आग्रह-पूर्वक जो प्रार्थना कर रहे हैं, सरकारको खेदके साथ कहना पड़ता है कि वह उसे स्वीकार नहीं कर सकती। काश्तकार वस्तुतः लगान वसूली स्थगित करने या लगान माफ करनेकी माँग अधिकार-पूर्वक नहीं कर सकते; वे सिर्फ रियायतके रूपमें राहत माँग सकते हैं, किन्तु यदि हम यह मान भी लें कि सरकार इस प्रकारकी समिति नियुक्त करनेको तैयार है तो भी यह स्पष्ट है कि इस प्रकारकी जाँच-पड़तालसे कोई लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि अन्तिम अधिकार राजस्व विभागके हाथमें ही है।

२. कमिश्नरने चेतावनीके रूपमें जारी की गई अपनी विज्ञप्तिमें कहा था कि "जो लोग दुराग्रह कर रहे हैं, उन्हें भविष्यमें जमीन नहीं दी जायेगी। सरकार अधिकारके दस्तावेजोंमें उनका नाम नहीं रखना चाहती, और जिनके नाम उसमें से निकाल दिये जायेंगे, उनके नाम फिर कभी दर्ज नहीं किये जायेंगे।"

२६६. भाषण: बम्बई प्रान्तीय सम्मेलनमें

[बीजापुर
मई ६, १९१८][1]

बम्बई प्रान्तीय सम्मेलनके दूसरे दिनकी बैठकमें महात्मा गांधीने गिरमिट प्रथापर अपने प्रस्तावके समर्थनमें बड़ा जोरदार भाषण दिया।

श्री गांधीने प्रस्ताव पेश किया कि:

इस सम्मेलनका दृढ़ मत है कि यदि गिरमिट प्रथाकी बुराइयोंको दूर करना है तो मजदूरोंको किसी भी रूपमें भरती करनेकी इस प्रथाको सम्पूर्णतः समाप्त कर देना होगा। यह प्रथा एक प्रकारकी गुलामी है जो मजदूरोंको सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टिसे नीचे गिराती है और इस देशके आर्थिक तथा नैतिक हितोंके मार्गमें बाधक है।

श्री गांधी हिन्दीमें बोले, और उन्होंने गिरमिट प्रथाके इतिहासपर संक्षेपमें प्रकाश डालते हुए उपनिवेशवासी भारतीयोंपर इसके पतनकारी प्रभावकी चर्चा की। उन्होंने यह भी बताया कि इसके चलते भारत और भारतीय यूरोपीयोंकी नजरोंमें किस प्रकार गिर गये हैं। इस सवालपर आन्तर्-विभागीय समितिकी सिफारिशोंकी आलोचना करते हुए उन्होंने जोरदार ढंगसे कहा कि इस प्रथाको सदाके लिए समाप्त कर देना चाहिए, और ऐसा करते हुए किसी प्रकारकी कसर-मुरौवत न की जाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–५–१९१८

२६७. भाषण: अन्त्यज सम्मेलनमें

बीजापुर
मई ६, १९१८

मैंने एक गम्भीर भूल की है। एक मित्रने आकर मुझसे कहा कि बीजापुरमें दो दल हैं और मैं व्यर्थ ही यहाँ गड़बड़ पैदा कर रहा हूँ। मुझे सही हालतका पता नहीं था। यहाँ मैं फूटके बीज बोने और दोनों पक्षोंकी भावनाओंको भड़काने नहीं आया।

लोकमान्य तिलकको मुझे और आपको रास्ता दिखानेके लिए यहाँ आना चाहिए था। राजनीतिके क्षेत्रमें तो मैं तीन वर्षके बच्चेके समान हूँ। मुझे तो अभी सब-कुछ देखना, सोचना और सीखना है। इसलिए मैंने कोई विक्षोभ पैदा किया हो, तो उसके लिए मैं आपसे माफी माँगता हूँ। सार्वजनिक सभाओंमें मनुष्य अपने विचार खुले दिलसे

१. बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्सके अनुसार सम्मेलनका अधिवेशन बीजापुरमें ५ मईसे ८ मई तक चला। अध्यक्षता विट्ठलभाई पटेलने की।

प्रकट करे, तो उसपर अशान्ति पैदा करनेकी मंशाका आरोप नहीं लगाया जा सकता। मैंने जो कार्यक्रम बना रखा है, मेरा इरादा उसे अमली रूप देनेका है। इसलिए भारतके विभिन्न भागोंमें व्याप्त भावनाओंको जाननेकी मुझे कोई जरूरत नहीं है। किन्तु आप सब यहाँ पूर्व-निर्धारित विचार लेकर आये हैं, इसलिए मैं यहाँ अपनी स्थितिकी चर्चा नहीं कर सकता। मैं आपके साथ विचारोंका आदान-प्रदान करना, आपकी भावनाओंको और आपके निर्णयके पीछे जो कारण हैं उन्हें समझना तथा आपके मनकी तहमें उतरना चाहूँगा। लेकिन इसके लिए जब वातावरण और शान्त होगा, तभी आऊँगा। और जब हम प्रस्तावोंसे बँध नहीं गये होंगे, तब आपके हृदय चुरानेकी कोशिश करूँगा। मेरे खयालसे श्री केलकरने बिलकुल सही बात कही है। इस मंजिलपर तो हमें कांग्रेस-समितिका प्रस्ताव अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

२६८. पत्र: महादेव देसाईको[1]

[नडियाद]
मई ९, १९१८

भाईश्री महादेव,

जो बात मैंने तुमपर अपना अत्यन्त विश्वास होनेके कारण कही थी, मुझे सपनेमें भी खयाल न था कि तुम उसका उलटा ही अर्थ करोगे। तुम मुझसे इतने अधिक गुँथ गये हो कि उसके कारण चम्पारन जानेमें तुम्हारे हृदयको आघात लगेगा, ऐसा मुझे लगा था। किन्तु यह तुम्हारी कल्पनामें भी कैसे आ सका कि तुम अपूर्ण सिद्ध हुए हो, इसलिए मैंने तुम्हें पृथक करनेके लिए यह टेढ़ी युक्ति ढूँढ़ निकाली है? तुम्हारे बारेमें मेरा खयाल यह था कि मेरी आशा तुम्हीं पूरी कर सकते हो और [इसीलिए] चम्पारन जानेका सुझाव दिया। मैं यह मानता हूँ कि बधरवाका काम दुर्गाकी शक्तिसे बाहर नहीं। सम्भव है, मेरा यह अनुमान गलत हो। अभी तो तुम्हारे चित्तकी शान्तिके लिए इतना ही कहता हूँ कि तुम्हारी की हुई समस्त कल्पना गलत है। मेरे सुझावका कारण यही है कि तुम दोनोंकी शक्तिके सम्बन्धमें मेरे मनमें आदर है। तुम्हारी सहायताके बिना मुझे असुविधा होगी, मैं यह बात रावजीभाई और देवदास दोनोंसे कह चुका हूँ। तुमने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि तुम्हारी जगह भरना लगभग असम्भव है। मैंने पोलकको जो कुछ लिखा है वह सत्य ही है। तुमने मुझे निराश नहीं किया है। मैंने तुम्हें अपने राजनैतिक कार्यकी सिद्धिके लिए, तुम्हारी कुशलता और चरित्रशीलताके

१. यह महादेवभाईके ८ मईके पत्रके उत्तरमें लिखा गया था। गांधीजीने महादेवभाईको चम्पारन भेजनेकी इच्छा प्रकट की थी और महादेवभाईने अपने पत्रमें उनकी इस इच्छाका विरोध किया था।

कारण चुना है, एवं तुमसे मुझे कोई निराशा नहीं हुई है। इसके सिवा खास बात यह है कि तुम मुझे बड़े प्रेमसे खिचड़ी बनाकर खिला सकते हो। अधिक मिलनेपर।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

२६९. पत्र : एस्थर फैरिंगको

[साबरमती
मई ११, १९१८][1]

प्रिय एस्थर,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं — हम बड़े दिनके अवसरपर तुम्हारे आश्रममें आनेकी राह देखेंगे। उस समय तक मुख्य भवन बन जायेगा और मौसम बहुत सुहावना होगा।

मैं आशा करता हूँ कि वाइसरायको लिखा गया मेरा पत्र[2] और प्रैटके भाषणके जवाबमें लिखा गया मेरा पत्र,[3] दोनों, तुमने पढ़े होंगे। इन पत्रोंमें शासन-सम्बन्धी और जीवन-दर्शनके बारेमें मेरे विचार थोड़ेमें आ जाते हैं। वाइसरायके नाम मेरे पत्रमें प्रेम और कष्ट-सहनके नियमके बारेमें मेरे विचार बहुत स्पष्ट रूपमें बताये गये हैं। "पैसिव रेजिस्टेंस" शब्द वास्तविक विचारकी बड़ी बेढंगी अभिव्यक्ति है। सच बात तो यह है कि मैं इस शब्दको कमजोरोंका हथियार मानता हूँ और नापसन्द करता हूँ। प्रेमके कानूनको यह बिलकुल गलत रूपमें व्यक्त करता है। प्रेम तो शक्तिका निचोड़ है। जब भयका सर्वथा अभाव हो, तभी प्रेमका मुक्त प्रवाह हो सकता है। प्रेमीजनों द्वारा दी गई सजा तो आत्मापर ठंडे मरहमके बराबर है।

अपने जिगरके लिए तुम सम्पूर्ण उपवासका प्रयोग नहीं करोगी? उबला हुआ पानी खूब पियो और उससे काम न चले, तो सन्तरेके रसमें पानी मिलाकर पियो। उससे कमजोरी मालूम हो और चक्कर आयें, तो बिस्तरमें पड़ी रहो। या अधिक अच्छा यह है कि पैर और शरीरका ऊपरी हिस्सा पानीसे बाहर रखकर ठंडे पानी बैठकरमें कटिस्नान करो। यह बहुत ताजगी लानेवाली चीज है। जिगरके रोगोंमें उपवाससे अच्छी कोई चीज नहीं है।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. नेशनल आर्काइव्ज़में रखी इस पत्रकी फोटो-नकलमें तथा **माई डियर चाइल्ड** नामक पुस्तकमें गलतीसे वर्ष १९१८के बजाय १९१७ दिया गया है।

२. देखिए "पत्र : वाइसरायको", २९-४-१९१८।

३. देखिए "पत्र : 'बॉम्बे क्रॉनिकल'को", १५-४-१९१८।

२७०. पत्र: जी० ए० नटेसनको

सावरमती
मई १२, [१९१८][1]

प्रिय श्री नटेसन,

यह रहा मेरा भाषण:[2]

"इस प्रस्तावके समर्थकोंमें अपना नाम पाकर मैं अपनेको गौरवान्वित अनुभव करता हूँ। इसका अर्थ मैं पूरी तरह समझता हूँ और हृदय खोलकर इसका समर्थन करता हूँ।"

मुझे १०० रुपये-सहित आपका नोट मिला था। अब तो आपको उसका उत्तर नहीं चाहिए?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रति (जी० एन० २२२५) की फोटो-नकल से।

२७१. भाषण: ढुंडाकुवामें[3]

मई १३, १९१८

आप तो जानते ही होंगे कि मैं पन्द्रह दिन बाहर घूमकर आया हूँ। मैं दिल्लीसे बम्बई होता हुआ बीजापुर गया था। इन पन्द्रह दिनोंमें खेड़ामें क्या हुआ उसकी मुझे जानकारी है। मुझे पत्र अथवा तारसे सूचना मिलती रहती थी। आपने देखा होगा कि इस संघर्षमें हमारी पूरी नहीं तो लगभग पूरी जीत अवश्य हुई है। यह इस आधारपर कहा जा सकता है कि श्री प्रैटने जो धमकी दी थी वे उसे अमलमें नहीं ला सके हैं और उन्होंने जो प्रतिज्ञा की थी उसे भी वे पूरा नहीं कर सके। प्रतिज्ञाके दो प्रकार हैं—दैवी और आसुरी। दैवी प्रतिज्ञाका पालन मृत्युपर्यंत किया जाना चाहिए और उसमें कोई विघ्न नहीं डाल सकता; जब कि आसुरी प्रतिज्ञा ऐसी है कि उसके विरुद्ध लड़ना ही चाहिए। सत्याग्रही आसुरी प्रतिज्ञाके विरुद्ध रात-दिन लड़ता है। श्री प्रैटकी प्रतिज्ञा आसुरी थी। मैंने श्री प्रैटका सदा आदर किया है। वे बुरे अफसर नहीं हैं; किन्तु जो बुरे अफसर नहीं हैं वे भी कभी-कभी गम्भीर भूलें करते हैं। श्री प्रैटने भी ऐसी ही

१ और २. यह वह भाषण था जो गांधीजीने २९ अप्रैलको युद्ध-सम्मेलनकी जन-शक्ति समिति (मैन पावर कमेटी) में दिया था।

३. बोरसद ताल्लुकेका एक गाँव। गांधीजीके भाषणका विषय था, "आत्मबल बनाम दमन"।

भूल की थी। उन्होंनें कहा था कि "आपकी जमीनें जब्त कर ली जायेंगी और आपके उत्तराधिकारियोंका नाम सरकारी कागजातमें दर्ज नहीं किया जायेगा।" इस बातको कोरी धमकीके रूपमें नहीं बल्कि अमलमें लानेके लिए उन्होंने जान-बूझकर कहा था कि "मेरी हुक्म-उदूली करनेवाले व्यक्तिको कड़ा दण्ड दिया जायेगा।" लेकिन वैसा नहीं किया जा सका क्योंकि उनका कथन आसुरी था।[1] हमारी प्रतिज्ञा आसुरी होती तो हमें भी विजय न मिलती। हमारी प्रतिज्ञा तो कष्ट सहनेकी है और वह आसुरी नहीं है। लोगोंने कष्ट सहन करनेकी प्रतिज्ञा लेकर कोई भूल की है, मैं इस बातको स्वप्नमें भी नहीं सोच सकता। इस संघर्षसे खेड़ा जिलेके सब लोगोंमें तेज आ गया है। खेड़ाके किसानोंको अपने अधिकारोंका भान हो गया है। अत्याचारी शासनके विरुद्ध खड़ा होना राजभक्ति है, जब कि मदान्ध शासनके वशमें होना राजद्रोह है। उसका कारण यह है कि इस मदान्ध शासनके वशमें होकर हम अत्याचारी सत्ताको मान्यता प्रदान करते हैं। हमें तो उन अधिकारियोंका विरोध करके उनका उद्धार करना है। जैसे प्रह्लादने हिरण्यकशिपुका उद्धार किया वैसे ही अन्यायकारी अधिकारियोंके विरुद्ध संघर्ष करके हमें अत्याचारी शासनका उद्धार करना है। श्री प्रैटको अपनी पराजयसे अभी दुःख हुआ होगा; लेकिन कुछ समय बीतनेपर वे देख सकेंगे कि वे स्वयं जमीनें जब्त नहीं कर सके, यह बहुत अच्छा हुआ। यदि वे वैसा कर सके होते तो उन्हें अवश्य लोगोंकी हाय लगती और समस्त भारतमें खेड़ाके आतंककी बात फैल जाती। वे इस स्थितिसे बच गये हैं।

हमें जब्तीके समय क्या करना चाहिए अब मैं यह समझाऊँगा। मेरे आशीसे लौटते वक्त डभाशीके लोगोंने मुझसे कहा था कि मैं वहाँ आ जाऊँ तो अच्छा हो। क्योंकि उस गाँवका मुखिया लोगोंके रुपये एक निश्चित स्थानपर रखवा देता है, तब [कुर्की-अधिकारी वहाँ] कुर्की करने जाता है। मैंने संसारमें ऐसा कहीं नहीं देखा। कोठीमें रुपया रखकर कुर्की कराना यह तो कुर्की-अधिकारीका स्वागत करनेके समान हुआ। हमसे जहाँतक बन सके हमें अत्याचारियोंके हाथमें रुपया न जाने देना चाहिए। मैं तो यही कहूँगा कि जो भाई घरोंमें ऐसी जगहपर रुपया अथवा जेवर रखते हैं जहाँ वह कुर्की-अधिकारीके हाथमें तुरन्त आ जाये, उन्हें प्रतिज्ञाका भान नहीं है। हम अधिकारियोंका सम्मान करें; लेकिन हमें उनकी मदद तो अवश्य ही नहीं करनी चाहिए। हम अपने घरमें आनेपर उनका स्वागत करें; लेकिन हमारे घरोंसे उन्हें रुपया या जेवर तो अवश्य ही नहीं मिलने चाहिए। रुपया अथवा जेवर रखकर अधिकारियोंको ले जाने देनेसे हम बच गये, ऐसा जो लोग कहते हैं वे लड़ाईके स्वरूपको नहीं पहचान पाये हैं। सरकार जिन वस्तुओंको कुर्क कर ले जाये उन्हें वापस खरीद लेना दर्शनीय हुंडी सिकारना कहा जा सकता है; लेकिन जहाँ ऐसा नहीं होता, बल्कि चालाकी बरती जाती है, वहाँ मुझे दुःख होता है। मैं डभाशीकी घटनासे चकित रह गया हूँ। आप भाइयों और बहनोंको मेरी सलाह है कि आप इस तरह अपनी वस्तुएँ न रखें कि सरकारी

१. इस महीनेमें सरकारने भूमि-करकी बकाया रकम उगाहनेके लिए और भी ज्यादा जमीनें जब्त कीं। लेकिन बादमें जमीनोंकी जब्ती रोक दी गई और बकाया रकम चल-सम्पत्तिको नीलाम करके वसूल की जाने लगी।

कर्मचारी उन्हें सहज ही उठा ले जायें। सरकारका काम इस तरह आसान नहीं वना देना चाहिए। जितना हो सके उतना विलम्ब करना आपका काम है। मुझे उम्मीद है कि आप ऐसा ही व्यवहार करेंगे। हमें उनकी आवभगत करनी चाहिए अर्थात् जो सीधा-सामान हम दे सकें वह उन्हें दे दें। कोई मित्र हो अथवा शत्रु, हमारे यहाँसे भूखा-प्यासा जाये यह हमें शोभा नहीं देता। अधिकारी भूखे-प्यासे गये, यह बात एक भी गाँवके सम्बन्धमें नहीं कही जानी चाहिए। कई लोग यह कहनेमें बड़ाई समझते हैं कि हमारे यहाँसे अधिकारीको पीनेका पानी भी नहीं मिला। लेकिन सत्याग्रही ऐसा नहीं कर सकता। सत्याग्रही स्वयं दुःख पा लेगा और कथित शत्रुको अपना भोजन देकर स्वयं भूखा रह लेगा। आप सत्याग्रहका यह सच्चा मर्म समझें। हमारे घरके और गाँवके व्यवहारसे प्रतिपक्षीके मनपर यह छाप पड़नी चाहिए कि यहाँ झूठ नहीं बोला जाता, अशिष्ट व्यवहार नहीं किया जाता और शत्रुको भी दुःख नहीं दिया जाता। यहाँ तो सब व्यवहार सत्य, नीति और विनयसे चलता है। हमारा काम है कि हम समस्त जन समाजको इस स्थितिपर पहुँचा दें। मुझे आशा है कि आप इस स्थितिको प्राप्त करेंगे।

सत्याग्रह कभी हारता नहीं, लेकिन जिन्हें सत्याग्रह करना नहीं आता, वे हारते हैं। यह संघर्ष कामधेनु और कल्पवृक्षके समान [फलदायी] है। आप इस रत्न चिन्तामणि-जैसे अमूल्य अवसरको न खोयें। जो लोग इस संघर्षको समझेंगे वे सच्चे सुख अर्थात् स्वराज्यका उपभोग करेंगे।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२७२. पत्र : हनुमन्तरावको

[कठलाल]
मई १५, १९१८

[प्रिय हनुमन्तराव,]

श्री शास्त्रियरके भाषणपर[1] 'हिन्दू'की आलोचना निन्दनीय है; और मेरे खयालसे उसपर ध्यान न देना ही उसका सबसे अच्छा जवाब है। कस्तूरी आयंगार[2] ऐसे आदमी हैं, जिन्हें दलील या न्याय-बुद्धिकी अपीलसे कायल नहीं किया जा सकता। उनकी अपनी धारणायें हैं। और उनसे वे इतनी दृढ़तासे चिपके रहते हैं, जो शायद ही किसी और मनुष्यमें पाई जाती होंगी। जो लोग शास्त्रियरको जानते है, उनपर 'हिन्दू'की आलोचनाओंका कोई असर नहीं होगा। और जो कस्तूरी आयंगारके शब्दको वेदवाक्य मानते हैं, वे और किसीकी बात नहीं सुनेंगे। हमें यह विश्वास रखना चाहिए कि शास्त्रियर अपने उच्च चरित्र और विद्वत्ताके कारण कट्टरसे-कट्टर दुश्मनके सामने खड़े

१. जो उन्होंने युद्ध-सम्मेलनके अवसरपर किया था।
२. कस्तूरी रंगा आयंगार, हिन्दूके संपादक।

रह सकते हैं। मेरा खयाल है कि जब कोई मनुष्य कसौटीपर खरा न उतर सके, तब भी शास्त्रियर अपने-आपके बारेमें ठीक-ठीक हिसाब दे सकते हैं। मैं समझता हूँ, वे इस बातको जानते हैं और इसलिए बिलकुल निश्चिन्त रहते हैं। इसलिए कस्तूरी आयंगार या और किसीके भी मनमाने हमलोंके लिए मुझे या तुम्हें चिन्तित होनेकी जरूरत नहीं। करनेकी बात तो यह है कि हम सब मिलकर उन्हें अपने शरीरकी संभाल रखनेको मजबूर करें। मैं मानता हूँ कि उनका स्वास्थ्य ऐसा नहीं है, जो सुधर न सके।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२७३. पत्र : दाभोलकरको

[कठलाल]
मई १५, १९१८

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे तुमने इतने खुले दिलसे पत्र लिखा है, इसके लिए कृतज्ञ हूँ। मेरे पत्रमें[1] 'नीति-कौशल'की गंध तक नहीं है। मैंने अक्षरशः वही लिखा है, जो मैं मानता हूँ। तुमने मेरे विचारोंका ठीक-ठीक सार दिया है। मैं अवश्य ही यह मानता हूँ कि यदि हम चुपचाप लाखों लोगोंकी आहुति दे दें, तो हमें स्वराज्य आज ही मिल जायेगा। यह कैसे सम्भव है, यह बात यदि तुम मेरा पत्र पढ़कर न समझ सके हो, तो मैं इस पत्रमें तो उसे समझा ही नहीं सकता। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि जबतक समझमें न आये, तबतक तुम उस पत्रको पढ़ो और उसके एक-एक शब्दपर विचार करो। यह प्रयत्न व्यर्थ न जायेगा। वह पत्र मैंने जल्दीमें नहीं, बहुत प्रयत्नसे, शुद्ध भावसे और देश-प्रेमसे प्रेरित होकर ही लिखा है। यदि उससे भी मेरा आशय पूरी तरह न समझा जा सके या उसके दो अर्थ निकलें, तो मैं समझता हूँ कि यह इस हदतक मेरी तपस्याकी कमी है। अगर देश मेरी योजनाको समझ ले और उसपर अमल करे, तो मेरा विश्वास है कि उसमें स्वराज्यका और दूसरी सैकड़ों बातोंका समावेश हो जाता है। पहले स्वराज्य दे दो, फिर हम लड़ाईमें [तुम्हारे साथ] लड़ेंगे, यह कहना मुझे तो स्वराज्यका तत्त्व न समझनेके समान लगता है। मैं लोक-प्रतिनिधिके रूपमें अपना कर्त्तव्य यह नहीं मानता कि वाइसरायको जितने पत्र लिखूँ, उन सबको जनताके सामने रखूँ ही। मैंने अबतक अपने जीवनमें प्रतिनिधिरूपमें जो-जो कार्य किये हैं, उनमें से

१. उपलब्ध नहीं है।

ज्यादातर और मेरे खयालसे महत्त्वपूर्ण कार्य तो गुप्त रहे हैं और रहेंगे। वाइसरायको लिखा गया मेरा पहला पत्र[1] केवल उन्हींके लिए था। मैंने उसके द्वारा अपने कुछ विचार उन्हें सज्जन समझकर मित्रभावसे उनके सम्मुख रखे थे। उन्हें मैं जनताके सम्मुख कदापि न रखूंगा। उस पत्रमें प्रयुक्त विनम्र, किन्तु कटु भाषाको जनताके सम्मुख रखनेसे अनर्थ होगा। उनके साथ हुई बातचीतका जितना अंश बताया जा सकता है, उतना मैं बता चुका हूँ। मेरा दूसरा पत्र[2] मेरे भावी कार्यक्रमके बारेमें है और वह पहलेकी तुलनामें कुछ भी नहीं है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

२७४. पत्र : प्राणजीवन मेहताको

[कठलाल]
मई १५, १९१८

[भाईश्री प्राणजीवन,]

खेड़ाकी लड़ाईके बारेमें क्या लिखूं? यह लड़ाई बड़ी जबरदस्त है। दो-तीन हजार रुपये सफर वगैरामें खर्च करके यह लड़ाई लड़ी जा सकती है, यह बात किसीकी कल्पनामें आ ही नहीं सकती। कोई पच्चीस हजार रुपया इकट्ठा हुआ होगा, यह वापस भिजवा दिया गया; और भी अनेक स्थानोंसे धनके प्रस्ताव आते हैं; इनके उत्तरमें मुझे इनकार लिखना पड़ता है। यदि मैं रुपया लेता हूँ, तो लड़ाईमें भ्रष्टता आती है, अनीति पैठती है और लोगोंका नैतिक पतन होता है। धन लेना अस्वीकार करनेसे मैं इन सब बातोंसे बच गया हूँ और लड़ाईको शुद्ध रख सका हूँ। इस लड़ाई-को भारतके सभी लोगोंने देखा है और उसकी कीमत उनकी समझमें आ गई है। शास्त्रियरकी समझमें अभी नहीं आई, इसका मुझे खेद है। कालान्तरमें आ जायेगी। वे स्वयं पवित्र-आत्मा हैं, इसलिए मैं निश्चिन्त हूँ। लड़ाईके औचित्यके बारेमें मुझे कोई शंका ही नहीं है।

[मोहनदासके वन्देमातरम्]

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. देखिए "पत्र : वाइसरायको", २९-४-१९१८।
२. देखिए "पत्र : जे० एल० मैफीको", ३०-४-१९१८।

२७५. भाषण : सन्देसरमें

मई १६, १९१८

इस गाँवके बहादुर लोगोंने बड़े साहसका परिचय दिया है। इन सभाओंकी एक विशेषता यह है कि उनमें स्त्रियाँ भी काफी संख्यामें आती हैं और जो-कुछ कहा जाता है ध्यानपूर्वक सुनती हैं। खेड़ाकी इस लड़ाईके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें भाग लेनेवाले लोग, स्त्रियाँ या पुरुष, यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।

सत्याग्रहीका पहला कार्य इस बातकी जाँच करना है कि वह जो कुछ करने जा रहा है उसमें वह सत्यके रास्तेपर है या नहीं। और जब उसे इसका निश्चय हो जाये तो उसे अपने ध्येयसे आग्रहपूर्वक चिपटे रहना चाहिए। और उसके लिए मरण-पर्यंत लड़ना चाहिए। यदि हमें यह निश्चय हो गया है कि हमारी लड़ाई सत्य-की लड़ाई है तो हमें उसमें जुटे रहना चाहिए। जो मनुष्य सत्यके लिए मृत्यु तक स्वीकार करनेको तैयार हो वह हमेशा सत्यका ही आचरण करता है।

सत्याग्रहके नामसे चलनेवाली लड़ाइयोंमें हारका कारण यह है कि हम हमेशा सत्यपर आरूढ़ नहीं रहते। सत्यमें हमें अपना लाभ दिखता है तो वह हमें अच्छा लगता है। किन्तु सत्याग्रहीको तो यह देखना चाहिए कि वह हरएक बातमें सत्यका आचरण करता है या नहीं। यदि हम सत्यका आचरण नहीं करते तो हम सत्याग्रही नहीं कहला सकते। कुछ लोग सत्यकी कीमत जानते हैं किन्तु कई बार सत्यके विरुद्ध व्यवहार करते हैं — किसी बातमें सत्यका आचरण करते हैं और दूसरी बातमें असत्यका। यदि हम न्याय माँगते हों तो हमें दूसरेको भी पूरा न्याय देना चाहिए। हमारा आचार और हमारा विचार दोनों सत्य होने चाहिए। सब शास्त्र यही कहते हैं कि न्यायके मन्दिरमें मनुष्य पवित्र बनकर प्रवेश करे। जिस प्रकार हमें मन्दिरमें स्नानादि करके और मनको स्वच्छ करके जाना चाहिए उसी प्रकार न्याय-मन्दिरमें भी पवित्र होकर प्रवेश करना चाहिए। जिनका मन मलिन है वे वहाँ नहीं जा सकते, यह दैवी नियम है। यदि हम न्याय चाहते हैं तो अपने प्रतिपक्षीको भी न्याय देना चाहिए। सत्याग्रहीका यही प्रथम कर्त्तव्य है।

अगास स्टेशनपर वल्लभभाईने मेरे हाथमें एक चिट्ठी दी। इस चिट्ठीमें जो-कुछ लिखा गया है वह यदि सही हो तो मुझे लगता है कि हमारा व्यवहार न्यायपूर्ण नहीं है। इस चिट्ठीमें सन्देसर गाँवके ढेढ़ लोगोंने यह कहा है कि पिछले चार वर्षोंसे गाँवके लोग उन्हें कुछ भी हिस्सा नहीं दे रहे हैं। मैं नहीं जानता कि यह बात सच है या झूठ। यदि सच हो तो उसका निर्णय तुरन्त कर देना चाहिए। मेरी प्रार्थना है कि जब हम न्याय लेनेके लिए निकले हुए हैं तब हमें दूसरोंको भी न्याय देना चाहिए। आज सुबह मैं एक सज्जनसे कह रहा था कि खेड़ाकी प्रजाको यह लड़ाई बहुत अच्छी लग रही है क्योंकि इससे उन्हें आत्मोन्नतिका अवसर प्राप्त हुआ है। आजतक हम सरकारकी शासन-नीतिके खिलाफ लड़ रहे हैं। हम मानते

हैं कि ईश्वर हमारे साथ है। हम आजकल सरकारी अधिकारियोंको बेगार नहीं देते। कुम्हार, ढेढ़, भंगी आदिसे हम कहते हैं कि बेगार करनेकी जरूरत नहीं है। सरकार पैसा दे तो भी जिसे सुविधा हो और इच्छा हो वह जाये और जिसे न जाना हो वह न जाये। ढेढ़, कुम्हार, नाई आदिको अपने कामका पूरा पैसा मिलता हो तो भी यह उनका अधिकार है कि उन्हें सेवा करनी हो तो करें और न करनी हो तो न करें। हम भी उनका यह अधिकार स्वीकार करें तो कहा जायेगा कि हम शुद्ध स्वराज्यके योग्य हैं। हो सकता है कि हम इस सरकारको उलट दें। किन्तु यदि हम ऐसा समझें कि हमें कौन उलटनेवाला है तो यही माना जायेगा कि अत्याचारीके आसनपर अब हम आसीन हो गये हैं। कुछ अंग्रेज आलोचक कहते हैं कि तुम लोग प्रजाको जो पाठ पढ़ा रहे हो उसके लिए तुम्हें पछताना पड़ेगा। किन्तु मेरा विश्वास है कि जो-कुछ मैं कर रहा हूँ उसे ठीक-ठीक जानता हूँ; उसमें मुझे कोई भूल दिखाई नहीं देती। मेरा विश्वास है कि अभीतक प्रजाको मैंने जो सलाह दी है वह ठीक है। सरकारके प्रति अपने कर्त्तव्यके विषयमें मैं प्रजाको जो सलाह देता हूँ वही सलाह मैं प्रजाके किसी एक वर्गको किसी दूसरे वर्गके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करनेके विषयमें भी देते हुए हिचकूँगा नहीं। इसमें यदि मेरा सिर चला जाये तो भी मैं सत्य नहीं छोड़ूँगा। जिस प्रकार मेरा सिर सरकारको अर्पित है उसी प्रकार प्रजाको भी अर्पित है। यदि प्रजा सत्ताका दुरुपयोग करेगी और गरीबोंको हैरान करेगी तो मैं गरीब-वर्गसे भी यही कहूँगा कि सत्याग्रह करो और न्यायका मार्ग कभी मत छोड़ो। सुखपूर्वक रहनेका यही एक मार्ग है।

यह सत्याग्रहका शस्त्र जो हमारे हाथ आ लगा है अमूल्य है। हमारी आत्मा सत्यसे शुद्ध होनी चाहिए। इसमें जो विशेषताएँ हैं उनका अनुभव जिसे हुआ होगा वह दृढ़तापूर्वक कहेगा कि सत्यके सिवाय अन्य कोई उत्तम धर्म नहीं है। मैंने कहा है कि इस लड़ाईमें हम जीत चुके हैं। यह लड़ाई सिर्फ लगान मुलतवी करानेके लिए ही नहीं है। यदि हमारा लक्ष्य सिर्फ इतना ही होता तो हम उसे बहुत पहले पा चुके होते। इस लड़ाईमें अमूल्य सिद्धान्त निहित है। सरकार अपनी बातको सच मानती है, प्रजा अपनी बातको। प्रैट साहब भी कहते हैं कि लड़ाई केवल लगान मुल्तवी करानेके लिए नहीं है उसका सम्बन्ध ३३ करोड़ लोगोंके हिताहितसे है। उसमें एक ओर प्रजाके अधिकारका सवाल है और दूसरी ओर सरकारके शासनका। हमें समझ लेना चाहिए कि प्रजाके बलकी तुलनामें सरकारकी सत्ता कुछ नहीं। ऐसी कोई सरकार आज तक पैदा नहीं हुई जो प्रजाके विरोधके सामने टिक सके। कोई प्रजा जब अपना अधिकार माँगनेका संकल्प करती है तो वह उसे लेकर ही छोड़ती है। इस लड़ाईमें हमें विनय या सभ्यता नहीं छोड़नी है; लेकिन साथ ही हम गुलामीका जीवन भी नहीं चाहते। सत्याग्रही कभी विनय नहीं छोड़ेगा; साथ ही वह अपना आग्रह भी नहीं छोड़ेगा। वह सरकारी अधिकारीको भूखा नहीं जाने देगा; उसे खिलायेगा, पिलायेगा और ठहरायेगा और इस प्रकार अपनी सज्जनताका परिचय देगा। सरकारी अधिकारी हमारा अभ्यागत है इसलिए वह शत्रु हो या मित्र हमें उसके साथ विनयका व्यवहार करना चाहिए। वह हमारे पाससे हमारी सम्मतिके बिना कुछ नहीं ले सकता। वह हमारे घर कुर्क करने

आये तो हमारा यह काम नहीं है कि हम अपने जेवर या अपने वर्तन उसके सामने रख दें। उसके हाथमें कोई चीज पड़ जाये तो हम शान्त रहें और डरें नहीं। तराजूके एक पलड़ेमें सत्य और न्याय है, दूसरेमें है पैसा। यह सब आप लोगोंको समझ लेना चाहिए।

यह लड़ाई स्वराज्यकी है। हम आशा करते हैं कि स्वराज्य हमें मिल जायेगा किन्तु निर्बल प्रजाके हाथमें स्वराज्य किस कामका। किसी मुर्देके हाथमें तलवार दे दें या उसके पास अन्नका ढेर लगा दें या पैसा रखें तो वह किस कामका। वह इनमें से किसी भी चीजका उपयोग तो कर नहीं सकता। इसी प्रकार निकम्मा आदमी जो अपनी प्रतिज्ञा निबाहना नहीं जानता कुछ नहीं कर सकता। 'गीता' में कहा गया है कि जो यज्ञ किये बिना खाता है वह चोर है। यज्ञका अर्थ है कि हमारा यह शरीर प्रजाकी अर्थात् प्रभुकी सेवाके लिए है। लोक-कल्याणके लिए उसकी आहुति देना — यही सच्चा यज्ञ है। जिस प्रजाने इस मन्त्रको समझ लिया है उसके ऊपर कोई सत्ता अत्याचार कर ही नहीं सकती। यदि इसका रहस्य हमारे लहूमें मिल जाये तो समझो कि दुनियामें हमने सब-कुछ जीत लिया। सत्याग्रह दिव्यास्त्र है। वह उसी मनुष्यके हाथमें शोभा पाता है जिसमें साहस और पौरुष है। यदि हम इस बातको समझ लें और उसके अनुसार आचरण करें तो कहा जायेगा कि यह भारत कायरोंकी नहीं बल्कि ३३ करोड़ देवताओंकी भूमि है।[1]

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

२७६. पत्र : रामभाऊ गोगटेको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
वैशाख सुदी ६ [मई १७, १९१८]

भाईश्री रामभाऊ गोगटे,

भाई कोतवालकी बहन अभी आना चाहें तो आ सकती हैं। लेकिन इस समय यहाँ इतनी भारी गरमी पड़ रही है कि इन्दौर-जैसे स्थानमें रहनेवाले व्यक्तिको वह भयंकर मालूम होगी। इसलिए मेरी राय है कि वे १५ जूनके बाद आयें। उसके बाद बरसात शुरू हो जायेगी और हवा भी कुछ ठंडी हो जायेगी और कुछ नहीं तो उसमें कमसे-कम कुछ नमी तो आ ही जायेगी। अभी तो निरी लू चलती है और गरम हवा साँय-साँय करती है। जब वे यहाँ आयेंगी, वा यहीं होगी और उन्हें बाका साथ

१. भाषणकी इस रिपोर्टको *बॉम्बे क्रॉनिकल* में प्रकाशित अंग्रेजी रिपोर्टसे मिला लिया गया है।

मिलेगा ही। मैं बासे सलाह करनेके बाद यह पत्र लिख रहा हूँ। उन्होंने यहाँके भोजन और कार्यक्रम आदिके विषयमें सब बातें जान ही ली होंगी।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (जी० एन० ३६१४) की फोटो-नकलसे।

२७७. पत्र: जे० एल० मैफीको

गाड़ीमें
मई १८, १९१८

[प्रिय श्री मैफी,]

इस पक्के विश्वासके साथ कि २९ तारीखके पत्रमें[1] की गई मेरी प्रार्थना मंजूर कर ली जायेगी, मैं रंगरूटोंकी भरतीके लिए तैयारियाँ करनेमें लग गया हूँ। किन्तु आपका जवाब आये बिना काम शुरू नहीं करूँगा।[2]

[हृदयसे आपका,]
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

२७८. पत्र: मगनलाल गांधीको

आगराके समीप
[मई १८, १९१८]

चि० मगनलाल,

मैंने तुमको बहुत व्याकुल कर दिया। लेकिन मेरा इरादा तुम्हें शान्ति देनेका था। कठोरताको मृदुतासे जीता जाता है, घृणाको प्रेमसे, आलस्यको उत्साहसे और अन्धकारको प्रकाशसे। तुम्हारा प्रेम बूंद-बूंद करके टपकता है, लेकिन जिस प्रकार बूंद-बूंद करके होनेवाली वर्षा व्यर्थ जाती है उसी प्रकार प्रेमके सम्बन्धमें भी मैंने अनेक बार यही बात देखी है। जिस प्रकार मूसलाधार वर्षासे ही खेत पूरी तरह सिंचित होते हैं उसी प्रकार प्रचुर मात्रामें प्रवाहित प्रेम ही वैर-भावपर विजय पा सकता है।

१. देखिए "पत्र: वाइसरायको", २९-४-१९१८।

२. मैफीने गांधीजीके साथ हुए अपने पत्र-व्यवहारके कुछ अंश बम्बईके गवर्नर लॉर्ड विलिंग्डनको भेज दिये, और गांधीजीको इसकी सूचना दे दी। बम्बईके गवर्नरके साथ गांधीजीके पत्र-व्यवहारके लिए देखिए "पत्र: जे० क्रिररको", ३०-५-१९१८।

तुम न्यायकी आशा रखते हो, यही तो तुम्हारी भूल है। तुम स्वयं न्याय करते जाओ। जो प्रेम प्रतिदानकी आकांक्षा रखता है, वह प्रेम नहीं है। यदि तुम स्वयं प्रेममय हो तो तुममें दूसरेका प्रेम कहाँ समा सकता है? इसीमें अभेद भावका रहस्य छिपा हुआ है। मीराको जब प्रेमकी कटारी लगी तभी मीरा और प्रभु एक हुए। यही अद्वैतवाद है। इसमें से जितना ले सको, लेना; लेकिन प्रसन्न रहना।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७२८) से।
सौजन्य: राधाबेन चौधरी

२७९. पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको

[मोतीहारी]
मई २३, १९१८

[प्रिय चार्ली,]

विलीकी[1] गिरफ्तारीका समाचार पढ़कर मुझे कोई आघात नहीं पहुँचा। वाइसरायकी भावनाओंके प्रति भी मेरी सहानुभूति है। जब ऐसा भयंकर युद्ध चल रहा है, उस समय इस प्रकारके कामकी जाँच करनेके लिए उनसे क्यों कहा जाये? विली और हमको नम्रतापूर्वक कष्ट सहन कर लेना चाहिए। विलीके मामलेमें किसी सिद्धान्तका सवाल नहीं है। उसमें जातीय द्वेषका प्रश्न भी नहीं है। इसी तरह जनताकी भावनाओंका भी नहीं है। अपने विचारों या कार्योंके लिए जेल हो जाये, तो कुछ लोग तो ऐसे होने चाहिए जो उसीमें सुख और संतोष मानें। आवश्यक तो यह है कि विलीके साथ पत्र-व्यवहार प्रारम्भ हो जाये। उसे जरूरत होगी, तो वह अपने छुटकारेके लिए लड़ लेगा। उसकी चिन्ता करते रहना उसके साथ अन्याय करना है। मुझे विश्वास है कि वह जहाँ भी है, सुखी है। मेरे खयालसे सार्वजनिक आन्दोलन अनावश्यक है। यदि आप मुझसे सहमत हों, तो एक निर्भीकतापूर्ण पत्र लिखकर वाइसरायको कष्ट देनेके लिए क्षमा माँग लें। मुझे कभी-कभी लगता है कि लड़ाईका भयंकर तनाव सहन करके भी पस्तहिम्मत न होनेवाले ये बहुत सारे अंग्रेज अवश्य ही योगी हैं। यदि उनकी यह योग-साधना शुभ उद्देश्योंके लिए हो तो वे मोक्षके अधिकारी बन जायें।

[हृदयसे तुम्हारा,
मोहन]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

१. डब्ल्यू० डब्ल्यू० पियर्सन।

२८०. पत्र : हनुमन्तरावको

मई २५, १९१८

[प्रिय हनुमन्तराव,]

मैं यह नहीं चाहता कि तुम [सर्वेंट्स ऑफ इंडिया] सोसाइटीसे सम्बन्ध तोड़ दो। बल्कि यह चाहता हूँ कि सोसाइटीमें रहकर ही हिन्दीका काम करो। मैं चाहता हूँ कि शास्त्रियर तुम्हें इलाहाबाद जानेकी इजाजत दे दें। वहाँ तुम एक साल रहो और अच्छी तरह हिन्दी सीख लो। बादमें मद्रास जाकर अपने दूसरे कामोंके साथ-साथ तेलगु लोगोंमें हिन्दी-प्रचारका काम करो। तुम हिन्दीका अध्ययन कर लोगे, तो अपने कामका क्षेत्र व्यापक कर सकोगे और मौका पड़नेपर मद्रास प्रान्तके बाहर भी आम जनताका काम करनेकी शक्ति हासिल कर लोगे। मैं नहीं जानता कि तुम्हारा ध्यान इस ओर गया है या नहीं। मेरा तो गया ही है। द्रविड़ों और अन्य भारतीयोंके बीच लगभग न पटनेवाली खाई पड़ गई है। निश्चय ही हिन्दी भाषा इसे पाटनेवाला छोटेसे-छोटा और कारगर सेतु है। अंग्रेजी कभी उसका स्थान नहीं ले सकती। जब सुसंस्कृत लोगोंकी साधारण भाषा हिन्दी हो जायेगी, तब शीघ्र ही हिन्दीका शब्द-भण्डार आम जनतामें भी फैल जायेगा। हिन्दीमें कोई ऐसी अवर्णनीय वस्तु है, जिससे वह सीखनेमें सबसे आसान होती है। और कारण चाहे जो हो, हिन्दी व्याकरणके साथ जितनी छूट ली जा सकती है, उतनी मैंने और किसी भाषाके व्याकरणके साथ ली जाती नहीं देखी। परिणामस्वरूप हिन्दी सीखनेमें मात्र स्मरण-शक्तिका ही काम है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि राष्ट्रीय काम करनेके लिए हिन्दीका ज्ञान नितान्त आवश्यक है। सोसाइटीका एक सदस्य हिन्दी सीख ले, इससे सुन्दर बात और क्या होगी? एक बार श्री गोखलेने मुझसे कहा था कि वे सारे सदस्योंके लिए हिन्दी अनिवार्य करना चाहते हैं और यह चाहते हैं कि सोसाइटीकी बैठकोंमें हिन्दी ही बोली जाये। परन्तु उनकी सबसे बड़ी मुश्किल तमिल लोगोंकी, खास तौरपर शास्त्रियरकी थी। वे हिन्दी सीखनेके लिए अपने आपको बहुत बूढ़ा समझते हैं।

तुम सत्याग्रह आश्रमको सोसाइटीसे अलग मानते हो। मैं ऐसा नहीं मानता। अपने अन्तिम दिनोंमें श्री गोखलेकी ऐसी इच्छा थी कि गुजरातमें मैं उसकी शाखा खोलूँ और राजनीतिक दृष्टिसे मृतप्राय हो गये इस प्रान्तमें जीवन भरूँ। उस कार्यको पूरा करनेमें मेरा जो तुच्छ योगदान रहा है, उसपर मुझे गर्व है। कुछ ठोस कारणों-वश सत्याग्रह आश्रमको [सोसाइटीकी] शाखा यदि नहीं माना जा सकता तो यह कोई महत्त्वकी बात नहीं है। उसका काम तो यहाँ हो ही रहा है। उसमें जो-कुछ अच्छा है, मेरी रायमें उसका श्रेय सोसाइटीको ही है; उसकी जितनी त्रुटियाँ हैं, वे मेरी अपनी सीमाओंके कारण हैं। उनका दायित्व सोसाइटीपर नहीं है। समय पाकर जब मैं अपनी सीमाओंको लाँघ लूँगा, तब आश्रम सोसाइटीमें मिल जायेगा। उससे पहले तो यदि तुम आश्रममें भरती भी होना चाहो, तो भी तुम्हें केवल सोसाइटीसे मिले कर्जके तौरपर

ही स्वीकार करूँगा। इन सब बातोंसे तुम देखोगे कि हिन्दी सीखनेके उम्मीदवारके रूपमें तुम्हारा विचार करते समय यह सम्भावना तक मेरी कल्पनामें नहीं आई कि सोसाइटीसे तुम्हें सम्बन्ध विच्छेद करना है।

[हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

२८१. भाषण : पटनामें

मई २५, १९१८

गांधीजी गत मासकी २५ तारीखको पटना नगरमें होनेवाली एक सभामें शामिल होनेके लिए मोतीहारी से लौटे। जब वे चम्पारनमें थे, उन्होंने बेतियाके जिला मजिस्ट्रेट और अवर प्रमण्डल [सब डिविजन]के अधिकारीसे भेंट की, और इसके बाद आगे जाकर शिकारपुर, मधुबन तथा ढाकामें अपने स्कूल देखे। मोतीहारीमें वे बाबू गोरखप्रसादके पास ठहरे। रैयत बड़ी संख्यामें उनके शिविरमें गई, किन्तु उनमें अधिकतर लोगोंसे कहा गया कि वे अपनी शिकायतें स्थानीय प्रतिनिधियोंके पास ले जायें। उनके आगमनसे, हमेशाकी तरह एक हलकी-सी हलचल फैल गई थी।

पटनामें सभाकी अध्यक्षता माननीय श्री पूर्णेन्दु नारायणसिंहने की। उसमें लोगों की असाधारण भीड़ थी — करीब ८,००० व्यक्ति शामिल हुए जिनमें ३०० से अधिक साधु भी थे। लगता था कि वस्तुतः जो भाषण दिया गया लोग उससे अधिक जोशीले भाषणकी आशा कर रहे थे, क्योंकि गांधीजीके आनेपर जो उत्साह दिखाई दे रहा था वह जैसे ही भाषण आगे बढ़ा काफी हदतक क्षीण हो गया।

भाषणके शुरूमें उन्होंने भारतकी सार्वजनिक भाषाके विषयका उल्लेख किया और आशा की कि कुछ ही वर्षोंके अन्दर हिन्दू फारसी सीखेंगे और मुसलमान संस्कृत, ताकि दोनों भाषाएँ अन्तमें एक हो जायें। इसके बाद उन्होंने कहा कि चम्पारनकी समस्याओं या शाहाबादकी लज्जाजनक घटनाओंके सम्बन्धमें बोलनेके लिए मेरे पास समय नहीं है, किन्तु मेरा कहना है कि विशेष न्यायाधिकरणोंका सहारा लेकर हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच सद्भावना उत्पन्न नहीं होगी; यह प्रश्न तो पारस्परिक विचार-विमर्श तथा समझौते पर निर्भर करता है। उनके भाषणका मुख्य विषय था — "हमारी वर्तमान स्थिति।" भारतीयोंके लिए अपना रास्ता चुननेका समय आ गया है। इस प्रकारके सुअवसर किसी भी राष्ट्रके जीवनमें बार-बार नहीं आते। वे विशेषकर शिक्षित-वर्गके प्रति अपने विचार

प्रकट कर रहे थे। उन्होंने कहा, भारतसे कहा गया है कि वह एक और सेना तैयार करे। ७ या ८ लाख व्यक्ति तो पहले ही से भारतके बाहर सेवा कर रहे हैं और इस वर्ष सेनामें ५ लाखकी और भरती की जानी है। इन लोगोंको सरकार वेतन देती है और ये लोग सैनिक सेवासे अपनी रोजी कमा रहे हैं; [किन्तु] भारत उनपर गर्व नहीं कर सकता। उनके अस्तित्वसे उसे कोई लाभ नहीं है। जिस स्वशासनके लिए लोग शोरगुल मचा रहे हैं उस स्वशासनकी उनके मस्तिष्कमें अलग कल्पना है। निश्चित रूपसे हमारे पास स्वराज्यकी अपनी सेना होनी चाहिए और इसके लिए यह आवश्यक है कि हम, सरकार जो ५ लाख व्यक्ति चाहती है उसे दें और इस बातकी प्रतीक्षा न करें कि सरकार स्वयं उन्हें भरती करेगी। उन्होंने लोगोंको गणतन्त्रीय सेना खड़ी करनेकी सलाह दी। उन्होंने लोगोंसे अपने साथ आने तथा सरकार जहाँ भेजना चाहे वहाँ जानेके लिए कहा। (इस अवसरपर बहुत बड़ी संख्यामें लोग सभासे चुपचाप खिसक गये।) उन्होंने कहा कि, यदि हम स्वयं आदमी मुहय्या नहीं करेंगे तो सरकार जैसे-तैसे उन्हें प्राप्त कर लेगी और यदि आवश्यकता हुई तो भरतीको कानूनन लाजिमी बना देगी।

दूसरा विचार जो वे लोगोंके सामने रखना चाहते थे यह था कि स्वशासनका अर्थ अंग्रेजोंको भारतसे बाहर निकालना नहीं है। यह नहीं हो सकता। वे तो ब्रिटिश साम्राज्यके एक महान् भागीदार बनना चाहते हैं। भारतके एक महान् नेताने कहा है कि "हम लड़नेके लिए तैयार हैं, किन्तु इस शर्तपर कि आप भारतको स्वशासन देनेका दावा करें।" उन्होंने कहा, मेरे विचारमें स्वशासन प्राप्त करनेका यह प्रामाणिक मार्ग नहीं है। उन्होंने इस बातकी वकालत की कि भारतको बिना किसी शर्तके आदमी मुहय्या करने चाहिए। साम्राज्यपर आई हुई विपदा भारतकी विपदा है। अंग्रेज जातिके चरित्रकी दो विशेषताएँ हैं; एक तो यह कि जो लोग मरना और मारना जानते हैं, वे उनके मित्र हो जाते हैं और उन्हींकी सहायता करते हैं जो अपने पाँवोंपर खड़े होना जानते हैं; और दूसरे, वे उन लोगोंके साथ एकदिल हो जाते हैं जो अपने अधिकारोंका दावा करते हैं और उन्हें प्राप्त करनेके लिए प्रारम्भमें ही अपनी शक्ति तथा दृढ़ निश्चयका प्रदर्शन करते हैं। स्वराज्यमें दो बातें अपरिहार्य होती हैं -- सेना तथा वित्तपर अधिकार और इसीलिए मैं बार-बार यह कहता हूँ कि भारतने सैनिक शिक्षा प्राप्त करने, साम्राज्यकी सहायताके जरिए स्वशासन प्राप्त करनेका अवसर खो दिया तो उसकी तत्सम्बन्धित महत्त्वाकांक्षाके सपने नष्ट हो जायेंगे। यह अवसर फिर कभी नहीं आयेगा। जो कमजोर होते हैं केवल वे ही शर्तें पेश करते हैं -- जो शक्तिशाली होते हैं वे कोई शर्त पेश नहीं करते।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९१८

२८२. भाषण: खंडालीमें[1]

[मई २७, १९१८]

खंडालीके स्त्री-पुरुषोंने बड़ा शौर्य और साहस दिखाया। किन्तु ... जिस प्रकार नदीमें बाढ़ आ जानेपर हम बाढ़के फाजिल पानीका उपयोग नहीं कर सकते और वह व्यर्थ ही समुद्रमें बह जाता है, ठीक ऐसे ही आप लोगोंका बहुत-सा शौर्य और साहस भी व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। एक सरकारी कर्मचारी एक स्त्रीकी सम्पत्ति जब्त करने गया तो उसने अपनी भैंस खोलकर भगा दी। उसका ऐसा करना एक बड़ी गलती थी। इसी प्रकार उस सरकारी कर्मचारीने भी बड़ी भारी गलती की; उसने उस स्त्रीको अपनी छतरीसे मारा। [सरकार भले ही गलती करे] किन्तु आप लोगोंको ऐसी गलतियाँ नहीं करनी चाहिए। सच्चा सत्याग्रही ऐसा नहीं कर सकता। सत्याग्रहके किसी भी संघर्षमें सर्वप्रथम कर्त्तव्य सत्यपर दृढ़ रहना है। यदि हम सत्यकी बहुत ही सूक्ष्म परिभाषा करें तो उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। किन्तु प्राय: हमारी सत्यकी परिभाषा कुछ संकुचित होती है इसलिए हमें मजबूरन उसमें कुछ बातें जोड़नी पड़ती हैं। [हमें स्पष्ट करना पड़ता है कि] इस संघर्षमें हमें न किसीका विरोध करना है, न किसीको बुरा-भला कहना है। यदि विरोधी हमें गालियाँ देता है, तो हमें वे सहनी होंगी। यदि वह हमपर लाठी चलाता है, तो बदलेमें लाठी चलाये बिना हमें उसे भी सहना होगा।

दूसरी बात यह है कि सत्याग्रहीको निर्भय होना है। उसे केवल अपने कर्त्तव्यका पालन करना है। आप जानते हैं कि जबतक हम सत्यपर दृढ़ हैं तबतक हम भयसे सर्वथा मुक्त हैं। यदि हमारा व्यवहार सरल होगा तो हम सदा सुरक्षित हैं। जब हम गलतीपर होते हैं तभी हमें अपने विषयमें चिन्ता हो जाती है। जिन लोगोंने अपराध किया है वे गाँवसे भाग गये हैं। किन्तु सत्याग्रहका संघर्ष करते हुए आप लोगोंको भागना नहीं पड़ा। हमेशा सत्यपर दृढ़ रहो, शरारत कभी मत करो। सत्याग्रही जो अपराध करता है, उसके लिए तो वह हमेशा कारावास या हुक्मनामे [वारंट] का स्वागत करता है। यदि उसने कोई अपराध न भी किया हो तो भी उसे इसका स्वागत करना चाहिए। यदि अपराध न करनेपर भी उसे न्यायालयमें अपराधी सिद्ध किया जाता है, तो क्या हुआ? सरकारका इस शरीरपर अधिकार है, आत्मापर नहीं। आत्मापर प्रेमसे ही विजय प्राप्त की जा सकती है। सत्याग्रही इस बातको समझता है और इसलिए चाहे उसने अपराध किया हो या नहीं, वह निर्भय रहता है। जो सज्जन गैरकानूनी तौरपर अपने मवेशी हटाकर ले गये हैं, मुझे आशा है, वे अपनी गलती स्वीकार कर लेंगे और दिलेरीके साथ कहेंगे कि

१. मोतीहारीसे लौटनेके बाद गांधीजी मातर ताल्लुकेमें खंडाली गाँव गये और उन्होंने वहाँ एक सार्वजनिक सभामें सत्याग्रहके महत्त्वपर भाषण दिया।

उन्हें जो भी दण्ड दिया जायेगा वे उसे स्वीकार करेंगे। हम केवल इसी तरह उन्नति कर सकेंगे।

यदि हम अपने सामान को सरकारी अधिकारियोंके हाथमें नहीं पड़ने देते तो यह चोरी नहीं है। जबतक यह उनके हाथोंमें नहीं आ गया है तबतक आप उसे दूसरे गाँव ले जा सकते हैं, आप उसे गाड़ सकते हैं। आप अपने मवेशियोंको हटाकर कहीं भी ले जा सकते हैं। किन्तु जैसे ही सरकारी कर्मचारियों या उनमें से किसी एक द्वारा वे जब्त कर लिये जाते हैं, तो फिर हमें उन्हें छूना भी नहीं चाहिए। हम जब्तियोंमें सरकारका साथ देने नहीं जा रहे हैं, हम अपने मवेशी उनके लिए नहीं पालते। किन्तु ज्यों ही कोई सरकारी अधिकारी हमारी भैंसको जब्त करता है, हमारा उसे उससे वापस छीननेका कोई अधिकार नहीं रहता। भाइयो तथा बहनो, मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप ऊपर कहे अनुसार कार्य करें। अधिकारियोंसे बदतमीजीसे बात करना या [उनके आनेपर] अपने मवेशी खोलकर भगा देना हमारा काम नहीं।

कलक्टरने मुझे बताया कि रैयत संघर्षमें अत्यन्त सुन्दर ढंगसे कार्य कर रही है, किन्तु खंडालीके कुछ लोग जैसी चालें चल रहे हैं उनसे संघर्षका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप फिरसे ऐसा न करें। सच्ची वीरता प्रहार करनेमें नहीं, बल्कि प्रहार सहनेमें है। कल जब मैं 'गीता' पढ़ रहा था, तब मैंने क्षत्रियकी एक विशेषता पढ़ी 'अपलायनम्'। इसका अर्थ है कि जब खतरा सामने आता है तब क्षत्रिय भागता नहीं, प्रत्युत अपने स्थानपर डटा रहता है। यदि हमारी सरकार जर्मनोंके साथ जैसे वह लड़ रही है वैसे न लड़े, यदि हमारे सैनिक जाकर उनके सामने निःशस्त्र होकर खड़े हो जायें व विस्फोटकोंका उपयोग न करें और कहें, "तुम हमपर प्रहार करो, हम मरनेको तैयार हैं!", तो मेरा विश्वास है कि हमारी सरकार तुरन्त युद्धमें विजयी हो जायेगी। किन्तु ऐसे कार्यके लिए 'संस्कार' की आवश्यकता पड़ती है और यह भारतके पास पर्याप्त मात्रामें है। जो वनस्पति यहाँ उगती है, वह इंग्लैंडमें ठीक तरहसे नहीं उगेगी। इस संस्कारके बीज भारतमें खूब फूलेंगे-फलेंगे। शुद्ध वीरता सहनशक्तिमें होती है। यह वास्तविक सत्याग्रह है। खतरेको सामने देखकर भाग जाना कायरता है।

तब उन्होंने जिसने अपराध किया था उससे अपील की कि वह अपराध स्वीकार कर ले और कानून उसे जो दण्ड दे उसे भोग ले। इसके बाद उन्होंने रैयतसे सावधानी और साहसके साथ कार्य करनेके लिए कहा और प्रार्थना की कि वे सरकारी अधिकारियोंका आदर करें। अन्तमें उन्होंने कहा कि संघर्षमें सफलता तो कबकी मिल चुकी है; उन्होंने उनके महान् शौर्य और साहसके लिए बधाई दी।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ३-६-१९१८

२८३. पत्र : जे० क्रिररको

सावरमती
मई ३०, १९१८

प्रिय श्री क्रिरर,[1]

अभी-अभी मुझे श्री मैफीका पत्र मिला है। उसमें उन्होंने दिल्ली सम्मेलनके तुरन्त बाद अपनी सेवाएँ देनेका मैंने जो प्रस्ताव किया था,[2] उसके सम्बन्धमें परमश्रेष्ठ गवर्नरसे सम्पर्क स्थापित करनेको कहा है। श्री मैफीके पत्रसे यह भी मालूम होता है कि मेरे और उनके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ, उसके कुछ अंश उन्होंने परमश्रेष्ठ को भी भेज दिये हैं। बड़ी कृपा हो, यदि यह सूचित करें कि मेरे प्रस्तावके सम्बन्धमें तथा श्री मैफीको लिखे अपने पत्रमें खेड़ाकी हदतक मैंने जो सुझाव दिये हैं उनके बारेमें परमश्रेष्ठका क्या विचार है।[3]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स् : ३४१२/१८

२८४. पत्र : महात्मा मुन्शीरामको

सावरमती
वैशाख कृष्ण ५ [मई ३०, १९१८]

महात्माजी,

आपका प्रेम पूरित हृदयद्रावक खत मुझे मीला है। व खतका अभावके लीये उत्तर देनेमें विलंब हुआ। मैं चि० इंद्र को दिल्लिमें कह रहा था "क्या महात्माजी

१. जेम्स क्रिरर, बम्बईके गवर्नर लॉर्ड विलिंग्डनके सचिव।

२. देखिए "पत्र : जे० एल० मैफीको", ३०-४-१९१८।

३. इस पत्रकी प्राप्तिकी सूचना देते हुए श्री क्रिररने १ जूनको गांधीजीको लिखा : "परमश्रेष्ठ आपके सहयोगका हार्दिक स्वागत करेंगे . . .। सरकार फिलहाल तो दिल्ली सम्मेलनके संकल्पको कार्यरूप देनेके उपाय सोच रही है जिनपर १० जूनको बम्बईमें आयोजित सम्मेलनमें विचार किया जायेगा। परमश्रेष्ठको आशा है कि आप उस सम्मेलनमें शामिल होंगे और तब उन्हें आपसे व्यक्तिशः मिलनेका अवसर प्राप्त होगा। . . . सम्मेलनके परिणामस्वरूप जिन संगठनोंके निर्माणकी आशा है, उनके कार्य आरम्भ करने पर वे अधिक विस्तृत रूपसे बता सकेंगे कि किन दिशाओंमें आपकी सेवाओंका लाभदायक उपयोग किया जा सकता है। जहाँतक खेड़ाकी लगान-वसूलीका सवाल है, परमश्रेष्ठका विचार है कि आन्तरिक प्रशासनके अन्य प्रश्नोंकी तरह ही इसका निपटारा भी इस मामलेके गुणदोषके आधारपर ही होना चाहिए . . .। उन्हें पूरा भरोसा है कि आप उनके विचारसे सहमत होंगे . . .।"

मुझको भूल गये है? " इसके पश्चात् दो तीन रोजमें आपका खत मीला। मैं खूब राजी हुआ। खेडा जिल्लाकी रैयत की जमीन खालसा की गई थी उसको वापस दे दी है। अब तो लोगोंको बहुत आर्थिक हानी नहि होगी। इस लड़तसे लोकोंको बड़ा जोर प्राप्त हो गया है।

आपका पत्र मुझको बल देता है। मेरे कार्यमें आर्थिक टूटी [त्रुटि?] आयगी तब आपका स्मरण अवश्य करूँगा।

आपका दर्द अब कमी होगा। ईश्वर आपकी रक्षा करे।

आश्रमवासी सब आपके आनेकी राह देखते है। अवध वीतनेसे हम सब अधीरे बन जावेंगे।

आश्रमवासी सब आपको नमस्कार कहते हैं।

आपका

मोहनदास गांधी

मूल हस्तलिखित पत्र (जी० एन० २२०७) की फोटो-नकलसे।

२८५. पत्र: मगनलाल गांधीको

अहमदाबाद,
मई, १९१८[1]

चि० मगनलाल,

सरकार लड़ रही है। वह मुश्किलमें है, और हम लोग उसके सहयोगसे स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं। हम अर्थात् प्रजा। किन्तु हम जबतक इसके योग्य नहीं बनते तबतक स्वराज्य नहीं प्राप्त कर सकते। इस योग्यताका एक निश्चित भाग तो यह है कि हम सरकारके दुःखमें भाग लें। हम आश्रम चलाते हैं उसमें हमारा उद्देश्य चरित्रका विकास करना है। तब क्या आश्रमवासियोंका यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे सरकारको मदद देनेका अपना अभिमत बतायें? लड़ाईके अन्तमें हम [स्वराजके] अधिक योग्य होंगे। मुझे लगता है कि हम युवाओंको तो जाना ही चाहिए। एक व्यक्ति बच्चोंको लेकर यहाँ रहेगा। अपना विचार तुरन्त बताना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

यदि हम जायेंगे तो दूसरोंको भी साथ ले जायेंगे।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७३१) से।
सौजन्य: राधाबेन चौधरी

१. यह निश्चित नहीं किया जा सका कि यह पत्र किस दिन लिखा गया था।

२८६. पत्र : 'बॉम्बे क्रॉनिकल' को[1]

सावरमती
जून २, १९१८

सम्पादक
'बॉम्बे क्रॉनिकल'

महोदय,

इसके साथ 'इंडियन ओपिनियन' में प्रकाशित सामग्रीसे लिये गये कुछ उद्धरण भेज रहा हूँ। आशा है आप उन्हें अपने पत्रमें स्थान देंगे। प्रकाशनकी इस प्रार्थनामें मैं संकोच करनेका कोई कारण नहीं देखता क्योंकि इनका सम्बन्ध भारतसे गये हुए लगभग दो लाख प्रवासी भारतवासियोंके हिताहितसे है। जोहानिसबर्ग-स्थित ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अहमद मुहम्मद काछलियाने संलग्न सामग्रीमें उल्लिखित मामलोंमें एकके सम्बन्धमें निम्नलिखित सूचना तार द्वारा भेजी है :

> **पाँच तारीखको आम सभाने रेलवे विनियमोंके १९वें खण्डके प्रति जोरदार विरोध प्रकट किया। निश्चय हुआ कि भारतवर्षमें शुभैषियोंको तार दिया जाये। विनियमों द्वारा टिकट देने, डिब्बोंमें बैठाने और हटाने, प्लेटफार्मोंपर बैठने-ठहरनेके स्थानोंके बारेमें कानूनन रंगभेद लागू किया गया है, और छोटे अधिकारियोंको अधिकार दिया गया है कि बिना कारण बताये जिसे जहाँ चाहें हटा दें। कृपया उपयुक्त अधिकारियोंसे समुचित दरख्वास्त करें। जबतक माँगी हुई राहत नहीं मिलती, समाज एक मतसे अधिकारोंकी माँग करेगा।**

दक्षिण आफ्रिकामें आठ वर्षों तक सत्याग्रहका जो आन्दोलन चला था उसमें श्री काछलियाने बड़ी दृढ़तापूर्वक कार्य किया था। उस लड़ाईके दौरान वे कंगाल हो गये, और भारतके सम्मानके लिए उन्होंने जेलको स्वीकार किया। अतएव "जबतक माँगी हुई राहत नहीं मिल जाती, समाज एकमतसे अधिकारोंकी माँग करेगा" इन शब्दोंका अर्थ कोई भी आसानीसे समझ सकता है। यह कोई धमकी नहीं है, बल्कि एक ऐसे समाजकी मनोवेदनाका मर्मभेदी चीत्कार है जिसके आत्म-सम्मानको चोट पहुँचाई गई है।

यह तो स्पष्ट है कि दक्षिण आफ्रिकाकी गोरी जनतापर इस युद्धका, जो कि रैयत, या दुर्बल जातियोंकी रक्षा करनेके नामपर लड़ा जा रहा है कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है। उनका रंग-द्वेष इस तथ्यके बावजूद कम नहीं हुआ है कि दक्षिण आफ्रिकामें रहनवाले भारतीयोंने एक डोली वाहक स्वयंसेवक दल संगठित किया है जो पूर्वी आफ्रिकामें जनरल स्मट्सके नेतृत्वमें जानेवाली सेनाके साथ बहादुरीके साथ काम कर रहा है।

१. इसे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय-विरोधी कानून (ऐण्टी-इंडियन लेजिस्लेशन इन साउथ आफ्रिका) शीर्षकसे छापा गया था। लगता है कि यह पत्र सामान्यतया सभी पत्रोंको भेजा गया था।

प्रश्न कठिन ही नहीं बल्कि बड़ा जटिल है। पूर्वग्रहोंको कानून बनाकर दूर नहीं किया जा सकता। धीरजपूर्वक कार्य करके और समझानेसे ही उन्हें दूर किया जा सकेगा। परन्तु दक्षिण आफ्रिकाकी संघीय सरकारका क्या उपाय किया जाये? वह सरकार तो कानून बना-बनाकर [रंगभेदके] पूर्वग्रह पुष्ट कर रही है। दोनों ओरसे किसी प्रकारकी हिंसात्मक कार्रवाई न होने पाये, इतनी सावधानी बरतते हुए यदि गोरे आदमियोंके पूर्वग्रहोंको स्वतन्त्र छोड़ दिया जाता हो, तो भारतवासी सन्तोष कर लेते। यदि गोरे लोग दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंका सर्वथा बहिष्कार भी कर देते तो भारतीय शिकायत नहीं कर सकते थे। वास्तवमें तो बहिष्कार पहलेसे ही जारी है। सामाजिक जीवनमें भारतीयोंको बिलकुल शामिल नहीं किया जाता। यद्यपि यह बहिष्कार भारतवासियोंको खटकता है परन्तु वे फिर भी उसको चुपचाप सहन करते हैं। परन्तु जब सरकार बीचमें दखल देती है और रंगभेदके आन्दोलनको कानूनी मान्यता प्रदान करती है तब बात दूसरी हो जाती है। भारतीय प्रवासी इस बातको बरदाश्त नहीं कर सकते कि उनके कहीं आने-जाने पर अपमानजनक नियन्त्रण लगाये जायें। रेलवेका टिकट बाबू भारतीयोंकी वेश-भूषा ठीक-ठाक है या नहीं, इसका निर्णय करे, यह बात भारतीय सहन नहीं कर सकते। प्लेटफार्म इन्सपेक्टर उनको प्लेटफार्मके किसी नियत स्थानपर ही उठने-बैठने दे, यह बात भी उन्हें स्वीकार नहीं हो सकती। रेलका टिकट खरीदनेके लिए उन्हें कैदियोंकी भाँति पहले अपना प्रमाणपत्र दिखाना पड़े, तो वे वैसा नहीं करेंगे।

नये-नये अत्याचार और अपमानोंको, युद्ध चल रहा है, ऐसा कहकर छिपाया नहीं जा सकता। भारतकी सम्मान-रक्षा करनेवाले भारतके साहसी पुत्र दक्षिण आफ्रिकामें अपना कर्त्तव्य निभा रहे हैं। हम लोग जो यहाँ हैं उनका कर्त्तव्य है कि हम उनकी सहायता करें। भारतके प्रत्येक स्थानमें सभाएँ करके दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंको भली-भाँति बता देना चाहिए कि भारत अपनी सन्तानोंके प्रति उनके दुर्व्यवहारका विरोध करता है। हमें इन सभाओंमें भारत-सरकार और साम्राज्य सरकारसे आग्रह करना चाहिए कि दक्षिण आफ्रिका-स्थित हमारे देशभाइयोंकी सुरक्षाके लिए वे कोई कारगर उपाय करें। मैं आशा करता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकामें होनेवाले अन्यायको समाप्त करानेके लिए जो आन्दोलन होगा, उसका समर्थन करनेमें भारतमें रहनेवाले अंग्रेज लोग पीछे नहीं रहेंगे।

'इंडियन ओपिनियन' पत्रसे ली गई संलग्न सामग्रीके दूसरे भागमें जिस शिकायतका उल्लेख है उसके विषयमें श्री काछलियाके तारमें कोई संकेत नहीं किया गया है। यह शिकायत भी कुछ कम गम्भीर नहीं है। प्रभावकी दृष्टिसे यह वस्तुतः कहीं अधिक हानिकारक है। किन्तु प्रवासी भारतीय समाजको यह आशा है कि दक्षिण आफ्रिकाके सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेसे उस अन्यायकी निवृत्ति हो जायेगी। वास्तवमें वह प्रश्न सर्वोच्च न्यायालयसे ऊपरका है। यह कैसे हो सो मैं एक ही वाक्यमें समझा दूँ। एक प्रतिक्रियावादी अटर्नी जनरलने नेटालके सर्वोच्च न्यायालयसे एक नजीर करा ली है कि "देशी रियासतों" की प्रजा विदेशी प्रजा है, ब्रिटिश प्रजा नहीं। अतएव देशी रियासतोंकी प्रजा नेटालके सर्वोच्च न्यायालयका जहाँतक प्रवासी नियंत्रण विधेयकके एक खण्ड विशेषके अन्तर्गत अपीलका सम्बन्ध है, संरक्षण पानेकी अधिकारी नहीं है। यदि नेटाल प्रान्तके सर्वोच्च न्यायालयका यह निर्णय सही है तो इसका परिणाम यह होगा

कि दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए हजारों भारतीय निवासी उस सुरक्षासे वंचित हो जायेंगे जिसके लिए उन्होंने आठ वर्षों तक संघर्ष किया था और, अब मान रहे थे कि वह उन्हें प्राप्त हो गई थी। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय प्रवासियोंमें कमसे-कम एक चौथाई लोग बड़ौदा और काठियावाड़ राज्यकी प्रजा हैं। यदि कोई कानून इन लोगोंको विदेशी समझता है तो उस कानूनमें परिवर्तन करना होगा। देशी राज्यों और उनकी प्रजाके लिए यह घोर अपमानकी बात है कि इन लोगोंको विदेशी समझा जाये।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ७–६–१९१८ तथा **स्पीचेज़ ऐंड राइटिंग्ज ऑफ महात्मा गांधी**

२८७. पत्र : सर जॉर्ज बार्न्सको

साबरमती

जून २, १९१८

प्रिय सर जॉर्ज बार्न्स,

मेरा खयाल है कि उपनिवेशोंके प्रवासियोंके रुतबेसे सम्बन्धित मामले आपके विभागके अन्तर्गत आते हैं। यदि यह ठीक हो तो मैं आपका ध्यान नत्थी किये गये कागजोंकी[1] ओर आकर्षित करना चाहता हूँ।

संघ-सरकार गोरोंके रंगविद्वेषी पूर्वग्रहोंकी फिरसे शिकार बनती जा रही है और जिसे सिद्धान्तों और कमजोर राष्ट्रोंकी प्रतिरक्षाका युद्ध माना जाता है वह दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंपर कोई प्रभाव नहीं डाल पाया है। यह बात इन कागजातोंसे आप जान सकेंगे।

मैं जानता हूँ कि यह समस्या जटिल है। विधान बनाकर पूर्वग्रहोंको दूर नहीं किया जा सकता। वे धैर्यपूर्वक किये गये प्रयत्न और शिक्षासे ही दूर किये जा सकते हैं। किन्तु आशंका तो इस बातकी है कि संघ-सरकार विरोधी हितोंके प्रति समदृष्टि रखनेके बजाय स्वयं इस जातीय पूर्वग्रहको प्रोत्साहन दे रही है। यदि मेरा विचार सही है तो प्रश्न यह उठता है कि वह अपनी साम्राज्य विरोधी गतिविधियोंमें ब्रिटिश झण्डे [यूनियन जैक)का सहारा कहाँ तक ले सकती है। क्या भारत-सरकार मद और जातीय विद्वेषके इस अशोभनीय प्रदर्शनके खिलाफ प्रबल विरोध करनेके लिए साम्राज्य सरकारको प्रभावकारी ढंगसे प्रेरित नहीं कर सकती?

मेरा खयाल है कि आप जानते हैं कि दक्षिण आफ्रिकाके इस छोटेसे भारतीय उपनिवेशने युद्ध-कालमें, जैसा कि सर्वविदित है, बहुत उपयोगी सेवा की है और अब भी

१. ये उपलब्ध नहीं हैं।

कर रहा है। पूर्व आफ्रिकामें जनरल स्मट्सके पहुँचनेके बादसे ही एक भारतीय–आहत–सहायक-दल कार्य करता आ रहा है।

ये कागजात दो भागोंमें विभक्त हैं : एक भाग नये बनाये गये रेलवे विनियमोंसे सम्बन्धित है। ये विनियम अपने आपमें बिलकुल स्पष्ट हैं। इसकी कल्पना नहीं की जा सकती कि भारतीय यात्री स्टेशनके प्लेटफार्मों, डिब्बों तथा टिकट-कार्यालय आदि स्थानोंके उन्हीं भागोंमें जा या बैठ सकते हैं जो उनके लिए नियत किये गये हैं। तिसपर भी प्रथम या द्वितीय श्रेणीके टिकटोंके लिए तो उन्हें टिकट देनेवाले क्लर्ककी सनकपर निर्भर करना पड़ता है, क्योंकि टिकट देनेवाले बाबूको अधिकार है कि यदि कोई भारतीय उसकी दृष्टिमें अच्छी वेशभूषामें नहीं है तो वह उसे टिकट देनेसे इनकार कर दे।

दूसरे भागमें जो कागज हैं उनसे यह स्पष्ट होता है कि संघ-सरकारके विवेकहीन कृत्यके परिणामस्वरूप देशी रियासतोंमें पैदा हुए वे भारतीय जो दक्षिण आफ्रिकामें जाकर बस गये हैं किस प्रकार महत्त्वपूर्ण कानूनी अधिकारसे वंचित कर दिये गये हैं। यदि सर्वोच्च न्यायालयका निर्णय कानूनकी रूसे सही है तो स्पष्ट है कि कानून बुरा है; वह बदला जाना चाहिए। और यदि ऐसा नहीं है तो संघ-सरकारको स्थानीय अन्तःपरिषद् [प्रिवी कौंसिल]में की गई अपीलका समर्थन करना चाहिए और कानून रद करवा देना चाहिए। बड़ौदा रियासतके हजारों भारतीय वर्षोंसे दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए हैं। पीड़ित पक्षकी प्रार्थनाका विरोध करते समय सरकारको समझ लेना चाहिए था कि वह उन भारतीयोंके उचित अधिकारोंके हितमें, जो प्रत्येक अर्थमें ब्रिटिश प्रजा हैं, खतरा पैदा करनेकी जोखिम उठा रही है।

मुझे पूर्ण आशा है कि इस पत्रके साथ आपको भेजे गये कागजोंमें जिस गलतीका उल्लेख है, उसे ठीक करनेके लिए आप तार भेजकर आवश्यक कदम उठायेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया : उद्योग और वाणिज्य : जून १९१८ : संख्या ५

२८८. भाषण : उत्तरसंडामें[1]

उत्तरसंडा
जून ३, १९१८

मामलतदारका आदेश आपने सुन लिया। यह आदेश हमारी बातचीतके परिणाम-स्वरूप जारी किया गया है। कुछ दिन पूर्व जब मैं कलक्टरसे मुलाकात करने गया था तब मैंने उक्त आदेशका सुझाव दिया था। मैंने उन्हें बताया था कि यदि वे मेरे सुझावों-पर अमल करेंगे तो संघर्ष शीघ्र समाप्त हो जायेगा। अब मामलतदारने इस प्रकारका आदेश जारी कर दिया है। हमारे संघर्षकी पहली शर्त यह थी कि जिस दिन गरीबोंसे लगान वसूली स्थगित कर दी जायेगी उस दिन जो लोग लगान देनेमें समर्थ हैं, वे तुरन्त लगानकी सारी रकम अदा कर देंगे। प्रारम्भमें सरकारने दुराग्रह किया और कहा कि ऐसा नहीं हो सकता। सरकारका कहना था कि उसने जो लगान निश्चित किया है उसे ठीक समयपर अदा करना ही पड़ेगा। मामलतदारके आदेशका आशय यह है कि आप-में से जो लोग लगान अदा कर सकते हैं, वे उसे अदा कर दें और जो लोग वस्तुत: अदा करनेमें असमर्थ हैं, उनका लगान स्थगित कर दिया जायेगा। इस तरह सरकारको लगान मिल जायेगा लोगोंका आत्म-सम्मान कायम रहेगा और वे अपने प्रणके प्रति भी सच्चे रहेंगे। हमें इस कृपापूर्ण आदेशके लिए मामलतदारको धन्यवाद देना चाहिए; किन्तु यह किस प्रकार? आदेशका वास्तविक अर्थ समझकर, अर्थात् आगा-पीछा किये बिना अपनी लगानकी रकम अदा करके हम ऐसा कर सकते हैं। आपमें से जो लगान अदा करनेमें समर्थ हैं उन्हें आज या कल उसे जरूर अदा कर देना चाहिए और उन लोगोंकी एक सूची तैयार कर लेनी चाहिए जो लगान अदा करनेमें असमर्थ हैं। आपको अपने तलाटीको विश्वास दिलाना होगा कि उस सूचीमें शामिल व्यक्ति वास्तवमें गरीब हैं। इसके बाद मामलतदार उनका लगान स्थगित करनेके लिए आदेश जारी कर देगा। मुझे आप लोगोंसे . . .[2] करनी है, वह यह कि जो लोग लगान अदा कर सकते हैं उन्हें गरीबोंकी सूचीमें शामिल न करें। उन्हीं लोगोंको सूचीमें लें जो लगान अदा करनेके लिए साहूकारसे ब्याजकी ऊँची दरपर कर्ज लेने अथवा अपने मवेशी या गहने बेचनेके लिए मजबूर होंगे। इस तरहके लोगोंकी सूची जितनी छोटी होगी हमारे लिए वह उतनी ही श्रेयस्कर होगी। जो लोग समर्थ हैं और जिन्हें अपने वादेके अनुसार लगान अदा करना ही चाहिए, वे यदि ऐसा नहीं करते तो दुनिया उनपर हँसेगी। इसलिए हमें

१. बिहारसे लौटनेके बाद गांधीजी श्री वी० जे० पटेलके साथ नडियादसे तीन मील दूर स्थित उत्तरसंडा गाँव गये। तलाटीने मामलतदार (तहसीलदार) का इस आशयका आदेश पढ़कर सुनाया कि गाँवके धनिक किसान तो लगान अदा कर दें, किन्तु गरीब खातेदारोंके लिए अगले वर्षतक लगान स्थगित कर दिया जायेगा। इसके बाद गांधीजीने सभामें भाषण दिया।

२. यहाँ कुछ शब्द छूटे हुए हैं।

देखना होगा कि हमारी हँसी न उड़े। हमें मामलतदार साहबके आदेशका दुरुपयोग करनेकी इच्छा नहीं करनी चाहिए। यदि आप मेरी सलाहके अनुसार कार्य करेंगे तो मुझे विश्वास है कि आपकी प्रतिज्ञा आपके लिए अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होगी और दूसरे लोग आपका आदर करेंगे। हमें निर्मल अन्तःकरणसे काम करना चाहिए। जब यह कहा गया था कि सरकार सही है और हम गलतीपर हैं, तब हमें कितना बुरा लगा था? अब सरकार कहती है कि हम लगान अदा करें या न करें यह हमपर निर्भर करता है। इसलिए हमारा दुहरा कर्त्तव्य हो गया है। जो लोग लगान दे सकते हैं उन्हें तुरन्त दे देना चाहिए। यदि वे नहीं देते तो हमें उनपर अपना प्रभाव डालना होगा। और दूसरा यह कि आप गरीब खातेदारोंकी सूची तैयार करें और इसके तैयार करनेके बाद अपना लगान अदा कर दें। १० जूनको बम्बईमें युद्ध सम्मेलन है। मुझे आशा है कि इस प्रकारके आदेश, जैसे कि इस गाँवमें दिये गये हैं, अन्य गाँवोंमें भी जारी कर दिये जायेंगे और मैं गवर्नरसे यह कह सकूँगा कि हमारा संघर्ष समाप्त हो गया है।[1]

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ५–६–१९१८

२८९. भाषण: नवागाँवमें

जून ३, १९१८

मेरी तबीयत ठीक नहीं है, इसलिए मैं अधिक नहीं बोलूंगा। लेकिन नवागाँव और नायकाके लोगोंने बहुत ही साहसका परिचय दिया है और बहुत अच्छा काम किया है। नावली और खंडालीके कुछ लोगोंने सीमाका उल्लंघन किया है। वे कुर्क की हुई भैंसोंको छुड़ा लाये और अधिकारियोंके कपड़ोंमें कौंचकी फलियाँ रख आये। यह सत्याग्रह नहीं, वरन् दुराग्रह है। हमारी प्रतिज्ञा तो सिर्फ यही थी कि हम रुपया नहीं देंगे। अधिकारी समझते हैं कि वे आकाशसे उतरे हैं। सरकारी नौकरीमें कोई विशेषता नहीं है। हमारे संघर्षका महत्त्व यही है कि हम इस बातको समझ लें। आपको चौथाई देनी पड़ी है, हमें उसे वापस लेनेका प्रयत्न करना पड़ेगा; लेकिन यदि वह वापस न भी मिले तो कोई परवाह नहीं। खेड़ाके किसानोंने इस संघर्षमें बहुत कमाया है और बहुत सीखा है। इस सबको प्राप्त करनेमें आपकी चौथाई गई तो कुछ अधिक नहीं गया। हमारी लड़ाईका उद्देश्य तो प्रतिज्ञाका पालन करना था। चौथाई वापस लेनेकी हर सम्भव कोशिश की जायेगी। यदि हम विनय और सत्यका पालन करेंगे तो सरकारसे चौथाई वापस देनेकी अपील कर सकेंगे। चौथाई देनेके बावजूद लोग लगान नहीं देते,

१. प्रतीत होता है, गांधीजीने कलक्टरको लिखा कि यदि मामलतदार द्वारा जारी किये गये आदेशके जैसा ही आदेश प्रकाशित कर सारे जिलेमें लागू कर दिया जाये तथा चौथाई एवं दूसरे जुरमाने वापस ले लिये जायें तो संघर्ष बन्द हो जायेगा। कलक्टर द्वारा गांधीजीके सुझावके अनुसार कार्य करनेपर सत्याग्रह समाप्त कर दिया गया।

इससे लोगोंकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और सत्यकी प्रतिष्ठा भी। सरकारने जमीनें जब्त करनेका विचार बदल दिया जान पड़ता है। यदि जमीनें जब्त की जातीं तो सरकारकी बहुत बदनामी होती और बात बिगड़ती। जहाँ किसान इतनी शक्ति दिखा रहे हों वहाँ सरकार जमीनें जब्त करती है तो उसका बल घटता है। स्पष्ट अन्यायसे बल घटता है।

[गुजरातीसे]

प्रजाबन्धु, ९-६-१९१८

२९०. सन्देश : खेड़ाके लोगोंको[1]

सत्याग्रह शिविर
नडियाद
जून ६ [१९१८]

खेड़ा जिलेके भाइयो और बहनो,

खेड़ा जिलेकी जनताने तारीख २२ मार्चको जो लड़ाई शुरू की थी, वह खत्म हो गई है। उस तारीखको लोगोंने निम्नलिखित प्रतिज्ञा ली[2] थी :

इस प्रतिज्ञाका तात्पर्य यह है कि अगर सरकार गरीबोंका लगान मुलतवी रखे, तो समर्थ आसामी लगान जमा करा देंगे। उत्तरसंडा, नडियादके मामलतदारने तारीख ३ जूनको ऐसा हुक्म जारी किया। इसपर उत्तरसंडाके लोगोंमें जो समर्थ हैं उन्हें लगान जमा कर देनेकी सलाह दे दी गई है, और वहाँ लगान जमा कराना शुरू हो गया है।

उत्तरसंडामें इस प्रकारका हुक्म जारी होनेके बाद, कलक्टर साहबको पत्र[3] लिखकर प्रार्थना की गई कि अगर उत्तरसंडा जैसा ही हुक्म सब जगह जारी हो जाये, तो लड़ाईका अन्त हो जाये और परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयको १० तारीखको — यानी जिस दिन युद्ध-परिषद्‌की बैठक होगी — सूचित किया जा सके कि खेड़ा जिलेका घरेलू झगड़ा निपट गया है। कलक्टर महोदयने इस आशयका उत्तर दिया है कि उत्तरसंडामें जारी किया गया हुक्म सारे जिलेपर लागू होता है। इस प्रकार लोगोंकी प्रार्थना अन्ततः स्वीकार हो गई है। 'चौथाई' सम्बन्धी सरकारी आज्ञाके बारेमें कलक्टरने बताया है कि जो लोग स्वेच्छासे अदायगी कर देंगे, उनके खिलाफ यह आज्ञा लागू नहीं की जायेगी। इस रियायतके लिए हम कलक्टर महोदयके प्रति आभार प्रकट करते हैं।

हमें अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि लड़ाईका अन्त तो हो गया, परन्तु बहुत शोभनीय ढंगसे नहीं। उसमें जो खूबी होनी चाहिए, वह नहीं है। ऊपरका हुक्म उदार

१. यह ज्ञापन गुजराती भाषामें गांधीजी और सरदार वल्लभभाई पटेलके हस्ताक्षरोंसे जारी किया गया था, और अंग्रेजीमें इसे 'यंग इंडिया' में "ऐन एण्ड विदाउट ग्रेस" [संघर्षकी शोभाविहीन समाप्ति] शीर्षकसे प्रकाशित किया गया था। वह विभिन्न अंग्रेजी अखबारोंमें भी छपा था।

२. इसके पाठके लिए देखिए "प्रतिज्ञा", २२-३-१९१८।

३. उपलब्ध नहीं है।

हृदयसे खुश होकर नहीं दिया गया। ऐसा लगता है कि उक्त हुक्म बहुत बेमनसे जारी किया गया है। कलक्टर महोदय सूचित करते हैं :

> २५ अप्रैलको सब मामलतदारोंके नाम यह आदेश जारी कर दिया गया था कि जो लोग अदायगी करनेकी स्थितिमें न हों, उनपर कोई दबाव न डाला जाये। २२ मईको बाकायदा एक परिपत्र भेजकर उनका ध्यान पुनः इन आदेशोंकी ओर दिलाया गया था। इन आदेशोंपर कारगर ढंगसे अमल हो सके इसलिए मामलतदारोंसे यह भी कहा गया था कि वे लगान अदा न करनेवालोंको दो वर्गोंमें छाँट लें। एकमें वे लोग रखे जायें जो अदा करनेकी स्थितिमें थे, और दूसरेमें वे *लोग जो गरीबीके कारण लगान* देनेमें असमर्थ थे।

यदि ऐसी बात थी, तो ये आज्ञायें जनताको क्यों नहीं बताई गईं? यदि २५ अप्रैलको उनकी जानकारी लोगोंको हो गई होती, तो लोग कितने कष्टोंसे बच जाते। विशेष अधिकारियोंको रखकर कुर्कियाँ करनेके लिए जिलेके बहुतसे सरकारी कर्मचारियोंके ऊपर सरकारको जो अनावश्यक खर्च करना पड़ता वह बच जाता। जहाँ-जहाँ लगान बाकी था, वहाँके लोगोंकी जान साँसतमें पड़ी रही। कुर्की न हो सके, इसके लिए वे घर छोड़कर बाहर रहे। यहाँतक कि उन्हें ठीकसे भोजन भी नहीं मिला। स्त्रियोंने ऐसे कष्ट सहन किये हैं जिन्हें सहनेका उनके लिए कोई कारण न था, कभी-कभी उद्धत सर्किल इंस्पेक्टरोंके अपमान भी सहन किये हैं। वे असहाय देखती रहीं और दुधारू भैंसें उनकी नजरके सामने खोल ली गई हैं। चौथाईका जुरमाना चुकाया है। उपर्युक्त आज्ञाएँ लोगोंको मालूम हो जातीं, तो लोग इन सब दुःखोंसे बच जाते। *अधिकारी लोग जानते थे कि* गरीबोंको राहत देनेकी माँग ही लड़ाईका मुख्य आधार थी। कमिश्नरने तो लोगोंकी इस कठिनाईकी तरफ देखनेसे ही इनकार कर दिया था। बहुत-से पत्र लिखनेपर भी वे टससे मस नहीं हुए। उनका जवाब था, "असामीवार छूट नहीं दी जा सकती। एसा कानून नहीं है।" अब कलक्टर महोदय कहते हैं कि :

> अप्रैल २५ के आदेश, जहाँतक उनका *ताल्लुक गरीबीके कारण लगान* वास्तवमें अदा न कर सकनेवालोंपर दबाव डालनेसे है, सरकारके उस विषयसे सम्बन्धित सर्वज्ञात स्थायी आदेशोंकी पुनरावृत्ति मात्र थे।

अगर यह बात सच है तब तो लोगोंको आजतक उनके हठके कारण ही दुःख उठाना पड़ा है। दिल्ली जाते समय श्री गांधीने कमिश्नरको पत्र लिखकर राहत देने या उपर्युक्त आशयका हुक्म जारी करनेकी प्रार्थना की थी ताकि वाइसराय महोदयको समझौतेकी खुशखबरी दी जा सके। कमिश्नरने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया। "लोगोंको दुःखी देखकर हम विचलित हो गये हैं; हम अपनी भूल अनुभव करते हैं; और लोगोंको सन्तुष्ट करनेके लिए अब हम असामीवार छूट देनेको तैयार हैं।" अधिकारी लोग उदात्त मनसे ये सारी बातें कहकर जनताका मन जीत सकते थे, किन्तु उन्होंने (*जनताका मन जीतनेका*) यह तरीका अपनानेसे इनकार कर दिया। और अब भी जो राहत दी गई है, वह मजबूरन और अनमने भावसे बिना अपनी भूल स्वीकार

किये हुए दी गई है। यही नहीं, यह दावा भी किया जाता है कि जो राहत दी गई है, वह पहले भी दी जाती रही है। इसीलिए हम कहते हैं कि इस समझौतेमें कोई शोभा नहीं है।[1]

अपनी हठधर्मिता, अपनी इस भ्रमपूर्ण धारणा कि उन्हें अपनी गलती स्वीकार नहीं करनी चाहिए, और इस बातका आग्रह कि उनके बारेमें यह न कहा जा सके कि वे किसी जन-आन्दोलनके सामने झुक गये, इन कारणोंसे ही सरकारी अधिकारी लोकप्रिय नहीं हो सके हैं। यह आलोचना करते हुए हमें दुःख होता है। परन्तु हमें लगा कि उनके मित्रके रूपमें उनकी इतनी आलोचना तो हमें करनी ही चाहिए।

अधिकारी-वर्गका ऐसा असन्तोषजनक व्यवहार होते हुए भी हमारी प्रार्थना स्वीकार हो गई है और जो राहत दी गई है उसे साभार स्वीकार करना हमारा फर्ज है। अब केवल आठ फी सदी लगानका भुगतान होना बाकी है। अबतक लगान अदा न करनेमें ही हमारा स्वाभिमान था। अब स्थितिके बदल जानेपर सत्याग्रहियोंके लिए लगान चुकानेमें स्वाभिमान है। जो समर्थ हैं, उन्हें सरकारको जरा भी तकलीफ दिये बिना लगान तुरन्त जमा करके बता देना है कि जहाँ अन्तरात्माके आदेश और मानवीय कानूनके बीच विरोध नहीं है, वहाँ सत्याग्रही कानूनका आदर करनेमें किसीसे पीछे नहीं हैं। सत्याग्रही कभी-कभी कानून और सत्ताकी क्षणिक अवज्ञा करता प्रतीत होता है किन्तु इसमें उसका उद्देश्य अन्तमें यही सिद्ध करनेका होता है कि दोनोंके प्रति उसके मनमें सच्चा मान है।

लगान अदा करनेमें जो समर्थ हैं उनकी सूची तैयार करते समय खूब पक्की जाँच कर लेनी चाहिए ताकि इसपर कोई आपत्ति न उठा सके। जिनकी असमर्थताके बारेमें जरा भी शंका हो, उनका फर्ज है कि वे लगान अदा कर दें। असमर्थ कौन है, इसका अन्तिम निर्णय तो अधिकारी-वर्ग ही करेगा। फिर भी हम यह मानते हैं कि वह जनताके निर्णयका पूरा आदर करेगा।

खेड़ाके लोगोंने अपनी बहादुरीसे सारे हिन्दुस्तानका ध्यान अपनी ओर खींचा है। सत्य, निर्भयता, एकता, दृढ़ता और आत्मत्यागका पालन करनेका फल उन्होंने पिछले छः महीनोंमें चखा है। हमें आशा है कि लोग इन महान् गुणोंका अपनेमें और अधिक विकास करेंगे, प्रगतिके पथपर आगे बढ़ेंगे और मातृ-भूमिका नाम अधिक उज्ज्वल करेंगे। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यह लड़ाई छेड़कर खेड़ा जिलेकी जनताने अपनी, स्वराज्यकी और साम्राज्यकी सच्ची सेवा की है।

ईश्वर आप सबका कल्याण करे।

हम हैं
जनताके चिरसेवक,
मोहनदास करमचन्द गांधी
वल्लभभाई झवेरभाई पटेल

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-६-१९१८

१. यह अनुच्छेद केवल अंग्रेजी पाठमें मिलता है। गुजराती पाठमें यह नहीं है।

२९१. भाषण: नडियादमें[1]

जून ८, १९१८

जिला मजिस्ट्रेटके रूपमें काम करनेवाले नडियादके कलक्टरके न्यायालयमें श्री मोहनलाल पंड्या तथा नवागाँवके पाँच अन्य व्यक्तियोंपर ८ जून, १९१८को खेतसे[2] प्याज चुरानेका अभियोग लगाया गया। अभियुक्तोंने दृढ़तापूर्वक कहा, वे हृदयसे यही मानते हैं कि उन्होंने कोई गैरकानूनी कार्य नहीं किया है।

गांधीजीने भी अपनी गवाहीमें कहा कि उक्त कार्यके लिए एकमात्र उत्तरदायी मैं हूँ, और मैंने ही अभियुक्तोंको प्याज निकालनेकी सलाह दी थी। यदि प्याज निकालना अपराध है तो न्यायालयका कर्त्तव्य है कि दण्ड मुझे दिया जाये। मामलेके समाप्त होने-पर[3] गांधीजीने न्यायालयकी चहारदीवारीके बाहर एक विशाल सार्वजनिक सभामें भाषण दिया। [उन्होंने कहा:]

इस समय मेरे हृदयमें दो भावनाएँ उठ रही हैं: उनमें से एक तो मुझे खुशीसे भरती है और दूसरी दुःखसे। मैं खुश इसलिए हूँ कि खेड़ाके लोग सच्चे सत्याग्रही हैं और उन्हें जेल जानेका सुअवसर मिला है। मेरा यह सन्देह, कि खेड़ाके किसान जेल जानेके लिए तैयार होंगे कि नहीं, दूर हो गया है। मुझे दुःख इसलिए है कि यद्यपि ब्रिटिश अधिकारी आम तौरपर भले होते हैं, फिर भी उनमें से कुछ ऐसे हैं, जिनमें उदारता और दूरदर्शिताकी कमी है। कलक्टर जेलकी सजा देकर अगर ऐसा सोचते हैं कि वे हमें किसी ऐसी जगह भेज रहे हैं जहाँ जाना अपमानजनक है और जहाँ भयानक कष्ट उठाने पड़ते हैं, तो वे भले वैसा सोचें किन्तु हमारे लिए जेल वैसी कोई जगह नहीं है। सच कहें तो लोगोंने वहाँ जो सीखा वह सचमुच प्रशंसनीय है। जबतक हम जेलके कष्टोंको सहना नहीं सीखते तथा जेल-यात्राके वास्तविक अर्थ और पाठकी ओर ध्यान नहीं देते तबतक सत्याग्रहका असली अर्थ हमारी समझमें नहीं आता। सबके लिए यह समझनेका एक बहुत ही उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ है। हमें इसका दुःख होना चाहिए कि हम उन बन्धुओंके समान सौभाग्यशाली नहीं हैं जो जेल गये हैं। मैंने जेल जानेकी पूरी कोशिश की। मैंने कहा कि प्रारम्भसे लेकर अन्ततक एकमात्र उत्तरदायित्व मेरा है।

१. भाषणकी 'खेड़ा सत्याग्रह' में दी गई गुजराती रिपोर्टके आधारपर इसे संशोधित कर लिया गया है।

२. सरकारी आदेशके द्वारा खेतको जब्त कर लिया गया था, किन्तु गांधीजीने कलक्टरको बताया कि जब्त करनेके नोटिसमें खेतकी सर्वेक्षण संख्या नहीं दी गई है, इसलिए उसे जब्त किया गया नहीं समझा जायेगा। बरसात तुरन्त आनेवाली थी इसलिए उन्होंने उन्हें खेतसे प्याज एकत्र करनेकी सलाह दी। इस घटनाका आत्मकथाके अध्याय २४ में विस्तारसे वर्णन है।

३. दो अभियुक्तोंको १० दिनकी तथा शेषको बीस-बीस दिनकी कैदकी सजा दी गई।

भूलाभाईने[1] जो किया पूरी तरह सोच-विचार कर किया है। यदि इसमें कोई गलती है तो वह मेरी है; और फिर भी मैं अनुभव नहीं करता कि मैं किसी तरह गलतीपर हूँ। मैंने बड़ी कोशिश करके मामला कलक्टरके पास बदलवाया था। यह परीक्षात्मक मामला था। मैंने कलक्टरको पहले ही कह दिया था कि मैं उनके निर्णयके खिलाफ अपील करने नहीं जाऊँगा; और मेरा अब भी वही विचार है। न्यायालयका निर्णय अन्यायपूर्ण है और सजा कड़ी है। कोई भी यह आशा नहीं कर सकता कि न्यायाधीशके आसनपर बैठा व्यक्ति सत्याग्रही हो, क्योंकि कानून सत्याग्रहको स्वीकार नहीं करता। यह एक ऐसा मामला है जिसमें यदि हम अपील करें तो निश्चित रूपसे सफल होंगे। हम इस मुकदमेको इसलिए नहीं हारे कि मैंने या वल्लभभाईने किसी भी गवाहसे जिरह नहीं की। कोई भी निष्पक्ष न्यायाधीश जिसे कानूनका ज्ञान होता, कह सकता था कि जो तथ्य सामने हैं उनके आधारपर इसे अपराध नहीं माना जा सकता। इसके बावजूद हम अपील करने नहीं जा रहे हैं। सत्याग्रही ऐसा नहीं कर सकता। उनके लिए जेल जाना सबसे अच्छा मार्ग है। यदि सजा और भी कड़ी होती तो मुझे और भी खुशी होती। कलक्टरने आदेश दिया है कि प्याजको जब्त कर लिया जाये। यदि सरकार प्याजको हजम करनेका साहस कर सकती है तो उसे वैसा करने दें। किन्तु नवागाँवके बहुत-से मित्रोंसे जो यहाँ उपस्थित हैं मैं यह कहना चाहता हूँ कि भूलाभाईपर लगानके जो ९४ रुपये बाकी हैं, उन्हें कलतक मामलतदारको निश्चित रूपसे चुकता कर देना चाहिए। हमें समझौतेका सम्मान करना है। मैं नडियादमें होनेवाले जिला सम्मेलनमें भी यही कहने जा रहा हूँ। इस घटनासे कटुता उत्पन्न होनेकी सम्भावना है, किन्तु यदि हम पर्याप्त उदारता दिखाकर इसे भुला दें तो सरकारको अपना वादा तोड़नेके लिए सदैव खेद बना रहेगा। कलक्टरने क्रोधके वशीभूत होकर ऐसा किया है। सजा इसलिए दी गई कि लोगोंने उनके आदेशके बावजूद प्याज खोद निकाला। यदि उन्होंने इस मामलेपर शान्तिपूर्वक विचार किया होता तथा कुछ अधिक सावधानीके साथ कानूनका अध्ययन किया होता तो उन्हें मालूम हो गया होता कि इस कार्यमें कोई अपराध नहीं है। यदि हमें अधिकारियोंको शिक्षित करना हो, तो हमें इसी प्रकारका काम बार-बार करना चाहिए, और तब वे समझ जायेंगे कि इस प्रकारके बहादुर लोगोंको कोई भी सजा नहीं दी जा सकती, उनके साथ तो प्यारसे हाथ मिलाना ही उचित है। यदि हम अधिकारियोंपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें उनके साथ व्यवहार करते समय ईमानदार तथा नम्र होना चाहिए। हम विचारहीन अधिकारियोंके सामने कभी भी न झुकें, बल्कि यदि आवश्यकता पड़े तो प्याज खोदकर निकालें और हजार बार जेल चले जायें।

नवागाँवके मेरे भाइयो, इस अवसरको आप शुभ समझें। आपके कसबेके ५ मित्र शुद्ध तथा निर्भीक हृदयसे जेल गये हैं; उसके लिए हम सब उन्हें बधाई देंगे। मोहनलाल पंड्या उनके साथ हैं, इसलिए शेष लोगोंके बारेमें मुझे कोई चिन्ता नहीं है। उन्होंने ही तो इस संघर्षका नेतृत्व किया, अतएव यह उनके लिए एक स्वर्ण अवसर है। यह पहला अवसर नहीं है जब कि मैंने अपील करनेके खिलाफ सलाह दी है। जब दक्षिण

१. प्याजके खेतके मालिक।

आफ्रिकामें हजारों लोग जेल गये, तब मैंने कभी अपील नहीं की। जब हम तपश्चर्याके रूपमें जेल जाना चाहते हैं, तब कोई अपील नहीं हो सकती। शायद खेड़ाके लोग इतने ऊँचे नहीं उठे। किन्तु यदि वे उठ गये होते तो मैं उन्हें सलाह देता कि वे कोई बचाव न करें और न्यायालयको, जो वह चाहता है, करने दें। जिलेमें दो या तीन मामले और हैं जो विचाराधीन हैं। मैं आपको सलाह देता हूँ कि आप अपना बचाव न करें; बल्कि कैदका कष्ट उठायें। उससे हमें बहुत सीखनेको मिलेगा; और मेरा दृढ़ विश्वास है कि इसी प्रकार कार्य करके हम देशको आगे बढ़ा सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १२–६–१९१८

२९२. पत्र: एल० रॉबर्ट्सनको

बम्बई
जून ९, १९१८

श्री एल० रॉबर्ट्सन
मुख्य सचिव
राजनीतिक विभाग
बम्बई सरकार

प्रिय श्री रॉबर्ट्सन,

खेड़ासे लौटनेपर अभी कल शामको ही नडियादमें आपका तार सं० ४६३०[1] मिला। आपके तारमें दिये गये प्रस्तावका समर्थन करनेका वचन देनेसे पहले मेरी इच्छा है कि मैं उसके बारेमें पूर्ण रूपसे जानकारी प्राप्त कर लूं। मैं योजनाको भी देखना चाहूँगा। मेरा पता है: मारफत, रेवाशंकर जगजीवन, लेबर्नम रोड, चौपाटी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स: ३४१२/१८; तथा बॉम्बे गवर्नमेंट होम डिपार्टमेंट स्पेशल फाइल सं० १७८८; सन् १९१८

१. जून ७, १९१८ के इस तारमें लिखा था: "यदि आप इस मासकी १० तारीखके सम्मेलनमें निम्नलिखित प्रस्तावका समर्थन करनेकी स्वीकृति दें तो परमश्रेष्ठको प्रसन्नता होगी। प्रस्ताव: इस सम्मेलनका विचार है कि इस प्रान्तकी जनशक्ति एवं साधन स्रोतोंका युद्धके निमित्त यथासम्भव पूरा उपयोग और विकास किया जाये। इस उद्देश्यको सामने रखते हुए यह सम्मेलन सिफारिश करता है कि एक युद्धार्थ-निकाय (वॉर पर्पजेज बोर्ड) स्थापित किया जाये, जिसमें सरकारी और गैरसरकारी दोनों प्रकारके सदस्य हों, और जो योजना कार्यसूचीके साथ नत्थी किये स्मृतिपत्रमें दी गई है, उसे स्वीकार और अंगीकार किया जाये। प्रस्ताव समाप्त। उल्लिखित स्मृतिपत्र कल तैयार हो जायेगा और उसे आपके बम्बईवाले पतेपर भेज दिया जायेगा। पतेकी जानकारी कृपया तार द्वारा दीजिए।"

२९३. पत्र : एल० रॉबर्ट्सनको

बम्बई
जून ९, १९१८

प्रिय श्री रॉबर्ट्सन,

मुझे खेद है कि जब आपका पत्र[1] पहुँचा उस समय मैं बाहर था। मुझे लगता है कि प्रस्तावपर मैं न बोलूँ। आशा है; परमश्रेष्ठ इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। देखता हूँ, जनशक्ति समिति (मैन पावर कमेटी) में मेरा नाम भी शामिल है, लेकिन तिलक जैसे व्यक्तियोंके नाम शामिल नहीं हैं। यदि मैं उनके तथा उन-जैसे अन्य समर्थ स्वराज्य-वादियों [होमरूलर्स] के सहयोगका लाभ प्राप्त नहीं कर सका तो मुझे लगता है मेरी उपयोगिता बहुत कम हो जायेगी। जबतक सरकार यह विश्वास करनेके लिए तैयार नहीं है कि वे अपने कर्त्तव्यका निर्वाह करेंगे तबतक सच्चा राष्ट्रव्यापी सहयोग प्राप्त करने तथा एक राष्ट्रीय सेना बनानेकी आशा करना व्यर्थ है। यदि इन नेताओंको जनशक्ति समितिमें शामिल होनेके लिए आमन्त्रित किया गया तो मुझे उसमें काम करनेमें प्रसन्नता होगी। यदि समितिके विस्तारके बारेमें प्रस्ताव किया जा सकता हो तो मैं यह प्रस्ताव पेश करनेको तैयार हूँ कि इनमें से कुछ सज्जनोंको इन समितियोंमें से एक या अधिकमें शामिल किया जाये।

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स: ३४१२/१८; तथा बॉम्बे गवर्नमेंट होम डिपार्टमेंट स्पेशल फाइल, सं० १७८८; सन् १९१८

१. यह पत्र ९ जूनको लिखा गया था। उसका पाठ इस प्रकार है "आज ही आपका पत्र मिला। मैं स्मृतिपत्र (भरतीसे सम्बन्धित उस टिप्पणीको छोड़कर जो प्रेसमें है) के साथ कार्यसूची नत्थी कर रहा हूँ। स्मृतिपत्रमें योजनाके बारेमें विस्तारसे बताया गया है। आप देखेंगे, परमश्रेष्ठने यह मान लिया है कि आप बोलना स्वीकार करेंगे ही। अगर आप वैसा न करना चाहें तो कृपया आप किसी सन्देशवाहक द्वारा इस आशयकी सूचना भेज दें ताकि कार्यसूचीमें आपका नाम न रखा जाय।"

२९४. पत्र : लॉर्ड विलिंग्डनको

बम्बई

जून ११, १९१८

प्रिय लॉर्ड विलिंग्डन,

मुझे विश्वास है, आप इस पत्रका गलत अर्थ नहीं लगायेंगे।

मेरे विचारमें आपने कल सर्वश्री तिलक और केलकरको[१] बोलनेसे रोककर एक गम्भीर भूल की है।[२] आपकी ओरसे ही उन्हें सूचना दी गई थी कि वे आलोचना तो कर सकते हैं; किन्तु कोई संशोधन पेश नहीं कर सकते। आपके रोकनेका अर्थ यह लगाया जायेगा कि आपने देशके एक महान् तथा वर्द्धमान दलका अपमान किया और इस प्रकार लोग नाराज होंगे। आपकी इस कार्रवाईसे कार्यकर्त्ताओंकी स्थिति बड़ी नाजुक और कठिन हो गई है और यदि श्री तिलक सरकार या साम्राज्यके शत्रु हैं तो निस्सन्देह आपने उन्हें इस मार्गपर चलनेके लिए और भी शक्ति प्रदान की है। किन्तु यदि आपने उन्हें और श्री केलकरको अपनी बात कहने दी होती तो वे सम्मेलनसे सन्तुष्ट होकर जाते और यह कहा जा सकता था कि आपने सबको उचित अवसर दिया। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आप अपनी इस भारी भूलके लिए सार्वजनिक रूपसे खेद प्रकट करें या खेद प्रकट करते हुए दोनोंको बुला भेजें और उन्हें सहयोग देनेके लिए आमन्त्रित करें और उनके दृष्टिकोणपर उनसे बातचीत करें? इसमें आपको घाटा कुछ नहीं होगा, बल्कि लाभ ही होगा। इससे आप जनताकी नजरोंमें ऊँचे उठेंगे, आपकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी, जनतासे सहायता प्राप्त करनेकी आपकी क्षमतामें वृद्धि होगी, तथा सम्भवतः स्वराज्यवादी दल [होमरूल पार्टी]को भी आप अपने पक्षमें कर सकेंगे, और देशमें अब जो आन्दोलन निश्चित रूपसे फूट पड़नेको[३] है, उसका अंकुर दब जायेगा।

मैं एक बार फिर आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप इस पत्रका गलत अर्थ नहीं लगायेंगे। इसे लिखनेके पीछे मात्र सद्भावनाकी ही प्रेरणा है।[४]

आपका विश्वस्त मित्र,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स: ३४१२/१८

१. नरसिंह चिन्तामण केलकर; राष्ट्रवादी, राजनीतिक नेता, तिलकके साथी और जीवनचरित्र-लेखक तथा पूनाके **मराठा** के सम्पादक।

२. यह घटना १० जूनको बम्बई प्रान्तीय युद्ध सम्मेलनमें घटी थी। सम्मेलनकी अध्यक्षता लॉर्ड विलिंग्डन कर रहे थे।

३. अन्तमें ऐसा ही हुआ। देखिए "भाषण: बंबईकी सभामें", जून १६, १९१८।

४. गांधीजीको उसी दिन फिररसे निम्नलिखित उत्तर मिला: "परमश्रेष्ठकी इच्छानुसार सूचित करता हूँ कि आपका आजका पत्र मिला। इस पत्रके मजमूनपर उन्हें कुछ आश्चर्य और निराशा हुई। जहाँ वे सार्वजनिक मामलोंपर उचित मतभेदके लिए गुंजाइश रखनेको सदैव तैयार रहते हैं वहाँ वे महामहिम

२९५. पत्र : जे० क्रिररको

बम्बई
जून ११, १९१८

प्रिय श्री क्रिरर,

मेरे सबेरेके पत्रका स्पष्ट और पूर्ण उत्तर[1] देनेके लिए कृपया मेरी ओरसे परमश्रेष्ठको धन्यवाद दे दें। मैं भारत सेवक समाज [सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी] के समारोहमें शामिल होनेके लिए इसी समय पूना जा रहा हूँ। मैं बृहस्पतिवारको लौटूंगा और परमश्रेष्ठकी इस कृपाका कि यदि मैं चाहूँ तो वे मुझे मिलनेका अवसर प्रदान करेंगे, उपयोग करना चाहूँगा। यदि उन्हें उस दिन सुविधा हो तो क्या मुझे समाजकी मारफत पूना सिटीके पतेपर तार द्वारा यह सूचित करनेकी कृपा करेंगे कि मैं (दोपहरके बाद) किस समय उनसे मुलाकात करने आऊँ। इस बीच मैं परमश्रेष्ठको विश्वास दिला दूं कि मैंने जो पत्र लिखा था उसका इरादा यह बताना नहीं था कि मेरे विचारोंमें या मेरे प्रस्तावमें परिवर्तन तो दूर, उसकी सम्भावना भी हो सकती है। मैं हर क्षण उस प्रस्तावको कार्यरूप देनेकी तैयारी कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स : ३४१२/१८

सम्राट्के प्रति राजभक्ति प्रकट करनेवाले प्रस्तावपर कलहपूर्ण राजनीतिक बहसकी अनुमति नहीं दे सकते। साम्राज्यका कोई राजभक्त नागरिक इस संकट-कालमें अपनी सेवाएँ अर्पित करनेके लिए शर्तें लगाये तो यह बात उन्हें और भी नापसन्द है। श्री तिलक और उनके कुछ साथियोंने ऐसी शर्तें रखीं जिनके सम्बन्धमें वे भी जानते हैं और हर आदमी जानता है कि उन्हें परमश्रेष्ठकी सरकार पूरा नहीं कर सकती। इस तरहकी शर्तोंके साथ सहयोग करनेका प्रस्ताव असहयोग करनेसे केवल इस बातमें भिन्न है कि उसमें स्पष्टवादिता नहीं है। परमश्रेष्ठको पूरा विश्वास है कि यदि आप पुनः विचार करेंगे तो आप स्वीकार करेंगे कि उनके ये ही विचार हो सकते हैं और उन्हें निश्चित रूपसे इन्हींपर अमल करना होगा। और स्वयं आपका आचरण इन विचारोंपर परमश्रेष्ठका विश्वास और भी दृढ़ कर देता है : आपने स्वयं वाइसरायको बिना किसी शर्तके अपनी सेवाएँ पेश कीं और यही कारण है कि उस प्रस्तावसे वे इतने प्रसन्न हुए और उसका इतना स्वागत किया। उन्हें पूरा विश्वास है कि यदि कोई नागरिक अपने दायित्वोंके बारेमें कोई भिन्न विचार अथवा परमश्रेष्ठकी सम्मतिमें निम्नतर विचार रखता हो तो उससे प्रेरित होकर आप अपने उस वचनके पालनमें किसी तरह आगा-पीछा नहीं करेंगे, जिसको प्राप्त करके परमश्रेष्ठको इतनी प्रसन्नता हुई थी। मुझे इतना और लिख देनेको कहा गया है कि यदि इस सम्बन्धमें आप परमश्रेष्ठसे फिर मिलना चाहें, तो आपका स्वागत है।"

१. देखिए पिछले शीर्षककी पाद-टिप्पणी ४।

२९६. पत्र: जी० ए० नटेसनको

बम्बई
जून १३, [१९१८]

प्रिय श्री नटेसन,

इस पत्रके पहुँचनेसे पहले मेरा पुत्र देवदास आपके पास पहुँच जायेगा। मैं चाहता हूँ, जबतक वह वहाँ रहे, आपके साथ आपके परिवारके सदस्यके रूपमें रहे। यदि यह आपके लिए असुविधाजनक हो तो आप वैसा कहनेमें संकोच न करेंगे। मैं नहीं चाहता कि वह किसी गुजराती परिवारके साथ रहे। उसे किसी तमिल परिवारके साथ ही रहना चाहिए। उसे तमिल सीखनी है और हिन्दी पढ़ानी है। मैंने उसे भारतीय सेवा संघ [इंडियन सर्विस लीग] की माँगपर भेजा है। मैंने देवदासको कुम्बकोणम् भेजना स्वीकार कर लिया है और उसका अन्तिम लक्ष्य वहीं जाकर रहना है। किन्तु, चूंकि कुम्बकोणम्-के मित्र उसे जुलाईसे पहले बुलानेको तैयार नहीं हैं, इसलिए मैंने सोचा, उसे भारतीय सेवा संघमें कुछ कार्य आरम्भ कर देना चाहिए। मैंने देवदासको ३० रुपये दिये हैं। वहाँ पहुँचनेपर उसके पास १५ रु० बच रहेंगे। यदि उसे कुछ नकदकी आवश्यकता हो तो कृपया वह उसे दे दें और मेरे नाम चढ़ा दें। मैं जानता हूँ, आप ऐसा नहीं करते। लेकिन क्या ही अच्छा हो कि आप देवदाससे ही यह शुभ कार्य शुरू कर दें। आपके इनकार करनेपर मुझे यहाँसे रुपये भेजने पड़ेंगे। ऐसा अवसर आनेपर हरबार मैं आपको ही सारा भार उठाने नहीं दूंगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २२२७) की फोटो-नकलसे।

२९७. भाषण: बम्बईकी सभामें[1]

जून १६, १९१८

इस महत्त्वपूर्ण और विराट् सभाकी अध्यक्षता करनेका निमन्त्रण स्वीकार करते समय मेरे मनमें बहुत-कुछ हिचकिचाहट थी। हम लोग यहाँ, १० जूनको टाउन हॉलमें युद्ध-सम्मेलनकी अध्यक्षता करते हुए परमश्रेष्ठ लॉर्ड विलिंग्डनने जो व्यवहार किया था, उसका

१. यह सभा सन्ध्याके समय बम्बईके केन्द्र गिरगाँवकी शान्ताराम चालमें की गई थी। गांधीजी अध्यक्ष थे। इसमें लगभग १२ हजार व्यक्तियोंने भाग लिया। प्रान्तीय युद्ध-सम्मेलनकी बैठकके अवसरपर होमरूल लीगके नेताओंके सम्बन्धमें गवर्नरने अपने भाषणमें जो रोषोत्पादक बातें कही थीं, यह सभा उसके विरोधमें आयोजित की गई थी। इस सभामें दो प्रस्ताव पास किये गये थे। देखिए अगला शीर्षक। जिस दिन यह सभा बुलाई गई थी, वह दिन 'होमरूल दिवस' के रूपमें मनाया जा रहा था।

सादर विरोध करनेके लिए इकट्ठे हुए हैं। मेरे हृदयमें लॉर्ड विलिंग्डनके प्रति बहुत आदर है। भारतके गवर्नरोंमें शायद वे ही सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। सब जानते हैं कि हमारी आकांक्षाओंके सम्बन्धमें उनके विचार उदार हैं। इसलिए जब मैं इस सभाकी कार्रवाई-का खयाल करता हूँ तब मुझे दुःख होता है। परन्तु मैं अनुभव करता हूँ कि मेरा जो स्पष्ट कर्त्तव्य है वह कितना ही दुःखद क्यों न हो — उसके पालनमें मैं अपने व्यक्तिगत आदर-भावको बाधक नहीं होने दे सकता। मेरा यह कर्त्तव्य साफ है। लॉर्ड विलिंग्डनने सम्मेलन बुलाया था और उसमें होमरूल लीगोंके प्रमुख सदस्योंको सोच-समझकर निमन्त्रित किया था। निमन्त्रित सदस्य एक ओर तो अपमानित होना नहीं चाहते थे और दूसरी ओर गवर्नरको काफी पहले यह बता देना चाहते थे कि वे सम्मेलनमें अपने विचार रखना चाहते हैं। इसीलिए उन्होंने सम्मेलनका कार्यक्रम पूछा था। लॉर्ड विलिंग्डनको दिल्ली युद्ध सम्मेलनका[1] अनुभव भी था। वे जानते थे कि उस समय जो समितियाँ बनाई गई थीं उनमें सर्वप्रथम होमरूल लीगके सदस्योंको अपने विचार प्रकट करनेका अवसर दिया गया था। उन्हें यह भी मालूम था कि कई वक्ताओंने पहली ही बैठकमें राजनैतिक भाषण दिये थे। गवर्नर इन सब बातोंको जानते थे। फिर भी सम्मेलनमें जो-कुछ हुआ उसपर ध्यान दीजिए। सम्मेलनके प्रारम्भिक भाषणमें ही उन्होंने जानबूझकर होमरूल लीगोंपर आक्षेप किया। उन्होंने उनपर निरन्तर अड़ंगा लगानेका दोष लगाया। उन्हें विश्वास नहीं था कि वे सच्चे हृदयसे सहायता देना चाहती हैं। सम्मेलनके मंचसे इस प्रकार आक्षेप करना उचित न था। यदि गवर्नर उन लोगोंका सहयोग नहीं चाहते थे तो उन्हें उनको आमन्त्रित ही न करना चाहिए था। यदि वे उनके सहयोगके इच्छुक थे तो उसका तरीका यह न था कि वे शुरू में ही कह दें कि वे उन लोगोंपर विश्वास नहीं करते। उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए था कि होमरूल लीग एक प्रकारसे बहुत बड़ी सहायता देती रही है। उनके द्वारा संचालित 'क्रॉनिकल' पत्रने लोगोंसे लगातार यही कहा है कि वे जितनी ज्यादा मदद दे सकें उतनी दें। मैं परमश्रेष्ठसे निवेदन करना चाहता हूँ कि लीगोंपर उनका आरोप लगाना एक व्यावहारिक भूल तो थी ही। परन्तु बात यहीं समाप्त नहीं हुई; श्री केलकरके पूछनेपर उन्होंने यह लिखा था :

> **सम्मेलनके सामने आनेवाले प्रस्तावोंको पेश करने, उनका अनुमोदन करने और समर्थन करनेके लिए कुछ वक्ता पहलेसे निमन्त्रित किये जायेंगे। उन वक्ताओंके भाषणोंके पश्चात् खुली बहस प्रारम्भ होगी।**
>
> **जो प्रस्ताव सम्मेलनके सामने रखे जायेंगे उनका मजमून दिल्ली सम्मेलनके प्रस्तावोंको कार्यान्वित करनेकी दृष्टिसे बनाया जायेगा। ये प्रस्ताव केवल दो ही होंगे जिनमें से एकमें सामान्य बातें होंगी और दूसरेमें कुछ निश्चित सुझाव होंगे। कोई औपचारिक संशोधन स्वीकार नहीं किया जायेगा। परन्तु यदि वक्ता वादविवादके दौरान कोई सुझाव देंगे या आलोचना करेंगे तो सरकार उनपर पूरा विचार करेगी।**

यहाँ राजनैतिक चर्चाके बारेमें किसी प्रकारका निषेध नहीं है। श्री तिलक, श्री केलकर तथा अन्य सज्जनोंने वक्ताओंमें अपना-अपना नाम लिखाया और उचित समयपर

१. वाइसरायका युद्ध-सम्मेलन। यह दिल्लीमें २७ से २९ अप्रैल, १९१८ तक हुआ था।

श्री तिलक बोलने खड़े हुए। वे मुश्किलसे तीन वाक्य, जिनमें से दोमें तो राजभक्तिका ही इजहार था, बोल पाये होंगे कि उन्हें यह कहकर रोक दिया गया कि वे राजभक्ति-सम्बन्धी प्रस्तावपर अपने राजनैतिक विचार व्यक्त कर रहे हैं। श्री तिलकने इसका विरोध करते हुए कहा कि राजभक्तिके प्रस्तावमें कुछ जोड़ा गया है और उसके सम्बन्धमें आलोचना करनेका उन्हें अधिकार है; किन्तु उसका कोई फल न निकला। इसके बाद श्री केलकर खड़े हुए। उन्हें भी बोलनेसे रोक दिया गया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि तुरन्त कुछ लोग श्री तिलकके नेतृत्वमें टाउन हॉलसे बाहर निकल आये।[1] मेरी नम्र सम्मतिमें परमश्रेष्ठने यह आदेश देनेमें सख्त भूल की। इतना ही नहीं, वे जिस उद्देश्यको मजबूत बनाने आये थे उन्होंने उसीका अहित किया। उन्होंने अकारण ही श्री तिलक और श्री केलकरका और उनके रूपमें देशकी एक शक्तिशाली संस्थाका अपमान किया। श्री तिलक और उनके अनुयायियोंकी अवहेलना या अवमानना करना सम्भव ही नहीं है। श्री तिलक जनताके आराध्य हैं। हजारों लोगोंपर उनका इतना बड़ा प्रभाव है जितना किसी अन्य नेताका नहीं। उनके लेखे श्री तिलकका आदेश कानून है। मेरा उनसे बहुत मतभेद है; परन्तु यदि मैं इस तथ्यसे इनकार करूँ कि उनके उत्कट देश-प्रेम, उनके महान् त्याग और जनताकी माँगके प्रबल समर्थनकी बदौलत इस देशकी राजनीतिमें उनकी स्थिति अनन्यतम है तो मैं आत्मप्रवंचनाका दोषी होऊँगा। उनका और उनके माध्यमसे लीगोंका जो अपमान किया गया है वह समस्त राष्ट्रका अपमान है। इसलिए, हममें राजनीतिक मतभेद हो चाहे न हो, हम सबका, जिनको ऐसा प्रतीत हुआ है कि श्री तिलक और श्री केलकरसे लॉर्ड विलिंग्डनने अनुचित व्यवहार किया है, यह कर्त्तव्य है कि हम उसका विरोध करें। मैं यह बात स्वीकार कर लेनेको तैयार हूँ कि यदि श्री तिलक उक्त प्रस्तावके समर्थनमें बोलनेके लिए खड़े होते तो बेहतर होता। वैसे, मेरी व्यक्तिगत और विशिष्ट सम्मति — जिसमें शायद अन्य कोई मेरे साथ नहीं है — यह है कि यदि वे अपने गौरवके अनुकूल मौन रहते तो अधिक अच्छा होता। परन्तु मेरे खयालसे, उन्हें राजभक्ति-सम्बन्धी प्रस्तावपर बोलने और उसकी आलोचना करनेका अधिकार था। मैं इस रायसे बिलकुल सहमत नहीं हूँ कि राजभक्ति-सम्बन्धी प्रस्तावमें व्यक्तिगत भावोंको व्यक्त करनेकी गुंजाइश नहीं रहती। जिस राजभक्तिको आलोचनासे बचानेके लिए दीवार बनानेकी आवश्यकता हो वह राजभक्ति उथली होती है। मेरी रायमें सम्राट्से मेरा यह कहना मेरी राजभक्तिके बिलकुल अनुकूल है कि उनके नामसे ऐसे काम किये जा रहे हैं जो नहीं किये जाने चाहिये। इस चेतावनीके कारण मेरी राजभक्तिकी घोषणा और भी वास्तविक लगेगी। मेरा खयाल है कि होमरूल लीगोंने अनेक सेवाएँ की हैं और उनमें से विशेष उल्लेखनीय यह है कि उन्होंने लोगोंमें अपने मनके भाव व्यक्त करनेका साहस पैदा कर दिया है। और मेरे मनमें इस बातके बारेमें जरा भी सन्देह नहीं है कि यदि ये लीगें अपने कर्त्तव्यका पालन पूर्णरूपेण करती चली जायें तो भारतकी राजभक्ति बिलकुल असन्दिग्ध हो जायेगी। क्योंकि होमरूल लीगके

१. तिलकके साथ सर्वश्री गांधी, जिन्ना, बी० जी० हॉर्निमैन ('बॉम्बे क्रॉनिकल'के तत्कालीन सम्पादक), एन० सी० केळकर और आर० पी० करंदीकर भी बाहर आ गये थे।

सच्चे सदस्यके लिए साम्राज्यकी रक्षा हर हालतमें करना ही धार्मिक निष्ठाकी वस्तु होनी चाहिए। इसका कारण यह है कि साम्राज्यकी सुरक्षिततासे ही उसकी आशाएँ पूरी हो सकती हैं। साम्राज्यकी सहायतासे हाथ खींचनेका अर्थ है, राष्ट्रीय आत्मघात करना। हम खुदका नुकसान किये बिना अपने भावी साझेदारको हानि पहुँचानेकी इच्छा कैसे कर सकते हैं?

इसलिए जहाँ मैं होमरूल लीगके सदस्योंकी इस रायसे सहमत हूँ कि हमें परम-श्रेष्ठके अशिष्ट व्यवहारके लिए उनसे माफी मँगवाकर राष्ट्रीय सम्मानकी रक्षा अवश्य करनी चाहिए, वहाँ हम लोगोंका कर्त्तव्य है कि हम युद्धके संचालनमें अधिकारियोंको सहायता देनेका और अधिक उद्योग करें। हमें लॉर्ड विलिंग्डनकी गलतीसे क्रोधमें आकर स्वयं गलत कदम न उठाना चाहिए। यह हमारे अनेक हितोंका प्रश्न है। हम स्वराज्य चाहते हैं, सो भी जल्दीसे-जल्दी। मेरी इच्छा है, मैं अपने देशवासियोंको अपने इन विचारोंको माननेके लिए राजी कर सकूँ कि पढ़े-लिखे लोग सरकारके साथ बिलकुल बिना किसी प्रकारकी शर्तके और सच्चे दिलसे सहयोग करेंगे, तो हम स्वराज्यके बहुत समीप पहुँच जायेंगे। यह कार्य इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपायसे सम्भव नहीं है। मेरे देशवासियोंको यह आशंका है कि हमारी अन्य आशाओंकी तरह स्वराज्यकी आशा भी व्यर्थ सिद्ध होगी। मैं उनकी इस आशंकामें उनसे सहमत नहीं हूँ। यहाँकी सरकारने, और सम्राट्की सरकारने भी, हमारे विश्वासको डिगानेके लिए कुछ न किया हो सो बात नहीं है। लेकिन बात यह है कि मेरा विश्वास उन सरकारोंकी नीतिमें किये गये परिवर्तनपर निर्भर नहीं है; वरन् वह हमारे अपने संघर्षकी ठोस बुनियादपर निर्भर है। निस्सन्देह यह बात सहज ही समझमें आ सकती है कि यदि हम जनशक्ति और साधनोंके विकासको नियन्त्रित कर पाये तो हमारी स्थिति और शक्ति अजेय हो जायेगी, क्योंकि स्वराज्य-प्राप्तिकी अपनी इस विनम्र योजनामें मैं कमसे-कम इन दो विभागोंपर पूर्ण नियन्त्रण पानेकी आकांक्षा रखता हूँ। इसमें सरकार हमारा सहयोग चाहती है। हमें उसकी बातपर विश्वास करना चाहिए। सरकार स्वेच्छासे और ईमानदारीसे दी गयी सहायताको अस्वीकार नहीं कर सकती। हमारे द्वारा रंगरूट दिये जानेका अर्थ है, कानूनन नहीं तो भावनासे, पैसेके लिए लड़ने-वाली सेनाकी जगह राष्ट्रीय सेनाका निर्माण। सरकारी भरती विभागने जो कई हजार रंगरूट भरती किये हैं उनके बारेमें मैंने कभी नहीं माना कि उनकी भरतीका श्रेय हमको है। ये रंगरूट देशभक्तोंकी हैसियतसे भरती नहीं हुए हैं और न वे देशकी या साम्राज्यकी खातिर भरती हुए हैं, बल्कि उनको रुपयेका अथवा अन्य चीजोंका जो लालच दिया गया है उसके कारण भरती हुए हैं। हम जिन रंगरूटोंकी भरती करेंगे वे स्वराज्यके सैनिक होंगे। वे साम्राज्यके लिए लड़ने जायेंगे; परन्तु वे साम्राज्यके लिए इसीलिए लड़ेंगे कि वे साझेदार बननेके इच्छुक हैं। वे सर नारायणकी[1] भाँति यह न सोचेंगे कि अपने घर-बारकी हिफाजतके लिए लड़ना अपमानजनक है; बल्कि वे साम्राज्यकी खातिर लड़कर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी आकांक्षाको पूर्णरूपसे सम्मानजनक मानेंगे।

१. सर नारायण गणेश चन्दावरकर।

आशा है कि परमश्रेष्ठ इस वृहद् सभाकी माँगको स्वीकार करेंगे, परन्तु यदि वे अभी ऐसा न कर पायें, और वाइसराय भी इसमें असफल हों तो कमसे-कम मैं तो आशा करूँगा कि वे खुद अपनी मरजीसे निकट भविष्यमें होमरूल लीगसे क्षमा-याचना कर लेंगे, क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इन लीगोंका मंशा युद्ध-संचालनमें सहयोग देनेका है। और जब वे यह समझ लेंगे तब वे अपनी गलतीको मान लेंगे और चूँकि वे सज्जन हैं, इसलिए सज्जनकी तरह ही क्षमायाचना कर लेंगे। इसमें कठिनाइयाँ जरूर हैं परन्तु उनमें से बहुतसी खुद सरकारकी ही पैदा की हुई हैं। इस प्रकार लोकमतकी उपेक्षा करने और रंगरूट उपलब्ध करनेके सम्बन्धमें, जो हम दोनोंका संयुक्त उद्देश्य है, दी गई हमारी विनम्र सलाहको ठुकरानेके कारण हमारा काम पूरा होना लगभग असम्भव हो गया है; परन्तु हमारा कर्तव्य तो स्पष्ट है। इन तथा अन्य अनेक कठिनाइयोंसे परास्त न होते हुए, हमें आगे बढ़ते जाना चाहिए और व्यवहारतः यह सिद्ध करते हुए कि लोगोंकी इच्छाको सतत ठुकराते रहकर सरकार साम्राज्यको कितनी बड़ी हानि पहुँचा रही है, हमें अपनी सम्मतिके प्रति उसकी उपेक्षा दूर कर देनी चाहिए। इसलिए मैं दूसरे प्रस्तावको जो आपके समक्ष आनेवाला है इस रूपमें नहीं देखता कि उसमें हमारे सहयोगकी शर्तें बताई गयी हैं बल्कि हमारे मार्गकी कठिनाइयोंके विवरणके रूपमें देखता हूँ। हम अपने लक्ष्यको केवल दो ही तरीकोंसे प्राप्त कर सकते हैं — सहयोग प्रदान करके या अड़ंगा-नीतिका अनुसरण करके। ब्रिटिश संविधानमें अपने अधिकारोंको प्राप्त करनेके लिए अड़ंगा-नीतिका अनुसरण करना पूर्णतः न्याय-संगत माना गया है और वह सुपरिचित मार्ग भी है। परन्तु साम्राज्यके वर्तमान संकट-कालमें उसका परिणाम यही होगा कि सरकार, जिसपर युद्ध संचालनका उत्तरदायित्व है, क्रुद्ध हो जायेगी। और सहयोगसे हम सरकारके विरोधका ही अन्त न कर देंगे; बल्कि उससे हमारे हृदयोंमें उस बल और विश्वासका प्रादुर्भाव होगा जिससे हम अवश्य ही अपने लक्ष्य तक पहुँच जायेंगे। हमारे सम्मेलनका यह अवसर अपूर्व अवसर है। हम एक लोकप्रिय गवर्नरसे यह कह रहे हैं कि वह अपनी भूलोंको स्वीकार कर ले और हमारे और अपने बीचके सम्बन्ध सुधार ले। हम यह भी कह रहे हैं कि यदि हमारी शिकायत दूर न की जायेगी तो हम शपथ लेते हैं कि हम भविष्यमें, लॉर्ड विलिंग्डन जिस सार्वजनिक सभाकी अध्यक्षता करेंगे, उसमें शरीक न होंगे। यह एक गम्भीर कदम है, परन्तु मेरे विचारसे, पिछली घटनाओंको देखते हुए उचित कदम है। हमारा कदम न्याययुक्त है यह हमारे भावी व्यवहारसे अर्थात् सहयोगके दृढ़ प्रयास द्वारा गवर्नरके आरोपोंको गलत बतानेसे प्रमाणित होगा।

मैं देखता हूँ कि आज 'होमरूल दिवस' मनाया जा रहा है। होमरूल लीगके सदस्योंके लिए यह दिवस एक गंभीर चिन्तनका दिवस है या होना चाहिए। लॉर्ड विलिंग्डनने होमरूल लीगके सदस्यों और होमरूलरों [होमरूलके आकांक्षियों] के बीच अन्तर बतलाया है। मेरी कल्पनामें ऐसा कोई भी भारतीय नहीं हो सकता जो होमरूलर न हो; परन्तु लाखों ऐसे होंगे — जैसा कि मैं हूँ — जो होमरूल लीगके सदस्य नहीं हैं। यद्यपि मैं किसी होमरूल लीगका सदस्य नहीं हूँ, फिर भी आज इस शुभ दिवसपर मैं होमरूल लीगके असंख्य सदस्योंकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता जिनका

सहयोग मैंने अपने कामके लिए सदा ही माँगा है और जो मुझे उन्मुक्त हृदयसे दिया गया है। मैंने लीगके अनेक ऐसे सदस्य देखे हैं जो मातृभूमिकी खातिर हर प्रकारका त्याग कर सकते हैं। मेरे देखनेमें आया है कि उनमें से कुछ तो बहुत ही योग्य नवयुवक हैं। क्योंकि यह सराहना करते समय मेरे दिमागमें आन्दोलनके अग्रगण्य नेताओंका खयाल नहीं आ रहा है, मैं तो साधारण कोटिके कार्यकर्त्ताओंकी ही, जिनके साथ काम करनेका मुझे शुभ अवसर प्राप्त हुआ है, बात कर रहा हूँ। मैं इस बातकी तसदीक करना चाहता हूँ कि वे ब्रिटेनके विधानके प्रति वफादार हैं और ब्रिटेनके साथ सम्बन्ध बनाये रखना चाहते हैं। हाँ, मैं इस बातको भी प्रमाणित करता हूँ कि वे अंग्रेजोंके पंजेसे अपने देशको स्वतन्त्र करनेके लिए अधीर हो रहे हैं। नौजवानोंमें जो गुण और दोष हुआ करते हैं वे सब उनमें प्रचुर रूपमें मौजूद हैं। वे जिन शब्दोंको काममें लाते हैं वे कभी-कभी तीखे और उग्र भी होते हैं और विधान सभाओंमें बरते जानेवाले शब्दोंकी तरह संतुलित और सौम्य नहीं होते। उनसे उनका तीव्र उत्साह ही प्रकट होता है। हम सयाने और अनुभवी लोग उनके कुछ कामोंपर कभी-कभी आश्चर्य भी करने लग जाते हैं। परन्तु उनके हृदय सबल और शुद्ध हैं। वे कुछ हदतक वातावरणमें से ढोंग और कृत्रिमताको मिटानेमें सफल हुए हैं। उनके सत्य-कथनसे कभी-कभी हमारे हृदयोंको चोट भी पहुँचती है, परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि यद्यपि जिस समय ये लीगें स्थापित की गई थीं उस समय मेरे मनमें उनके प्रति सन्देहके भाव उत्पन्न हुए थे और मैं उनकी उपयोगिताके बारेमें भी शंकायुक्त था, तथापि उन्होंने जो काम कर दिखाया है उसे ध्यानसे देखनेपर मुझे विश्वास हो गया है कि इन लीगोंने एक ऐसी कमी पूरी की है जो बहुत दिनोंसे अनुभव की जा रही थी। उन्होंने लोगोंमें प्रकाश फैलाया है, उनमें आशा और साहस भरा है और अगर अधिकारी उनके इरादोंको गलत न समझ लेते तो मुझे यकीन है कि ये जनशक्तिके इस अतुल भण्डारसे लाभ उठा सके होते। उनसे यह कहनेकी जरूरत नहीं कि लीगोंके सदस्योंको अपने उत्तरदायित्वका भान है और वे उसे निभाते हैं। इन शुद्ध मनोवृत्तिके नौजवानोंसे, जिन्होंने नौकरशाही शासन-तन्त्रमें बड़ी-बड़ी परेशानियोंका सामना किया है इसकी आशा करना व्यर्थ था।

अधिकारी अधिक अनुभवी हैं, इसलिए उनका यह कर्त्तव्य था कि वे अधिक बुद्धिमत्तासे काम लेते और होमरूल लीगके सदस्योंको अपना बना लेते। होमरूल लीगियोंने अब गलती समझ ली है, वह चाहे जिस प्रकारकी हो, इसलिए उन्हें चाहिए कि वे उसे ठीक कर लें। उन्हें चाहिए कि वे नौकरशाहों परसे भी अपना विश्वास न हटायें। विश्वासका अभाव दुर्बलताका सूचक है। नौकरशाही खराब है, उसका अन्त निश्चित है। परन्तु उसमें काम करनेवाले सब अधिकारी खराब नहीं हैं। उनके सुधारनेमें हमारी विजय है। जिस प्रकार उनके सामने जाकर गिड़गिड़ाना, 'जो हुक्म' कहना और उनके चरणोंमें गिरना गलत है उसी प्रकार उन्हें लज्जित या अपमानित करना भी गलत है। हमें नौकरशाहीके हथकंडोंका मुकाबला अत्यन्त ईमानदारी और निडरतासे करना चाहिए। हम बदीके बदले नेकी करें — यह बात देवताओंके लिए नहीं, बल्कि मनुष्योंके लिए कही गयी थी। सबसे अधिक मर्दानगीका रास्ता तो यह है कि हम ईमानदारीकी सीधी और तंग पगडंडीसे तिलभर भी इधर-उधर न हों। यदि होमरूल लीगके सदस्योंमें मर्दा-

नगी नहीं है तो वे बेकार हैं। आगामी वर्ष उनकी परीक्षाका वर्ष है। इसमें वे रचनात्मक कार्यमें वैसी ही योग्यता और क्षमता दिखायें जैसी वे ध्वंसात्मक-कार्यमें दिखाते रहे हैं। और तब इस दिनको भारतके कोने-कोनेमें सभी मनायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १७-६-१९१८

२९८. पत्र : शंकरलाल बैंकरको

जून १६, १९१८

[भाईश्री शंकरलाल,]

आपका पत्र मिला। मैं यह हरगिज नहीं कहता कि आप लीगको[1] छोड़ दें और मेरे साथ काम करें। बल्कि यह चाहता हूँ कि आप लीगमें रहें और लीगकी नीतिका ठीक दिशामें संचालन भी करें। आपको तो जो स्थिति है, वही ठीक मालूम होती है। मुझे अब वह भयानक प्रतीत होती है। यदि लीग रंगरूट भरती करनेके काममें भाग न लेगी तो उसका यह आचरण बम्बईके प्रस्तावका विरोध करनेके समान होगा। यदि लीगके सब सदस्य यह मानते हों कि लीगमें रहकर भरतीके काममें भाग नहीं लिया जा सकता, तो बम्बईके प्रस्तावको[2] स्वीकार करना और मुझे अध्यक्ष पदपर बिठाना उचित नहीं था। मुझे सहन करके लीगने यह तो बता ही दिया कि जिसे भरतीका काम करना हो, वह कर सकता है।

मेरा विश्वास मात्र अंग्रेज जातिमें ही हो, यह बात नहीं है, बल्कि मानव-जातिके स्वभावमें है। प्रत्येक मनुष्यमें कुछ-न-कुछ सचाईका अंश रहता ही है। उसको पोषण देना हमारा काम है। ऐसा करते हुए वह हमें धोखा दे, तो इसका बुरा परिणाम वही भोगेगा, हम नहीं।

यह तो निश्चित समझें कि लोगोंकी स्थिति वैसी नहीं है, जैसी आप समझते हैं। जब मिलेंगे, तब अधिक स्पष्टीकरण करूँगा। मैं मानता हूँ कि भारतमें लीगके सदस्योंका कर्त्तव्य यह है कि वे इस कार्यमें जुट जायें। इसके साथ-साथ आप सरकारके अनुचित कार्योंके बारेमें जो आन्दोलन करना चाहें, करें। ऐसा करेंगे, तो दोनों कार्य सिद्ध होंगे। यदि होमरूल लीग भरतीके सम्बन्धमें कुछ भी न करेगी तो उसे भारी धक्का लगेगा . . .।[3]

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. होमरूल लीग।
२. देखिए अगला शीर्षक।
३. मूलमें यहाँ कुछ शब्द छूटे हुए हैं।

२९९. तार : ब्रिटेनके प्रधान मन्त्रीको[1]

बम्बई
[जून १६, १९१८ के बाद]

गत १६ जूनको बम्बईकी होमरूल लीगके तत्त्वावधानमें आयोजित सार्वजनिक सभामें स्वीकृत निम्न प्रस्ताव आपकी सेवामें भेज रहा हूँ।

पहला प्रस्ताव

बम्बईके गवर्नरने होमरूल लीगके सदस्योंकी साम्राज्यकी सहायता करनेकी इच्छा और नेकनीयतीपर शक करके और इस प्रकार सम्राट्के प्रति उनकी वफादारीपर भी शक करके उसके प्रायः सभी सदस्योंका जो सार्वजनिक अपमान किया है, बम्बईके नागरिकोंकी सभा उसका विरोध करती है। बम्बईके गवर्नर महोदयने होमरूल लीगके नेताओंको युद्ध-सम्मेलनमें बुलाकर उनके साथ दुर्व्यवहार किया है। उन्होंने सम्मेलनको प्रारम्भ करते समय दिये गये अपने भाषणमें होमरूल लीगके नेताओंपर आक्षेप किये और उन्हें अपनी स्थिति स्पष्ट करनेका अवसर भी नहीं दिया। यह सभा उनके इस व्यवहारका विरोध विशेष रूपसे करती है। यह सभा परमश्रेष्ठ गवर्नरसे यह माँग करती है कि उन्होंने होमरूल लीगों तथा उनके सदस्योंपर जो आक्षेप किये हैं वे उन्हें वापस लें और अपने व्यवहारके लिए क्षमा-याचना करें। यदि वे ऐसा न करें तो यह सभा परमश्रेष्ठ वाइसरायसे अपील करती है कि वे बम्बईके गर्वनरके वक्तव्यका खण्डन करें। यह सभा यह भी निवेदन करती है कि इस प्रकारकी उत्तेजनात्मक भाषाका प्रयोग करनेसे सरकारको दिये जानेवाले हार्दिक सहयोगमें बाधा पड़नेकी सम्भावना है; अतः जबतक वे शब्द वापस नहीं लिए जायेंगे तबतक होमरूल लीगके सदस्य युद्ध-सम्मेलनकी ऐसी किसी भी सभामें भाग न ले सकेंगे जिसकी अध्यक्षता परमश्रेष्ठ करेंगे, परन्तु वे अपने देश और साम्राज्यकी सहायता इस संकटमय कालमें करते हुए अपने कर्त्तव्यका पालन अवश्य करेंगे।

दूसरा प्रस्ताव

इस सभाका खयाल है कि सरकारने इस युद्धके लिए भारतमें सामान और सिपाही जुटानेके उद्देश्यसे जिन तरीकोंको अपनाया है और जो कदम उठाये हैं वे ऐसे नहीं हैं कि उनसे अधिकसे-अधिक लाभ उठाया जा सके। इसका एक कारण यह है कि सरकार इस महान्

१. जून १६ की सार्वजनिक सभामें पास किये गये प्रस्तावोंकी सूचना भारत-मन्त्री और वाइसरायको भी दी गई थी।

राष्ट्रीय कार्यको सम्पादित करनेमें कदम-कदमपर जनताके प्रति अविश्वास दिखा रही है। दूसरा कारण यह है कि सम्बन्धित विभागोंके अधिकारियोंको युद्धके संचालनमें लोगोंका सहयोग समानताकी भावनासे प्राप्त नहीं हो सका है। और तीसरे, शस्त्र कानूनमें ऐसा आवश्यक संशोधन करनेमें अत्यधिक विलम्ब हो रहा है — जिससे अगर आम लोग, चाहें तो, हथियार ले सकें और रख सकें। चौथा कारण यह है कि अभी तक भारतीय फौजमें कमीशन प्राप्त अफसरोंकी जगहोंपर भारतीयोंको लेनेकी अनुमति नहीं है और प्रजाति-भेद तथा पक्षपात पूर्ववत् बने हुए हैं। पाँचवाँ कारण यह है कि दिल्लीमें साम्राज्यीय युद्ध-सम्मेलनके प्रस्तावोंमें भारतीयोंको मौजूदा फौजी कॉलेजोंमें दाखिल करनेकी तथा उनके लिए नये कॉलेज अविलम्ब खोलनेकी जो सिफारिश की थी उसको कार्यान्वित नहीं किया गया है। इस सभाकी रायमें स्थिति यह है कि यद्यपि प्रधान मन्त्री महोदयने फौजमें भरती होनेके सम्बन्धमें जो आमन्त्रण प्रकाशित किया है उसके उत्तरमें प्रत्येक राजभक्त भारतीय सच्चे हृदयसे भरती होनेको तैयार बैठा है, तथापि भारतीय नेताओंकी समझमें भरतीके सम्बन्धमें आम लोगोंका पूरा और दिली सहयोग पाना तबतक कठिन है, जबतक भारत सरकार उपर्युक्त दोषोंको दूर नहीं करती और इस प्रकार अपनी वर्तमान नीतिको नहीं बदलती, उनकी यह धारणा बदल नहीं सकती।

मो० क० गांधी
सभाध्यक्ष

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २–१०–१९१८

३००. भाषण : नडियादमें[1]

जून १७, १९१८

गांधीजीने अपने भाषणमें यह कहा कि किसानोंका सबसे पहला और महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य सरकारकी मदद करना है। जर्मनोंको पराजित करनेके लिए पूरी सहायता दी जानी चाहिए। अंग्रेज जर्मनोंसे अच्छे हैं। हम अंग्रेजोंके निकट सम्पर्कमें आये हैं और दोनों एक-दूसरेको अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए अंग्रेजोंकी सहायता करना हमारा सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। कुछ लोगोंका कहना है कि हमें उनकी सहायता उसी सूरतमें करनी चाहिए जब वे

१. खेड़ा जिलेके जिलाधीशने यह विवरण सरकारके पास भेजते हुए लिखा था — "फौजी भरतीके बारेमें १७ जूनको नडियादमें श्री गांधीने अपने समीपवर्ती अनुयायियोंकी एक छोटी-सी सभा की थी। . . . इसमें लगभग ५० आदमी मौजूद थे।"

हमें स्वराज्य दे दें। मेरा विश्वास तो यह है कि जबतक हम सैनिक परम्पराओंको नहीं अपनाते तबतक हम देशको नहीं बचा सकते। हमें कुछ समय बीतनेपर स्वराज्य मिल ही जायेगा। वह हमारी सहायताका निश्चित परिणाम होगा। लड़ाईके मोर्चोंपर काम करनेके लिए भारतसे एक वर्षमें पाँच लाख आदमी चाहिए और अगर हम इतने आदमी फौजमें न दे पाये तो सरकार उन्हें स्वयं भरती करेगी और तब यह सेना सरकारी सेना कही जायेगी। परन्तु अगर हमने ही इतने आदमी दे दिये तो वह राष्ट्रीय सेना कही जायेगी। सेनामें आज जो नियम और उपनियम चालू हैं वे ही हमारे द्वारा भरती की गई सेनापर भी लागू होंगे। सैनिक शक्तिके अभावमें स्वराज्य व्यर्थ होगा और उसे प्राप्त करनेका यही सर्वोत्तम अवसर है। इसलिए हमें उसे हाथसे नहीं जाने देना चाहिए। मैंने इस सम्बन्धमें श्री तिलक, श्रीमती एनी बेसेंट, पं० मदनमोहन मालवीय तथा पं० मोतीलाल नेहरूसे बातचीत की है। उन सबकी यह एक राय है। वे इस विचारको अच्छा अवश्य मानते हैं, परन्तु उन्हें अन्देशा है कि किसान इस विचारको स्वीकार न करेंगे। मैं किसानोंमें विश्वास रखता हूँ। प्लेग और हैजेसे हजारों आदमी मर गये। फिर लड़ाईमें मरना कोई कठिन कार्य नहीं है। अगर लोग आगे आयें तो मैं लड़ाईमें जानेके लिए तैयार हूँ। मैं होमरूल लीगका सदस्य नहीं हूँ। सैनिक शिक्षा पाना स्वराज्यकी दिशामें एक सहायक कदम है, इसलिए होमरूल लीगके प्रत्येक सदस्यको फौजमें भरती होना चाहिए। यह अफवाह फैली हुई है कि मोर्चोंपर भारतीय सैनिक अगली पंक्तिमें रखे जाते हैं और वे मारे जाते हैं। मैं इस अफवाहमें विश्वास नहीं करता। अंग्रेजोंकी कौम लड़नेवाली कौम है, इसलिए मैं यह नहीं मान सकता कि वे दूसरोंको आगे रखकर स्वयं पीछेकी पंक्तियोंमें रहेंगे। किन्तु अगर कभी ऐसा होगा तो मैं स्वयं आपत्ति करूँगा। और जबतक मैं मार न डाला जाऊँ तबतक अपने सब लोगोंको इस तरह न मरने दूँगा। मैं राष्ट्रीय सेनामें भरती होनेकी बात समस्त देशके सामने रखनेसे पहले खेड़ा जिलेके लोगोंसे, जो सत्याग्रही बने हैं, अपील करना चाहता हूँ। नडियाद खेड़ा जिलेका महत्त्वपूर्ण कसबा है; इसीलिए मैंने आप लोगोंको खानगी तौरपर यहाँ बुलाया है। यदि आप लोग सहमत होंगे तो काम हाथमें ले लिया जायेगा। इसलिए आप खूब सोच-विचार लें और उसके बाद फौजमें भरती हों। अगर मुझे विश्वास हो गया तो दो या तीन दिनोंमें एक सार्वजनिक सभा बुलाई जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे गवर्नमेंट रेकर्ड्स, १९१८

३०१. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती
जेठ सुदी १०, [जून १९, १९१८]

भाईश्री जमनालालजी,

आपके आदमीको टिकटके पैसे मैंने आग्रहपूर्वक चुकाये हैं। अगर मैं ऐसा न करूँ तो आपको बिना संकोचके दूसरे काम न सौंप सकूँ।

यहाँ आकर इमारती कामका हिसाब जाँचा। मेरे पास २८,००० रुपये आये हैं। ४०,००० रुपये खर्च हो गये। अतिरिक्त खर्च *आश्रमके दूसरे कामोंके लिए जो रकम* मिली उसमें से हुआ है। मेरी असली जरूरत अभी तो मकान आदि बनानेके लिए [रुपयों की] है। एक लाखका खर्च है। इसके लिए कुछ भेजनेकी आपकी इच्छा हो तो भेजिएगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च :]

मेरी यात्राका खर्चा उठानेके बजाय खास जरूरत यह है।

मोहनदास

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती प्रति (जी० एन० २१९९) की फोटो-नकलसे।

३०२. भाषण : नडियादमें[1]

जून २१, १९१८

भाइयो और बहनो,

मुझे आज यह देखकर खेद होता है कि यहाँ बहनें अधिक नहीं आई हैं। मुझे जो कहना है वह भाइयों और बहनों दोनोंसे कहना है। मैं उपदेश देने नहीं आया; लेकिन मुझे जो बात अच्छी लगती है उसकी सलाह देने आया हूँ। इस सम्बन्धमें नडियादकी यह सभा गुजरातमें पहली सभा है। सत्याग्रहके सम्बन्धमें भी पहली सभा नडियादमें ही हुई थी। सत्याग्रहके इस संघर्षमें हमने बहुत अधिक शक्ति और सहनशीलता दिखाई है। मैं इस संघर्षसे लोगोंके निकट सम्पर्कमें आया हूँ। इससे मुझे ऐसा लगा कि मैं जो बात समस्त भारतसे कहना चाहता हूँ, उसे मुझे यहींसे आरम्भ करना चाहिए।

हम सरकारसे भिड़े, हमने उससे कड़वी और तीखी बातें कहीं, यह सब उचित था। लेकिन हम वैसा करनेके अधिकारी थे या नहीं, यह बतानेका अवसर हमें अब

१. सेनामें भरती करानेके सिलसिलेमें यह सार्वजनिक सभा मुगल कोटीवाडी, गुजरातमें हुई थी। इसमें लगभग एक हजार लोगोंने भाग लिया था।

मिला है। सत्याग्रहमें वैर-भावके लिए स्थान ही नहीं है। हमारे संघर्षमें यह भाव न था, इस बातका मुझे विश्वास है। आइए, अब हम इस बातपर विचार करें कि सरकारसे हर परिस्थितिमें सम्बन्ध बनाये रखना हमारे लिए वांछनीय है अथवा नहीं। मैंने अपने इस संघर्षके दौरान तथा अन्य अवसरोंपर सरकारके दोषोंका अच्छी तरहसे निरीक्षण किया है, और सरकारको उनसे अवगत भी कराया है; लेकिन भारतमें मुझे सरकारके गुण बतानेका अवसर अवश्य नहीं मिला। इसके साथ निकट सम्पर्कमें आनेपर मैंने इतना तो सीखा है कि हमारा साम्राज्यमें परतन्त्रताकी स्थितिमें बने रहना वांछनीय नहीं है। अंग्रेजोंकी यह विशेषता है कि वे परतन्त्र जातियोंके साथ भारवाही पशुओंका-सा व्यवहार करते हैं। लाभ तभी है जब हम उनके साथ उनके मित्र अथवा साझेदारके रूपमें रह सकें। ये लोग साझेदारोंका मान बनाये रखनेमें और उनके प्रति वफादार रहनेमें पक्के रहते हैं। अंग्रेज लोगोंमें कुछ सद्‌गुण हैं। वे न्यायप्रिय हैं और उन्होंने पीड़ितोंकी रक्षा भी की है। उन्हें वैयक्तिक स्वतन्त्रता बहुत प्रिय है। तब फिर हमें ऐसे लोगोंसे बिलकुल ही सम्बन्ध क्यों तोड़ देना चाहिए। यदि ऐसा करना भी चाहें तो भी संसारमें अपनी सब इच्छाएँ तो कोई पूरी नहीं कर पाता। मित्रोंकी जरूरत सभीको होती है। जापान, अमेरिका और इंग्लैण्डको भी किसी-न-किसीसे मित्रता रखनी ही पड़ती है। सभी देशोंके लोग अपने-अपने स्वभावके अनुकूल लोगोंसे सम्बन्ध रखते हैं। भारतीयोंकी भी यही स्थिति है। हम स्वतन्त्रताकी कामना करते हैं, वह भी इसी रूपमें। इस सम्बन्धमें आस्ट्रेलिया और कैनेडा-का उदाहरण हमारे सामने है। हम भी इन्हींके समान दर्जा चाहते हैं। वे सुरक्षाका उप-भोग भी करते हैं और स्वयं रक्षा-व्यवस्थामें योग भी देते हैं। हम भी ऐसा ही चाहते हैं। अगर यह स्थिति निश्चित रूपसे प्राप्तव्य हो तो हमें उस दिशामें कदम उठाना चाहिए। यदि आप ऐसा मानते हों कि हमारे लिए अंग्रेजोंसे सम्बन्ध रखना दुःखदायी है, तो मेरी सलाह बेकार होगी। इतना ही नहीं, वह अपमानजनक ही होगी। लेकिन यदि हम अंग्रेजोंके साथ बराबरीके साझेदारके रूपमें रहना चाहते हों तो मैं अपनी सलाहको अमूल्य मानता हूँ। भारत अपंग है। यदि अंग्रेज हमें छोड़ जायें तो हम एक-दूसरेसे अपना बचाव नहीं कर सकते हैं। उपद्रवी जातियोंसे हम अपनी रक्षा नहीं कर सकते। कोई विदेशी आक्रमणकारी आये तो हम उससे अपनी रक्षा करने लायक नहीं हैं। यदि कोई कहे कि ऐसी भयावह स्थितिके लिए अंग्रेज सरकार उत्तरदायी है तो यह बात सच है। इस जातिमें ऐसी बहुत-सी त्रुटियाँ हैं; लेकिन उसके गुणोंका लाभ उठाकर अपनी उन्नति करना हमारा कर्त्तव्य है।

भारत इतना दुर्दशाग्रस्त है कि वह दूसरोंकी सहायताके बिना आगे नहीं बढ़ सकता। उसकी इस पंगुताको दूर करना चाहिए। हमें देशकी रक्षा करने की सत्ता दी जानी चाहिए ताकि हम अपने स्त्री-पुरुषोंकी हिफाजत कर सकें। हम जबतक अपनी रक्षा करनेमें समर्थ न हों तबतक स्वराज्यके योग्य नहीं हो सकते। भारतकी रक्षा सदा अंग्रेज करें, यही उसकी पंगुता है। हमें इस पंगुताको दूर करनेका पवित्र कार्य सबसे पहले करना चाहिए।

बराबरीके लोग ही साझेदार हो सकते हैं। बिल्ली और चूहेमें साझेदारी नहीं होती। अंग्रेज हाथी हैं और हम चींटी, जबतक हमारी यह भावना दूर नहीं होती तबतक हमारे लिए स्वराज्यका कोई अर्थ नहीं हो सकता। हमें कोई भी बलवान मनुष्य डरा सकता है। यदि कोई पठान यहाँ आकर लाठी चलाने लगे तो हम सब भाग जायेंगे। यदि रेलके एक डिब्बेमें बहुतसे लोग बैठे होते हैं और उनमें एक झगड़ालू काबुली आ जाता है तो वह अन्य सबको उठा देता है और जहाँ जगह नहीं होती वहाँ भी बैठनेकी जगह कर लेता है। इतना ही नहीं वह अकेला ही चार व्यक्तियोंकी जगह घेरकर बैठता है और उसके आगे किसीकी बोलने तककी हिम्मत नहीं होती।

ऐसी भयकी स्थितिमें हम अंग्रेजोंके साथ किस तरह बराबरी कर सकते हैं? यदि मुझे कोई ढेढ मिलता है, मैं उसे अपने पास बिठाता हूँ और कुछ खानेके लिए भी कहता हूँ तो वह काँपता है। जब उसमें इतना मनोबल आयेगा कि वह मुझसे डरना बन्द कर देगा तब ही वह मेरे समान होगा। जबतक ऐसा न हो तबतक, हम दोनों समान हैं — यह कहना ऐसा ही है जैसे जलेपर नमक छिड़कना। साम्राज्यमें हमारी दशा भंगीकी है। अब इससे छुटकारा पानेके दो रास्ते हो सकते हैं — मैत्री-भावसे अथवा वैर-भावसे। यदि हम वैर-भावसे, इस स्थितिसे छुटकारा पाना चाहते हैं तो हमें उनको एक भी मनुष्य अथवा एक भी पाईकी सहायता नहीं देनी चाहिए। इतना ही नहीं, यदि अन्य लोग दे रहे हों तो हमें उन्हें भी रोकना चाहिए। हमें मित्र राष्ट्रोंकी पराजयकी कामना करनी चाहिये और अंग्रेजोंको लड़कर बाहर निकाल देना चाहिए। ऐसा करना अभीष्ट हो तो भी यह असम्भव है। यदि हम साम्राज्यवादी सरकारकी मदद नहीं कर रहे हैं तो भी देशके अन्य सब वर्ग उसकी मदद कर रहे हैं। हममें सरकारके अथवा अन्य किसीके विरुद्ध लड़नेकी शक्ति नहीं है। सरकार भारतसे दस लाख लोग और करोड़ों रुपयेकी सहायता लेनेमें समर्थ हो गई है। यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ती है कि यदि हम अंग्रेजोंको वैर-भावसे, भारतसे खदेड़कर अपनी भंगीकी स्थितिसे मुक्त होना चाहते हों तो भी फिलहाल, और जहाँतक हमारी नजर पहुँच सकती है वहाँतक, एक लम्बे अर्से तक, शरीर-बलका प्रयोग करके और अंग्रेजोंसे युद्ध द्वारा ऐसा करना असम्भव है। हम इस प्रकार अंग्रेजोंसे सम्बन्ध नहीं तोड़ सकते।

इसलिए हम इस अधम स्थितिसे मैत्री-भावके द्वारा ही छुटकारा पा सकते हैं। और वह इस समय सरकारको पूरी शक्तिसे सहायता देनेपर ही सम्भव है। हम साम्राज्यके साझेदार होना चाहते हैं; किन्तु यदि साम्राज्य न हो तो साझेदार किसके साथ होंगे? हमारी आशाएँ साम्राज्यके अस्तित्वमें छिपी हुई हैं। हमें साम्राज्यके दोषोंके विरुद्ध अवश्य लड़ना चाहिए। भाई भाईके दोषोंके विरुद्ध लड़ता है। यदि एक भाई दूसरे भाईका हक छीननेका प्रयत्न करे तो दूसरा उसका विरोध करेगा। लेकिन जब पहले भाईपर आपत्ति आती है तो दूसरा भाई उसकी भरसक मदद करके भ्रातृ-भावका परिचय देता है और पुराने वैर-भावको भी भुला देता है। हम अंग्रेजोंके प्रति ऐसा व्यवहार कर ही नहीं सकते, यह माननेका कोई कारण नहीं है। हम साम्राज्यके अत्याचारोंका निस्सन्देह विरोध कर सकते हैं। यदि आज ही कोई नया अत्याचार हो तो हम उसका विरोध

आज ही कर सकते हैं। किन्तु साथ ही उसके ऊपर जो संकट आया है उसके निवारणार्थ सहायता करनेमें हमें तनिक भी कसर नहीं रखनी चाहिए।

और फिर साम्राज्यकी मदद करते हुए हम सैनिक अनुशासन सीखेंगे। उससे हमें सैनिक-अनुभव मिलेगा और हममें अपना बचाव करनेकी शक्ति आयेगी। यदि साम्राज्य हमसे विश्वासघात करे तो हम इस प्राप्त शक्तिकी सहायतासे उसका विरोध कर सकते हैं। साम्राज्यके अधिकारी इस बातको जानते हैं। इसलिए, हमें सेनामें भरती करनेसे उनकी नेकनीयती साबित होती है। हमारा इस समय सेना तैयार करना भविष्यमें खतरोंके विरुद्ध बीमा करानेके समान है।

अंग्रेजोंमें राज्य करनेकी शक्ति है, यह केवल उनके पशुबलके ही कारण नहीं है। उनमें कला है, कौशल है, दूरदर्शिता है, चतुराई है और बुद्धिमत्ता है। उन्हें लोगोंसे यथायोग्य व्यवहार करना आता है। वे जानते हैं कि हम स्वराज्य मिलनेकी आशासे मदद करते हैं। उनके दृष्टिकोणमें और हममें से कुछ लोगोंके दृष्टिकोणमें यह भेद है। हम कहते हैं, हमें स्वराज्य दे दो तब हम लड़ेंगे। उनका कहना है, हम किसीके दबावमें नहीं आते। तुम मदद करो और तुम्हें स्वराज्य मिल जायेगा। हमारा इतिहास देखो। बोअरोंको स्वराज्य मिला क्योंकि वे हमसे लड़नेके योग्य थे। तुम भी लड़नेके योग्य बनो। तब तुमको भी स्वराज्य मिल जायेगा।

हमारी सच्ची शक्ति सैनिक-शक्तिपर ही निर्भर है। इस समय जो भारतीय लड़ रहे हैं, वे हमारी शक्ति नहीं बढ़ाते, सरकारकी शक्ति बढ़ाते हैं। यदि स्वराज्यके अभिलाषी हम लोग उनके समान सैनिक बन जायेंगे और मृत्युका भय त्याग देंगे तो हम राष्ट्रीय सेनाके सैनिक होंगे। ऐसा होनेपर सरकार और हमारे बीच ऊँच-नीचका भेद नहीं रहेगा।

श्री मॉण्टेग्युकी योजना थोड़े ही दिनोंमें प्रकाशित कर दी जायेगी।[1] वह योजना या तो हमारी पसन्दकी होगी; और यदि पसन्दकी न होगी तो हम उसमें संशोधन-परिवर्धन कराना चाहेंगे। योजना कैसी होगी या हम उसमें कैसे संशोधन-परिवर्धन करा सकेंगे, यह सब हमारे ऊपर निर्भर करता है। ऐसे समयमें यदि यह खबर इंग्लैंड पहुँचेगी कि सारा भारत सेनामें भरती होनेके लिए तैयार है तो ब्रिटिश लोकसभा इसका स्वागत करेगी और हमारी जो माँगें उचित होंगी उन्हें पूरा करेगी, और यदि वह पूरा न भी करे तो भी क्या होता है? उसपर ब्रिटिश लोकसभाको पछताना पड़ेगा। युद्धके लिए सन्नद्ध भारतीय अपनी स्वतन्त्रता एक क्षणमें प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन सरकार इतनी मूर्ख नहीं है। अंग्रेज वीर जातिके लोग हैं। वे वीरताको पहचानेंगे। हम अपनी सोई हुई वीरताको जाग्रत करें तो सब-कुछ आज ही प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए मेरा आप सबसे अनुरोध है कि समस्त संशयोंको छोड़कर आप सेनामें भरती हों। मुझे इस बातका

१. संवैधानिक सुधारोंपर मॉण्टेग्यु-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट जुलाई ९, १९१८को प्रकाशित हुई थी।

पक्का विश्वास है, इस समय 'होमरूल लीग' आन्दोलनका प्रथम और अन्तिम चरण यही होना चाहिए।[1]

[गुजरातीसे]

गुजराती, ७-७-१९१८

३०३. सैनिक-भरतीकी अपील

पत्रिका — १[2]

नडियाद
जून २२, १९१८

भाइयो और बहनो,

आपने अभी-अभी सत्याग्रहकी भारी लड़ाई समाप्त की है। उसमें आपकी विजय हुई। इस लड़ाईमें आपने ऐसे शौर्य, चातुरी और अन्य गुणोंका परिचय दिया कि मैं आपको देशके लिए इससे भी ज्यादा महत्त्वके काममें लगनेकी सलाह देने और आग्रह करनेकी हिम्मत करता हूँ।

आपने यह दिखा दिया है कि सरकारका विनयपूर्वक विरोध कैसे किया जा सकता है और विरोध करते हुए भी उसकी सम्मान-रक्षा कैसे की जा सकती है एवं कैसे स्वयं प्रतिष्ठा प्राप्त की जा सकती है। अब मैं आपके सम्मुख यह दिखानेका अवसर प्रस्तुत करता हूँ कि ऐसी भारी लड़ाई लड़नेपर भी आपके मनमें सरकारके प्रति तनिक भी कटुता नहीं है।

आप सब स्वराज्यवादी हैं और आपमें से कुछ 'होमरूल लीग'के सदस्य हैं। होमरूलका एक अर्थ यह है कि हम साम्राज्यमें रहकर 'साम्राज्यके हिस्सेदार बनें'। आज हम लोग पराधीन हैं। आज हमें अंग्रेजोंके बराबर हक हासिल नहीं हैं। कैनेडा, दक्षिण आफ्रिका और आस्ट्रेलिया जैसे इंग्लैंडके हिस्सेदार माने जाते हैं, वैसे हिस्सेदार हम नहीं हैं। हमारा देश तो पराधीन माना जाता है। हम अंग्रेजों जैसे ही हक चाहते हैं, दक्षिण आफ्रिका वगैरा उपनिवेशोंके बराबरके बनना चाहते हैं और कामना करते हैं कि ऐसा समय आये जब हम वाइसराय तकका पद ले सकें। ऐसी स्थिति लानेके लिए हममें अपनी रक्षा करने अर्थात् शस्त्र उठाकर लड़नेकी शक्ति आनी चाहिए। जबतक हमारी रक्षा केवल अंग्रेजोंपर निर्भर है और जबतक हम सिपाही-वर्गसे डरते हैं, तबतक हम अंग्रेजोंकी बराबरीके कहला ही नहीं सकते। इसलिए हमें हथियार चलाना सीखकर

१. १९१८ के बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्सके एक खरीतेके अनुसार गांधीजीने भाषणके अन्तमें कहा: "सभाकी कोई रिपोर्ट समाचारपत्रोंको तबतक भेजनेकी आवश्यकता नहीं है", जबतक वे रंगरूट प्राप्त करनेमें सफल नहीं हो जाते।

२. सम्भव है गांधीजीने उसके पाठका उपयोग अपने किसी भाषणमें भी किया हो। इसकी छपी हुई प्रतियाँ विस्तृत रूपसे बाँटी गई और समाचारपत्रोंमें इसका अंग्रेजी रूपान्तर भी प्रकाशित हुआ था।

अपनी रक्षा करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। 'हथियार चलाना बहुत जल्दी सीखना हो तो सेनामें भरती होना हमारा कर्त्तव्य है'।

मर्द और नामर्दमें मित्रता नहीं हो सकती। हम नामर्द माने जाते हैं। अगर हम नामर्दोंमें नहीं जाना चाहते, तो हमें हथियार चलाना सीखना जरूरी है।

यह निश्चय है कि हमें साम्राज्यमें हिस्सेदार बनना है। तब हमें चाहे कितना ही दुःख उठाना पड़े, प्राण भी देने पड़ें, फिर भी हमें साम्राज्यका बचाव करना चाहिए। अगर साम्राज्यका नाश हो जाता है तो उसके साथ हमारी महती आशाएँ भी नष्ट हो जाती हैं।

'इसलिए स्वराज्य लेनेका सबसे सरल और सबसे सीधा उपाय साम्राज्यके बचावमें भाग लेना है'। हम बहुत रुपया दे सकें, इतनी ताकत हममें नहीं है। फिर जीत रुपयेसे ही मिल जाये यह सम्भव नहीं है। जीत सैन्यबलसे ही मिलनी सम्भव है। भारत अपार सेना जुटा सकता है। अगर मुख्यतः हमारी सेनासे साम्राज्यकी जीत हो, तो स्पष्ट है कि हम जो भी हक माँगेंगे, ले सकेंगे।

कुछ लोग कहेंगे कि यदि हम अभी इन हकोंको न लेंगे तो बादमें धोखा होगा। किन्तु जिस शक्तिसे हम साम्राज्यका बचाव करेंगे, उसी शक्तिसे हम अपने हक भी ले सकते हैं। साम्राज्यकी निर्बलताके अवसरसे लाभ उठाकर लिए गये हक साम्राज्यके बलवान होनेपर हाथसे निकल जा सकते हैं। हम साम्राज्यको सताकर उसमें हिस्सेदारीका हक नहीं पा सकते। साम्राज्यकी सेवा करनेसे हमें जो हक मिलेंगे, वे उसे तंग करनेसे हरगिज नहीं मिलेंगे। साम्राज्यके संचालकोंका अविश्वास करना अपनी शक्तिका अविश्वास करना है और यह हमारी दुर्बलताका चिह्न है। हमारे हक संचालकोंकी भलाई या कमजोरीपर निर्भर न होकर, बल्कि हमारी योग्यता, हमारी शक्तिपर निर्भर होने चाहिए।

देशी राज्य साम्राज्यकी मदद कर रहे हैं, इसलिए उन्हें इसका बदला मिल रहा है। धनाढ्य लोग सरकारको रुपयेकी मदद दे रहे हैं। उन्हें भी इसका बदला मिल रहा है। दोनोंमें से कोई भी शर्तोंके साथ मदद नहीं देता। फौजी सिपाही अपने नमक, अपनी आजीविकाके बदले मदद कर रहे हैं। उन्हें आजीविका और उसके सिवा इनाम-इकराम मिल जाते हैं। ये सब हमारे ही अंग हैं, परन्तु ये स्वराज्यवादी नहीं माने जा सकते। इनका ध्येय स्वराज्य नहीं है। ये स्वदेश-प्रेमके कारण मदद नहीं देते। अगर हम वैरभावसे स्वराज्य लेना चाहें तो ऐसा भी हो सकता है कि साम्राज्यके संचालक इन तीनों शक्तियोंका उपयोग हमारे विरुद्ध करें और हमें हरा दें।

अगर हम स्वराज्य लेना चाहते हैं, तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम भी साम्राज्यकी मदद करें और हमें उसका बदला अवश्य मिलेगा। हमारी नीयत साफ होगी, तो सरकार भी हमसे साफ नीयतसे बर्ताव करेगी। अगर क्षण-भरके लिए यह मान लें कि सरकारकी नीयत साफ नहीं रहेगी, तो भी हमें अपनी नीयतकी सफाईपर विश्वास रखना चाहिए। यदि हम भलेके साथ ही भलाई करें तो यह वीरता नहीं है, किन्तु यदि हम बुरेके साथ भी भलाई करें तो इसमें वीरता है।

सरकार हमें सेनामें कमीशन अर्थात् ऊँचे पद नहीं देती; हथियारोंपर पाबन्दीके कानूनको रद नहीं करती और हमें फौजी तालीम देनेके लिए स्कूल नहीं खोलती, तब हम उसे कैसे मदद दे सकते हैं? ये आपत्तियाँ उचित हैं।

सरकार इस विषयमें सुधार न करके बड़ी भूल कर रही है। अंग्रेज जातिने बहुत-से पुण्य-कार्य किये हैं। उनके लिए भगवान् उसका भला करे। परन्तु अंग्रेज जातिके नाम पर अंग्रेज अधिकारियोंने भारतको निःशस्त्र बनाकर घोर पाप किया है। अधिकारी-वर्ग यदि अब भी नहीं चेतेगा तो अंग्रेज जातिके सारे पुण्य कार्योंको नष्ट कर देगा। ईश्वर न करे, यदि भारतकी कुछ भी हानि हुई, और वह किसी अन्य देशके अधीन हो गया, तो भारतीयोंकी आत्मा अंग्रेजोंको बहुत कोसेगी, अंग्रेजोंको दुनियाके सामने लज्जित होना पड़ेगा और तेतीस करोड़ लोगोंको नामर्द बनानेके कारण बुरा-भला सुनना पड़ेगा। मैं मानता हूँ कि इंग्लैंडके महान् पुरुष इस बातको समझ गये हैं, वे चेत गये हैं। परन्तु वे अपनी उत्पन्न की हुई स्थितिको एकाएक बदल नहीं सकते। सभी अंग्रेजोंको भारतमें आते ही यह सिखाया जाता है कि वे हमारा तिरस्कार करें, अपनेको बड़ा समझें और हमसे अलग रहें। उनके वातावरणमें ही यह भावना व्याप्त रहती है। उच्च अंग्रेज अधिकारी इस वातावरणसे स्वयं मुक्त होनेका और अपने अधीनस्थोंको मुक्त करनेका प्रयत्न करते हैं, परन्तु तत्काल सफल नहीं हो सकते। अगर वक्त नाजुक न होता, तो हम उनसे लड़ते; परन्तु ऐसे वक्तमें कमीशनों आदिकी प्रतीक्षामें बैठे रहना 'मुँहसे बदला लेनेके लिए नाक काट लेने' के समान है। यह भी हो सकता है कि हम कमीशनोंकी प्रतीक्षामें बैठे रहें और हमें साम्राज्यकी सहायताका अवसर ही न मिले।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि सरकार कमीशन आदि न देकर या देनेमें देर करके हमें सेनामें भरती होनेसे या किसी दूसरी तरहकी मदद देनेसे रोकना चाहती हो, तो भी हमें आग्रहपूर्वक सेनामें भरती होना चाहिए।

सरकारको इस समय सेनाके लिए पाँच लाख आदमी चाहिए। इन्हें सरकार किसी भी तरह जुटा लेगी। यदि हम उसे इतने आदमी दे देंगे, तो यश हमें मिलेगा, हम सेवा करेंगे और कभी-कभी यह जो शिकायत सुनी जाती है कि रंगरूट भरती करनेवाले एजेंट लोगोंको अनुचित ढंगसे ले जाते हैं, वह भी दूर हो जायेगी। भरतीका सारा कार्य हमारे हाथमें आना कोई साधारण अधिकार नहीं है। अगर सरकारका हमपर अविश्वास होगा, अगर उसकी नीयत साफ नहीं होगी, तो वह हमसे सैनिकोंकी भरतीका काम नहीं करायेगी।

ऊपर दिये गये तर्कों और तथ्योंसे देखा जा सकेगा कि फौजमें भरती होनेसे और साम्राज्यको मदद देनेसे हममें स्वराज्यकी योग्यता आती है। उससे हम भारतका बचाव करना सीखते हैं और एक हदतक अपनी खोई हुई मर्दानगी फिर प्राप्त करते हैं।

मैं कहना चाहता हूँ कि अंग्रेजोंके गुणोंमें मेरा विश्वास है, इसीलिए मैं उपर्युक्त सम्मति दे सकता हूँ। इस जातिने भारतका बहुत अहित किया है। फिर भी मैं मानता हूँ कि उससे सम्बन्ध रखना हमारे लिए हितकर है। उसके गुणों और दोषोंका विचार करनेपर मुझे उसमें गुण अधिक मालूम होते हैं। अलबत्ता इस जातिके शासनमें रहना दुःखदायी है। अंग्रेजोंमें एक बहुत बड़ा दोष यह है कि वे अपनी अधीनस्थ जातियोंके

स्वाभिमानकी भावनाको समाप्त कर देते हैं। परन्तु उनमें बराबरीकी जातियोंका पूरा आदर करने और उनके प्रति वफादारी दिखानेका गुण भी है। हमने देखा है कि उन्होंने दूसरोंके अन्यायसे पीड़ित लोगोंको अक्सर मदद दी है। उनके साझेमें रहकर हम उनसे बहुत-कुछ ले सकते हैं और उन्हें बहुत-कुछ दे भी सकते हैं। और सम्भव है, हमारा ऐसा सम्बन्ध संसारके लिए हितकर हो। अगर मेरा यह विश्वास न हो और इस जातिसे बिलकुल स्वतन्त्र होना मुझे इष्ट प्रतीत हो, तो मैं मदद देनेकी सलाह न दूँ। इतना ही नहीं, उनके विरुद्ध विद्रोह करनेकी सलाह देकर, विद्रोहकी सजाका पात्र बनकर भी जनताको सचेत करूँ। अभी तो हमारी स्थिति भी ऐसी नहीं है कि हम किसी अन्य जातिकी सहायताके बिना अपने ही पैरोंपर खड़े रह सकें। मैं यह मानता हूँ कि हमारी उन्नति साम्राज्यमें बराबरीके हिस्सेदार बनकर रहनेसे होगी। मैंने सारे भारतमें घूमकर यह देखा है कि सब स्वराज्यवादी भी ऐसा ही मानते हैं। मैं यह आशा करता हूँ कि मैं खेड़ा जिले और गुजरातसे पाँच सौ या सात सौ नहीं, बल्कि हजारों रंगरूट भरती कर सकूँगा। यदि गुजरात 'नामर्दी' के कलंकसे बचना चाहता है तो उसे हजारों सिपाही देने चाहिए। इस सेनाकी कल्पनामें शिक्षितवर्ग, पाटीदार, बारैया और वाघरी वगैरा सब आ जाते हैं और मुझे आशा है कि वे सब एक कतारमें खड़े होकर लड़ेंगे। जबतक शिक्षित अथवा पढ़ा-लिखा श्रेष्ठ वर्ग आगे नहीं आयेगा, तबतक दूसरे वर्गोंसे आशा रखना व्यर्थ है। मुझे आशा है कि पढ़े-लिखे लोगोंमें से जो अधिक उम्रके होनेपर भी तन्दुरुस्त हैं, वे सभी भरती हो सकेंगे। उनका उपयोग लड़ने-भिड़नेमें नहीं, तो लड़ाईसे सम्बन्धित अनेक कामोंमें किया जा सकता है; वे सिपाहियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर सकते हैं। मुझे आशा है कि जिनके युवा पुत्र हैं, वे अपने उन पुत्रोंको लामपर भेजनेमें तनिक भी न हिचकिचायेंगे। युद्धमें पुत्रोंकी वीरगति वीर पुरुषोंके लिए दुःखद नहीं, बल्कि सुखद होनी चाहिए। इस अवसरपर किया यह पुत्र-त्याग स्वराज्यके निमित्त किया गया बलिदान माना जायेगा।

बहनोंसे मेरी प्रार्थना है कि आप मेरी इस अपीलसे घबरायें नहीं, बल्कि उसका स्वागत करें। इसमें आपकी रक्षाकी, लाज बचानेकी कुंजी छिपी हुई है।

खेड़ा जिलेमें ६०० गाँव हैं। हर गाँवकी औसत आबादी एक हजारसे अधिक है। अगर हर गाँव कमसे-कम बीस आदमी दे तो खेड़ा जिलेमें १२,००० लोगोंकी सेना बन सकती है। खेड़ा जिलेमें सात लाखकी आबादी है। इसमें इस भरतीका अनुपात सौके पीछे १-७ आता है। इससे तो हमारी प्रतिशत मृत्यु-संख्या अधिक है। अगर हम साम्राज्यके लिए — स्वराज्यके लिए इतनी भी कुर्बानी देनेके लिए तैयार न हों और नालायक ठहराये जायें तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। अगर हर गाँव बीस-बीस आदमी दे, तो वे लड़ाईसे लौटकर गाँवकी जीवित किलेबन्दी बन जायेंगे। अगर वे लड़ाईमें खेत रहे, तो वे स्वयं अमर बन जायेंगे और अपने गाँव और देशको अमर बना देंगे और उनके पीछे वैसे ही दूसरे बीस सैनिक तैयार होकर देशकी रक्षा करेंगे।

यदि हमें यह काम करना ही है, तो उसे करनेमें हम सुस्ती नहीं कर सकते। मैं यह चाहता हूँ कि हरएक गाँवसे अधिकसे-अधिक बलवान् लोग चुने जायें और उनके नाम भेज दिये जायें। मैं अपने भाइयों और बहनोंसे यही माँग करता हूँ। आप

लोगोंको समझानेके लिए और आपके विविध प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए मुख्य गाँवोंमें सभाएँ की जायेंगी और स्वयंसेवक भी भेजे जायेंगे।

भाई वल्लभभाई झवेरभाई पटेल (बैरिस्टर), भाई कृष्णलाल नरसिंहलाल देसाई (एम० ए०, एल एल० बी०), भाई इन्दुलाल कन्हैयालाल याज्ञिक, भाई हरिप्रसाद पीताम्बरदास मेहता (हितेच्छु प्रेसके मालिक), भाई प्रागजी खंडुभाई देसाई, भाई मोहनलाल कामेश्वर पंड्या, भाई गणेश वासुदेव मावलंकर (बी० ए०, एल एल० बी), भाई कालीदास जसकरण झवेरी (बी० ए०, एल एल० बी०), भाई फूलचन्द बापूजी शाह, भाई गोकलदास द्वारकादास तलाटी (बी० ए०, एल एल० बी०), भाई शिवाभाई भाईलालभाई पटेल (बी० ए०, एल एल० बी०) और भाई रावजीभाई मणिभाई पटेल आदि सज्जन इस काममें शरीक हुए हैं।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३०४. पत्र: सी० एफ० एन्ड्र्यूजको

[नडियाद
जून २३, १९१८ से पूर्व][1]

[प्रिय चार्ली,]

जहाँतक मेरे प्रस्तावका सम्बन्ध है, तुम जानते हो, मैं मैफीके[2] नाम लिखे गये अपने पत्रमें कह चुका हूँ कि [इस मामलेमें] मैं मित्र या शत्रु किसीकी जान न लेना अपना धर्म मानता हूँ। उन लोगोंके प्रति जो लड़ना तो चाहते हैं, परन्तु कायरताके कारण या अंग्रेजोंके प्रति द्वेष रखनेके कारण लड़ेंगे नहीं; मेरा क्या कर्त्तव्य है? क्या उनसे मुझे यह न कहना चाहिए कि "अगर तुम मेरे रास्तेपर चल सकते हो तो बहुत ठीक है; परन्तु यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो तुम्हें अपनी कायरता अथवा द्वेष-भावना त्याग कर लड़ना चाहिए। जो व्यक्ति किसीकी जान लेनेकी क्षमता नहीं रखता उसे तुम अहिंसा नहीं सिखा सकते। तुम किसी गूँगेको मौनका गुण[3] और विशेषता नहीं समझा सकते। यद्यपि मैं जानता हूँ कि शान्ति बहुत अच्छी चीज है; फिर भी मैं उन साधनोंका उपयोग करनेमें संकोच न करूँगा जिनसे गूँगा फिर बोल सके। मैं किसी शासन-व्यवस्थामें

१. सी० एफ० एन्ड्र्यूजने गांधीजीके पत्रका उत्तर २३ जूनको दिया था।

२. देखिए "पत्र जे० एल० मैफीको", ३०-४-१९१८।

३. इस बारेमें एन्ड्र्यूजने यह लिखा था: "आपने अपने पत्रमें गूँगेसे जो तुलना की है वह मिसाल मुझे ठीक नहीं लगती। यह तो प्रायः ऐसी युक्ति देनेके समान है कि भारतीयोंको, जो खून-खराबीको बिलकुल भूल गये हैं, इस बातके लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है कि वे पहले खून-खराबी करना सीखें और फिर स्वयं ही उसे त्याग दें।"

विश्वास नहीं रखता, परन्तु कदाचित् संसदीय शासन-व्यवस्था निरंकुश शासनसे अच्छी होती है। मेरा खयाल है कि अब तुम्हें यह बात स्पष्ट दिख जायेगी कि मैं अहिंसाके सिद्धान्तका या सत्याग्रहका प्रचार उसी हालतमें सबसे अच्छा कर सकता हूँ, जब मैं हिंसक लोगोंसे यह कहूँ कि वे अपनी हिंसाका उपयोग कमसे-कम कष्टप्रद ढंगसे करें। सम्भव है, उसीसे मैं उनको यह भी अनुभव करा सकूँ कि अहिंसा हिंसासे अधिक उपयोगी है।[1] यदि तुम्हारी समझमें मेरी बातें अब भी ठीक तरह न आई हों तो यथा सम्भव यहाँ आनेका प्रयत्न करो।

सस्नेह,

मोहन

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

३०५. पत्र : एफ० जे० हॉजको

[नडियाद]

जून २३, १९१८

आपके प्रेमपूर्ण पत्रके लिए मेरा हार्दिक धन्यवाद। हम अपनेको आपके परिवारकी अन्तरंग मण्डलीका सदस्य ही मानते हैं। जब कभी आपके साथ कुछ घंटे बितानेका अवसर मिलता था, बड़ा आनन्द आता था। आपने अपने पत्रमें मेरे साथियोंका उल्लेख किया है और पाठशालाओंको मर न जाने देनेके बारेमें चेतावनी दी गई है, इसलिए मैं उसे बाबू ब्रजकिशोरके पास भेजनेकी स्वतन्त्रता ले रहा हूँ। आप जानते हैं कि डॉ० देव चम्पारन छोड़नेसे पहले भीतीहरवामें एक पक्का भवन बनवा गये हैं। एक महिला शिक्षक जुटानेमें मुझे बहुत मुश्किल हो रही है। किन्तु मैं एक शिक्षिका ढूंढ सकूँगा, इसमें मुझे सन्देह नहीं है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि कभी-कभी आप इन पाठशालाओंका निरीक्षण करते रहें। सवारीका प्रबन्ध करनेके लिए आप बाबू गोरखप्रसादसे कह दीजिए।

देवदास इस समय मद्रासमें है। वह वहाँ तमिल भाई-बहनोंके लिए हिन्दी कक्षाएँ चला रहा है।

१. एन्ड्रयूजने इसके उत्तरमें लिखा था : "...मैं आपसे इस बातमें पूर्णतया सहमत हूँ कि स्वतन्त्र भारत ही अपना मार्ग स्वयं चुनकर संसारके सामने अहिंसाका सर्वोच्च उदाहरण रख सकता है न कि आजका परतन्त्र भारत। परन्तु फिर भी क्या आप यह बात नहीं सोच सकते कि भारत अपनी उस स्वतन्त्रताको केवल नैतिक बलसे ही प्राप्त करे — देशको गुलाम रखनेवाली सेनाका मुकाबला करनेके लिए स्थायी सेना बनाकर नहीं।"

खेड़ाका झगड़ा कुछ समय पहले ही निपट गया है। समझौतेकी घोषणा करनेवाला मेरा पत्र[1] आपने अखबारोंमें देखा या नहीं? इन दिनों मैंने सैनिक-भरतीका काम शुरू किया है।

हम दोनों श्रीमती हॉजको याद करते हैं। मैं आशा रखता हूँ कि वे फिर पहले जैसी स्वस्थ हो गई होंगी।

मुझे आशा है कि बच्चोंसे जब मैं अबकी बार मिलूँगा, तबतक उनका मुझसे शर्माना खत्म हो चुकेगा। मेरा इरादा कमसे-कम तीन महीनेमें एक बार चम्पारन आते रहनेका है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

३०६. पत्र : बी० जी० हॉर्निमैनको

[नडियाद]
जून २३, १९१८

मैं नहीं जानता कि इस पत्रके साथ जो अपील[2] भेज रहा हूँ, उसके पक्षमें आप प्रतिज्ञा लेंगे या नहीं, परन्तु यदि आपने उसके पक्षमें प्रतिज्ञा ले ली तो मैं उसे बहुत-बड़ा लाभ समझूँगा। मुझे इसकी जरूरत है। मेरा निश्चित मत है कि यदि हम सरकारको सिपाही जुटा दें और साथ-साथ सरकारके अन्यायोंके विरुद्ध लड़ाई भी लड़ते रहें तो इस तरह हम अपने सामान्य हितको लाभ पहुँचायेंगे। ये दोनों चीजें साथ-साथ की जा सकती हैं। सरकारी अधिकारियोंकी मूर्खता सैनिक-भरतीके कामको मुश्किल बना रही है। परन्तु इससे हमें निराश नहीं होना चाहिए। जो-कुछ बन पड़े, सो सब हमें करना चाहिए। विरोध-सभाओंमें जो प्रस्ताव पास हुए, उनका मैं यही अर्थ करता हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१. देखिए "सन्देश : खेड़ाके लोगोंको", ६-६-१९१८।
२. देखिये "सैनिक-भरतीकी अपील", २२-६-१९१८।

२०७. पत्र : श्रीमती एडा वेस्टको

[नडियाद]
जून २३, १९१८

प्रिय श्रीमती वेस्ट,

आपका पत्र पाकर बहुत खुशी हुई। मैं चाहता हूँ कि आप अपने आर्थिक मामलोंकी चिन्ता न करें। अल्बर्ट[1] मेरे भाईके समान हैं। किसी भी कारणसे उन परसे मेरा विश्वास नहीं डिग सकता। अल्बर्टके बारेमें निराश हो जाऊँ, तब तो फिर मुझे दुनियासे निराश हो जाना चाहिए। मैंने उन्हें पत्र[2] लिख दिया है। मैं जानता हूँ कि प्रस्तुत परिस्थितिमें जो-कुछ करना उत्तम था, वही उन्होंने किया। यह जानकर मुझे खुशी हुई है कि आप और सैम, दोनोंने अब बच्चोंकी उचित शिक्षाकी व्यवस्था कर ली है। हिल्डा मेरी याद करती है या नहीं? मालूम नहीं मणिलालको क्या हो गया है। आप सबके लिए उसके मनमें बहुत आदर-भाव था। और आप सबने भी उसे बहुत स्नेह प्रदान किया परन्तु उसका स्वभाव वहमी बनता जा रहा है। मेरा अब भी खयाल है कि वह इसे सुधार लेगा। मैं जानता हूँ कि आपका प्रेम उसके वहमको निकाल देगा। मैं आशा रखता हूँ कि आप उससे खुद मिलेंगी, उसे समझायेंगी, बातें करेंगी और उसका मन जीत लेंगी। मैं यह विचार ही सहन नहीं कर सकता कि आपके प्रति मणिलालके मनमें गलतफहमी रहे।

आजकल आश्रमके लिए नये मकान बनवानेका काम चल रहा है। कितना अच्छा होता कि आप इन इमारतोंको बनवाते समय यहाँ होतीं। जमीन बहुत अच्छी जगहपर है। सब कुछ मगनलाल ही सँभाल रहा है। वहाँ फीनिक्समें जब मकान बन रहे थे, तब जो काम अल्बर्ट करते थे, वही मगनलाल कर रहा है। उसे आश्रमसे बाहर कोई आनन्द ही नहीं आता।

सबको प्यार सहित,

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. अल्बर्ट एच० वेस्ट।
२. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

३०८. पत्र: सोंजा श्लेसिनको

[नडियाद]
जून २३, १९१८

प्रिय कुमारी श्लेसिन,[1]

जिस पत्रकी मैं लम्बे अरसेसे प्रतीक्षा कर रहा था, वह आखिरकार आ गया। हम सभीको तुम्हारे पत्रका इन्तजार था।

फीनिक्स आश्रमको बेचना नहीं है। उसके बीचमें जो जगह है उसमें से पाँच एकड़ जमीन तुम ले सकती हो। तुम्हारा सपना मुझे पसन्द है, खास तौरपर इसलिए कि उसमें हिन्दुस्तान आनेकी बात भी शामिल है।

यह जानकर मैं बहुत खुश हुआ कि तुम टाइपराइटरसे ऊबने लगी हो . . .[2]

रामदाससे मैंने दरजी बननेके लिए हरगिज नहीं कहा। इसलिए नहीं कि दरजीके काममें कोई सौन्दर्य नहीं है। वह एक उत्तम दरजी बन भी सकता है। किन्तु इसलिए कि वह एक आदर्शवादी लड़का है, उसकी इच्छा तरह-तरहके अनुभव प्राप्त करनेकी है। अगर वह कवि बन जाये, तो कोरे अलंकार और छन्द रचनेवाला कवि ही नहीं बनेगा; बल्कि कर्मठ और कर्मण्य काव्य लिखनेवाला कवि बनेगा। रामदास स्वप्नदर्शी है और मुझे स्वप्नदर्शी लोग पसन्द हैं। मैं आशा रखता हूँ कि तुम उसकी मित्र और पथ-प्रदर्शक बनकर उसे सन्मार्गपर लगाओगी। मैं चाहता हूँ कि थोड़े समय तुम जाकर मणिलालके साथ रहो। वहाँ तुम अपनी पढ़ाई जारी रख सकोगी।

वॉगल[3], फिलिप्स[4] और डोक[5] परिवारके लोग कैसे हैं? कभी उनसे मिलती हो? मैकिंटायर[6] कहाँ हैं? भारतीयोंका काम कैसा हो रहा है? थम्बीसे[7] मुलाकात होती है? उसे क्या हो गया है? मैं आशा रखता हूँ कि तुम इन सब प्रश्नोंकी अपने पत्रोंमें चर्चा करोगी। किन्तु कुछ भी न होनेसे थोड़ा होना भी अच्छा है।

१. सोंजा श्लेसिन दक्षिण आफ्रिकामें शुरूमें गांधीजीकी टाइपिस्ट थीं। बादमें तो वे बापूकी बहुत ही विश्वस्त साथी बन गईं। सत्याग्रहकी लड़ाईमें उन्होंने काफी मदद दी। देखिए खण्ड ८, पृष्ठ २४।

२. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ शब्द मिटे हुए हैं।

३. श्रीमती वॉगल भारतीय महिलाओंको पढ़ाती थीं, और जोहानिसबर्गमें उन्होंने भारतीय बाजारका आयोजन किया था। उनके पति दरजीका काम करते थे। पति-पत्नी दोनोंने दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके लिए काफी काम किया।

४. चार्ल्स फिलिप्स, ट्रान्सवालमें कॉंग्रेगेशनल चर्चके पादरी।

५. गांधीजीका अभिप्राय रेवरेंड जोज़ेफ़ जे० डोक (१८६१–१९१३) की पत्नी और पुत्री ऑलिव डोकसे है।

६. गांधीजी जब दक्षिण आफ्रिकामें थे, उस समय श्री मैकिंटायर उनके मुन्शी थे।

७. थम्बी नायडू, एक सत्याग्रही।

यहाँ मेरा जीवन बहुत जटिल बन गया है। तुमने अखबारोंमें छपे मेरे कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र तो पढ़े होंगे। आजकल मैं सैनिकोंकी भरतीके जबरदस्त काममें जुटा हुआ हूँ। अपने कामके सिलसिलेमें मुझे लगातार रेल-यात्रा करनी पड़ती है। एकान्त और आरामके लिए मैं तरसता रहता हूँ। लेकिन ये शायद मुझे कभी नहीं मिलेंगे। श्रीमती गांधीमें अद्भुत परिवर्तन हुआ है। जिन चीजोंपर उन्हें आपत्ति हुआ करती थी, अब उन्होंने उन चीजोंको बड़े सुन्दर ढंगसे स्वीकार कर लिया है। किन्तु इन सब बातोंका वर्णन मैं नहीं करूँगा। तुम्हें यहाँ आकर प्रत्यक्ष देखना चाहिए।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३०९. पत्र : देवदास गांधीको

[नडियाद]
जून २३, १९१८

देखता हूँ, तुमने शिक्षण-कार्यका आरम्भ ठीक तरहसे किया है। मैंने कल कुछ सुझाव भेजे हैं। व्याकरण जल्दी सिखाना। उसमें उन्हें रस आयेगा; इसमें सबसे पहले शब्दोंके रूप सिखाना ठीक रहेगा। उनकी तुलना तमिल शब्दोंके रूपोंसे करनी चाहिए। विद्यार्थियोंकी आयु और विद्याभ्यासमें प्रगतिकी कुछ कल्पना मुझे देना।

यहाँ सैनिक-भरतीकी अपीलकी पहली पत्रिका प्रकाशित[1] कर दी गई है। इसकी तीन प्रतियाँ भेजता हूँ। इसका अंग्रेजी अनुवाद भी कर लिया गया है। इसे पढ़कर जो विचार मनमें आयें, सूचित करना। मैं आजकल अहिंसा-धर्मको कुछ भिन्न, किन्तु भव्य रूपमें देख रहा हूँ। साथ ही अपनी संयमकी कमियोंका दर्शन भी करता जा रहा हूँ। इस कार्यके लिए मेरी तपस्या बहुत ही अपर्याप्त है। पहले तपस्यासे जो अनुभव-ज्ञान मिलता था, आज प्रयोगसे उसका करोड़वाँ भाग भी नहीं मिल सकता। चाहे कितने ही जल-बिन्दुओंका विश्लेषण करें, उनमें दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजन ही निकलेगी। तिसपर भी निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि पानी उन्हींका संश्लेषण है। यह अनुमान-ज्ञान है। परन्तु यदि मैं दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजनका मिश्रण करके पानी बनाऊँ, तो यह निश्चित ज्ञान हुआ। यह अनुभव-ज्ञान है। पानी भले ही दूसरी तरह बन सकता हो, परन्तु एक ही प्रयोगसे मैंने निश्चयपूर्वक बता दिया कि उपर्युक्त गैसोंके मिश्रणसे तो पानी बनता

1. देखिए "सैनिक-भरतीकी अपील", २२-६-१९१८।

ही है। बहुतसे कार्य हम अनुमानसे करते हैं और कोई हानि नहीं होती। किन्तु महान् कार्योंमें अनुमानसे हानि और अनुभवसे लाभ देखा जा सकता है। इसीलिए यमादिके पालनकी जरूरत है। अनुभव-ज्ञान प्राप्त करनेके लिए यह एकमात्र सीढ़ी है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३१०. पत्र : मोहनदास नागजीको

[नडियाद]
जून २३, १९१८

पुनर्विवाहके बारेमें मेरी राय यह है कि पतिका पत्नीके गुजर जानेपर और पत्नीका पतिके गुजर जानेपर दुबारा विवाह न करना जरूरी है। संयम हिन्दू-धर्मका आधार है। यों तो संयमका विधान सभी धर्मोंमें है। परन्तु हिन्दू-धर्ममें उसे बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। ऐसे धर्ममें पुनर्विवाह तो अपवादस्वरूप ही होने चाहिए। मेरे विचार ऐसे होनेपर भी जबतक बाल-विवाह होते हैं और पुरुष इच्छानुसार चाहे जितनी बार विवाह करते हैं, तबतक यदि कोई बाल-विधवा पुनर्विवाह करना चाहे तो उसे रोकनेका प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिए और उसकी इच्छाका आदर किया जाना चाहिए। मैं बिलकुल बाल-विधवाके मनमें भी पुनर्विवाह करनेकी इच्छाका बीज नहीं डालूंगा, किन्तु अगर वह पुनर्विवाह करेगी तो मैं उसके कार्यको पाप नहीं गिनूंगा।

मोहनदास गांधीके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३११. पत्र : विट्ठलभाई पटेलको

[नडियाद]
जून २३, १९१८

भाईश्री विट्ठलभाई,

आपका पत्र मिला। मेरे खयालसे आप जैसोंका होमरूल लीगसे बाहर रहकर यथाशक्ति सेवा करना ठीक है। इस समय होमरूल लीगकी स्थिति विषम है। उसकी स्थिति बाहरी झगड़ोंके कारण विषम नहीं है; बल्कि उसकी भीतरी झंझटें बहुत हैं। वह तय नहीं कर सकी है कि कौन-सा रास्ता अपनाया जाये — तंग करनेका या मदद देनेका! उसने तंग तो बहुत किया, अब उससे निवृत्त होकर उसे कुछ रचनात्मक काम

करनेकी जरूरत है। जबतक ऐसा न किया जायेगा, तबतक लीगकी सेवा-शक्तिका विकास न होगा। अगर आप लीगमें इसलिए शामिल हों कि उसे सेवाकी ओर मोड़ा जाये तो अवश्य ही जाएँ। परन्तु लीगके सदस्य यह न चाहेंगे कि आप उसमें छोटे-बड़े सबसे टक्कर लेनेके लिए शामिल हों। किसी संस्थामें उसे तोड़नेकी नीयतसे शामिल होना तो स्पष्ट द्रोह ही होगा। स्वास्थ्य-रक्षाकी कला सीख लेंगे, तो भी देशकी बड़ी सेवा होगी।

वल्लभभाईका नया धंधा कैसा लगता है? "रिक्रूटिंग सार्जेन्ट" बन गये हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३१२. भाषण : अहमदाबादमें

जून २४, १९१८

इस सभाको क्या काम करना है यह आप सब जानते हैं। आप यह भी जानते हैं कि परमश्रेष्ठ गवर्नरने युद्ध-सम्मेलनमें 'होमरूल' लीगके सदस्योंका अपमान किया था और बम्बईके लोगोंने उसका विरोध किया था। बम्बईकी सभामें भी मैं ही अध्यक्ष था। मैं इस सम्बन्धमें अपने विचार वहाँ व्यक्त कर चुका हूँ। इसलिए मैं आपका अधिक समय नहीं लूँगा। इस सभाको दो काम करने हैं। एक काम है, बम्बईमें किये गये विरोधका समर्थन करना और दूसरा जो लोग समाचारपत्र नहीं पढ़ते उनके सामने वस्तुस्थिति रखना तथा जो समाचारपत्र पढ़ते भी हैं उनको भी सच्ची बात बताना क्योंकि समाचारपत्रोंमें दिये गये विवरण अनेक बार अधूरे और झूठे होते हैं। गवर्नर महोदयके सम्मुख युद्ध-सम्मेलनमें श्रीयुत तिलक और अन्य स्वराज्यवादियोंको निमन्त्रित करनेका प्रश्न था। दिल्ली सम्मेलनमें श्री तिलक और श्रीमती बेसेंट निमन्त्रित नहीं किये गये थे; इसलिए लॉर्ड विलिंग्डनके सम्मुख यह असाधारण प्रश्न उपस्थित था। अतः उन्होंने बहुत विचार करनेके बाद श्री तिलकको निमन्त्रण भेजा और श्री तिलकने उसे स्वीकार कर लिया। उन्होंने पूछा कि सम्मेलनमें बोलनेकी छूट दी जायेगी अथवा नहीं और वे संशोधन पेश कर सकेंगे या नहीं। उन्हें इसका उत्तर यह दिया गया कि उन्हें उन प्रस्तावोंपर संशोधन पेश नहीं करने दिये जायेंगे; लेकिन प्रस्ताव पेश करनेवाले व्यक्तियोंके बोल चुकनेके बाद वे बोल सकेंगे और उनकी आलोचना कर सकेंगे। गवर्नरने यह उत्तर शुद्ध भावसे दिया था और उनके शब्द दो अर्थी नहीं थे। इसलिए श्री तिलक और अन्य सज्जन सम्मेलनमें सम्मिलित हुए; लेकिन वहाँ उन्होंने क्या देखा? श्री तिलकका दूसरा वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि उन्हें गवर्नरने आगे बोलनेसे रोक दिया और उन्हें आलोचना नहीं करने दी। श्री तिलक क्या कहना चाहते थे, वह गवर्नर नहीं जानते थे। वे उनके भाषणके गुण-दोषोंसे अनभिज्ञ थे। लेकिन जिस वाक्यको

श्री तिलकने "परन्तु" से आरम्भ किया, उसे आपत्तिजनक मानकर गवर्नरने उन्हें इस वाक्यको पूरा नहीं करने दिया और आगे बोलनेसे रोक दिया। किसी अन्य अवसर-पर गवर्नरने ऐसा किया होता तो यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें ऐसा करनेका हक नहीं है। लेकिन जिसे उन्होंने वहाँ बोलनेके लिए स्वयं बुलाया था, उस अतिथिको इस तरहसे रोकना उन्हें शोभा नहीं देता था और ऐसा करके उन्होंने श्री तिलकका तथा अन्य सम्मानित अतिथियोंका और समस्त भारतीय लोगोंका भारी अपमान किया है। श्री तिलक असाधारण व्यक्ति हैं। समस्त भारत उनकी पूजा करता है। उन्हें इस प्रकार बैठा देना सचमुच असह्य है। आज हम सब यहाँ यह दिखानेके लिए इकट्ठे हुए हैं कि यह बात अहमदाबादके लोगोंके लिए भी असह्य है। और बम्बईके लोगोंने जो कदम उठाया है वे उसका समर्थन करते हैं। ऐसा करके हम अपना फर्ज पूरा करते हैं और यह सिद्ध करते हैं कि हम सच्चे स्वराज्यवादी हैं। स्वराज्यका एक अंग ऐसा होना चाहिए कि यदि भारतका अपमान हो तो उसे भारतीय स्वराज्यका अपमान समझकर चला जाये। आज हम भारतीय स्वराज्यके इस अपमानके कारण गवर्नरसे जवाब तलब करनेके लिए एकत्रित हुए हैं। हमें उनसे कह देना चाहिए कि आपने हमारा भारी अपमान किया है इसके लिए आपको खेद प्रकट करना चाहिए। थोड़ेसे अपवादोंको छोड़कर भारतमें एक भी समाचारपत्र ऐसा नहीं है जिसने गवर्नरके इस कार्यको पसन्द किया हो। सबने उनके इस कार्यकी निन्दा की है। 'पायनियर' ने भी इसकी निन्दा की है और लिखा है कि ऐसे समयमें, जब लोगोंको साथ लेकर काम करनेकी आवश्यकता है, ऐसी घटना नहीं होनी चाहिए थी। इतना ही नहीं, उसने गवर्नरको [क्षमायाचनाका] कड़वा घूँट पीकर काम करनेकी सलाह दी है। अहमदाबादकी सभाके उद्देश्य और स्वीकृत प्रस्ताव उचित हैं। एक प्रस्तावमें कहा गया है कि गवर्नर अपने इस कार्यपर खेद प्रकट करें और यदि वे ऐसा न करें तो वाइसराय बीचमें पड़कर गवर्नरके कार्यसे अपनी असहमति प्रकट करें। यदि ऐसा नहीं किया जायेगा तो होमरूल-लीगके सदस्य लॉर्ड विलिंग्डनकी अध्यक्षतामें की गई किसी भी सभामें भाग नहीं लेंगे। हम न तो लॉर्ड विलिंग्डनके प्रति अपनी अप्रसन्नताको साम्राज्यपर थोपना चाहते हैं और न अपने वर्तमान कर्त्तव्यसे पीछे हटना चाहते हैं। दूसरे प्रस्तावमें हमें सरकारको सहायता देनेमें जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, उनका उल्लेख किया गया है। इसके द्वारा हम उससे यह कहना चाहते हैं कि, हम सरकारको जितनी सहायता देना चाहते हैं, उतनी नहीं दे पाते, क्योंकि उसके लिए जो-कुछ करनेकी जरूरत होती है उसकी सत्ता आपके हाथमें है। आप शिक्षित-वर्गका अपमान नहीं कर सकेंगे और भारतीय सैनिक अंग्रेज सैनिकोंकी अपेक्षा कम अधिकारोंसे सन्तुष्ट नहीं होंगे, यह कहकर हम अपनी कठिनाइयाँ पेश करते हैं और कहते हैं कि हम आपकी मदद नहीं कर सके इसका कारण भी आप ही हैं। आप इन कारणोंको दूर कर दें, तो आपपर हमने जो आरोप लगाये हैं हम उन्हें वापस ले लेंगे। लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। कुछ कार्य हमें करने ही चाहिए। यदि हम ऐसा न करेंगे तो माना जायेगा कि स्वराज्यवादीके रूपमें हम अपने कर्त्तव्यसे चूक गये हैं। हम भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि "हे प्रभु! आज ही स्वराज्य दो", लेकिन प्रभु कहते हैं कि "वह तुम्हें तुम्हारी योग्यताके अनुरूप मिलेगा।" यदि ईश्वर हमें माँगनेसे

स्वराज्य दे दें तो संसारमें उथल-पुथल हो जाये। हमें स्वराज्यके लिए अपनी योग्यता सिद्ध करनी पड़ेगी। हमारे पास शत्रुको उत्तर देनेके अनेक साधन हैं, लेकिन अपनी त्रुटियोंको सही रूपमें देखना हमारा कर्त्तव्य है। यदि हम सरकारसे चिढ़कर उसके दोषोंपर विचार करते हुए हाथपर-हाथ धरे बैठे रहेंगे तो हम स्वराज्य नहीं प्राप्त कर सकेंगे। भारतमें यात्रा करके मैंने यह जाना है कि भारतीय प्रजा सरकारसे कैनेडा और आस्ट्रेलियाके लोगोंकी तरह समान अधिकार-भोगी नागरिकोंका-सा सम्बन्ध रखना चाहती है। हम चाहते हैं कि सरकार हमसे युद्धके सम्बन्धमें सलाह करे और तभी धन और जनकी माँग करे। यदि हम स्वराज्यका त्याग नहीं करना चाहते तो अंग्रेजोंके साथ साझीदारके रूपमें काम करनेमें हमारा फायदा है। हमारा प्रथम और अन्तिम कर्त्तव्य यह है कि हम साम्राज्यके त्यागमें भाग लें और बेधड़क अपनी आहुति दें। उससे ही हम शीघ्र स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे। हम अत्याचारके विरुद्ध खड़े हों और उन्हें दूर करानेके लिए आवश्यक कदम उठायें; इसके अलावा हम मौजूदा समयमें सरकारका साथ दें — हमारे ये दो कर्त्तव्य हैं और यदि हमने अपने इन कर्त्तव्योंको पूरा किया तो हम उनके प्रति अपनी सचाई सिद्ध कर सकेंगे। यदि हम अपने ऊपर लगाये गये आरोपोंको दूर करना चाहते हों तो हमें साम्राज्यके प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करनेके लिए सन्देहका कारण ही नहीं रहने देना चाहिए। इसकी असली सजा यही है। अब हम इस प्रस्तावके दूसरे पहलूपर भी विचार करें। मुझे श्री तिलकका एक पत्र मिला है। उसमें उन्होंने लिखा है, यदि भारत सरकार भारतीय सैनिकोंका दरजा अंग्रेज सैनिकोंके समान कर दे तो हम छः महीनेमें ५,००० मनुष्योंको देनेके लिए तैयार हैं और यदि हम इतने मनुष्य न दे सके तो एक-एक मनुष्यके लिए सौ-सौ रुपया जुर्माना देनेके लिए तैयार हैं और इसके लिए उन्होंने ५०,००० रुपयेकी रकम जमा करवा कर जमाकी रसीद भी भेजी है। इस विषयमें मेरी बातचीत श्री जिन्ना और श्रीमती बेसेंटसे भी हुई है। उन्होंने स्वीकार किया है कि हमें साम्राज्यको आवश्यकतानुसार आदमी देने चाहिए। श्री तिलकको विश्वास[1] है, यदि हम पक्की शर्तें करके सरकारको सहायता देंगे तो उसमें विश्वासघातके लिए कोई अवकाश नहीं रहेगा। इसी उद्देश्यको दृष्टिमें रखकर हमें वैसा करना चाहिए। लेकिन मेरी मान्यता यह है कि विश्वास रखकरके हम कुछ भी नहीं खोते। इसलिए मैं बिना किसी हिचकके लोगोंको सलाह देता हूँ कि वे सेनामें भरती हों। इस तरीकेसे हम अपनी इच्छित वस्तु पा सकेंगे। मैं श्रद्धावान् हूँ, इसलिए हमें श्रद्धा रखकर काम करना चाहिए, यही मेरी सलाह है। मैं यह कहने आया हूँ कि स्वराज्य-मन्त्रकी सिद्धिके लिए आपको अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहिए। गुजरातके माथेपर जो कलंक है उसे दूर करनेके लिए आपको सैनिक बनना चाहिए। अहमदाबादपर धावा हो तो उसका बचाव करनेके

१. श्री तिलक सरकारके साथ यह समझौता करना चाहते थे कि वे भारतीय सैनिकोंको सेनामें कमीशन प्राप्त अधिकारी नियुक्त करेगी; यदि सरकारने ऐसा आश्वासन दिया तो वे इस सेनामें ५,००० लोगोंके नाम लिखायेंगे और उन्होंने ५०,००० रुपयेका चेक दिया कि यदि वे इस कार्यमें असफल रहें तो उनका वह चेक जब्त कर लिया जाये। गांधीजी ऐसा सौदा करनेको तैयार नहीं थे, इसलिए उन्होंने श्री तिलकको वह चेक लौटा दिया।

लिए सेनामें भरती होना उत्तम है। हम इस समय इस सभाको भरतीकी सभामें बदलना नहीं चाहते; लेकिन जब ऐसी सभा की जाये तब हमें अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमें पीछे नहीं हटना चाहिए।

[गुजरातीसे]

प्रजाबन्धु, ३०–६–१९१८

३१३. भाषण : रासमें[1]

जून २६, १९१८

गांधीजीने कहा : मैं यहाँपर इसलिए नहीं आया हूँ कि किसीको भरती होनेके लिए विवश करूँ। अहिंसा-धर्मके पालनमें प्रयत्नशील व्यक्ति होनेके नाते मैं आप लोगोंको बल-प्रयोग द्वारा विवश नहीं कर सकता; मैं तो आप लोगोंको प्रेमकी शक्तिसे, और देशानुरागके भावोंको जगाकर तथा सच्चे स्वार्थकी वृत्ति पैदा करके सेनामें भरती होनेके लिए विवश करूँगा। मैं आप लोगोंको सेनामें भरती होनेकी सलाह देने आया हूँ। यह सलाह मैंने स्वयंपर भी लागू की है। मैंने अपने लड़केको भी, जो कि विवाहित है और पाँच बच्चोंका पिता है, यही सलाह दी है। उन्होंने आगे कहा :

स्वेच्छापूर्वक सेनामें भरती होना ही स्वराज्यकी कुंजी है और हमें मनुष्यत्व और सम्मान दिलानेवाली है। सेनाकी भरतीके साथ ही साथ स्त्रियोंकी प्रतिष्ठाका प्रश्न भी सम्मिलित है। आजके दिन हम अपनी गृह-लक्ष्मियों और सन्तानोंकी जंगली पशुओंसे भी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं। आत्म-रक्षाकी शक्ति प्राप्त करनेका सबसे सुगम उपाय यही है कि लोग सेनामें भरती हों। कुछ लोग पूछेंगे कि "फ्रांसमें जाकर प्राण देनेकी क्या आवश्यकता है?" परन्तु फ्रांसमें जाकर प्राण देनेसे भी एक अर्थ सिद्ध होता है। जब हम अपने प्रियजनोंको युद्ध-भूमिमें भेजेंगे तब जो साहस और शौर्य लेकर वे लौटेंगे वह गाँवोंकी कायापलट कर देगा। जो सैनिक-शिक्षा हम आज प्राप्त कर सकते हैं वह शायद हमें फिर कभी नहीं मिल सकती।

श्री गांधीने धरल, बाघरी और पाटीदारोंका उल्लेख करते हुए कहा कि इन सबोंमें क्षत्रियोचित गुण समान रूपसे वर्तमान हैं। उन्होंने इन तीनों जातियोंके लोगोंसे कहा कि वे अपनी जो शक्ति और शौर्य पारस्परिक झगड़ोंमें लगाते रहे हैं उसे अपनी मातृभूमिकी रक्षामें लगायें।

यह मानकर कि एक गाँवकी आबादी एक हजार है, हमें प्रत्येक गाँवसे बीस-बीस रंगरूट लेने चाहिए, अर्थात् प्रति १०० आदमियोंमें से २ आदमी। सौ आदमियोंमें से दो आदमी क्या चीज हैं? हैजे तथा अन्यान्य रोगोंसे प्रतिवर्ष कितने आदमी मरते हैं? ये मरनेवाले

१. यह भाषण गुजरातमें बोरसद जिलेके रास नामक गाँवमें गांधीजीने सेनामें भरती होनेकी आवश्यकता बताते हुए दिया था।

यों ही मरते हैं। इनकी मृत्युका शोक सिवा इनके सम्बन्धियोंके और कोई नहीं करता। इसके विपरीत यदि शास्त्रोंकी बात सत्य है, तो रणभूमिमें वीरगति पानेवाले सैनिक अमर हो जाते हैं और उनकी मृत्यु, जो पीछे छूट गये हैं उनके लिए आनन्द और गौरवका विषय हो जायेगी। क्षत्रियोंकी मृत्युसे उन राष्ट्र-रक्षकोंका प्रादुर्भाव होगा जिसे कोई सरकार निरस्त्र नहीं कर सकती।

हममें से एक सज्जन आज सेनामें भरती होनेके लिए अपनी रजामन्दी जाहिर करते थे; परन्तु उन्होंने कहा कि मैं दो महीने तक भरती नहीं हो सकता; क्योंकि मुझे अपने कर्जका बोझ उतारना है। ऐसे बहुतसे दृष्टान्त मिलेंगे। गाँवके नेताओंसे मेरा यह अनुरोध है कि वे ऐसे मनुष्योंके मामलोंकी जाँच करके पता लगायें कि उनकी आर्थिक दशा कैसी है, और उनके सारे काम-काजका प्रबन्ध और उनके परिवारवालोंके भरण-पोषणकी व्यवस्था करें। श्री गांधीने कहा :

केवल उसी दशामें आप नवयुवकोंको सेनामें भरती होनेके लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। "इस प्रकार किरायेपर लड़नेवाली एक फौजके स्थानमें एक राष्ट्रीय सेना खड़ी हो सकेगी।" इंग्लैंडमें अमीर या गरीब कोई घराना ऐसा नहीं बचा होगा, जो कि अपने किसी-न-किसी सम्बन्धीकी मृत्युपर शोक न प्रकट कर रहा हो। अब यह निश्चय किया गया है कि ५१ वर्ष तककी उम्रके लोगोंको सेनामें भरती किया जाये। यदि हम अपने देशका शासन करना और उसकी रक्षा करना चाहते हैं तो प्रत्येक नवयुवकको सेनामें भरती होना चाहिए।

श्री गांधीने आशा व्यक्त की कि गाँववाले इस विषयमें परामर्श करके प्रति सैकड़ा दो आदमी सेनामें भरती होनेके लिए देंगे। उन्होंने कहा :

मुद्दतोंसे हमारी युद्ध करनेकी शक्ति नष्ट हो चुकी है; अस्त्र-शस्त्र चलानेकी वह विद्या हम आखिर किस तरह सीख सकते हैं जिसके लिए हमारे पूर्वजोंने तपश्चर्या और कठोर व्रतोंका पालन किया है?

बाज आदमी यह कुतर्क करते हैं कि युद्धके अनन्तर हमसे हथियार फिर छीन लिये जायेंगे। इस विषयमें मुझे यह निवेदन करना है कि पृथ्वीतलपर कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो हमारी इच्छाके विरुद्ध हमसे उस समय हथियार छीन ले, जबकि एकबार हम उनका प्रयोग सीख चुके हैं। सरकार ऐसी मूर्ख नहीं है, अन्यथा वह इस देशका शासन ही नहीं कर सकती थी। हमारा सबसे शक्तिशाली हथियार सत्याग्रह है। वह हमेशा ही हमारे पास रहता है। परन्तु जिसको मृत्युका भय है वह सत्याग्रही कभी नहीं हो सकता। सत्याग्रहकी वास्तविक कदर करनेके लिए शारीरिक शक्तिका प्रयोग कर सकनेकी क्षमता आवश्यक है। अहिंसाका पालन वही कर सकता है जो हत्या करना जानता है, अर्थात् यह जान चुका है कि हिंसा क्या है?

अन्तमें गांधीजीने कहा :

बहनो, आप लोगोंको चाहिए कि अपने भाइयोंको, स्वामियोंको और अपने बेटोंको उत्साहित करें। यदि आप चाहती हों कि वे सच्चे मनुष्य बनें तो उन्हें अपना आशीर्वाद देकर सेनामें भेजिए। इस बातकी चिन्ता आप न करें कि रणभूमिमें उनपर क्या

बीतेगी? आपके पुण्य-प्रतापसे, आपके शुभ्र सतीत्वके प्रभावसे युद्धस्थलमें वे सभी प्रकारसे सुरक्षित रहेंगे। यदि वे युद्धमें वीरगतिको भी प्राप्त हो जायें तो यह विचारकर धैर्य धारण करें कि उन्होंने अपना कर्त्तव्य पूरा करनेमें अपनी देहको अर्पण किया है। याद रहे कि अगले जन्ममें वे प्रिय स्वजन फिर आपको प्राप्त होंगे।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २-७-१९१८

३१४. भाषण: खेड़ामें[1]

जून २७, १९१८

हम साधारणत: जेल जानेको बदनामीकी बात मानते हैं। कैदी जेलमें घबराता रहता है और दिन गिनता रहता है, कि सजा कब पूरी हो और कब बाहर निकलूं? देश और समाजके नियमोंको भंग करनेवाले अपराधीकी ऐसी मन:स्थिति होती है। यह मन:-स्थिति सत्याग्रहीकी मन:स्थितिसे भिन्न होती है। हम आत्मसम्मान और अधिकारोंके इस संघर्षमें जेल जानेकी हिमायत करते हैं। जो भाई आज जेलसे छूटकर आये हैं उनकी मुखाकृतिपर विषाद अथवा ग्लानिकी छाया भी नहीं है। खेड़ाके सभी लोग उन्हें गर्वपूर्ण दृष्टिसे देखते हैं और उनके सम्मानमें उत्सव कर रहे हैं। जेल जाना एकके लिए बदनामीकी बात है; दूसरेके लिए गौरवकी। पहले प्रकारके लोग जेलसे कठोर होकर निकलते हैं। वे वहाँ ठगी और उत्पात करते हैं; जब कि हमारे इन भाइयोंने जेलको अपने पदार्पणसे पवित्र किया है। उन्होंने जेलके नियमोंका पालन किया है, इतना ही नहीं, बल्कि उन्हें जेलमें शान्तिपूर्वक विचार करनेका जो समय मिला उसका सदुपयोग करके उन्होंने चाय और बीड़ी छोड़नेका व्रत लिया तथा आजीवन देश-सेवा करनेका प्रण किया। वे जेलमें रहते हुए, निरन्तर इसी बातका ध्यान करते रहे कि वे देशके लिए क्या करें। इस प्रकार, उन्होंने अपने इन बीस दिनोंके जेल-वासका अपूर्व उपयोग किया है। यही कारण है कि जेल जाना हमारे लिए बदनामीकी बात नहीं; बल्कि गौरवकी बात है। भाइयो और बहनो! आप सब यही प्रार्थना करें कि ऐसी जेल तो हम सबको मिले, जिससे हम सब देशकी शुद्ध सेवा कर सकें।

जेलमें रहते हुए इन भाइयोंमें इतना परिवर्तन हुआ इसका कारण मोहनलाल पंड्या हैं। यदि लोगोंमें एक व्यक्ति भी सच्चा हो तो वह कितना काम कर सकता है और दूसरोंपर कितना प्रभाव डाल सकता है, वह उनके जीवनसे जाना जा सकता है।

१. यह सभा जेलसे सजा भुगतकर आये हुए उन सत्याग्रहियोंके स्वागतार्थ की गई थी जो भूमि-कर न देनेपर सरकार द्वारा जब्त खेतोंमें से प्याज उठा लानेके अभियोगमें दण्डित किये गये थे। देखिए "भाषण: नडियादमें", ८-६-१९१८। एक समाचारपत्रकी रिपोर्टके अनुसार गांधीजी इन सत्याग्रहियोंको लानेके लिए महमदाबादसे खेड़ा पैदल गये थे।

मैं अन्य भाइयोंका श्रेय कुछ कम नहीं करना चाहता; लेकिन इतनी बात तो निश्चित है कि यदि जेलमें पंड्या न होते तो इस जेल-यात्राका इतना शुभ परिणाम न निकलता।

जेल जानेमें ही सत्याग्रहकी पूर्णता नहीं हो जाती; किन्तु कुछ अंशोंमें वह सत्याग्रहकी नींव अवश्य है। सत्याग्रह करके जेल जाने और अपराध करके जेल जानेमें सूक्ष्म अंतर है।

उदाहरणके तौरपर यदि कोई व्यक्ति लगान न दे और फिर किसीपर हमला करे तथा जेलमें जाये तो उसका यह कार्य सत्याग्रह नहीं है। यहाँ आक्रमण करना और जेल जाना दोनों ही बदनामीके काम हैं। फिर भी यदि किसीको आक्रमण करनेपर सच्चा पश्चात्ताप हो और वह जेल जाये तो उसका वह कार्य प्रायश्चित्त कहलायेगा; लेकिन उसे सत्याग्रह तो अवश्य ही नहीं कहा जा सकता।

इन भाइयोंके जेलसे छूटकर आनेके अवसरपर आज हम सत्याग्रहके स्वरूपपर विचार करते हैं। जो व्यक्ति सोच-समझकर और मरजीसे अपने ऊपर दुःख ले लेता है वह सत्याग्रही कहलाता है। जो न्याय-सिद्धान्त दो भाइयोंपर लागू होता है वही सरकार और जनतापर भी लागू होता है। सत्याग्रही समाजको सदा प्रसन्न नहीं रख सकता; उसे अनेक बार समाजको अप्रसन्न भी करना पड़ता है और समाजके विरुद्ध भी सत्याग्रह करना पड़ता है। हम चाहते हैं कि सत्याग्रहका सिद्धान्त भारतमें जल्दीसे-जल्दी फैले। भारतका छोटा भाग, छोटेसे-छोटा भाग भी यदि सत्याग्रहको अंगीकार करे तो अनेक महान् कार्य सिद्ध हो सकते हैं। यहाँ उपस्थित लोगोंमें से बहुत-से लोग स्वराज्यके हिमायती हैं। उन्हें एक क्षणके लिए भी सत्य न छोड़ना चाहिए। यदि वे सत्यसे चूकेंगे तो उन्हें घोर अन्धकारसे गुजरना पड़ेगा। उन्हें सूर्यनारायणके दर्शन नहीं होंगे। सत्याग्रहीका कर्त्तव्य यह है कि वह देशके सामने निर्भयतापूर्वक सत्य-सिद्धान्तको रखे। ऐसा करते हुए वह जगत्की सेवा करेगा।

भाइयो और बहनो, मैं कहता हूँ कि यदि हम सत्याग्रहकी पूजा सच्चे दिलसे करना जानते हैं तो हमारा एकमात्र धर्म यही है कि हम मृत्युपर्यन्त सत्यका पालन करते रहें। यदि हमें लगता हो कि सत्यका पालन करते रहनेसे देशका अहित नहीं होगा तो हमें परमात्माको साक्षी मानकर निश्चय करना चाहिए कि चाहे पृथ्वी रसातलको चली जाये तो भी हम सत्यको नहीं छोड़ेंगे। तभी आप सच्चे स्वराज्यवादी होंगे और तभी आप स्वराज्यके सच्चे पदक लगा सकेंगे।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

३१५. भाषण : नवागाँवमें[1]

जून २७, १९१८

आज जेलसे निकलकर, आप भाइयों और बहनोंके सामने जिस व्यक्तिको खड़ा होना था वह व्यक्ति तो मैं था, क्योंकि खेतमें से प्याज खोदनेकी सलाह मैंने दी थी। मैंने ही उनसे कहा था कि तुम सब निधड़क होकर प्याज खोदो, इसलिए वे प्याज खोदनेमें जुट गये। सरकारने उनको रोका; इससे भी उसे सन्तोष नहीं हुआ और उसने उनमें से छः भाइयोंको जेल भेज दिया। जिसे जेल भेजा जाना चाहिए था, सरकारने उसे जेल नहीं भेजा; इसलिए यशके भागी ये भाई हुए। इस अवसरपर हम सब उत्सव मनाने और इन्हें बधाई देनेके लिए गाँव-गाँवसे यहाँ इकट्ठे हुए हैं।

आज नवागाँवकी कीर्ति सारे गुजरातमें फैल गई है। नवागाँवके भाइयोंने जेल जाकर सत्याग्रहके सिद्धान्तपर पूरा-पूरा अमल किया है। बहनें भी समझ गई हैं कि हमने अपराध नहीं किया है, इसलिए जेल जानेमें कोई नामूसी नहीं है। मेरी कामना है कि यह उत्साह समस्त खेड़ा जिलेमें फैल जाये।

हमने लगानकी लड़ाई लड़ी; लेकिन जेल जाना बाकी रह गया था। उसका अवसर भी ईश्वरकी कृपासे मिल गया। इनकी मुखाकृतियोंसे ऐसा नहीं जान पड़ता कि इन्हें जेलमें कोई दुःख भोगना पड़ा होगा। दुःख और सुख मनपर निर्भर हैं। मन जिसे सुख माने वह सुख है और जिसे दुःख माने वह दुःख। हमारे भाइयोंने जेल जानेमें सुख माना था, क्योंकि उन्हें यह विश्वास हो गया था कि अपनी टेककी खातिर और अपने देशकी खातिर जेल जाना चाहिए; और इसी कारण उन्होंने जेल जानेका स्वागत किया। उन्होंने जेलको महल माना और वहाँ संयम-साधना की। इसी तरह आप लोग भी जेल जानेका स्वागत करें, वहाँ जाकर संयम साधें और व्रत लें।

सत्याग्रह-धर्म अति दुःसाध्य है, लेकिन जिस हदतक हम उसका पालन करेंगे उस हदतक हममें मनुष्यत्व आयेगा।

यदि कोई व्यक्ति इस अवसरसे शिक्षा लेकर देशके लिए जीने, काम करने और मरनेका व्रत लेगा तो यह दिन शुभ माना जायेगा। हमारी आनेवाली पीढ़ियाँ भी इसे शुभ मानकर इस दिन उत्सव मनाया करेंगी।

यदि मोहनलाल पंड्या न होते तो आप जितना कर पाये हैं उतना न कर पाते। हम कामना करते हैं कि नवागाँवके भाइयों और बहनोंमें मोहनलाल पंड्याकी तरह हिम्मत आये, जिससे बाहरी सहायताकी आवश्यकता न रहे। पंड्याके अनुभवका लाभ नवागाँवको

१. खेड़ामें जिन जेल-मुक्त सत्याग्रहियोंका स्वागत किया गया था वे ही जुलूस बनाकर उनके गाँव नवागाँवमें ले जाये गये थे।

मिला और जिस यशको प्राप्त करके अन्य कोई गाँव भाग्यशाली बनता वह यश भी नवागाँवको मिला। मेरी कामना है कि आप इस यशका सदा सदुपयोग करें।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

३१६. भाषण : कठलालमें[1]

जून २८, १९१८

मैं देखता हूँ, कुछ लोगोंको यह विश्वास हो गया है कि भारतमें ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं त्यों-त्यों मानो मैं गुरु होनेका दावा करता जाता हूँ। जो चेतावनी मैंने दक्षिण आफ्रिकामें दी थी; वही मैं यहाँ भी देता हूँ। मैं जानता हूँ कि ऐसी चेतावनीसे भी सम्मान प्राप्त होता है। इस जोखिमके बावजूद, मैं कहूँगा कि मैं किसीका गुरु बन ही नहीं सकता। मैं किसीका गुरु बननेके योग्य नहीं हूँ। आजके समान पवित्र अवसर दक्षिण आफ्रिकामें भी आया था। तब भी मैंने इस पदको लेनेसे इनकार कर दिया था और आज भी इनकार करता हूँ। मैं स्वयं किसी धर्म-गुरुकी तलाशमें हूँ। जो व्यक्ति स्वयं किसी धर्म-गुरुकी तलाशमें हो वह दूसरोंका गुरु किस तरह बन सकता है? मेरे राजनैतिक गुरु श्री गोखले थे; लेकिन मैं किसीका राजनैतिक गुरु नहीं बन सकता, क्योंकि मैं राजनैतिक मामलोंमें अभी बच्चा हूँ। दूसरी बात यह है कि यदि मैं गुरु-पद स्वीकार करके किसी व्यक्तिको दीक्षा दूँ और वह मेरे विचारोंके अनुरूप कार्य न करे अथवा भाग जाये तो उससे मुझे दुःख होगा।

मुझे लगता है कि जो व्यक्ति यह कहे, मैं अमुकका शिष्य बन गया हूँ उसे ऐसा कहते समय एकबार नहीं, बल्कि अनेक बार विचार करना चाहिए। जो गुरुका कोई भी आदेश होते ही उसे तत्क्षण वेतन-भोगी सेवकके समान पूरा कर दे, वही शिष्य कहला सकता है। वह वेतन-भोगी सेवकके समान है या नहीं, इसकी कसौटी तभी होती है जब वह उस आदर्शका पूरा पालन करे। अबतक मैंने जो कार्य किये उनसे मैं लोगोंकी निगाहमें आया। वे लोगोंको पसन्द आने योग्य कार्य थे। यदि मैंने इस संघर्षमें कोई दक्षता दिखाई है तो वह इतनी ही है कि मैंने जनताकी अभिरुचि किस ओर है, यह देखकर उसे सही रास्तेपर चलानेकी कोशिश की है; इसीलिए उसका परिणाम शुभ निकला।

मैं सत्याग्रही बननेका प्रयत्न कर रहा हूँ। यह बात नहीं है कि सत्याग्रही सदा लोकमतके अनुसार ही व्यवहार करता है। उसके सामने लोकमतके विरुद्ध लड़नेका समय भी आता है। सत्याग्रहमें असत्य हो ही नहीं सकता। उसमें चाहे जो व्यक्ति भाग ले सकता है। हम सबका जीवन प्रयोगोंसे बना है। यदि हम प्रयोग करते रहेंगे तो उनमें से हमें कुछ-न-कुछ मिलता ही रहेगा। घासके साथ कूड़ा-करकट आता है और गेहूँके साथ भूसी होती

१. यह भाषण मोहनलाल पंड्याको मानपत्र देनेके लिए आयोजित एक सभामें दिया गया था।

है। इसी तरह प्रत्येक प्रवृत्तिमें से हमें दो वस्तुएँ मिलती हैं। जैसे हम गेहूँका उपयोग करते हुए भूसीका त्याग करते हैं वैसे ही जीवनमें भी हमें सत्यको ग्रहण कर असत्यका त्याग करना चाहिए। मुझे बहुत काम करने हैं, उनको मैं आप लोगोंको भाई और बहन मानकर ही पूरा करना चाहता हूँ। आपकी इच्छा हो तो आप मुझे अपना बड़ा भाई मान सकते हैं। मुझे इसीसे प्रसन्नता मिल जायेगी। मैं अपने आपको इसी श्रेणीमें रखता हूँ।

मोहनलाल पंड्या और जेलसे लौटे हुए अन्य भाइयोंके सम्बन्धमें जो-कुछ कहा गया है वह सही है। जेलके भयसे हमारी आँखोंमें आँसू भर आते हैं। इसके बजाय ये भाई प्रसन्न-मुखसे जेल गये, प्रसन्नतासे जेलमें रहे और प्रसन्न ही जेलसे आये। इस कारण, इस अवसरपर हम उन्हें जितनी बधाई दें, उतनी कम है। मोहनलाल पंड्याने इसी संघर्षमें सत्याग्रहका अभ्यास आरम्भ किया और संघर्षके अन्तमें सत्याग्रहकी ऊँची परीक्षा पास कर गये। इनको सम्मान देकर आपने अपना ही सम्मान किया है।

इस सत्याग्रहके फलस्वरूप यदि कठलालकी दशामें परिवर्तन हुआ, और भविष्यमें कठलालमें अनेक सुन्दर कार्य हुए तभी यह समझा जायेगा कि आप सत्याग्रहका अर्थ समझ गये। आज जो वस्तु हमारे हाथ लगी है, वह रत्न-चिन्तामणि है। यदि हम उसे सँभालकर रखेंगे तो वह हमेशा हमें कल्पलताके समान वांछित फल देती रहेगी।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

३१७. पत्रका अंश[1]

[नडियाद]
जून २९, १९१८

मुझे भी यह लड़का[2] निर्दोष नहीं जान पड़ता। आप मुझे खुश रखना चाहें तो ऐसा प्रयत्न करें कि इसे अदालतसे न्याय प्राप्त हो।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. पत्र किसको भेजा गया है इसका पता साधन-सूत्रमें नहीं दिया गया है।

२. हरिलाल, गांधीजीके सबसे-बड़े पुत्र; लगता है इनकी सट्टेबाजीसे किसी व्यक्तिको व्यापारमें हानि पहुँची थी।

३१८. भाषण: नडियादमें[1]

जून २९, १९१८

हमारी कुछ-एक बहनोंने सत्याग्रहका जो पाठ पढ़ाया है, पहले तो मैं यहाँ उसीकी ओर आपका ध्यान खींचता हूँ। हमें कितनी ही बहनोंके दर्शन नहीं होते; क्योंकि वे परदेमें रहती हैं। मैं इन बहनों और इन भाइयोंसे भी जो उन्हें परदमें रखनेके लिए उत्तरदायी हैं, कहता हूँ कि हम अपने आधे शरीरके कुचले जानेकी स्थितिमें भारतका कार्य नहीं कर सकते। जिन बहनोंने यहाँ परदेमें बैठनेकी व्यवस्थाका अनादर करके स्वतन्त्रतापूर्वक बाहर खुली हवामें बैठना पसन्द किया है इसके लिए हमें उन्हें बधाई देनी चाहिए।

आपने मुझे जो मानपत्र भेंट किया है उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। लेकिन जिस व्यक्तिने सेवाधर्मका वरण किया है, वह किसी भी सम्मानको स्वीकार नहीं कर सकता। वह तो अपना सर्वस्व कृष्णार्पण कर चुका होता है। इसलिए जो सम्मान मुझे मिलता है, उसे कृष्णार्पण ही किया जा सकता है। सेवाधर्मी सम्मानका भूखा नहीं हो सकता। जिस क्षण वह सम्मानका भूखा हो जाता है उसी क्षण वह सेवाधर्मसे भ्रष्ट हो जाता है। मैंने अनेक बार देखा है कि कितने ही लोग पैसेके लिए काम करते हैं, कितने ही सम्मानके लिए और कितने ही कीर्तिके लिए। पैसेकी भूख बुरी मानी जाती है; लेकिन सम्मानकी भूख पैसेकी भूखसे कहीं अधिक बुरी है। मनुष्य पैसेके लिए जितनी दुष्टता करता है उससे अधिक दुष्टता कितनी ही बार मान-सम्मानके लिए करता है। आत्म-सम्मानकी रक्षा करना एक बात है और सरकार अथवा जनतासे सम्मान प्राप्त करनेकी इच्छा करना दूसरी बात। सम्मानका भूखा आदमी अपना ही नहीं, बल्कि जनताका भी भारी नुकसान करता है। सम्मान ऐसी चीज है कि वह बड़े-बड़े लोगोंको भी भुलावेमें डाल देता है। यदि आप अपना आत्म-सम्मान बनाये रखना चाहते हैं तो मैं आपसे विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे मानपत्र भेंट न करें। मुझे सम्मान देनेका सबसे अच्छा तरीका यही है कि आप मेरी सलाह मानें; इतना ही नहीं बल्कि उसे अच्छी तरह समझकर क्रियान्वित करें। तभी यह कहा जा सकेगा कि आपने मुझे सच्चा मान दिया है।...[2]

सेनापतिकी चतुराई अपने कार्यकारी-मण्डलका चुनाव करनेमें ही है। किन्हीं आदर्शोंके स्थिर कर लिये जानेपर और कोई खास नियम बना लिये जानेपर सेना उनके आधारपर चलती जाये, तभी काम हो सकता है। यदि सेना उनपर न चले तो अकेला सेनापति कोई बड़ा काम नहीं कर सकता ...।[3] मैंने कोई महान् कार्य सम्पन्न नहीं किया है...।[4] बहुतसे लोग मेरी सलाह माननेके लिए तैयार थे ..।[5] मैंने विचार किया कि उपसेनापति कौन होगा? तब मेरी नजर वल्लभभाईपर पड़ी। मुझे

१. यह भाषण सत्याग्रह-संघर्ष सफल होनेपर गांधीजीने मानपत्रके उत्तरमें दिया था।

२, ३, ४ व ५. यहाँ मूलमें कुछ शब्द नहीं हैं।

स्वीकार करना चाहिए, जब मैंने वल्लभभाईको पहली बार देखा तब मेरे मनमें खयाल आया था कि यह कोई अक्खड़ आदमी है, यह कौन हो सकता है? लेकिन जब मैं उनके निकट सम्पर्कमें आया तब ऐसा लगा कि मुझे वल्लभभाईकी अनिवार्य आवश्यकता है। वल्लभभाईने देखा अभी वकालत चलती है, नगरपालिकामें भी महत्त्वपूर्ण कार्य करता हूँ; लेकिन उससे भी महत्त्वपूर्ण कार्य यह है। मेरा धन्धा आज है, हो सकता है वह कल न रहे; मेरा पैसा कल उड़ जायेगा, मेरे उत्तराधिकारी उसे उड़ा दें, इससे तो अच्छा यही है कि मैं उन्हें कोई अच्छी सम्पदा दे जाऊँ। इन विचारोंसे प्रेरित होकर वे संघर्षमें कूद पड़े। वल्लभभाई मुझे न मिले होते तो जितना काम हुआ है, उतना न होता; उनका मुझे इतना सुन्दर अनुभव हुआ है।

मुझे लगता है कि वल्लभभाईको सम्मान देनेसे अन्य भाइयोंको भी सम्मान मिल जाता है, इसलिए मैं उनका नाम नहीं लेता। अध्यक्ष महोदयने तो वस्तुतः जिस प्रकार बादशाह सम्मान और पुरस्कार दिये जानेवाले व्यक्तियोंकी सूची प्रकाशित करते हैं वैसी सूची प्रकाशित की थी। मैं तो इसमें निमित्त मात्र हूँ। कुछ-एक नाम इस 'शाही सूची' में नहीं आये हैं, और सबके नाम इसमें आ भी नहीं सकते थे। मैं उनके नाम यहाँ दूंगा। जो लोग सेवाधर्मको अंगीकार कर लेते हैं, उन्हें इतनी शान्ति और इतनी प्रसन्नता मिलती है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मैंने संसारके सुखका पूरा-पूरा अनुभव किया और मुझे लगा है कि सच्चा आत्मानन्द तो सेवा-धर्ममें ही निहित है। यहाँ सेवाधर्मके सच्चे उदाहरणके तौरपर मैं अनाथाश्रमके भंगी भाइयोंका उल्लेख करता हूँ। इन्होंने मेरे प्रति जो प्रेमभाव दरसाया है वह अवर्णनीय है। इसी तरह अनाथाश्रमके बालक भी मेरी सेवा करनेमें एक-दूसरेसे होड़ करते थे। उन लोगोंके साथ थोड़ा-सा हँसनेके अलावा मैंने कभी बातचीत नहीं की। मैं इन्हें क्या दूं? मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं है। मैं उन्हें अपने बच्चोंके समान मानता हूँ। मुझे जैसी निःस्वार्थ सेवा इन बालकोंसे मिलती है, वैसी वकीलों और बैरिस्टरोंसे भी नहीं मिल सकती।

हमने बहुत अनुभव प्राप्त किये हैं। सत्याग्रहीके सिरपर अनेक बार जो कष्ट आते हैं वे खेड़ाके हिस्सेमें नहीं आये। मेरे मनमें यह बात थी कि कदाचित् लड़ाई अधूरी रह जायगी, लेकिन इसकी कमी इन जेल जानेवाले भाइयोंने पूरी कर दी। किन्तु वह कमी इस थोड़े दिनकी जेलसे बिलकुल पूरी नहीं हुई। सत्याग्रहकी लड़ाईमें ऐसे रस-पान करनेके अवसर मिलते हैं कि जिन्होंने इस रसका आस्वादन किया है वे अन्य कोई वस्तु नहीं चाहते। इस रसका आस्वादन खेड़ाके लोगोंने किया है उसका कारण उनकी शक्ति, उनका बल और उनकी कार्यदक्षता है। इन गुणोंके कारण ही खेड़ाके लोगोंको महत्त्वपूर्ण फलकी उपलब्धि हुई है। हमने लगानके प्रश्नको लेकर जो विजय प्राप्त की है वह तो बहुत मामूली है, लेकिन जैसा कि मैंने बार-बार कहा है, वैसी निर्भयता और बराबरीका ऐसा भाव कि बड़े-बड़े राज्याधिकारियोंसे हम तनिक भी कम नहीं हैं — ये दोनों ही इसके महान् फल हैं। इस संघर्षके फलस्वरूप आपको यह ध्यान हमेशा बना रहेगा कि हम हर परिस्थितिमें सत्याग्रहका प्रयोग कर सकते हैं। यह अग्नि एकबार प्रज्वलित होनेपर बुझती नहीं, निरन्तर जलती ही रहती है। हम चाहते हैं कि सत्याग्रहका यह फल स्थायी रहे। यह परिणाम हमारे

मनमें स्थिर रहेगा तो खेड़ाके समस्त गाँवोंमें अथवा किसी अन्य स्थानमें सत्याग्रहकी झाँकी मिलती ही रहेगी। खेड़ा जिलेके जैसे शुभ परिणाम मिलते रहें, यही मेरी कामना है।

आपने मानपत्रमें मुझे गुरु-दक्षिणा देनेकी बात कही है। गुरुपद मैं नहीं लेता। यदि आप मुझे अपनी सेवाएँ अर्पित करनेके लिए तैयार हों, तो निश्चय ही मुझे उनकी आवश्यकता है। इसका मूल्य बहुत भारी है।

खेड़ाके लोगोंने मुझपर प्रेमकी जो वर्षा की है और स्वयंसेवकोंने मेरी जो सेवा की है, उसके लिए भगवान्से प्रार्थना है कि वह मुझे सद्बुद्धि और सेवा-धर्मका पालन करनेकी विशेष शक्ति दे। इसी ढंगसे मैं अपना असीम प्रेम प्रदर्शित कर सकूँगा। मैंने आपको कटु-वचन कहे हों तो उनके लिए आप मुझे क्षमा करें। मैंने आपसे कोई बात द्वेषभावसे नहीं बल्कि देशहितके ध्यानसे कही है।

[गुजरातीसे]

खेड़ा सत्याग्रह

३१९. पत्र : एस्थर फैरिंगको[1]

नडियाद

जून ३०, १९१८

प्रिय एस्थर,

तुम्हें पत्र लिखनेका समय इससे पहले नहीं मिल सका। पता नहीं आजकल मैं जो-कुछ लिखता और बोलता हूँ, उस सबको तुमने पढ़ा है या नहीं। जो आदमी जीव-हत्या करना चाहता है परन्तु अपंग होनेके कारण वैसा कर नहीं सकता, उसे मैं क्या सलाह दे सकता हूँ? जीव-हत्या न करनेका माहात्म्य वह समझ सके, इससे पहले वह जो अपना हाथ गँवा बैठा है, मुझे उसे पहले वही वापस दे देना चाहिए। जवान हिन्दुस्तानियोंको सेनामें भरती होनेकी सलाह मैं सदा देता रहा हूँ। परन्तु अबतक उसका सक्रिय प्रचार करनेसे मैंने अपने-आपको रोक रखा था। इसका कारण इतना ही था कि देशके राजनीतिक जीवनमें और खुद युद्धमें मुझे बहुत दिलचस्पी नहीं हुई थी। परन्तु दिल्लीमें मेरे सामने एक कठिन समस्या आ खड़ी हुई। मुझे एकदम सूझ पड़ा कि सेनामें भरती होनेके प्रश्नपर गम्भीरतासे विचार न करूँ, तो इसका अर्थ होगा कि मैं जीवनके सबसे बड़े सवालके साथ खिलवाड़ कर रहा हूँ। हमें या तो इस राज्यसे

१. यह पत्र एस्थर फैरिंगके निम्न पत्रके उत्तरमें लिखा गया था: "मैंने वाइसरायके नाम आपका पत्र पढ़ा है। मैं समझ नहीं सकी कि सत्याग्रहीके नाते आपकी भावनाओंके साथ यह कहाँतक मेल खाता है; या अगर दूसरे ढंगसे कहूँ, तो जो व्यक्ति दृढ़तापूर्वक सत्याग्रहमें विश्वास करता है और जिसने सदैव और सब जगह सत्याग्रहके पालनमें अपना जीवन लगा दिया है, वह दूसरोंसे युद्धमें शामिल होकर लड़नेके लिए किस प्रकार कह सकता है?"

मिलनेवाले सभी लाभ छोड़ देने चाहिए या युद्ध-संचालनके काममें अपनी पूरी शक्तिसे उसे मदद देनी चाहिए। लाभोंका त्याग करनेके लिए हम तैयार नहीं हैं। हिन्दुस्तानियोंको तो दोहरे कर्त्तव्यका पालन करना है। यदि वे शान्तिका सन्देश फैलाना चाहते हों, तो उन्हें पहले युद्धमें अपनी शक्ति साबित करनी होगी। यह भयंकर सत्य मैंने समझा जो राष्ट्र युद्ध करनेके अयोग्य है, वह स्वानुभूत ढंगसे युद्ध न करनेके लाभ सिद्ध नहीं कर सकता। इस बातसे मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि हिन्दुस्तानको लड़ना ही चाहिए। किन्तु यह जरूर कहता हूँ कि हिन्दुस्तानको लड़नेकी कला आनी चाहिए। अहिंसाका अर्थ है, मारने या चोट पहुँचानेकी इच्छाको मिटा देना। अहिंसा ऐसे ही लोगोंके प्रति बरती जा सकती है, जो हमसे हर तरह घटिया हों। इसका अर्थ यह हुआ कि पूर्ण अहिंसा-धर्मीको सर्वांग पूर्णता प्राप्त होनी चाहिए। तब क्या इसका अर्थ यह हुआ कि हम सबको पूरे प्रेमधर्मी बननेसे पहले सैंडो बननेकी कोशिश करनी चाहिए? मुझे यह अनावश्यक मालूम होता है। हमारे लिए इतना ही काफी है कि हम दुनियाका अडिग भावसे सामना कर सकें। जो नितान्त आवश्यक है, वह है वैयक्तिक साहस, और कुछ लोगोंमें ऐसा साहस लड़ाईकी शिक्षा पानेके बाद ही आ सकता है। मैं जानता हूँ कि मैंने अपनी दलील बड़े बेढंगे तौरपर पेश की है। मैं नये अनुभवोंसे गुजर रहा हूँ। अपने आन्तरिक विचार स्पष्ट ढंगसे व्यक्त करनेकी कोशिश कर रहा हूँ। कुछ बातें मुझे अभी साफ दिखाई नहीं दे रही हैं, और जो चीजें मेरे मनमें साफ हो गई हैं, उन्हें व्यक्त करनेके लिए मैं शब्द ढूँढ़ रहा हूँ। प्रकाश और मार्ग-दर्शनके लिए मैं प्रार्थना कर रहा हूँ और खूब विचारपूर्वक काम कर रहा हूँ। मुझे जरूर लिखना और मेरी जो दलीलें तुम्हें टिकने लायक न लगें, उनके हर शब्द और हर वाक्यपर लड़ना। इससे मैं अपना मार्ग खोजनेमें समर्थ होऊँगा।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :]

देवदास इस समय मद्रासमें है, और यदि तुम भी मद्रासमें हो तो उससे मिलना। उसका पता . . . । वह हिन्दीकी कक्षाएँ चला रहा है।

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

३२०. पत्र : जमनालाल बजाजको

नडीयाद
जेष्ठ कृ० ६ [जून ३०, १९१८]

भाईश्री जमनालालजी,

आपका पत्र मीला। रेलवे-खर्चके लीये जो रकम जमा कीई है वह रकम बांध कामके खर्चमें दे सकते हो तो मेरी तकलीफ दूर होती है। दूसरे मित्रोंको भी मैंने लीखा है। भाई शंकरलाल बेंकरने रु० ४००० भेज दीया है। भाई अंबालालजी रु० ५००० भेज रहे हैं। इससे जो खर्च हो गया है उसमें मदद मीलती है। दूसरे दो मित्रसे भी आशा रखता हुं। यदि आप यह २५,००० रु० इस बांध काममें दे दे तो मैं बहौत कर निश्चित हो सकता हुं। *रेल-खर्चकी आवश्यकता नहि है। यह खर्च साधारण आमदनीमें से* चलता है।

मेरे लीखनेसे देना ही चाहिये ऐसा नहीं समझना। यदि आप वे संकोच बांध काममें दे सकते हो तभी देना।

मोहनदास गांधीका बन्देमातरम्

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल हिन्दी पत्र (जी० एन० २८३९) की फोटो-नकलसे।

३२१. पत्र : जी० के० देवधरको

[नडियाद]
जुलाई २, १९१८

प्रिय देवधर,

सेवा-सदनके कामकी रिपोर्ट मुझे भेजी, इसके लिए आभारी हूँ। यह तुम्हारे उद्योगका, तुम्हारी रचनात्मक देश-भक्तिका और तुम्हारे सेवा-प्रेमका कीर्तिस्तम्भ है। उसकी प्रगति सचमुच असाधारण है। शायद सारे हिन्दुस्तानमें उसके जैसी दूसरी संस्था नहीं होगी। तुम अपने यहाँसे अध्यापिकाएँ भेजनेकी स्थितिमें हो, तो मुझे एक बल्कि दो की आवश्यकता है जो चम्पारनमें अवन्तिकाबाई और आनन्दीबाईका स्थान ले सकें।

अब रही बात मेरे सुझावोंकी। अंग्रेजीका थोड़ा-सा ज्ञान होना तो न होनेसे भी खराब है। हमारी स्त्रियोंपर यह अनावश्यक भार है। जहाँ अंग्रेजीसे काम लेनेकी जरूरत न हो, वहाँ उसे काममें लेना बन्द कर दें, तो निश्चित मानो कि अंग्रेज हमारे

१. उन दिनों साबरमती आश्रमकी इमारत बनवाई जा रही थी।

साथ हमारी भाषामें बात करने लगेंगे। उन्हें ऐसा करना ही चाहिए। [दिल्लीके युद्ध] सम्मेलनमें मैं उर्दूमें बोला, इससे लॉर्ड चैम्सफोर्ड बड़े खुश हुए थे। थोड़ी-सी चुनी हुई बहनोंको आप जितनी भी अंग्रेजी पढ़ा सको, जरूर पढ़ाओ, ताकि वे दूसरी बहनोंके लिए अंग्रेजीके सर्वोत्तम विचारोंका अनुवाद करें। इसीको मैं भाषाई किफायत कहता हूँ। इसीलिए मैं तो अंग्रेजीके स्थानपर हिन्दीको ही रखूँगा। इससे महाराष्ट्रीय बहनोंके विचार अधिक उदार बनेंगे और राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताकी हैसियतसे उनकी उपयोगिता भी बढ़ेगी। अभी तो वे अपनी और बहनोंकी तरह विचार-संकीर्णतासे ग्रस्त हैं।

हारमोनियम और कंसर्टीना [तंबूरपेटी या स्वरपेटी] में तो बहुत थोड़ा ही फर्क है। मैं तो बहनोंको वीणा और सितार देना पसन्द करूँगा। ये बाजे सस्ते हैं, राष्ट्रीय हैं और हारमोनियमसे बहुत ऊँचे दरजेके हैं। अन्तमें, फैंसी कामकी अपेक्षा हरएक बहनको हाथ-कताई और हाथ-बुनाई सिखाना मुझे ज्यादा पसन्द होगा। आजकल दो कार्यकर्त्ताओं द्वारा मैं सौ रेंटिये (चरखे) चलवा रहा हूँ। उनसे लगभग तीन सौ बहनोंको रोजी मिल जाती है। जब हिन्दुस्तान अपनी सहज स्वस्थ और शान्त गरिमा पुनः प्राप्त कर लेगा तब ये मिलें भूतकालकी वस्तु बन जायेंगी। उस समय प्राचीन कालकी भाँति हमारे देशकी रानियाँ फिरसे खूब बारीक और बढ़िया सूत काता करेंगी। मैं चाहता हूँ कि वह दिन जल्दी लानेमें तुम मदद दो। विश्वास करो कि थोड़े ही समयमें हमारे यहाँ इन चीजोंकी इफरात हो जायेगी।

साधारण प्रवृत्ति समयके साथ चलनेकी होती है। परन्तु हमें तो हमेशा अपने सामने-की वस्तुओंकी जाँच-पड़ताल और उनमें चुनाव करते रहना है। हमें सदा समयके बहावमें नहीं बह जाना है। हमें तो भविष्यकी आगाही करनी चाहिए। मनुष्य विचारशील हो तो दौड़ते-दौड़ते भी देख सकता है कि आगेका जमाना हस्त-शिल्प कौशलका जमाना है। फिर तुम बहनोंको कातने-बुननेका प्रोत्साहन दोगे तो इससे कुछ खोओगे नहीं। नंगोंको ढकनेमें वे सहायक बनेंगी।

तुमने जितना चाहा था, मैंने उससे बहुत ज्यादा दे दिया है। अमृतलाल और केसरीप्रसादको देनेके लिए मैं तुम्हारा बहुत आभारी हूँ। श्रीमती देवधरसे कहना कि मुझे आशा है, वे थोड़े दिन आश्रममें आकर रहेंगी।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

३२२. पत्र : देवदास गांधीको

[नडियाद]
जुलाई २, १९१८

[चि० देवदास,]

तुम्हारे पत्र बहुत नियमित आते हैं, इससे मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। मैं नियम पालना चाहता हूँ, परन्तु तुम मेरे पत्रोंकी राह हमेशा न देखना। तुम्हारा पत्र आज नहीं आया। श्री नटेसनके सम्बन्धमें जो बात लिखी वह दिलचस्प है। तुम्हें जैसा अनुकूल लगे, वैसा करो। जिस काममें तुम इस समय लगे हो, वह कितना महत्त्वपूर्ण है, शायद अभी तुम्हें इसकी कल्पना भी नहीं हो सकती। साधारणत: ऐसे कामोंमें बहुत चतुर और वृद्ध पुरुषको ही नियुक्त किया जाता है। ऐसा करनेपर भी यह सवाल रहता है कि मद्रास-जैसी जगहमें काफी लोग पढ़ने आयेंगे या नहीं। यदि तुम मद्रास प्रदेशको हिन्दी-दान कर सको और लोग उसे स्वीकार कर लें, तो एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हल हो जाता है। तब यह कहा जा सकता है कि तुमने मद्रासका भारतके दूसरे भागोंसे संगम करा दिया। गंगापर पुल बनानेमें जितने कौशल और धैर्यकी जरूरत है, जिस पुलको तुम बना रहे हो, उसमें उससे ज्यादाकी जरूरत है। तुम हिन्दीको सरल और दिलचस्प बनाओ। इसमें तुम्हारी चतुराईका उपयोग हो जायेगा। इसके लिए तुम्हें फुरसतके समय हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी और तमिल आदि भाषाओंके व्याकरण पढ़ लेने चाहिए। इससे तुम्हें कोई ऐसा सरल मार्ग मिल जायेगा, जिससे तुम लोगोंको थोड़े प्रयत्नसे अधिक सिखा सकोगे। धातुओंसे बने शब्द खूब सिखा देने चाहिए। इससे स्मरण-शक्ति-पर बोझ कम पड़ता है। वहाँ हिन्दीभाषियोंको तमिल पढ़नेके लिए भेजना है। मैंने तुम्हें इसकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें विचार करनेके लिए लिखा था। इस बारेमें श्री नटेसन, हनुमन्तराव और अन्य लोगोंसे बातें करना। रेवाशंकर सोढ़ा और छोटम आश्रममें लौट आये हैं। यद्यपि मेरी जिम्मेदारी बढ़ी है, फिर भी मुझे इससे प्रसन्नता हुई है। हरिलाल राजकोटसे आते हुए आज रातकी गाड़ीमें यहाँसे निकलेगा। . . .[1] की माँके गुजर जानेका समाचार मिला है। तुम उसे पत्र लिखना। इस घटनापर मैंने कल आश्रममें बहुत पवित्र चर्चा की। चर्चाको मैं पवित्र इसलिए कहता हूँ कि सबने बड़े विवेक और धर्म-वृत्तिसे सत्य उत्तर दिये। प्रश्न यह था : अब . . .[2] माँ की मृत्युपर शोक मनाने जाना चाहेगा। इसमें ८०) रुपये खर्च होंगे। क्या आश्रम इस खर्चको उठा सकता है? क्या आश्रमको यह खर्च उठाना चाहिए? जिसने देशके लिए फकीरी ले ली है, जिसने सेवा-धर्म अंगीकार किया है, उसकी माँ मरती ही नहीं; क्योंकि जितनी स्त्रियाँ उसकी माँ बनने लायक हैं, वे सब उसकी माँ हैं। उसका बाप भी नहीं मरता, क्योंकि सभी बड़े-बूढ़े उसके बापके समान हैं। सेवा उसकी स्त्री है। वह तो मर ही कैसे सकती है? और बाकी सब लोग उसके भाई-बहन हैं। माँके लिए शोक मनाने जाना केवल रूढ़ि है। क्या उसका पालन करनेके

१ व २. मूलमें नामोंको छोड़ दिया गया है।

लिए, दुनियाके सामने झुकनेके लिए नाहक रुपया खर्च किया जाये? इस प्रश्नकी चर्चा की गई। सबने शान्त भावसे उत्तर दिया कि इसपर खर्च हरगिज नहीं किया जा सकता। सन्तोक और बा भी मौजूद थीं। फिर भी सबने तय किया कि इस बार यह नियम लागू न किया जाये। . . .[1] और . . .[2] बहनकी मरजीपर छोड़ दिया जाये। बहुत करके वे जायेंगे।

क्या तुम वहाँ कोई अखबार पढ़ते हो? कोई अखबार यहाँसे भेजूं?

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३२३. पत्र: डॉ० प्राणजीवन मेहताको

[नडियाद]
जुलाई २, १९१८

भाईश्री प्राणजीवन,

कुछ दिनोंसे आपको पत्र नहीं लिख पाया हूँ। मुझे जो रुपया यहाँ मिल जाता है उसीसे काम चलाता हूँ। माँगने नहीं जाता। इस समय मुझे रुपयेकी बड़ी जरूरत है। मकान बनानेका काम हो रहा है; मैं इसमें चालीस हजार रुपये खर्च कर चुका हूँ। अभी अवश्य ही साठ हजार रुपये और खर्च होंगे। कमसे-कम डेढ़ सौ आदमियोंकी गुंजाइश करनी है और बीस करघे लगाने हैं। कपड़ा बुनाईका काम बहुत बढ़ता जा रहा है। अहमदाबादकी हड़तालके बाद मैं बहुत-से जुलाहोंके सम्पर्कमें आया हूँ। लगभग तीन सौ स्त्रियाँ चरखा चलाने लग गई हैं। मेरा खयाल है कि थोड़े अर्सेमें हाथका कता दो मन सूत रोज मिलेगा। ये स्त्रियाँ बेकार थीं। इन्हें अब धन्धा मिल गया है। बाहरके तीस-एक जुलाहे भी काम करने लगे हैं। इनमें कुछ ढेढ़ हैं। ये मजदूरी करते थे; अब स्वतन्त्र धन्धा कर रहे हैं। मैं इस कामको बहुत महत्त्वपूर्ण समझता हूँ। इसके लिए भी मुझे अधिक रुपया चाहिए। मेरा अनुमान है कि इसमें मुझे दस हजार रुपये लगाने होंगे। राष्ट्रीय पाठशालाका काम भी उतना ही जरूरी लगता है। मुझे महसूस होता है कि इस समय भी पाठशालाके लड़के उन्हीं श्रेणियोंके दूसरी जगहके लड़कोंसे अच्छे हैं। उनमें निर्भयता आदि जो गुण आ गये हैं, उन्हें तो सभी साफ-साफ देख सकते हैं। मेरा खयाल है कि इस पाठशालापर हर महीने एक हजार रुपये खर्च होंगे। अभी तो खर्च कम है। दोनों कामोंमें मैं खुद लगूँ, तो बेशक उन्हें बहुत बढ़ा दूँ। किन्तु ऐसा कर नहीं पाता। फिर भी मैं देखता हूँ कि दोनों काम अच्छे चल रहे हैं। आपसे मैं अभी बड़ी रकम माँग रहा हूँ और स्थायी व्यवस्था यह चाहता हूँ कि अन्यत्रसे रुपया

१ और २. प्रकाशित पत्रमें इन रिक्त स्थानोंपर मूलमें नामोंको छोड़ दिया गया है।

लेनेके बाद जो कमी रह जाये उसे आप पूरी करें। इतना दे सकें, तो दें। तब मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। आपको मेरा काम पसन्द न हो, तब तो मैं आपसे रुपया माँग ही नहीं सकता। लेकिन यदि आप इसे ठीक समझें, तो मदद देनेमें संकोच न करें।

आप मेरा भरतीका काम देख रहे होंगे। मैं अपने अन्य सब कामोंसे इसे कठिन और महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। इसमें सफलता मिल जाये, तो सच्चा स्वराज्य सहज ही मिल सकता है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३२४. मगनलाल गांधीको लिखे पत्रका अंश

[नडियाद]
जुलाई ३, १९१८

पुस्तकें आनी ही चाहिए। मुझे दूसरी चीजोंके मँगानेकी भी जरूरत जान पड़ती हैं। लगता है कि हमने . . .[1]की सज्जनताका दुरुपयोग किया है। वे जोर देकर नहीं कहते, इसलिए हम अड़ रहे हैं। २४ घंटेकी धमकी देनेपर हम जो करेंगे उसे मैं चाहता हूँ कि हम अभी करें। हम स्वयं अपने आपको धमकी दें, इसके समान कोई अन्य बात नहीं है।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३२५. सैनिक-भरतीके विषयमें चर्चा[2]

[नडियाद]
जुलाई ४, १९१८

स्वराज्यका अर्थ है इंग्लैंडसे सम्बद्ध रहते हुए पूर्ण स्वतन्त्रता। यदि हम इस लड़ाईमें इंग्लैंडकी सहायता कर सकें, तो इंग्लैंड हमपर जो राज्य कर रहा है, उसके बजाय हमारा प्रभाव इंग्लैंडपर रहेगा। हमें फौजी तालीम लेनेकी जरूरत है। मैंने भारतमें अपने समान अहिंसा धर्मका पालन करनेवाला दूसरा कोई देखा ही नहीं। मैं तो प्रेमसे पूर्ण हूँ। जैसे अंग्रेजोंके पापोंको मेरे बराबर कोई नहीं जानता, वैसे ही उनके

१. पुस्तकमें नाम छोड़ दिया गया है।

२. आगन्तुकोंके साथ।

पुण्योंको भी मेरे बराबर कोई नहीं जानता। जिसे शस्त्र-विद्या सीखनी है, जिसे मारना सीखना है, उसे मैं हिंसा करना भी सिखाऊँगा। यदि मैं इस समय कुछ न कर सकूँ, तो आप इसे मेरी तपस्याकी कमी जानें। जिसे मारे बिना मरना न आता हो, उसे मारकर मरना सीखना चाहिए।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३२६. पत्र: एनी बेसेंटको

[नडियाद]
जुलाई ४, १९१८

[प्रिय श्रीमती बेसेंट,]

बिना शर्त फौजी भरतीके पक्षमें आपका जोरदार समर्थन पढ़नेके लिए मैं 'न्यू इंडिया'के पन्ने पलटता हूँ और निराश होकर रह जाता हूँ। इतना तो आपको साफ तौरपर अवश्य ही महसूस हुआ होगा कि अगर हरएक 'होमरूल लीगी' सक्रिय भरती करनेवाला बन जाये, तो जिन परिवर्तनोंपर हम सहमत हों, केवल उन्हीं परिवर्तनोंके साथ हम कांग्रेस-लीग योजना जरूर पास करा सकते हैं। मेरे खयालसे यह ऐसा समय है, जब हमें लोगोंका मार्गदर्शन करना चाहिए। उनकी रायकी प्रतीक्षामें बैठे न रहना चाहिए। मैं आपका वही पुराना जोश देखना चाहता हूँ जो विरोधके सामने और भी जोरदार बन जाता है। अगर हम रंगरूट जुटा देंगे, तो अपनी शर्तें मनवा सकेंगे। किन्तु अगर हम सरकारकी शर्तोंका इन्तजार करते रहे, तो मुमकिन है तबतक लड़ाई खत्म हो जाये, हिन्दुस्तान सच्ची सैनिक शिक्षासे वंचित रह जाये और हमपर सैनिक तानाशाही लद जाये। परिस्थितिपर इस प्रकार विचार करना अत्यन्त स्वार्थपूर्ण है, किन्तु हमारा स्वार्थ बताता है कि देशके सामने मैंने जो रास्ता प्रस्तुत करनेका साहस किया है, वही एकमात्र अक्सीर उपाय है।

मैं जानता हूँ कि आप मेरे पत्रको धृष्टतापूर्ण नहीं समझेंगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

३२७. पत्र : मु० अ० जिन्नाको

[नडियाद]
जुलाई ४, १९१८

प्रिय श्री जिन्ना,

मेरी हार्दिक इच्छा है कि फौजी भरतीके मामलेमें आप एक जोरदार वक्तव्य दें। क्या आप भी ऐसा नहीं मानते कि अगर प्रत्येक 'होमरूल-लीगी' सैनिक-भरती करनेवाला शक्तिशाली एजेंट बन जाये और उसके साथ ही वैधानिक हकोंके लिए लड़ता रहे, तो हम कांग्रेस-लीग योजना को (यदि कोई परिवर्तन हुए तो) सिर्फ उन परिवर्तनोंके साथ, जिनपर हम सहमत हों, निश्चित रूपसे पास करा सकते हैं। हमारी आवाजका प्रभाव तब कहीं ज्यादा होगा। "पहले आप सैनिक-भरतीका दफ्तर खोजिए, बादमें आपको सब-कुछ मिल जायेगा।" हमें जनताको नेतृत्व देना चाहिए इसका खयाल नहीं करना चाहिए कि लोग हमारी सलाहको किस रूपमें लेंगे। मैं आपसे जोरदार वक्तव्यकी आशा रखता हूँ, अगर-मगर वाले वक्तव्यकी नहीं।

मैं जानता हूँ कि आप मेरे पत्रका बुरा नहीं मानेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३२८. पत्र : सी० एस० रंगा अय्यरको

[नडियाद]
जुलाई ४, १९१८

प्रिय श्री रंगा अय्यर,[1]

आपकी बधाईके लिए आभारी हूँ।[2] आप देहातमें बहुत-सी सभाएँ न कर सके, मैं इस बातको अन्यथा नहीं समझूँगा।[3] मैं जानता हूँ कि यह चीज कितनी मुश्किल है। फिर भी देहातमें प्रवेश किये बिना हमारी 'होमरूल' की योजनाएँ किसी कामकी नहीं हैं। आम जनताका समर्थन प्राप्त कर सकें, तो हम अपने ध्येयकी तरफ बेरोक-टोक

१. विधान परिषद्के सदस्य; फादर इंडिया तथा अन्य पुस्तकोंके रचयिता।
२. खेड़ाकी लड़ाईमें सफलता मिलनेपर।
३. रंगा अय्यरने खेड़ा-सत्याग्रहके सम्बन्धमें ४० सभाएँ आयोजित करनेका वचन दिया था।

कूच कर सकेंगे। यह हमारी आँखोंके सामने होनेवाले दुखान्त नाटककी सबसे करुण घटना है कि हम इतनी सीधी-सादी बात भी नहीं समझते। इस चक्रसे आपको बच निकलना हो, तो अपने पत्रके बन्द हो जानेका खतरा उठाकर भी आपको हिन्दी सीख लेनी चाहिए और फिर ग्रामवासियोंके बीच रहकर काम करना चाहिए। मैं जानता हूँ कि आपने अपने पत्रके लिए बड़ी मेहनत की है। किन्तु मैं उस परिश्रमको लगभग व्यर्थ किया गया परिश्रम समझता हूँ। हमने पश्चिमकी जो शिक्षा प्राप्त की है, उसके सुफल हमें करोड़ों देशवासियोंको देने चाहिए। परन्तु हम लोग तो अपने ही बीच विचारोंका आदान-प्रदान किया करते हैं, ठीक वैसे ही जैसे आँखोंपर पट्टी बँधे कोल्हूके बैल उसी चक्करमें घूमते हुए भी यह मानते हैं कि वे प्रगति कर रहे हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३२९. पत्र : प्रभुदास गांधीको

[नडियाद
जुलाई ४, १९१८]

चि० प्रभुदास,

तुम्हारा पत्र मैंने बहुत ध्यान और दिलचस्पीसे पढ़ा है। उसे लिखनेमें तुमने बड़ी समझदारीसे काम लिया है। उसमें अविनय तनिक भी नहीं है। उसकी भाषा विनययुक्त और स्वतन्त्रताकी भावनासे भूषित है। इसलिए मुझे बड़ी मीठी लगती है। तुम्हारे पत्रसे तुम्हारी निर्भयता प्रकट होती है। . . .[1]

मुझे कुछ बातोंकी जानकारी नहीं थी। उनके सिवा तुमने जो-कुछ लिखा है उसका भी आभास-मात्र था। तुमने उसे अधिक स्पष्ट कर दिया है। मेरा ज्ञान इतना नहीं था कि मैं कोई उपाय कर सकूँ। तुम्हारी दी हुई जानकारीसे मैं इस बारेमें कोई उपाय कर सकूँगा। . . .[2]

मेरे धोखा खानेसे जैसे तुम्हारे चरित्र या शिक्षणको कोई धक्का नहीं लगा है वैसे ही हमें कोई नुकसान नहीं पहुँचता। यदि हम एक ऊँचे आदर्शपर कायम रहें, तो कोई हानि नहीं होती। जो आदमी अपना घर साफ रखता है, उसके घरमें प्लेग वगैरा रोग घुस ही नहीं सकते। फिर यदि वे घुस भी आयें, तो वहाँ स्थायी रूपसे निवास नहीं कर सकते। इसी तरह यदि हम खुद साफ रहें, तो दुष्टता रूपी प्लेग

१ व २. यहाँ मूलमें कुछ शब्द छूटे हुए हैं।

हमारे घरमें घुस आनेपर भी लम्बे समय तक नहीं रह सकती। तुमने देखा होगा कि मेरे सम्पर्कमें आनेवाले सभी लोगोंके दोष आगे-पीछे सामने आ ही गये हैं।

मैं तुमसे तुम्हारे पत्रको सम्बद्ध व्यक्तियोंको पढ़वा देनेकी अनुमति चाहता हूँ। वे तुमपर रोष न करेंगे, रोष किया ही नहीं जा सकता। हम आश्रममें ऐसा चाहते हैं कि तुम्हारे और दूसरे लोगोंके मनमें जो विचार हों, उन्हें तुम लोग जाहिर करो। हो सका तो मैं आश्रममें दो रात रुक जाऊँगा और दूसरे दिन सुबहकी गाड़ीसे वापस आ जाऊँगा, ताकि हमें रातका समय मिल सके।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३३०. पत्र : जी० ए० नटेसनको

नडियाद
जुलाई ५, १९१८

प्रिय श्री नटेसन,

देवदासको आपके हाथों नर्सका प्रेम और शुश्रूषा मिल रही है। मुझे खेद है कि आपके अनेक बोझोंमें एक और बढ़ गया। मैंने आशा रखी थी कि देवदास बीमार पड़नेकी असभ्यता नहीं करेगा। देवदासकी देखभाल करनेके लिए कृपया डॉ० कृष्णास्वामीको मेरी ओरसे धन्यवाद दे दें। आपकी खातिर मैं आशा करता हूँ कि वह जल्दी अच्छा हो जायेगा। आपकी माताजीको जो आपत्ति है, उसे मैं समझ सकता हूँ। परन्तु आप दृढ़ रहेंगे, तो वे देवदासके मामलेमें अपनी आपत्ति हटा लेंगी और यह चीज भविष्यके लिए उदाहरण बन जायेगी। आप जानते ही हैं कि नायकरके मामलेमें उन्होंने कितनी शालीनतासे काम लिया था। उन्हें अपने साथ ले चल सकनेकी क्षमतामें आपको स्वयं सन्देह था। अपने घरसे ही सुधार शुरू करनेका विचार न करनेकी हम सुधारकोंको आदत पड़ गई है। अब अपनेको सुधारनेमें हमें कठिनाई पड़ती है। परन्तु आभार व्यक्त करनेके लिए लिखा गया यह पत्र तो उपदेशात्मक हो गया। इस अपराधके लिए क्षमा करें।

मैं जानता हूँ कि यदि देवदासकी हालत चिन्ताजनक हुई तो आप तार दे देंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल अंग्रेजी प्रति (जी० एन० २२३०) की फोटो-नकल से।

३३१. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

[नडियाद]
जुलाई ५, १९१८

आपने 'क्रॉनिकल' में कौन-सी रिपोर्ट पढ़ी, यह मैं नहीं जानता। रंगरूट भरती करनेवाला एक सरकारी अफसर है; उसकी धृष्टता देखिए कि वह मेरा हमनाम है। आपने जो उत्साहपूर्ण रिपोर्ट पढ़ी, वह उसी की होगी। मुझे तो अभी तक एक भी रंगरूट नहीं मिला, सिवा मेरे कुछ साथियोंके जो सैनिकके रूपमें काम करनेको या अपनी एवजमें दूसरे रंगरूट देनेके लिए वचनबद्ध हैं। काम बहुत ही कठिन है। अपनी जिन्दगीमें इतना मुश्किल काम हाथमें लेनेका मौका मुझे पहले कभी नहीं आया। फिर भी किसी परिणामके बारेमें अभीसे कुछ कहना बहुत जल्दी होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नाराण देसाई

३३२. पत्र : देवदास गांधीको

[नडियाद]
जुलाई ५, १९१८

मैं चिन्तामें पड़ गया हूँ। तुम यह तो जानते ही हो कि हमारा नियम क्या है। हमें बीमार हरगिज न पड़ना चाहिए। हम बीमार न हों, इसके लिए हमें संयमकी ही जरूरत है। काफी कसरत और जितनी आवश्यक है, केवल उतनी ही खूराक — इन दो बातोंका ध्यान रखा जाये, तो तन्दुरुस्ती हरगिज नहीं बिगड़ेगी।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३३३. पत्र : मणिभाई पटेलको

[नडियाद]
जुलाई ५, १९१८

भाईश्री मणिभाई,[1]

आपका पत्र मिला। मैं आपकी भावना समझ सकता हूँ; परन्तु सहायता नहीं कर सकता। समय अपना काम कर रहा है। वह आपको शान्ति देगा।

[आपका,]

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३३४. पत्र : सी० एफ० एण्ड्रयूजको

[नडियाद]
जुलाई ६, १९१८

प्रिय चार्ली,

तुम्हारे सभी पत्र मिल गये।[2] इन्हें मैं बहुत कीमती मानता हूँ, यद्यपि उनसे मुझे बहुत थोड़ा आश्वासन मिलता है। तुमने जो कठिनाइयाँ बताई हैं, मेरी कठिनाइयाँ उससे अधिक बड़ी हैं। जो कठिनाइयाँ तुमने उपस्थित की हैं, उनका जवाब तो मैं दे सकता हूँ। इस पत्रमें मैं अपनी कठिनाइयोंको शब्दबद्ध करनेका प्रयत्न करूँगा। फिलहाल इस समय इन कठिनाइयोंने मेरा सारा ध्यान अपनी ओर खींच रखा है। दूसरे जो भी काम मैं करता दिखाई देता हूँ, वे केवल यान्त्रिक रूपमें करता हूँ। बहुत ज्यादा सोचनेका असर मेरे शरीरपर भी पड़ा है। किसीके साथ बात करना मुझे अच्छा नहीं लगता। मुझे कुछ लिखना भी अच्छा नहीं लगता, यहाँतक कि अपने मनके ये विचार भी नहीं। इसीलिए मैं यह पत्र बोलकर लिखा रहा हूँ ताकि देखूं कि अपने विचार स्पष्टतासे प्रकट कर सकता हूँ या नहीं।[3] सच तो यह है कि मैं अपनी कठिनाइयोंकी तहतक नहीं पहुँच सका हूँ। तब फिर उन्हें हल करनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता। उनके हल होनेसे मेरे तात्कालिक कार्यपर कोई असर नहीं होगा। भविष्यकी कुछ नहीं कह सकता। अगर मैं और जीता रहा, तो किसी भी तरह इस भेदका पता अवश्य चलाऊँगा।

१. रावजीभाई पटेलके पिता।

२. इनमें जून २३ का पत्र भी शामिल रहा होगा। देखिए "पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको", २३-६-१९१८ से पूर्वकी पाद-टिप्पणी।

३. इसके लिए गांधीजीने महादेवभाईकी सहायता ली।

तुम कहते हो कि "भारतवासियोंने एक जातिके रूपमें अतीतमें पूर्णतया ज्ञानपूर्वक हिंसाका त्याग किया था और ज्ञानपूर्वक मानवताके पक्षमें खड़े होनेका निश्चय किया था।" क्या यह बात ऐतिहासिक दृष्टिसे सच है? मुझे तो 'महाभारत' या 'रामायण' में, यहाँतक कि अपने प्रिय तुलसीदासमें, जो आध्यात्मिक दृष्टिसे वाल्मीकिसे भी बहुत बढ़-कर हैं, इस बातका कोई संकेत नहीं मिलता। इस समय मैं इन ग्रन्थोंके आध्यात्मिक अर्थोंका विचार नहीं करता। इनमें अवतारी पुरुषोंको अवश्य खूनके प्यासे, वैरसे भरे और दुश्मनके प्रति दयाहीन बताया गया है। शत्रुका पराभव करनेके लिए उन्होंने छल-छद्मका आश्रय लिया, ऐसा भी बताया गया है। इन ग्रन्थोंमें युद्धोंका वर्णन आजकल की अपेक्षा कम उत्साहपूर्ण नहीं है। योद्धाओंको विनाशके उन सभी शस्त्रास्त्रोंसे सुस-ज्जित किया है, जिनकी मानव कल्पना कर सकता है। रामकी कीर्ति गानेके लिए तुलसी-दासजीने जो सर्वोत्तम भजन रचा है, उसमें शत्रुके नाश करनेकी उनकी क्षमताको पहला स्थान दिया गया है। उसके बाद मुस्लिम कालको ले लो। उस कालमें हिन्दू-मुसलमानोंसे कम लड़ाकू नहीं थे। इतना ही है कि वे संगठित नहीं थे। शरीर-बलमें दुर्बल और आपसी झगड़ोंसे छिन्नभिन्न हो गये थे। इस जातिके बारेमें तुम जिस त्यागका आरोपण करते हो, वह त्याग करनेकी बात मनुस्मृतिमें कहीं नहीं कही गई है। प्राणिमात्रके प्रति दयाके सिद्धान्तके रूपमें बौद्ध-धर्म पूरी तरह असफल सिद्ध हुआ है। अगर दन्तकथाएँ सच हों, तो महान् शंकराचार्यने हिन्दुस्तानसे बौद्ध-धर्मको निकाल बाहर करनेके लिए अवर्णनीय निर्दयतासे काम लेनेमें संकोच नहीं किया था। और इसमें वे सफल भी हुए। उसके बाद ब्रिटिश-काल ले लो। जनताका जबरन निःशस्त्रीकरण हो गया है, परन्तु दिलसे मारनेकी इच्छा जरा भी नहीं गई। जैनोंमें भी यह सिद्धान्त बिलकुल असफल साबित हुआ है। इन लोगोंमें खून खराबीसे डरनेका जबरदस्त वहम है। परन्तु दुश्मन हो तो उसके प्राणोंके नाशकी उन्हें उतनी ही परवाह है जितनी किसी यूरोपीयको। मेरे कहनेका अर्थ यह है कि अपने दुश्मनके विनाशसे जैनियोंको भी उतना ही आनन्द होगा जितना इस पृथ्वीपर और किन्हीं लोगोंको। हिन्दुस्तानके लिए अधिकसे-अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि यहाँ कुछ व्यक्तियोंने अहिंसाके सिद्धान्तको लोकप्रिय बनानेके गम्भीर प्रयत्न किये, और इसमें उन्हें यहाँ संसारके किसी भी देशकी अपेक्षा ज्यादा सफलता मिली। मगर ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है कि इस [अहिंसाके सिद्धान्त] ने लोगोंमें गहरी जड़ जमा ली है।

तुम आगे कहते हो: "मेरा मुद्दा यह है कि अहिंसा एक ऐसी अवचेतन किन्तु सहज वृत्ति बन गई है, जिसे किसी भी समय जाग्रत किया जा सकता है; और जैसा कि आपने करके दिखा दिया है।" काश, यह सच होता। परन्तु मैं देखता हूँ कि मैंने ऐसा कुछ भी नहीं कर दिखाया। आफ्रिकामें जब मित्रोंने कहा कि अनाक्रामक प्रतिरोधका सहारा भारतीयोंने कमजोरोंके हथियारके रूपमें लिया है, तब मैं इसे उस समय अपना अपमान समझता था और उसपर हँसता था। परन्तु ऐसा कहनेवाले सच्चे थे और मैं झूठा। मेरे अकेलेके बारेमें और दूसरे कुछ साथियोंके बारेमें यह कहा जा सकता है कि वह हमारी शक्तिका प्रतीक था और उसे 'सत्याग्रह' कहा जा सकता था। किन्तु अधिकांश लोगोंके लिए तो वह केवल शुद्ध अनाक्रामक प्रतिरोध ही था। उसका आश्रय उन्होंने इसीलिए

लिया था कि उनमें हिंसाका मार्ग अपनानेकी ताकत नहीं थी। इस सत्यका अनुभव मुझे खेड़ामें बार-बार हुआ। यहाँके लोगोंने अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र होनेके कारण मेरे साथ निःसंकोच बातचीत की और मुझसे साफ कहा कि उन्होंने मेरा बताया उपाय इसीलिए स्वीकार किया है कि दूसरा मार्ग अख्तियार करनेकी उनमें शक्ति नहीं है। वह निःसन्देह उनकी दृष्टिमें मेरे मार्गकी अपेक्षा कहीं ज्यादा पुरुषोचित था। मुझे भय है कि चम्पारन या खेड़ाके लोगोंमें वह साहस नहीं है कि निर्भय होकर फांसीके तख्तेपर चढ़ जायें या गोलियोंकी बौछार झेल लें और फिर भी कह दें कि 'हम तुम्हारा लगान नहीं देंगे' या 'तुम्हारे लिए काम नहीं करेंगे।' यह साहस उनमें है ही नहीं। और मेरा दृढ़ मत है कि जबतक उन्हें अपनी रक्षा करनेकी तालीम नहीं मिलती, तबतक उनमें ऐसी निर्भयता पैदा नहीं हो सकती। अहिंसाका उपदेश तो उस आदमीके लिए है, जिसके तन-मनमें जीवन-शक्तिका पूरा जोश हो और जो अपने शत्रुओंके सामने सीना तानकर खड़ा हो सके। मेरे खयालसे अहिंसाको पूरी तरह समझने और अच्छी तरह पचानेके लिए शारीरिक शक्तिका पूरा विकास अनिवार्य है।

मैं इस बातमें तुम्हारे साथ अवश्य सहमत हूँ कि हिन्दुस्तान अपने नैतिक बलसे पश्चिमसे या पूर्वसे, उत्तरसे या दक्षिणसे कितनी ही सेना चढ़ आये, तो भी उसे अपने तटोंसे पीछे हटा सकता है। सवाल यह है कि 'ऐसा नैतिक बल वह किस तरह पैदा कर सकता है?' क्या इस नैतिक बलके प्राथमिक सिद्धान्त भी वह तभी समझ सकता है, जब पहले वह अपने शरीरको बलवान् बना लेगा? आज करोड़ों मनुष्य हर रोज प्रातःकाल जगन्नियन्ताके नामकी इस प्रकार हँसी उड़ाते हैं :

"वह निष्कल ब्रह्म मैं हूँ, पंच महाभूतोंसे बना हुआ यह देह मैं नहीं हूँ। मैं हर रोज सवेरे अपने हृदयमें स्फुरित होनेवाले आत्मतत्त्वका स्मरण करता हूँ। जिसके अनुग्रहसे समस्त प्रकारकी वाणी प्रकट होती हो, वेद भी जिसका वर्णन 'नेति-नेति' कहकर करते हैं।"[1]

मैं कहता हूँ कि ये श्लोक बोलकर हम जगन्नियन्ताकी हँसी ही उड़ाते हैं, क्योंकि हम उसके भव्य अर्थका कुछ भी विचार किये बिना उसे तोतेकी तरह रट जाते हैं। इस श्लोकमें जो-कुछ है, उसके पूरे अर्थका एक भी भारतीयको साक्षात्कार हो जाये, तो हिन्दुस्तानपर चढ़ाई करनेवाली बलवान्-से-बलवान् सेनाको हटा देनेके लिए वह अकेला काफी होगा। किन्तु यह ताकत हममें आज नहीं है। और जबतक देशमें स्वतन्त्रता और निर्भयताका वातावरण न फैल जाये, तबतक वह आ भी नहीं सकेगी। सवाल यह है कि यह वातावरण कैसे पैदा किया जाये? यह तभी पैदा होगा जब अधिकांश निवासियोंमें यह विश्वास उत्पन्न हो सके कि उनमें किसी मनुष्य या पशुकी हिंसाके विरुद्ध अपनी रक्षा करनेकी ताकत है। यह तो स्पष्ट है कि किसी बालकको मैं मोक्षका अर्थ

१. 'तद् ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः'
'प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वम्'
'वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण
यन्नेतिनेतिवचनैर्निगमा अवोचुः'

तभी समझा सकता हूँ जब वह बड़ा हो जाये और वयस्कता प्राप्त कर ले। एक हद-तक उसमें इस शरीरकी और आसपासकी दुनियाकी आसक्ति पैदा होने देनी चाहिए। तभी इस शरीरके और दुनियाके क्षणभंगुर स्वरूपकी कल्पना उसे आसानीसे दे सकता हूँ और समझा सकता हूँ कि यह शरीर हमें भोगोंको भोगनेके लिए नहीं, बल्कि उनसे मुक्ति पानेके लिए मिला है। इसी तरह किसी भी मनुष्यके मनमें अहिंसा यानी पूर्ण प्रेमका सिद्धान्त जमानेके लिए वह मन प्राणवान् शरीर द्वारा अच्छी तरह विकसित होकर परिपक्व हो जाये, मुझे इसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। अब मेरी मुश्किल यहाँ पैदा होती है कि इस विचारको व्यवहारमें किस तरह परिणत किया जाये? 'प्राणवान् शरीर' होनेका क्या मतलब है? हिन्दुस्तानियोंको शस्त्र-धारण करनेकी शिक्षा लेनेके लिए किस सीमातक जाना पड़ेगा? हर एक व्यक्तिको यह तालीम लेनी पड़ेगी या इतना ही पर्याप्त होगा कि यदि स्वतन्त्रताका वातावरण उत्पन्न हो जाये तो लोगोंमें हथियार उठाये विना भी अपने आस-पासके वातावरणके प्रभावसे ही आवश्यक वैयक्तिक साहस आ जायेगा? मैं मानता हूँ कि दूसरा विचार सही है, और इसीलिए मौजूदा परिस्थितिमें जब मैं हर एक हिन्दुस्तानीसे सेनामें भरती होनेके लिए कहता हूँ, और साथ-साथ सदा उसे यह बताता रहता हूँ कि जो सेनामें भरती होते हैं, वे खूनकी प्यास बुझानेको नहीं, बल्कि मौतके प्रति निर्भयता सीखनेके लिए भरती होते हैं तो मुझे लगता है कि मैं बिलकुल ठीक कर रहा हूँ। सर हेनरी वेनका यह कथन देखो। उसे मॉर्लेके संस्मरण (खण्ड २)से उद्धृत करता हूँ:

> दुनियाकी महान् जातियोंके जीवनमें मृत्युका बहुत ऊँचा स्थान है। . . . बहादुर और उदारचित्त मनुष्यका यह गुण ही है कि वह कुछ चीजोंको प्राणोंसे ज्यादा महत्त्व देता हो, और वे चीजें ऐसी हों जिनके बारेमें मनुष्यके मनमें कोई शंका न हो और जिनके लिए उसे मरनेसे भय न हो। . . . सच्ची स्वाभाविक बुद्धि मृत्युको जीवनका चरम लक्ष्य मानकर अच्छे ढंगसे मरनेकी कला सीखनेमें लगी रहती है। सचमुच जिसने अच्छी तरह मरना सीख लिया, उसने अपना जीवन व्यर्थ नहीं गँवाया। यह जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व और सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। जिसे मरनेकी कलाका ज्ञान हो गया है, उसीको स्वतन्त्रताका ज्ञान हुआ है, वही सच्ची मुक्त-दशामें रह सकता है। वह किसीसे डरता नहीं। वह अच्छी तरह सन्तोष और शान्तिसे जीवन बिता सकता है। . . . जब जीवन भारस्वरूप बन जाये, तब यह समझ लेना चाहिए कि मरनेका सही अवसर आ गया है। उस समय मृत्यु आशीर्वादके समान है और जीवनमें कोई सार नहीं रह जाता।

फिर मॉर्ले कहता है: "जब उसका समय आ गया, तब टॉवर हिलपर चढ़ते समय वेनकी चाल उसके शब्दों जैसी ही शानदार और दृढ़ थी।"

सैनिक-भरतीके सिलसिलेमें किये गये अपने हर एक भाषणमें एक सैनिकके कर्त्तव्यके इस भागपर मैंने सबसे अधिक जोर दिया है। मेरा एक भी भाषण ऐसा नहीं हुआ, जिसमें मैंने कहा हो कि "चलो, हम जर्मनोंको मारनेके लिए चलें।" मेरे सभी भाषणोंकी ध्वनि यही है कि "हम भारत और साम्राज्यकी खातिर लड़ाईमें जायें और मरें।"

मेरी माँगके जवाबमें खूब अधिक भरती हो जाये और हम सब फ्रांसमें जाकर लड़ाईका पलड़ा जर्मनीके विरुद्ध बदल सकें, तो मेरा खयाल है कि भारतको यह अधिकार प्राप्त हो जायेगा कि उसकी बात सुनी जाये, और तब भारत स्थायी शान्ति स्थापित करा सकेगा। अब आगे कल्पना करो कि निर्भय मनुष्योंकी सेना खड़ी करनेमें मैं सफल हो जाऊँ और ये लोग खाइयोंमें पहुँच जायें और प्रेमपूर्ण हृदयोंसे अपनी बन्दूकें पटककर जर्मनोंको चुनौती दें कि आओ हमपर — अपने मानव-बन्धुओंपर — गोली चलाओ, तो मैं कहता हूँ कि जर्मन-हृदय भी पिघल जायेगा। मैं जर्मनोंपर यह आरोप लगानेसे इनकार करता हूँ कि वे केवल राक्षसी वृत्तिवाले ही हैं। इस प्रकार इन सब बातोंका अर्थ यह हुआ कि अपवादस्वरूप परिस्थितिमें एक आवश्यक बुराईके तौरपर युद्धका आश्रय लेना पड़ सकता है। हमारा यह शरीर भी तो आखिर एक अनावश्यक बुराई ही है। अगर हेतु शुद्ध हो, तो युद्धको भी मानव-जातिकी भलाईमें बदला जा सकता है। कोई अहिंसावादी युद्धके प्रति तटस्थता नहीं बरत सकता। उसे अपना चुनाव करना ही होगा। चाहे वह युद्धमें सक्रिय सहयोग दे या सक्रिय रूपसे उसका विरोध करे।

तुम अपना यह डर बिलकुल छोड़ दो कि मैं राजनीतिक झगड़ों और प्रपंचोंमें फँस जाऊँगा। ये मेरे वशकी चीजें नहीं हैं, इस समय इनमें पड़नेकी मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है, और दक्षिण आफ्रिकामें भी इनमें कोई रुचि नहीं थी। वहाँ मैं राजनीतिक हलचलमें पड़ा जरूर। उसका कारण यह था कि उसमें मुझे अपनी मुक्ति जान पड़ी। मॉण्टेग्युने मुझसे कहा था, "देशकी राजनीतिक हलचलमें आपको भाग लेते देखकर मुझे आश्चर्य होता है।" मैंने तत्काल जवाब दिया था: "आप मुझे इसमें देख रहे हैं, क्योंकि मैं अपना धार्मिक और सामाजिक कार्य इसके बिना नहीं कर सकता। मेरा खयाल है कि अपने जीवनके अन्ततक मेरा यही जवाब रहेगा।"

अब तुम यह शिकायत नहीं कर सकोगे कि मैंने तुम्हें पत्रके नामपर पर्ची लिखी है। पत्रके बजाय मैंने तो तुम्हारे सिर एक लम्बा-चौड़ा निबन्ध ही ठेल दिया है, परन्तु तुम्हें यह बताना जरूरी था कि इस वक्त मेरे मनमें क्या चल रहा है। यह सब पढ़कर इसपर अपनी राय देना और मेरे जो विचार तुम्हें गलत मालूम हों, उनकी निर्दयताके साथ चीरफाड़ करना।

मैं आशा रखता हूँ कि तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर रहा होगा और तुममें शक्ति आ रही होगी। यह कहनेकी जरूरत शायद ही हो कि जब तुम्हारी तबीयत सफर करने लायक हो जाये, तब हम सब तुम्हारे यहाँ आनेसे प्रसन्न होंगे।

सस्नेह,

मोहन

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

३३५. पत्र : एस्थर फैरिंगको

नडियाद
जुलाई ९, १९१८

प्रिय एस्थर,

तुमने मुझसे जो प्रश्न किया, सो बिलकुल ठीक किया। [लेकिन] मैंने जो बात तुम्हें समझाई है, तुम उसका क्या उत्तर देती हो मैं उसकी राह देख रहा हूँ।

तुम्हें ग्रामीण जीवन और गाँवके बच्चोंके बीच रहना ज्यादा पसन्द है, तुम्हारी यह बात मुझे अच्छी लगती है। गाँवोंके बच्चे अधिक भोले होते हैं, इसलिए वे अधिक प्यारे होते हैं।

हाँ, अपने करारके अन्ततक काम करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मैं जानता हूँ कि लड़कियोंको[1] तुम्हारे संपर्कमात्रसे लाभ होगा। यदि उन्हें दोषपूर्ण शिक्षा दी भी जा रही हो तो भी मुझे उसकी परवाह नहीं।

देवदास अभी-अभी बीमारीसे उठा है। मुझे मालूम है कि उसे तुमसे मिलकर प्रसन्नता होगी। अगर वह अभीतक तुम्हारे पास न आया हो तो तुम उससे स्वयं मिलना। मेरी इच्छा है कि तुम्हारे पास समय हो तो तुम उससे जितना मिल-जुल सको उतना मिलो-जुलो।

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

३३६. मु० अ० जिन्नाको लिखे पत्रका अंश

[नडियाद]
जुलाई ९, १९१८

. . . हम रंगरूटोंको भरती करते रहें और उसके साथ-ही-साथ इस सुधार योजनामें परिवर्तन करानेका आग्रह करें, तो कितनी शानदार बात रहेगी। . . .

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई।

१. डेनिश मिशन बोर्डिंग स्कूल, तिरुकोइलूरकी छात्राएँ।

३३७. पत्र : दत्तात्रेय दाभोलकरको

[नडियाद
जुलाई ९, १९१८]

चि० दत्तात्रेय,

तुम्हें पाँचवीं श्रेणीकी परीक्षामें प्रथम आनेपर बधाई देता हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम जैसे पढ़ाईमें प्रथम आये हो, वैसे ही चरित्रमें प्रथम रहो।

तुमने पहले मासकी छात्रवृत्ति आश्रमको दे दी, इससे मुझे खुशी हुई। तुम्हारे दानका तत्त्व जब मैं आश्रममें आऊँगा, तब समझाऊँगा। तुम्हारे पिता तुममें अभीसे इस प्रकारकी परोपकारकी भावना उत्पन्न करते रहते हैं, यह तुम्हारे लिए ऊँचे दर्जेकी विरासत है। तुम इसका विकास करना।

मोहनदास गांधीके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३३८. पत्र : देवदास गांधीको

[नडियाद]
जुलाई ९, १९१८

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र न मिलनेसे जो चिन्ता रहती थी; वह आज नटेसनके तारसे दूर हो गई। बीमारीका उचित कारण ढूँढ़कर कुछ ऐसा करो, जिससे फिर बीमार न पड़ो। बीमारीमें हिन्दी सीखनेवाले छात्रोंने क्या किया? उनमें से कोई तुम्हारे पास आता था? किसीने पढ़ाई जारी रखी थी या नहीं?

मुझे अभीतक एक भी रंगरूट नहीं मिला। देशकी स्थिति ऐसी भयंकर है।

तुमने जो तार वहाँ देखा था, वह ठीक नहीं था। कोई मेरा हमनाम सरकारी अफसर है, इसीसे यह भूल हुई है। अभी तककी मेरी असफलता यह बताती है कि लोग मेरी सलाह माननेके लिए तैयार नहीं हैं। लेकिन जहाँ मैं उनकी रुचिके काममें हाथ डालूँ वहाँ वे मेरी सेवा स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं। यही ठीक है। इस सेवासे सलाह देनेका अधिकार मिलता है। तीन बरसकी सेवा और वह भी अलग-अलग प्रदेशोंमें — यह तो कुछ भी नहीं है। फिर भी भरतीके बारेमें मैं और कुछ कर ही नहीं सकता था। मुझे यह मानसिक शान्ति है कि ऐसे समय मैंने पहल की। मुझे इसकी

जरूरत थी। काम अब भी चल ही रहा है। यह तो मैंने अभी तक का परिणाम बताया है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३३९. पत्र : हरिलाल गांधीको

[नडियाद]
जुलाई ९, १९१८

[चि० हरिलाल,]

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे जो सत्य प्रतीत हुआ, उसे कहना निर्दयता हो, तो मेरा पत्र जरूर निर्दयतापूर्ण है। मैं अब भी कहता हूँ कि दुनिया तुम्हें निर्दोष कभी न मानेगी। तुमने साक्षीमें कुछ भी कहा हो, फिर भी तुम्हारे सट्टेकी कल्पना नरोत्तम सेठको नहीं हो सकती। तुमने तो भूल-पर-भूल की। तुमने दस हजार खोकर भी हाथ नहीं खींचा। लेकिन तुम्हारे साथ बहस नहीं करनी चाहिए। ईश्वर तुम्हें सद्बुद्धि दे। मैंने भूल की होगी तो मैं उसे सुधार लूंगा। तुम मेरी और भी भूल बता सको तो बताना।

मैं तुम्हारे लड़ाईमें शरीक होनेकी बात समझ गया। जब मुझे तुम्हारी सचाईमें शंका नहीं थी, तब मैंने वह सुझाव दिया था। अब मुझे नहीं लगता कि उस सुझावमें कोई रस है। जबसे मुझे शंका हुई है, तबसे मेरी क्या हालत हुई है, मैं इसकी कल्पना तुम्हें नहीं करा सकता।

मेरी तो बस यही इच्छा है कि प्रभु तुम्हारा कल्याण करें; तुम्हें सन्मार्ग दिखायें।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३४०. पत्र : मगनलाल गांधीको

[नडियाद
जुलाई ९, १९१८]

पूज्य खुशालभाई और देवभाभीको शान्ति मिल सके, इसके लिए जो-कुछ करना उचित हो, सो करना। प्रभुदास और अन्य लोग वहाँ भोजन करते हैं, मुझे इसका कुछ विपरीत परिणाम होता दिखाई देता है। केशू और राधाको भारी आघात पहुँचता होगा। विवेकपूर्वक सोचकर जो उचित लगे, सो कर लेना।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३४१. पत्र : एक साथीको

[नडियाद]
जुलाई १०, १९१८

तुम्हारे बारेमें मुझे डर लग रहा है। जिस तरह तुम्हारे साथ जूझ रहा हूँ उसी तरह हरिलालके साथ भी जूझ रहा हूँ। हरिलाल कहता है कि मैंने जो उपाय सुझाया है वह क्रूरतापूर्ण है। मैं देखता हूँ कि वह सही नहीं है, तब मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि वह सच कह रहा है। तुम्हारे मामलेमें भी मेरी यही दशा हो गई है। तुम्हारे सम्बन्धमें भी मैं [लोगोंमें] नाराजी देखता हूँ। तुम्हारे ऊपर ढोंग करनेका आरोप लगाया गया है। उस बार तुम मेरे आदर्शोंकी चर्चा ले बैठे। अब मुझे लिखते हो कि तुम . . .[1] गये उसमें तुम्हारा समय व्यर्थ ही गया। तुमने मुझे धोखा दिया है और . . .[2] को भी तुमने गुमराह किया। तुमने उसे यह सुझाया कि मुझे उसे चिंचवड भेजना चाहिये। उसने मुझसे यह कहा। मैंने उसकी बातको महत्त्व नहीं दिया। अब इन बातोंको याद करता हूँ तो काँप जाता हूँ। तुम्हें क्या लिखूं? मैं तुम्हारा न्याय नहीं कर सकता। तुम्हें झूठा कहते हुए मुझे दुःख होता है। यदि तुम्हारे जैसा व्यक्ति इतना ढोंग कर सकता है, इतना कामचोर हो सकता है तो फिर किसका विश्वास किया जाय? यदि तुमने ढोंग नहीं किया तो मेरे मनपर अकस्मात् ऐसी छाप क्यों पड़ी? . . .[3] का दोष नहीं है। . . .[4] निमित्तमात्र है। मेरा सन्देह जब शुरू हुआ तब तुम . . .[5] में नहीं टिके। ज्योंही सन्देह हुआ त्योंही मैंने उसे दबा दिया; . . .[6] ऐसा नहीं कर सकता, ऐसा सोचकर मैं इस बातको भूल गया। परन्तु मेरा समाधान नहीं हुआ। यह सन्देह और तुम्हारे साथ हुई बातचीत मुझे याद आती है और मैं बहुत असमंजसमें पड़ जाता हूँ। मुझे तुम इस दुःखसे उबारो। या तो अपनी निर्दोषिता पूरी-पूरी सिद्ध करो या शुद्ध पश्चात्ताप करो और सरल बनो। तुम्हारे विषयमें सन्देहकी यह स्थिति असह्य है। तुमपर मैंने बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधी थीं। भारतकी भावी सत्याग्रही सेनामें मैंने तुम्हें अग्रस्थान दिया था। यह सब अब नष्ट-भ्रष्ट हो गया है।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१, २, ३, ४, ५ और ६. मूलमें यहाँ कुछ शब्द छोड़ दिये गये हैं।

३४२. पत्र : मगनलाल गांधीको

बम्बई

आषाढ़ सुदी ६ [जुलाई १४, १९१८]

चि० मगनलाल,

श्री प्रैटसे मिलनेके बाद मैं वापस नहीं आ सका। क्योंकि जगजीवनदासकी बीमारीकी खबर मिली और मुझे नडियाद रवाना होना पड़ा। श्री प्रैटके यहाँ कई अंग्रेज मुझे घेरकर बैठ गये और बड़ी मिठाससे बातचीत करने लगे। उन्होंने आश्रम देखनेके लिए आनेकी इच्छा प्रकट की। मैंने उनसे कहा कि वे शनिवारको आयें। सम्भवतः उस दिन मैं वहाँ होऊँगा। यदि जल्दी रवाना हो सका तो मैं शनिवारको दोपहरकी गाड़ीसे आऊँगा। मैं आऊँ तो ठीक और न भी आऊँ तो उनके आनेकी पूरी उम्मीद रखना। वे शामको पाँच बजेके बाद किसी समय आयेंगे। मैंने उनसे कहा है कि यदि वे प्रार्थनाके समयतक रुकेंगे तो आश्रमको ठीक तरहसे देख सकेंगे। सब लड़कोंको अथवा खास-खास लड़कोंको अंग्रेजी भजन सिखा देना चाहिए। 'लीड काइंडली लाइट' भजन गाना। यदि वे पाँच बजे आयें तो उन्हें रसोई और अन्य स्थान दिखा देना और भोजन भी दिखाना।

मैं यह पत्र बम्बईसे लिख रहा हूँ। मैं करमसदसे सीधा यहाँ आया हूँ। बम्बई में तिलक महाराज हैं। यह तय हुआ है कि मैं उनसे मिलनेके बाद ही अपने योजना सम्बन्धी विचार प्रकट करूँ, इसलिए मैं लोगोंसे मिल रहा हूँ। नडियाद बुधवारकी शामको लौटूंगा। यहाँसे मंगलवारकी रातको रवाना होऊंगा; किन्तु रास्तेमें गोधरा जाना है। गोधरासे उसी दिन नडियाद लौटूंगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

तुम हिसाब तो ठीक-ठीक रख रहे होगे। किसी दूसरेकी सहायता लेकर भी उसको ठीक कर लेना।

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७३२) से।

सौजन्य : राधाबेन चौधरी

३४३. भाषण : करमसदमें[1]

जुलाई १४, १९१८

उन्होंने [गांधीजीने] अपना भाषण प्रारम्भ करते हुए कहा, मैं यहाँ आपको कड़वा घूंट पिलानेके लिए आया हूँ। आशा करता हूँ कि आप लोग यह याद रखते हुए एकाएक उससे मुँह न फेर लेंगे कि स्वशासित और स्वतन्त्रता-प्रिय लोगोंके स्वभावका एक मुख्य लक्षण यह है कि वे सबकी सुनते हैं; परन्तु करते वही हैं जो उन्हें सबसे ज्यादा ठीक लगता है। मैं आपसे पूछता हूँ कि स्वराज्यका अर्थ क्या है?

हमारे गाँव गन्दगीके ढेरोंसे ज्यादा और कुछ नहीं हैं। हम स्वयं डाकुओं और जंगली जानवरोंसे अपनी तथा अपने बाल-बच्चोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं। हमारे ऊपर मुखी और रावनिये अत्याचार करते हैं और हमें धमकाते हैं। हमारे पास हथियार नहीं हैं और हम उन्हें चलाना भी नहीं जानते। क्या यही स्वराज्य है? तिसपर भी सारे भारतमें सामान्यत: स्थिति यही है। आप अंग्रेजोंके किसी गाँवकी स्वच्छता, शान्ति और स्वास्थ्यकर स्वतन्त्रताकी कल्पना करें — फिर देखें कि भारतीय गाँव उसकी तुलनामें कितने हीन हैं। भारतके गाँवोंकी स्थितिसे इंग्लैंडके गाँवोंकी स्थिति इतनी ज्यादा अच्छी होनेका कारण यह है कि प्रत्येक अंग्रेज अपने पैरोंपर खड़ा हो सकता है, हमलावरसे अपने घर-द्वार और गाँवकी रक्षा कर सकता है।

इस प्रकार स्वराज्यका सबसे पहला आवश्यक तत्त्व है आत्मरक्षाकी शक्ति। मैं तभी स्वराज्यके योग्य हूँ जब मैं अपनी रक्षा स्वयं कर सकूँ और अपने देशके लिए अपना रक्त बहा सकूँ। भारतको तभी जिन्दा देश कहा जा सकता है जब उसके लिए ५ लाख आदमी रणक्षेत्रमें प्राण त्याग करें। बीजको असंख्य बीज उत्पन्न करनेसे पूर्व स्वयं मिट्टीमें मिलना पड़ता है। इसी प्रकार भारतके लिए जब हजारों लोग प्राण देंगे तब उनकी राखसे जीवित भारतका जन्म होगा। हम भारतीय रोज प्रात: सायं मन्दिरोंमें जाते हैं और वहाँ ईश्वरकी आराधना करते हैं — उस ईश्वरकी जिसके विषयमें हम कहते हैं कि "जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्मकी वृद्धि होती है तब-तब वह पीड़ित और त्रस्त लोगोंके परित्राणके लिए पृथ्वीपर अवतरित होता है।" यदि हममें आत्म-रक्षा करनेकी क्षमता और भावना नहीं है तो हमें इन मन्दिरोंमें जाना शोभा नहीं देता। वास्तवमें हमारे श्रीराम और श्रीकृष्णने क्या किया था? उन्होंने साधारण कोटिके मनुष्योंमें वीरता भर दी थी और उन्हें आत्मरक्षाके लिए सुसज्जित कर दिया था। इस समय हमारे हाथमें आत्मरक्षाकी शक्ति प्राप्त करनेका स्वर्ण अवसर आया है। हमें चाहिए कि हम उसे खो न दें; बल्कि उसका पूरा लाभ उठायें। वह साम्राज्य, जो अबतक भारतकी रक्षा करता आया है और जिसमें बराबरीके दर्जेका साझेदार बनना

१. श्री गांधी द्वारा फौजी भरतीके बारेमें यह तीसरा भाषण था जिसे उन्होंने आनन्द ताल्लुकेके करमसद गाँवमें दिया था

उसकी आकांक्षा है, आज भारी खतरेमें है और उसके इस संकट-कालमें भारतका उसकी सहायताके प्रति उदासीन रहना शोभाजनक नहीं है। यह दलील व्यर्थ है कि जिस सरकारने हमारे प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखाई वह सरकार हमारी सहायताकी अधिकारिणी नहीं है; क्योंकि सरकारकी सहायता करना अपनी ही सहायता करना है। इस समय भारत भी घोर संकटमें है। अंग्रजोंके बिना भारत कहींका न रहेगा। यदि इस युद्धमें अंग्रेजोंकी जीत नहीं होती तो हम बराबरीका हक किससे माँगेंगे? क्या हम उसे विजेता जर्मनोंसे माँगेंगे या तुर्कोंसे या अफगानोंसे माँगेंगे? हमें ऐसा करनेका कोई अधिकार न होगा। विजयी राष्ट्रका ध्यान हारे हुए लोगोंपर कर लगाने, उन्हें दबाने, तंग करने और उनपर जुल्म ढानेकी ओर जायेगा। ऐसा राष्ट्र अपनी स्थितिको सुदृढ़ कर लेनेपर ही हमारी माँगोंकी ओर ध्यान देगा; इसके प्रतिकूल स्वतन्त्रताप्रिय अंग्रेज जब यह देख लेंगे कि हमने उनके लिए अपनी जानें दी हैं, तब वे निश्चय ही झुकेंगे। हमें इस खयालसे रुके न रहना चाहिए कि हम सबके युद्धमें चले जानेपर हमारे घर-बार, खेत-खलिहान, गाय-बैल — सब बर्बाद हो जायेंगे। हमारे बड़े-बूढ़े उनकी देखभाल करेंगे। उन्हें उनकी देखभाल स्वभावतः करनी ही चाहिए, और इससे हम बहुत कुछ सीखेंगे। हममें से प्रत्येकको केवल एक ही बात सोचनी चाहिए। किसीकी यह जुर्रत न हो कि वह हमारे मुल्कपर हमला करे। अगर करे तो यहाँसे कुछ ले न जा सके। यदि ले भी जाये तो देशकी रक्षाके निमित्त लड़ाईमें काम आये हुए मेरी मृत देहको ही।

भाषणको समाप्त करते हुए उन्होंने इस बातको फिर दुहराया कि फौजमें भरती होना स्वशासनका सबसे सीधा और अचूक मार्ग है। उन्होंने करमसदके बहादुर लोगोंसे जिन्होंने खेड़ा आन्दोलनके दिनोंमें बहुत अच्छा काम किया था, कहा कि वे कमसे-कम सौ आदमी लड़ाईमें जरूर भेजें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २७-७-१९१८

३४४. पत्र : हनुमन्तरावको

जुलाई १७, १९१८

[प्रिय हनुमन्तराव,]

बहुत समयसे तुम्हें पत्र लिखनेका विचार कर रहा हूँ, किन्तु फौजी भरतीके सिलसिलेमें दौड़-धूपके कारण मेरे पत्र-व्यवहारमें बहुत बाधा पड़ी है। आज छुट्टीका दिन है और मैंने चिट्ठियाँ लिखनेका निश्चय किया है। तुमने देवदासके लिए जो-कुछ किया है और जो-कुछ कर रहे हो, उसके लिए मैं अन्तःकरणसे तुम्हारा आभार मानता हूँ। देवदास अपने हर पत्रमें अपने प्रति तुम्हारे प्रेमके बारेमें लिखता है। वह कहता है कि उसकी बीमारीमें तुमने सच्चे मित्रका काम दिया है। अब मैं तमिल सीखनेके लिए हिन्दी उम्मीदवारोंको चुनूँगा।

मैं जानता हूँ कि सैनिक-भरतीके मेरे कामसे मित्रोंको अलग-अलग कारणोंसे — राजनीतिक और धार्मिक कारणोंसे भी — दुःख होता है। फिर भी जानता हूँ कि मेरे इस कामकी निन्दा करके दोनों प्रकारके मित्र भूल कर रहे हैं। बड़े लम्बे अर्सेसे मेरे विचार देशके सामने हैं। परन्तु महत्त्व तो सदैव मनुष्यके कामोंका है, उसकी वाणीका नहीं। किन्तु इसी कारण मुझे उनकी आपत्तियोंको बिना विचारे रद नहीं कर देना चाहिए। वे जो-कुछ कहते हैं ईमानदारीसे कहते हैं और प्रेमके कारण ही मेरी आलोचना करते हैं। मैं स्वयं अहिंसाके सिद्धान्तोंका पालन करते हुए भी लोगोंको अहिंसाका ककहरा भी नहीं समझा पाया; अपनी यह असफलता मैंने देखी है और इससे मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि हर जीव-हत्या हिंसा नहीं है। कभी-कभी तो अहिंसाके पालनके लिए मारनेकी भी जरूरत पड़ सकती है। एक राष्ट्रकी हैसियतसे हम मारनेकी सच्ची शक्ति खो बैठे हैं। यह तो स्पष्ट है कि जो मारनेकी शक्ति गँवा बैठा हो, वह अहिंसाका आचरण नहीं कर सकता। अहिंसामें अत्यन्त ऊँचे प्रकारका त्याग समाया हुआ है। जो जनता कमजोर और कायर हो गई हो वह त्यागका यह भव्य आचरण नहीं कर सकती; ठीक वैसे ही जैसे चूहेके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि उसने बिल्लीको मारनेकी शक्तिका त्याग किया है। यह बात भयंकर भले लगे, परन्तु बिलकुल सच है कि हमें अनवरत और सायास, विचारपूर्वक इस शक्तिको पुनः प्राप्त करना होगा। और उसे प्राप्त करनेके बाद ही हम स्वयं इस शक्तिका सतत् त्याग करके, हिंसाकी यातनाओंसे दुनियाको मुक्त कर सकेंगे। आश्रमके सदस्योंको भी अहिंसाके बारेमें अच्छी तरह समझानेमें अपनेको असफल पाकर मुझे जो दुःख होता था, उसे मैं शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर सकता। ऐसी बात नहीं थी कि वे मेरी बात ध्यानपूर्वक न सुनते हों, लेकिन उस वक्त मुझे ऐसा आभास होता था और अब तो मैं साफ देख सकता हूँ कि सत्यको ग्रहण करनेकी उनमें शक्ति नहीं थी। मेरी बातें उनके लिए वैसी ही थीं, जैसे संगीतका ज्ञान न रखनेवालोंके आगे उत्तम संगीतका गाया जाना। परन्तु आज आश्रममें लगभग हरएक यह बात समझ गया है; और उनके मनमें इस ज्ञानकी प्रभा फूट पड़ी है कि अहिंसाका अर्थ अपने बलका ज्ञान रखते हुए त्याग करना है, निर्बलताके कारण त्याग करना नहीं। व्यवस्थित युद्ध और व्यक्तिगत लड़ाई दोनोंमें कोई भेद नहीं किया जा सकता। डाकुओंके मामलेमें भी संगठित विरोध और संगठित मार-काटका होना आवश्यक है। सर्वोत्तम योद्धा वही कहा जायेगा, जो घोर विपरीत परिस्थितियोंके सामने भी निर्भय खड़ा रहे। उस समय उसे अपनी मारनेकी शक्तिका विचार नहीं आता। बल्कि उसे यह विचार करके अपनी विजयका भान होता है कि यदि वह चाहे तो भागकर आसानीसे जान बचा सकता है, लेकिन वैसा न करके वह खुशीसे मरनेको तैयार खड़ा है। मैं निश्चित रूपमें मानता हूँ कि हमें अपने बच्चोंको आत्म-रक्षाकी कला सिखानी ही पड़ेगी। मुझे यह अधिकाधिक स्पष्ट प्रतीत होता है कि अगर हम आत्म-रक्षाकी शक्ति पुनः प्राप्त न कर सके, तो युगोंतक स्वराज्यके लिए अयोग्य रहेंगे। इसपर से आत्मविश्वास और भारतके विकासके बारेमें अपनी कितनी ही धारणाओंपर मुझे पुनर्विचार और परिवर्तन करना पड़ा है। आज जितना मैंने कहा है, उससे ज्यादा चर्चा यहाँ नहीं करूँगा। तुम ज्ञानके सच्चे खोजी हो। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम अहिंसाका यह

नया विचार भली-भाँति समझ जाओ। इसमें पतन नहीं, बल्कि उन्नति है। अपनी इस खोजके कारण मेरे मनमें प्रेमकी जो भावना पैदा हुई है, वह पहलेसे अनन्त गुनी है।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

३४५. पत्र: वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको[1]

[नडियाद]
जुलाई १७, १९१८

प्रिय श्री शास्त्रियर,

आपके बम्बई जा सकनेसे मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मेरे खयालसे यदि आप कांग्रेस [अधिवेशन] में[2] शामिल हो सकें तो बहुत बड़ा काम करेंगे। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि पण्डितजीका रवैया जैसा अखबारोंमें बताया गया है, वैसा हो, तो मेरी उनके साथ सहानुभूति है। उनके लिए कांग्रेसके मंचसे अनुपस्थित रहना उनके जीवनका एक अत्यन्त साहसपूर्ण कार्य होगा। मुझे जो लगता है वह यह है कि मैं उस सभामें कैसे उपस्थित रहूँ, जिसमें, मैं जानता हूँ, गलत नेतृत्व दिया जानेवाला है, और प्रस्तावोंको पेश करनेवाले प्रमुख लोग जिनमें उनका विश्वास नहीं है वह बात कहते हैं और जिन प्रस्तावोंके पक्षमें वे मत देंगे बादमें उन्हीं प्रस्तावोंकी खुद ही समाचारपत्रोंमें निन्दा करेंगे? मैं जानता हूँ कि इस प्रश्नका दूसरा पहलू भी है, किन्तु इस क्षण तो मैं अलग रहनेकी तरफ ही झुकता हूँ। आशा है आपकी तबीयत अच्छी होगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

१. गांधीजीने यह पत्र श्री शास्त्रीके निम्न-पत्रके उत्तरमें भेजा था: "समाचारपत्रोंमें बिलकुल विपरीत बात लिखनेके बाद अब श्रीमती बेसेंट और तिलकको वह रुख अपनाते देखकर आश्चर्य होता है जो आपके और मेरे रुखसे मिलता-जुलता है। कांग्रेसमें दिलचस्पी न लेनेकी जो बातें की जा रही हैं, उन्हें मैं पसन्द नहीं करता। मैं इस बातको समझ ही नहीं पाता।"

२. अगस्त २९ से सितम्बर १ तक बम्बईमें होनेवाले कांग्रेसके विशेष अधिवेशनमें मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधार-योजनाको लेकर फूट पड़ जानेकी आशंका की जा रही थी, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। कांग्रेसने जो प्रस्ताव पास किया उसका सर्वत्र स्वागत किया गया।

३४६. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

[नडियाद]
जुलाई १८, १९१८

आपने लिखा है कि मैं आपको अभी हालमें प्रकाशित सुधार-योजनाके[१] सम्बन्धमें अपने विचार बताऊँ। आप जानते ही हैं कि मुझे कांग्रेस और मुस्लिम लीगकी योजना तैयार करनेमें सक्रिय भाग लेनेकी जरूरत नहीं लगी थी। मैंने राजनीतिक विवादमें पूरी दिलचस्पी नहीं ली है। मैं इन सुधार-प्रस्तावोंका अध्ययन जिस ढंगसे एक राजनीतिज्ञ करता उस ढंगसे उनका अध्ययन करनेका दावा अभी तक नहीं कर पाऊँगा। इसलिए मैं उनके सम्बन्धमें अपनी सम्मति देते हुए बहुत अधिक झिझकता रहा हूँ। फिर भी मैं उनके बारेमें मेरी जो राय बनी है उसे व्यक्त करनेके पक्षमें आपके तर्कको महत्त्वपूर्ण समझता हूँ।

मेरी राय तो यह है कि जो योजना अभी हालमें प्रकाशित हुई है वह बहुत अच्छी बन पाई है और इस दृष्टिसे कांग्रेस-लीग योजनासे अच्छी है। मेरा यह भी खयाल है कि श्री मॉण्टेग्यु तथा लॉर्ड चैम्सफोर्ड दोनों ही सच्चे दिलसे भारतका कल्याण चाहते हैं। और २० अगस्तकी घोषणापर उचित अमल करना चाहते हैं। उन्होंने अपने अत्यन्त कठिन और नाजुक कामको पूरा करनेके लिए बहुत परिश्रम किया है और मेरे मनमें इसके सिवा और कोई खयाल आ ही नहीं सकता कि जल्दबाजीमें उनकी इस योजनाको अस्वीकृत कर देना देशके लिए अहितकर होगा। मेरी विनम्र सम्मतिमें इस योजनाको एकदम नामंजूर कर देनेकी अपेक्षा उसके सम्बन्धमें सहानुभूतिसे विचार किया जाना चाहिए। परन्तु उसमें पहले बहुत-कुछ संशोधन करनेकी जरूरत है; सुधार-वादियोंको वह तभी मंजूर होगी। आखिर, कांग्रेस-लीग योजनाको ही हम अपना मापदंड मान सकते हैं फिर वह भले ही अनगढ़ क्यों न हो। मेरा खयाल तो यह है कि हम जिन तत्त्वोंको आवश्यक समझते हैं उन्हें उस योजनामें शामिल करानेके लिए हमें अपनी पूरी शक्ति और बुद्धि लगानी चाहिए।

उदाहरणार्थ मैं किन्हीं खास वर्गोंके लिए स्थान सुरक्षित करनेके सिद्धान्तको नहीं मानता। मुझे बहुत अंदेशा है कि यह प्रयोग प्रान्तोंके दुहरे शासनसे असफल हो जायेगा। चूँकि इस प्रयोगकी सफलताके पश्चात् ही हम आगेकी मंजिलपर — आशा है कि वही अंतिम मंजिल होगी — पहुँच सकते हैं, इसलिए हम इस बातको लेकर अड़ नहीं सकते कि संरक्षणोंके विचारको योजनामें से निकाल दिया जाये। यह बात सभीके ध्यानमें आयेगी कि दुर्भाग्यसे विशुद्ध भारतीय हितोंसे पृथक विशुद्ध ब्रिटिश हितोंके सम्बन्धमें हमारी

१. वैधानिक सुधारोंपर ई० एस० मॉण्टेग्यु और लॉर्ड चैम्सफोर्ड द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट जो जुलाई, १९१८ को प्रकाशित की गई थी। श्री शास्त्रियरने अपने समाचारपत्र सर्वेंट ऑफ इंडियामें प्रकाशित करनेके लिए उस योजनापर गांधीजीके विचार माँगे थे।

नीयतपर संदेह किया जाता है। इसीलिए इन हितोंके पक्षमें योजनामें सुविचारित संरक्षण दिखाई देते हैं। मेरे खयालमें सबसे ज्यादा जरूरत इस बातकी है कि इन स्वार्थोंके सम्बन्धमें एक सच्चा, खरा और सीधा समझौता कर लिया जाये। व्यक्तिगत रूपसे तो मैं इस विचारका हूँ कि अकेले अंग्रेजोंकी या अंग्रेजों और भारतीयों दोनोंकी मिली-जुली चतुराईसे कोई चमत्कारिक कानून बनानेकी अपेक्षा मेरा उपर्युक्त सुझाव अधिक महत्त्वपूर्ण है। निश्चय ही मैं अत्यन्त विनम्र भावसे, परन्तु उतनी ही दृढ़तासे, यह कहना चाहता हूँ कि इन स्वार्थोंका खयाल भारतके हितोंके बाद ही किया जायेगा। इसलिए मेरा निवेदन है कि जहाँतक ये स्वार्थ भारतकी सामान्य प्रगतिसे असंगत हैं वहाँतक निश्चय ही ये जोखिममें हैं। इस प्रकार यदि मेरी चलती तो मैं फौजी खर्चमें कमी कर देता। मैं अपने उद्योगोंसे स्पर्धा करनेवाले विदेशी मालपर भारी कर लगाता और इस प्रकार देशी उद्योगोंकी रक्षा करता। मैं देशके प्रशासनमें अंग्रेज अधिकारियोंकी संख्या कमसे-कम कर देता — मैं केवल उन्हींको रहने देता जिनकी आवश्यकता भारतीयोंको प्रशिक्षण या पथप्रदर्शन देनेके हेतु पड़ती। मेरे खयालसे उन्हें हमारा ध्यान खींचनेका केवल इतना ही अधिकार है कि उन्होंने हमारे देशको जीता है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। हममें राष्ट्रीय अपनत्वकी भावना आते ही और अपनी खोई हुई चीजको फिर ले लेनेके अधिकारके प्रयोगकी शक्ति पैदा होते ही उनका यह अधिकार अवश्य ही समाप्त हो जायेगा। वे स्वयं विजेताके नाते अपना कोई दावा पेश नहीं करते। उनकी यह बात सराहनीय है। इंडियन सिविल सर्विस की कर्त्तव्यपरायणता और महान् संगठन-शक्तिकी जो प्रशंसा की गई है, उससे सभी बिना किसी कठिनाईके सहमत हो सकते हैं। जहाँतक आर्थिक पुरस्कारका सवाल है, इन पदोंपर अंग्रेजोंको बड़ी लम्बी-लम्बी तनख्वाहें मिलती रही हैं और इसके अतिरिक्त हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता स्वयं उनके सद्गुणोंका अनुकरण करके सर्वोत्तम रूपमें प्रकट कर सकते हैं।

संभवतः सुधारकी ऐसी किसी योजनासे भारतको लाभ नहीं पहुँच सकता जिसमें इस बातका ध्यान न रखा गया हो कि वर्तमान शासनका उच्चस्तरीय खर्च अनापशनाप बढ़ा हुआ है और वह शासन इतना महँगा है कि उससे देश बर्बाद हो रहा है। मेरी दृष्टिमें अगर भारतको कानून, व्यवस्था और सुशासनकी इतनी कीमत चुकानी पड़े कि देशवासी बेहद गरीब हो जायें तो मैं कहूँगा कि ऐसा शासन हमें अत्यधिक महँगा पड़ रहा है। सुधारोंके अन्तर्गत बनाई जानेवाली परिषदोंका मार्गदर्शक सूत्र यह न होना चाहिए कि इस विकासशील देशकी बढ़ती हुई आवश्यकताको देखते हुए कर बढ़ाये जायें, बल्कि यह होना चाहिए कि उसका आर्थिक बोझ हलका किया जाये; क्योंकि आर्थिक बोझसे देशके महत्त्वपूर्ण विकासकी बुनियाद कमजोर हो रही है। यदि इस बुनियादी तथ्यको स्वीकार कर लिया जाये तो हमारे हेतुके बारेमें तनिक भी सन्देहकी जरूरत नहीं रहती और मैं कोई भी जोखिम उठाये बिना कह सकता हूँ कि अन्य सभी मामलोंमें अंग्रेजोंके निहित स्वार्थ भारतीयोंके हाथोंमें पूर्ण रूपसे वैसे ही सुरक्षित रहेंगे जैसे वे स्वयं उनके हाथोंमें हैं। ऊपर कही हुई मेरी बातसे स्पष्ट है कि कांग्रेस-लीग योजनाके द्वारा जो यह माँग पेश की गई है कि सिविल सर्विसकी ऊँची नौकरियोंमें से आधी भारतीयोंको तुरन्त दी जानी चाहिए, हमें उसको मनवानेके लिए जोर देना चाहिए। मेरा यह कथन

सरकारी योजनाके सम्बन्धमें मेरा दृष्टिकोण बताता है। जहाँतक इस सवालका ताल्लुक है वहाँतक यह मेरी सुविचारित सम्मति है; परन्तु मैं सम्राट्की सरकारके पास जिन सुधारोंका सुझाव भेजना चाहता हूँ वे सभी इसमें नहीं आ जाते। मेरा खयाल है कि हम सब यथासमय इस योजनाका विवेचन संस्थाकी ओरसे करेंगे; इसलिए इस सम्बन्धमें मैं विस्तृत विचार कर भी सकूँ तो उसकी जरूरत नहीं जान पड़ती।

अन्तमें मैं अपनी यह बात बताए बिना खत्म नहीं कर सकता कि मेरी समझमें हम लोगोंके सामने अपनी सम्मति मनवानेका — फिर वह सम्मति अन्ततोगत्वा कैसी भी हो — सबसे अच्छा मार्ग कौन-सा है। इस ऐतिहासिक अभिलेखके अन्तिम भागमें कहा गया है कि हजारों सुधारवादी भारतीय इस योजनाको बड़ी उत्सुकतासे पढ़ रहे हैं — इस कथनसे मैं पूर्णतया सहमत हूँ। "एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मामलेमें जिस उत्तरदायित्वकी भावनासे ये सिफारिशें की जाती हैं, उत्तरदायित्वकी वह भावना यह जानकर और भी बढ़ जाती है कि जब यह रिपोर्ट लिखी जा रही है तब भी फ्रांसकी रणभूमिमें इससे भी बहुत अधिक महत्त्वके प्रश्नोंका निर्णय करना अभीतक शेष है। भारतके भविष्यका निर्णय, दिल्ली या ह्वाइट हॉलमें नहीं, वहीं किया जायेगा।" ईश्वर हम स्वराज्यवादियोंको यह सीधा-सादा सत्य समझ सकनेकी बुद्धि दे! हमारी स्वतन्त्रताका प्रवेश-द्वार फ्रांसकी युद्धभूमिमें है। रक्त बहाये बिना आजतक किसीको कभी कोई उल्लेखनीय विजय नहीं मिली। यदि हम इतना करें कि स्वराज्यवादियोंकी एक अपराजेय सेनासे, जो मित्रराष्ट्रोंके उद्देश्यकी जीतके लिए लड़े, फ्रांसकी रणभूमिको पाट दें तो यह लड़ाई हमारे उद्देश्यकी भी लड़ाई होगी। तब हम सुदूर भविष्यमें या निकट भविष्यमें ही नहीं, बल्कि तत्काल भारतके स्वराज्य-प्राप्तिके अधिकारको सिद्ध करेंगे। इसलिए देशवासियोंको मेरी यही सलाह है; बिना किसी शर्तके, अंग्रेजोंके साथ मिलकर विजयके लिए मृत्युपर्यन्त लड़ो और साथ ही अगर आवश्यक हो तो राजनैतिक सुधारोंके लिए मृत्युपर्यन्त आन्दोलन करो। नौकरशाहीकी प्रबलतम विरोधी शक्तियोंपर विजय पानेका यही अच्छा, सीधा मार्ग है और निश्चित विजयके अन्तमें इसमें कोई दुर्भाव न रहेगा।

केवल अड़ंगा-नीतिको अपनाकर और विध्वंसक आंदोलनसे उद्देश्यको प्राप्त करना असम्भव नहीं है, यह माना जा सकता है; परन्तु यह बात शीघ्र ही समझमें आ जायेगी कि यदि उन तरीकोंको काममें लाया जाये, तो अंग्रेजों और भारतीयोंके बीच दुर्भाव पैदा हो जायेगा और वह बात भावी साझेदारोंको मिलानेमें किसी खास योजक तत्त्वका काम नहीं करेगी।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २४-७-१९१८

३४७. पत्र : जमनालाल बजाजको

नडियाद
आपाढ़ शुक्ल १० [जुलाई १८, १९१८]

सुज्ञ भाईश्री जमनालालजी,

मैं मुंबईसे कल रातको आया। भ्रमणमें रहनेसे पत्र आजतक नहि लीख सका। आपका पत्र आनेसे मैं निचित हो गया हूं। भाई अंबालालजीने रु० ५००० भेज दीये हैं और भाई शंकरलाल बेंकरने रु० ४००० दीये हैं। जिन भाई मेरी भिक्षाका अनादर नहीं करते हैं उनको मेरी जरुरयत सुनानेमें मुझको संकोच लगता है [पर] न सुनाना अशक्य होता है। इसलीये मेरी तिव्र इच्छा है कि जब मेरी भिक्षा स्वीकारनेमें हरज हो उस वखत अस्वीकार करनेसे मेरी पर अनुग्रह होगा।

आपका दर्द तो अब तद्दन नष्ट हुआ होगा।

आपका
मोहनदास गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल पत्र (जी० एन० २८४०) की फोटो-नकलसे।

३४८. पत्र : आनन्दशंकर ध्रुवको

[नडियाद]
जुलाई १८, १९१८

आदरणीय भाई,

आपका पत्र मिला। क्या आपको अपने विस्तृत अध्ययनमें कोई ऐसी दवा मिली ही नहीं, जिससे चाहे हमारे सगे-सम्बन्धी मरें, बीमार हों, हमारे हाथपर रेलगाड़ीकी खिड़की गिरे, और हमारे पैरमें ठोकर लगे लेकिन हम समस्त दुःखोंसे मुक्त रहें और केवल सुख ही अनुभव करें? क्या सचमुच अध्ययनसे प्राप्त कष्टमें कुछ कमी हो सकती है, या वैद्य ही उसमें कमी कर सकता है? इसका जवाब जब आप अच्छे होकर मिलेंगे, तभी दीजिएगा। और मजदूर तो धैर्यवान् हैं, इसलिए प्रतीक्षा करेंगे। और अगर प्रार्थना फलती हो, तो जरूर ऐसी प्रार्थना कीजिए कि आपका हाथ तुरन्त फिर काम करने लगे। इस बीच उनमें से अधिकतर तो पैंतीस नहीं, बल्कि पचास फीसदी वृद्धि लेने लगे हैं। अम्बालालभाई कह रहे थे कि वे आपके कानमें कुछ बात कहेंगे। उन्होंने मेरे कानमें तो कह दी है। परन्तु आप तो उनके मुंहसे ही सुनेंगे तो अच्छा होगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३४९. पत्र : जगजीवनदास मेहताको

[नडियाद]
जुलाई १८, १९१८

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे कोट और रुपयोंकी चोरी सुनकर अफसोस हुआ। 'दुबले और दो असाढ़' वाली बात हो गई। अनाथाश्रममें कोई चोर है। दो-तीन बार ऐसा हो चुका है। किसीको चाहिए था कि तुम्हें चेता देता, परन्तु किसीको नहीं सूझा।

तुम्हारा बुखार बिलकुल चला गया होगा। भाई जीवराजको आज[1] ही पत्र लिख पाया हूँ। वह भी इसके साथ है। ठीक लगे, तो भेज देना।

तुम्हारे व्यापारकी स्थितिकी कुछ कल्पना मुझे इस बार हुई। तुम जिस रुपयेसे व्यापारमें लगे हुए हो, वह मुझे दुःखकर प्रतीत होता है। मेरी सलाह किसी भी कामकी हो, तो तुम आज ही अपना व्यापार समेट लो, रुपये जिससे लिये हैं, उसे लौटा दो और कोई नौकरी तलाश कर लो। तुम्हें नौकरी मिलनेमें तो अड़चन पड़ ही नहीं सकती। तुम्हें केवल सादा जीवन बिताना हो, तो आश्रम खुला ही है। मेरा आग्रह नहीं है। संसार जिसे पुरुषार्थ मानता है, वह तुम्हें करना हो तो भले ही करो, परन्तु करो अपने ही बलपर। इस काममें तुम जितनी ढिलाई करोगे, तुम्हें उतना ज्यादा पश्चात्ताप होगा।

सब जगह सभी अपने ही हाथों दुःख भोगते हैं। किन्तु मैं जैसे-जैसे तुम्हारे कुटुम्ब-जालको समझ रहा हूँ, वैसे-ही-वैसे तुम सबके बारेमें इस बातको अधिक अनुभव करता हूँ। उससे तुम छूटो। साहस करनेपर सबके हिस्सेमें जो दुःख आता है, उतने से ही सन्तोष मानो। अधिक न उठाओ। सारे सम्बन्ध साफ रखो। बापा तो खुद ही दुःखके ढेर इकट्ठे करते हैं। वे जब धार्मिक जीवन बिताते हैं, तब उनमें इतनी लोलुपता क्यों है? ऐसी लोलुपताको तुम किस लिए प्रोत्साहन दो? . . .[2] यदि हम जितनी परवाह अफवाहोंकी करते हैं, उतनी अपने अन्तरके विचारोंकी करें, तो हम देवताओंसे भी अधिक सुखी रहें। हम घरमें विद्यमान सुखको न पहचानकर चारों तरफ़ ढूँढ़ते हैं। तुम ऐसी ढूँढ़-खोजमें क्यों पड़ते हो?

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. गांधीजीके मित्र और चिकित्सक।
२. मूलमें यहाँ कुछ शब्द छूटे हुए हैं।

३५०. पत्र : श्रीमती जगजीवनदास मेहताको

नडियाद
जुलाई १८, १९१८

प्यारी बहन,

तुम्हारा दुःख मुझसे नहीं देखा गया; फिर भी मैंने यह समझ लिया कि जो निर्दोष आनन्द मैंने तुममें देखा, वह न तो बापामें[1] देखा और न भाई जगजीवनदासमें। इससे मेरा हृदय छिद गया है और मैंने भाई जगजीवनदासके नाम पत्र[2] लिखा है। उसे तुम दोनों हृदयस्थ करो, खूब सोचो और बादमें साथ-साथ पुरुषार्थ करो। यह पत्र तुम दोनोंके लिए है।

[तुम्हारा,]

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३५१. पत्र : कोतवालकी बहनको[3]

नडियाद
आषाढ़ सुदी १० [जुलाई १८, १९१८]

प्यारी बहन,

आपका कार्ड मिला। भाई गोगटेका पत्र नहीं मिला। जान पड़ता है वह मेरे भिन्न-भिन्न पतोंपर भेजा जाकर कहीं खो गया है। मैंने जब आपको पत्र लिखा था तब मैं अपनी लड़ाई सम्बन्धी प्रवृत्तिमें नहीं पड़ा था। मैं नहीं जानता कि अब मैं आश्रममें कब आकर रहूँगा। मैं समझता हूँ कि यदि आप मेरी अनुपस्थितिमें आश्रममें आयें तो आपको कष्ट हो सकता है और मेरा विश्वास है कि आपकी उपस्थितिसे आश्रमवासियोंको भी संकोच होगा। आश्रममें फिलहाल जगह भी नहीं है। जितनी मुझे उम्मीद थी उतनी तेजीसे मकान नहीं बन सके हैं। इसलिए मैं आपको आनेके लिए कहनेमें हिचकिचाता हूँ। लेकिन यदि आप आश्रमकी कठिनाइयोंको सहन कर सकें, मानव-स्वभावको उसके विभिन्न रूपोंमें स्वीकार करनेको तैयार हों और आश्रममें मेरी उपस्थितिको भी जरूरी न समझती हों तो आप आ सकती हैं। भाई कोतवाल वहाँ हों तो उनसे सलाह करके मुझे

१. जगजीवनदासके पिता।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. साधन-सूत्रमें पानेवालाका नाम नहीं है परन्तु गोगटे और कोतवालके उल्लेखसे ऐसा लगता है कि यह कोतवालकी बहनको लिखा गया था। देखिए "पत्र : रामभाऊ गोगटेको", १७-५-१९१८।

लिखें। वे आपको मेरे इस प्रकार लिखनेका अभिप्राय समझा देंगे। मैं चाहता हूँ कि आप आश्रममें रहें। लेकिन मैं यह भी चाहता हूँ कि आप ऐसा वातावरण होनेपर ही आयें कि फिर आश्रमसे कभी न जायें।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० ३६१७)की फोटो-नकलसे।

३५२. भाषण : नडियादमें[1]

जुलाई १८, १९१८

गांधीजीने बताया कि किस प्रकार पिछले दो सौ वर्षोंमें बीमारियोंसे गुजरातके लोगोंमें सैनिक-भावना क्षीण पड़ गई है और इस बातपर जोर दिया कि भरतीका काम शुरू करनेसे पहले यह जरूरी है कि वे इस तथ्यको समझ लें। उन्होंने कहा कि मैं अपने मार्गकी कठिनाइयोंको पूरी तरह समझता हूँ; परन्तु मैंने उनको पार करनेका निश्चय कर लिया है, क्योंकि जिस दिनसे दिल्ली सम्मेलन हुआ है, उसी दिनसे मैंने यह मान लिया है कि इस समय प्रत्येक भारतीय देशभक्तका सबसे पहला कर्त्तव्य फौजी भरतीमें मदद करनेका है। मेरे पास भारतके अनेक भागोंसे इस आशयके पत्र आये हैं कि मैं वहाँ जाकर उन लोगोंके फौजी भरती अभियानमें सहायता दूं। परन्तु जबतक मेरे गुजराती भाई ही आनाकानी करते हों तबतक मैं निःसंकोच भावसे वहाँ नहीं जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २२-७-१९१८

३५३. सैनिक-भरतीकी अपील

नडियाद

जुलाई २२, १९१८

पत्रिका — २

पहली पत्रिका लिखे हुए आज एक महीना हो गया। इस बीच मुझे और मेरे साथ काम करनेवाले भाइयोंको बहुत-सा अनुभव हुआ है। नडियाद, करमसद, रास, कठलाल और जम्बूसर वगैरा जगहोंपर सभाएँ की गईं। सैकड़ों स्त्री-पुरुषोंसे बातचीत हुई।

जो अनुभव हुआ, उसे मैं आपके सामने रखनेकी इजाजत चाहता हूँ। मुश्किलसे सौ आदमी भरती हुए होंगे। एक मासके समय और जो प्रवास किया है, उसका जब खयाल

१. जिस सभामें गांधीजीने अपने विचार व्यक्त किये थे उस सभाकी अध्यक्षता उत्तरी क्षेत्रके कमिश्नर एफ० जी० प्रैटने की थी। उसमें जिले-भरके अधिकारी और प्रमुख गैर-सरकारी लोग भी शामिल हुए थे।

करता हूँ, तब यह संख्या मुझे बहुत कम लगती है। लोगोंकी स्थितिका खयाल करता हूँ तो मुझे महसूस होता है कि इतने आदमी तैयार हो गये, यह भी आश्चर्यकी बात है। जिस वर्गने कभी लड़ाईमें भाग नहीं लिया और जिसने किसीपर लाठी तक नहीं उठाई, उस वर्गके लोग फौजमें भरती हुए हैं। तब जो वर्ग लड़नेके योग्य है, उसे तैयार किया जा सके, तो अपार सेना खड़ी की जा सकती है। समझदार वर्गकी कमियाँ इस अवसर-पर साफ दिखाई देती हैं। मैं 'शिक्षित' के बजाय 'समझदार' शब्दका प्रयोग कर रहा हूँ। ऐसे पुरुष और स्त्रियाँ अपने कर्त्तव्यका पालन करें, तो जो वर्ग कुदरती तौरपर लड़ाईमें जानेके लायक हो, उसपर असर डाल सकते हैं। मेरे अनुभवसे समझदार वर्गकी बहुत बड़ी कमजोरी साबित होती है। वे राष्ट्रीय काममें पूरी दिलचस्पी नहीं लेते, इसलिए भरतीका काम कठिन हो जाता है। अतएव जिन समझदार लोगोंके हाथमें यह पत्रिका आये, वे अगर इस काममें विश्वास रखते हों, तो तैयार होकर इस महान् कार्यके लिए अपढ़ और नासमझ लोगोंको प्रेरित करें।

किन्तु समझदार लोगोंमें मैंने ऐसे भी देखे हैं, जिन्हें इस कार्यमें विश्वास नहीं है। यह पत्रिका उन्हींके लिए लिखी गई है। उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे पत्रिकाको ध्यानपूर्वक पढ़ें। समझदार आदमीका काम है कि वह प्रस्तुत परिस्थितिका खयाल करके अपने कर्त्तव्यकी रूपरेखा तैयार करे। अगर हम अंग्रेजोंसे अपना सम्बन्ध तोड़ना चाहते हों, तब तो हमें अवश्य ही मदद नहीं देनी चाहिए। यह कहनेवाले लोग थोड़े ही पाये गये हैं कि इस सम्बन्धको हम तोड़ना चाहते हैं। यह तो सभी समझ सकते हैं कि आजकी स्थितिमें सम्बन्ध तोड़नेके हिमायती भी सम्बन्ध नहीं तोड़ सकते। कुछ भी हो, इस समय हमारा उद्धार अंग्रेजोंकी सहायता करनेमें ही है। उनकी मदद करना हमारी अपनी मदद करनेके बराबर है। जहाँ हमारा और उनका स्वार्थ एक ही दिशामें जाता है, वहाँ एक-दूसरेके दोषोंका चिन्तन करके परस्पर मदद न देना बड़ी नादानीका काम होगा। हम जिस गाँवमें रहते हों, उसपर बाहरी शत्रुका धावा हो और उससे सारे गाँवको नुकसान होनेकी सम्भावना हो, तो हम आपसी शत्रुताको भूल जायेंगे और आये हुए संकटको दूर करनेके लिए गाँवमें रहनेवाले शत्रुकी मदद करेंगे और डाकुओंको निकाल बाहर करेंगे। इस समय इस युद्धमें यही हो रहा है। इस समय समान विपत्तिका सामना करना हमारे लिए जरूरी ही नहीं बल्कि हमारा फर्ज भी है। दूसरी शंका यह उठाई गई है कि हम सर्वोत्तम लोगोंको युद्धमें भेजकर मरवा डालें, यह कहाँका धर्म है? इस तरह तो सारे स्वराज्यवादी मारे जायेंगे, फिर हम स्वराज्य कैसे लेंगे? यह शंका अगर बुद्धिमान समझे जानेवाले लोगोंने न की होती, तो मैं इसे हास्यास्पद कहता। यह तो स्पष्ट है कि यदि भारतमें पाँच ही लाख स्वराज्यवादी हों, तो हम स्वराज्यके लायक नहीं हैं। परन्तु शंका करनेवाले लोगोंका कहना यह है कि स्वराज्यवादी कितने ही हों, स्वराज्यका आन्दोलन करनेवाले समझदार लोग तो पाँच लाखसे भी कम हैं। यह सच है। सिर्फ एक बात भुला दी जाती है। पाँच लाख मरनेवाले लोगोंको तैयार करनेमें पचास लाख लोगोंके कानोंमें युद्ध और स्वराज्य वगैराकी बातें पहुँचेंगी। हम पाँच लाख स्वतन्त्र लोगोंको तैयार करना चाहते हैं। वे समझकर अपनी इच्छासे जायेंगे। उन्होंने अपने मित्रों और सगे-सम्बन्धियों वगैरासे सलाह ली होगी, यानी जानेवाले पाँच लाख

आदमी अपने पीछे अपने जैसे लाखोंको छोड़ जायेंगे। सच बात तो यह है कि हम लड़ाई करनेकी शक्ति ही खो बैठे हैं और हमारी वीरताका नाश हो गया है। हममें अपनी स्त्रियोंकी रक्षा करने तक की शक्ति नहीं है। धर्मके नामपर हम कर्म (कर्त्तव्य) को भूल गये हैं। दिन-दहाड़े देहातमें डाका पड़े, तो उसके विरुद्ध भी हम खड़े नहीं हो सकते। एक हजारकी आबादीमें आठ आदमी आकर लूटपाट करके चले जायें, ऐसी स्थिति सारी दुनियामें भारतमें ही सम्भव है। शरीरसे गाँववाले इतने दुर्बल कदापि नहीं हैं कि वे आठ आदमियोंको भी न खदेड़ सकें। परन्तु उन्हें मौतका बड़ा डर है। ऐसी लड़ाईमें पड़कर अपनी जान जोखिममें कौन डाले? डाकू लूटते हैं तो लूट लें। यह तो सरकारका काम है, वही निबटेगी, यह सोचकर वे घरमें घुसे रहते हैं। पड़ोसीका घर जले, उसकी इज्जत लुटे और माल जाये, तो भी इन तत्त्वज्ञानियोंको परवाह नहीं। जबतक इस तत्त्वज्ञान (अन्धकार) का नाश नहीं हो जाता, तबतक भारतमें सच्ची शान्ति नहीं होगी। स्वाभिमानी व्यक्तिके लिए यह स्थिति असह्य होनी चाहिए कि सरकारी या दूसरे सिपाही आयें, तभी गाँव बचे। ऐसी स्थितिसे बचनेका तात्कालिक उपाय हमारे हाथमें मौजूद है। सेनामें भरती होनेसे हमें हथियार चलाना आयेगा, हममें राष्ट्रीय भावना पैदा होगी और हम गाँवोंकी रक्षा करनेके योग्य बनेंगे।

हम चले जायेंगे, तो हमारे बाल-बच्चोंका क्या होगा? यह सवाल तो सभी पूछ सकते हैं। लड़ाईमें जानेवाले लोगोंको हर महीने भोजन-वस्त्रके सिवा वेतन मिलता है; उन्हें कमसे-कम १८ रुपये मिलते हैं। योग्यतानुसार उनका दर्जा भी बढ़ता है और वेतन भी बढ़ता है। अगर किसीकी मृत्यु हो जाये, तो उसके बाल-बच्चोंका भरण-पोषण सरकार करती है। लड़ाईसे लौटनेवाले लोगोंको इनाम-इकराम दिया जाता है। मुझे विश्वास है कि अन्तमें जो आर्थिक लाभ सिपाहीगीरीमें है, वह दूसरे धन्धोंमें हरगिज नहीं मिलता।

परन्तु "ये लाभ तो अंग्रेजोंको ही मिल सकते हैं, हमें कहाँ मिलते हैं?" — मैंने लोगोंको ऐसा भी कहते सुना है। उनसे मुझे कहना है कि हमारे उद्योगसे पाँच लाख समझदार आदमियोंकी सेना बन जाये और उन्हें अंग्रेजोंके बराबर ही हक न मिलें, यह हो नहीं सकता। ऐसा हो, तो इससे उन पाँच लाख लोगों और नेताओंकी ही कमी साबित होगी। पाँच लाख स्वयंसेवकोंकी सेना खड़ी हो जाये, तो उसे अंग्रेज सेनाकी बराबरी मिलेगी और उतने ही हक भी मिलेंगे। पाँच लाखकी इस तरहकी सेना बन जानेमें ही हमारे अधिकार समाविष्ट हैं।

कुछ कहते हैं कि आप बिना शर्तके लड़ाईमें जानेको कहते हैं। दूसरे सलाहकार कहते हैं कि बराबरके अधिकारोंका वचन लेकर जाओ। तीसरे कहते हैं, हम जानेके लिए बँधे हुए ही नहीं हैं। हमें खुद अपने सिर मुसीबत न लेनी चाहिए। हम इन तीन सलाहोंसे चक्करमें पड़ जाते हैं। हमारे खयालसे तो समझदारी इसीमें मालूम होती है कि हम जिस हालतमें हैं, उसीमें रहें। मेरा नम्र उत्तर यह है कि ऐसी बातें तो कायरोंकी होती हैं। ज्यों-ज्यों समय बीतेगा त्यों-त्यों दल बनेंगे, अलग-अलग मत बनेंगे, उन सबपर आपको विचार करना पड़ेगा। जिस स्वराज्यको लेनेकी

प्रतिज्ञा आप और हम सबने ली है, उसी प्रतिज्ञाके लिए लड़ाईमें भाग न लेनेकी बात करना मैं तो स्वराज्यका द्रोह मानता हूँ।

सेनामें भरती होनेकी शर्त तय करानेके फेरमें हमारा भरती होने और स्वराज्यकी योजनाके भी स्थगित हो जानेका खतरा है। सेनामें भरती होनेमें ही स्वराज्यकी और हमारे देशकी सुरक्षा है। यह तो सभी दल मंजूर करते हैं कि सेनामें भरती होनेसे स्वराज्यको धक्का हरगिज नहीं पहुँचेगा। इसलिए मैं यह मानता हूँ कि तुलनात्मक दृष्टिसे भी तीनों बातोंमें से फौजमें शरीक होना ही अच्छा माना जायेगा। मुझे उम्मीद है कि खेड़ा जिलेके भाई अपना फर्ज अदा करेंगे और अपना नाम स्वयंसेवकोंमें लिखा देंगे या सीधे आश्रममें भेज देंगे।

मुझे उम्मीद है कि वहनें भी इस काममें सहायता देंगी। मैं जानता हूँ कि कुछ वहनें अपने पतियों और पुत्रोंको जानेसे रोकती हैं। वे गहराईमें जाकर विचार करेंगी, तो समझ जायेंगी कि उनके पतियों या पुत्रोंके वीर पुरुष बननेमें उनका हित है, देशका हित तो है ही।

आपका चिरसेवक,
मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३५४. पत्र : एस्थर फैरिंगको

बम्बई
जुलाई २२, १९१८

प्यारी बिटिया,

मैं इस संकल्प-विकल्पमें पड़ा हूँ कि तुम्हें पत्र लिखूँ या न लिखूँ। तुम्हारे पत्रको पढ़कर मुझे दुःख हुआ है। आज मैं आश्रममें हूँ; मैंने तुम्हारी भेजी हुई दूसरी बंडी अभी पहनी है। इसका पता तो मुझे आज ही चला है। यह मेरे नापकी नहीं है। आस्तीनें बहुत छोटी हैं, परन्तु इससे कोई हानि नहीं। मैं इसे पहन रहा हूँ और जबतक चलेगी, पहनता रहूँगा।

मेरे मनमें इस बारेमें जरा भी शक नहीं है कि तुम अपना करार चुपचाप पूरा करोगी चाहे तुम्हारे आश्रममें आने या मुझे पत्र लिखनेपर रोक भी लगा दी गई हो। इस प्रकारके बलात् नियन्त्रण और प्रतिबन्धसे तुममें अधिक मनोबल और निश्चय-बल आयेगा।

अगर तुम्हें मुझे पत्र लिखने और मेरे पत्र लेनेकी अनुमति मिल जाये तो यह भी बड़ी बात होगी। जो भी अन्तिम निर्णय हो मुझे अवश्य लिखना।

मैंन सत्याग्रह फिलहाल स्थगित कर दिया है। समाचारपत्रोंमें प्रकाशित मेरा पत्र पढ़ लेना?

सस्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड

३५५. श्रीमती पोलकको लिखे पत्रका अंश

[बम्बई]
जुलाई २२, १९१८

प्रिय श्रीमती पोलक,

... जीवन-सम्बन्धी मेरे अपने दृष्टिकोणमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। मुझे महसूस होता है कि कुछ पुराने जाले कट रहे हैं। किन्तु इस विषयमें जब मुझे कुछ अधिक समय मिलेगा तब लिखूँगा।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३५६. पत्र : गोविन्द मालवीयको

[बम्बई]
जुलाई २२, १९१८

तुम्हारा पत्र आनेसे मैं बहुत खुश हुआ। हम जिनको मुरव्वी[1] समझते हैं, उनके पास हम अपना सब आवेग खोल सकते हैं, खोलना आवश्यक है। मुझको पत्र लिखकर तुमने उचित कार्य किया है। भरतीमें क्या अत्याचार होता है, वह मैं नहीं जानता। यदि ज्यादा होता होगा, तो भरतीमें मेरे शामिल होनेकी ज्यादा आवश्यकता है।

मॉण्टेग्यु चैम्सफोर्ड योजना मेरी रायसे बड़ी-अच्छी है। उसकी त्रुटियाँ हम आन्दोलन करके दूर करवा सकते हैं, परन्तु योजना कैसी भी हो, मेरा निश्चित मन्तव्य है कि हमें युद्धमें दाखिल होना चाहिए। हम अंग्रेज प्रजाका उपकार करनेके लिए दाखिल नहीं होते हैं। लेकिन देशकी सेवा करनेके लिए देशका स्वार्थ देखकर हम भरती होना चाहते हैं। मैं भारतवर्षकी दुर्दशाका क्या बयान करूँ? मैं स्पष्ट देख सकता हूँ कि भारतवर्षको

१. बुजुर्ग

सच्चे स्वराज्यकी प्राप्ति ही नहीं हो सकती। मैं मानता हूँ कि अब हमारे भरती होनेसे हम दो कार्य कर सकते हैं; हममें वीरता पैदा होगी, हम थोड़ी-बहुत शस्त्र-क्रिया सीख लेंगे और जिनके साथ हम हिस्सेदार होना चाहते हैं, उनको मदद देकर हमारी योग्यता ज्यादा सिद्ध करेंगे। उनके अत्याचारोंका विरोध करना और उनके कष्टमें हिस्सा लेना, ये दोनों कार्य करना हमारे लिए योग्य है। मैं चाहता हूँ कि तुम इस प्रश्नपर खूब शान्तिसे विचार कर लो। मेरी सलाह है, यह पत्र देवदासको भेज देना और उसके साथ भी इस विषयमें वार्तालाप करना।

मोहनदास गांधी

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३५७. पत्र : पुंजाभाई शाहको

[बम्बई]
जुलाई २२, १९१८

सुज्ञ पुंजाभाई,

जिसे हमने धर्म समझा है, वह धर्म नहीं है। अहिंसाके नामपर हम भारी हिंसा करते हैं। खून बहानेसे डरते हैं; किन्तु दिन-रात खून चूसते हैं। बनिये अहिंसा-धर्मका पालन कर ही नहीं सकते। कुछ श्रावकोंके शुष्क त्यागमें या चींटियोंको खिलानेमें धर्म नहीं है। शरीरका मोह त्यागे बिना मोक्ष नहीं मिल सकता और आत्माकी पहचान नहीं हो सकती। आपको इस बातकी प्रतीति हो जाये और आप सच्चे मोक्ष-मार्गका दर्शन करना चाहें, तो मेरी सलाह यह है कि आश्रमको अपनाइए। जो मकान बनाने हैं, उन्हें आप पूरे कराइए और मगनलालको फिलहाल मुक्त कर दीजिए। आपको नौकर चाहिए। परसरामको रख लीजिए। मगनलालको मुक्त करनेकी जरूरत मालूम होती है। आप गहरा विचार कीजिए। आपको यह ज्ञान जब दीयेकी तरह ही सूझे, तभी आप इसमें पड़िए। सूझेगा तो आश्रममें बहुत शान्ति अनुभव करेंगे। नहीं सूझेगा तो थोड़े ही समयमें ऊब जायेंगे। आप, फूलचन्द और मगनलाल मिलकर विचार करें। पहले तो आप अकेले ही विचार कीजिए।

मोहनदासके भगवत्-स्मरण

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३५८. पत्र : महादेव देसाईको

नवागाँव
पूर्णिमा [जुलाई २३, १९१८]

भाईश्री महादेव,

आपने रोष किया, इसलिए आप नहीं आ सके और शिवाभाई भी नहीं आ सके। हम दोनों पैदल बहुत आरामसे यहाँ आ गये और सवा दस बजे पहुँच गये। लोग चकित रह गये। सर्कल इन्सपेक्टरने जो जहर फैलाया है उसे तो दूर करना ही चाहिए। इसी कारण हम दो-चार दिन यहाँ रुकेंगे। आप अथवा शिवाभाई डाक लेकर आ जाना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

अनसूयाबेनको खबर देना कि हम यहाँ बृहस्पतिवार तक तो हैं ही।
डाकके लिफाफे, कार्ड और सादे लिफाफे लेते आना अथवा भेज देना।

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७९०) से।
सौजन्य : सी० के० भट्ट।

३५९. पत्र : सर एस० सुब्रह्मण्यम्‌को

[नवागाँव]
जुलाई २४, १९१८

प्रिय सर सुब्रह्मण्यम्,[1]

मुझे आशा है कि इस पत्रको आप मेरी धृष्टता नहीं समझेंगे। मुझे बहुत दिनोंसे आपकी भाषा असन्तुलित लग रही है; ऐसी भाषा एक योगीको शोभा नहीं देती। आपके आरोप मुझे बहुत-सी बातोंमें विचारहीन मालूम हुए। मेरी नम्र रायके अनुसार आप जितने स्पष्टवादी और निर्भय हैं, उतने ही सत्यपरायण रहे होते तो आपने देशकी जितनी सेवा की है, उससे कहीं अधिक कर पाते। आपके मुखसे अविचारपूर्ण और अनुदार शब्द निकलना असत्यके समान माना जायेगा। आपकी राजनीति बाजारू ढंगकी नहीं है, बल्कि उसका आधार धार्मिक है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि देशके सामने

१. मद्रास उच्च न्यायालयके अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश।

आप एक सच्चे भारतीय सज्जनका शुद्ध उदाहरण उपस्थित करें। ऐसा करनेकी आपमें शक्ति है।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

३६०. पत्र : विनोबा भावेको

[नवागाँव]
जुलाई २४, १९१८

तुम्हारा विचारणीय पत्र मिला।

आदर्श तो तुमने लिखा है, वही है। यह भी सही है कि उस आदर्शको सिद्ध करनेके लिए शिक्षक गुजराती ही चाहिए। परन्तु उसके अभावमें महाराष्ट्रके शिक्षकका उपयोग अनुचित नहीं माना जा सकता। चरित्रहीन गुजराती शिक्षककी वनिस्वत चरित्रवान् मराठी शिक्षक भी हो, तो उसे मैं अच्छा समझता हूँ। अभी तो मेरे तरीकेके अनुसार पढ़ानेवाला गुजराती मिलना मुश्किल है। तुम न हो, तो संस्कृत शिक्षण वन्द हो जाये या फिरसे काकाको[1] पढ़ाना पड़े, ऐसी दयनीय स्थिति है। इसलिए अभी तो आदर्शको ध्यानमें रखकर तुम्हें ही संस्कृत पढ़ानी है।

महाराष्ट्रमें प्रवेश करनेकी मेरी तीव्र इच्छा है। परन्तु अभी समय नहीं है। मेरी योग्यता नहीं। इतने मनुष्य हमारे पास नहीं हैं। तुम, काका और मामा मेरे सम्पर्कमें आये हैं। इसमें परमात्माकी कोई इच्छा न हो! भाई देशपांडेके[2] साथ मेरा सम्बन्ध, भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) पर मेरी श्रद्धा, महाराष्ट्रके प्रति मेरा मोह, चम्पारनमें महाराष्ट्रियोंसे प्राप्त भारी सहायता, महाराष्ट्रके संगीत-शास्त्रीका आगमन, भाई कोतवालकी वहनका कुछ समयमें होनवाला प्रवेश, भाई नारायणरावसे जान-पहचान, यह सब सूचित करता है कि महाराष्ट्रमें मुझे कुछ-न-कुछ विशेष करना है। परन्तु —

‘नीपजे नरथी तो कोई नव रहे दुःखी,
शत्रु मारीने सहु मित्र राखे।’[3]

इसलिए इस महत्त्वाकांक्षाके वाद भी क्या होगा यह कौन जानता है?

१. काका कालेलकर।

२. केशवराव देशपांडे (१९८८-१९३९); वड़ोदाके सुप्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्ता व बैरिस्टर; गंगानाथ भारती विद्यालयके संस्थापक।

३. मनुष्यका वस चले तो कोई दुःखी न रहे। शत्रुको मारकर सब मित्रको ही रखें।

तुम्हारी इच्छा मैं ध्यानमें रखूँगा। मैं भी तुम्हें अपने सहवासमें रखना चाहता हूँ, परन्तु अभी यह सम्भव नहीं दिखता। तुम आश्रमवासी ही हो; इसमें तो सन्देहकी कोई बात ही हो नहीं सकती।

बापू

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३६१. पत्र : देवदास गांधीको

[नवागाँव]
जुलाई २४, १९१८

चि० देवदास,

आजका मेरा पत्र बहुत दुःखद समाचार देनेवाला साबित होगा। भाई सोराबजी जोहानिसबर्गमें थोड़ी किन्तु सख्त बीमारी भोगकर चल बसे। मृत्युके भयसे तो हम थोड़े-बहुत अंशमें छूट गये हैं। फिर भी ऐसी मौत खटके बिना नहीं रह सकती। सबको ऐसी आशा थी कि भाई सोराबजी दक्षिण आफ्रिकामें ढाल बनकर रहेंगे और जबरदस्त काम करेंगे। वह आशा आज नष्ट हो गई है। दक्षिण आफ्रिकामें उनकी मृत्युसे शोक छा गया है। यह वहाँके तारोंसे समझमें आता है। ईश्वरकी लीला न्यारी है। कर्मका नाश नहीं होता, सारी प्रवृत्ति अच्छे-बुरे फल देती ही है और जिसे हम आकस्मिक घटना मानते हैं, वह भी दरअसल आकस्मिक नहीं होती। वह हमको ही आकस्मिक मालूम होती है। कोई अपनी मौतसे पहले नहीं मरता। और मौत किसी वस्तुका केवल अन्तिम रूपान्तर है; वह सर्वथा विनाश नहीं है। आत्मा तो अमर है। रूपान्तर भी शरीरका होता है। स्थिति बदलती है, आत्मा नहीं बदलती। यह सब ज्ञान शान्ति देनेके लिए काफी है। यह ज्ञान हम पचा सके हैं या नहीं, इसकी परीक्षा ऐसे मौकोंपर होती है। सोराबजी तो अमर हो गये। उन्होंने सभी काम ऐसे किये हैं, जिनसे उनके देशकी कीर्ति उज्ज्वल हो। अगर हम अपना फर्ज अदा करते रहें, तो उनके चले जानेसे कोई हानि नहीं होगी। आत्मीय जनोंकी मृत्युसे हमें अपने कर्त्तव्यका अधिक भान हो, तो प्रियजनोंका वियोग न खटके।

बापू

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

२६२. पत्र : बलवन्तराय ठाकोरको

[नवागाँव]
जुलाई २४, १९१८

आपका पत्र मिला। मुझे लगता है, जब हमारी पार्लियामेंट बनेगी, तब हमें फौजदारी कानूनमें एक धारा जुड़वानेका आन्दोलन करना पड़ेगा। यदि दो व्यक्ति भारतकी एक भाषा जानते हों और इसपर भी उनमें से कोई एक दूसरेको अंग्रेजीमें पत्र लिखे या एक दूसरेसे अंग्रेजीमें बोले, तो उसे कमसे-कम छः महीनेकी सख्त सजा दी जायेगी। ऐसी दफाके बारेमें अपनी राय बताइए और स्वराज्य न मिले, तबतक जो अपराध करे, उसके लिए क्या उपाय करना चाहिए, यह भी बताइए।

सैनिक खर्च किस तरह घट सकता है, इसके बारेमें आपकी राय समझ ली है। किन्तु अभी तो दिल्ली दूर है। जब हम स्वराज्य ले लेंगे, तब जो परिस्थिति होगी, उसपर यह बहुत-कुछ निर्भर रहेगा।

क्या स्वराज्यकी तैयारी धीमे-धीमे नहीं हो सकती? मेरे खयालसे तो यह स्थिति धीरे-धीरे ही प्राप्त की जा सकती है। फिर, विवाहसे पहले सगाई तो होती ही है। अंग्रेजीमें तो प्रणय-काल बहुत लम्बा होता है। विवाहकी उपमा तो दोनों विचारोंपर लागू नहीं होती है। क्रान्ति तात्कालिक परिवर्तन है। ऐसे परिवर्तन शान्त ढंगसे होते ही नहीं। इसलिए 'शान्तिमय क्रान्ति' तो परस्पर विरोधी शब्द-प्रयोग है। भारत शान्ति और तात्कालिक परिवर्तन दोनों चाहता है। यह कैसे सम्भव हो?

यह ठीक है, आपके पत्रोंका सार्वजनिक उपयोग नहीं किया जायेगा। हम यह चाहते हैं कि थोड़े अर्से बाद 'निजी' शब्द लिखनेकी जरूरत न पड़े।

मैं आज गाँवमें कुछ जाँच करने आया हूँ। थोड़ा समय था, इसलिए विनोद कर लिया। अभी थोड़ा बाकी है। खेड़ाकी लड़ाईके औचित्यके बारेमें अभीतक आपको शक है, तो उनकी तरफसे मैं आपको यहाँ आकर प्रत्यक्ष देखकर अपनी शंका दूर कर लेनेका निमन्त्रण देता हूँ। अभीतक जिनकी शंका दूर न हुई हो, ऐसे तो मेरी जानकारीमें केवल आप ही हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३६३. पत्र : मगनलाल गांधीको

नवागांव

गुरुवार, [जुलाई २५, १९१८]

चि० मगनलाल,

तुम्हें रावजीभाईने डरा दिया। रावजीभाईको मैंने डराया। उन्होंने मेरे शब्दोंका आवश्यकतासे अधिक अर्थ किया है। मेरे आदर्श नहीं बदले। भारतमें मुझे बहुत कड़वे अनुभव हुए हैं फिर भी मेरे विश्वास ज्योंके-त्यों हैं। हमें पश्चिमसे कम ही सीखना है। मैंने यहाँ जो बुराइयाँ देखी हैं, उनसे मेरे मूल विचारोंमें कोई फर्क नहीं पड़ा। इस लड़ाईसे भी फर्क नहीं पड़ा। जो था, वह साफ हुआ है। मुझे ऐसा नहीं जान पड़ा कि हमें पाश्चात्य सभ्यता अपनानी है। ऐसा भी नहीं लगा कि हमें शराब, मांसादि ग्रहण करने पड़ेंगे। यह जरूर लगा है कि स्वामिनारायण[1] और वल्लभाचार्यने हमारे पौरुषका अपहरण किया है। उन्होंने मनुष्योंकी रक्षण-शक्ति छीन ली है। लोगोंने शराब, बीड़ी वगैराका त्याग किया, यह तो ठीक ही हुआ। किन्तु यह कोई साध्य वस्तु नहीं है, यह तो साधन है। बीड़ी पीनेवाला चरित्रवान् हो, तो वह इस लायक है कि उसका सत्संग किया जाये; और जन्मसे बीड़ीका त्यागी व्यभिचारी हो, तो किसी कामका नहीं है। स्वामिनारायण और वल्लभाचार्यका सिखाया हुआ प्रेम भावुकता है। उससे शुद्ध प्रेम पैदा नहीं हो सकता। अहिंसाका शुद्ध लक्षण तो उन्होंने सोचा ही नहीं। अहिंसा चित्तवृत्तियोंका निरोध है। उसका मुख्य प्रयोग मनुष्योंके आपसी सम्बन्धोंमें है। इसकी तो गन्धतक उनके साहित्यमें नहीं पाई जाती। उनका जन्म हमारे इस विषम कालमें हुआ और उस वातावरणसे वे मुक्त नहीं हो सके। उनका असर गुजरातपर बहुत अधिक हुआ। तुकाराम और रामदासका वैसा असर नहीं हुआ। तुकारामके अभंगों और रामदासके श्लोकोंमें बहुत पुरुषार्थ है। वे भी वैष्णव थे। वैष्णव-सम्प्रदाय और वल्लभाचार्य तथा स्वामिनारायणकी शिक्षाको मिला न देना। वैष्णव-सम्प्रदाय बहुत पुराना है। मैं यह बात नहीं देख सका था कि हिंसामें अहिंसा है। वह अब देखने लगा हूँ। यह बड़ा परिवर्तन हुआ है। शराबमें मस्त हुए मनुष्यको अत्याचार करनेसे रोकनेका फर्ज नहीं समझा था, महाव्यथासे पीड़ित कुत्तेके प्राण लेनेकी जरूरत नहीं समझी थी, पागल कुत्तेको मारनेकी आवश्यकता नहीं समझी थी। इन सभी हिंसाओंमें अहिंसा है। हिंसा शरीरका गुण है। विषयवृत्तिका त्याग ब्रह्मचर्य है, परन्तु हम अपने लड़कोंका पालन इस तरह नहीं करते कि वे नपुंसक हो जायें। वे अत्यन्त वीर्यवान् होनेपर भी अपनी विषयेन्द्रियको रोकें, तभी वह ब्रह्मचर्य है। इसी तरह हमारे बच्चे शरीरसे बलवान् होने ही चाहिए। वे हिंसा-वृत्तिका सर्वथा त्याग न कर सकें, तो उन्हें हिंसा करने देकर, लड़नेकी शक्तिका

१. स्वामी सहजानन्द, १७८१-१८३३।

उपयोग करने देकर, अहिंसक बनाया जा सकता है। अहिंसाका उपदेश क्षत्रियोंने क्षत्रियोंको दिया है।

पूर्व और पश्चिमके बीच जो फर्क मैंने बताया है[1], वही है और वह जबरदस्त है। पाश्चात्य संस्कृति निरंकुश है, हमारी संयम-प्रधान है। हम तो तभी हिंसा करेंगे जब वह अनिवार्य होगी और उसका उद्देश्य लोक-संग्रह होगा। पाश्चात्य देश निरंकुश होकर हिंसा करेंगे। मैं पालियामेंट वगैरामें जो भाग लेता हूँ, वह नई प्रवृत्ति नहीं है। वह पुरानी प्रवृत्ति है और उन संस्थाओंको नियममें रखने तक ही सीमित है। मॉण्टेग्यु साहबकी योजनापर मेरा लेख पढ़ोगे, तो मालूम हो जायेगा। मुझे उसमें रस आ ही नहीं सकता। परन्तु उसमें भाग लेकर मैं अपने आदर्शोंको फैला सकता हूँ। जब मेरे लिए अपने आदर्शोंका भंग करके उसमें रहनेका समय आया, तब मैंने उससे अलग रहनेका विचार कर लिया।

मेरे खयालसे मैंने जितना लिखा है, उससे तुम्हें उत्तर मिल जायेगा। मैं एक दिनके लिए आऊँ, तब बहुत स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। इसलिए तुम्हें लिख भेजता हूँ। इससे तुम विचार कर सकोगे। और ज्यादा शंका हो, तो पूछ सकते हो।

मैं अभी तो नवागाँवमें ही हूँ। आज यहाँसे रवाना होनेका विचार था; परन्तु शायद रवाना नहीं हो सकता।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३६४. पत्र: रावजीभाई पटेलको

[नवागाँव]
जुलाई २५, १९१८

भाईश्री रावजीभाई,

तुम्हारा पत्र मिला; यह ठीक हुआ। तुम्हें जो-कुछ पूछना हो, पूछना। फिर भी लिखित उत्तर दूं तो उससे तुम्हें विचार करनेका अवसर मिलेगा। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम मणिभाई और बच्चोंके प्रति अपने कर्त्तव्यका पूरी तरह पालन कर रहे हो। इसीलिए तो तुम्हारा वियोग सहन हो जाता है। मैं मानता हूँ कि उनके साथ रहकर तुम अपना और उनका बिगाड़ करोगे। तुम सोजित्रामें रहकर और जैसा मणिभाई कहें वैसा करके विमलाका[2] हित-साधन नहीं कर सकोगे। परन्तु तुम बाहर रहकर और तपस्याके द्वारा अपना चरित्र दृढ़ करके उन सबका भला कर सकते हो। मणिभाईके विरुद्ध तो तुम्हारा सत्याग्रह है ही और सत्याग्रह

१. देखिए "प्राचीन सभ्यता", ३०-३-१९१८।
२. रावजीभाईकी पुत्री।

कभी बुरा हो ही नहीं सकता। तुम मणिभाईके प्रति वैरभावके कारण नहीं बल्कि उनके प्रति प्रेमभावके कारण बाहर रहते हो। मीराबाईने प्रेमदृष्टिसे अपने पतिका त्याग किया और महात्मा बुद्धने प्रेमके वश होकर अपनी सती स्त्री और माता-पिताका त्याग किया। जो-कुछ तुमपर लागू होता है, वही शिवाभाईपर भी होता है। मान लो, तुम लड़ाईसे सकुशल लौट आये। तब क्या तुम्हारी दशा बदल नहीं जायेगी? तब क्या तुम अपने बाल-बच्चोंकी देखभाल करनेके लिए अधिक योग्य नहीं हो जाओगे? लड़ाईमें जानेमें हमारा उद्देश्य भोग-विलास नहीं, परन्तु अपने और अपने देशके महान् कष्टोंका अन्त करना है। इसमें भूल हो तो भी नुकसान नहीं होगा।

मुझसे मिलकर शान्ति प्राप्त करना असम्भव है। हम जबतक मैल छुड़ा रहे हैं, तबतक तो अशान्ति रहेगी ही। किन्तु उस अशान्तिमें शान्ति है, हमें ऐसा अनुभव होना चाहिए। हम कपड़ोंको धोते समय पछाड़ते हैं, परन्तु जानते हैं कि इससे सफाई होगी और इसीलिए प्रसन्नता प्राप्त करते हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३६५. स्वर्गीय सोराबजी शापुरजी अडाजानिया

[नडियाद]

जुलाई २७, १९१८

सम्पादक
'बॉम्बे क्रॉनिकल',

महोदय,

सूरतके पास स्थित अडाजानके श्री सोराबजी शापुरजी हाल ही में जोहानिसबर्गमें चल बसे। वे भारतकी एक श्रेष्ठ संतान थे। मृत्युके समय उनकी आयु केवल ३५ वर्षकी थी। अपने इस सहयोगीके प्रति अत्यन्त दुःखित मनसे अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करना मेरा कर्त्तव्य है। श्री सोराबजीको उनके गिने-चुने मित्र तो जानते थे, किन्तु भारतीय जन-समाज उनसे अपरिचित था। उन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें काम किया था। वे सत्याग्रहियोंमें अग्रगण्य थे। वे उनमें उस समय सम्मिलित हुए थे जब दक्षिण आफ्रिकामें सत्याग्रह अपनी चरम अवस्थामें था; और ट्रान्सवालके बाहर फैल चुका था। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि जब वे सत्याग्रहके इस संघर्षमें शामिल हुए तब मेरे मनमें उनकी शक्तिके बारेमें सन्देह था, परन्तु उन्होंने बहुत जल्दी प्रथम श्रेणीके सत्याग्रहीके रूपमें अपनी धाक जमा ली। यह बात न तो उनके मनमें और न मेरे ही मनमें आई थी कि उन्हें कई बार सपरिश्रम कारावास भोगना पड़ेगा और उसका योग १८ मास तक जा पहुँचेगा। परन्तु उन्होंने इस कष्टको वीरतापूर्वक और प्रसन्नतापूर्वक सहा। जब उन्होंने दक्षिण

आफ्रिकाके सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया था, तब वे एक साधारण व्यापारी थे। वे हाईस्कूल तक पढ़े थे, फिर भी उनकी शिक्षा जितनी-भर थी उन्होंने ट्रान्सवालमें उसका उपयोग बहुत ही अच्छा किया। संघर्षके दिनोंमें वे दृढ़व्रती, चारित्र्यवान् और सौम्य-स्वभाव युवक सिद्ध हुए। उन्होंने कठिन स्थितियोंमें ऐसा साहस दिखाया जैसा बहुतसे उच्च कोटिके सत्याग्रही भी प्रायः नहीं दिखाते। ऐसे अवसर भी आये जब हममें से बड़े-बड़े अधीर हो सकते थे, परन्तु सोराबजी कभी विचलित न हुए।

संघर्ष समाप्त हो जानेपर मेरी यह इच्छा हुई थी कि जिन युवक भारतीयोंने आन्दोलनमें बहुत बहादुरीके साथ भाग लिया है उनमें से किसी एकको इंग्लैंड भेजा जाये। एक सज्जनने वहाँ जानेका खर्च देनेकी अपनी इच्छा और तैयारी बतायी थी। इनमें से अनेक कारणोंसे सोराबजी ही चुने गये। सवाल यह था कि जिस विद्यार्थीको पढ़ाई छोड़े ८ वर्ष हो गये, क्या वह फिर पढ़ सकेगा। परन्तु सोराबजी तो कृतनिश्चय थे। उनकी अभिलाषा बैरिस्टर बनकर अधिक प्रभावकारी देशसेवा करनेकी थी। आखिर वे इंग्लैंड गये। जिन दिनों श्री गोखले दक्षिण आफ्रिका गये थे उन दिनों सोराबजी उनके सम्पर्कमें आये थे। वे लन्दनमें उनके सम्पर्कमें और भी अधिक आये। मुझे मालूम है कि श्री गोखले सोराबजीकी योग्यताके बारेमें बहुत अच्छी राय रखते थे। उन्होंने सोराबजीको अपने [भारत सेवक] समाजका सदस्य बननेके लिए कहा था। लन्दनमें बसे हुए भारतीयोंके जितने बड़े आन्दोलन चले; उन सबमें सोराबजीने सक्रिय भाग लिया। कुछ समय तक वे लन्दन भारतीय समितिके मन्त्री भी रहे थे। महायुद्ध आरम्भ होनेपर लन्दनमें जो आहत सहायक दल बनाया गया था उसमें नाम लिखानेवाले वे सबसे पहले व्यक्ति थे और उन्होंने नेटलेमें घायलों और बीमारोंकी सेवाका काम किया था। बैरिस्टर हो जाने पर वे दक्षिण आफ्रिका लौट गय। उनका विचार वहाँ वकालत करके कुछ वर्ष दक्षिण आफ्रिकामें बिताकर और अपने स्थानपर किसी दूसरे योग्य व्यक्तिको बैठाकर भारत लौटनेका था। परन्तु शोक है, ईश्वरको कुछ और ही मंजूर था और इस होनहार युवकका जीवन-दीप एकाएक बुझ गया। मृत्युके समय वे ३५ वर्षके ही थे।

मैं ऊपर जो-कुछ कह आया हूँ उसमें सोराबजीके मानवीय गुणोंका चित्रण नहीं किया जा सका है। वे बहुत ही सच्चे आदमी थे। वे सच्चे पारसी थे, क्योंकि वे एक सच्चे भारतीय थे। वे कोई जाति और धर्मगत भेद नहीं मानते थे। उनकी देश-भक्ति अगाध थी और देशसेवा उनका धर्म बन गया था। वास्तवमें वे एक दुर्लभ पुरुष थे। उनके परिवारमें उनकी शोकमग्ना विधवा पत्नी हैं। मुझे यकीन है कि सोराबजीके अनेक मित्र उनके इस शोकमें उनके साथ हैं।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २९–७–१९१८

३६६. पत्र : सर विलियम विन्सेंटको

नडियाद
जुलाई २७, १९१८

सेवामें,

माननीय सर डब्ल्यू० एच० विन्सेंट, के० सी० एस० आई०

आपका इसी २२ तारीखका पत्र मिला; धन्यवाद। आशा तो यही है कि न्याया-धिकरण पूर्णतः निष्पक्ष होगा और ठीक समयपर नियुक्त कर दिया जायेगा। क्या मैं यथासमय आपका दूसरा पत्र पानेकी आशा करूँ?

[हृदयसे आपका,]

[अंग्रेजीसे]

नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया, होम: पोलिटिकल (ए): जनवरी १९१९, सं० ३–१६।

३६७. पत्र : जमनालाल बजाजको

नडीयाद
आषाढ़ कृष्ण ४ [जुलाई २७, १९१८]

भाईश्री जमनालालजी,

आपके प्रेमभावसे मैं लज्जित होता हुं। मैं इतने प्रेमके लिए लायक बनु एसा चाहता हुं — प्रभुजीसे मागता हुं। आपकी भक्ति आपको हमेशा नीति मार्गमें आगे ले जायेगी, ऐसी मैं आशा रखता हुं।

मारवाडमें विद्या-प्रचारके कार्यकी सफलताके लीये अच्छा व्यवस्थापककी आवश्यकता है।

भरतीका कार्य[1] बहुत धीमा चलता है। करीब १५० तक हुए होंगे। कोईको अब-तक भेजे गये नहि है। गुजरातीयोंकी एक बेटेलियन बनानेकी तजवीज कर रहा हुं।

आपका,
मोहनदास गांधी

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल पत्र (जी० एन० २८४१) की फोटो-नकलसे।

१. पहले विश्व-युद्धके समय गांधीजी खेड़ा जिलेमें रंगरूटोंकी भरतीका काम कर रहे थे।

३६८. पत्र : सी० एफ० एण्ड्रयूजको

[नडियाद]
जुलाई २९, १९१८

प्रिय चार्ली,

दुबारा पत्र लिखनेका आनन्द लूट लेता हूँ। एक पराजित राष्ट्रके पैगम्बरका सन्देश सुननेमें जापानने अरुचि दिखाई, इसकी तहमें मुझे तो बहुत गहरा अर्थ दिखाई दे रहा है।[1] दुनियामें युद्ध सदा रहेगा। सारी मनुष्य-जातिका स्वभाव बदल जाये, इसकी सम्भावना दिखाई नहीं देती। मोक्ष और अहिंसा व्यक्ति ही प्राप्त कर सकेंगे। अहिंसाके पूर्ण पालनके साथ जमीन-जायदाद रखना या सन्तान पैदा करना असंगत है। दुष्कृत्य करनेवालेको मारना पड़े तो मारकर भी अपने स्त्री-बच्चोंकी रक्षा करनेमें यथार्थ अहिंसा ही है। सामनेवाले मनुष्यको मारूँ नहीं और बीचमें पड़कर उसके सारे प्रहार अपने ऊपर झेल लूँ, तो वह सम्पूर्ण अहिंसा होगी। परन्तु हिन्दुस्तानने तो पलासीके रणक्षेत्रमें दोनोंमें से एक भी काम नहीं किया हम तो एक-दूसरेसे लड़नेमें व्यस्त कायर लोगोंका एक झुंडमात्र थे। [ईस्ट इंडिया] कम्पनीके रुपयेके भूखे थे और तुच्छ वस्तुओंके लिए अपनी आत्मा बेचनेको तैयार थे। आज भी हमारी दशा कम-ज्यादा अंशमें — बल्कि ज्यादा अंशमें, कम अंशमें नहीं — ऐसी ही है। कुछ व्यक्तियोंके बहादुरी दिखानेके उदाहरण होते हुए और उन दिनोंके अतिशयोक्तिपूर्ण विवरणोंमें पीछेसे सुधार हो जाने पर भी कुल मिलाकर हमने जो अपनी दुर्गत करवाई उसमें कोई अहिंसा नहीं थी। इसलिए जापानने जो अरुचि प्रकट की, वह मुझे तो ठीक मालूम होती है। पुराने जमानेके ईसाई पादरियोंने क्या किया था, इस बारेमें मुझे काफी जानकारी नहीं है। मेरा खयाल है कि उन्होंने कमजोरीसे नहीं, बल्कि बहादुरीसे कष्ट सहन किये थे। प्राचीन कालके ऋषियोंने तो यह रिवाज रखा था कि उनकी धार्मिक क्रियाओंकी रक्षा क्षत्रिय करें। विश्वामित्रकी तपस्यामें राक्षसोंके विघ्न डालनेपर रामने रक्षा की थी। बादमें विश्वामित्रको ऐसी रक्षाकी जरूरत नहीं रही।

सैनिक भरतीके काममें मुझे बहुत मुश्किल होती है। किन्तु तुम मान लो कि अभी-तक मुझे एक भी आदमी ऐसा नहीं मिला, जिसे मारनेमें आपत्ति होनेके कारण भरती होनेमें आपत्ति हो। वे इसलिए आपत्ति करते हैं क्योंकि वे मरनेसे डरते हैं। मौतका यह अस्वाभाविक भय राष्ट्रको बरबाद कर रहा है। इस क्षण तो मैं केवल हिन्दुओंका ही विचार कर रहा हूँ। मुसलमान युवकोंमें मृत्युके प्रति पूर्ण उपेक्षाका भाव उनकी अद्भुत सम्पत्ति है।

१. संकेत श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा टोकियो (जापान) में दिये गये उस भाषणकी ओर है जिसमें उन्होंने जापानपर पश्चिमकी नकल करनेका आरोप लगाया था। उनके उस कथनपर जापानी श्रोताओंने तानेभरी फब्तियाँ कसी थीं। देखिए **नेशनलिज्म : रवीन्द्रनाथ ठाकुर**, पृष्ठ ४९–९३।

आज मैंने यह पत्र सुसंबद्ध रूपमें नहीं लिखा है परन्तु अपने मनोमन्थनकी कुछ कल्पना तुम्हें दी है।

तुम्हें पता लग गया होगा कि सोरावजी गुजर गये हैं। उनकी मृत्यु जोहानिसवर्गमें हुई। बहुत आशास्पद जीवनका एकाएक अन्त हो गया। ईश्वरकी लीला अगम्य है।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३६९. पत्र : मिली ग्राहम पोलकको

[नडियाद]
जुलाई २९, १९१८

प्रिय मिली,

सोरावजी नहीं रहे। यह दुःखद समाचार अभी-अभी जोहानिसवर्गसे तार द्वारा मिला। इस मौतमें यों तो, कोई विशेषता नहीं है; सोरावजी-जैसे बहुत-से लोग मर चुके हैं और अब भी मरते हैं। किन्तु हम सबके जीवनमें सोरावजीका इतना महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया था कि उनकी अचानक मृत्युसे हमें सख्त धक्का पहुँचा है। आत्माका नाश नहीं होता और कर्मका प्रवाह कभी टूटता नहीं, इस विश्वासके बलपर ही हम जीवनमें कर्म करते रहनेका उत्साह कायम रख पाते हैं। जब घटनाओंका उद्देश्य और औचित्य हमारी समझमें नहीं आता, तब हमें आघात पहुँचता है। परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि ईश्वरकी योजनामें कुछ भी असामयिक और हेतुविहीन नहीं होता।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३७०. पत्र : एस० के० रुद्रको

[नडियाद]
जुलाई २९, १९१८

प्रिय श्री रुद्र,

आपने अपने सुखमें मुझे भाग लेने दिया, इसके लिए मैं आभारी हूँ।[1] सुधीर बहुत ही भला लड़का है। हाँ, वह बहुत-अच्छा काम कर रहा है। दूसरे लड़के भी अपने-अपने क्षेत्रमें अच्छा काम कर रहे हैं। यह व्यवस्थित प्रशिक्षणका परिणाम है।

आप तो मेरे फौजी भरतीके कामको ठीक समझते हैं, लेकिन चार्ली मेरे साथ लड़ रहा है। उसके खयालसे शायद मैं अपने-आपको भ्रममें डाल रहा हूँ। उसे यह लगता है कि मेरे इस कामसे अहिंसाके ध्येयकी मेरी उपासनाको हानि पहुँचेगी। मैंने तो इसी ध्येयकी उपासनाके लिए यह काम हाथमें लिया है। मैं जानता हूँ कि मेरी जिम्मेदारी बहुत बड़ी है। जब मैं यह मानकर कि फौजी भरती कराना मेरा काम नहीं है, आरामसे बैठा हुआ था, तब भी मेरी जिम्मेदारी उतनी ही भारी थी। तब यह डर था कि मेरे वचनोंपर श्रद्धा रखनेवाले इस झूठे खयालसे कि यह चीज अहिंसा है बिलकुल नामर्द बन जायेंगे या बने रहेंगे। शरीर-बलकी व्यर्थता हमारी समझमें आये, उस शक्तिका हम त्याग करें, उससे पहले हममें मारनेकी पूरी शक्ति होनी चाहिए। ईसा मसीहमें दुश्मनोंको जलाकर भस्म करनेकी शक्ति थी, परन्तु उन्होंने उसे काममें नहीं लिया और अपने-आपको मार डालने दिया। क्योंकि वे इतने अधिक प्रेमसे भरे हुए थे, आदि।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१. श्री रुद्रके पुत्र फौजमें सेकंड लेफ्टिनेन्ट नियुक्त हुए थे और उनके दामाद प्राकृतिक विज्ञानकी परीक्षामें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए थे।

३७१. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

[नडियाद]
जुलाई २९, १९१८

प्रिय श्री शास्त्रियर,

ठाकोर अभी-अभी आये हैं। वे कहते हैं कि आप फिर बीमार पड़ गये थे। आपको ऐसे कठोर डॉक्टरकी जरूरत है, जो निर्दय बनकर आपसे पूरा उपवास कराये और पानीका इलाज करे। प्रायोगिक धंधोंमें अन्यतम, इस धंधे [प्रचलित डॉक्टरी चिकित्सा] से तो ऐसी हत्याके सिवा और कोई आशा नहीं रखी जा सकती, जिसे करनेका उसे लाइसेंस मिला हुआ है। जब-जब आपकी बीमारीकी बात सुनता हूँ, तभी किसी-न-किसी डॉक्टरको गोलीसे मार देनेको जी चाहता है। किन्तु मेरी अहिंसा इसमें बाधक होती है। आपके और हिन्दुस्तानके लिए यह सौभाग्यकी बात है कि मेरी कभी संसदमें बैठनेकी महत्त्वाकांक्षा ही नहीं है। नहीं तो ऐसा विधेयक पेश करूँ कि जो लोग बार-बार बीमार पड़ते हों, वे संसदके सदस्य बननेके योग्य न माने जायें।

'पोलकका तार साथमें भेजता हूँ।'[1] इसका पूरा अर्थ मैं नहीं समझा। परन्तु मेरा खयाल है कि योजनाके[2] देशके द्वारा अस्वीकृत होनेका भय नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

३७२. पत्र : देवदास गांधीको

[नडियाद]
जुलाई २९, १९१८

देहातकी जिन्दगी गर्मीमें तो भली प्रतीत होती है, परन्तु चौमासेमें अच्छी लगेगी या नहीं, यह सवाल है। मैं मानता हूँ कि चौमासेमें इच्छानुसार जाना-आना मेरे लिए तो बहुत मुश्किल हो जायेगा। गन्दगीके प्रति मेरी अरुचि बढ़ती ही जाती है, घटती नहीं। पाखाना जरा भी खराब होता है तो अकुलाता हूँ। यहाँ शौचके लिए जंगलमें जाता हूँ तो साथमें फावड़ा ले जाता हूँ। गड्ढा खोदकर उसमें बैठता हूँ और शौच-क्रियाके बाद गड्ढेमें मिट्टी डाल देता हूँ, तब आता हूँ। मैं देखता हूँ कि यह इतना-सा नियम न पालनेसे असंख्य रोग फैलते हैं और करोड़ों मक्खियाँ पैदा होती हैं। मेरा खयाल है कि जिन्हें गन्दगी वगैरासे अधिक घिन नहीं होती,

१. यह उपलब्ध नहीं है।
२. अभिप्राय सम्भवतः मॉण्टेग्यु चैम्सफोर्ड योजनासे है।

वे तो गाँवोंमें बहुत सुखी रहते हैं। कल रातको दो भजन-मण्डलियाँ मेरे पास आई थीं। दोनोंके पास जो वाजे थे वे पाँचसे दस रुपये तक मूल्यके होंगे। उनमें ढोलक, मंजीरे, करताल और इकतारा तम्बूरा थे। इन्हींसे उन्होंने मधुर स्वर उत्पन्न किया। भजन सब कृष्ण-विषयक थे। उन्होंने कैसे द्रौपदीका चीर बढ़ाया, विदुरके घर शाक खाया और दुर्योधनका गर्व दूर किया आदि। यह-सब ऐसे मधुर शब्दोंमें रचा गया है कि उसमें से प्रेमभाव और भक्तिभाव फूटे विना रह ही नहीं सकता। कृष्णके लिए इतनी अधिक भक्ति क्यों है? मेरे खयालसे तो उनके शौर्यके कारण, उनकी परोपकारवृत्तिके कारण होनी चाहिए। अपनी अगाध शक्तिसे उन्होंने पाण्डवोंके छोटे-से राज्यको जिताया, दुष्ट कौरवोंका नाश किया और प्रजाको दुःखसे छुड़ाया, इसलिए उनकी कीर्तिके गीत गाये गये और उन्हें अमर पद प्राप्त हुआ। उन्होंने दुर्योधन जैसेकी परवाह नहीं की, उसके धनसे वे नहीं ललचाये, किन्तु सुदामाके तन्दुल उन्हें बहुत मीठे लगे। ऐसी थी उनकी सादगी। कृष्ण चरित्र चित्रित करके कविने हद कर दी है। इसमें शक नहीं कि ऐसा अद्भुत प्रतिभाशाली कोई हुआ अवश्य है। मैं चाहता हूँ कि तुम सारा महाभारत संस्कृतमें पढ़ सको। जो रस मैं नहीं ले सका, उसे तुम ले सकोगे। मेरा विषय तो ग्राम-जीवनका सौन्दर्य था, परन्तु मैंने कृष्णके चरित्रके बारेमें लिख डाला। मेरे मनमें कृष्णके जीवनका यह ध्यान कल रातके संगीतसे आया। कल रातका संगीत मुझे अपने संगीतसे भी ज्यादा अच्छा लगा। वह स्वाभाविक और मधुर था। उसमें शोर बहुत नहीं था। ढोलक और अन्य वाद्योंकी ध्वनि बहुत मंद थी। पूनमका चन्द्रमा निकला हुआ था। हम सब एक वृक्षके नीचे बैठे थे। सबकी पोशाक देहाती थी। सब जाजम बिछाकर उसपर बैठे थे। सभी लोग किसान थे। वे दिन-भर मजदूरी करके आये थे और अब निर्दोष आनन्दका भोग कर रहे थे। वे प्रभुके नामका रस पी रहे थे। मैंने उनमें से एकसे कहा: भाई, तुम तो बहुत रस पी रहे हो। उसने जवाब दिया: क्या करें भाई, गप्पें मारनेकी अपेक्षा हम लोग इस तरह भजन-कीर्तनमें ही समय बिताते हैं। ये लोग बारैया जातिके थे, इसलिए आम तौरपर गँवार माने जायेंगे; किन्तु वे ऐसे जरा भी नहीं थे। वे अशिक्षित माने जाते हैं, परन्तु अशिक्षित नहीं थे। मुझे ऐसा लगा कि अगर शिक्षित-वर्ग उन्हें अपनाये और उनमें नया रस भरे, तो उनसे मनचाहा काम लिया जा सकता है। उनमें ज्ञानका तो पार ही नहीं। उसका उपयोग करना आना चाहिए। जैसे अनाड़ी बढ़ई अपने औजारोंको दोष देता है, वही हालत हमारी है। अब तो तुम्हें खूब लम्बा पत्र लिख डाला। इसे पढ़कर मणिलालको भेज देना। मैं ऐसा पत्र फिर शायद ही लिखूँ। सवेरेका समय है, थोड़ा-सा वक्त है, मस्तिष्क विचारोंसे भरा है। उसे थोड़ा-सा तुम्हारे सामने खाली कर दिया है। जो रस मैंने लिया है, तुम भी इसमें से थोड़ा-बहुत चख सको, तो यह मानूँगा कि तुम्हें मैंने विरासतका सच्चा हिस्सेदार बनाया। जैसे हम सरकारसे हिस्सा माँगते हैं, वैसे ही यदि मैं भी अपनी इस निधिका भाग तुम्हें देता हूँ तो अपने ऋणसे ही मुक्त होता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३७३. पत्र : कस्तूरबा गांधीको

[नडियाद]
जुलाई २९, १९१८

प्रिय कस्तूर,

मैं जानता हूँ कि तुम मेरे साथ रहनेको बहुत तरसती हो; परन्तु मेरा खयाल है कि जो काम हमें करने हैं, वे करने ही चाहिए। अभी तुम्हें वहीं रहना चाहिए। यदि तुम वहाँ जो इतने सारे बच्चे हैं उन्हें अपने ही बच्चे समझो, तो तुरन्त तुम्हें बच्चोंका अभाव खटकना बन्द हो जाये। ढलती उम्रमें इतना तो करना ही चाहिए। तुम जैसे-जैसे सबपर प्रेम भाव रखोगी, सबकी सेवा करोगी, वैसे-वैसे तुम्हारे भीतर आनन्द स्फुरित होगा। तुम्हें नित्य प्रातःकाल सब बीमारोंको देखना ही चाहिए और उनकी सेवा करनी ही चाहिए। जिनके लिए विशेष भोजन बनाना हो, उनके लिए विशेष भोजन बनाना या रखना चाहिए। जो मराठी बहनें हैं, उनसे मिलना चाहिए। उनके बच्चोंको खेल-कूद कराना और उन्हें लेकर घूमने जाना चाहिए। तुम्हें उनके मनपर यह असर डालना चाहिए कि वे हमसे अलग नहीं हैं। उनकी तन्दुरुस्ती अच्छी रहनी चाहिए।

निर्मलाके साथ अच्छी बातें यानी धर्म वगैराकी बातें करनी चाहिए। तुम उससे भागवत वगैरा पढ़वाकर सुन सकती हो। इसमें उसे भी रस आयेगा। यह निश्चित समझो कि यदि तुम इस तरह दूसरोंकी सेवामें लग जाओगी, तो तुम्हारा मन सदा प्रसन्न ही रहेगा। पुंजाभाईके खाने-पीनेका ध्यान तो रखना ही चाहिए।

मोहनदास

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३७४. पत्र : किशोरलाल मशरूवालाको

[नडियाद]
जुलाई २९, १९१८

भाईश्री किशोरलाल,

यह पत्र तुम्हारे तथा भाई नरहरिके लिए है। भाई नारायणरावका यह आरोप कि महाराष्ट्रियों और गुजरातियोंमें भेद किया जाता है जिस हदतक सही हो, उसहद तक हमें उसे दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए। यह अहिंसाके प्रयोगका क्षेत्र है। पहला कदम यह है कि इस आरोपमें सार कितना है, इस बात-पर तुम सब मिलकर विचार करो। गुजराती स्त्रियोंको महाराष्ट्री स्त्रियोंसे खूब मिलने-जुलनेका प्रयत्न करना चाहिये। लड़के ऐसा भेद जरा भी न रखें, यह सबसे

ज्यादा जरूरी है। मेरे लिखनेका अर्थ बहुत बढ़ा-चढ़ाकर न किया जाये; परन्तु उसपर क्षणभर विचार करके जितनी कार्रवाई करना उचित हो उतनी कर लेनी चाहिए।

तुम्हारे सम्मुख प्रार्थनाके सम्बन्धमें विचारार्थ इतनी बात प्रस्तुत करता हूँ। हम अपनी अशक्तिका विचार इतनी दूरतक न ले जायें कि कोई काम ही न कर सकें। हम शक्तिके अनुसार पढ़ायें और जितनी कमी हो, उसे प्रयत्न करके दूर करें। मुझे ही संस्कृत पढ़ानी पड़े, तो मैं इस अशक्तिका उपयोग क्या करूँगा? मैं जानता हूँ कि मेरी संस्कृत संस्कृत-ही नहीं कहला सकती। किन्तु दूसरा कोई न हो, तो मैं जरूर पढ़ाऊँगा और दिन-प्रतिदिन अपनी कमियोंको दूर करता जाऊँगा। पारनेल इसी तरह लोकसभाके कानूनोंकी जानकारीमें सबसे आगे बढ़ गया था। तुम अपनी अशक्तिका ही विचार करके प्रत्येक कार्यको करनेमें डरते हो। यदि तुम सामने आये हुए प्रत्येक कार्यको, जितनी शक्ति हो, उसीका उपयोग करके निपटा डालो, तो क्या तुम्हें अधिक आनन्द न मिलेगा?

लड़के अपना बल कैसे बढ़ायें? वे अपना बचाव करें, लेकिन उद्धत न बनें, उन्हें यह सिखाना बड़ा कठिन मालूम होता है। हम अबतक लड़कोंको यही सिखाते थे कि जो मारे, उसकी मार खाओ। क्या अब यह शिक्षा दी जा सकती है? बालकपर इस शिक्षाका क्या असर होगा? वह युवावस्थामें क्षमावान् होगा या डरपोक बनेगा? मेरी अक्ल काम नहीं करती। अपनी अक्ल दौड़ाना। अहिंसाके इस नये दिखाई देनेवाले स्वरूपसे मैं तो कई तरहके प्रश्नोंके जालमें फँस गया हूँ। मुझे सभी गाँठोंके खोलनेका कोई एक महासूत्र नहीं मिला। वह मिलना ही चाहिए। क्या हम अपने लड़कोंको एक तमाचा मारनेपर बदलेमें दो मारना सिखायें या उन्हें यह सिखायें कि उनपर कोई उनसे कमजोर व्यक्ति हमला करे तो वे उसके तमाचे खा लें, परन्तु यदि उन्हें कोई उनसे बलवान् व्यक्ति मारे, तो वे उसका सामना करें और उसमें उनपर जो प्रहार हों, उन्हें सहन करें? यदि कोई सरकारी अफसर उन्हें मारे, तो वे उसका क्या करें? जब कोई किसी लड़केको मारे, तो वह उसकी मार सहन करके हमारी सलाह ले या जैसा मौका हो, वैसा काम करे और उसका परिणाम भोगे? "जो एक तमाचा लगाये, उसके दो तमाचे सहन करो" इस राजमार्गको छोड़नेसे ही उपर्युक्त संकट आते हैं। इनमें से पहला मार्ग सरल है अतः क्या वह सच्चा हो सकता है या संकटमय मार्गसे गुजरनेपर ही सही रास्ता हाथ लगेगा? हिमालयपर चढ़नेकी पगडंडियाँ अनेक दिशाओंमें जाती हैं, वे कभी-कभी तो विरुद्ध दिशाओंमें भी जाती हैं; फिर भी जानकार मार्गदर्शक तो [आरोहीको] अन्तमें चोटी पर ले ही जाता है। हिमालयपर सीधी लकीर से जा ही नहीं सकते। क्या इसी तरह अहिंसाका मार्ग भी विकट होगा? त्राहि माम्, त्राहि माम्।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३७५. पत्र : पुंजाभाई शाहको

[नडियाद]
जुलाई २९, १९१८

सुज्ञ श्री पुंजाभाई,

आपने अच्छा निश्चय किया।[1] परमार्थकी दृष्टिसे की हुई सारी प्रवृत्ति निवृत्ति ही है और वह मोक्षका कारण है। दूसरोंकी सेवा परमार्थ ही है। अपनी तरफसे हटाकर दूसरोंकी तरफ ध्यान ले जानेमें पुरुषार्थकी जरूरत रहती है। आश्रममें सबकी यथाशक्ति सेवा करनेमें तो आनन्दका पार ही न होना चाहिए। आश्रममें कोई-न-कोई बीमार रहता ही है। दिनमें उसकी खबरगीरी रखनी चाहिए और बच्चोंके साथ विनोद करके उन्हें खुश रखना चाहिए। इस काममें क्लेश नहीं, झंझट नहीं। आत्माकी पहचान इसी तरह की जा सकती है। आपको आसानीसे इसका अनुभव हो जायेगा। भुवरजी वगैरा बीमारोंके पास थोड़ा-बहुत नित्य बैठनेका अभ्यास रखना।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

३७६. पत्र : कस्तूरबा गांधीको

[नडियाद]
जुलाई ३१, १९१८

प्रिय कस्तूर,

तुम्हें दुःखी देखता हूँ तो मैं दुःखी हो जाता हूँ। स्त्रियोंको लाया जा सकता, तो मैं तुम्हें लाता। मेरे बाहर जानेसे तुम इतनी विचलित क्यों हो जाती हो? हमने वियोगमें सुख मानना सीखा है। ईश्वरकी इच्छा होगी, तो फिर मिलेंगे और साथ रहेंगे। आश्रममें अनेक अच्छे काम हैं। तुम उनमें जुट जाओगी, तो अवश्य प्रसन्न रहोगी।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ४

१. मगनलाल गांधी जब इलाहाबादमें थे तब आश्रमकी व्यवस्थाका कार्य श्री पुंजाभाईने सँभाल लिया था।

३७७. पत्र : मणिलाल गांधीको

[नडियाद]
जुलाई ३१, १९१८

चि० मणिलाल,

तुम्हारा पत्र इन दिनों नहीं आया। साथमें भाई सैमका पत्र है। इसे तुम्हारे पढ़ने और विचार करनेके लिए भेज रहा हूँ। उनका कितना ही दोष हो, फिर भी मुझे डर है कि तुमने बेहद रोष किया है और बहुत द्वेष-भाव दिखाया है। तुम अपने हकोंकी रक्षा भले ही करते, परन्तु तुम्हें विनय नहीं छोड़नी थी। तुम व्यवस्था चाहते हुए भी उनपर रोष करनेसे बच सकते थे। उनमें से किसीने भी बहुत-सा रुपया जमा कर लिया हो, ऐसी बात नहीं है; और न चुराया है। देवी बहनने क्या अपराध किया है? श्री वेस्ट और श्री सैम दोनोंने अपने बच्चोंकी शिक्षाकी हानि सही है, यह बहुत-बड़ी बात हुई है। मेरा तो यही खयाल है कि तुमने मेरे ऊपरका अपना रोष उनपर उतारा है। तुम उनके यहाँ जाते भी नहीं। ऐसा हरगिज न करना चाहिए। मेरे खयालसे तुम्हें उनसे माफी माँगनी चाहिए। परन्तु यह तो तुम्हें ठीक लगे, तभी करना। मुझे ठीक लगेगा, इसलिए नहीं। तुम अपनी स्वतन्त्रता कायम रखकर काम करोगे, तो मुझे ठीक ही लगेगा। मैं मानता हूँ कि मैंने तुम्हें मुझ पर रोष करनेके अनेक कारण दिये हैं। उनके लिए तुम मुझे क्षमा करना। मैंने तुम्हें बहुत भटकाया और उससे तुम्हें नियमबद्ध शिक्षा नहीं मिल सकी। परन्तु तुम मुझे तभी क्षमा कर सकते हो, जब तुम्हें यह महसूस हो कि यह अनिवार्य था। मैंने अपना सारा जीवन खुदको पहचाननेमें बिताया है; यह ढूंढ़नेमें बिताया है कि मेरा कर्त्तव्य क्या है। मेरा काम चमका है, क्योंकि मैंने जैसा माना, वैसा ही किया है। इससे मैं बहुत-सी भूलोंसे बचा हूँ। परन्तु ऊपरसे सोचनेपर लौकिक दृष्टिसे मैंने तुम्हारा अहित किया है। जैसे मैं अपने प्रयोगोंकी बलि चढ़ा हूँ, वैसे ही तुम और बा भी चढ़े हो। बा समझ गई है। इसलिए उसने जितना कमाया है, उतना किसी अन्य स्त्रीने नहीं कमाया। तुम अभी पूरी तरह नहीं समझे, इसलिए तुम्हारे मनमें रोष रहता है। मैं अब भी कहना चाहता हूँ कि तुम सब भाइयोंकी जैसी सेवा मैंने की है, वैसी दूसरा पिता नहीं करता। मैंने तुम्हें अपने धार्मिक अनुभवोंमें हिस्सेदार बनाया है, इससे अधिक कोई क्या कर सकता है? दूसरे माँ-बापकी तरह मैं तुम्हारा जीवन लौकिक रखकर अपना जीवन निराला बना सकता था। यदि मैं वैसा करता, तो इस समय तुम्हारे और मेरे बीच कोई शृंखला न रहती, और जैसे गोकी बेन नामकी बहन हैं, वही दशा हमारी होती। मुझसे दूसरा कुछ नहीं हो सकता था क्योंकि सत्यकी खोजमें मैं तो जहाँ हूँ, वहीं रहता और तुम उस मार्गसे बाहर होते। यह तुम्हारे लिए इष्ट न होता। यदि तुम

इस बातपर धीरजसे विचार करोगे तो तुम मेरे ऊपर अपना रोष मिटा सकोगे। देखो, हरिलालके और मेरे बीच खाई पड़ गई है। हरिलालका जीवन मुझसे अलग हो गया है। पिता और पुत्रके बीचमें पिता-पुत्रका सम्बन्ध तभी माना जा सकता है, जब दोनोंका जीवन एक हो और दोनों एक-दूसरेके लिए आधारभूत हों। मैं हरिलालके जीवनमें और हरिलाल मेरे जीवनमें दिलचस्पी नहीं ले सकता। इसमें हरिलालका दोष नहीं है। उसकी बुद्धि उसके कर्मोंका अनुसरण कर रही है। मुझे हरिलालपर रोष नहीं है। परन्तु दोनोंको जोड़नेवाली कड़ी टूट गई, पिता और पुत्रके जीवनका माधुर्य जाता रहा। संसारमें ऐसा अक्सर होता है। मेरे बारेमें असाधारण बात सिर्फ इतनी ही है कि मैं धर्मकी खोज करते हुए हरिलालको अपने साथ नहीं खींच सका और हरिलाल अलग रह गया। हरिलालने अपने मालिकके लगभग तीस हजार रुपये केवल अपनी मूर्खताके कारण बरबाद कर दिये हैं। मालिकको उसने ऐसा पत्र लिखा है जो उसे ही लजानेवाला है और बेरोजगार हो गया है। वह मेरा लड़का है, इसीलिए जेल जानेसे बच गया है। तुम मेरे जीवनमें साथ रहे हो, परन्तु असन्तुष्ट हो। उसमें से निकलना तुम्हें अनुकूल नहीं है और उसमें रहना भी बिलकुल पसन्द नहीं है। इसलिए तुम शान्त नहीं रह सकते। किसी भी तरह तुम सन्तोष रखो, तो शान्त भी हो सको। मैंने जान-बूझकर तुम्हारा अहित नहीं किया है। मैंने जो-कुछ किया है, वह तुम्हारा भला समझकर ही किया है। क्या तुम्हारे लिए मेरे ऊपर अपना रोष मिटानेके लिए इतना काफी नहीं है? मेरे लिखनेसे तुम अधिक रोष तो हरगिज नहीं करोगे। तुमने अपने विचार मुझे बता दिये, इससे मैं प्रसन्न ही हुआ हूँ। अब सारी व्यवस्था[1] तो तुम्हारे हाथमें आ ही गई होगी।

लड़ाईमें भरती होनेके सम्बन्धमें मेरी दूसरी पुस्तिका देख लेना। आश्रमसे पाँच व्यक्तियोंको चुना है, दूसरे भी उत्सुक हैं लेकिन वे अभी नहीं लिये जा सकते। चुने हुए व्यक्तियोंमें रामनन्दन, सुरेन्द्र, ठाकोरलाल, नानुभाई और रावजीभाई हैं। मैं तो हूँ ही। थोड़े दिनोंमें यहाँ भरती-केन्द्र खुलेगा, ऐसा मेरा खयाल है। देवदास मद्रासमें हिन्दीका काम न कर रहा होता तो [वह भी] आता। उसका बहुत मन है। हरिलालको भी सूचित किया था, लेकिन वह क्यों आने लगा? तुम वहाँ महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हो इसलिए तुम्हें नहीं लिखा जा सकता। बाकी रहा रामदास; उसकी इच्छा हो तो वह आ सकता है। रामदासको नौकरी बदलनी पड़ रही है। यह अच्छा नहीं लगता। तुम खोजबीन करना।

निर्मला इस समय आश्रममें है। अपनी खुशीसे आई है। कब तक रहेगी, यह नहीं कहा जा सकता। वह ज्यादातर गोकी बहनकी सेवा करेगी।

आदरणीय खुशालभाई आश्रममें रहनेके लिए आए हैं। छगनलाल और वे अलग रहते हैं। छगनलाल राष्ट्रीय शालामें लगा हुआ है।

१. शायद फीनिक्स की।

इमारतें अब बन गई हैं। बुनाई-घर भी बन चुका है। उसमें रहा भी जा सकता है। पुस्तकालय आदि बनाना अभी बाकी है।

भाई सोराबजीका स्वर्गवास बहुत खटकता है। उनके जानेसे पूरा पहाड़ा ही फिरसे पढ़ना पड़ेगा।

बापूके आशीर्वाद

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ११५) से।

सौजन्य : सुशीलाबेन गांधी

३७८. पत्र : मोहनलाल खंडेरियाको

नडियाद

आषाढ़ वदी ८ [जुलाई ३१, १९१८][1]

भाईश्री मोहनलाल,

आपका खेड़ा जिलेके सम्बन्धमें लिखा गया पत्र मिला। पैसा अभी नहीं मिला है। खेड़ा जिलेमें लड़ाईके सम्बन्धमें कुछ काम करना है; इस रुपयेका उपयोग उसीमें करूँगा।

मेरी इच्छा है कि आप ऐसा भी कुछ करें जिससे भाई सोराबजीकी स्मृति बनी रहे। उनके जैसा कार्यकर्त्ता मिलना मुश्किल है। मुझे लगता है कि उनके नामपर एक छात्रवृत्ति स्थापित करके किसी व्यक्तिको इंग्लैंड भेजा जाये यह सबसे अच्छा काम है।

मुझे भाई उमियाशंकरने बताया है कि आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई।

मोहनदासके वंदेमातरम्

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० ६२१०) की फोटो-नकलसे।

१. इस पत्रमें लड़ाईके प्रयत्नोंकी जो चर्चा की गई है उससे पता चलता है कि यह पत्र १९१८ में लिखा गया था।

३७९. पत्र : एडा वेस्टको

[नडियाद]
जुलाई ३१, १९१८

प्रिय देवी,

. . .[१] सोराबजीकी मृत्यु कितनी दुःखद है! मैं दक्षिण आफ्रिकाके वारेमें वड़ी बेफिक्री महसूस करता था और आशा रखता था कि सोरावजी अब वहाँ आ गये हैं, इसलिए सब काम अच्छी तरह चलेगा। मेरी सारी आशाएँ मिट्टीमें मिल गई हैं। . . .[२]

पता नहीं, तुम सब फौजी भरती सम्बन्धी मेरी गतिविधिके वारेमें क्या सोचते हो। मैं अपना सारा समय इसी काममें लगा रहा हूँ। मेरी दलीलोंका सार यह है : हिन्दुस्तान मारनेकी शक्ति खो बैठा है। मारनेकी शक्तिका वह स्वेच्छापूर्वक त्याग करे, इससे पहले उसके लिए यह जरूरी है कि वह मारना सीखे। सम्भव है, एकवार शक्ति प्राप्त कर लेनेके बाद वह उसका कभी त्याग न करे। ऐसा करेगा, तो वह पश्चिमके जैसा ही या ज्यादा अच्छी तरह कहें, तो सभी आधुनिक स्वतन्त्र देशों जैसा खराव वन जायेगा। आज तो वह दोनोंमें से एक भी नहीं है। प्राचीन हिन्दुस्तानके लोग युद्धकला जानते थे — उनमें हिंसा करनेकी शक्ति थी — किन्तु उन्होंने इस प्रवृत्तिको यथाशक्ति अधिक-से-अधिक कम किया और दुनियाको सिखाया कि मारनेसे न मारना ज्यादा अच्छा है। आज तो मैं देखता हूँ कि हरएक आदमीकी इच्छा तो मारनेकी है, परन्तु वहुतसे लोग वैसा करनेसे डरते हैं अथवा उसकी शक्ति ही नहीं रखते। परिणाम कुछ भी हो, किन्तु मेरा निश्चित विचार है कि मारनेकी शक्ति तो हिन्दुस्तानको फिरसे प्राप्त कर ही लेनी चाहिए। परिणामस्वरूप देशमें जबरदस्त खून-खरावी हो जाये और हिन्दुस्तानको उस खून-खराबीमें से गुजरना पड़े तो गुजरे। लेकिन आजकी स्थिति तो असह्य है।

तुम्हारा,
भाई

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१ व २. यहाँपर मूलमें कुछ शब्द छूटे हुए हैं।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

कांग्रेस और मुस्लिम लीगका संयुक्त अभिनन्दनपत्र

[दिल्ली
नवम्बर २६, १९१७]

महानुभाव,

हम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी अखिल भारतीय कमेटी और ऑल इंडिया मुस्लिम लीगकी परिषद्के सदस्यगण, आपका स्वागत करते हैं। श्रीमान् महामहिमके भारतीय मामलोंके प्रमुख मन्त्री हैं। हम आप तथा महामहिम सम्राट्के सम्मान्य प्रतिनिधि तथा इस देशमें उनकी सरकारके प्रधान, महाविभव वाइसराय और गवर्नर जनरल महोदयके सामने कृतज्ञ और आशान्वित होकर उपस्थित हो रहे हैं; कृतज्ञ इसलिए कि राष्ट्रीय कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग द्वारा तैयार की गई सुधार-योजनाके ऊपर आपने और ग्रेट ब्रिटेनमें महामहिम सम्राट्के मन्त्रियोंने, जिनका श्रीमान् प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, ध्यान दिया है; और आशान्वित इसलिए कि हमारे प्रस्ताव न्यायसंगत तथा ब्रिटिश इतिहास और नीतिके सर्वथा अनुकूल हैं, और इसलिए आप उन्हें स्वीकार करनेकी कृपा करेंगे।

महानुभाव, ग्रेट ब्रिटेनने भारतमें जो महान् और अच्छा कार्य किया है हम इस ऐतिहासिक अवसरपर उसके प्रति आभार प्रकट किये विना नहीं रह सकते। इस देशकी वाह्य आक्रमणसे सुरक्षा और आन्तरिक शान्ति-व्यवस्थाकी स्थापना अपने-आपमें कोई साधारण उपलब्धियाँ नहीं हैं। लेकिन ग्रेट ब्रिटेनको इससे कहीं महत्तर श्रेय इस बातका है कि उसने एक अत्यन्त प्राचीन सभ्यताके वारिस, भारतके निवासियोंमें जो दुर्भाग्यवश अपनी उच्च प्रतिष्ठा खो चुके थे फिरसे एक नई बौद्धिक जाग्रति, राष्ट्रीय चेतना और स्वातन्त्र्यकी उत्कट लालसा उत्पन्न कर दी है। पुण्य स्मरण लॉर्ड रिपनने प्रसन्न वाणीमें शिक्षित भारतीयोंको ब्रिटिश शासनकी सन्तान बताया था। तब उन्होंने यह बहुत ठीक ही कहा था। और महानुभावो, हम आपको विश्वास दिला सकते हैं कि सर बार्टल फ्रेयरका यह कथन आज भी उतना ही सही है कि ब्रिटिश शासनके लाभोंको, वे भारतीय जिनका दृष्टिकोण उच्च अंग्रेजी शिक्षाने व्यापक बना दिया है, जितनी अच्छी तरह समझते हैं उतनी अच्छी तरह भारतका अन्य कोई वर्ग नहीं समझता; उन्होंने यह भी कहा कि अंग्रेजी शिक्षा भारतमें ब्रिटिश शासनका सबसे स्थायी स्मारक होगी। भारतीयोंकी राजनीतिक आकांक्षाएँ अपने-आपमें ब्रिटेन द्वारा पूर्वमें किये गये मंगल कार्योंकी सराहनाके समान हैं। लॉर्ड मैकॉलेने "इंग्लैंडके इतिहासके जिस सबसे शानदार दिवस" की कल्पना की थी, वह आ

गया है और भारतवासी वही स्वशासन माँग रहे हैं जिसे अंग्रेज जाति सदासे आत्माभिमानपूर्ण राष्ट्रीय जीवनकी एक अपरिहार्य शर्त मानती आई है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जिसे एक प्रसिद्ध भारतीय नेताने "ब्रिटिश शासनकी सबसे बड़ी सफलता और ब्रिटिश राष्ट्रकी गरिमाका सिरमौर" बताया था, उसी पवित्र राष्ट्रीय आकांक्षाकी सर्वोच्च अभिव्यक्ति है; और कांग्रेसका आदर्श ही भारतीय मुसलमानोंकी सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था, अखिल भारतीय मुस्लिम लीगका भी आदर्श है। गत २० अगस्तको इंग्लैंड और भारतमें एक साथ की जानेवाली इस सरकारी घोषणाका, कि सम्राट्की सरकार भारत सरकारकी पूर्ण सहमतिसे साम्राज्यके अभिन्न अंगके रूपमें भारतमें उत्तरदायी शासनकी स्थापनाके लक्ष्यको ब्रिटिश नीतिके रूपमें स्वीकार करती है, इस देशमें बहुत सन्तोषजनक प्रभाव पड़ा। उस ऐतिहासिक घोषणाके लिए भारतमें हम सभी धर्म, वर्ग और समुदायके लोग सम्राट्की सरकार और भारत सरकारके बहुत कृतज्ञ हैं।

तथापि, हमारा निवेदन है कि इस आदर्शकी पूर्तिके लिए सुधारोंकी जो पहली किस्त लागू की जानेवाली है उनके अधीन जनताको और इस प्रकार विधान-मण्डलोंमें जनताके निर्वाचित प्रतिनिधियोंको काफी ठोस अधिकार प्रदान किये जाने चाहिए और भावी प्रगतिके निर्णयका अधिकार केवल भारत सरकार और इंग्लैंडके ही ऊपर नहीं छोड़ना चाहिए, जैसा कि इस समय तय किया गया है। यह बात स्वीकार की जानी चाहिए कि भारतकी जनताको जिसपर इस निर्णयका सीधा असर पड़ता है, ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर अपनी राय देनेका अधिकार है। यह नीति इंग्लैंडके प्रधान मंत्री द्वारा हालमें ही की गई इस घोषणाके सिद्धान्तके अनुकूल होगी, कि "नव-व्यवस्था करते समय किसी देशके निवासियोंकी इच्छा ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होनी चाहिए" और यह नीति "गर्म देशोंके ऊपर भी समान रूपसे लागू की जायेगी।" हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस देशके और साम्राज्यके हितमें यह बात अत्यन्त आवश्यक है कि व्यवहारत: जितनी जल्दी सम्भव हो उतनी जल्दी यहाँ पूर्ण उत्तरदायी शासनकी स्थापना हो। अत: हम यह आश्वासन पानेके लिए इच्छुक हैं कि इस लक्ष्यकी ओर प्रगतिकी रफ्तार समुचित रूपसे तेज होगी। हमें आशा है कि सम्राट्की सरकार इस मुद्देपर विचार करेगी।

पहली किस्तमें काफी ठोस ढंगके सुधार यथाशीघ्र लागू करनेके निश्चयके लिए भी हम बहुत कृतज्ञ हैं। महानुभाव, हम यह निवेदन करनेकी छूट लेना चाहते हैं कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके वार्षिक अधिवेशनोंकी कार्रवाई इस बातका ज्वलन्त प्रमाण है कि संवैधानिक, वित्तीय और प्रशासनिक सभी क्षेत्रोंमें व्यापक सुधारों की जबरदस्त आवश्यकता है। जन-साधारणकी आर्थिक स्थिति सुधारना और प्रबुद्ध-वर्गकी राजनीतिक आकांक्षाओंकी पूर्ति करना ही इन दोनों संगठनोंका मूल ध्येय रहा है। इन्होंने भूमि-कर सम्बन्धी नीति और प्रशासनमें सुधारकी बराबर माँग की है। इन दोनों संगठनोंकी बराबर माँग रही है कि खेतिहरोंको कर्जसे राहत देनेके लिए कदम उठाये जायें; सिंचाई सम्बन्धी निर्माण-कार्योंमें तेजी लाई जाये; औद्योगिक विकास और तकनीकी शिक्षाके बारेमें सक्रिय नीति अपनाई जाये; सभी क्षेत्रोंमें शिक्षाका व्यापक प्रसार किया जाये; सरकारी खर्चमें कटौती और करोंमें कमी की जाये जिनका सबसे ज्यादा दबाव उनपर पड़ता है जो उसका भार उठानेमें सबसे कम समर्थ हैं; पुलिस और

न्यायप्रशासनमें सुधार हो; नशाबन्दी कानूनोंमें सुधार हो; वन-नियमोंमें कानूनकी सख्ती कम की जाये; सार्वजनिक स्वास्थ्यमें उन्नति और चिकित्सा आदिकी समुचित व्यवस्था की जाये; गाँव-पंचायतोंको फिरसे स्थापित किया जाये। ये सारी माँगें ऐसी हैं जिनका उद्देश्य और ध्येय हमारे लाखों-करोड़ों गरीब देशवासियोंकी जिन्दगीको सुखी बनाना है। उनकी वर्तमान दशासे कोई भी सन्तुष्ट होनेका दावा नहीं कर सकता। हम बिना किसी संकोचके निवेदन करते हैं कि इन सुधारोंके लिए शिक्षित भारतीय प्रयत्नशील रहे हैं; और इनके अबतक लागू न किये जानेमें दोष उनका नहीं है। यह सच है कि वे जो अधिकार, उनके अपने देशमें उन्हें न्यायतः प्राप्त होने ही चाहिए, उनकी व्यावहारिक मान्यताकी माँग उत्साहके साथ करते रहे हैं; किन्तु ऐसी माँगके पीछे अपने अपेक्षाकृत कम खुशनसीब देशभाइयोंका हित-साधन करनेकी उनकी हार्दिक इच्छा का जितना हाथ है, उतना ही हाथ उनकी राष्ट्रीय आत्माभिमानकी भावनाका भी है। यदि देशके शासनमें जनताके प्रतिनिधि और प्रवक्ताकी हैसियतसे उन्होंने बराबर थोड़ी-बहुत वास्तविक सत्ता प्रदान किये जानेका आग्रह किया है, यदि उन्होंने प्रशासनमें मातहती और घटिया ढंगका दर्जा स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया है, यदि उन्होंने जाति या धर्मपर आधारित सारे भेदभाव और अयोग्यताओंको हटानेका आग्रह किया है, देशकी सुरक्षाकी जिम्मेदारीमें उन्हें जितना हिस्सा दिया गया है यदि उसके प्रति उन्होंने असन्तोष व्यक्त किया है, और यदि उन्होंने प्रतिक्रियावादी और दमनकारी कानूनोंके विरुद्ध रोष प्रकट किया है, तो ऐसा केवल इसलिए कि भारतीय होनेके नाते अपने अधिकारोंकी माँग करना उनके लिए एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक कर्त्तव्य है। समय-समयपर सरकारने जो प्रगतिशील कदम उठाये हैं उनके महत्त्वको स्वीकार करनेमें राष्ट्रीय कांग्रेस या मुस्लिम लीगने कभी देर नहीं की है। और इसीलिए हम निःसंकोच यह कहनेकी अनुमति चाहेंगे कि वर्षोंके अनुभवके बाद हमारा यह निश्चित मत है कि वर्तमान शासन-प्रणालीके अन्तर्गत जनताकी खुशहाली और प्रगतिके लिए जितना जरूरी है उसे देखते हुए केवल सामाजिक और आर्थिक सुधारोंसे कुछ नहीं बनेगा। भारतीय जनमत बहुत ही शक्तिहीन है। नौकरी सम्बन्धी और क्षेत्रीय हितोंके सामने सारे देशके हित को कम महत्त्व दिया जाता है। इस प्रणालीमें ऐसा परिवर्तन किया जाना चाहिए कि आन्तरिक शासन-व्यवस्थामें जिस हदतक सम्भव हो उस हदतक जनताकी इच्छा ही सर्वोपरि रहे।

योजनाकी मुख्य-मुख्य बातें

महानुभाव, अपने इसी दृढ़ विश्वासके अधीन राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीगने उन संवैधानिक और प्रशासनिक सुधारोंपर विचार किया जिसे यहाँ तथा इंग्लैंडकी सरकारसे स्वीकार करनेका निवेदन हम करना चाहते हैं। सुधारोंकी यह संयुक्त योजना इन दोनों संगठनोंकी समितियोंकी संयुक्त बैठकोंमें होनेवाले गम्भीर विचार-विनिमयका परिणाम है। यहाँ हम निवेदन कर दें कि वाइसराय महोदयकी विधान परिषद्के उन्नीस निर्वाचित सदस्योंने १९१६ की शरद ऋतुमें जो प्रार्थनापत्र दिया था वह कांग्रेस और लीगके संयुक्त प्रस्तावोंसे मिलता हुआ है। अब हम इस सुधार-योजनाके मुख्य पहलुओंकी

चर्चा करनेकी अनुमति लेते हैं। ये जिन बुनियादी सिद्धान्तोंपर आधारित हैं वे हैं, पहला, भारतके साथ ब्रिटेनके सम्बन्धोंकी रक्षाकी जानी चाहिए, और दूसरा, कि इस मूलभूत सिद्धान्तकी सीमामें रहते हुए, भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारोंके स्वरूप और संविधानमें परिवर्तन करके निर्वाचित सरकारोंका रूप दिया जाये जो जनताके प्रति उत्तरदायी हो, और जनता अपना शासन अपने चुने हुए प्रतिनिधियोंके जरिए करे। ब्रिटेन और भारतके सम्बन्ध सुरक्षित रखनेकी दृष्टिसे हमारा सुझाव है कि भारत सरकार विदेशी मामलों और देशकी रक्षाके मामलेमें सम्राट्की सरकार और उसके जरिए ब्रिटिश संसदके प्रति उत्तरदायी रहे। शाही विधान परिषद्को इन दो प्रश्नोंपर कोई अधिकार नहीं होगा और न ही उसे देशी रियासतों और सरकारके सम्बन्धोंमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार होगा। इतनी बात निश्चित हो जानेके बाद, हमारा अनुरोध है कि आन्तरिक मामलोंमें नियन्त्रणका अधिकार भारत मन्त्रीकी जगह भारतीय विधान-मण्डलके हाथोंमें दे दिया जाये। भारत सरकार भी इसी प्रकार प्रान्तीय सरकारोंको सत्ता प्रदान कर दे, और ये सरकार अपने प्रान्तके विधान-मण्डलके प्रति उत्तरदायी हों। स्पष्ट ही है कि ऐसी व्यवस्थामें कार्यपालिकामें बहुत अधिक संख्यामें भारतीय नियुक्त हों। विभिन्न मन्त्रिमण्डलों और विधान-मण्डलोंकी सदस्य संख्या बढ़ा दी जाये और उनका गठन इस प्रकार हो कि उनमें बहुत बड़ा बहुमत जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूपसे निर्वाचित सदस्योंका हो और जहाँतक सम्भव हो, ज्यादासे-ज्यादा लोगोंको चुनाव में मतदानका अधिकार दिया जाये। इन विधान-मण्डलोंको न केवल कानून-निर्माण बल्कि वित्त और प्रशासनके मामलेमें भी वास्तविक और ठोस सत्ता प्रदान की जाये। कांग्रेस और मुस्लिम लीगका प्रस्ताव है कि कार्य-कारिणीमें आधे सदस्य भारतीय हों, और विधान-मण्डलोंके ८० प्रतिशत सदस्य जनता द्वारा चुने हुए हों। हमारी दृष्टिमें यह प्रस्ताव बिलकुल मुनासिब है। इसी प्रकार विधान-मण्डलोंको जितनी सत्ता देनेका सुझाव है वह भी बहुत ज्यादा नहीं है; वह व्यावहारिक है। विधि विषयक, वित्तीय अथवा प्रशासनिक मामलोंके बारेमें कोई अनुपयुक्त या जल्दबाजीमें तैयार किया गया विधेयक पास न किया जाये, उक्त सुधार-योजनामें इसकी समुचित रोकथामका पर्याप्त प्रबन्ध कर दिया गया है। अल्पसंख्यकोंके हितोंकी रक्षाकी भी समुचित व्यवस्था की गई है। अल्पसंख्यकोंके बारेमें हम आपका ध्यान उक्त योजनाकी इस व्यवस्थाकी ओर आकर्षित करना चाहेंगे जिसके अनु-सार साम्प्रदायिक हितोंको प्रभावित करनेवाले किसी भी गैर-सरकारी प्रस्तावपर यदि सम्बन्धित सम्प्रदायके तीन-चौथाई सदस्य आपत्ति करेंगे तो उस प्रस्तावपर किसी भी विधान-मण्डलमें विचार नहीं किया जायेगा।

भारत-मन्त्री और उसकी कार्यकारिणी परिषद्से सम्बन्धित जो सुधार प्रस्तावित किये गये हैं वे स्वयं भारतकी शासन-प्रणालीमें प्रस्तावित सुधारके परिणाम हैं। हमारा विश्वास है कि उनके कारण काम-काजके सुचारु संचालनमें फर्क पड़े बिना बहुत-सा अनावश्यक खर्च बचेगा, और दोनों देशोंकी सरकारोंमें सामंजस्यकी स्थापना होगी।

उक्त प्रस्तावोंके समर्थनमें इस अभिनन्दनपत्रके साथ हम जो प्रार्थनापत्र आपकी सेवामें प्रस्तुत कर रहे हैं, उसमें सुधारकी आवश्यकता विस्तारपूर्वक निवेदित की गई

है। उसमें एक महत्त्वपूर्ण और सजातीय विषय, स्वायत्त शासन, तथा प्रशासनमें कुछ तात्कालिक सुधारोंके बारेमें भी चर्चा की गई है। इन दोनोंके लिए कांग्रेस और लीग बहुत समयसे सरकारसे प्रार्थना करते रहे हैं। कांग्रेस और मुस्लिम लीगके प्रस्ताव, सुधारकी संयुक्त योजना तथा उन्नीस सदस्योंका प्रार्थनापत्र, संदर्भकी सहूलियतके लिए हमारे प्रार्थनापत्रके साथ नत्थी कर दिये गये हैं। हम आशा करते हैं कि वास्तविक स्वायत्त शासनकी जिस योजनाका लॉर्ड रिपनने स्वप्न देखा था उसके कार्यान्वित किये जानेके लिए और अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। लोक-सेवाका भारतीयकरण करानेके लिए हमारे श्रद्धेय देशवासी, स्वर्गीय दादाभाई नौरोजीने दीर्घकालतक कठिन प्रयत्न किया था। हमें आशा है वह भी काफी हदतक जल्दी ही किया जायेगा। न्याय-सेवकों और न्यायपालिका सम्बन्धी कार्योंको भी जल्दी ही कार्यपालिकासे बिलकुल पृथक् किया जाना चाहिए। यह सुधार प्रबुद्ध-वर्गके हितोंकी अपेक्षा साधारण जनताके हितोंकी दृष्टिसे अत्यन्त आवश्यक है। हमें आशा है कि शस्त्रास्त्र अधिनियम और नियमों [आर्म्स ऐक्ट ऐंड रूल्ज़] में इस प्रकार संशोधन किया जायेगा कि उसमें से न केवल भारतीयोंके विरुद्ध जातीय भेदभावका चिह्न मिट जाये बल्कि उसमें भारतीयोंको यह अधिकार भी रहे कि वे कुछ शर्तोंपर शस्त्रास्त्र रख सकें या लेकर चल सकें, और ये शर्तें वैसी ही हों जैसी कि अन्य सभ्य देशोंमें, स्वयं भारतकी ही अधिकांश रियासतोंमें, और ब्रिटिश भारतमें अमरीकियों और अंग्रेजोंके मामलेमें प्रचलित हैं। फौजमें भारतीयोंपर आयुक्त अधिकारी [कमीशंड अफसर] न हो सकनेका जो प्रतिबन्ध था उसके हटाये जानेपर भारतवासी अपनी कृतज्ञता प्रकट कर ही चुके हैं। देशको आशा है कि उनकी भरतीके नियम उदार होंगे, और योग्यता-सम्बन्धी परीक्षामें सफल होनेवाले सभी वर्गोंके नौजवानोंके लिए सम्मानजनक और देशानुरागपूर्ण आजीविकाका रास्ता खोल दिया जायेगा। यह भी आशा है कि उनके प्रशिक्षण और परीक्षाकी आवश्यक सुविधाएँ भारतमें ही उपलब्ध की जायेंगी और काफी बड़ी संख्यामें भारतीयोंको नियुक्त किया जायेगा। भारतीयोंको स्वयंसेवकोंकी हैसियतसे भरती होनेकी अनुमति नहीं है, यह एक काफी पुरानी शिकायत है। किन्तु स्वयंसेवकके रूपमें अपनी सेवाएँ अर्पित करनेकी जो प्रणाली अभीतक जारी रही है, वह समाप्त करनेका विचार हो, तो वैसी स्थितिमें हमारा विश्वास है कि युद्धके बाद भारतीय प्रतिरक्षा सेना [इंडियन डिफेंस फोर्स] को विघटित नहीं किया जायेगा, और यह अनुरोध है कि उसके भारतीय दस्तोंको यूरोपीय दस्तोंके साथ बिलकुल बराबरीका दर्जा प्रदान किया जाये।

साम्राज्यमें भारतका दर्जा

महानुभाव, अपनी बात समाप्त करनेसे पहले, हम आपका ध्यान जिस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातकी ओर दिलायेंगे वह है साम्राज्यमें भारतका दर्जा। एक शब्दमें कहें तो हमारी माँग यह है कि उसे अधीनताके स्तरसे उठाकर अन्य डोमिनियनोंके साथ बराबरीका दर्जा दिया जाये। इनके बीच वास्तविक और पूर्ण अर्थोंमें पारस्परिक सम्बन्ध होने चाहिए। हमारा निवेदन है कि यदि अन्य डोमिनियनोंको भारतसे सम्बन्धित मामलोंमें कुछ अधिकार

बरतने दिये जायें तो भारतको उनके मामलेमें वे ही अधिकार होने चाहिए। यदि कभी भविष्यमें कोई साम्राज्यीय परिषद् या संसद स्थापित की जाये तो उसमें भारतको अन्य डोमिनियनोंके समान ही और बराबरका प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। जबतक ऐसा नहीं किया जाता, तबतक हमारे देशके शासनमें अन्य डोमिनियनोंका भाग लेना, सो भी तब जबकि भारतको उनके यहाँके शासनमें भाग लेनेका वैसा कोई अधिकार नहीं है, हमारे मौजूदा असन्तोषजनक दर्जेको और भी नीचे गिरानेके समान होगा जिससे इस देशमें बहुत जबरदस्त विरोध उत्पन्न होगा। हमें आशा और विश्वास है कि सम्राट्की सरकार ऐसे किसी प्रस्तावको स्वीकार नहीं करेगी। और फिलहाल हमारी प्रार्थना है कि भारतको साम्राज्यीय सम्मेलनमें (और यदि कोई साम्राज्यीय मन्त्रि-मण्डल स्थापित किया जाये तो उसमें भी) हमारे विधान-मण्डलोंके निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने गये अपने प्रतिनिधि भेजनेकी अनुमति दी जाये। इस वर्षके आरम्भमें इंग्लैंडमें होनेवाली साम्राज्यीय युद्ध-परिषद् और साम्राज्यीय युद्ध मन्त्रि-मण्डलकी बैठकोंमें भाग लेनेके लिए भारतकी ओरसे तीन व्यक्तियोंको भेजकर भारतको जो सम्मान प्रदान किया गया था उसके लिए हम सम्राट्की सरकार और भारत सरकारके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। उक्त युद्ध परिषद् द्वारा सर्व-सम्मतिसे स्वीकार किये गये उस प्रस्तावकी भी हम बहुत कद्र करते हैं जिसमें साम्राज्यीय परिषद्की भावी साधारण बैठकोंमें भारतको नियमित रूपसे अपना प्रतिनिधि भेजनेका सुझाव दिया गया था। एक ओर सम्राट्की सरकारके साथ और दूसरी ओर भारतकी जनताके साथ अपने सम्बन्धोंमें भारत सरकारकी जो मौजूदा संवैधानिक स्थिति है उसमें भारत सरकार द्वारा नामजद किये गये व्यक्तिका दर्जा जनताके प्रतिनिधि अथवा जनताके प्रवक्ताका नहीं हो सकता, जैसा कि उत्तरदायी शासन प्राप्त डोमिनियनोंके मंत्रियोंका होता है। इस मामलेमें हम खेदपूर्वक यह निवेदन करनेको विवश हैं कि मौजूदा प्रणालीसे लेकर उत्तरदायी सरकारकी स्थापना तकके संक्रमण कालमें इस बातकी अनुमति दी जाये कि साम्राज्यीय परिषद् और साम्राज्यीय मन्त्रि-मण्डलमें भारतके विधानमण्डलोंके निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने गये व्यक्तियोंको ही इस देशका प्रतिनिधि बनाकर भेजा जाये।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २८-११-१९१७

परिशिष्ट २

कांग्रेस-लीग योजना

(क) इस तथ्यको देखते हुए कि भारतकी महान् जातियाँ अत्यन्त प्राचीन सभ्यताओंकी वारिस हैं और उन्होंने शासन चलाने तथा प्रशासन करनेकी जबरदस्त क्षमता प्रदर्शित की है, और पिछले सौ सालके ब्रिटिश शासनमें उन्होंने शिक्षा तथा राजनैतिक चेतनाकी दृष्टिसे बहुत प्रगति की है; और साथ ही इस तथ्यको भी देखते हुए कि वर्तमान शासन-प्रणाली इस देशकी जनताकी उचित आकांक्षाओंको पूरा करनेमें असमर्थ है तथा मौजूदा स्थितियों और आवश्यकताओंमें अनुपयुक्त सिद्ध हो चुकी है; कांग्रेसका यह मत है कि अब समय आ गया है जब महामहिम सम्राट्को कृपापूर्वक इस आशयकी घोषणा कर देनी चाहिए कि ब्रिटिश सरकारकी नीति और उद्देश्य निकट भविष्यमें भारतको स्वशासन प्रदान करना है।

(ख) उसे यह घोषणा भी कर देनी चाहिए कि साम्राज्यका पुनर्गठन करते समय अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने ऑल इंडिया मुस्लिम लीग द्वारा नियुक्त की गई सुधार-समितिके सहयोगसे सुधारोंकी जो योजना (जिसे आगे सविस्तार दिया जा रहा है) प्रस्तुत की है उसे स्वीकार करके भारतको स्वशासनकी दिशामें बढ़ाया जायेगा।

(ग) और यह भी कि साम्राज्यका पुनर्गठन होनेपर भारतको परतन्त्रताकी स्थितिसे उठाकर साम्राज्यके अन्य स्वशासित डोमिनियनों जैसा दर्जा प्रदान किया जायेगा।

सुधार-योजना

१ – प्रान्तीय विधान परिषद्

१. प्रान्तीय विधान परिषदोंमें ८० प्रतिशत निर्वाचित और २० प्रतिशत नामजद सदस्य होंगे।

२. बड़े प्रान्तोंमें सदस्योंकी संख्या कमसे-कम १२५ और छोटे प्रान्तोंमें ५० से लेकर ७५ होगी।

३. विधान परिषदोंके सदस्य यथासम्भव व्यापकतम मताधिकारके आधारपर सीधे जनता द्वारा निर्वाचित होंगे।

४. महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक जातियोंको चुनावके जरिये प्रतिनिधित्व प्रदान करनेकी समुचित व्यवस्था होगी। प्रान्तीय विधान परिषदोंमें मुसलमानोंको विशेष निर्वाचकोंके जरिये निम्नलिखित अनुपातमें प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए :—

पंजाब — निर्वाचित भारतीय सदस्योंका	५० प्रतिशत
संयुक्त प्रान्त — ” ”	३० प्रतिशत
बंगाल — ” ”	४० प्रतिशत

बिहार —	,,	,,	२५ प्रतिशत
मध्य प्रान्त —	,,	,,	१५ प्रतिशत
मद्रास —	,,	,,	१५ प्रतिशत
बम्बई —	,,	,,	३३ प्रतिशत

बशर्ते कि विशेष हितोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले निर्वाचकों द्वारा होनेवाले चुनावोंके अतिरिक्त शाही या प्रान्तीय विधान परिषदोंके अन्य किसी चुनावमें कोई मुसलमान भाग नहीं लेगा।

और बशर्ते कि किसी जाति या सम्प्रदायको प्रभावित करनेवाले किसी विधेयक या उसकी किसी धारा, अथवा किसी गैर-सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किये गये किसी प्रस्ताव पर, शाही या प्रान्तीय विधान परिषद्में जहाँ उक्त विधेयक या प्रस्ताव पेश किया गया हो, उस सम्प्रदायके तीन-चौथाई सदस्यों द्वारा विरोध किये जानेकी दशामें विचार नहीं किया जायेगा। ये किसी सम्प्रदायको प्रभावित करते हैं या नहीं, इसका निर्णय उस सम्प्रदायके सदस्य ही करेंगे।

५. प्रान्तीय सरकारके प्रधानको विधान परिषद्का सभापति नहीं होना चाहिए, बल्कि विधान परिषद्को अपना सभापति चुननेका अधिकार होना चाहिए।

६. पूरक प्रश्न पूछनेका अधिकार उसी सदस्यतक सीमित नहीं होना चाहिए जिसने मूल प्रश्न पूछा है; किसी भी अन्य सदस्यको पूरक प्रश्न करनेकी अनुमति होनी चाहिए।

७. (क) चुंगी, डाक, तार, टकसाल, नमक, अफीम, रेलवे, स्थल-सेना और नौसेना तथा भारतीय रजवाड़ोंसे प्राप्त होनेवाले नजरानोंको छोड़कर राजस्वके सभी साधनोंपर प्रान्तीय सरकारोंका अधिकार होना चाहिए।

(ख) राजस्वकी मदें अलग-अलग नहीं होनी चाहिए। भारत सरकारको विभिन्न प्रान्तोंसे होनेवाले धनके अंशदानकी राशि नियत कर दी जानी चाहिए। असाधारण तथा अप्रत्याशित स्थिति होनेपर उक्त नियत राशिका पुनर्निर्धारण आवश्यक होनेकी स्थितिमें अंशदानकी राशि बढ़ायी जा सकेगी।

(ग) प्रान्तीय विधान परिषद्को प्रान्तके आन्तरिक प्रशासन सम्बन्धी मामलोंमें पूरी सत्ता होनी चाहिए। इनमें ऋण लेने, कर लगाने या कर-पद्धतिमें परिवर्तन करने तथा बजटपर वोट देनेकी सत्ता शामिल होगी। खर्चके सारे मुद्दे और आवश्यक राजस्व प्राप्त करनेके साधनों और तरीकोंसे सम्बन्धित सभी प्रस्तावोंको विधेयककी शकलमें नियोजित करके स्वीकृतिके लिए विधान परिषद्में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(घ) प्रान्तीय सरकारके अधिकार-क्षेत्रमें आनेवाले सभी मामलोंपर विचार करनेके लिए प्रस्ताव रखने और उनपर बहस करनेकी अनुमति होनी चाहिए। प्रस्ताव और बहस सम्बन्धी नियमोंकी रचना विधान परिषद् स्वयं करे।

(ङ) प्रान्तीय विधान परिषद् द्वारा पास किया गया कोई प्रस्ताव प्रान्तीय कार्यपालिकाके लिए बाध्यकारी होगा, बशर्ते कि सपरिषद्-गवर्नर उसे निषिद्ध न कर दें। किन्तु, कमसे-कम एक वर्षकी अवधि बीत जानेके बाद वही प्रस्ताव विधान परिषद् फिर पास कर दे, तो उसे कार्यरूप देना अनिवार्य होगा।

(च) किसी तात्कालिक महत्त्वके सार्वजनिक प्रश्नपर विचार करनेकी गरजसे कार्य-स्थगन प्रस्ताव पेश किया जा सकेगा, बशर्ते कि सदनमें उपस्थित सदस्योंमें से कमसे-कम $\frac{1}{5}$ सदस्य उसके पक्षमें हों।

८. उपस्थित सदस्योंमें से कमसे-कम $\frac{1}{5}$ सदस्योंकी माँगपर प्रान्तीय विधान परिषद्की विशेष बैठक बुलाई जा सकेगी।

९. स्वयं विधान परिषद् द्वारा रचे गये नियमोंके अनुसार वित्त विधेयकको छोड़कर अन्य कोई भी विधेयक विधान परिषद्में पेश किया जा सकेगा, और इसके लिए सरकारकी सहमति लेना जरूरी नहीं होगा।

१०. प्रान्तीय विधान परिषद् द्वारा पास किये गये सभी विधेयक गवर्नरकी *स्वीकृति मिलनेके बाद ही कानून बन सकेंगे, लेकिन गवर्नर-जनरल* यदि चाहे तो उनको निषिद्ध कर सकता है।

११. सदस्योंका कार्यकाल पाँच वर्ष होगा।

२ – प्रान्तीय सरकारें

१. प्रत्येक प्रान्तीय सरकारका प्रधान एक गवर्नर होगा जो सामान्यतः भारतीय सिविल सर्विस या अन्य किसी स्थायी सेवाका सदस्य नहीं होगा।

२. प्रत्येक प्रान्तमें एक कार्यकारिणी परिषद् होगी जो गवर्नर सहित, प्रान्तकी कार्यपालिका सरकार होगी।

३. सामान्यतः भारतीय सिविल सर्विसके सदस्योंको कार्यकारिणी परिषद्में नियुक्त नहीं किया जायेगा।

४. कार्यकारिणी परिषद्के कमसे-कम आधे सदस्य भारतीय होंगे जिनका चुनाव प्रान्तीय विधान परिषद्के निर्वाचित सदस्य करेंगे।

५. सदस्यताकी अवधि पाँच वर्ष होगी।

३ – शाही विधान परिषद्

१. शाही विधान परिषद्के सदस्योंकी संख्या १५० होगी।

२. ८० प्रतिशत सदस्य निर्वाचित सदस्य होंगे।

३. शाही विधान परिषद्के लिए, प्रान्तीय विधान परिषदोंमें मुसलमानोंके लिए मताधिकारकी जो व्यवस्था है उसीके अनुसार, यथासम्भव अधिकसे-अधिक लोगोंको मताधिकार प्रदान किया जायेगा और प्रान्तीय विधान परिषदोंको भी शाही विधान परिषद्के कुछ सदस्य चुननेका अधिकार होगा।

४. निर्वाचित सदस्योंमें से एक तिहाई सदस्य मुसलमान होंगे जिन्हें, विभिन्न प्रान्तीय विधान परिषदोंमें पृथक् मुसलमान मतदाताओं द्वारा चुने गये मुसलमान सदस्योंकी संख्याका जो अनुपात है, यथासम्भव उसी अनुपातमें विभिन्न प्रान्तोंके पृथक मुसलमान मतदाताओं द्वारा चुना जायेगा। देखिए खण्ड १, धारा ४ की अवधान धाराएँ।

५. विधान परिषद्के सभापतिका चुनाव विधान परिषद् स्वयं करेगी।

६. पूरक प्रश्न पूछनेका अधिकार मूल प्रश्नकर्त्ता तक सीमित न रहकर प्रत्येक सदस्यको होगा।

७. कुल सदस्य संख्याके कमसे-कम $\frac{1}{6}$ की माँगपर विधान परिषद्‌की विशेष बैठक बुलाई जा सकेगी।

८. किसी वित्त विधेयकको छोड़कर अन्य कोई भी विधेयक विधान परिषद् द्वारा बनाये गये तत्सम्बन्धित नियमोंके अनुसार विधान परिषद्‌में पेश किया जा सकेगा; और उसके लिए कार्यपालिका-सरकारकी सहमति लेना जरूरी नहीं होगा।

९. विधान परिषद् द्वारा पास किये सभी विधेयकोंको कानून बननेसे पहले गवर्नर जनरलकी स्वीकृति मिलना जरूरी होगा।

१०. आयके साधनों और खर्चके मुद्दोंसे सम्बन्धित सभी वित्तीय प्रस्तावोंको एक विधेयकके रूपमें प्रस्तुत किया जायेगा। ऐसा प्रत्येक विधेयक तथा बजट वोटके लिए शाही विधान परिषद्‌के सामने पेश किया जायेगा।

११. सदस्योंका कार्यकाल पाँच वर्षका होगा।

१२. निम्नलिखित विषयोंपर शाही विधान परिषद्‌का अनन्य नियन्त्रण होगा:

(क) ऐसे मामले जिनमें सारे भारतके लिए एक समान कानून होना अपेक्षित है।

(ख) जिस हदतक कोई प्रान्तीय कानून आन्तरप्रान्तीय आर्थिक सम्बन्धोंको प्रभावित करता हो।

(ग) भारतीय रजवाड़ोंसे मिलनेवाले नजरानोंको छोड़कर उन सभी प्रश्नोंपर जिनका सम्बन्ध केवल केन्द्रीय राजस्वसे है।

(घ) उन सभी प्रश्नोंपर जिनका सम्बन्ध केवल केन्द्रीय सरकारके खर्चसे है, लेकिन देशकी सुरक्षाके लिए सैनिक व्ययके सम्बन्धमें शाही विधान परिषद् द्वारा पास किया गया कोई प्रस्ताव सपरिषद्-गवर्नर जनरलके लिए बाध्यकारी नहीं होगा।

(ङ) जो विषय चुंगी-शुल्क और चुंगीमें परिवर्तन करने, कोई कर अथवा उपकर लगाने, परिवर्तन करने या हटाने, मुद्रा और बैंकिंगकी मौजूदा प्रणालीमें सुधार करने तथा देशके सभी उपयुक्त और नवोदित उद्योगोंको आर्थिक सहायता या पुरस्कार देनेसे सम्बन्धित हैं।

(च) जो समस्त देशके सभी प्रशासनिक मामलोंके विषयमें प्रस्तावसे सम्बन्धित हैं।

१३. सपरिषद्-गवर्नर जनरल यदि निषिद्ध न कर दें, तो विधान परिषद् द्वारा पास किया कोई भी प्रस्ताव कार्यपालिका सरकारके लिए बाध्यकारी होगा; किन्तु निषिद्ध कर दिये जानेपर यदि वही प्रस्ताव कमसे-कम एक वर्षकी अवधि बीत जानेपर विधान परिषद् फिर पास कर दे तो उसे कार्यान्वित करना अनिवार्य होगा।

१४. यदि कुल उपस्थित सदस्योंमें से $\frac{1}{8}$ सदस्य समर्थन करें तो तात्कालिक महत्त्वके किसी निश्चित सार्वजनिक प्रश्नपर विचार करनेके लिए स्थगनका प्रस्ताव लाया जा सकेगा।

१५. यदि किसी प्रान्तीय विधान परिषद् या शाही विधान परिषद् द्वारा पास किये गये किसी विधेयकपर सम्राट् अपना निषेधाधिकार प्रयुक्त करना चाहें तो इस अधिकारका प्रयोग विधेयक पास होनेकी तारीखसे बारह महीनेके भीतर किया जाना चाहिए, और सम्बन्धित विधान परिषद्को जिस दिन इस निषेधाज्ञाकी सूचना मिलेगी उसी दिनसे उक्त विधेयक प्रभावहीन हो जायेगा।

१६. भारत-सरकार द्वारा सैनिक मामलोंके, तथा भारतके वैदेशिक और राजनीतिक मामलोंके संचालनमें, जिसमें युद्ध घोषित करने, शान्ति घोषित करने और सन्धि करनेका अधिकार शामिल होगा, शाही विधान परिषद्को हस्तक्षेप करनेकी सत्ता नहीं होगी।

४ – भारत-सरकार

१. गवर्नर जनरल भारत-सरकारका प्रधान होगा।

२. उसकी एक कार्यकारिणी परिषद् होगी, जिसके आधे सदस्य भारतीय होंगे।

३. परिषद्के भारतीयोंका चुनाव केन्द्रीय विधान परिषद्के निर्वाचित सदस्य करेंगे।

४. साधारणतया भारतीय सिविल सर्विसके सदस्योंको गवर्नर जनरलकी कार्यकारिणी परिषद्में नियुक्त नहीं किया जायेगा।

५. केन्द्रीय नागरिक सेवाओंमें सारी नियुक्तियाँ करनेका अधिकार इस योजनाके अनुसार स्थापित होनेवाली भारतीय सरकारको होगा, लेकिन शाही विधान परिषद् द्वारा बनाये गये किन्हीं कानूनोंके भीतर रहते हुए मौजूदा हितोंका ऐसी नियुक्तियोंमें ध्यान रखा जायेगा।

६. भारत-सरकार साधारणतया किसी प्रान्तके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं करेगी। जो अधिकार विशिष्ट रूपसे प्रान्तीय सरकारोंको न दिये गये हों वे भारत-सरकारमें निहित माने जायेंगे। भारत-सरकारकी सत्ता साधारणतया प्रान्तीय सरकारोंके ऊपर सर्वसामान्य निरीक्षण और देखभाल रखने तक सीमित होगी।

७. विधि-निर्माण और प्रशासनके मामलोंमें इस योजनाके अनुसार स्थापित होनेवाली भारत-सरकार भारत मन्त्रीके हस्तक्षेपसे यथासम्भव मुक्त होगी।

८. भारत-सरकारके आय-व्यय लेखा-परीक्षाकी एक स्वतन्त्र पद्धति स्थापित की जाये।

५ – सपरिषद्–भारत मन्त्री

१. भारत मन्त्रीकी कार्यकारिणी परिषद् समाप्त कर दी जाये।

२. भारत मन्त्रीका वेतन ब्रिटेनकी सरकार द्वारा दिया जाना चाहिए।

३. भारत मन्त्रीका भारत-सरकारके मामलेमें वही दर्जा और अधिकार हो जो स्वशासित डोमिनियनोंकी सरकारोंके मामलेमें उपनिवेश मन्त्रीको प्राप्त है।

४. भारत मन्त्रीकी सहायताके लिए दो स्थायी अवर सचिव [अन्डर सेक्रेटरी] होने चाहिए। जिनमें से एक सदैव भारतमें रहे।

६ – भारत और साम्राज्य

१. साम्राज्यीय प्रश्नोंका निबटारा या नियन्त्रण करनेके लिए यदि किसी परिषद् या संगठनकी रचना की जाय तो उसमें भारतको अन्य डोमिनियनोंके साथ बराबरीके दर्जे-पर और समान अधिकारोंके साथ समुचित प्रतिनिधित्व दिया जाये।

२. पूरे साम्राज्यके अन्दर महामहिम सम्राट्के अन्य प्रजाजनोंको जो दर्जा और नागरिकताके अधिकार प्राप्त हैं वही दर्जा और नागरिकताके अधिकार भारतीयोंको प्रदान किये जायें।

७ – सेना-विषयक तथा अन्य मामले

१. महामहिम सम्राट्की सेना और नौ-सेनामें कमीशन-युक्त और गैरकमीशन-युक्त सभी पदोंपर भारतीयोंको नियुक्त होनेका अवसर प्रदान किया जाये, तथा उनके चुनाव, प्रशिक्षण तथा शिक्षा आदिकी भारतमें समुचित व्यवस्था की जाये।

२. भारतीयोंको सेनामें स्वयंसेवकके रूपमें भरती होनेकी अनुमति दी जाये।

३. भारतमें कार्यपालक अधिकारियोंको न्याय-विषयक अधिकार नहीं दिये जायेंगे, और प्रत्येक प्रान्तकी न्यायपालिका उस प्रान्तकी सर्वोच्च अदालतके अधीन रहेगी।

[अंग्रेजीसे]

हिस्ट्री ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस, खण्ड १

परिशिष्ट ३

एल० एफ० मॉर्संहैडको लिखे गये जे० टी० व्हिटीके पत्रका अंश

[बेतिया
नवम्बर १७, १९१७]

. . . यह तथ्य है कि रैयत श्री गांधीकी प्रतिष्ठाके बारेमें अतिरंजित विचार रखती है, परन्तु खासे प्रमाणोंके आधारपर मुझे मालूम हुआ है कि कुछ मामलोंमें उनके निर्देश रैयतको पसन्द नहीं आये और रैयतने उन मामलोंमें उनकी आज्ञा माननेसे इनकार कर दिया। उदाहरणार्थ मुझे बताया गया है कि तुरकौलिया देहातमें जब श्री गांधीने रैयतको २० प्रतिशत शरहबेशीसे, जिसपर वे राजी हुए थे, कम देनेकी सलाह दी तो उन्होंने साफ कह दिया कि हम ऐसा कोई काम नहीं करेंगे और वे अब कह रहे हैं कि "गांधी हैं कौन?"

दो दिन पहले श्री गांधीने मुझे सूचित करते हुए लिखा था[1] कि उनके पास रैयतकी तरफसे इस आशयके कई सवाल आये हैं कि जिन गाँवोंमें तावान लिया जा चुका है उनमें लगानकी बढ़ोतरीके मुकदमे क्यों चल रहे हैं; और जब कि सात बरससे लगानमें

१. यह उपलब्ध नहीं है।

कोई वढ़ोतरी नहीं हुई है। मुझे ऐसा लगा कि इस पूछताछसे सामान्य स्थिति और तत्सम्बन्धी कानूनके ज्ञानका असाधारण अभाव प्रकट होता है। स्पष्ट ही हम अपने मुकदमे वापस नहीं लेंगे क्योंकि हम तो केवल सात सालकी वढ़ोतरी अदा कर देना चाहते हैं और चाहते हैं कि इसका लेखा कानूनी लगानके रूपमें दर्ज हो जाये। और फिर हमारे पास अभीतक उन रैयतोंकी कोई विश्वसनीय जानकारी नहीं है जिन्होंने वास्तवमें तावान अदा कर दिया है।

मैंने श्री गांधीको जवाव दिया कि आपका खयाल गलत है। आपकी गलतफहमी दूर करनेमें मुझे प्रसन्नता होगी; आप मुझसे मिल लें; परन्तु साथ ही मैं यह वता देना चाहता हूँ कि रैयतके लोग हमारे पास नहीं आये। मैं उन मामलोंमें, जिन्हें मैं खुद निपटा सकता हूँ, किसी मध्यस्थका होना पसन्द नहीं करता।

उन्होंने जवावमें कहा कि मैं समझ नहीं पाता कि सरकारी अफसर उन नेताओंकी मदद लेनेसे इनकार क्यों करते हैं जो उनकी अपेक्षा रैयतके अधिक सम्पर्कमें हैं और उद्देश्य तो दोनोंके कामोंका एक ही है। उन्होंने यह भी कहा कि वे आकर मुझे परेशान नहीं करना चाहते।

मैंने जवाव दिया कि जिस मामलेमें आप मेरे और मेरे काश्तकारोंके वीचमें पड़े हैं वह कोई उलझा हुआ मामला नहीं है। उसमें मुझे किसी वाहरी व्यक्तिकी मददकी जरूरत नहीं है। इसके सिवा यदि कोई मध्यस्थ वनकर काश्तकारोंके साथ सीधे सम्पर्कमें आनेसे मुझे रोकता है तो मैं यह वात पसन्द नहीं करता।

श्री गांधीने यह माननेसे इनकार किया कि उनका वीचमें पड़ना अनुचित है वल्कि उन्होंने अपनी शिक्षा-नीतिके वारेमें मिलनेकी इच्छा व्यक्त की।

मैं उनसे मिला और उनसे लम्वी वातचीत की और आयोगकी रिपोर्टमें उठाये गये अनेकों मुद्दोंपर विचार-विनिमय किया।

हमेशाकी तरह वातचीतमें मैंने उन्हें प्रायः वहुत ही संगत पाया। उन्होंने नीलकी खेती अचानक वन्द होनेपर खेद व्यक्त किया। उनका अपना विचार था कि कुछ और समय दिया जाना चाहिए था। उन्होंने मुझे वताया कि लगान देनेसे इनकार करनेका कारण रैयतकी मूर्खता है। उसने आदेशोंका गलत मतलव समझा। जव कभी वे मेरे पास आये तो मैंने उन्हें समझाया कि उन्हें लगान तो हमेशाकी तरह देना ही चाहिए। श्री गांधीने कहा कि अव वे अपनी अर्जित प्रतिष्ठाका उपयोग गाँवोंमें सफाई और कृषिके तरीकोंको वेहतर वनानेमें करना चाहते हैं। वे यथाशक्ति वागान-मालिकों और उनके किसानोंके सम्वन्ध सुधारना चाहते हैं।

उन्होंने अपने साथियोंका अमानके देहातमें कथित दंगोंके वारेमें पूछताछ करनेके लिए जाना सही माना। कहा जाता है कि इनमें पुलिसका हाथ था और यदि ऐसा है तो वे निःसन्देह रैयतके आमन्त्रणपर स्वयं इसी प्रकारकी पूछताछ करनेको तैयार हैं।

मैं अव भी मानता हूँ कि श्री गांधी स्वयं उन वातोंकी ओरसे उदासीन हैं जिन्हें वे अपना अन्तिम उद्देश्य मानते हैं। परन्तु अपनी प्रतिष्ठा वनाने और उसे मजवूत करनेके लिए वे अवश्य ही ऐसे तरीकोंका इस्तेमाल करेंगे जो आगे-पीछे जिलेकी शान्तिके लिए निश्चय ही खतरा उत्पन्न कर देंगे।

लगानकी अदायगी न होने और जमींदारके सम्मत अधिकारोंमें हस्तक्षेपके सम्बन्धमें वे निश्चय ही कानूनका पालन किया जाना पसन्द करेंगे और रैयतको भी वैसी ही सलाह देंगे। इस सीमातक फिलहाल जिलेमें उनकी मौजूदगीसे कुछ नुकसानके बजाय लाभ ही होनेकी सम्भावना है। साथ ही वे आन्दोलनका केन्द्र-विन्दु बने रहना चाहते हैं। उन्हें सभी पक्षोंके प्रति न्यायपूर्ण रहनेवाला मध्यस्थ माननेके बजाय बागान-मालिकोंके विरुद्ध रैयतका नेता माना जाता है और इसलिए यह सम्भव नहीं है कि उनको लेकर कोई बवंडर खड़ा न हो।

हृदयसे आपका,
जे० टी० ह्विटी

सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन

परिशिष्ट ४

दफ्तरी पत्रव्यवहार और टिप्पणियोंके उद्धरण

(क) जे० एल० मैरीमैनका पत्र

मोतीहारी
नवम्बर १८, १९१७

प्रिय श्री गांधी,

आपका १४-११-१९१७ का पत्र मिला।

आप पाठशालाएँ खोलनेका प्रयत्न कर रहे हैं, यह जानकर मुझे खुशी हुई। अगर सूचित कर सकें कि आप किस ढंगकी पाठशालाएँ खोलना चाहते हैं और उनमें किस ढंगकी शिक्षा दी जायेगी तो अच्छा होगा। जहाँ शालाएँ खोलनी हैं उन जगहोंके नाम भी लिखें।

आपके इसी माहके १७ तारीखके पत्रमें, आपने कुछ काश्तकारोंकी इस शिकायतकी चर्चा की है कि उन्हें कतिपय कागजोंपर हस्ताक्षर करनेको विवश किया गया था . . . इस विषयमें, यदि उन्हें लगता है कि उनके साथ अन्याय हुआ है, तो वे अदालतमें जानेको स्वतन्त्र हैं।

मैं किसी भी ऐसे मामलेके बारेमें कोई ऐसी बात सुननेकी स्थितिमें नहीं हूँ जो अदालतके विचाराधीन हैं अथवा जो अदालतकी रायको किसी रूपमें प्रभावित कर सकती हो . . . इसलिए मुझे प्रसन्नता है कि शिवरतन नोनिया द्वारा दायर किये गये मुकदमेके बारेमें अपनी राय मुझे भेजनेका आपका इरादा नहीं है।

जे० एल० मैरीमैन

(ख) जे० एल० मैरीमैनका पत्र एल० एफ० मॉर्सहैडको

मोतीहारी
नवम्बर २४, १९१७

प्रिय श्री मॉर्सहैड,

मेरी पाक्षिक गोपनीय रिपोर्ट।

सामान्य स्थितिमें सुधार नहीं हुआ, बल्कि वह कुछ बिगड़ी ही है। मुझे यह रिपोर्ट देते हुए खेद होता है कि देशी भाषामें दी गई सरकारी विज्ञप्तिसे सरकारकी कठिनाइयाँ बढ़ गई मालूम पड़ती हैं। . . .

८. . . . जान पड़ता है, श्री गांधीके लौटने तथा सरकारके इरादेकी घोषणासे उत्तेजना फिर बढ़ी है।

९. श्री गांधी पुनः हमारे बीच आ गये हैं; वैसे अभी-अभी मुझे उनका पत्र मिला है जिसमें उन्होंने लिखा है कि वे १५ दिनके लिए बाहर जा रहे हैं। मैंने ९ नवम्बर, १९१७को उनसे अपनी मुलाकातके बारेमें आपको सूचना दे दी थी। महीनेके प्रारम्भमें यहाँ आनेके बादसे वे अत्यन्त सक्रिय हैं। उन्होंने निम्नलिखित स्थानोंमें स्कूल चलाने प्रारम्भ कर दिये हैं:

(१) बरहरवा-ने-ढाका — श्री और श्रीमती गोखलेकी देखरेखमें। श्रीमती गोखले एक "प्रशिक्षित नर्स तथा दाई" हैं।

(२) मितीहरवा — श्री सोमण "बेलगाँवके एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता", श्री बालकृष्ण "गुजरातके एक नवयुवक" तथा स्वयं श्रीमती गांधीकी देखरेखमें।

(३) बेलवा — पी० एस० शिकारपुर बेलवा कारखानेके पास।

मुझे कृपया हिदायत दी जाये कि श्री गांधी, उनके स्कूल तथा उनके स्वच्छता प्रचारके प्रति क्या रुख अपनाना है। उनके कार्यके स्वरूपके बारेमें इतमीनान किये बिना ही मैं उन्हें प्रोत्साहन दूँ अथवा तटस्थ रुख अपनाऊँ?

मैं अभी उनके द्वारा दी गई हिदायतों या उनके अनुयायियोंके बारेमें कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि मैं उनके बारेमें कुछ जानता नहीं हूँ। जिस कामकी वे बात करते हैं यदि सचमुच उसमें उनकी दिलचस्पी है तो मेरी समझमें तो वे उससे, अर्थात् बिहारी किसानको स्वच्छताका पाठ पढ़ानेसे बहुत जल्दी तंग आ जायेंगे। श्री गांधी अपने स्कूलोंके लिए चन्दा एकत्र करनेकी कोशिश कर रहे हैं, किन्तु इस सम्बन्धमें स्थानीय भारतीयोंने बहुत कम उत्साह दिखाया है।

१०. इसी प्रकार निवेदन है कि श्री गांधीकी दूसरी गतिविधियोंके प्रति क्या रुख अपनाया जाये, इस विषयमें भी मुझे सूचित कर दिया जाये। वे अपनेको स्वच्छता तथा शैक्षणिक मामलोंतक ही सीमित नहीं रख रहे हैं। वे बेलवा (जिस स्थानपर उन्होंने स्कूलकी स्थापना भी की है) में शिवरतन नोनिया बनाम बेलवा कारखानेके श्री अमन द्वारा चलाये गये मामलेकी वैयक्तिक जाँच कर रहे हैं। इसी सम्बन्धमें मैंने गत अक्तूबरकी २७ तारीखको अपने सरकारी पत्रमें बाबू जनकधारी प्रसादकी गतिविधियोंकी खबर भेजी। उक्त मामलेमें जब कि न्यायालय अपना निर्णय दे चुका है, उन्होंने मुझे अपने विचार

बतानेका इरादा जाहिर किया है। वे सिराहा-कारखानेकी रैयत द्वारा किये गये कुछ समझौतोंके प्रश्नकी भी जाँच कर रहे हैं। मुझे श्री अमनसे मालूम हुआ कि बेलवामें श्री गांधीने अधिकृत जाँच-पड़ताल की और वादियों तथा कुछ गवाहोंके बयान लिये।

सार्वजनिक अधिकारीके नाते मैं समझता हूँ, कि यदि बाहरसे मित्रतापूर्ण सहायता मिले तो मुझे उसका स्वागत करना चाहिए। किन्तु जो मामले वस्तुतः न्यायालयोंमें विचाराधीन हैं, उनकी स्वतन्त्र रूपसे जाँच-पड़तालकी प्रथाका मेरी दृष्टिमें, बड़ा दुरुपयोग हो सकता है, विशेषकर जब कि सम्बन्धित लोग चम्पारनके लोगोंकी तरह अनजान तथा असन्तुलित हों और उनका झुकाव झूठ बोलनेकी ओर हो। श्री गांधी स्वयं निष्पक्ष होनेका दावा करते हैं; हो सकता है कि यह दावा सही हो, किन्तु उनके बहुतसे सहायकों की निष्पक्षता सन्देहास्पद है, और मैं सोचता हूँ कि वे अपने स्वार्थकी दृष्टिसे मामलेमें नमक-मिर्च मिलानेसे बाज नहीं आयेंगे। श्री गांधी यह विश्वास दिला चुके हैं कि वे केवल उन्हीं मामलोंमें हस्तक्षेप करेंगे, जहाँ उनको रैयतके साथ स्पष्ट अत्याचार दिखाई देगा। किन्तु मेरी समझमें श्री गांधी निर्भ्रान्त रूपसे यह तय नहीं कर सकते क्योंकि मामलोंमें इस प्रकारका भेद करना सर्वथा असम्भव है। इस प्रथाको या तो सभी मामलोंमें स्वीकार करना चाहिए अथवा एकमें भी नहीं। इस मुद्देपर मैं पथप्रदर्शन चाहता हूँ।

अनुच्छेद ९ में उल्लिखित बेलगाँव, गुजरात तथा बम्बईसे स्वयंसेवकोंको लाये जानेके बारेमें भी मुझे सरकारके रुखके बारेमें सूचना दी जाये। श्री मैक्फर्सनने १९१७ के तारीख २० जुलाईके अर्धसरकारी-पत्र संख्या २५७७ सी०–१५७१/२ में हेकॉकको हिदायत दी थी कि वे श्री गांधीको सूचना दे दें कि उन्हें (हेकॉकको) "मालूम नहीं कि सरकार स्वयंसेवकोंके लाये जानेके प्रति क्या रुख ग्रहण करेगी।" क्या सरकार अब अपने रुखके बारेमें सूचित कर सकती है? . . .

हृदयसे आपका,
जे० एल० मैरीमैन

(ग) एच० मैक्फर्सनको लिखे गये एल० एफ० मॉर्सहैडके पत्रका अंश

नवम्बर २७, १९१७

इस समय जिलेमें निम्नलिखित तीन बातोंसे किसानोंका उद्वेग बढ़ रहा है— स्वराज्यका प्रचार, गांधीकी कार्रवाई और हिन्दुओं और मुसलमानोंका मनमुटाव। इनकी प्रतिक्रिया एक-दूसरेपर होती है और किसानोंका मानसिक सन्तुलन बिगड़ता है एवं उनमें कानून और सत्ताके प्रति उपेक्षाका भाव बढ़ता है। जैसी कि पहले खबर दी जा चुकी है, सारन जिलेमें गाँव-गाँवमें स्वराज्य-सभाएँ की जा रही हैं और कहा जाता है कि सिपहियाकी घटनाको उन्हींसे उत्तेजन मिला। और गांधीका समर्थन पाकर उसके कारण गोपालगंजके मनियारा कोठी क्षेत्रमें भी अशान्ति उत्पन्न हो रही है।

मैरीमैनके पत्रसे प्रकट हो जायेगा कि चम्पारनमें लगानसे इनकारी भी गम्भीर रूप धारण करती जा रही है और मजदूरोंके झगड़े भी तय नहीं हुए हैं। वे जानना

(च) ई० सी० रेलैंडके पत्रका अंश

दिसम्बर २, १९१७

चम्पारनकी स्थितिपर विचार करते समय हमें [गंगा] नदीके उत्तरके दूसरे जिलों, मुख्यत: छपरासे प्राप्त चिन्ताजनक समाचारोंका भी खयाल करना होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि मुजफ्फरपुर, दरभंगा और सारन जिलोंमें अशान्तिकी लहर फैल गई है। निस्सन्देह अशांति श्री गांधीके आनेसे प्रारम्भ हुई। इसमें किसीको शंका नहीं कि चम्पारन जिलेमें असन्तोष था किन्तु श्री गांधीके आनेसे किसानोंका रुख और भी बिगड़ गया। श्री गांधी क्या करनेवाले हैं, इस सम्बन्धमें उक्त जिलोंमें सर्वत्र अफवाहें फैल गईं और हमें यह तो ठीक तरहसे मालूम है कि सभी जिलोंके किसान शिकायतें लेकर श्री गांधीके पास गये। जान पड़ता है कि उस समय दूसरे जिलोंकी शिकायतोंपर खास ध्यान नहीं दिया गया; किन्तु जान पड़ता है कि दूसरे जिलोंके किसानोंका यह आम खयाल है कि श्री गांधी जब चम्पारन जिलेका काम पूरा कर चुकेंगे तब दूसरे जिलोंके मामले भी हाथमें लेंगे। वास्तवमें हमें प्राप्त एक ताजा खबरके अनुसार उन्होंने अभी हालमें मुजफ्फर-पुरमें एक सभामें यह कहा है कि उनके प्रयत्नोंसे चम्पारन जिलेको जो लाभ मिलेगा वह बादमें इस जिलेके किसानोंको भी मिलेगा। इन स्थितियोंमें सीधे-सादे लोग यदि श्री गांधीको सर्वशक्तिमान् मानते हैं तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। श्री गांधीका मन्शा जो भी हो, और मैं यह विश्वास करनेके लिए तैयार हूँ कि वह अच्छा है, फिर भी यह बात तो है ही कि उनके साथ कुछ अवांछनीय लोग हैं और वे उनके नामका लाभ उठाकर अशान्ति उत्पन्न कर रहे हैं। यदि श्री गांधीके भाषणोंके विवरण ठीक हैं तो उनसे लोगोंमें राज्यके प्रति अश्रद्धा अवश्य बढ़ेगी। यदि, जैसा वे कहते हैं, ये सज्जन अशान्ति दूर करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, तो इस समय उनका ऐसी बातें कहना कि वे किसानोंको बागान-मालिकोंके हिस्सेदारोंकी तरह देखना चाहते हैं और हिन्दुओंका हित सामूहिक गो-वध बन्द करा देनेमें है; अजीब मालूम होता है। जो मामले अदालतोंमें विचाराधीन हैं उनमें उनके द्वारा जाँचकी कार्रवाई करना अदालतकी मानहानि जैसा है। और उससे निश्चय ही स्थानीय अधिकारियोंकी प्रतिष्ठा घटती है। मुझे यह कहनेमें कोई झिझक नहीं है कि श्री गांधीका फिलहाल यहाँ रहना अवांछनीय है।

(छ) गृह विभागके सचिवको लिखे गये एच० मैक्फर्सनके पत्रका अंश

दिसम्बर ६, १९१७

आज की स्थितिमें श्री गांधीका चम्पारनमें बने रहना कठिनाई उत्पन्न करने-वाली बात है। उनका उद्देश्य तो शुद्ध है, और कहते हैं कि वे शान्ति-स्थापनाके लिए प्रयास कर रहे हैं तथा इस दृष्टिसे कुछ मामलोंमें उन्हें, अपेक्षाकृत अधिक जिम्मेदार बागान-मालिकोंके सहयोगसे, सफलता भी मिली है, लेकिन उनकी राजनीति आम खेति-हरोंकी समझमें नहीं आती, और वे जिन पिछलग्गुओंसे घिरे हुए हैं उनके काम उद्देश्यके प्रति बराबर उसी ईमानदारीसे प्रेरित नहीं रहते जैसे श्री गांधीके होते हैं। श्री गांधी

होमरूलके एक प्रमुख व्याख्याता हैं, और जिस बृहदाकार प्रार्थनापत्रके लिए मुफस्सिल इलाकोंसे हस्ताक्षर एकत्र किये जा रहे हैं, उसका मसविदा भी उन्हींका तैयार किया हुआ है।

श्री गांधीके कामोंके कुछ ऐसे पहलू भी सामने आये हैं जिनका उद्देश्य चाहे जितना अच्छा हो, काश्तकार उन्हें गलत भी समझ सकते हैं। उनके कामोंमें स्कूल स्थापित करना और जिन मामलोंकी तहकीकात पुलिस कर रही है, उनका स्वयं श्री गांधी और उनके अनुगामियों द्वारा जाँच करना भी शामिल है। स्कूलोंमें बम्बईसे बुलाये गये शिक्षक पढ़ाते हैं। इन स्कूलों और उनके शिक्षकोंके बारेमें इतना अधिक ज्ञान तो नहीं है कि वे विद्यार्थियोंको कैसे विचारोंकी शिक्षा दे रहे हैं, इस विषयमें कुछ कहा जा सके; लेकिन यह निश्चित है कि फौजदारी मामलोंमें हस्तक्षेप किये जानेके कारण स्थानीय पुलिस तथा न्यायाधिकारियोंको बड़ी परेशानी हो रही है।

[अंग्रेजीसे]

सिलेक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन

परिशिष्ट ५

बबन गोखलेका पत्र मो० क० गांधीको

बरहरवा

दिसम्बर ६, १९१७

प्रिय श्री गांधी,

इस पत्रके मिलनेतक आप मोतीहारी पहुँच जायेंगे। आपको यह पत्र यहाँके कामकी प्रगतिके विषयमें लिख रहा हूँ।

जब आप पिछली बार यहाँ आये थे तबसे अबतक गाँवके लगभग सभी कुएँ दुरुस्त किये जा चुके हैं, गन्दे पानीकी जो नालियाँ कुओंके करीब थीं और जिनसे पीनेका पानी गन्दा हो रहा था, उन्हें हमने बन्द कर दिया है। एक या दो जगहोंपर यह काम कठिन रहा क्योंकि घरकी नालीका रुख तबतक नहीं बदला जा सकता था जबतक वह किसी पड़ोसीकी जमीनसे न निकाली जाये। यह काम हमने पड़ोसियोंकी सहृदयता जगाकर पूरा कर ही लिया। दूसरे एक मामलेमें समझा-बुझाकर राजी करनेके लिए हमें गाँवके बुजुर्गोंकी मदद लेनी पड़ी। कुछ भी हो, हमने अपना काम पूरा कर लिया।

अब हम उन्हें अपने घरोंके बिलकुल करीब गन्दगी करनेसे रोकनेकी कोशिशमें लगे हैं। यह हम एक बुजुर्ग मुसलमानकी सहायतासे करना चाहते हैं जो प्रति शुक्रवारकी नमाजके बाद लोगोंको इस विषयमें समझायेगा। हिन्दुओंके लिए भी हम ऐसा ही तरीका अपनाना चाहते हैं। मैं समझता हूँ कि कुछ सप्ताहोंमें इसका कुछ अच्छा नतीजा निकलेगा। इस बीच हम लोगोंने स्वयं उनके पाखानेको मिट्टीसे ढँक-ढँककर

लोगोंको समझाया है कि पाखानेको मिट्टीसे ढँक देनेमें प्रतिष्ठा कम नहीं होती; लगता है वे यह बात समझ गये हैं। आपको यह जानकर खुशी होगी कि अब लोग ऐसा करने लगे हैं।

स्कूलोंमें विद्यार्थियोंकी संख्या ७५ से ऊपर हो गई है। पिछले महीने प्रतिदिन औसत हाजिरी ६० से ऊपर रही। लड़के अपने गीत सीखने और उन नये मैदानी खेलोंको सीखनेमें बहुत रुचि लेते दिखाई देते हैं, जो नियमित कवायदके बाद उन्हें सिखाये जाते हैं। श्रीमती गोखले लगभग रोज आसपासके गाँवोंमें जाती है क्योंकि वहाँ प्राय: एक-न-एक ऐसी रुग्णा नारी होती है जिसे डाक्टरी सहायताकी जरूरत हो।

जब लोग अपनी फसलसे निश्चिन्त हो चुकेंगे, तब हमारा इरादा उन्हें रोज सन्ध्या समय इकट्ठा करके स्वास्थ्य तथा सामान्य संस्कृतिके विषयोंपर कुछ बताते रहनेका है।

पिछले बुधवारको डॉक्टर देव यहाँ आये थे और चूँकि यहाँ बहुतसे ऐसे मरीज हैं जिन्हें हम नहीं सँभाल सकते थे, वे दिन-भरसे भी ज्यादा ठहरे। उनके नुस्खे हम ढाका डिस्पेंसरीमें नहीं बनवा सकते। इसके लिए उच्च अधिकारियोंको अर्जी देनी होगी कि इसे एक विशेष मामला मानकर ये नुस्खे वहाँ बनवा दिये जायें। इससे आसपासके गरीब लोगोंको बहुत राहत पहुँचेगी। परन्तु पहले हमारा विचार ढाकाके हॉस्पिटल असिस्टेंटसे मिलनेका है।

पिछले बुधवारको हमने आसपासके प्रमुख ग्रामीणोंकी एक बैठक बुलाई थी। वहाँ हिन्दू-मुसलमान दोनोंकी एक खासी समिति इस कामके लिए बनाई गई कि वह प्राथमिक शिक्षा तथा गाँवोंकी सफाईके कामका संगठन करे। फसलके बाद हाथमें लिये गये कामोंके लिए जरूरी धन जमा करनेके लिए समितिके सदस्योंकी फिर बैठक बुलायेंगे। अत्यन्त आदर सहित,

हृदयसे आपका,
बबन गोखले

[अंग्रेजीसे]
सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन

परिशिष्ट ६

ई० एल० एल० हैमंडका पत्र मो० क० गांधीको

शिविर पटना
दिसम्बर १३, १९१७

प्रिय श्री गांधी,

शायद आपको स्मरण होगा कि आपने रांचीमें चम्पारनसे मेसोपोटामियामें सेवाके लिए एक मजदूर टुकड़ी भरती कर सकनेकी बात की थी। उस समय मैं यह समझा था कि आप अपनी ही कमानके अधीन सेनाका सामान ढोनेवाली एक टुकड़ी खड़ी करना चाहते हैं। वहरहाल, मुझे बताया गया है कि आप एक मजदूर-टुकड़ी खड़ी करनेको राजी हैं। कृपया मुझे सूचित करें कि क्या यह ठीक है। कृपया यह भी लिखें कि क्या आप अब भी टुकड़ी खड़ी करनेको राजी हैं। यदि इस सम्बन्धमें आपकी कोई शर्तें हों तो उन्हें भी सूचित कीजिये। यदि आप चाहते हैं कि कोई टुकड़ी जो आप बनायें वह मौजूदा यूनिटोंका अंग न हो वरन् एक स्वतन्त्र आत्म-निर्भर टुकड़ी हो तो मुझे आर्मी हेड क्वार्टर्सको लिखना जरूरी होगा। लेकिन यदि आप स्वयं न जाना चाहते हों वैसी दशामें यदि आप गयाके रेलवे ट्रेनिंग डिपोके लिए, जहाँ हमें ५०० आदमी प्रति माह चाहिए, आदमी दिलवानेमें सहायता कर सकें तो हम आभारी होंगे। कृपया अपना उत्तर मुझे रांची के पतेपर दीजिए।

हृदयसे आपका,
ई० एल० एल० हैमंड

सिलेक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन

परिशिष्ट ७

ई० एल० एल० हैमंडका पत्र मो० क० गांधीको

रांची
दिसम्बर १८, १९१७

प्रिय श्री गांधी,

आपके १५ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद। मैं यहाँ हमारी क्या आवश्यकता है सो आपको लिखकर भेज रहा हूँ; उससे आप समझ जायेंगे कि वह इस समय वर्तमान दलोंमें भरती तक ही सीमित है। नया मजदूर-दल खड़ा करनेका अभी कोई इरादा नहीं है।

मेसोपोटामिया या गया और पुरीके रेलवे प्रशिक्षण केन्द्रोंके लिए हमें आदमियों-की आवश्यकता है। वहाँ दो या तीन मासका प्रशिक्षण देनेके बाद उन्हें बसरा भेज दिया जायेगा। हम ३० रु० पेशगी देते हैं। भारतमें १५ रु० तथा समुद्र-पार जानेपर इन्हें २०) रु० मासिक दिया जाता है। प्रति व्यक्तिपर ३ रु० भरती कराई शुल्क दिया जाता है।

क्या आप अपने दौरोंके दरम्यान आर्थिक-लाभके इस प्रशस्त अवसरकी ओर जनताका ध्यान खींच सकेंगे? अगर एक घरसे एक आदमी भी चला जाये तो उसे अपने कुटुम्बको ८) रु० महीना भेजते रहकर भी अवधिके हिसाबसे लड़ाईके अन्तमें घर लौटनेपर, अप्राप्त वेतनके रूपमें १०० रुपयेसे २०० रुपये तक, नये सिरेसे जीवन प्रारम्भ करनेके लिए मिलेगा।

मजदूरोंकी आयु २० वर्षसे अधिक तथा ३५ वर्षसे कम होनी चाहिए और शारीरिक दृष्टिसे उन्हें सचमुच हट्टा-कट्टा होना चाहिए। यदि आप ऐसे व्यक्तियोंको भरती करनेमें हमें सहायता दे सकते हैं तो युद्ध-प्रयत्नमें सहयोगके साथ ही उन लोगोंका भी फायदा होगा जिनमें आप व्यक्तिगत तौरपर दिलचस्पी ले रहे हैं। सन्थाल परगनेमें तीन-चार लाख रुपये चुकता किये गये हैं और इससे वहाँके महाजनों तथा अत्याचारी जमींदारोंको काफी परेशानी हुई है।

यदि आप स्वयं आहत-सहायकोंका एक दल खड़ा करना चाहें और मुझे बतायें कि आपको कितने आदमी मिल सकते हैं तो मैं आपके प्रस्तावको प्रधान सैन्य-कार्यालयके पास भेज दूंगा।

हृदयसे आपका,
ई० एल० एल० हैमंड

सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन

परिशिष्ट ८

(क) एल० एफ० मॉर्सहैडका पत्र गांधीजीको

मोतीहारी
जनवरी १४, १९१८

प्रिय श्री गांधी,

चम्पारन खेती-बारी विधेयकके सम्बन्धमें मैंने सरकारको बताया है कि वर्तमान प्रारूपमें खण्ड ३ की पहली धारा खुश्की समझौतेपर भी उसके प्रचलित रूपमें तिन-कठिया-जैसा ही निषेध लगाती है, क्योंकि बागान मालिक-संघ द्वारा स्वीकृत साटेके स्वरूपमें यह शर्त निबद्ध है कि उपज मुहैया करनेके लिए कितने क्षेत्रमें खेती की जाये। इस उपजकी कीमत वजनके हिसाबसे चुकता की जाती है।

मुझे इस आशयका उत्तर मिला है कि सरकारके विचारमें विधेयकके खण्ड ५ में खुश्की साटाको, जिस रूपमें वह अबतक स्वीकृत रहा है, गैर-कानूनी करार देनेवाली कोई बात नहीं है, किन्तु खण्ड ३ निर्धारित क्षतिपूर्तिके जरिये करार तोड़नेके दण्डको अवैध बना देगा। जाहिरा तौरपर दो बीघोंमें या मेरे खयालसे जमीनके किसी और भागमें नील उगानेके समझौतेके सम्बन्धमें कोई आपत्ति नहीं है, बशर्ते कि काश्तकारोंको काश्तके लिए वास्तविक भू-क्षेत्रोंको चुननेकी पूरी आजादी हो और भूमि-सुधार समितिका स्पष्टतः यह इरादा था कि वर्तमान खुश्की प्रणालीको उक्त शर्तके साथ जारी रहने दिया जाये।

तदनुसार मुझसे कहा गया है कि मैं इस मुद्देपर, तथा धारा ३ में संशोधन करनेके लिए ऐसा उपयुक्त तरीका निकालनेके बारेमें, जिससे खुश्की साटामें कोई रुकावट न आये, रैयत तथा उनके प्रतिनिधि दोनोंके विचार जान लूँ।

हमने आज सुबह इस मामलेपर विचार किया था, और मैं आपके सामने श्री कैनेडीका संशोधन रखता हूँ जो इस प्रकार है:

(क) "किसी भी अधिकार, भूम्यधिकार या दूसरे किसी हितके बावजूद, अक्तूबर १, १९१७ से चम्पारन जिलेके अन्तर्गत जितनी नई भूमि है, उसपर काश्तकारका पट्टा होगा, और वह पट्टेकी ऐसी किसी भी शर्तसे मुक्त होगा जिसके अनुसार काश्तकारपर अपने भूस्वामीकी सुविधाके लिए अपनी जमीनपर या उसके किसी भागपर कोई भी फसल उगानेकी बाध्यता आती हो; तथा कोई भी पूर्ववर्ती ऐसा या ऐसे अधिनियम जो पट्टेमें इस प्रकारके शर्तकी अनुमति देते हैं, इसके द्वारा स्पष्ट रूपसे रद किये जाते हैं।

(ख) "ऐसा कोई समझौता, ठेका या बन्धीकरण, जिसके जरिये कोई काश्तकार अपने भूस्वामीको अपनी जोतपर या उसके किसी भागपर उगाई गई फसलको देना स्वीकार करता है, उसके बारेमें करार करता है या उस फसलको उसके पास बन्धक रखता है, ऐसी शर्तकी हदतक अवैध माना जायेगा किन्तु यदि जोत या उसके किसी भागका इस प्रकारके समझौते, ठेके या बन्धीकरणमें विशेष रूपसे उल्लेख हुआ हो तो तब ऐसा नहीं होगा।"

मैं समझता हूँ, इस संशोधनके दूसरे भागपर जिसे मैंने 'ख' से चिह्नित किया है आपको आपत्ति है, किन्तु मेरे विचारमें केवल पहला भाग, जिसे मैंने 'क' से चिह्नित किया है, स्वीकार्य होगा। कृपया सूचित करें कि क्या मैं तदनुसार सरकारको सूचना दे दूँ? सरकार चाहती है कि उसे १९ तारीखको होनेवाली प्रवर समितिकी बैठकसे पूर्व उत्तर मिल जाये। क्या आप उस तारीखसे पूर्व मुझे उत्तर देकर अनुगृहीत करेंगे? मैं १५ और १६ को रामगढ़वाके शिविरमें तथा १७ और १८ को चैनपटियामें रहूँगा।

हृदयसे आपका,
एल० एफ़० मॉर्सहैड

(ख) एल० एफ० मॉर्सहैडका पत्र एच० कूपलैंडको

शिविर रामगढ़वा
जनवरी १६, १९१८

प्रिय श्री कूपलैंड,

. . . हैकॉक और मैंने इस विषयमें १४ तारीखको श्री गांधीसे भेंट की। मैंने श्री गांधीको बताया कि खण्ड ३ की पहली धारा खुश्की प्रणालीके प्रचलित और समिति द्वारा अपनी रिपोर्टके अनुच्छेद ८ में स्वीकृत स्वरूपपर भी तिनकठिया-जैसा ही निषेध लगाती है। इस प्रणालीके अन्तर्गत काश्तकार आमतौरपर पेशगी रकमके बदले नील उगाना मंजूर कर लेता है। जिस जमीनपर वह नील उगानेको कहता है, वह पसन्द आनेके बाद ही बागान-मालिक पेशगी देता है, और उपजके अनुसार उसे कीमत चुकाई जाती है।

बातचीत करनेके उद्देश्यसे मैंने राजपुरकी प्रणालीको लिया। जैसा कि मैं समझता हूँ, श्री स्लाई और श्री गांधी इस प्रणालीकी राजपुरमें जाँच कर चुके हैं और उससे सन्तुष्ट हैं। श्री गांधीने आपत्ति उठाई कि यदि रैयत स्वीकृत भू-क्षेत्रोंमें नील न उगाये तो करारको विशेष रूपसे कार्यान्वित करने तथा निर्धारित क्षतिपूर्तिके लिए उसपर मुकदमा चलाया जा सकता है। और यदि उसने पेशगी ले लेनेपर भी करारका अपना भाग पूरा नहीं किया और उसके परिणामस्वरूप क्षति होती है, तो निश्चय ही उसपर मुकदमा चलाया ही जायेगा।

श्री गांधीने विस्तारसे बताया कि उन खुश्की करारोंको पचानेके लिए इस विधेयक-का मसविदा तैयार किया गया है, जो अन्यथा सर एस० पी० सिन्हाकी सम्मतिके अनुसार काश्तकारी अधिनियमके अन्तर्गत वर्जित माने गये थे। तब मैंने सुझाव दिया कि वे काश्त-कारी अधिनियमके अमलके अधीन छोड़े जा सकते हैं। इससे खुश्की प्रणाली, कमसे-कम, उस स्थितिमें तो रहेगी जिसमें कि वह अब है। इसके विपरीत, प्रस्तुत विधेयक तो समितिके उस इरादेके विरुद्ध इसपर निषेध लगाता है। बातचीतको एक मुद्देपर केन्द्रित करनेके लिए मैंने उन्हें श्री कैनेडीका संशोधन दिखाया, और पूछा कि क्या वे इसके पहले भागका समर्थन करते हैं जिसके जरिये नया कानून काश्तकारीकी शर्तके रूपमें तिनकठिया प्रणाली-का निषेध करने तक ही सीमित रह जाता है। उसे पढ़नेके बाद उन्होंने कहा कि वे समस्याके हलकी दृष्टिसे इसके प्रथम भागको स्वीकार करनेको तैयार हैं। मैंने उन्हें बताया कि मैं नहीं चाहता कि वे उसे सहसा स्वीकार कर लें। अच्छा होगा कि ये उसपर विचार कर लें। इसके बाद उनको मैंने संलग्न पत्र लिखा और उनका जो उत्तर मिला उसे भी यहाँ संलग्न कर रहा हूँ।

मैं स्वयं यह विश्वास नहीं करता कि श्री गांधी रैयतका प्रतिनिधित्व करते हैं। अगर उसपर कोई दबाव न डाला जाये तो वह अपने हिताहितका विचार करनेमें सक्षम है, और वह सारनमें और साथ ही चम्पारनमें तथा मुजफ्फरपुरमें खुश्की प्रणाली-के अन्तर्गत जहाँ तिनकठिया नहीं है, नील उगानेके लिए बराबर तैयार थी और अब भी है। इस प्रणालीका एक मुख्य लाभ यह है कि यदि काश्तकारोंको महाजन या किसी और का कर्जा चुकानेके लिए पेशगीमें बड़ी रकमकी जरूरत हो तो वह उन्हें मिल

सकती है। किन्तु यदि उन्हें जिस भूमि-विशेषपर बुआई करनी है, उसके बारेमें करार करनेकी अनुमति नहीं होगी तो वे उक्त लाभसे वंचित रह जायेंगे। लगानके हिसाबको सर्वथा पृथक् रखा जाये, इसके बारेमें व्यवस्था करना जरूरी हो सकता है, किन्तु इसके आगे जानेसे मेरे विचारमें, अच्छाईकी अपेक्षा शायद बुराई ही अधिक होगी।

हृदयसे आपका,
एल० एफ० मॉर्सहैड

[अंग्रेजीसे]
सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन

परिशिष्ट ९

विलियम एस० इर्विनका पत्र 'स्टेट्समैन'को

जनवरी ८, १९१८

'सम्पादक'
स्टेट्समैन
[कलकत्ता]

महोदय,

यह देखते हुए कि चम्पारनके बाहरके लोगोंको, और विशेषरूपसे बिहार-उड़ीसाकी सरकार तथा भारत सरकारको (देखिए, नव-वर्षकी उपाधि-सूची) इस बातका कोई सही अन्दाज नहीं है कि जिलेको श्री गांधीके 'मिशन' और सर्वथा विलक्षण जाँच-समितिकी अविचारपूर्ण सिफारिशोंसे कितनी भयंकर हानि पहुँची है, मैं एक बार पुनः सारी स्थितिके कारण और प्रभावकी ओर ध्यान आकृष्ट करनेका लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ।

सरकारको श्री गांधीने आश्वासन दिया था कि चम्पारन लौटनेपर उनकी तमाम कोशिश जमींदारों और काश्तकारोंके सद्भावपूर्ण सम्बन्धोंको (जिसे खराब करनेके लिए वे तथा उनके साथी मुख्य रूपसे जिम्मेदार थे) और अच्छा बनाने (वास्तवमें पुनः स्थापित करने) की होगी। मुझे आशा है कि इस पत्रको पढ़कर आप स्वयं देख सकेंगे कि उन्होंने अपने उस आश्वासनको ईमानदारीसे पूरा किया है अथवा नहीं। यही इस पत्रका उद्देश्य है।

चम्पारन लौटनेके बादसे श्री गांधीका काश्तकारोंको यह निर्देश रहा है कि वे जमींदारों द्वारा लगानकी माँगका तबतक विरोध करें जबतक २० प्रतिशतकी छूट न दे दी जाये, शरहबेशी में २६ प्रतिशत छूट न दी जाये (जैसा भी मामला हो) या तावानका २५ प्रतिशत वापस न कर दिया जाये। ये निर्देश उन्होंने प्रस्तावित विशेष कानूनको मद्देनजर रखकर दिये हैं जब कि फिलहाल इस आशयका कोई कानून नहीं है। इस सलाहके फलस्वरूप, जिसपर काश्तकारोंने पूरी तरह अमल किया है, न केवल फैक्टरियोंको अपने चालू खर्चोंमें बहुत दिक्कत उठानी पड़ी है, बल्कि बेतिया पौण्डपावना ऋण-योजना

[बेतिया स्टर्लिंग लोन] आरम्भ करनेके ३२ वर्ष बाद पहली बार इसके कारण ऋण-के ब्याजकी जमानत करनेवाले जामिन लोग (या कमसे-कम उनमें से कुछ लोग) उसकी किस्त अदा नहीं कर सके। किस्त-अदायगीकी तारीख गत माहकी १५ तारीख निश्चित थी। मजबूर होकर जागीरको किस्त-अदा करनेके लिए फिरसे रुपया उधार लेना पड़ा। सरकारने एक सर्वथा अनावश्यक (जैसा कि स्वयं लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयने कहा था) समिति नियुक्त करके जो गलती की उसका ही प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि जामिन लोग किस्त अदा नहीं कर सके। अब कोर्ट ऑफ वार्ड्स जामिनोंको इस चूकके लिए कैसे जिम्मेदार ठहरा सकता है।

जिला अधिकारीने मुझसे चालू फसली सन् (१३२५) की पहली तिमाहीकी लगान वसूलीका एक वक्तव्य तैयार करनेको कहा था ताकि पिछले वर्ष इसी अवधिमें की गई वसूलीसे उसकी तुलना की जा सके। निःसन्देह इसका उद्देश्य मोतीहारी लि० द्वारा उपर्युक्त ब्याजकी रकमका अपना हिस्सा, जो रु० ४८,५९०–८–० था, अदा न कर पानेकी कैफियत लेना था। मैंने गैर-अदायगीके कारण जो घाटा था, उसके अतिरिक्त रु० ५६,०८६–८–३ का घाटा दिखाया। मछली पालनेवाले तालाव एक जमानेसे राजके और राजके अधीन पट्टा प्राप्त लोगोंके अधिकारमें रहे हैं। अब गुमराह काश्तकार लोग उन तालाबोंमें ठेके-दारोंको मछली पकड़नेसे रोकते हैं और लूट ले जाते हैं। इन काश्तकारोंने पुलिस और अदा-लती जाँचोंमें स्वीकार किया है कि ऐसा वे श्री गांधीके निर्देशपर करते हैं। इस कम्पनी-के इलाकेमें पिछले पाँच सालोंमें या जबसे शरहबेशी और तावान लागू किया गया, लगानके मुकदमों या छोटे-मोटे अपराधोंके मुकदमोंका औसत क्रमशः २१ और ३ प्रतिवर्ष था। इस वर्ष श्री गांधी और समितिकी सिफारिशोंकी दयासे, मेरा अनुमान है कि, लगानके सिलसिलेमें कमसे-कम २,२०० मुकदमे खड़े होंगे। अपराधोंके कितने मुकदमे दर्ज होंगे, मेरे लिए कोई अनुमान करना कठिन है। श्री गांधीको जिलेमें लानेवाले वकीलों और अन्यायपूर्वक दूसरेके अधिकारोंपर दखल जमानेवालोंकी दृष्टिमें निःसन्देह यह बहुत सन्तोषजनक है। किन्तु जो जिला अबतक मुकदमेबाजीसे मुक्त था, कितने दुःखकी बात है कि अब उसके विषयमें यह नहीं कहा जा सकेगा।

मुझे बताया गया है, और मैं उसपर विश्वास करता हूँ कि मोतीहारीमें गौ-रक्षिणी सभाकी एक मीटिंगमें उन महानुभाव (गांधीजी) ने अपने हिन्दू और मुसलमान श्रोताओं-से प्रतिवर्ष एक गायकी हत्याके ऊपर आपसमें लड़ना बन्द करने और एक होकर साहब लोगों (अपने जमींदारों) पर आक्रमण करनेका अनुरोध किया जो प्रतिदिन गायें मारते और खाते हैं।

जब श्रीमती गांधीके पति होमरूल समारोह तथा ऐसे ही अन्य आयोजनोंमें व्यस्त रहनेके कारण उनसे अलग होते हैं, उस समय वे श्रीमती एनी बेसेंटके पदचिह्नोंका अनुसरण करते हुए जहाँ-तहाँ इसी तरहके अनर्गल उपदेश देती रहती हैं और अभी-अभी उन्होंने स्कूल खोलनेके बहाने एक छोटी जमींदारीके देहातमें एक बाजार खोल दिया है, जिसमें ठेकेदार या मालिकको दस्तूरके मुताबिक चुंगी या बाजार कर दिये बिना गल्ला या अन्य चीजें खरीदी जा सकती हैं। स्पष्ट ही इसका मंशा जानबूझकर कारखानेके मालिकोंके दो बाजारोंको जो इस देहातके पास हैं, बरबाद कर देना ही

है। क्या ऊपरकी ये सारी बातें श्री गांधी द्वारा सरकारको दिये गये वचनकी पूर्तिके प्रामाणिक प्रयत्नोंके अन्तर्गत खींची जा सकती हैं।

अदालतके चपरासियोंने मुझे बताया कि वे जिन गाँवोंमें सरकारी कामके सिलसिलेमें जाते हैं वहाँ तमाम सरकारी सत्ताके विरुद्ध जिस प्रकार द्रोहात्मक और अपूर्ण बातें होती हैं उन्हें दोहरानेकी वे हिम्मत नहीं कर सकते। कमसे-कम एक अदालती चपरासीको मैं जानता हूँ जो मेरे दो गाँवोंमें सम्मन जारी करने गया था। वहाँ उसको अपमानित किया गया, हैरान किया गया और गाँवसे बाहर कर दिया गया और उससे कहा गया कि "गांधी साहब" को छोड़कर हम दीवानी या फौजदारी किसी सत्ताको नहीं मानते। उसने इसी तरहकी और भी बहुत बातें कहीं। ऐसे सैकड़ों दृष्टान्त दिये जा सकते हैं, लेकिन जब सरकार वैध रूपसे स्थापित सारी सत्ताकी अवमानना और सारे दीवानी और फौजदारी कानूनोंकी अवज्ञाके प्रति आँखें बन्द कर ले और सम्पूर्ण बिहार और उड़ीसा-भरमें केवल ५ फैक्टरियोंको प्रभावित करनेवाले एक विशेष विधेयकको पास करनेकी कोशिश करे, तब उन दृष्टान्तोंके उल्लेखसे क्या लाभ? और इन फैक्टरियोंके मामलेमें भी उसका रुख इतना अनुचित और अन्यायपूर्ण है कि जिस फैक्टरीके काश्तकार असन्तुष्ट और काबूके बाहर हैं उन्हें अनिवार्यतः लाभ पहुँचेगा और जिन फैक्टरियोंके काश्तकारोंने कोई शिकायत नहीं की है और न उनके पास शिकायतकी कोई वजह है उन्हें अनुचित ढंगसे दण्डित किया जायेगा। कोई नहीं जानता कि इस ढंगके विशेष कानूनका किस हदतक कैसा असर होगा। सभी जिम्मेदारों और जमीनके मालिकोंको यह चेतावनी ग्रहण कर लेनी चाहिए कि एक राजनीतिक आन्दोलनको सन्तुष्ट करनेके लिए उनकी स्वतंत्रताका भी इस प्रकार किसी भी क्षण बलिदान किया जा सकता है, और यदि लगभग स्पष्ट राजद्रोहका उपदेश देनेवाले किसी व्यक्तिके रास्तेमें रोड़ा प्रतीत हुआ तो स्थायी बन्दोबस्तको भी बंगाल टेनेंसी ऐक्टकी तरह निर्दयतापूर्वक समाप्त कर दिया जायेगा। मैं इस बातकी गारंटी खुशी-खुशी देनेको तैयार हूँ कि यदि श्री गांधी और उनके चेलोंको जिला छोड़नेके लिए विवश कर दिया जाये तो दो महीनेसे भी कम समयमें पूर्ण व्यवस्था और शांति स्थापित हो जायेगी, क्योंकि रैयत पहले ही से उनके बड़े-बड़े वादों और उन वादोंकी थोथी पूर्तिको लेकर उनकी खिल्ली उड़ाने लगी है।

आपका,
विलियम एस० इर्विन

[अंग्रेजीसे]
स्टेट्समैन, ११-१-१९१८

परिशिष्ट १०

बिहार बागान-मालिक संघका स्मृतिपत्र[1]

जनवरी ५, १९१८

इन सदस्योंकी रायमें चम्पारन खेतीवारी विधेयक निम्न कारणोंसे अनावश्यक और अवांछनीय है :—

(क) क्योंकि यह एक ऐसी जाँच-समितिकी सिफारिशोंपर आधारित है जो निश्चय ही चम्पारनके बाहरसे संगठित किये गये एक कृत्रिम आन्दोलनको शान्त करनेके लिए नियुक्त की गई थी, न कि किसी बहुव्यापक शिकायतोंके परिणामस्वरूप। यह दिखाया जा चुका है कि समितिने सम्पूर्ण चम्पारनकी भूमि-व्यवस्थाकी कोई गहरी जाँच नहीं की, बल्कि नीलवाली और ठेकेवाली कुछ जमींदारियों, जिनका पट्टा उन्हें कोर्ट ऑफ वार्ड्ससे मिला हुआ था, की प्रबन्ध-व्यवस्थाके बारेमें सतही जाँच की थी, और सो भी एक ऐसे समयपर जब कि रैयतका दिमाग एक आन्दोलनके कारण जिसे सरकारका प्रोत्साहन भी प्राप्त था, उत्तेजित था। और वह ऐसा मानने लगी है कि यह आन्दोलन काश्तकारों के लिए सतयुग ले आयेगा। इसके अलावा, यह भी दिखाया जा चुका है कि इस समितिका मंशा एक ऐसी रिपोर्ट तैयार करना था जिसपर उसके एक सदस्य महोदय, जो उपर्युक्त आन्दोलनके नेता हैं, हस्ताक्षर करनेको राजी हो जायें। मामलेके पूरे और सच्चे तथ्योंको प्रस्तुत करनेकी इच्छासे यह रिपोर्ट तैयार नहीं की गई है।

बिहार और उड़ीसाकी वर्तमान सरकार और उसकी पूर्ववर्त्ती सरकारें उन तमाम तफसीलोंसे परिचित हैं जिनका जिक्र समितिकी रिपोर्टमें किया गया है। रिपोर्टमें न कोई नये तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं, न सर्वसामान्य स्थितिपर कोई नई रोशनी डाली गई है। न उसने यह आवश्यक माना कि कोई विशेष कानून बनाया जाना चाहिए।

इस समितिने जैसी असन्तोषजनक और पक्षपातपूर्ण जाँच की, उसके फलस्वरूप उसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुईं वे जिलेकी सही सर्वसामान्य स्थितिपर प्रकाश डालनेकी दृष्टिसे अपर्याप्त थीं। यह तथ्य, तथा समिति पक्षपातपूर्ण रुख और एक शरारती आन्दोलनकारी को हर कीमतपर, यहाँतक कि जरूरत पड़नेपर सरकारी नियन्त्रणमें जमा ट्रस्ट फण्डकी रकमका दुरुपयोग तक करके सन्तुष्ट करनेकी उत्सुकता, इन तीनों बातोंके चलते यह रिपोर्ट और उसमें जो सिफारिशें की गई हैं वे इतनी एकतरफा और अनुचित हैं कि उन्हें कोई महत्त्व नहीं देना चाहिए और यह विधेयक, जो साफ तौरपर उन सिफारिशों-पर आधारित है, बिलकुल वापस ले लेना चाहिए।

(ख) क्योंकि यह एक खास जिलेपर लागू होनेवाला विद्वेषपूर्ण और अनावश्यक कानून बनाता है।

१. राजस्व मण्डलने यह ज्ञापिका बिहार-उड़ीसा सरकारके राजस्व विभागके सचिवको भेज दी थी।

(ग) क्योंकि उसका उद्देश्य रैयतके पट्टेके मौजूदा करारों और दायित्वोंको अवैध करार देनेका है जबकि ये दोनों ही बिलकुल वैध सिद्ध हो चुके हैं, और करारोंको तो सिर्फ सात वर्ष पहले ही बंगाल सरकारकी मंजूरी मिल चुकी है।

(घ) क्योंकि इसका उद्देश्य बिना किसी मुआवजेके और अकारण ही एक ऐसी प्रणालीको समाप्त करनेका है जो एक सौ वर्षसे भी अधिक कालसे जारी है और जो अब भी अन्य जिलोंमें बिना किसी झंझटके चालू है।

(ङ) क्योंकि इसका उद्देश्य बिना जमींदार या भू-स्वामीकी मर्जीके और जबर-दस्ती उस लगानमें कमी करना है जिसे पूरी जाँच-पड़तालके बाद बन्दोबस्त अधि-कारियोंने सर्वथा वैध, उचित और मुनासिब घोषित किया है, और जिसे कई वर्षों तक खुशी-खुशी अदा भी किया गया है।

यदि इस विधेयकको समाप्त करनेके पक्षमें तर्कपूर्ण कारणके बावजूद यदि सरकार इसे पास करानेकी कोशिश करती है तो हम इसके कतिपय मुख्य दोषोंको कुछ हदतक दूर करानेके लिए कुछ सुझाव देंगे।

खण्ड ३ (१) — यह खण्ड, अपने वर्तमान रूपमें, खुश्की प्रथाके अन्तर्गत नील और गन्नेकी खेतीको सर्वथा असम्भव बना देगा।

अगर बहसकी खातिर यह मान भी लिया जाये कि रैयतको अपने भू-स्वामी या जमींदारके साथ ऐसा कोई करार करने देना वांछनीय नहीं है जिसमें वह कई वर्षोंकी लम्बी अवधिके लिए अपनी जोतके एक नियत अंशमें उत्पन्न होनेवाली एक फसल-विशेषको एक निश्चित दरपर, जो उस जमीनके क्षेत्रफलपर निर्भर करेगी जिसपर उक्त फसल उगाई जायेगी, बेचनेके लिए बाँधता हो, तो भी यह अवश्य ही वांछनीय और जरूरी है कि वह अपनी मर्जीसे चुने हुए एक निश्चित जमीनके टुकड़ेपर पैदा होने-वाली फसलको उत्पादनकी मात्राके आधारपर निश्चित की गई दरके हिसाबसे बेच सके। यह सिद्धान्त विधेयकके उद्देश्य और कारणवाले वक्तव्यमें स्वीकार भी किया गया है। यदि, जैसा कि सुझाव रखा गया है, उसे एक निश्चित वजन भर पैदावार भू-स्वामीको देनेकी शर्त करने दिया जाता है तो वह मौसमकी दशापर निर्भर होनेके कारण निश्चित परिमाण न दे सकनेपर क्षतिपूर्ति करनेके लिए जिम्मेदार होगा। दूसरी ओर, यदि वह जमीनके एक टुकड़े-विशेष की पैदावार देनेका करार करता है, तो उस टुकड़े पर अपेक्षासे कम उपज होनेकी स्थितिमें उसे पेशगी रकममें जितनी कमी पड़ेगी केवल उतनी ही रकम चुकानी होगी।

उसके अलावा, लगभग हमेशा ऐसा होता है कि खेतकी जुताई-निराई आरम्भ करनेसे पहले रैयत काफी रकम पेशगीके रूपमें माँगती है, और चूँकि किसान खर्चीले स्वभावका होता है, इसलिए यदि उससे ऐसा करार करनेकी अनुमति नहीं होगी जिससे वह एक निश्चित टुकड़ेपर एक फसल-विशेष पैदा करनेको बाध्य हो, तो सम्भावना इसी बातकी ज्यादा है कि वह पेशगी ले ले और उसके बाद निर्धारित मात्रामें उस फसलको पैदा करनेके लिए वह पर्याप्त उपयुक्त भूमिमें बुआई न करे। इस कारण जमींदारके लिए यह सम्भव नहीं होगा कि वह पेशगी दाम और बीजके दाम किसानको

देकर नुकसान उठाये। यही नहीं, किसान भी अपने जमींदारसे बिना व्याजका ऋण नहीं पायेगा और मजबूर होकर उसे साहूकारोंसे ऊँचे व्याजपर ऋण लेना पड़ेगा।

साथ ही, यह स्पष्टतः अत्यन्त अनुचित है कि बिना किसी चेतावनी और बिना किसी मुआवजेके मौजूदा करारोंको समाप्त कर दिया जाये, और काश्तकारीकी एक ऐसी प्रणाली जो एक सौ सालसे ऊपरसे जारी है, उसे समाप्त करनेसे पहले बागान-मालिकोंको कोई नई प्रणाली उसके स्थानपर जारी करनेका मौका न दिया जाये।

चम्पारनकी रैयत स्वभावतः मूर्ख और रूढ़िवादी है, और किसी भी नई चीजको सन्देहकी दृष्टिसे देखती है। जिलेकी वर्तमान क्षुब्ध स्थिति और श्री गांधीके अनुगामियों द्वारा इस समय भी जारी आन्दोलनके कारण खुश्की प्रणालीकी कठिनाई दोगुनी हो जायेगी। इसलिए हम बहुत जोरदार ढंगसे माँग करते हैं कि मौजूदा करारोंको *तीन साल तक और, या उस समय तक जारी रहने दिया जाये जबतक मूल साटोंपर दी* गई पेशगीका बकाया अदा नहीं कर दिया जाता। इस अवधिमें बागान-मालिक लोग तिनकठिया प्रणालीके स्थानपर खुश्की प्रणाली लागू कर देंगे।

अक्सर उपर्युक्त रकमको वसूल करनेमें बहुत मुश्किल होती है। यदि रैयत अदा करनेसे इनकार कर दे तो बहुत ज्यादा परेशानी और खर्च उठाना पड़ता है। किसान जानते हैं कि प्रति व्यक्ति बकायाकी रकम इतनी छोटी होती है कि उनके लिए कोई अदालत नहीं जायेगा। लेकिन सब मिलाकर यह रकम काफी बड़ी होती है।

इसलिए यह सिफारिश की जाती है कि जबतक रैयत द्वारा ली गई पेशगीकी रकम पूरी तरह अदा नहीं हो जाती तबतक बागान-मालिकोंके हितमें उपर्युक्त स्थिति बनी रहने दी जायेगी। इससे किसानोंको कोई कष्ट नहीं होगा क्योंकि वे किसी भी समय डाकसे या दीवानी अदालतोंके जरिये पेशगीकी रकम वापस कर सकते हैं। . . .

[अंग्रेजीसे]

सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन

परिशिष्ट ११

मो० क० गांधीके साथ डब्ल्यू० मॉडकी भेंट

जनवरी ३१, १९१८

१. पहले हमने खुश्की प्रथापर चर्चा की। श्री गांधीने भूमिके किसी खण्ड-विशेष या प्लाटके बन्धीकरणपर आपत्ति प्रकट की, लेकिन कहा कि उन्हें इसपर एतराज नहीं है कि रैयत भूमिके कुछ हिस्सेमें नीलकी खेती करनेकी शर्त कर ले। तब मैंने चम्पारनके बागान-मालिकों द्वारा प्रस्तावित संशोधनमें "स्वयं उसके चुने हुए खेत या जमीनके टुकड़ेकी पैदावार" के स्थानपर "अपनी जोतके अमुक अंशकी पैदावार" शब्द

रखनेका सुझाव रखा। श्री गांधीने तब धारा ३, ४ और ५की अवधान धाराओंका मसविदा सुझाया। (देखिए पादटिप्पणी[1])

२. इसके बाद हमने उस प्रस्तावित संशोधनपर चर्चा की जिसका मंशा जबतक पेशगी अदा न हो जाये तबतक साटाके दायित्वको जारी रखनेका था। यह बतानेके बावजूद कि इससे बहुतसी मुकदमेबाजी बच जायेगी, श्री गांधीने संशोधनको स्वीकार करनेसे बिल्कुल इनकार कर दिया।

३. फिर हमने सिरनीके बारेमें बात की। श्री गांधीका विचार था कि भले ही तुरकौलियाके मुकाबले सिरनीमें ली गई शरहबेशीकी दर कम रही हो, लेकिन जलहा या सिरनी, इन दोनोंमें से किसीके बारेमें विचार नहीं करना चाहिए।

४. इसके बाद हमने इस प्रस्तावपर विचार किया कि शरहबेशी वृद्धिको घटाकर जितना तय कर दिया जाये उसे सबके लिए बाध्यकारी माना जाये। श्री गांधी इस मुद्देपर सहमत हुए, लेकिन उन्होंने अपने जनवरी २४, १९१८के पत्रसे वह उद्धरण पेश किया जिसमें उन्होंने कहा था कि "किसी भी संशोधनमें अनियमितता अथवा अनधिकारिता सम्बन्धी शिकायत होनेपर अपील करनेके अधिकारको सावधानीपूर्वक बरकरार रखना होगा, उदाहरणार्थ, ऐसे मामलोंमें कि जहाँ बन्दोबस्त अधिकारीने घटनाको गलत दर्ज कर लिया हो, या जहाँ स्पष्ट हो कि क्लर्कसे भूल हो गई है।

५. जहाँतक अबवाबका सम्बन्ध है, श्री गांधीको इस प्रस्तावपर कोई आपत्ति नहीं है कि उसे सारे प्रान्तपर लागू कर दिया जाये।

जहाँतक जमींदारोंको हर मामलेमें उत्तरदायी बनाने विषयक श्री गांधीके स्वयंके संशोधनका सवाल है, उसे प्रवर समितिके सामने रखा जा सकता है, किन्तु यदि वह स्वीकार नहीं होता तो सरकार पूरा खण्ड वापस लेनेका वादा नहीं कर सकती। श्री गांधीको उपधारा (३) बनी रहनेपर भी जबरदस्त आपत्ति है।

६. गाड़ी साटाके मामलेमें श्री गांधीका आग्रह है कि इसे समाप्त करनेके लिए भी कोई व्यवस्था होनी चाहिए अन्यथा गाड़ी साटाको लेकर बहुतसे मुकदमें पैदा होंगे।

७. तावान वापस करनेके प्रश्नका जिक्र तो हुआ लेकिन भेंटमें उसपर चर्चा नहीं हुई।

डब्ल्यू० मॉड

[अंग्रेजीसे]

सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चम्पारन

१. पादटिप्पणी इस प्रकार थी: "शर्त यह है कि इस उपखण्ड की कोई भी व्यवस्था रैयतको इसके खण्ड ५ की शर्तोंके अनुसार उसकी अपनी जोतके किसी भी हिस्सेपर कोई फसल-विशेष पैदा करनेका करार करनेसे नहीं रोकेगी।

खण्ड ५के लिए—शर्त यह है कि करारकी कोई भी व्यवस्था रैयतकी भूमि चुननेकी स्वतन्त्रताको समाप्त या सीमित नहीं करेगी।"

परिशिष्ट १२

शंकरलाल बैंकरकी पत्रिका

आप लोगोंके लिए मैं यह पहली ही पत्रिका लिख रहा हूँ। इसलिए मुझे यह तो कह ही देना चाहिये कि इसके लिए मेरा अधिकार नाम-मात्रका ही है। मैंने स्वयं मजदूरी नहीं की। मजदूरोंको जैसे दुःख सहने पड़ते हैं, वैसे मैंने नहीं सहे; इसी तरह उन दुःखोंको समझकर उन्हें दूर करनेके लिए भी मैं कुछ कर नहीं सकता। अतएव इस अवसरपर जो कुछ भी सलाह देनेकी जरूरत मुझे मालूम हुई है, वह देते हुए मुझे संकोच तो होता ही है। हालाँकि अबतक मैंने आपके लिए कुछ किया नहीं है, तो भी आगे अपनी शक्तिके अनुसार आपके लिए कुछ-न-कुछ करनेकी मेरी बड़ी इच्छा है, और इस इच्छाके कारण ही मैं यह लिखता हूँ।

आजसे दो दिन पहले हमारी स्थिति कुछ हदतक चिन्ताजनक हो उठी थी। आपमें से कुछ भाई तंगीका अनुभव करने लगे थे; और यह डर पैदा हो गया था कि कहीं वे इस तंगीसे मुक्त होनेके लिए गांधीजीके आग्रहके अनुसार मजदूरी करनेके बदले, प्रतिज्ञा तोड़कर कामपर न चले जायें। लेकिन आज वह स्थिति नहीं रही है। गांधीजी-की प्रतिज्ञाके कारण हमारे जड़ हृदयोंमें चैतन्य आ गया है, और हमें पता चला है कि हमारी प्रतिज्ञा कितनी गम्भीर है। 'मर जायेंगे, पर टेक न छोड़ेंगे,' यह बात अब महज सभाओंमें बोलनेकी नहीं रही, बल्कि करके दिखानेकी है, इसका विश्वास अब हमें हो गया है। इस बदली हुई परिस्थितिके प्रमाण-स्वरूप तंगदस्त भाइयोंने खुशी-खुशी मजदूरी करना शुरू किया है। यही नहीं, बल्कि जिनकी स्थिति अच्छी है, उन्होंने दूसरों-के सामने अपना उदाहरण रखकर और अपनी मजदूरीसे मिलनेवाली मेहनतानेकी रकम दूसरोंकी मददमें खर्च करके हममें से फूटकी सम्भावनाको हमेशाके लिए नष्ट कर दिया है। लेकिन यह काफी नहीं है। गांधीजीकी प्रतिज्ञाके कारण हमारे ऊपर बड़ी भारी जिम्मेदारी आ पड़ी है। अगर इस जिम्मेदारीको हम अच्छी तरह समझते हैं, तो हमें इस लड़ाईको जल्दीसे-जल्दी खतम करनेके लिए जी-जानसे मेहनत करनी चाहिये; और जिन-जिन उपायोंसे हम अपनी टेकपर कायम रहकर लड़ाईको समेट सकते हों, उन सब उपायोंका प्रयोग तुरन्त करना चाहिये। हमारी टेक ३५ प्रतिशत लेनेकी है। और हम जानते हैं कि मिल-मालिकोंके लिए आर्थिक दृष्टिसे ये ३५ प्रतिशत देना मुश्किल नहीं है। लेकिन ३५ प्रतिशत देनेमें उन्हें जो डर लगता है, वह यह है कि उससे मजदूर सिरपर चढ़ बैठेंगे, उद्धत बन जायेंगे, बात-बातमें बहाने बनाकर रूठेंगे और छोटी-छोटी बातोंपर हड़ताल करके उद्योगका नाश करेंगे। मुझे तो इस भयका कोई कारण नहीं मालूम होता। जिस उद्योगसे मजदूरोंको रोजी मिलती है, उसके नाशकी इच्छा वे कभी कर ही नहीं सकते। फिर भी यदि मजदूर न्याय-अन्यायका विचार किये बिना मर्यादा छोड़कर चलें, तो जिस अनिष्टका जिक्र ऊपर किया है, वह हुए बिना न रहेगा। अगर

हम इस बुरे परिणामसे बचना चाहते हों, तो हमें बाकायदा ईमानदारीके साथ काम करनेका निश्चय करना चाहिये। हमें तय कर लेना चाहिये कि हम कोई अनुचित माँग पेश नहीं करेंगे, और न्यायके लिए भी हड़ताल-जैसी चीजका सहारा तबतक न लेंगे, जबतक दूसरे उपाय खतम न हो जायें। लेकिन खाली ऐसा निश्चय कर लेनेसे भी हमारा काम नहीं बनता। हमें मालिकोंसे मिलना होगा, अपने इस निश्चयकी बात उनसे कहनी होगी, और अपने लिए उनके मनमें विश्वास उत्पन्न करना होगा। जिस भयके कारण वे हमें ३५ प्रतिशत देनेसे हिचकिचाते हैं, उनका वह भय दूर करना होगा। कारीगरोंको मेरी यह आग्रहभरी सलाह है कि वे इसके लिए जरूरी कार्रवाई जल्दी ही करें।

[गुजरातीसे]

एक धर्मयुद्ध

परिशिष्ट १३

कमिश्नर श्री प्रैटका भाषण

[अहमदाबाद
अप्रैल १२, १९१८]

मैं चाहता हूँ कि आप मेरी बातें खूब ध्यानसे सुनें, और जब वापस अपने-अपने गाँव जायें तो जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे हर आदमीको बतायें ताकि जो बात इस समय मैं आपसे कह रहा हूँ वह सारे जिलेको मालूम हो जाये। जो बातें मैं कहने जा रहा हूँ वह सिर्फ आपके लिए ही नहीं हैं, सारे जिलेके लिए हैं। आप लोगोंको महात्मा गांधी, वल्लभभाई साहब और उनके साथ काम करनेवाले अन्य महानुभावोंने बहुत सलाहें दी हैं। उन्होंने गाँव-गाँवमें भाषण किये हैं। लेकिन आज मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप मेरी बातें सुनें।

काश्तकारोंके अधिकार ऐसे हैं कि वे भूमिको पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने अधिकारमें रख सकते हैं। लेकिन इन अधिकारोंके साथ-साथ कानूनन नियत किया गया लगान नियमित रूपसे अदा करनेका कर्त्तव्य भी जुड़ा हुआ है। केवल इसी शर्तपर आप अपनी भूमिपर अधिकार बनाये रख सकते हैं। लगान तय करनेका काम सरकारका है, और वह बिना किसी वकील या बैरिस्टरकी दखलन्दाजीके अपने अफसरोंके जरिये लगान तय करती है। लगानकी रकम तय करनेका अधिकार सरकारके सिवा किसीको नहीं है। यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें दीवानी अदालतें दखल दे सकें। कोई आदमी अदालतमें यह शिकायत लेकर नहीं जा सकता कि लगानकी दर बहुत-ज्यादा लगाई गई है। काश्तकारोंको ऐसा कोई कानूनी अधिकार नहीं है कि वे लगान-निर्धारणको स्थगित करनेकी माँग कर सकें या उसका आग्रह कर सकें। स्थगित करना न करना पूरी तरह हमारी मरजीपर है। फसलकी हालतपर, और तत्सम्बन्धी शिकायतों और आपत्तियोंपर विचार करनेके बाद हम आदेश जारी करते हैं। अन्तिम आदेश जारी हो जानेके

बाद कोई अपील नहीं की जा सकती। यह गांधीजी या वल्लभभाईके तय करनेकी बात नहीं है, और जहाँतक वसूली स्थगित करनेका सवाल है, आपका लड़ना व्यर्थ होगा। यह बात मैं आपको अच्छी तरह समझा देना चाहता हूँ। आपको मेरे इन शब्दोंपर ध्यान देना चाहिए, सिर्फ इसीलिए नहीं कि ये मेरे शब्द हैं, बल्कि इसलिए भी कि कानूनी स्थिति भी यही है। यह मेरा ही आदेश नहीं, लॉर्ड विलिंग्डनका आदेश भी है। मेरे पास उनका पत्र है जिसमें उन्होंने कहा है कि इस मामलेमें मैं जो भी आज्ञा ज़ारी करूँगा, उसे वे स्वीकार करेंगे। अतः आपको यह समझ लेना चाहिए कि आज आपसे मैं नहीं, बल्कि एक तरहसे स्वयं महाविभव गवर्नर महोदय बात कर रहे हैं।

श्री गांधी बहुत अच्छे आदमी हैं, एक सन्त पुरुष हैं, और ईमानदारीसे ऐसा मानते हैं कि वे आपको जो सलाह देते हैं वह आपके हितमें है। उनका विचार है कि भूमि का लगान अदा न करके आप गरीबोंकी रक्षा करेंगे। यही बात कल मुझसे भेंट करनेपर वे मुझे भी समझा रहे थे। लेकिन क्या सरकार गरीबोंकी रक्षा करनेवाली नहीं है? गरीबोंकी रक्षा करना आपके गवर्नरका कर्त्तव्य है या आप लोगोंका? क्या आपको अकालके दिनोंकी याद नहीं है? सन् १९००के अकालमें, और १९०२ में चूहोंके कारण जो अकाल पड़ा था, मैं अहमदाबाद और पंचमहाल जिलोंका कलक्टर था। आपको याद होगा कि सरकार द्वारा गरीबोंकी सहायतार्थ कितने नये-नये काम शुरू किये गये थे। मुझे याद है कि लोगोंको भोजन देनेके उद्देश्यसे तालाब बनवाने और तकावी बाँटनेमें लाखों रुपये खर्च किये गये थे। आप लोगोंमें जो वृद्ध हैं, उन्हें वे दिन अवश्य याद होंगे। आज उसी सरकारके खिलाफ आप इस जिलेमें संघर्ष चला रहे हैं। दुनियामें एक बहुत बड़ी लड़ाई हो रही है और परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि सरकारकी हर तरहसे मदद करना आप सबका कर्त्तव्य है। लेकिन मददकी जगह इस जिलेसे सरकारको क्या मिलता है? सरकारको मदद मिलती है, या लोगोंका विरोध मिलता है?

अगर सरकारके खिलाफ आप अपनी लड़ाई जारी रखते हैं, तो उसके नतीजे आपको भोगने पड़ेंगे, होमरूल लीगवाले इन महानुभावोंको नहीं। उन्हें किसी तरहका कोई नुकसान नहीं होगा। जेल उन्हें नहीं जाना होगा। इसी ढंगका एक आन्दोलन जब दक्षिण आफ्रिकामें आरम्भ किया गया था तब महात्मा गांधी जेल गये थे। लेकिन इस देशमें वे जेल नहीं जायेंगे। जेल उनके उपयुक्त स्थान नहीं है। मैं आपसे फिर कहता हूँ कि वे बहुत ही भले और एक सन्त पुरुष हैं।

सरकारके मनमें आपके प्रति कोई क्रोध-भाव नहीं है। बच्चे जब अपने माता-पिताको ठोकर मारते हैं, तब वे दुखी तो हो जाते हैं, पर नाराज नहीं होते। जब्ती, चौथाई, जुर्माना, सर्वस्व अपहरण, नर्वा अधिकारोंकी समाप्ति, आखिर ये सब तकलीफें आप क्यों सहते हैं? क्या आप अपने ही हाथों अपनी सम्पत्ति नष्ट करना चाहते हैं? क्या आपको अपनी स्त्रियों और बच्चोंका कोई खयाल नहीं है? क्या आप साधारण मजदूरोंकी हालतमें पहुँचना चाहते हैं? अगर हाँ, तो क्यों?

मुझे भूमि-कर कानूनका २८ वर्षका अनुभव है। महात्मा गांधी मेरे मित्र हैं। उन्हें आफ्रिकासे इस देशमें आये दो-तीन वर्ष ही हुए हैं। उन्होंने अपनी जिन्दगीका ज्यादा समय आफ्रिकामें बिताया है। उन्हें धर्मका बहुत अच्छा ज्ञान है। उस विषयपर उनकी

जो भी सलाह होती है, ठोस होती है, लेकिन राजनीतिक मामलोंमें, भूमि और भूमि-कर-के मामलेमें उनकी जानकारी बहुत थोड़ी है। इन सब मामलोंको मैं कहीं ज्यादा जानता-समझता हूँ। आप गलत सलाहके अनुसार काम करके दुख उठायेंगे तो मुझे दुःख होगा। नेक और भले पाटीदारोंको जमीनसे बेदखल होते देखकर मुझे दुःख होगा। सरकारको मालूम है कि काश्तकारोंके अधिकारोंके बारेमें गलतफहमी रही है। इसलिए हमारी उदार सरकार आपको यह अन्तिम अवसर दे रही है कि आप उसकी सलाह सुनें।

आपको वही सलाह देने मैं यहाँ आया हूँ, और मुझे सिर्फ यह कहना है कि लगानकी अदायगी करना काश्तकारोंका कर्त्तव्य है। यह मत सोचिए कि हमारे मामलत-दार और तलाटी लोग आपकी जायदादकी जब्ती करके और बेचकर पैसा वसूलेंगे। वे इतनी तकलीफ नहीं उठायेंगे। हमारा समय बहुत कीमती है। वे लोग पैसा वसूल करनेके लिए किसीके घर नहीं जायेंगे। मैं आप लोगोंको धमकी नहीं दे रहा हूँ। आपको यह बात जान लेनी चाहिए कि माता-पिता बच्चोंको धमकाते नहीं, समझाते भर हैं। यदि आप लोग अपना लगान नहीं देंगे तो आपको जमीनसे बेदखल कर दिया जायेगा। बहुतसे लोग आपसे कहते हैं कि ऐसा नहीं किया जायेगा। लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि ऐसा ही होगा। इसके लिए मुझे कोई प्रतिज्ञा करनेकी जरूरत नहीं है, क्योंकि मेरे पास अपनी बात पूरी कर दिखानेकी सत्ता है। जो लोग लगान देनेसे मना करेंगे उन्हें जमीन वापस नहीं मिलेगी। सरकार अपनी बहीमें ऐसे काश्तकारोंको नहीं रखना चाहती, और न हम अपने पट्टा-रजिस्टरमें ऐसे लोगोंके नाम चढ़ानेको उत्सुक हैं। एक बार जो नाम कट गये उन्हें दुबारा दर्ज नहीं किया जायेगा।

अब अन्तमें मैं एक बात और बता दूँ। अगर कोई आदमी भ्रमवश या गलतीसे कोई प्रतिज्ञा कर ले, तो उसे अपनेको उस प्रतिज्ञासे बँधा हुआ माननेकी जरूरत नहीं है। ऐसी प्रतिज्ञा निभाना जरूरी नहीं है। यदि आप ऐसी प्रतिज्ञा भंग कर दें तो कोई नहीं कहेगा कि आपने पाप किया है या गलती की है। दुनिया ऐसे आदमीको निर्दोष मानेगी। आपको याद होगा कि अहमदाबादमें क्या हुआ। आप लोगोंमें बहुतसे लोग शायद समाचारपत्र न पढ़ते हों, इसलिए मैं बताता हूँ। अभी हालमें मिल-मालिकों और मिल-मजदूरोंमें झगड़ा हुआ। मजदूरोंने यह प्रतिज्ञा की थी कि जबतक उनकी मजदूरी में ३५ प्रतिशत वृद्धि नहीं की जाती, वे कामपर नहीं जायेंगे। लेकिन अन्तमें क्या हुआ? जब उन्हें अनुभव हुआ कि उनकी माँग उचित नहीं है तो वे अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ नहीं रह सके, उसे तोड़ दिया, २७½ प्रतिशतकी वृद्धि स्वीकार कर ली और काम शुरू कर दिया। उसी तरह, मैं आपसे कहता हूँ कि आपने प्रतिज्ञा करके गलती की है। आप सरकारके प्रति अपना कर्त्तव्य भूल गये, इसीलिए आपने ऐसा किया। आपने अपनी प्रतिज्ञाके परिणामोंपर पूरी तरह विचार नहीं किया जिसका प्रभाव आपपर ही नहीं आपके बच्चोंपर भी पड़ेगा। इन सब बातोंको देखते हुए मैं आपसे पुनः विचार करनेको कहता हूँ। आप सोच-विचारकर निर्णय करें कि आपको सरकारके प्रति अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिए या अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहते हुए उसके परिणाम भोगने चाहिए?

[अंग्रेजीसे]

सरदार वल्लभभाई पटेल

सामग्रीके साधन-सूत्र

इंडिया ऑफिस ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स: भूतपूर्व इंडिया ऑफिसके पुस्तकालयमें सुरक्षित भारतीय मामलोंसे सम्बन्धित कागजात और प्रलेख जिनका सम्बन्ध भारत-मन्त्रीसे था।

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

(नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया) राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली: में सुरक्षित कागजात।

साबरमती संग्रहालय: पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय, जिनमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तक के भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे हैं।

'अमृतबाजार पत्रिका': कलकत्तेसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'इंडियन रिव्यू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी मासिक।

'गुजराती': बम्बईसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'न्यू इंडिया': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'प्रजाबन्धु': अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'प्रताप': कानपुरसे प्रकाशित हिन्दी दैनिक।

'बंगाली': कलकत्तेसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'मुम्बई समाचार': बम्बईसे प्रकाशित गुजराती दैनिक।

'यंग इंडिया': १९१८–३१; अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक; सम्पादक — मो० क० गांधी; प्रकाशक — मोहनलाल मगनलाल भट्ट।

'लीडर': इलाहाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'स्टेट्समैन': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

बॉम्बे गवर्नमेंट रेकर्ड्स।

बॉम्बे गवर्नमेंट होम डिपार्टमेंट।

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके १९१७में हुए ३२वें अधिवेशनकी अंग्रेजी रिपोर्ट।

'अन्त्यज स्तोत्र' (गुजराती): अमृतलाल सुन्दरजी पढियार।

'एक धर्मयुद्ध' (गुजराती): महादेव देसाई, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४०।

'खेड़ा सत्याग्रह' (गुजराती): शंकरलाल डी० पारेख, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद, १९२२।

'गोपाल कृष्ण गोखलेना व्याख्यानो', खण्ड १ (गुजराती) : अनुवादक — महादेव देसाई, बॉम्बे होमरूल लीग, १९१८।

'गोसेवा' (गुजराती) : मो० क० गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९३४।

'जीवन प्रभात' : प्रभुदास गांधी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९५४।

'जीवनना झरणां', खण्ड १ (गुजराती) : रावजीभाई मणिभाई पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४५।

'थॉट्स ऑन लैंग्वेज' (अंग्रेजी) : मो० क० गांधी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, १९५६।

'धर्मात्मा गोखले' (गुजराती) : मो० क० गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५०।

'बापू और हरिजन' : सम्पादक — क्षेमचन्द्र 'सुमन', पब्लिकेशन्स ब्यूरो, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, १९५२।

'बापूनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'महात्मा गांधी' : रामचन्द्र वर्मा, गांधी हिन्दी पुस्तक भण्डार, कालबादेवी, बम्बई, १९१९।

'महात्मा गांधीनी विचारसृष्टि' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी, १९१९।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी।

'महादेवभाईनी डायरी' (गुजराती) : नरहरि डी० पारेख, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५०।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी) : एलिस एम० बार्न्ज़, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५६।

'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा' (गुजराती) : मो० क० गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

'सरदार वल्लभभाई पटेल', खण्ड १ (गुजराती) : नरहरि डी० पारेख, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

'सिलैक्ट डॉक्यूमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज़ मूवमेंट इन चम्पारन' (अंग्रेजी) : सम्पादक — डॉ० बी० बी० मिश्र, बिहार सरकार, १९६३।

'स्पीचेज़ ऐंड राइटिंग्ज़ ऑफ एम० के० गांधी' (अंग्रेजी) : जी० ए० नटेसन ऐंड कम्पनी, मद्रास।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(अक्तूबर १९१७ – जुलाई १९१८)

अक्तूबर ९ के लगभग : गांधीजीने बेतियामें गोशालाकी नींव रखी।

अक्तूबर १५ : भागलपुरमें बिहार छात्र सम्मेलनकी अध्यक्षताकी।

अक्तूबर १८ : बिहार और उड़ीसा सरकारने चम्पारन खेती-बारी जाँच समितिपर प्रस्ताव पास किया जिसमें "कृषकोंके प्रतिनिधि श्री गांधीकी समझ और संयम" की प्रशंसा की गई।

अक्तूबर १९ : भड़ौंच पहुँचे। व्यापारियों द्वारा आयोजित स्वागत समारोहमें भाषण।

अक्तूबर २० : द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलनकी अध्यक्षता की।

अक्तूबर २१ : सम्मेलनके समापन भाषणमें कहा कि मैं अपना जीवन तभी सार्थक समझूँगा जब भारतके लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर पाऊँ।

अक्तूबर २६ : अखिल भारतीय शिष्टमण्डलने चैम्सफोर्ड और मॉण्टेग्युसे भेंट की। शिष्टमण्डलमें गांधीजीके अतिरिक्त मोतीलाल नेहरू, तिलक, जिन्ना, सप्रू आदि भी थे।

नवम्बर २ : गांधीजी गोधरा पहुँचे। तीसरे दर्जेके रेलयात्रियोंके कष्टोंके विरोधमें आयोजित सभाकी अध्यक्षता की।

नवम्बर ३ : गोधरामें प्रथम गुजरात राजनीतिक परिषद्की अध्यक्षता की।

नवम्बर ४ : राजनीतिक परिषद्में घोषणा की कि सरकारने वीरमगाँव चुंगी चौकी हटा देनेका निर्णय किया है।

नवम्बर ५ : परिषद्के समापन भाषणमें भाग लेनेवालोंसे अनुरोध किया कि वे प्रचार कार्य जारी रखें और मॉण्टेग्युको भेजे जानेवाले प्रार्थनापत्रके लिए हस्ताक्षर प्राप्त करें।

ढेढ़ समाजकी सभाकी अध्यक्षता की।

नवम्बर ८ : रातको मोतीहारी पहुँचे।

नवम्बर ९ : जिलाधीश जे० एल० मैरीमैनसे भेंट की।

नवम्बर ११ : मुजफ्फरपुर धर्मशाला, बिहारमें आयोजित सार्वजनिक सभामें भाषण; कांग्रेस-लीग सुझावोंका समर्थन करनेकी अपील की; शामको हिन्दू और मुसलमान नेताओंके सम्मेलनमें भाग लिया। नौ बजे मोतीहारीके लिए रवाना।

नवम्बर १२ : उमरेठमें गोखले-पुस्तकालयका उद्घाटन। बिहार बागान-मालिक संघके मंत्री जे० एम० विल्सनने 'स्टेट्समैन' में बागान-मालिकोंके कानूनी सलाहकारकी राय प्रकाशित की।

नवम्बर १४ से पूर्व : गुजरात हिन्दू स्त्री-मण्डलको भेजे गये अपने सन्देशमें गांधीजीने महिलाओंसे अनुरोध किया कि वे अपनी अशिक्षित बहनोंको शिक्षण देनेका कार्य

करें और विधवाओंको कातना और बुनना सीखनेके लिए उत्साहित कर देशसेवा करें।

नवम्बर १४ : ढाका, चम्पारनके समीप बरहरवामें गांधीजीने स्कूलका उद्घाटन किया। बेतिया लौटे।

नवम्बर १५ : बेतियाराजके प्रबन्धक जे० टी० ह्विटीसे भेंट।

नवम्बर १६ : कोयरी गये; अमोलवा स्टेशन गये और पुलिस तथा मजदूरोंके बीचके मामलेकी जाँच की।

नवम्बर २० : अमोलवासे लगभग दो मील दूर, श्रीरामपुरके समीप भीतीहरवामें स्कूल खोला।

नवम्बर २२ : जे० एल० मैरीमैनको सूचना दी कि वे पन्द्रह दिनके लिए चम्पारनसे बाहर जा रहे हैं और उनकी अनुपस्थितिमें बाबू ब्रजकिशोर उनका प्रतिनिधित्व करेंगे।

नवम्बर २६ : दिल्लीमें चैम्सफोर्ड और मॉण्टेग्युसे भेंट की।

नवम्बर २७ : तिलकके साथ भेंटके बाद मॉण्टेग्युने अपनी डायरीमें लिखा : इस समय भारतमें वे कदाचित् सबसे अधिक शक्तिशाली नेता हैं और यदि वे चाहें तो युद्धमें ठोस सहायता दे सकते हैं।

नवम्बर २८ : गांधीजी अलीगढ़ पहुँचे; लॉयल पुस्तकालयके मैदानमें "हिन्दू-मुस्लिम एकता" पर भाषण; बादमें अलीगढ़ कॉलेजके विद्यार्थियोंके समक्ष "सत्य और मितव्ययिता" पर भाषण; ख्वाजा अब्दुल मजीदके घर गये। रातकी गाड़ीसे कलकत्ता रवाना।

नवम्बर २९ : परिषद्में चम्पारन विधेयक पेश किया गया और परिषद्ने उसे प्रवर समितिको सौंप दिया।

दिसम्बर ४–५ : गांधीजीने अहमदाबादके मिल-मालिकोंसे मजदूरोंके वेतनके विषयमें बातचीत की।

दिसम्बर ६ : नडियादकी दशा खडायता वाडीमें "गुजरातकी कुछ समस्याओं" पर भाषण।[1] प्रथम गुजरात राजनीतिक सम्मेलन और गुजरात स्त्री शिक्षा मण्डलकी बैठकोंकी अध्यक्षता की।

दिसम्बर १० : रौलट समितिके सदस्योंके नामोंकी घोषणा;
गांधीजीने ए० एच० वेस्टको पत्रमें लिखा कि वे 'इंडियन ओपिनियन'को डर्बन ले जानेकी अपेक्षा उसका बन्द कर दिया जाना ज्यादा पसन्द करेंगे।

दिसम्बर १६ : विशाल सार्वजनिक सभामें भाषण; नडियाद छोड़नेके पूर्व हिन्दू अनाथालय देखने गये।

दिसम्बर १९ : बिहार और उड़ीसा सरकारके राजस्व सचिवको चम्पारन खेती-बारी विधेयकपर अपने विचार लिखकर भेजे।

दिसम्बर २६ : कलकत्तेमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ३२वें अधिवेशनमें भाग लिया।

१. उपलब्ध नहीं है।

दिसम्बर २७ : अखिल भारतीय समाज-सेवा सम्मेलनके स्थगित किये जानेकी घोषणा की।

दिसम्बर २९ : कांग्रेसके अधिवेशनमें दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंपर लागू निर्योग्यताओंसे सम्बन्धित प्रस्ताव पेश किया।

दिसम्बर ३० : भारतीय सामाजिक सम्मेलनमें दलित वर्गोंके उत्थान और शिक्षाके सम्बन्धमें प्रस्ताव प्रस्तुत किया; प्रथम वंग कृषि-विशेषज्ञोंकी परिषद्में भाषण, तिलककी अध्यक्षतामें अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा सम्मेलनकी सभामें हिन्दीको भारतकी सामान्य भाषा बनानेकी सिफारिश की। रवीन्द्रनाथ ठाकुरने कांग्रेसके अधिवेशनमें भाग लिया और अपनी कविता 'भारतकी प्रार्थना' सुनाई। कांग्रेस सप्ताहके सिलसिलेमें उनका नाटक 'डाकघर' खेला गया।

दिसम्बर ३१ : कलकत्तामें ऑल इंडिया मुस्लिम लीगकी बैठकके दूसरे दिन भाषण; बॉम्बे ऐंड बंगाल ह्यूमैनिटेरियन फंड्सके तत्त्वावधानमें आयोजित सभामें भी। अखिल भारतीय समाज सेवा सम्मेलनमें अध्यक्षीय भाषण।

१९१८

जनवरी १ : गांधीजीने अहमदाबादमें पानीके अपर्याप्त और अनियमित प्रबन्धके विरोधमें आयोजित सभाकी अध्यक्षता की।

गुजरात सभाने बम्बई सरकारको लगानमें राहत देनेके लिए लिखा।

जनवरी ४–५ : गांधीजीने अहमदाबाद मिल-मजदूरों और मिल-मालिकोंके प्रतिनिधियोंसे बातचीत की।

जनवरी ५ : बिहार बागान-मालिक संघके चम्पारनके सदस्योंने चम्पारन खेती-बारी विधेयककी कुछ अवधान धाराओंके विरुद्ध स्मृतिपत्र भेजा।

जनवरी १० : गांधीजीके मतानुसार गुजरात सभाने खेड़ाके किसानोंको लगान अदा न करनेकी सलाह दी।

जनवरी १२ : गांधीजी अहमदाबादसे मोतीहारी लौटे।

जनवरी १३ से पूर्व : जो अपनी नौकरियाँ छोड़कर कुछ दूसरे कामकी खोजमें थे, ऐसे शिक्षकोंको, काम देनेकी तत्परता घोषित की।

जनवरी १४ : तिरहुत क्षेत्रके कमिश्नर एल० एफ० मॉर्सहैडसे चम्पारन खेती-बारी विधेयकपर बातचीत की। अपने वक्तव्यमें खेड़ाके कलक्टरने गुजरात सभा द्वारा किसानोंको लगान न चुकानेकी राय दिये जानेकी निंदा की और लगान देनेसे इनकार करनेवाले किसानोंके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई करनेकी धमकी दी।

जनवरी १६ : बम्बई सरकारके वक्तव्यमें कहा गया कि जिन मामलोंमें जरूरी था वहाँ खेड़ाके कलक्टरने लगानमें राहत दी है।

जनवरी २१ : गांधीजीने हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेके सम्बन्धमें रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी राय जाननेके लिए उन्हें पत्र लिखा।

जनवरी २४ : बिहार और उड़ीसा सरकारके राजस्व सचिवसे निवेदन किया कि रैयतके प्रतिनिधिसे सलाहके बिना चम्पारन खेती-बारी विधेयकमें कोई भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन न किया जाये।

फरवरी ४: खेड़ाकी स्थितिपर बम्बईकी सार्वजनिक सभामें भाषण।

फरवरी ५: खेड़ाकी स्थितिके सम्बन्धमें दिनशा वाछा और जी० के० पारेखके साथ बम्बईके गवर्नरसे भेंट की; उसके बाद साबरमतीके लिए रवाना हुए।

फरवरी ६: आश्रम पहुँचे; कलक्टरों और मामलतदारों द्वारा जारी किये गये नोटिस देखे।

फरवरी ७: उत्तरी क्षेत्रके कमिश्नर प्रैटको पत्र लिखकर सरकारी नोटिसोंमें प्रयुक्त अशोभनीय भाषाका विरोध किया।

फरवरी ८: अहमदाबादके मिल-मजदूरोंसे न्याय-मार्गपर चलने और बिना कटुताके समझौता करनेका अनुरोध किया।

फरवरी १२: कलक्टर और कमिश्नरसे खेड़ाकी स्थितिपर बातचीत की।

फरवरी १४: पंचोंके सामने प्लेग बोनसको ध्यानमें रखते हुए वेतन-वृद्धिके सम्बन्धमें शंकरलाल बैंकर और वल्लभभाई पटेलके साथ मजदूरोंका प्रतिनिधित्व किया।

फरवरी १५: प्रैटको पत्र लिखा और अनुरोध किया कि जबतक वे स्थितिकी जाँच कर रहे हैं तबतक लगानकी वसूली स्थगित कर दी जाये।

फरवरी १९ से पूर्व: गोखलेके भाषणोंके अनुवादकी भूमिका लिखी।

फरवरी १९: मिल-मजदूरोंको उनके आन्दोलनके प्रति अपनी जिम्मेदारी समझाई। गोखलेकी तीसरी बरसीके अवसरपर 'सर्वेंट ऑफ इंडिया' का प्रकाशन शुरू किया।

फरवरी २०: बम्बईमें भगिनी समाजके वार्षिक उत्सवकी अध्यक्षता की; स्त्री-शिक्षापर भाषण। नडियाद लौट आये।

फरवरी २१: मोटरसे खेड़ा गये; कलक्टरसे भेंट।

फरवरी २२: अहमदाबादके मिल-मालिकोंने तालाबन्दीकी घोषणा कर दी।

फरवरी २५: गांधीजी नडियादसे अहमदाबाद लौट आये।

फरवरी २६: मिल-मजदूरोंके संघर्षके सम्बन्धमें पत्रिकाओंका प्रकाशन तथा नित्य साबरमतीके किनारे बबूलके पेड़के नीचे मजदूरोंके समक्ष भाषण प्रारम्भ किया।

फरवरी २७: साबरमती आश्रमकी प्रार्थना-सभामें भाषण; प्रैटसे भेंट।

मार्च १: मजदूरोंके सलाहकारोंमें जरूरतमन्द हड़ताली मजदूरोंके खान-पानका प्रबन्ध करनेका वचन लिया।

मार्च ४: बिहार और उड़ीसा विधान परिषद्ने चम्पारन खेती-बारी विधेयक पास कर दिया।

मार्च ७: सहयोगियोंके साथ तालाबन्दीसे उत्पन्न स्थितिके विषयमें चर्चा।

मार्च १०: अहमदाबादके प्रेमाभाई हॉलमें गुजरात सभाकी वार्षिक बैठककी अध्यक्षता की।

मार्च ११: नडियादके कलक्टरसे भेंट।

मार्च १२: मिलोंमें तालाबन्दीकी समाप्ति। मिल-मजदूरों द्वारा हड़ताल शुरू।

मार्च १३: दो सभाओंकी अध्यक्षता की, इनमें श्रीमती बेसेंटने भाषण दिया था।

मार्च १४: अपनी दशाके बारेमें मिल-मजदूरोंके उलाहनेकी खबर गांधीजीको दी गई।

मार्च १५: मजदूर अपनी टेकसे न हटें इस इरादेसे प्रार्थना-सभामें उपवास करनेके निर्णयकी घोषणा।

मार्च १६ : अनसूयाबेनके घरसे साबरमती आश्रम लौटे।

मार्च १७ : बम्बईके गवर्नरसे लगान की वसूली स्थगित करनेकी अपील; अपील स्वीकार नहीं हुई। आश्रमकी प्रार्थना-सभामें उपवासके महत्त्वको समझाया।

मार्च १८ : मिल-मजदूरों और मालिकोंके समझौतेकी घोषणा; प्रो० ध्रुव पंच नियुक्त।

मार्च १९ : अन्तिम पत्रिका, संख्या १७में समझौतेका पूरा मतलब समझाया; मिल-मजदूरोंके जुलूसमें भाग लिया।

मार्च २१ : सार्वजनिक सभामें भाषण; सी० एफ० एन्ड्रयूजने भी सभामें भाषण दिया; उसके बाद गांधीजी खेड़ाके किसानोंका मामला बम्बईके गवर्नरके सम्मुख रखनेके लिए बम्बई रवाना हुए।

मार्च २२ से पूर्व : गवर्नर द्वारा लगानकी वसूली स्थगित करनेकी अपील अस्वीकृत होनेपर गांधीजीने प्रैटको अन्तिम चेतावनी दी।

मार्च २२ : खेड़ा सत्याग्रह आरम्भ करते हुए नडियादके ५,००० किसानोंके समक्ष भाषण। सत्याग्रहियोंसे लगान अदा न करने और उससे होनेवाले कष्टोंका सामना करनेका वचन लिया।

एन्ड्रयूजका तार पानेपर दिल्लीके लिए रवाना।

मार्च २५ : अली भाइयोंकी रिहाईके सिलसिलेमें वाइसरायके निजी सचिवसे भेंट की।

मार्च २७ : नडियाद लौटे। हालमें किये गये अपने उपवासके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंको पत्र लिखा।

खेड़ाकी स्थितिपर परिपत्र प्रकाशित किया।

मार्च २८ : खेड़ाकी स्थितिपर समाचारपत्रोंको वक्तव्य; इन्दौरके लिए रवाना।

मार्च २९ : इन्दौरमें हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें अध्यक्षीय भाषण।

मार्च ३१ : समाचारपत्रोंको लिखे पत्रमें मद्रास जिलेके युवकोंसे हिन्दी सीखनेका अनुरोध।

अप्रैल १ : खेड़ाका दौरा शुरू; कठलाल और फिर कठाना गये; सार्वजनिक सभामें सरकारके रुखको अन्यायपूर्ण कहा।

अप्रैल २ : लिंबासीमें लोगोंसे अपील की कि वे सरकारकी दमनकारी कार्रवाइयोंसे डरें नहीं।

अप्रैल ५ : वड़थलमें कलक्टरसे भेंट की; लोगोंको परिणामकी कुछ परवाह किये बिना साहसपूर्वक कष्टोंका सामना करनेकी सलाह दी।

अप्रैल ६ : कस्तूरबा, वल्लभभाई और महादेव देसाईके साथ उत्तरसंडा गये; २,००० किसानोंकी सभामें भाषण।

अप्रैल ७ : नवागांवकी सभामें गांधीजीका भाषण सुननेके लिए लगभग ३,००० किसान उपस्थित।

अप्रैल ८ : गांधीजी बोरसद गये; ४,००० लोगोंकी सभामें भाषण; मद्रासके गोखले हॉलमें राष्ट्रीय शिक्षा सप्ताहके उद्घाटनके अवसरपर एनी बेसेंटने गांधीजीका सन्देश पढ़कर सुनाया।

अप्रैल १० : गांधीजीने अहमदाबादके जिलाधीशसे भेंट की; अकलाचामें खेड़ाकी स्थिति-पर भाषण।

अप्रैल ११ : अहमदाबादके कमिश्नरसे भेंट की; बड़ौदमें भाषण।

अप्रैल १२ से पूर्व : अप्रैल १२ को कमिश्नरकी सभामें भाग लेनेके लिए अहमदाबादकी जनताके नाम परिपत्र जारी किया।

अप्रैल १२ : कमिश्नरने गांधीजीकी सहायतासे आयोजित २,००० किसानोंकी सभामें भाषण दिया।

गांधीजीने कमिश्नरके भाषणके कारण उत्पन्न गलतफहमीको दूर करनेके लिए भाषण दिया।

नडियादकी सभामें भाषण देनेके बाद बम्बईके लिए रवाना।

अप्रैल १३ : बम्बईमें राजस्व मण्डलके सदस्यों, सर कारमाइकेल, सर न० गो० चन्दावरकर और दूसरे लोगोंसे खेड़ाके सम्बन्धमें भेंट की।

अप्रैल १५ : नडियाद से 'बॉम्बे क्रॉनिकल' को पत्र लिखकर कमिश्नरके भाषणके कारण उत्पन्न गलतफहमीको दूर किया।

अप्रैल १६ : ओडमें, संगठित होकर सरकारका विरोध करनेकी आवश्यकतापर, भाषण दिया।

अप्रैल १७ : कमिश्नरके भाषणके विषयमें 'बॉम्बे क्रॉनिकल' को लिखे अपने पत्रके मुद्दोंका विस्तार करते हुए एक पत्रक प्रकाशित किया। दंतेली और चिखोदरामें सत्याग्रहियोंके समक्ष भाषण।

अप्रैल १८ : बोरसद ताल्लुकाके रास गाँवमें गये; किसानोंके समक्ष भाषण।

अप्रैल २० : कस्तूरबा और अन्य लोगोंके साथ आनन्द ताल्लुकेके कासर, अजरपुरा और सामन्था गाँवोंमें गये; वहाँ किसानोंकी सभाओंमें भाषण दिये।

अप्रैल २२ : बोरसद ताल्लुकेमें पालज और सुणाव गाँवोंमें किसानोंके समक्ष भाषण।

अप्रैल २३ : बम्बई जाते समय कस्तूरबाको पत्रमें लिखा "तुम्हें मगनलालको माँ जैसा सुख देना है। . . . मेरे कामका उत्तराधिकार लेनेके लिए अभी तो वही योग्य है।" बम्बईके नागरिकोंकी सभामें खेड़ा सत्याग्रहके सम्बन्धमें भाषण। लगानकी वसूली फौरन बन्द करने या किसानोंके कष्टोंकी निष्पक्ष जाँच करवानेके लिए तिलकने प्रस्ताव रखा।

अप्रैल २४ : गांधीजी बम्बईसे दिल्ली रवाना।

सरकारने खेड़ाकी स्थितिपर समाचारपत्रोंमें वक्तव्य प्रकाशित किया।

अप्रैल २५ : उत्तरी क्षेत्रके मामलतदारोंको आज्ञा दी गई कि जो लोग लगान देनेमें असमर्थ हैं उनसे वसूली न की जाये।

वाइसरायने दिल्लीमें युद्ध-सम्मेलनका उद्घाटन किया।

अप्रैल २६ : सर क्लॉडहिलको पत्र लिखा और युद्ध सम्मेलन या उसकी किसी समितिमें शामिल होनेसे इनकार किया।

अप्रैल २७ : वाइसरायसे भेंट करनेके बाद युद्ध सम्मेलनमें शामिल होना स्वीकार किया। तिलकने युद्ध-सम्मेलनमें आनेका निमन्त्रण अस्वीकार किया।

अप्रैल २८ : युद्ध-सम्मेलनमें हिन्दीमें बोले; सर विलियम विन्सेंटसे भेंट।

अप्रैल २९ : युद्ध-सम्मेलनमें भरतीके प्रस्तावका समर्थन किया।

अप्रैल ३० : वाइसरायके निजी सचिव मैफीको पत्रमें लिखा कि युद्ध सम्मेलनमें की गई अपनी घोषणाके अनुसार मैं अपनी सेवाएँ अधिकारियोंको अर्पित करता हूँ।

मई १ : दिल्लीसे नडियादके लिए रवाना।

मई २ : नडियाद पहुँचे; रातको बम्बई रवाना।

मई ३ : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके अधिवेशनमें गये। एनी बेसेंटसे भेंट।

मई ४ : बीजापुरके लिए रवाना।

मई ५ : बीजापुरमें बम्बई प्रान्तीय सम्मेलन तथा अन्त्यज सम्मेलनमें भाग लिया।

मई ६ : खेड़ाकी समस्यापर बॉम्बे सर्वेंट्स द्वारा जारी की गई विज्ञप्तिके उत्तरमें वक्तव्य दिया। बम्बई प्रान्तीय सम्मेलनमें गिरमिटिया प्रथाको रद करनेके प्रस्तावका समर्थन किया। बम्बईके लिए रवाना।

मई १३ : ढुंढ़ाकुवामें "आत्मबल बनाम दमन" विषयपर भाषण दिया।

मई १४ : कठलालमें बीमार।

मई १६ : सन्देसरमें भाषण।

मई १७ : अहमदाबादसे चम्पारन रवाना।

मई १८ : मैफीको सूचना दी कि वे भरती करनेकी पूरी तैयारी कर रहे हैं।

मई २४ : मोतीहारीमें आश्रमकी नींव रखनेके बाद बाँकीपुरके रास्तेसे अहमदाबादके लिए रवाना।

मई २६ : पटनामें आयोजित विराट सभामें "भारतकी राष्ट्र भाषा और स्वराज्य" पर भाषण।

मई २७ : खंडालीमें सत्याग्रहके महत्त्वके विषयमें भाषण।

जून २ : 'बॉम्बे क्रॉनिकल' और सर जॉर्ज बार्न्सको दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय विरोधी कानूनोंके विषयमें लिखा।

जून ३ : उत्तरसंडा और नवागांवके किसानोंके सम्मुख भाषण।

जून ६ : खेड़ा सत्याग्रहकी समाप्तिकी सूचना देते हुए खेड़ाकी जनताके नाम सन्देश।

जून ८ : नडियादके जिलाधीशकी अदालतमें गवाही दी; और स्वीकार किया कि गलतीसे जब्त किये गये खेतोंसे प्याज खोद लेनेकी सलाह उन्होंने ही अभियुक्तको दी थी।

अदालतके बाहर जमा भीड़को सत्याग्रहपर दृढ़ रहनेकी सलाह दी।

जून ९ : बम्बई पहुँचे, बम्बई सरकारके मुख्य सचिवको पत्र लिखा और बम्बई प्रान्तीय युद्ध-सम्मेलनमें बोलनेसे इनकार किया।

जून १० : टाउन हॉलमें बम्बई प्रान्तीय युद्ध-सम्मेलनमें भाग लिया।

जून ११ : पूनामें भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) के उत्सवमें भाग लिया।

जून १५ : बम्बईके गवर्नरसे भेंट की।

जून १६ : प्रान्तीय युद्ध-सम्मेलनमें लॉर्ड विलिंग्डनके उत्तेजनात्मक वक्तव्योंके विरोधमें आयोजित बम्बईकी सार्वजनिक सभाकी अध्यक्षता की।

सभामें पास किये गये प्रस्तावोंमें सरकारके रुखकी आलोचना की गई।

जून १७ : नडियादमें अपने साथियोंके साथ भरतीके बारेमें सलाह-मशविरा किया।

जून २१ : नडियादमें भरती-अभियान शुरू करते हुए सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

जून २२ : नडियादसे भरती होनेकी अपील करते हुए पहली पत्रिका छापी।

जून २४ : अहमदाबादमें गवर्नरके भाषणके विरोधमें बोले; लोगोंसे भरती होनेकी अपील की।

जून २६ : रासमें भरती होनेकी आवश्यकतापर भाषण।

जून २७ : खेड़ामें जेल-मुक्त सत्याग्रहियोंके स्वागतार्थ आयोजित समारोहमें सत्याग्रहके महत्त्व और बलपर प्रकाश डाला।

जून २८ : कठलालमें 'प्याज सत्याग्रह' के अग्रणी मोहनलाल पंड्याको जेलसे मुक्त होने पर मानपत्र भेंट करनेके लिए आयोजित सभामें सत्याग्रहकी तुलना कल्पवृक्षसे की।

जून २९ : गांधीजीको खेड़ा सत्याग्रहकी सफल समाप्तिपर सभामें मानपत्र भेंट किया गया।

जुलाई ८ : मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड संवैधानिक सुधारोंपर रिपोर्ट प्रकाशित।

जुलाई ९ : जिन्नाको पत्र लिखा कि उन्हें भरतीके लिए काम करनेके साथ-साथ मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधार-योजनामें परिवर्तन करनेके लिए भी आग्रह करना चाहिए।

जुलाई १४ : करमसदमें भरतीके सम्बन्धमें भाषण।

जुलाई १७ : बम्बईसे नडियाद वापस आ गये।

जुलाई १८ : शास्त्रीके अनुरोधपर उन्हें मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधार-योजनाके सम्बन्धमें अपने विचार लिख भेजे।

प्रैटकी अध्यक्षतामें हुई सभामें घोषणा की कि जबतक मेरे गुजराती भाई ही आनाकानी करते हों तबतक भरतीके कामके लिए मैं निस्संकोच भावसे गुजरातसे बाहर नहीं जा सकता।

जुलाई २२ : भरतीकी अपील करते हुए दूसरी पत्रिका प्रकाशित की। गोविन्द मालवीयको पत्र लिखा कि मॉण्टेग्यु चैम्सफोर्ड योजना अच्छी है और उसकी कमियाँ आन्दोलन द्वारा दूर की जा सकती हैं।

जुलाई २७ : दक्षिण आफ्रिकाके संघर्षके साथी सोराबजी शापुरजी अडाजानियाकी अकाल मृत्युपर 'बॉम्बे क्रॉनिकल' को पत्र।

शीर्षक-सांकेतिका

सांकेतिका

घ

च

न

च

न

प

ब

ह